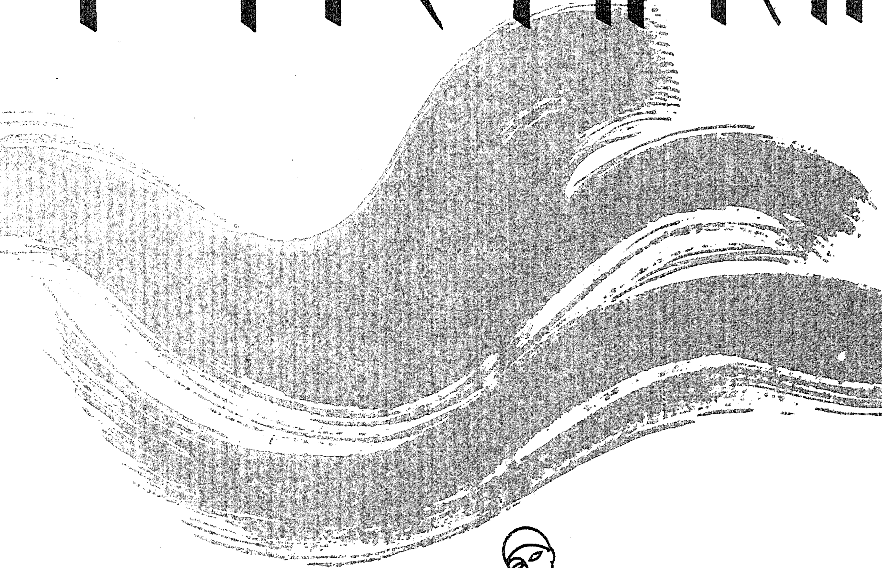
रचनावली 4

सम्पादक : अजित कुमार

४

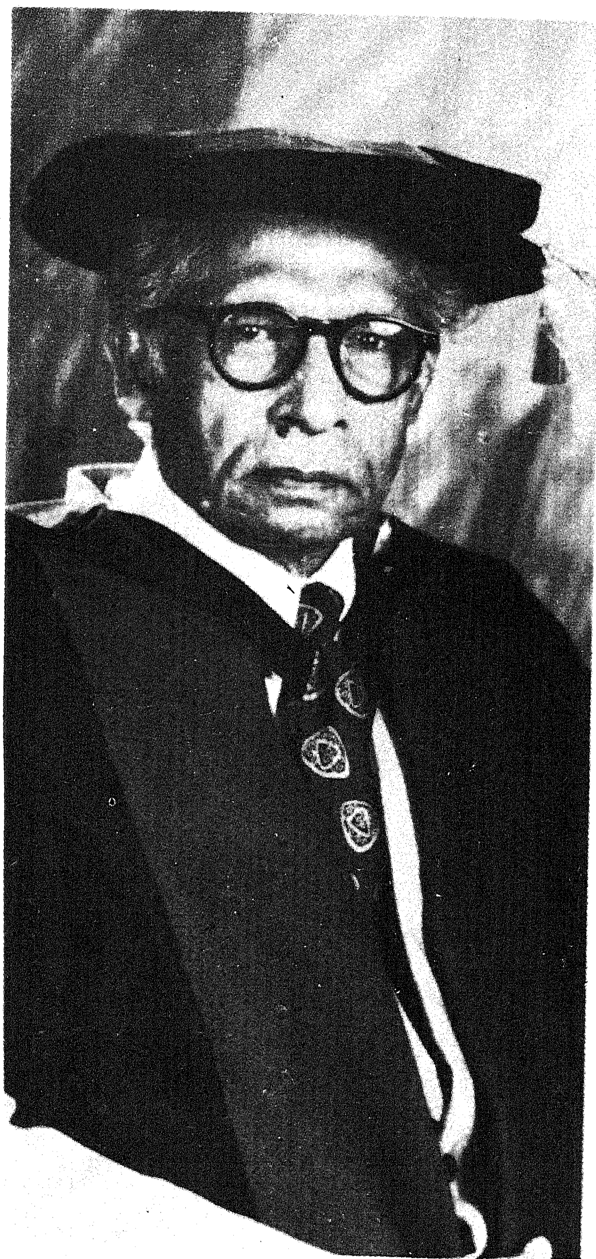
बच्चन रचनावली





राजकमल

© डा. हरिवंश राय बच्चन मूल्य : प्रति खण्ड रु. 100/-: सम्पूर्ण सैट रु 900/-
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा लि, 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002
कलापक्ष : नरेन्द्र श्रीवास्तव आवरण-चित्र के छायाकार : अमिताभ बच्चन
मुद्रक : आवरण एवं प्रारम्भिक पृष्ठ — प्रभात ऑफसेट प्रेस, नयी दिल्ली - 110002
पाठ्य भाग — रुचिका प्रिन्टर्स, दिल्ली - 110032 प्रथम संस्करण : 1983



1979 : डॉक्टरेट की पच्चीसवीं वर्षगाँठ पर
कैम्ब्रिज में



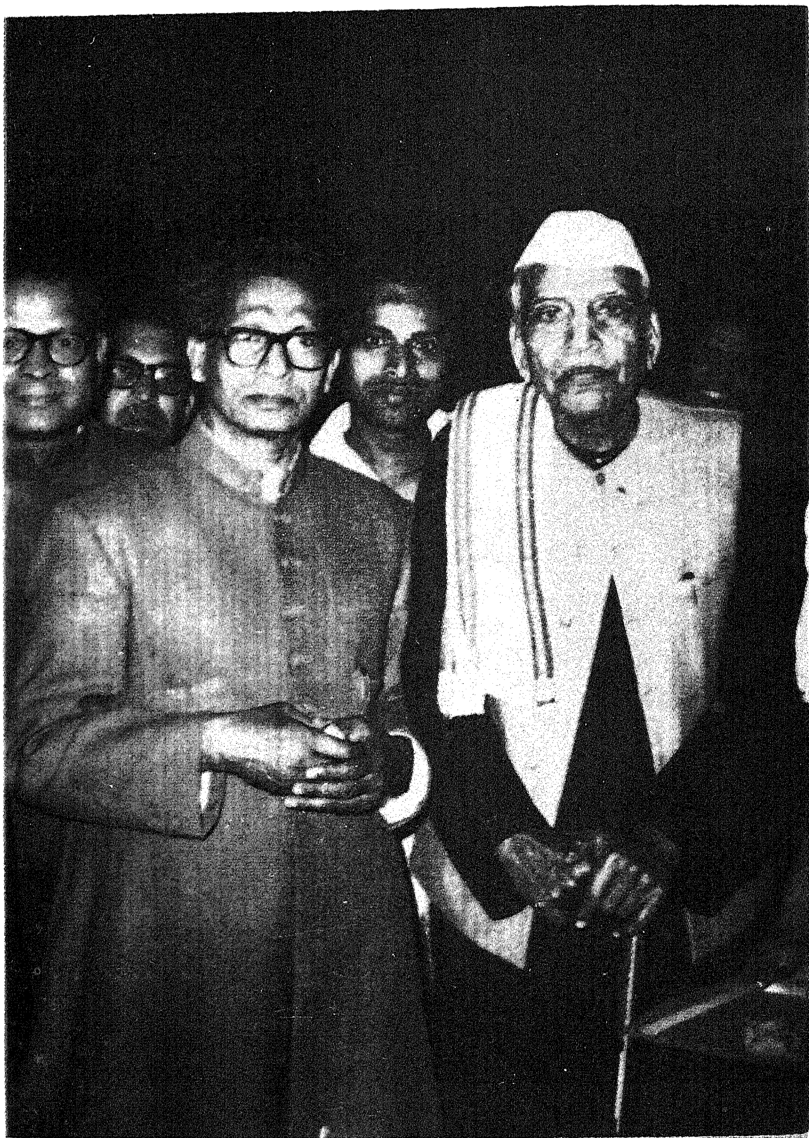
अलविदा कैम्ब्रिज, 1954

1938 : एम.ए. डिग्री लेने के बाद



कैम्ब्रिज : स्वाध्याय कक्ष में

श्रीमती इन्दिरा गाँधी से लोटस पुरस्कार
प्राप्त करते हुए : 1970



दद्दा (श्री मैथिलीशरण गुप्त) की दिल्ली से
विदाई के अवसर पर

तेजी को —

गीत — (५२)

[illegible Hindi marginal note]

राग उतर फिर फिर जाता है, बीन चढ़ी ही रह जाती है।

बीत गया युग एक तुम्हारे
मंदिर की ड्योढ़ी पर गाते,
पर अंतर के तार बहुत-से
शब्द नहीं झंकृत कर पाते,

Has it not happened exactly like this [illegible] days?

एक गीत का अंत दूसरे
का आरंभ हुआ करता है,
राग उतर फिर-फिर जाता है, बीन चढ़ी ही रह जाती है।

I mean there are several [illegible] to express oneself

अपने मन को ज़ाहिर करने
का दुनिया में बहुत बहाना,
किंतु किसी में माहिर होना
हाय, न मैंने अब तक जाना,

A poem [illegible] is [illegible] conflict between the emotion and the language. Emotion wants to [illegible] into the heart. The language wants to express it & thus relieve the heart. [illegible] is always [illegible] or [illegible] than the language for it is [illegible] never fully expressed.

जब-जब मेरे उर में, सुर में
द्वंद्व हुआ है, मैंने देखा,
उर विजयी होता, सुर के सिर हार मढ़ी ही रह जाती है।
राग उतर फिर-फिर जाता है, बीन चढ़ी ही रह जाती है।

भाषा के उपकरणों को [illegible]
व्यक्त न मेरी आशा-निराशा,
सोच बहुत दिन तक मैं बैठा
मन को मारे, मौन बना-सा,
लेकिन तब थी मेरी हालत
उस पगलाई-सी बदली की,
बिन बरसे बरसात नभ में जो उमड़ी ही रह जाती है।
राग उतर फिर फिर जाता है, बीन चढ़ी ही रह जाती है।

चुप न हुआ जाता है मुझसे
और न मुझसे गाया जाता,
धोखे में रखकर अपने को
और नहीं बहलाया जाता,
शूल निकलने-सा सुख होता
गान उठाता जब अंतर में,
लेकिन दिल के अंदर कोई फाँस गड़ी ही रह जाती है।
राग उतर फिर-फिर जाता है, बीन चढ़ी ही रह जाती है।

कौंसिल ब्रे,
चेस्टरटन लेन, कैम्ब्रिज

[signature]
१२ V ५३

शब्द शब्द प्रवाह एक अतीत है
पंक्ति पंक्ति प्रणय कथा सुपुनीत है
कोकिले! दर-दर न गाती फिर, अरे
कौन समझेगा? व्यथा का गीत है!

'अतीत का गीत' की पाण्डुलिपि का पहला पृष्ठ

सूचना

बच्चन रचनावली नौ खण्डों में प्रकाशित की जा रही है। पहले, दूसरे, तीसरे खण्ड में बच्चनजी की कविता संकलित है; चौथे में अन्य कवियों की रचनाओं के अनुवाद और पाँचवें में शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद हैं; छठे में बच्चनजी का आलोचनात्मक लेखन और सातवें-आठवें में आत्मकथा के तीन भागों सहित विदेश-प्रवास की डायरी है; नवें खण्ड में कहानियाँ, साक्षात्कार, वार्ताएँ, समीक्षाएँ, पत्र आदि विभिन्न विधाओं की रचनाएँ सम्मिलित हैं। वहीं अकारादि क्रम में कविताओं तथा लेखों की सूची भी मिलेगी।

प्रत्येक खण्ड की सामग्री सामान्यत: प्रकाशन-क्रम में रखी गयी है। आरम्भ 'मधुशाला' से हुआ है, जो भले ही कवि की पहली रचना न हो, पर लगभग आधी सदी से हिन्दी-प्रेमियों के लिए बच्चनजी का पर्याय रही है। **रचनावली** में सभी पुस्तकें अविकल रूप में दी गयी हैं और विधा-विशेष की असंकलित सामग्री सम्बद्ध खण्ड के अन्तिम पृष्ठों में रखी गयी है।

अपनी पुस्तकों की भूमिकाएँ लिखना बच्चनजी ने बहुत बाद में आरम्भ किया। ये भूमिकाएँ तो हमने यहाँ पुस्तकों के साथ दी हैं, पर जो थोड़ी-सी भूमिकाएँ या टिप्पणियाँ अन्य महानुभावों ने लिखी हैं, उन्हें **बच्चन रचनावली** में लेना हमने आवश्यक नहीं समझा। पाठक उन्हें अलग से छपी स्वतन्त्र पुस्तकों में पा सकेंगे।

आरम्भ से ही बच्चनजी ने एक ऐसी आत्मीयतापूर्ण, निराली शैली विकसित की, जिससे कि उनका श्रोता या पाठक, तन्मयता के क्षणों में, सुनने या पढ़ने के बजाय, खुद ही कुछ कहता हुआ-सा अनुभव करने लगता है। रस-निष्पत्ति की इस स्थिति को कोई भारी-भरकम नाम न दे, हम कवि और पाठक-श्रोता के बीच एक सहज, आत्मीय संवाद कहना अधिक पसन्द करेंगे। यह **रचनावली** भी वैसा ही लम्बा और अन्तरंग संवाद बने, इस उद्देश्य से हमने इसको टीका-टिप्पणी, कोष्ठक आदि के सम्पादकीय हस्तक्षेपों से सर्वथा मुक्त रखा है। कवि के जीवन तथा सृजन का पूर्णतर चित्र भी इस तरह पाठकों के सम्मुख आ सकेगा, ऐसी हमें आशा है।

रचनावली के आठवें खण्ड में हैं—बच्चनजी की आत्मकथा का तीसरा भाग—'बसेरे से दूर' और 'प्रवास की डायरी', जो उन्होंने शोधकार्य के लिए इंग्लैण्ड जाने पर, मुख्यतः 1952 में, लिखी थी। आत्मकथा के

अन्य दोनों भाग 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' तथा 'नीड़ का निर्माण फिर' **रचनावली** के सातवें खण्ड में हैं और हम समझते हैं कि स्वतन्त्र पुस्तकों के रूप में, क्रमश. 1969-1970 और 1977 में प्रकाशित तीनों भागों को यहाँ क्रमानुसार पढ़ने की सुविधा पाठकों के लिए प्रीतिकर होगी।

'प्रवास की डायरी' प्रकाशनकाल की दृष्टि से तो इस खण्ड के आरम्भ में छपनी चाहिए थी, पर आत्मकथा की निरन्तरता बनाये रखने के विचार से हमने 'बसेरे से दूर' को पहले रखना उचित समझा है। बच्चनजी ने 'प्रवास की डायरी' को 'बसेरे से दूर' की भूमिका के रूप में प्रस्तुत किया था; हम उसे परिशिष्ट नहीं बना रहे हैं; उसकी स्वायत्तता सुरक्षित है। हमें आशा है कि इस डायरी को उनकी आत्मकथा का एक अधिक त्वरित और तात्कालिक आयाम समझा जायेगा, जहाँ न 'दूरी' है, न 'फिर निर्माण', न 'भूलना—याद करना'। यह डायरी किन्हीं सन्दर्भों और किन्हीं रचनाओं के भी स्पष्टतर बोध में सहायक होगी, साथ ही बच्चनजी की लेखन-शैली का एक और पहलू पाठकों के लिए खोलेगी।

स्पष्ट ही, 'बसेरे से दूर' बच्चनजी के आत्मचित्रण की परिसमाप्ति नहीं है। बसेरे में वापसी से लेकर इलाहाबाद-दिल्ली-बम्बई-दिल्ली-बम्बई-दिल्ली तक उन्होंने बहुत लम्बा और उथल-पुथल-भरा सफ़र तय किया है। उसके सम्बन्ध में पाठकों की उत्सुकता बिलकुल स्वाभाविक है। बच्चनजी हिन्दी के उन लेखकों में हैं जो ऐसी उत्सुकता को लेखकीय स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप नहीं मानते और पाठकों की भावना का सम्मान करते हुए, अपने आन्तरिक दबाव के नाते लेखन में प्रवृत्त होते हैं।

इसलिए, यह भरोसा तो आपको होना ही चाहिए कि अभिव्यक्ति की अनिवार्यता और पाठकों के प्रति जुड़ाव से प्रेरित हो उन्होंने जब भी, जो भी लिखा है, वह आप तक पहुँचा है, और सम्भवतः आगे भी पहुँचेगा।

हिन्दी विभाग
किरोड़ीमल कालेज, दिल्ली-7

अजित कुमार

क्रम

'बसेरे से दूर' : प्रथम प्रकाशन 1978; राजपाल एण्ड संज, दिल्ली, से प्रकाशित ।

अपने पाठकों से

पहले संस्करण से

आज आपके सामने प्रस्तुत है मेरे आत्म-चित्रण का तीसरा खण्ड, 'बसेरे से दूर', जिसे मैंने पहले 'हंस का पश्चिम प्रवास' कहना चाहा था।

आप में से बहुत लोग बड़ी उत्सुकता के साथ इस खण्ड की प्रतीक्षा करते रहे हैं, अनेक ने इसको शीघ्र प्रस्तुत करने की माँग भी, सबसे अधिक आग्रही तो मेरे प्रकाशक ही रहे हैं, पर इससे पूर्व यह सम्भव न हो सका। सृजन के मामले में, मुझे खेद है, मैं अपने से बाहर के किसी प्रकार के प्रोत्साहन, प्रलोभन अथवा दबाव का लिहाज़ नहीं कर पाता।

मैं इस खण्ड में मुख्यतया अपने जीवन की उस अवधि की कहानी सुनाने जा रहा हूँ, जिसमें मैं अपने देश-नगर, घर-परिवार से दूर जाकर इंग्लैण्ड—केम्ब्रिज में रहा, विलियम बटलर ईट्स के साहित्य पर शोध कर केम्ब्रिज युनिवर्सिटी से पी-एच. डी. की उपाधि ली, आधुनिक अंग्रेज़ी कविता का स्वाध्याय किया, एकाधिक ब्रिटिश युनिवर्सिटियों में जीवन, अध्ययन और अध्यापन की विधि देखी, समझी, सौ से ऊपर छन्दोबद्ध और मुक्त छन्द की कविताएँ लिखीं, जो बाद को 'प्रणय-पत्रिका', 'आरती और अंगारे' और 'बुद्ध और नाचघर' नामक संग्रहों में प्रकाशित हुईं—एक लम्बी कविता किन्हीं निजी कारणों से अब भी अप्रकाशित है—बहुत-सा गद्य लिखा, जो 'प्रवास की डायरी' के नाम से प्रकाशित हो चुका है, इंग्लैण्ड और आयरलैण्ड का भ्रमण किया, अंग्रेज़ी और आयरी समाज के विविध रूपों को देखा—विश्वविख्यात अकादमिक संस्थाओं से लेकर गुह्य, कुख्यात नाइट क्लबों तक—बड़े-बूढ़े विद्वानों से लेकर साधारण युवक-युवतियों के सम्पर्क में आया। यह प्रायः बाहरी बातें हुईं, जिनकी सूची काफ़ी लम्बी मालूम होती है। इस अवधि में जो मैंने चिन्तन-मनन किया, जो सोचा-विचारा, जिन आशाओं-आकांक्षाओं को जगाया, जिन भय-चिन्ताओं से गुज़रा, जिन शंका-सन्देहों में झूला, जिन मानसिक कुरेदनों और कसावों में पड़ा, उनकी सूची भी अगर देना चाहूँ तो कम लम्बी नहीं होगी, हालाँकि सूची उनकी गहनता और गहराई का शायद ही कोई आभास दे सके। एक बात शुरू में ही बहुत संक्षेप में कह देना चाहता हूँ कि इस छोटी-सी अवधि में जितना मैंने लिखा-पढ़ा, देखा-सुना, जाना-पहचाना, भोगा-सहा, अनुभव-अवगत किया, उतना मैंने इतने ही काल-माप में अपने जीवन में कभी नहीं किया। इसी से मुझे लगा कि यदि मैं इस अवधि

'बसेरे से दूर' : प्रथम प्रकाशन 1978; राजपाल एण्ड संज, दिल्ली, से प्रकाशित ।

अपने पाठकों से

पहले संस्करण से

आज आपके सामने प्रस्तुत है मेरे आत्म-चित्रण का तीसरा खण्ड, 'बसेरे से दूर', जिसे मैंने पहले 'हंस का पश्चिम प्रवास' कहना चाहा था।

आप में से बहुत लोग बड़ी उत्सुकता के साथ इस खण्ड की प्रतीक्षा करते रहे हैं, अनेक ने इसको शीघ्र प्रस्तुत करने की माँग भी, सबसे अधिक आग्रही तो मेरे प्रकाशक ही रहे हैं, पर इससे पूर्व यह सम्भव न हो सका। सृजन के मामले में, मुझे खेद है, मैं अपने से बाहर के किसी प्रकार के प्रोत्साहन, प्रलोभन अथवा दबाव का लिहाज़ नहीं कर पाता।

मैं इस खण्ड में मुख्यतया अपने जीवन की उस अवधि की कहानी सुनाने जा रहा हूँ, जिसमें मैं अपने देश-नगर, घर-परिवार से दूर जाकर इंग्लैण्ड—केम्ब्रिज में रहा, विलियम बटलर ईट्स के साहित्य पर शोध कर केम्ब्रिज युनिवर्सिटी से पी-एच. डी. की उपाधि ली, आधुनिक अंग्रेज़ी कविता का स्वाध्याय किया, एकाधिक ब्रिटिश युनिवर्सिटियों में जीवन, अध्ययन और अध्यापन की विधि देखी, समझी, सौ से ऊपर छन्दोबद्ध और मुक्त छन्द की कविताएँ लिखीं, जो बाद को 'प्रणय-पत्रिका', 'आरती और अंगारे' और 'बुद्ध और नाचघर' नामक संग्रहों में प्रकाशित हुईं—एक लम्बी कविता किन्हीं निजी कारणों से अब भी अप्रकाशित है—बहुत-सा गद्य लिखा, जो 'प्रवास की डायरी' के नाम से प्रकाशित हो चुका है, इंग्लैण्ड और आयरलैण्ड का भ्रमण किया, अंग्रेज़ी और आयरी समाज के विविध रूपों को देखा—विश्वविख्यात अकादमिक संस्थाओं से लेकर गुह्य, कुख्यात नाइट क्लबों तक—बड़े-बूढ़े विद्वानों से लेकर साधारण युवक-युवतियों के सम्पर्क में आया। यह प्रायः बाहरी बातें हुईं, जिनकी सूची काफ़ी लम्बी मालूम होती है। इस अवधि में जो मैंने चिन्तन-मनन किया, जो सोचा-विचारा, जिन आशाओं-आकांक्षाओं को जगाया, जिन भय-चिन्ताओं से गुज़रा, जिन शंका-सन्देहों में झूला, जिन मानसिक कुरेदनों और कसावों में पड़ा, उनकी सूची भी अगर देना चाहूँ तो कम लम्बी नहीं होगी, हालाँकि सूची उनकी गहनता और गहराई का शायद ही कोई आभास दे सके। एक बात शुरू में ही बहुत संक्षेप में कह देना चाहता हूँ कि इस छोटी-सी अवधि में जितना मैंने लिखा-पढ़ा, देखा-सुना, जाना-पहचाना, भोगा-सहा, अनुभव-अवगत किया, उतना मैंने इतने ही काल-माप में अपने जीवन में कभी नहीं किया। इसी से मुझे लगा कि यदि मैं इस अवधि

की झाँकी आपको कराना चाहूँ तो इसके लिए अपनी आत्मकथा को एक स्वतन्त्र खण्ड देना पड़ेगा।

एक बहुत बड़ी संख्या में मैं ऐसे पाठकों की कल्पना कर सकता हूँ जो मेरी आत्मकथा के पहले और दूसरे खण्ड, 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' और 'नीड़ का निर्माण फिर' को क्रमशः पढ़ने के बाद इस तीसरे खण्ड को पढ़ना आरम्भ करेंगे। उनसे मुझे इसके सिवा और कुछ नहीं कहना है कि जो कहानी मैंने सुनानी शुरू की थी उसी को पूर्ण करने के क्रम में यह अगली और अन्तिम क़िस्त है। आशा करता हूँ कि कहानी का यह भाग भी आपको रोचक लगेगा। पाठक की रोचकता समाप्त होने से पूर्व कहानी को समाप्त कर देना कहानीकार की सबसे बड़ी कला है। विश्वास है, मैंने आपके धैर्य को ऊब की सीमा तक नहीं खींचा।

इसके पूर्व, सम्भव है, आपने 'प्रवास की डायरी' भी पढ़ ली हो। न पढ़ी हो तो उसे आप 'बसेरे से दूर' की भूमिका के रूप में पढ़ सकते हैं। डायरी में कही बातों को मैंने आत्मचित्रण में नहीं दुहराया, सिवा उनके, जिनको कथा-सूत्र सम्बद्ध रखने के लिए फिर से कहना आवश्यक था। डायरी को मैंने प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका कहा है। पुस्तकें बग़ैर भूमिका देखे भी आनन्द से पढ़ी जा सकती हैं, अपवाद यह पुस्तक भी नहीं है।

'बसेरे से दूर' के कुछ ऐसे पाठकों की भी कल्पना मैं करता हूँ जो इसके पूर्व की कथा से पूर्णतया अपरिचित या खण्डशः परिचित हों। मैं उनसे यह तो न कहना चाहूँगा की इसके पूर्व की कथा पढ़े बग़ैर वे इसे न पढ़ें, क्योंकि मैंने प्रयत्न किया है कि प्रत्येक खण्ड को अपने में पूर्ण इकाई के रूप में प्रस्तुत करूँ। वास्तव में जो पूर्णतया सम्बद्ध है—जैसा कि जीवन—वही खण्डों में भी पूर्ण रह सकता है। पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते···शायद भौतिक स्तर पर भी किसी अंश में सत्य हो। साथ ही मुझे यह विश्वास है कि मेरे जीवन का कोई खण्ड आपको रोचक लगा तो उसके आगे-पीछे के खण्डों के लिए भी आपकी जिज्ञासा जगेगी—We look before and after (हम पीछे भी देखा करते हैं, आगे भी)।

एक खण्ड से दूसरे खण्ड की परस्पर तुलना भी स्वाभाविक है। मेरे बहुत से पाठकों ने पहले के दो खण्डों की तुलना की है और एक को दूसरे से उन्नीस या बीस पाया है। यह प्रवृत्ति तीन खण्डों के सामने आ जाने से और बढ़े तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। सब खण्डों का सबकी दृष्टि में सम लगना उतना ही असम्भव है, जितना अपनी दृष्टि में उनको ऐसा रखना। जीवन अपनी प्रकृति से ही विषम है। मेरा बल, मेरा गुण, यदि मुझमें कुछ है, तो जीवन के निकट रहने, जीवन से हिलगे रहने में है। जो खण्डों की विषमता के प्रति अधिक सचेत हों, उन्हें एक परिचित ग्रामीण कहावत की याद दिलाना चाहता हूँ—पाँचों उँगलियाँ बराबर नहीं होतीं।

दूसरे खण्ड के मेरे कतिपय पाठकों की राय यह थी कि उसमें मैं अपने कवि-व्यक्तित्व के प्रति अधिक सचेत हो गया हूँ। इस सम्बन्ध में मुझे इतना ही कहना है कि जिसे मेरा व्यक्तित्व कहा जा सकता है,

उसमें कवि-अकवि का कोई विभाजन नहीं है। मेरा कवि, यदि उसे कभी सही रूप में देखा जाये, तो वह मेरे जीवन से ही जुड़ा, प्ररोहित, प्रादुर्भूत और उसका ही प्रक्षिप्त अंग प्रतीत होगा। अपने जीवन की चर्चा में मैं उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता था। पिछले चालीस-पैंतालीस वर्षों से मेरे जिन बहुसंख्य पाठकों ने मुझे कवि के रूप में जाना है, उन्हें मेरे जीवन प्रसंग में मेरे सृजन की थोड़ी-बहुत चर्चा असंगत नहीं लगी। यदि मैं कहीं समझी जाने योग्य इकाई हूँ तो मेरी कविता से मेरे जीवन और मेरे जीवन से मेरी कविता को समझना होगा। मुझे ऐसा स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि जैसे मेरी कविता आत्मकथा-संस्कारी है वैसे ही मेरी आत्मकथा कविता-संस्कारी है। मैं अपनी भूल में, यदि यह मेरी भूल हो तो भी, यह जानकर कुछ आश्वस्त होता हूँ कि मानतेन भी, जो मेरी इस लेखन-यात्रा में कुतुबनुमा के समान मेरा पथ-प्रदर्शन करते रहे हैं, अपने आत्म-चित्रण The Essays (दि एसेज़) में अपने निबन्धकार को नहीं भूल सके। फिर भी प्रस्तुत खण्ड में, मैंने अपनी दृष्टि मुख्य रूप से—**मुख्य रूप से**—अपने अध्यापक, शोधक, आलोचक पर रखने का प्रयत्न किया है, क्योंकि इन्होंने भी मेरे जीवन को रूप देने में कम महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं निभायी।

पाण्डुलिपि को अन्तिम रूप देने में श्री सत्येन्द्र शरत् ने जो सहायता दी उसके लिए उनका बहुत आभारी हूँ।

टाइप कापी को प्रेस के लिए तैयार करने में श्री अजित कुमार और डा. जीवन प्रकाश जोशी से जो सहयोग मिला उसके लिए उनके प्रति भी कृतज्ञ हूँ।

आत्मचित्रण के इस अन्तिम खण्ड पर आप अपनी कोई प्रतिक्रिया देना चाहें तो उसका मैं स्वागत करूँगा।

13, विलिंगडन क्रिसेंट,
नयी दिल्ली-11
7 जुलाई, 1977

बच्चन

"पाठको, यह किताब ईमानदारी के साथ लिखी गयी है। मैं आपको पहले से ही आगाह कर दूं कि इसके लिखने में मेरा एकमात्र लक्ष्य घरेलू अथवा निजी रहा है। इसके द्वारा पर-सेवा अथवा आत्म-श्लाघा का कोई विचार मेरे मन में नहीं है। ऐसा ध्येय मेरी क्षमता से परे है। इसे मैंने अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों के व्यक्तिगत उपयोग के लिए तयार किया है कि जब मैं न रहूँ (और ऐसी घड़ी दूर नहीं है) तब वे इन पृष्ठों से मेरे गुण-स्वभाव के कुछ चिह्न संचित कर सकें और इस प्रकार जिस रूप में उन्होंने मुझे जीवन में जाना है उससे अधिक सच्चे और सजीव रूप में वे मुझे अपनी स्मृति में रख सकें। अगर मैं दुनिया से किसी पुरस्कार का तलबगार होता तो मैं अपने आपको और अच्छी तरह सजाता-बजाता, और अधिक ध्यान से रँग-चुँगकर उसके सामने पेश करता। मैं चाहता हूँ कि लोग मुझे मेरे सरल, स्वाभाविक और साधारण स्वरूप में देख सकें—सहज, निष्प्रयास प्रस्तुत, क्योंकि मुझे अपना ही तो चित्रण करना है। मैं अपने गुण-दोष जग-जीवन के सम्मुख रखने जा रहा हूँ, पर ऐसी स्वाभाविक शैली में जो लोक-शील से मर्यादित हो। यदि मेरा जन्म उन जातियों में हुआ होता जो आज भी प्राकृतिक नियमों की मूलभूत स्वच्छन्दता का सुखद उपभोग करती हैं तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं बड़े आनन्द से अपने-आपको आपाद-मस्तक एकदम नग्न उपस्थित कर देता। इस प्रकार, पाठको, मैं स्वयं अपनी पुस्तक का विषय हूँ, और मैं कोई वजह नहीं देखता कि आप अपनी फ़ुरसत की घड़ियाँ ऐसे नगण्य और निरर्थक विषय पर सर्फ़ करें। इसलिए मानतेन की विदा स्वीकार कीजिए—1 मार्च, 1580।"

"पाठको, यह किताब ईमानदारी के साथ लिखी गयी है। मैं आपको पहले से ही आगाह कर दूं कि इसके लिखने में मेरा एकमात्र लक्ष्य घरेलू अथवा निजी रहा है। इसके द्वारा पर-सेवा अथवा आत्म-श्लाघा का कोई विचार मेरे मन में नहीं है। ऐसा ध्येय मेरी क्षमता से परे है। इसे मैंने अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों के व्यक्तिगत उपयोग के लिए तयार किया है कि जब मैं न रहूँ (और ऐसी घड़ी दूर नहीं है) तब वे इन पृष्ठों से मेरे गुण-स्वभाव के कुछ चिह्न संचित कर सकें और इस प्रकार जिस रूप में उन्होंने मुझे जीवन में जाना है उससे अधिक सच्चे और सजीव रूप में वे मुझे अपनी स्मृति में रख सकें। अगर मैं दुनिया से किसी पुरस्कार का तलबगार होता तो मैं अपने आपको और अच्छी तरह सजाता-बजाता, और अधिक ध्यान से रँग-चुंगकर उसके सामने पेश करता। मैं चाहता हूँ कि लोग मुझे मेरे सरल, स्वाभाविक और साधारण स्वरूप में देख सकें—सहज, निष्प्रयास प्रस्तुत, क्योंकि मुझे अपना ही तो चित्रण करना है। मैं अपने गुण-दोष जग-जीवन के सम्मुख रखने जा रहा हूँ, पर ऐसी स्वाभाविक शैली में जो लोक-शील से मर्यादित हो। यदि मेरा जन्म उन जातियों में हुआ होता जो आज भी प्राकृतिक नियमों की मूलभूत स्वच्छन्दता का सुखद उपभोग करती हैं तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं बड़े आनन्द से अपने-आपको आपाद-मस्तक एकदम नग्न उपस्थित कर देता। इस प्रकार, पाठको, मैं स्वयं अपनी पुस्तक का विषय हूँ, और मैं कोई वजह नहीं देखता कि आप अपनी फ़ुरसत की घड़ियाँ ऐसे नगण्य और निरर्थक विषय पर सर्फ़ करें। इसलिए मानतेन की विदा स्वीकार कीजिए—1 मार्च, 1580।"

'The work is done', grown old he thought,
'According to my boyish plan;
Let the fools rage, I swerved in nought,
Something to perfection brought;'
But louder sang that ghost, 'What then?'

—W. B. Yeats

वृद्ध हुआ तो उसने सोचा, 'मेरा कार्य समाप्त हुआ,
मैंने अपने बालपने के सपने को साकार किया,
क्रोध-विरोध किया मूढ़ों ने, किन्तु हटा कब पीछे मैं ?
एक काम में हाथ लगाया था उसको पूर्णत्व दिया;'
कोई प्रेत पुरातन बोला और ज़ोर से
'ऐसा कर डाला तो क्या ?'

—डब्ल्यू. बी. ईट्स

जुलाई, 1941

भला हो पण्डित अमरनाथ झा का कि उन्होंने दो वर्ष तक कभी अस्थायी लेक्चरर और कभी रिसर्च-स्कालर के रूप में मुझे इलाहाबाद युनिवर्सिटी से सम्बद्ध रखकर अन्त में मुझे अंग्रेज़ी विभाग में स्थायी रूप में ले लिया।

स्मृतियों के प्रदेश में छत्तीस वर्ष पीछे लौटना होगा।

जब मैं दिमाग़ के उस भाग की कल्पना करता हूँ जिसमें सुधियाँ संचित रहती हैं तो वह मुझे विविध रंगों के तागों के उलझे-पुलझे गुच्छे जैसा लगता है, और किसी भी सूत्र को पकड़कर आगे या पीछे चलना चेतना के लिए साधारणतया कठिन नहीं होता, गो कभी-कभी उससे जुड़े या उससे अटके अन्य धागे भी हिलते, खिचते अथवा झटके खाते हैं। कथन अथवा लेखन में सुस्पष्टता बनाये रखने के लिए आवश्यक होता है कि ध्यान मूल सूत्र पर केन्द्रित रखा जाय और गौण तथा उप-सूत्रों को आड़े न आने दिया जाय—यदा-कदा उनके अस्तित्व को स्वीकार करते और उनकी खींच-तान को अनुभव करते हुए भी। मानव-चेतना सुधि के बहुत से तागों को एक साथ लेकर चलती है—उन्हें तोड़ती, जोड़ती, बटती, कसती, ढीलती और उनके साथ और बहुत कुछ करती। नतीजा यह होता है कि साधारण आदमी का दिमाग़ सुधि-सूत्रों का गुज्झड़ मात्र बनकर रह जाता है। आश्चर्य है कि ऐसी स्थिति में साधारण आदमी पागल क्यों नहीं हो जाता, शायद इसलिए—और इसे मनुष्य पर प्रकृति की बहुत बड़ी कृपा समझी जानी चाहिए—कि साधारण मनुष्य के मस्तिष्क में ये तागे बड़ी तीव्र गति से गलते और ग़ायब होते रहते हैं, कुछ विशेष और प्रमुख धागों को छोड़कर। मेरे प्रति अपनी

कृपा में प्रकृति बड़ी कृपण रही है। कितना कुछ मुझे याद है। एक बात का स्मरण करते ही न जाने और कितनी बातें मुझे स्मरण हो आती हैं और किसी खास सिलसिले को बनाये रखने के लिए मुझे बहुत कुछ प्रयत्नतः भुलाना अथवा दिमाग़ से हटाना पड़ता है। कभी-कभी मुझे अनुभव हुआ है कि मैं बहुत महत्त्वपूर्ण और ज़रूरी को भी छोड़ता जा रहा हूँ, कभी-कभी मैं बाद को उनकी ओर लौटा भी हूँ—मेरे आत्म-चित्रण के पहले दो भागों से परिचित पाठक कई ऐसे अवसरों की याद करेंगे।

आज ऐसा ही अवसर है। 'नीड़ का निर्माण फिर' की कहानी कहते हुए मैंने ध्यान अपने निजी भावना-जगत पर केन्द्रित रखा था और किसी अंश में उससे बड़ी निकटता से सम्बद्ध अपने सृजन-संसार पर—दूसरे शब्दों में, अपने भावक और सर्जक पर। मेरे अध्यापक की वहाँ केवल छाया भर मिलती है, और मेरे युनिवर्सिटी-जीवन की बस एक उड़ती-सी झाँकी, जबकि लगातार पूरे ग्यारह वर्ष मेरा नियमित कार्य और मेरे जीविकोपार्जन का मुख्य साधन अध्यापन था। सम्भव है कुछ लोगों पर इसका यह प्रभाव पड़ा हो कि मैं अपने जीवन में अपने भावक और सर्जक को अधिक महत्त्व देता हूँ बनिस्बत अपने अध्यापक के। अपने कवि-व्यक्तित्व से अपनी अधिक निकटता अनुभव करने की बात शायद ग़लत नहीं है। मनुष्य का व्यक्तित्व उसके भाव-लोक के इर्द-गिर्द ही अधिक सघन और सच्चा होता है, इससे शायद ही कोई इन्कार कर सके।

किसी उदात्त आदर्शवादिता में अध्यापन को मिशन मानकर उसकी ओर उन्मुख होने की बात मैं कहूँगा तो झूठ बोलूँगा—यह बात मेरी से पिछली पीढ़ी के साथ ही सम्भवतः समाप्त हो गयी थी। सच्चाई इतनी ही है कि मैंने अध्यापन को रोटी कमाने के एक ईमानदार, स्वच्छ और सुविधाजनक साधन के रूप में स्वीकार किया था। किया था तो चाहता था कि सफल अध्यापक बनूँ। और इतना तो मैं बिना किसी अभिमान के कहना चाहूँगा कि अपने को योग्य और सक्षम अध्यापक बनाने के लिए मैंने जितना श्रम-यत्न किया, जितनी शक्ति लगायी, जितनी तैयारी की उतनी अपने कवि को भी सँवारने, निखारने के लिए नहीं,—यह और बात है कि मेरा कवि काव्येतर क्षेत्रों के मेरे प्रयासों से भी अपने लिए संस्कार संग्रह करता होगा। जिस साधन से अपनी जीविका चले उसके प्रति आस्थावान होना बहुत पहले से मेरी व्यक्तिगत नैतिकता का अंग बन चुका था।

मुझमें अध्यापक का बीजारोपण निःसन्देह उन ट्यूशनों के समय हुआ होगा जो मैंने अपने परिवार की आर्थिक विपन्नता में अपने विद्यार्थी-जीवन से ही करनी शुरू कर दी थीं। मुझे आज भी वह अवसर याद है जब पहली ट्यूशन पर मेरे विद्यार्थी ने मुझे पहली बार 'मास्टर साहब' कहकर सम्बोधित किया था। उस सम्बोधन से अचानक यह रोम-प्रहर्षक अनुभूति हुई थी कि आज मैं एक पीढ़ी पार कर गया हूँ—विद्यार्थी से अध्यापक बन गया हूँ। 1930 में पढ़ाई छोड़ने और 1937 में फिर से आरम्भ करने के बीच यों तो मैंने कई तरह के पापड़ बेले थे, पर मेरा अधिकांश समय अध्यापकी में ही बीता था—इलाहाबाद स्कूल, प्रयाग महिला विद्यापीठ और अग्रवाल विद्यालय हाई स्कूल में। अग्रवाल विद्यालय का समय मेरे तीव्रतम मानसिक और आर्थिक संघर्षों का था; फिर भी उन दिनों की कुछ उदात्त यादें मेरे कतिपय विद्यार्थियों ने सँजो रखी हैं।

आज तो मुझे यह सोचकर आश्चर्य होता है कि उन चिन्ता-ग्रस्त दिनों में कर्तव्य के प्रति निष्ठा और अपने विद्यार्थियों के प्रति सद्भावना मैंने कैसे जुगा रखी

होगी। इसका श्रेय मैं मुख्यतया अपने युग को देना चाहूँगा जिसमें महात्मा गांधी इस धरती पर चलते थे। गांधी ने अपने चरित्र से सारे देश के वातावरण को आदर्शवादिता से कैसा 'चार्ज' (अनुप्राणित) कर रखा था, इसे वह युग नहीं समझ सकेगा जिसने उन्हें नहीं देखा। फिर अध्यापक जिनके साथ काम करता है वे मानवीय तत्व हैं—मानवता के भी बड़े सरल, कोमल, जीवन्त, सम्भावना-पुंज रूप। मैंने अपनी गहन से गहन वैयक्तिक चिन्ता, असन्तोष अथवा आक्रोश में भी अपने और अपने विद्यार्थियों के बीच वह चीज़ नहीं आने दी जिसका पढ़ने-पढ़ाने से सीधा सम्बन्ध नहीं था। आज तो मैं ऐसा भी समझता हूँ कि विद्यार्थियों के बीच बैठकर मैं अपनी बहुत-सी उद्विग्नताओं से विमुक्त हुआ था। अपनी परेशानियों के दिनों में अगर मैं पढ़ाने के अतिरिक्त कोई और काम करता होता, जैसे किसी दफ़्तर में क्लर्की, यानी अगर मैं विद्यार्थियों के रूप में मानवता के एक अत्यन्त प्रीतिकर तत्व के सम्पर्क में न होता तो मैं निश्चय अपनी घुटन और घबराहट को अधिक कटुता के साथ अनुभव करता। अध्यापक जीवन का एक पक्ष अगतिशीलता और एकरसता का भी है, पर उसे महसूस करने के लिए जो लम्बी अवधि चाहिए उससे मैं अभी न गुजरा था, और 1939 में बी. टी. कर लेने के बाद मैं प्रमाण-पत्र-प्राप्त अध्यापक के रूप में स्थापित हो गया था, गो शुरू में विस्थापित-सा ही, विभिन्न स्कूलों-कालेजों में नौकरी के लिए अर्जियाँ लगाता या साक्षात्कार के लिए एक जगह से दूसरी जगह मारा-मारा फिरता।

'सरलता से कुछ नहीं मुझको मिला है।'

1941 में अंग्रेज़ी विभाग में स्थायी लेक्चरर की जगह हुई थी और मैंने झा साहब की शुभ कामनाएँ लेकर प्रार्थना-पत्र भेज दिया था। अपने दावे को कुछ अधिक मज़बूत करने के लिए, उन्हीं के आदेश पर मैंने अपने शोध-विषय W. B. Yeats : His Mind and Art (डब्ल्यू. बी. ईट्स : उनका मनस् और उनकी कला) से सम्बन्धित सौ पृष्ठों का लघु प्रबन्ध भी साथ प्रस्तुत कर दिया था। नयुक्तियाँ युनिवर्सिटी की एक्ज़ेक्यूटिव कमेटी में बहुमत के आधार पर होती थीं, पर प्रायः सदस्यगण वाइस-चांसलर के सुझाव का ही समर्थन कर देते थे।

कमेटी की बैठक के बाद आशा और आशंका से धड़कते दिल से मैं झा साहब से मिलने गया—अपनी सफलता या असफलता का समाचार मैं उनके मुख से ही सुनूँ। प्रतिद्वन्द्वी मेरे कई थे ही। सबका मुझे पता न था, पर एक की विशेष चर्चा सुनी जाती थी, और यह भी कि वे कमेटी के सदस्यों को अपनी ओर करने के लिए बहुत हाथ-पाँव मार रहे हैं।

झा साहब के सामने पहुँचकर मुझे यह अनुभूति हुई कि जैसे मैं 'स्फ़िंक्स' के सामने जाकर खड़ा हो गया हूँ—उनके चेहरे से इसका कोई आभास न मिल सकता था कि मैं युनिवर्सिटी में लिया गया हूँ कि नहीं। न वे कुछ कह रहे थे, न मैं कुछ पूछ रहा था। झा साहब के सम्पर्क में ऐसे खामोशी के वक़्फ़े नये नहीं थे, पर उस दिन की उनके और मेरे बीच वाली वैकुअमी स्थिति मुझे जितनी दीर्घ और दुःसह लगी उतनी पहले कभी नहीं लगी थी। अन्त में साहस करके जब मैं ही बोला कि क्या मेरे लिए कोई 'खुशख़बरी' है? तो उत्तर में पूर्व परिचित ठहरी-सी आवाज़ में मुझे यह सुन पड़ा—You...will...hear...from...the... registrar...in due course... (तुम्हें…यथासमय…रजिस्ट्रार…सूचित… करेंगे)।

दूसरे दिन मेरी नियुक्ति का समाचार 'लीडर' में छप गया था। तीसरे दिन

रजिस्ट्रार का पत्र भी आ गया।

मुझे झा साहब के पास कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए जाना ही था! वे कम गम्भीर थे। उनके बड़े-बड़े कोयों में उनकी पुतलियाँ कई बार घूमीं, जैसे उनकी आँखों के सामने से कोई पिछला दृश्य गुज़र रहा हो जिसे वे वाणी देना न चाहते हों, पर जिससे वे अप्रसन्न हों।

उस सन्ध्या के झा साहब के मूड़ का रहस्य मुझ पर कई दिनों के बाद खुला। हितकारिणी कालेज, जबलपुर, की स्टूडेण्ट्स युनियन का उद्घाटन करने के लिए डा. ताराचन्द को निमन्त्रित किया गया था, और मुझे उस अवसर पर आयोजित कवि-सम्मेलन में भाग लेने के लिए। हम दोनों एक ही डिब्बे में सफ़र कर रहे थे। बातचीत के सिलसिले में डा. ताराचन्द ने बताया कि तुम्हारी नियुक्ति कराने में झा साहब के सामने बड़ी मुश्किल खड़ी हो गयी थी, तुम्हारा नाम गिरते बाल-बाल बच गया। डाक्टर साहब युनिवर्सिटी की एक्जेक्यूटिव कमेटी के सदस्य थे और उस दिन जो वहाँ हुआ था उसके चश्मदीद।

बात यह हुई थी कि मेरे प्रतिद्वन्द्वी ने, जिनका ज़िक्र मैं पहले कर आया हूँ, एक जाति विशेष के सब सदस्यों को—जिनका कमेटी में बहुमत था, अपनी ओर कर लिया था, और इसका पता झा साहब को भी नहीं था। साधारण योग्यताएँ लगभग बराबर होने पर मेरे विपक्ष में दो बातें ज़ोरों से कही गयी थीं—एक तो यह कि मैं 'ट्रेण्ड' था, इस कारण स्कूलों या ज़्यादा से ज़्यादा इण्टर कालेजों में पढ़ाने के योग्य था, दूसरी यह कि चूँकि मैं हिन्दी का कवि था इस कारण अंग्रेज़ी पढ़ाने की क्षमता मुझमें कम ही हो सकती थी।—सच बात यह है कि मेरे हिन्दी कवि का रूप लोगों के दिलोदिमाग़ पर इस क़दर छाया था कि उसके नीचे मेरे अंग्रेज़ी अध्यापक का स्वरूप उन्हें दिखायी ही न देता था।—झा साहब को लोगों को निरुत्तर कर देनेवाला यह प्रश्न पूछना पड़ा था कि ट्रेण्ड होने से मेरी अंग्रेज़ी (एम. ए.) की योग्यता किस तर्क से कम हो गयी थी, और हिन्दी का कवि होने से अंग्रेज़ी का अध्यापक होने की मेरी क़ाबलियत पर कैसे ज़रब आता था?

इतने पर भी जब मत लिया गया, तब बहुमत मेरे प्रतिद्वन्द्वी के पक्ष में आया और झा साहब को अपने संकेत से अपने कुछ निकटस्थ मित्रों के हाथ नीचे गिरवाने पड़े। ऐसी स्थिति से झा साहब, स्वाभाविक है, बहुत खिन्न हुए थे। यह बात मुझे पहले मालूम होती तो उस सन्ध्या को उनका मूड मुझे इतना विचित्र और निराशाजनक न लगता।

दो ही चार रोज़ अंग्रेज़ी विभाग में जाने पर मुझे पता लग गया कि मेरी पीठ-पीछे यह कहा जा रहा है कि मैं हिन्दी के चोर दरवाज़े से अंग्रेज़ी विभाग में घुस आया। ज़बान कौन किसकी रोक सकता है; पर मैंने मन ही मन निश्चय किया कि अपने को अंग्रेज़ी का एक अच्छा अध्यापक सिद्ध करूँगा, हिन्दी का कवि होने के बावजूद।

मेरा भावना-जगत अब भी विशृंखल था, पर अपने भौतिक जगत में मैंने एक व्यवस्थित मार्ग पर पाँव रख दिये थे। मैं जानता था कि अपने भावना-जगत में सफलता प्राप्त करना मेरे श्रम-यत्न से सम्भव न था, पर भौतिक-जगत में श्रम-यत्न से जो पाया जा सकता था उसे मैंने प्राप्त कर लिया था। 1931 में इलाहाबाद स्कूल में मैंने 25/= रुपये प्रतिमास पर नौकरी शुरू की थी और 1941 में इलाहाबाद युनिवर्सिटी में मैं 125/= रुपये प्रतिमास पर लेक्चरर नियुक्त हो गया था। दस वर्ष के संघर्ष के बाद यह कोई बड़ी उपलब्धि तो न थी पर मेरी उस

समय की मनःस्थिति में बड़ी सन्तोषदायिनी थी—मेरी भावनाओं की दुनिया आबाद न हो सकी तो भी स्वाध्याय, शिक्षण और यथावकाश सृजन में अपने को व्यस्त रखकर मैं अपने जीवन को सार्थक बना लूँगा—झा साहब क्या अपने एकाकी जीवन को इसी गरिमा से नहीं जी-झेल रहे थे ?

समय कभी-कभी इतनी मन्द गति से चलता है कि बरसों बीत जाते हैं और मालूम होता है कि कोई नयी बात नहीं हुई, और कभी-कभी इतना तेज़ चलता है कि जैसे चार-छह महीनों में एक युग बीत गया हो। अगस्त 1941 से जनवरी 1942 तक के छह महीने मेरे लिए बाहर से तेज़ी के ही नहीं, भीतर से भीषण रूप से झकझोरनेवाले भी थे। उनकी विस्तृत चर्चा मैं अपनी आत्मकथा के दूसरे खण्ड में कर चुका हूँ। यहाँ मैं उनका ज़िक्र केवल यह बताने के लिए करना चाहता हूँ कि उन तन और मन को धुननेवाले दिनों में यदि मेरी राहत की कोई जगह थी तो मेरी कक्षाएँ थीं, मेरे विद्यार्थी थे, जिनके बीच बैठकर मैं अपनी कटु परिस्थितियों को भूल कला, साहित्य, कविता और नाटक की दुनिया में पलायन कर जाता था, और जिनसे मिला आदर और किसी अंश में स्नेह भी मेरे हृदय के घावों पर मरहम का काम करता था। उन दिनों अपने नये-नये क्लास के लेक्चरों की तैयारी में यदि मुझे अपना बहुत-सा समय लगाना न पड़ता तो मैं नहीं कह सकता कि अपनी ख़ाली और काली घड़ियों को कैसे काटता।

उन दिनों एक सफल अंग्रेज़ी अध्यापक बनने और दिखने की भी धुन मुझ पर इस क़दर सवार थी कि मेरा हिन्दी का कवि मेरे अंग्रेज़ी के लेक्चरर के लिए एक दहशतदेह Complex यानी कुण्ठा बन गया था ! मैं कोशिश करता, मैं सतर्क रहता कि अपनी चाल-ढाल, बाल से हिन्दी का कवि बिल्कुल न दिखूँ—कवि मेरे यौवन में प्रायः बालों से पहचाना जाता था—बाल-कवियों के कई चेहरे मेरी आँखों के सामने से गुज़र गये हैं, जिनमें मेरा अपना भी है—

सिर पर बाल घने, घुँघराले,
काले, कड़े, बड़े, बिखरे-से

ग़ायब हो गये, गो अपने रूप-परिवर्तन पर मेरे कवि को थोड़ा मलाल भी था—

सिर पर बाल कढ़े कंघी से तरतीबी से चिकने, काले,
जग की रूढ़ि-रीति ने जैसे मेरे ऊपर फन्दे डाले।

और यह फन्दा मेरे सिर पर ही नहीं; मेरे गले में भी होता, नेकटाई के रूप में—अंग्रेज़ी काट के सूट-बूट से मैच करता। अंग्रेज़ी पढ़ाता हूँ तो अंग्रेज़ी पोशाक में पढ़ाऊँ, अंग्रेज़ी लहजे से भी, चाल-ढाल, पोशाक सबसे अंग्रेज़ी के लेक्चरर की साहबी चुस्ती-दुरुस्ती, हिन्दी के कवि का ढीला-ढाला, ऊल-जलूलपन कहीं भी नहीं—सिगरेट कभी-कभी पीता हूँ, गाल में पान की गिलौरी नहीं दबाता।

और नहीं चाहता कि युनिवर्सिटी में, पढ़ाने के घण्टों में, क्लास में, विद्यार्थियों में कोई मुझे 'बच्चन' नाम से संकेतित या सम्बोधित करे। उन दिनों परीक्षा में उत्तर-कापियों पर अपने लेक्चरर का नाम देने की प्रथा थी। अक्सर विद्यार्थी लेक्चरर की जगह 'बच्चन जी' या 'मिस्टर बच्चन' लिख देते थे। इस पर मैं उन पर बिगड़ता; मैं युनिवर्सिटी में 'बच्चन' नहीं हूँ, 'हरिवंश राय' हूँ। मना करने पर भी ऐसी भूल करने के लिए कभी-कभी तो मैं उनके नम्बर भी काटता। मेरा हिन्दी कवि प्रस्थापित था, मुझे अपने अंग्रेज़ी अध्यापक को स्थापित करना था।

कभी किसी शहर से कोई साहब आये हैं, मुझसे कह रहे हैं, फ़लाँ का नाम तो आपको याद होगा; अब हमारे नगर में अमुक पद पर हैं, आपके विद्यार्थी रहे हैं और बताते हैं कि कैसे क्लास में आप झूम-झूमकर 'मधुशाला' सुनाया करते थे···। और मैं अपने विद्यार्थी की कल्पना करता हूँ कि वह कैसे अपने क़स्बे या शहर में जाकर लोगों में जमाता होगा, तुम तो बच्चन जी को देखने-सुनने को तरसते हो और वे हमें रोज़ आकर पढ़ाते थे और कभी-कभी जब मूड में आते थे तो हमें 'मधुशाला' या और कविताएँ सुनाते थे।—और इस तरह अपने को औरों की सुखद ईर्ष्या का पात्र बनाकर ख़ुश होता होगा। और मैं अपने विद्यार्थी के उस हानि-रहित झूठ का प्रतिवाद नहीं करता, पर सच्चाई यही है कि अपनी क्चरर-शिप की अवधि में किसी भी दिन मैंने क्लास में कविता नहीं सुनायी।

मैं मेहनत से लेक्चर तैयार करता और वक़्त से क्लास में पहुँचता तो अपने विद्यार्थियों से भी प्रत्याशा करता कि वे समय से क्लास में पहुँचें और ध्यान से मेरे लेक्चर सुनें। उपस्थिति के सम्बन्ध में मेरे नियम बहुत कड़े थे। मैं चाहता कि मेरे क्लास में पहुँचने के पहले विद्यार्थी अपनी-अपनी जगह पर बैठ जायें। वे मेरे क्लास में पहुँचने के बाद भी क्लास में आ सकते थे, बशर्ते कि मैंने हाजिरी लेनी न शुरू कर दी हो। हाजिरी लेते समय वे क्लास में न आ सकते थे। हाजिरी समाप्त होने के बाद वे क्लास में आ सकते थे—उस समय आने पर वे लेक्चर तो सुन सकते थे, पर उनकी हाजिरी नहीं लग सकती थी और लेक्चर आरम्भ होने के बाद कोई लड़का अन्दर नहीं आ सकता था। प्राय: लेक्चर-क्लास पहले पीरियड में होता था, और थोड़ी भी देर होने पर विद्यार्थी या तो हाजिरी से चूकता था या हाजिरी और लेक्चर दोनों से।

सत्येन्द्र शरत् ने—युनिवर्सिटी में वे मेरे विद्यार्थी थे—मुझे एक मनोरंजक क़िस्सा बताया था। बी. ए. फर्स्ट इयर में फ़र्स्ट पीरियड के लिए आने में उन्हें अक्सर देरी होती और कभी वे हाजिरी से वंचित होते और कभी हाजिरी-लेक्चर दोनों से। सेकेण्ड इयर में अंग्रेजी का लेक्चर-क्लास थर्ड पीरियड में हो गया, फ़र्स्ट पीरियड में एनशेंट हिस्ट्री रख दी गयी जिसे श्री गोवर्धनराय शर्मा पढ़ाते थे। सत्येन्द्र शरत् ने राहत की साँस ली—अब थोड़ी-बहुत देर होने पर ग़ैर-हाज़िरी तो नहीं लगा करेगी। और किसी दिन कुछ देरी से पहुँचने पर वे गोवर्धन-राय के पास अपनी हाज़िरी लगवाने गये तो उन्हें क्या जवाब मिला? 'जानते हो मैं शिष्य किसका हूँ? बच्चनजी का।' सत्येन्द्र ने अपना माथा ठोंक लिया, 'धन्य हो बच्चनजी! आप तो सख़्ती करते ही हो, अपनी शिष्य-परम्परा भी डाल दी है।'

सुना है कि समुचित घास-दाना न पाने पर घोड़ा खरहरे से बिदक उठता है। मेरे विद्यार्थी मेरी सख़्तियों पर कभी बिदके नहीं तो मैं यह नतीजा निकाल लेता हूँ कि उनको घास-दाना यानी पठन-सामग्री पर्याप्त मिलती होगी मुझसे। मैंने अपने विद्यार्थी जीवन के अनुभव से यह बात और जानी थी कि The best study is self-study (अपने आप पढ़ना पढ़ने का सबसे अच्छा तरीका है।) मैंने क्लास में बैठकर अपने अध्यापकों के व्याख्यानों से इतना नहीं पाया था जितना लाइब्रेरी या अपनी मेज़ पर बैठकर स्वाध्याय से। इससे मैं अपने पढ़ाने में इस बात का विशेष प्रयत्न करता कि मैं विद्यार्थियों में स्वयं पढ़ने की रुचि जगाऊँ, शायद इस-लिए भी कि इससे मेरे पढ़ाने में जो कमी हो उसकी पूर्ति हो जाय। लेक्चरर लोग स्वाध्याय के लिए पुस्तकों की लम्बी-चौड़ी सूची का इमला तो ज़रूर बोल देते थे,

पर विद्यार्थियों को पुस्तकें सुलभ न होती थीं, लाइब्रेरी में एकाध प्रतियाँ हुईं भी तो पाँच सौ विद्यार्थी अपने-अपने नाम इशू कराने के संघर्ष में। विद्यार्थियों की इस असुविधा का हल निकालने के लिए मैंने एक सेक्शन लाइब्रेरी की स्थापना की। प्रथम वर्ष में विद्यार्थियों ने मिलकर जितना चन्दा दिया उतना मैंने स्वयं उसमें मिलाकर कुछ ज़रूरी सहायक पुस्तकें खरीदकर क्लास की आलमारी में रख दीं। साल-दर-साल विद्यार्थियों के चन्दे से यह लाइब्रेरी बढ़ती रही और 14 वर्ष बाद जब मैंने युनिवर्सिटी छोड़ी पूरी आलमारी, काफी बड़ी, किताबों से भर गयी थी, लगभग 500, अंग्रेज़ी साहित्य के स्वाध्याय के लिए आवश्यक और महत्त्वपूर्ण पुस्तकें। हर पुस्तक और हर विद्यार्थी को एक निश्चित नम्बर देकर मैंने एक ऐसी सरल विधि बनायी कि लगभग 60 विद्यार्थियों को केवल 5 मिनट में पुस्तकें इशू करने का काम मैं समाप्त कर देता था। सदस्यता सीमित रहने से निश्चय मेरे बहुत-से विद्यार्थियों ने उन पुस्तकों से लाभ उठाया, शायद उससे अधिक जितना मेरे क्लास में व्याख्यान देने से। अपने पढ़ाने के सम्बन्ध में मैं और कुछ न कहना चाहूँगा।

उस समय के अंग्रेज़ी विभाग की याद करता हूँ तो सबसे पहले मेरा ध्यान झा साहब की ओर जाता है। जिस वर्ष मैं विभाग में स्थायी रूप से ले लिया गया, उसके एक वर्ष पहले वे अंग्रेज़ी विभागाध्यक्ष का पद छोड़कर युनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर बन गये थे, पर वे बरसों से विभाग के सम्बद्ध थे, पहले लेक्चरर, फिर रीडर और बाद में विभागाध्यक्ष के रूप में—सुना था जब वे विद्यार्थी थे, तभी लेक्चरर नियुक्त हो गये थे, एम. ए. में पढ़ते थे और बी. ए. को पढ़ाते थे। उनका भी विभाग के प्रति बड़ा मोह था, विशेषकर अपने अध्यापक रूप के प्रति। कौन आज इस बात का विश्वास करेगा कि वाइस चान्सलर हो जाने पर भी वे बी. ए. के अंग्रेज़ी विद्यार्थियों का एक सेमिनार क्लास लिया करते थे। विद्यार्थियों का चुनाव वे खुद करते थे, प्रथम श्रेणी पानेवालों अथवा अच्छे परिवारवालों में से, या फिर ऐसों का जिनसे किसी कारण वे अपनी विशेष निकटता अनुभव करते हों। एक बार एक विद्यार्थी को दिखलाकर उन्होंने मुझे बताया था, He is my grand-pupil. (यह मेरा पौत्र-शिष्य है।) इनके पिता को मैंने बी. ए. में पढ़ाया था, अब ये मेरे बी. ए. के सेमिनार में हैं।

झा साहब ने विभाग में एक Friday Club (फ़ाइडे क्लब) की स्थापना भी की थी। उनकी सदस्य-संख्या सीमित थी और उसमें वे अपने फ़ेवरिट्स यानी प्रिय अथवा कृपा-पात्रों को रखते थे—प्राय: बौद्धिक अथवा संस्कारी आभिजात्यों को। फ़ाइडे क्लब का सदस्य होना लोग बड़े गर्व की बात समझते थे। मैं कह नहीं सकता कि उसकी बैठकों में विशेष क्या होता था। अ-सदस्यों को उनमें सम्मिलित नहीं होने दिया जाता था। झा साहब की अनायास कृपा पाने पर भी मैं कभी फ़ाइडे क्लब का सदस्य नहीं रहा—न उन्होंने मुझे बनाने की इच्छा प्रकट की, न मैंने बनने की। फ़ाइडे क्लब नाम शायद इसलिए दिया गया था कि उसकी बैठकें शुक्र-वार की सन्ध्या को हुआ करती थीं, पर कुछ लोग, जिनके लिए उसकी सदस्यता खट्टा अंगूर थी, अथवा जो क्लब के सदस्यों के प्रति ईर्ष्या रखते थे—उनके झा साहब की निकटता प्राप्त करने के कारण—व्यंग्य से क्लब को Man Friday Club (मैन फ़ाइडे क्लब) कहा करते थे। इस व्यंग्य में जो कटु संकेत है उसे वे ही समझेंगे जो राबिन्सन क्रूसो की कहानी जानते होंगे—मैन फ़ाइडे राबिन्सन क्रूसो का

वफ़ादार, फ़रमाँबरदार, हाँ-हुज़ूरी करनेवाला अनुचर था। मतलब उनके कहने का होता था कि फ़ाइडे क्लब झा साहब के मिट्ठुओं-पिट्ठुओं की संस्था है। अहं पूर्ण सरपरस्ती (शायद पैट्रोनाइजिंग का यही अनुवाद किया जाय) झा साहब के मिजाज की एक जुज थी, पर यह मानना पड़ेगा कि अनधिकारियों ने उसका लाभ शायद ही कभी उठाया हो। अपने से छोटों से आदर पाने का हक़दार वे अपने को ज़रूर समझते थे, उनकी विनम्रता से प्रसन्न भी होते थे; पर चाटुकारिता को प्रश्रय देते या उससे प्रभावित होते मैंने उन्हें कभी नहीं देखा।

उनके पढ़ाने की चर्चा मैं एकाधिक बार पहले कर चुका हूँ। अंग्रेज़ी विभाग से अपने पूर्व सम्बन्धों की स्मृति सँजोये रखने पर भी, उसके कतिपय सूत्रों से अपने को प्रयत्नत: जोड़े रहने पर भी, वाइस चान्सलर होने के बाद विभाग से झा साहब का सम्पर्क क्षीण होता गया, गो उस पर उनकी छाया का आभास बराबर अनुभव किया जाता रहा।

झा साहब वाइस चान्सलर हो गये तो पण्डित शिवाधार पाण्डेय अंग्रेज़ी विभाग के अध्यक्ष हुए। वास्तव में बरिष्ठता के आधार पर झा साहब से पहले पाण्डेयजी को विभागाध्यक्ष होना चाहिए था। झा साहब ने स्वयं एक बार स्वीकार किया था कि अगर पाण्डेयजी चाहते तो उनके रास्ते में अड़ंगा खड़ा कर सकते थे, पर पाण्डेयजी भोले-भोले आदमी, वे रीडर बने रहकर सन्तुष्ट रहे, शायद इससे प्रसन्न भी हुए कि अध्यक्ष को जो प्रशासन-सम्बन्धी काम करने पड़ते हैं उनकी झंझट से बरी रहे, गो जब यह झंझट उनके सिर आ ही पड़ी तो उसको उन्होंने सलीक़े से निबाहा।

झा साहब में योग्यता भी थी, प्रदर्शन भी था और दोनों मिलकर लोगों पर गहरा और कभी-कभी थोड़ा आतंकपूर्ण प्रभाव भी डालते थे। पाण्डेयजी में योग्यता अधिक थी, अधीत वे निश्चय अधिक थे, ज्ञान में उनकी पैठ गहरी थी, पर प्रदर्शन उनमें बिलकुल न था। वे किसी को न प्रभावित करते थे न प्रभावित करना चाहते थे। विभागाध्यक्ष होने पर शायद ही उनमें तिल भर भी परिवर्तन आया हो। हाँ, कमरे-कमरे में जाकर क्लास लेने के बजाय अब वे अपने कमरे में बैठने लगे, और क्लास उनके पास आने लगा। विभाग में एक इंगलिश एसोसिएशन था जिसमें किसी का व्याख्यान होता या कोई पेपर पढ़ता तो विभागाध्यक्ष के नाते पाण्डेयजी को आना पड़ता। सम्बद्ध विषय में वे कुछ कहते भी, पर हमेशा यही लगता कि वे जितना व्यक्त करते हैं, उससे बहुत अधिक जानते हैं; इतना अधिक जानते हैं कि उसे थोड़े शब्दों में, थोड़े से समय में नहीं बता सकते। संक्षेप में, सारवान और सटीक बात कहने में झा साहब को कमाल हासिल था।

पाण्डेयजी के अवकाश ग्रहण करने पर विभाग की अध्यक्षता के लिए दो तगड़े उम्मीदवार थे—मिस्टर एस. सी. देब और डा. पी. ई. दस्तूर।

देब साहब को मैंने पहले-पहल 1927 में देखा था जब मैंने बी. ए. करने के लिए युनिवर्सिटी में दाखिला लिया था। उनके सेक्शन या उनके सेमिनार में न पड़ने के कारण बी. ए. करते समय मैं उनके सम्पर्क में न आया था। उस समय वे लूकरगंज में रहते थे और ताँगे से युनिवर्सिटी आते थे—पिछली सीट पर बैठने के कारण ताँगा उनके बोझ से पीछे को झुका। वे एक हाथ में छड़ी और दूसरे में आसानी से न सँभलनेवाली पाँच-छह मोटी-मोटी किताबें लिये उतरते थे।

1929-'30 में जब मैं अंग्रेज़ी में एम. ए. (प्रीवियस) कर रहा था तब उन्होंने मुझे नाटक और उपन्यास के दो पर्चे पढ़ाये थे। भारी शरीर के अनुपात

का उनका भारी-सा सिर, उस पर तेल की चमक लिये काले, छोटे बालों के बीचों-बीच सीधी माँग, छोटी-चौड़ी नाक के नीचे किसी लोशन की सहायता से कड़ी कर उठाई-उमेठी मूँछें—बिच्छू के दो डंकों जैसी— साँवला रंग, दरमियाना कद, पैण्ट पर बन्द कालर का कोट, जिसके ऊपर के दो-एक बटन बन्द, शेष सब खुले,—कोणाकार नीचे पहनी सफ़ेद क़मीज़ दिखाते—बीच के बटन से अटकी चाँदी के चेनवाली जेबी घड़ी, किसी बाँह के कफ़ में एक सफ़ेद रूमाल खुँसा—तब के देब साहब की यह तस्वीर आज भी मेरी आँखों के सामने है। खड़े होकर बोलते थे, धारा-प्रवाह, हर चौथे-पाँचवें शब्द पर आघात (एम्फ़ैसिस) बीच-बीच में फ़्रेंच की छुरेट, जिसे क्लास में शायद ही कोई समझता हो। कभी उद्धरण देना होता तो पुस्तक, लेखक, प्रकाशक का नाम, प्रकाशन तिथि, संस्करण, अध्याय, पृष्ठ, पंक्ति—सब स्मृति के आधार पर बता जाते—शायद सब ठीक ही। देसी अंग्रेज़ी का ऐसा शब्द-प्रपात—गो बंगाली उच्चारण-प्रभाव से सर्वथा मुक्त—नायग्रा फ़ाल जैसा—न कभी पहले देखा था न बाद को ही देखा। इसे मैं अपनी ही अक्षमता कहूँगा कि क्रम-बद्धता मैं उनके विचारों में न पाता। एक विषय पर बात करते-करते वे किसी ऐसे दूसरे, तीसरे या चौथे विषय पर पहुँच जाते जिसका कम-से-कम मेरी समझ में पहले से या आपस में दूर-दराज़ का भी सम्बन्ध न होता। 'मैं' शब्द का प्रयोग बहुत कम करते, प्राय: अपने को 'योर हम्बुल सर्वेण्ट' (आपका खादिम) ही कहते।

विद्यार्थी जीवन के शरारती दिनों में मैंने उन पर एक लिमरिक लिखी थी जो मुझे अब तक याद है—

प्रोफ़ेसर देब वाज़ द सेम इन लेंग्थ एण्ड ब्रेड्थ
ऐण्ड ए मैन आफ़ एनसाइक्लोपीडिक डेप्थ,
ही वाज़ हम्बुल टु ए फ़ाल्ट,
ऐण्ड हम्बलर विद ए समर साल्ट;
ही कुड टाक आफ़ हाफ़िज़ ऐण्ड होनोलूलू ऐण्ड हलवा इन वन ब्रेथ।

इसका एक हिन्दी रूप भी था, (भारतभूषण अग्रवाल के 'तुक्तक' का फ़ार्म आने में तो अभी चौथाई सदी की देर थी)—

प्रोफ़ेसर देब थे गोलमटोल,
मानो विश्व ज्ञान के ढोल
विनम्रता के थे अवतार
औ' विनम्रतम बन जाने में
उन्हें नहीं लगती थी बार,
कर सकते थे वे हाफ़िज़ का,
होनोलूलू का, हलवे का
एक साँस में शाखोच्चार।

यह तो नटखटपने की बात हुई, उभरती जवानी के दिनों की, जो हँसकर क्षमा कर दी जानी चाहिए। वास्तविकता यह है कि देब साहब का अध्ययन व्यापक था—बंगाली थे, बंगला तो जानते ही थे; कई पीढ़ियों से उत्तर प्रदेश में रहने के कारण हिन्दी-उर्दू भी अच्छी तरह जानते थे,—हिन्दीवालों से शुद्ध हिन्दी और उर्दूवालों से उर्दू-ए-मोअल्ला में बात कर सकते थे—अंग्रेज़ी के अध्यापक थे ही, फ़्रेंच भी

अच्छी जानते होंगे—फ्रेंच साहित्य-बेजिल्दी—उनकी आलमारियों में गँजा रहता था, और मेरा ऐसा अनुमान है कि योरोप की और कई भाषाओं में भी वे दखल रखते थे। इन भाषाओं में उनका पठन केवल साहित्य तक सीमित नहीं था—धर्म, दर्शन, इतिहास, सौन्दर्य शास्त्र, स्थापत्य मूर्ति-चित्रकला, संगीत—ये तो साहित्य के अंगी ही हुए—नृ-शास्त्र, पुरातत्व, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र, क़ानून, मनोविज्ञान—कहाँ तक गिनायें—तकनीकी और विशुद्ध विज्ञान को छोड़-कर शायद ही कोई ऐसा विषय हो जिस पर प्रामाणिक और अद्यतन पढ़े रहने का यथा-प्रसंग आभास देब साहब न देते हों। निश्चय ही उनके व्यापक और वैविध्य-पूर्ण अध्ययन तथा प्रगल्भ और आकर्षक व्याख्यानों से उनके विद्यार्थी बहुत प्रभा-वित होते थे, यथावसर उनसे वार्तालाप, संलाप करके उनके सहयोगी और मित्र भी, गो उनसे बातचीत करने का अर्थ होता था—पाँच प्रतिशत अपनी कहना और पिचानबे प्रतिशत उनकी सुनना।

दस बरस बाद जब मैं विभाग में लेक्चरर बनकर आया, देब साहब की हुलिया, चाल-ढाल, पोशाक, तौर-तरीक़े में कोई अन्तर नहीं आया था, केवल उनकी मूँछों के बिच्छू के डंक झड़ गये थे।

दस्तूर साहब की वेश-भूषा में भी कोई फ़र्क़ न पड़ा था, शरीर से वे कुछ स्थूल हो गये थे और उनके सिर पर गंज झलकने लगी थी। उन्हें देखते ही चौदह वर्ष पहले का उनका रूप याद आता, दुबले-पतले, गोरे पारसी युवक का, सिर पर रेशम-से असघन, काले, पीछे को सीधे कड़े बाल, पान के आकार का चेहरा—मस्तक का दीर्घ वृत्त-खण्ड ठुड्डी पर लघु वृत्त-खण्ड बनाता, काले फ्रेम के चश्मे के पीछे बहुत पढ़नेवाली आँखें, मुख पर विद्वत्ता की गरिमा और गाम्भीर्य, पोशाक विशुद्ध अंग्रेज़ी सूट-बूट-टाई-कालर-हैटवाली। बरसातों में भी उनके कपड़ों की कलफ़ और क्रीज़ देखकर आश्चर्य होता, जबकि वे बरसते में साइकिल से युनिवर्सिटी आते—छाता या वाटरप्रूफ़ से भी इलाहाबादी बारिश में कितना बचाव सम्भव था। भेद एक दिन उन्होंने खोल दिया था, वे एक अटैची में एक पूरा धुला, इस्त्री किया सूट अपने कमरे में रखते और घर से आने पर बदल लेते। कई वर्ष पूर्व उनकी पत्नी का देहावसान हो गया था—बड़ी सुन्दरी थीं, मैं उनसे मिला था, कोई सन्तान न छोड़ी थी—और दस्तूर साहब ने दुबारा विवाह करने का विचार छोड़ दिया था, शायद उन्होंने अपने विधुर जीवन को सदा के लिए स्वीकार कर लिया था—एकाकी रहेंगे और एक समर्पित स्वाध्यायी और अध्यापक का जीवन व्यतीत करेंगे। एक विचित्र परिवर्तन उनके स्वभाव में आया था, जो मेरे लिए एक रहस्य था, पर जिसे बूझने का मैंने कभी प्रयत्न नहीं किया, अपने विवाहित जीवन में वे बड़े रिज़र्व्ड, मितभाषी और संजीदा रहा करते थे; विधुर होने के पश्चात् वे मिलनसार, हँसमुख और सबके लिए खुले-से हो गये थे।

शुरू से ही, जैसे उनमें अपनी भौतिक स्थिति सुधारने की कामना थी वैसे ही अपने को अधिकाधिक ज्ञान-समृद्ध करने की लगन, और इसमें उनकी पत्नी के देहावसान से भी कोई अन्तर न आया था। पहले वे साइकिल से युनिवर्सिटी आते थे, फिर मोटर साइकिल से, जिसमें उन दिनों एक बग़ली सीट भी होती थी, फिर मोटर से। विधुर होने के बाद उन्होंने अपने को अधिक गहन और योजनाबद्ध अध्ययन में लगाया। मिल्टन उनका प्रिय कवि था—एम. ए. को वे मिल्टन पढ़ाते भी थे। उन्होंने Lucifer in Mediaeval English Literature (मध्ययुगीन अंग्रेज़ी साहित्य में शैतान) पर बहुत सामग्री एकत्र की थी, विशेष सामग्री इकट्ठी

करने के लिए वे कई मास आक्सफ़र्ड जाकर रहे थे, और लौटकर डी. लिट. के लिए थीसिस प्रस्तुत की थी जो ब्रिटिश युनिवर्सिटियों के परीक्षकों द्वारा स्वीकृत भी हुई थी।

डा. दस्तूर ने मुझे बी. ए. और एम. ए. में और मि. देब ने एम. ए. में पढ़ाया था, दोनों मेरे गुरु थे—'को बड़-छोट कहत अपराधू'। प्रभाव उनका मुझ पर वही था जो क्लास में उनके लेक्चरों से पड़ा था, या यदा-कदा युनिवर्सिटी की विभिन्न संस्थाओं में उनके भाषणों से। संक्षेप में यही कहना चाहूँगा कि डा. दस्तूर यदि अपनी यथातथ्यता (Exactness) से विमुग्ध करते थे तो देब साहब अपने प्राचुर्य (Exhuberance) से अभिभूत। सेवा-काल की ज्येष्ठता देब साहब के पक्ष में थी तो अकादमिक उपाधि की वरिष्ठता दस्तूर साहब के पक्ष में; और विभाग में प्राय: अनुमान लगाया जाता था कि युनिवर्सिटी की एक्ज़ेक्यूटिव कमेटी अध्यक्ष पद के लिए किसको तरजीह देगी।

विभागाध्यक्ष श्री एस. सी. देब को बनाया गया, क्योंकि युनिवर्सिटी में उन्होंने अपनी सेवा डा. दस्तूर से पहले आरम्भ की थी। डा. दस्तूर ने अपने शिक्षण-दाक्षिण्य, स्वाध्याय एवं आचार-व्यवहार-गरिमा से, तथा युनिवर्सिटी के सामान्य जीवन में अन्य रूपों में भी सक्रिय भाग लेकर अपने लिए एक ऐसा स्थान बना लिया था कि अधिकारियों ने भी यह अनुभव किया कि जो हुआ है उसे डा. दस्तूर के प्रति किसी अंश में अन्याय समझा जायगा, और उनके आँसू पोंछने के लिए, बाद को, उन्होंने विभाग में एक एसोशिएट प्रोफ़ेसर की जगह बनाकर उन्हें दे दी। दोनों प्रोफ़ेसरों के वेतन आदि में क्या अन्तर रखा गया था, मुझे नहीं मालूम।

उस समय की एक मनोरंजक घटना मुझे याद आ गयी है। एसोशिएट प्रोफ़ेसर का पद पाने पर डा. दस्तूर को बधाई देने के लिए विभाग की ओर से एक आयोजन किया गया। उत्तर में डा. दस्तूर ने जो वाक्पटु, व्यंग्य-विनोदपूर्ण और चुटीला भाषण दिया, वह भुलाने की चीज़ नहीं है। 'एसोशिएट' को जब छोटे में लिखते हैं तो 'ऐस' मात्र लिखते हैं, जिसका अर्थ अंग्रेज़ी में होता है 'गधा'। डा. दस्तूर ने कहा कि मुझे मालूम है कि लोग मुझे एसोशिएट प्रोफ़ेसर के बजाय ऐस प्रोफ़ेसर ही लिखेंगे, यदि कहेंगे भी नहीं; व्यस्तता के इस युग में संक्षिप्तता की ओर झुकाव स्वाभाविक है। इससे यदि किसी आदमी का उपहास होता हो तो दोष प्रयोक्ताओं का नहीं, अंग्रेज़ी भाषा का है। मैं अधिकारियों का बड़ा आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे ऐस. प्रोफ़ेसर के योग्य समझा, पर वास्तव में तो ऐस. प्रोफ़ेसर श्री ऐस. सी. देब होंगे क्योंकि उन्हें विभाग प्रबन्ध की लादी भी ढोनी पड़ेगी। सच पूछो तो एक तरह से हम दोनों ही ऐस. प्रोफ़ेसर होंगे—एक काम से, एक नाम से आदि-आदि...।* श्लेष, अनुप्रास, व्याज, उच्चारण-वैभिन्न्य का आश्रय लेकर डा. दस्तूर ने उस दिन क्या-क्या नहीं कह डाला था। उस समय उनका चोट खाया हुआ अहं ही वाणी की प्रखरता में व्यक्त हुआ था। उनके आँसू पुंछ गये हों, पर वे अपने प्रति किये गये अन्याय को शायद ही भूले। बाद को जैसे ही उन्हें अवसर मिला वे इलाहाबाद युनिवर्सिटी छोड़कर चले गये।

शिक्षा-संस्थाओं में पदोन्नति के प्रश्न पर यहाँ कुछ कहना शायद अप्रासंगिक न होगा। सेवा-वय की ज्येष्ठता का अर्थ क्या है विश्वविद्यालयी सन्दर्भ में? यह तो एक दफ्तरी अन्ध प्रक्रिया हुई कि जो क्लर्क बनकर घुसता है, वह यथा-समय

---

* 'Every professor is an ass.' —G.B.S.

अच्छी जानते होंगे—फ्रेंच साहित्य-बेजिल्दी—उनकी आलमारियों में गँजा रहता था, और मेरा ऐसा अनुमान है कि योरोप की और कई भाषाओं में भी वे दखल रखते थे। इन भाषाओं में उनका पठन केवल साहित्य तक सीमित नहीं था—धर्म, दर्शन, इतिहास, सौन्दर्य शास्त्र, स्थापत्य मूर्ति-चित्रकला, संगीत—ये तो साहित्य के अंगी ही हुए—नृ-शास्त्र, पुरातत्व, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र, क़ानून, मनोविज्ञान—कहाँ तक गिनायें—तकनीकी और विशुद्ध विज्ञान को छोड़-कर शायद ही कोई ऐसा विषय हो जिस पर प्रामाणिक और अद्यतन पढ़े रहने का यथा-प्रसंग आभास देब साहब न देते हों। निश्चय ही उनके व्यापक और वैविध्य-पूर्ण अध्ययन तथा प्रगल्भ और आकर्षक व्याख्यानों से उनके विद्यार्थी बहुत प्रभा-वित होते थे, यथावसर उनसे वार्तालाप, संलाप करके उनके सहयोगी और मित्र भी, गो उनसे बातचीत करने का अर्थ होता था—पाँच प्रतिशत अपनी कहना और पिचानबे प्रतिशत उनकी सुनना।

दस बरस बाद जब मैं विभाग में लेक्चरर बनकर आया, देब साहब की हुलिया, चाल-ढाल, पोशाक, तौर-तरीक़े में कोई अन्तर नहीं आया था, केवल उनकी मूँछों के बिच्छू के डंक झड़ गये थे।

दस्तूर साहब की वेश-भूषा में भी कोई फ़र्क़ न पड़ा था, शरीर से वे कुछ स्थूल हो गये थे और उनके सिर पर गंज झलकने लगी थी। उन्हें देखते ही चौदह वर्ष पहले का उनका रूप याद आता, दुबले-पतले, गोरे पारसी युवक का, सिर पर रेशम-से असघन, काले, पीछे को सीधे कड़े बाल, पान के आकार का चेहरा—मस्तक का दीर्घ वृत्त-खण्ड ठुड्डी पर लघु वृत्त-खण्ड बनाता, काले फ्रेम के चश्मे के पीछे बहुत पढ़नेवाली आँखें, मुख पर विद्वत्ता की गरिमा और गाम्भीर्य, पोशाक विशुद्ध अंग्रेज़ी सूट-बूट-टाई-कालर-हैटवाली। बरसातों में भी उनके कपड़ों की कलफ़ और क्रीज़ देखकर आश्चर्य होता, जबकि वे बरसते में साइकिल से युनिवर्सिटी आते—छाता या वाटरप्रूफ़ से भी इलाहाबादी बारिश में कितना बचाव सम्भव था। भेद एक दिन उन्होंने खोल दिया था, वे एक अटैची में एक पूरा धुला, इस्त्री किया सूट अपने कमरे में रखते और घर से आने पर बदल लेते। कई वर्ष पूर्व उनकी पत्नी का देहावसान हो गया था—बड़ी सुन्दरी थीं, मैं उनसे मिला था, कोई सन्तान न छोड़ी थी—और दस्तूर साहब ने दुबारा विवाह करने का विचार छोड़ दिया था, शायद उन्होंने अपने विधुर जीवन को सदा के लिए स्वीकार कर लिया था—एकाकी रहेंगे और एक समर्पित स्वाध्यायी और अध्यापक का जीवन व्यतीत करेंगे। एक विचित्र परिवर्तन उनके स्वभाव में आया था, जो मेरे लिए एक रहस्य था, पर जिसे बूझने का मैंने कभी प्रयत्न नहीं किया, अपने विवाहित जीवन में वे बड़े रिज़र्व्ड, मितभाषी और संजीदा रहा करते थे; विधुर होने के पश्चात् वे मिलनसार, हँसमुख और सबके लिए खुले-से हो गये थे।

शुरू से ही, जैसे उनमें अपनी भौतिक स्थिति सुधारने की कामना थी वैसे ही अपने को अधिकाधिक ज्ञान-समृद्ध करने की लगन, और इसमें उनकी पत्नी के देहावसान से भी कोई अन्तर न आया था। पहले वे साइकिल से युनिवर्सिटी आते थे, फिर मोटर साइकिल से, जिसमें उन दिनों एक बग़ली सीट भी होती थी, फिर मोटर से। विधुर होने के बाद उन्होंने अपने को अधिक गहन और योजनाबद्ध अध्ययन में लगाया। मिल्टन उनका प्रिय कवि था—एम. ए. को वे मिल्टन पढ़ाते भी थे। उन्होंने Lucifer in Mediaeval English Literature (मध्ययुगीन अंग्रेज़ी साहित्य में शैतान) पर बहुत सामग्री एकत्र की थी, विशेष सामग्री इकट्ठी

करने के लिए वे कई मास आक्सफ़र्ड जाकर रहे थे, और लौटकर डी. लिट. के लिए थीसिस प्रस्तुत की थी जो ब्रिटिश युनिवर्सिटियों के परीक्षकों द्वारा स्वीकृत भी हुई थी।

डा. दस्तूर ने मुझे बी. ए. और एम. ए. में और मि. देब ने एम. ए. में पढ़ाया था, दोनों मेरे गुरु थे—'को बड़-छोट कहत अपराधू'। प्रभाव उनका मुझ पर वही था जो क्लास में उनके लेक्चरों से पड़ा था, या यदा-कदा युनिवर्सिटी की विभिन्न संस्थाओं में उनके भाषणों से। संक्षेप में यही कहना चाहूँगा कि डा. दस्तूर यदि अपनी यथातथ्यता (Exactness) से विमुग्ध करते थे तो देब साहब अपने प्राचुर्य (Exhuberance) से अभिभूत। सेवा-काल की ज्येष्ठता देब साहब के पक्ष में थी तो अकादमिक उपाधि की वरिष्ठता दस्तूर साहब के पक्ष में; और विभाग में प्राय: अनुमान लगाया जाता था कि युनिवर्सिटी की एक्ज़ेक्यूटिव कमेटी अध्यक्ष पद के लिए किसको तरजीह देगी।

विभागाध्यक्ष श्री एस. सी. देब को बनाया गया, क्योंकि युनिवर्सिटी में उन्होंने अपनी सेवा डा. दस्तूर से पहले आरम्भ की थी। डा. दस्तूर ने अपने शिक्षण-दाक्षिण्य, स्वाध्याय एवं आचार-व्यवहार-गरिमा से, तथा युनिवर्सिटी के सामान्य जीवन में अन्य रूपों में भी सक्रिय भाग लेकर अपने लिए एक ऐसा स्थान बना लिया था कि अधिकारियों ने भी यह अनुभव किया कि जो हुआ है उसे डा. दस्तूर के प्रति किसी अंश में अन्याय समझा जायगा, और उनके आँसू पोंछने के लिए, बाद को, उन्होंने विभाग में एक एसोशिएट प्रोफ़ेसर की जगह बनाकर उन्हें दे दी। दोनों प्रोफ़ेसरों के वेतन आदि में क्या अन्तर रखा गया था, मुझे नहीं मालूम।

उस समय की एक मनोरंजक घटना मुझे याद आ गयी है। एसोशिएट प्रोफ़ेसर का पद पाने पर डा. दस्तूर को बधाई देने के लिए विभाग की ओर से एक आयोजन किया गया। उत्तर में डा. दस्तूर ने जो वाक्पटु, व्यंग्य-विनोदपूर्ण और चुटीला भाषण दिया, वह भुलाने की चीज़ नहीं है। 'एसोशिएट' को जब छोटे में लिखते हैं तो 'ऐस' मात्र लिखते हैं, जिसका अर्थ अंग्रेज़ी में होता है 'गधा'। डा. दस्तूर ने कहा कि मुझे मालूम है कि लोग मुझे एसोशिएट प्रोफ़ेसर के बजाय ऐस प्रोफ़ेसर ही लिखेंगे, यदि कहेंगे भी नहीं; व्यस्तता के इस युग में संक्षिप्तता की ओर झुकाव स्वाभाविक है। इससे यदि किसी आदमी का उपहास होता हो तो दोष प्रयोक्ताओं का नहीं, अंग्रेज़ी भाषा का है। मैं अधिकारियों का बड़ा आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे ऐस. प्रोफ़ेसर के योग्य समझा, पर वास्तव में तो ऐस. प्रोफ़ेसर श्री ऐस. सी. देब होंगे क्योंकि उन्हें विभाग प्रबन्ध की लादी भी ढोनी पड़ेगी। सच पूछो तो एक तरह से हम दोनों ही ऐस. प्रोफ़ेसर होंगे—एक काम से, एक नाम से आदि-आदि···।* श्लेष, अनुप्रास, व्याज, उच्चारण-वैभिन्न्य का आश्रय लेकर डा. दस्तूर ने उस दिन क्या-क्या नहीं कह डाला था। उस समय उनका चोट खाया हुआ अहं ही वाणी की प्रखरता में व्यक्त हुआ था। उनके आँसू पुँछ गये हों, पर वे अपने प्रति किये गये अन्याय को शायद ही भूले। बाद को जैसे ही उन्हें अवसर मिला वे इलाहाबाद युनिवर्सिटी छोड़कर चले गये।

शिक्षा-संस्थाओं में पदोन्नति के प्रश्न पर यहाँ कुछ कहना शायद अप्रासंगिक न होगा। सेवा-वय की ज्येष्ठता का अर्थ क्या है विश्वविद्यालयी सन्दर्भ में? यह तो एक दफ्तरी अन्ध प्रक्रिया हुई कि जो क्लर्क बनकर घुसता है, वह यथा-समय

---

* 'Every professor is an ass.' —G.B.S.

सेक्शन-आफ़िसर बनकर निकलता है, जो अण्डर-सेक्रेटरी बनकर, वह यथासमय ज्वाइण्ट-सेक्रेटरी बनकर। क्या विद्या, बुद्धि और ज्ञान का पथ इतना सीधा है? क्या मानसिक विकास आराम-घड़ी और दीवारी-कैलेण्डर के कालक्रम का अनुवर्ती होता है? वास्तविकता तो यह है कि पढ़ाने का पेशा बड़ा ख़तरनाक पेशा है। एम. ए. पास आदमी को दर्जा मिडिल पढ़ाने को दे दीजिए, और पाँच-सात बरस में उसकी बुद्धि का स्तर मिडिलची का न हो जाय तो मैं कुछ हारने को तैयार हूँ। इसी ख़तरे से बचने के लिए पश्चिमी विश्वविद्यालयों में चिन्तन को, शोध को, स्वाध्याय को, जो किसी स्थूल रूप में प्रमाणित भी हो, महत्त्व दिया जाता है, प्रोत्साहित किया जाता है। यहाँ शोध किया जाता है नौकरी पाने के लिए, वहाँ शोध किया जाता है नौकरी को बरक़रार रखने के लिए, सार्थक करने के लिए। अपने यहाँ की युनिवर्सिटियों में मैं ऐसे लोगों को जानता हूँ, उनके नाम गिना सकता हूँ, जो लेक्चरर हो गये, रीडर हो गये, प्रोफ़ेसर हो गये और उनके चिन्तन-शोध-स्वाध्याय के फलस्वरूप उनका एक भी लेख प्रकाशित नहीं हुआ। पश्चिमी विश्वविद्यालयों में यह अकल्पनीय है। ठीक है, आपने अन्ध-ज्येष्ठता के आधार पर पदोन्नति करने की परम्परा डाल रखी है—और उसके चलाये जाने में लगता ही क्या है—पर यह सवाल तो पृष्टव्य है ही कि विश्वविद्यालयों में कालगत ज्येष्ठता को तरजीह दी जाये अथवा योग्यता की वरिष्ठता को। योग्यता का मापदण्ड बनाना कठिन है, पर यह कठिन काम यदि विश्वविद्यालयों में नहीं होगा तो कहाँ होगा! मैंने महाभारत में कहीं पढ़ा था कि शूद्र आयु से बड़ा माना जाता है, ब्राह्मण विद्या से, और इस प्रश्न का उत्तर आप ही दें कि आप विश्वविद्यालयों को ब्राह्मण-पीठ मानना चाहेंगे या शूद्र-पीठ। मैं स्पष्ट कर दूँ कि मैं ब्राह्मण और शूद्र को बुद्धि भेदी मापदण्ड से नाप रहा हूँ, वर्ण-भेदी मापदण्ड से नहीं।

हम शायद स्वभाव से ही अपने ऊपर कड़ी नज़र रखनेवाला शासक नहीं चाहते। डा. दस्तूर, यह मानना पड़ेगा, अगर exact (सही) थे तो exacting (सही के आग्रही) भी थे। उनके विभागाध्यक्ष नियुक्त न होने पर कुछ लोगों ने राहत की साँस ली हो तो कोई ताज्जुब नहीं। देब साहब की अध्यक्षता में सबको 'अपन हथा जगन्नथा' रहने की स्वतन्त्रता थी। कुछ लोग शायद दोनों के प्रति उदासीन रहे हों—'कोउ नृप होउ हमहिं का हानी' या लाभू की मनोवृत्ति के अनुसार।

पुराने लोगों में मि. एल. डी. गुप्ता, मि. डी. ओझा और मि. एस. एन. मिश्रा अपने पुराने ढर्रे पर चले जा रहे थे। ओझाजी हर सत्र के आरम्भ में अपने विद्यार्थियों से यह गुप्त रखना चाहते थे कि उनका पूरा नाम दमड़ी ओझा है, पर सत्र की समाप्ति तक यह बात हर एक को मालूम हो जाती थी। उनकी महत्ता युनिवर्सिटी में लेक्चरर होने से अधिक म्योर होस्टल के सुपरिन्टेण्डेण्ट होने के कारण थी, और वहाँ उनके प्रबन्ध में कोई मीन-मेष नहीं निकाल सकता था। अंग्रेज़ी पढ़ाने में उनकी विशेष ख्याति न थी। जो लड़के उनके सेमिनार में पड़ जाते थे वे किसी-न-किसी बहाने वहाँ से निकल भागना चाहते थे और ओझाजी उसी तत्परता से उन्हें अपने यहाँ रखने का आग्रह करते थे।

मिश्राजी मेरे गुरुओं में थे, उनसे मैंने इंगलिश प्रोज़ का पर्चा पढ़ा था। किसी समय वे विभाग में best dressed man (सर्वोत्तम वस्त्राभूषित व्यक्ति) समझे जाते थे। उन्होंने अपनी अध्यापकी के प्रारम्भिक वर्षों में कुछ नोट्स तैयार किये थे, जिन्हें वे साल-दर-साल डिक्टेट करा देते थे और लड़के उनकी मदद से पास भी हो जाते थे—कभी उनके कमरे के सामने से निकलता तो वही बारह-चौदह वर्ष पूर्व

परिचित आवाज़ वहाँ गूँजती होती---एक शब्द खाँसकर सुनायी देता Conundrum (कनंड्रम =श्लेषोक्ति) जिसका उपयोग वे बहुतायत से करते थे—दीर्घ ध्वनिकर शब्दों से उन्हें विशेष प्रेम था। इधर वे किसी तरह युनिवर्सिटी की बाग़वानी के इंचार्ज हो गये थे और क्लास के बाद अक्सर दस्सू माली उनके आगे-पीछे फिरता दिखायी देता या वे दस्सू माली की तलाश में इधर-उधर फिरते दिखते।

इन्हीं लोगों के समवयस्क थे मि. भगवत दयाल और मि. रघुपति सहाय 'फ़िराक़', गो ये दोनों ही युनिवर्सिटी से बहुत बाद को सम्बद्ध हुए। मि. भगवत दयाल—गो उनसे पूछा जाता तो वे अपना नाम बताते 'बी. डायल'—की शिक्षा ऐंग्लो-इण्डियन स्कूलों और इंग्लैण्ड में हुई थी—शायद आक्सफ़र्ड में—और इसका पूरा प्रभाव उनके उच्चारण और रहन-सहन पर पड़ा था। किसी भी हिन्दुस्तानी द्वारा अंग्रेज़ की नक़ल जिस हद तक की जा सकती थी उस हद तक उन्होंने की थी। अच्छे क़द का भरा-भरा शरीर था उनका, चेहरे पर बड़ी, यहूदियों की-सी सुग्गा-टोंटी नाक, रंग से गोरे थे ही, हमेशा सूट-बूट पहनते थे, अकड़कर चलते थे—शायद यू. ओ. टी. सी. में रहने के कारण, जहाँ वे सेकेण्ड-इन-कमाण्ड थे, और बोलते थे मुँह में सिगार या पाइप दबाकर। मेरे एक मित्र ने उन पर एक लिमरिक लिखी थी। अंग्रेज़ी जाननेवाले इसका आनन्द ले सकेंगे। उनका ख़ाका सामने खड़ा हो जाता है—

> There was a man called Dāyal,
> He was proud of his English style,
> And prouder of his prose,
> But proudest of his nose,
> That made him look like a gargoyle.

अंग्रेजों की तरह अंग्रेज़ी बोल सकने की क्षमता पर उन्हें गर्व था और देसी उच्चारण से अंग्रेज़ी बोलनेवालों को वे नीची नज़र से देखते थे और मौक़े-बे-मौक़े उनका मज़ाक़ भी बनाते थे। हम लोग तो उनसे बातचीत करने में हिचकते थे—सिगार या पाइप दबे होठों से निकलती हुई उनकी साहबी अंग्रेजी आधी तो हमारे पल्ले ही न पड़ती थी। उनसे कभी-कभी बराबरी के दर्जे पर बोलते थे तो 'फ़िराक़' साहब, 'मिस्टर दयाल, अब आपकी अंग्रेज़ी हमारी समझ में आने लगी है, एक बार आप फिर विलायत हो आइये।' मि. दयाल इस व्यंग्य पर काफ़ी कटते, पर मुस्करा-कर टाल जाते। जब अध्यापकों का यह हाल था तब विद्यार्थी उनकी अंग्रेज़ी कितनी समझते होंगे, राम ही जाने। यू. ओ. टी. सी. में स्वयं रहने के कारण मैं उनके सिपाहियाना रूप से भी परिचित था—ख़ाकी वर्दी में वे किसी भी पेशेवर फ़ौजी अफ़सर का कान काटते।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि विभाग में सबसे अधिक रोचक व्यक्तित्व 'फ़िराक़' साहब का था। उस समय भी वे उर्दू कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे, और अंग्रेज़ी में उनकी कुशाग्रता (ब्रिलिएंस) की प्रसिद्धि उनके विद्यार्थी जीवन से जुड़ी थी। ऐसी कथा प्रचलित थी कि पण्डित अमरनाथ झा और 'फ़िराक़' साहब बी. ए. में सहपाठी थे। साथ ही परीक्षा देते तो प्रथम स्थान निश्चय 'फ़िराक़' साहब को मिलता। इसलिए पण्डित अमरनाथ झा के पिता पण्डित गंगानाथ झा ने—जो उस समय वाइस चान्सलर थे—'फ़िराक़' साहब को उस वर्ष ड्राप करने को कहा, और वे मान गये। ड्राप तो वे उस वर्ष कर गये थे, पर कारण कोई उनका निजी और

पारिवारिक था। मेरे लिए हिन्दी के कवि और अंग्रेज़ी के अध्यापक में जो विरोध था उसमें 'फ़िराक़' साहब ने सन्तुलन प्राप्त कर लिया था। मेरी ऐसी धारणा है कि 'फ़िराक़' साहब जीविका कमाने के लिए युनिवर्सिटी में लेक्चरर थे, पर अपने को मुख्य रूप से उन्होंने उर्दू शायरी को दे रखा था। आगे चलकर उन्हें अपने काव्य-संग्रह 'गुले-नग़मा' पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। उनमें जिस कोटि की प्रतिभा थी, उसके एक बहुत छोटे अंश से वे अध्यापन का कार्य सम्पादित कर सकते थे—बी. ए. के ऊपर पढ़ाने को उन्हें शायद ही कभी मिला,—शेष उनके कवि को समर्पित था, जिसे उन्होंने केवल अपनी अनुभूतियों अथवा भावनाओं से ही नहीं, अपने वैविध्यपूर्ण अध्ययन, चिन्तन-मनन और अभ्यास से भी पुष्ट और सुविकसित किया था। प्रतिभा प्राय: असन्तुलन और किसी-न-किसी प्रकार के विकार का शिकार होती है, और 'फ़िराक़' उनसे मुक्त नहीं थे।

'फ़िराक़' एक ख़ास अर्थ में चिन्तक थे पर उनका चिन्तन अंग्रेज़ी साहित्य या सामान्य रूप से साहित्य, भाषा और कविता की समस्याओं तक सीमित न था। जो भी समय और संसार को उद्वेलित करता था उस पर 'फ़िराक़' साहब सोचते और अपनी अलग राय रखते थे, उस पर चर्चा करना चाहते थे और अपनी राय दूसरों को मनवाने के आग्रही भी थे, चाहे वह सही हो चाहे ग़लत। विभाग में जितनी बातें व करते थे, उतनी कोई और नहीं करता था। वे बातें तर्क से करते, जोशोखरोश से करते, व्यंग्य-विनोद से करते, और कभी-कभी मुँहफट भी हो जाते। उनका चेहरा, उनका माथा, भौंहें, आँखें, नाक, होंठ, मुँह—सब बड़े ही अभिव्यंजक थे। वे उन्हें खींच, तान, मोड़, मरोड़, उठा, ऐंठ, खोल-मूंद जितनी मुद्राएँ बना सकते थे उन्हें देखकर चतुर-से-चतुर अभिनेता को उनसे ईर्ष्या होती। उनका दिमाग़ गम्भीर-से-गम्भीर कविताओं, सूक्तियों से लेकर हल्के-फुल्के और अश्लील-से अश्लील चुटकुलों का ख़ज़ाना था। उनकी बातों को सुनने में मज़ा आता था, भले ही उनसे सहमत हुआ जा सके या न हुआ जा सके। विभाग में वे तब तक बैठे रहते जब तक कोई भी उनसे बात करने को मिल सकता।

मझोला शरीर था उनका, शेरवानी के साथ कभी चूड़ीदार और कभी ढीला पाजामा पहनते थे, उन्हें सूट में देखने की कोई तस्वीर मेरी आँखों में नहीं, शौक़िया छड़ी लेकर चलते थे, एक हाथ पर टाँगे, टेकते नहीं। उमर के साथ अपने कपड़ों के प्रति वे लापरवाह होते गये थे। बैंक रोड-स्थित युनिवर्सिटी बँगले में रहते थे और पैदल युनिवर्सिटी आते थे, पिछवाड़े के छोटे रास्ते से; देर हो गयी होती तो लान पार कर क्लास में पहुँचते और किसी चपरासी या लड़के से हाज़िरी का रजिस्टर मँगा लेते। घर लौटते भी वैसे ही ख़रामा-ख़रामा, जनवासे की चाल से—तेज़ी किसी तरह की उनमें देखी जाती थी तो उनकी ज़बान में।

होस्टलों में यदा-कदा सामयिक विषयों पर उनके व्याख्यान होते—प्रवाहपूर्ण अंग्रेज़ी बोलते थे। मुशायरों में तो उनकी धूम ही रहती थी—हाँ, कभी-कभी पीकर आते थे तो कुछ बदमज़गी भी पैदा कर देते थे।

उनकी बहुत-सी बातों से हमराय न हो सकने और कुछ को नापसन्द करने पर भी कुल मिलाकर मुझे उनका व्यक्तित्व आकर्षक लगता था। आज भी अगर मेरा जाना इलाहाबाद हो तो सबसे पहले मैं उनसे मिलना चाहूँगा, और अगर उनको भी फ़ुरसत हो तो अपना सबसे ज़्यादा वक़्त उनकी सोहबत में गुज़ारना चाहूँगा।

उम्र में 'फ़िराक़' साहब से कुछ छोटे थे मि. बेनी सिमलाई। बंगाली ईसाई थे। युनिवर्सिटी में आने के पूर्व वे ईविंग क्रिश्चियन कालेज में अध्यापक थे। वे

इलाहाबाद युनिवर्सिटी के स्नातक नहीं थे—दुबले, पतले, मझोले क़द के, फुर्तीले, हँसमुख, मिलनसार—पाइप पीते थे। यदा-कदा हिन्दुस्तानी बोलने का प्रयत्न करते थे—बंगाली जिस तरह हिन्दुस्तानी उच्चारण और ऐंग्लो-इण्डियन जिस तरह हिन्दुस्तानी व्याकरण की रेढ़ मारते हैं उसका मिला-जुला नमूना पेश करते हुए। 'फ़िराक़' साहब जब कभी आवेश में आ जाते तब सिमलाई ही किसी हल्की-फुल्की बात से उनको समस्थिति में लाते। उनका एक छोटा-सा सिद्धान्त था—जीवन के लिए निश्चय बहुत उपयोगी और लाभकारी—कि गम्भीर-से-गम्भीर बात का कोई एक पक्ष ऐसा होता है जिस पर मुस्कराया या खुलकर हँसा जा सके। और सिमलाई की दृष्टि अपने और दूसरों के मामलों में भी इस पक्ष को सहज पकड़ लेती थी। वे पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच एक प्रकार के सेतु थे।

मि. के. के. मेहरोत्रा से (मेहता, मेहतर—सम्मान सूचक अर्थ में भी प्रयुक्त होता है—मेहरा, महरा, मेहरोत्रा, मलहोत्रा आदि शब्द और उनके पारस्परिक सम्बन्ध किसी जाति का कैसा विचित्र इतिहास छिपाये होंगे, इसे शायद कोई भाषाविद ही कभी खोल सके) विभाग के अध्यापकों की नयी पीढ़ी की शुरुआत होती थी। वे और उनके बाद आनेवाले सभी लेक्चरर—मि. भवानी शंकर, मि. रवीन्द्रनाथ देब, मि. प्रकाशचन्द्र गुप्त, मि. हरिश्चन्द्र, डा. सूरज प्रसाद खत्री—सभी पण्डित अमरनाथ झा, पण्डित शिवाधार पाण्डेय और मि. एस. सी. देब के पढ़ाये थे। पुरानी और नयी पीढ़ी का संघर्ष न अभी आरम्भ हुआ था और न यह शब्दावली कहीं सुनायी पड़ती थी। पुराने लोग अपने अनुभव, अभ्यास से नहीं तो पुरानेपन के कारण ही अधिक योग्य और आदरास्पद माने जाते थे। वही एम. ए. क्लास पढ़ाते थे, पढ़ाने के अधिकारी भी समझे जाते थे, और नया कोई उनके इस विशेषाधिकार को चुनौती न देता था। बहुत वर्षों तक नयी पीढ़ी में से केवल मि. मेहरोत्रा को एम. ए. के छात्रों को माडर्न पोयट्री पढ़ाने का काम दिया जाता था। जूनियर लोगों को भी एम. ए. क्लास पढ़ाने के साथ सम्बद्ध किया जाये, यह माँग बहुत बाद को स्वीकार की गयी।

एक बड़ी मनोरंजक बात याद आयी। जूनियर लोगों को पहले परीक्षा में Invigilation (निरीक्षण) का काम भी नहीं दिया जाता था। तब यह बड़ा दायित्वपूर्ण कार्य समझा जाता था, शायद इस कारण कि उसके लिए कुछ Honorarium (पारिश्रमिक) मिला करता था। जब आनरेरियम बन्द कर दिया गया तो उसकी दायित्वपूर्णता किसी तर्क से समाप्त कर दी गयी, और जूनियर लोग भी इस काम में शामिल किये जाने लगे और बाद को तो सीनियर लोग इस काम से कतराने लगे—अधिक उपयोगी कामों में लग सकनेवाला उनका समय क्यों बेकार बर्बाद किया जाये। एम. ए. को पढ़ाने के दायित्वपूर्ण काम में हाथ बँटाने के लिए वेतन में हिस्सा देने या वेतन बढ़ाने की बात होती तो निश्चय सीनियर लोग इसका अधिक विरोध करते और जूनियरों में भी परस्पर प्रतिद्वन्द्विता छिड़ जाती। आर्थिक लोभ-लाभ अभाव-ग्रस्त देश में अकादमिक नीति-नैतिकता को भी परिचालित करते हैं, यह कटु तथा अप्रिय सत्य हमें स्वीकार ही करना पड़ेगा।

मि. मेहरोत्रा का पूरा नाम था केवलकृष्ण मेहरोत्रा। अपने निकटवर्ती मित्रों में वे एक घरेलू नाम से भी पुकारे जाते थे—केली के। मेहरोत्रा साहब का क़द लम्बा न था, पर दुबले-पतले होने के कारण वे कुछ लम्बे होने का आभास देते थे, अंग्रेजी कपड़े उन पर सहज सजते थे—देसी पोशाक में कभी उन्हें देखने की याद

नहीं—बदन से नाज़ुक थे, बोलते थे धीमी आवाज़ से और सँभल-सँभलकर। अपने विद्यार्थी जीवन में हॉस्टल के ड्रामों में वे स्त्रियों का पार्ट करते थे। उच्च श्रेणी में एम. ए. करने के बाद आक्सफ़र्ड में दो वर्ष रहकर उन्होंने बी. लिट. की उपाधि प्राप्त की थी, वहीं एक अंग्रेज़ लड़की से शादी कर ली थी, और लौटने पर उनकी नियुक्ति अंग्रेज़ी विभाग में लेक्चरर के रूप में हो गयी थी। झा साहब के First favourite (सर्वप्रिय छात्र) थे, अच्छा और मेहनत से पढ़ाने की उनकी प्रसिद्धि थी, इलाहाबाद युनिवर्सिटी मैगज़ीन का सम्पादन भी करते थे।

घर के सम्पन्न थे। हेस्टिंग्स रोड पर उन्होंने एक बड़ा-सा बँगला खरीद लिया था जिसमें वे रहते थे। पत्नी उनकी विलायती, शासक वर्ग की होकर भी सरल, विनम्र और सुघर थीं, उनके तीन सुन्दर बेटियाँ थीं, पर भगवान किसी के चारों कोने नहीं भरता। मेहरोत्रा साहब का स्वास्थ्य उन्हें दग़ा दे गया। उनके एक पाँव में दर्द शुरू हुआ, फिर उस पर लक़वे का आक्रमण हुआ और धीरे-धीरे वह बेकार हो गया। पर अपने मर्ज़ के साथ जो मर्दानावार और बहादुराना लड़ाई उन्होंने लड़ी उसने साबित कर दिया कि यह नज़ाकत का पुतला किस ठोस और मज़बूत धातु का बना था। जब किसी तरह की दवा-दरमत से फ़ायदा न हुआ तो उन्होंने साहस के साथ अपने रोग को स्वीकार कर लिया। जब तक छड़ी के सहारे चल सके बराबर चलते रहे, बाद को उन्होंने ह्वील-चेयर की शरण ली, एक नौकर की मदद से ह्वील-चेयर को सीढ़ियों पर भी चढ़ाते, बाद में तो उनका नौकर उनको गोद में उठाकर ह्वील-चेयर पर बिठा देता, पर वे बराबर युनिवर्सिटी आते रहे, बराबर क्लास लेते रहे, मौक़े-मौक़े पर पार्टियों, ऐट-होम, उत्सवों, शादियों में भी शरीक़ होते। अन्त में तो उनकी आवाज़ भी जाती रही, पर वे माइक के सहारे व्याख्यान देते रहे, लेक्चरर से रीडर और विभागाध्यक्ष हो, सेवा की पूरी अवधि तक काम करके रिटायर हुए। ग़ज़ब की जिजीविषा रही होगी उनमें जो उन्हें कर्तव्य-पालन तक सीमित न रख अक्सर सामाजिक और मनोरंजक अवसरों पर भी उपस्थित रहने को प्रेरित करती रही। ऐसा कष्ट जो समस्त सक्रिय जीवन को समाप्त कर दे—किसी समय वे टेनिस के अच्छे खिलाड़ी थे—और प्रतिपल, प्रतिपग दूसरों पर निर्भर रहने को विवश करे, किसी को भी सदा के लिए चिन्तित, उदास, चिड़चिड़ा बना सकता था। मगर, शाबाश मेहरोत्रा साहब को। उन्होंने किसी भी क्षण माथे पर शिकन न आने दी। इसके विपरीत अपनी सारी तकलीफ़, सारी असुविधाओं के बीच उन्होंने अपने चेहरे पर एक विनोद-भरी मुसकान क़ायम रखी। दाँतों से होठों को दबाकर बहुत-से लोग अपने दर्द को सह लेते हैं, अपनी मुसीबतों को झेल जाते हैं—और उनमें कहीं मैं अपना नाम भी लिखाना चाहूँगा—पर जो हँसते हुए अपने दुर्भाग्य का स्वागत करते हैं वे बिरले होते हैं। मेहरोत्रा साहब ऐसों में ही थे। अब तो वे स्वर्गवासी हो चुके हैं, पर उनकी मुसकान को, जिससे उनके जीवन-काल में भी मुझे बड़ी स्पर्धा थी, मेरी स्मृति ने बड़े आदर से सँजो रखा है।

मि. भवानी शंकर की याद आते ही उनका लम्बा क़द, लमछर चेहरा, लम्बी-पतली नाक, भरे-भरे होठ, बड़ी-बड़ी आँखें, चौड़ा माथा आँखों के सामने आ जाता है। उनको किसी भी मापदण्ड से सुन्दर ही कहा जा सकता था—कपड़ों में हमेशा टिप-टाप, शेरवानी के साथ चूड़ीदार पाजामा और अंग्रेज़ी सूट दोनों उन पर फबते थे—आभिजात्यों के खेल गाल्फ़ खेलने के शौकीन थे। उनमें एक और चीज़ थी—यौनाकर्षण, जिसे अंग्रेज़ी में 'सेक्स-अपील' कहते हैं, और उसके

प्रति वे स्वयं सचेत थे। यौन-मनोविज्ञान के थोड़े-बहुत अध्ययन से मैंने जाना है कि सेक्स-अपील रखनेवाला आदमी बुद्धि से कुशाग्र, व्यवहार में शालीन, वृत्ति से बहिर्मुखी, सुरुचि-सम्पन्न, उदार और तबियतदार होता है—भवानी शंकर में ये सारे गुण थे। वे दक्ष अध्यापक थे—कविवर नरेन्द्र शर्मा उनके विद्यार्थी रह चुके थे, बाद को उनके निकटस्थ मित्र; आधुनिक अंग्रेज़ी कवियों पर उन्होंने एक आलोचनात्मक पुस्तक लिखी थी। युनिवर्सिटी आफ़िसर्स ट्रेनिंग कोर में भी वे मेरे वरिष्ठ सहयोगी थे—वे कैप्टेन थे, मैं लेफ़्टिनेन्ट था। उन्हें कैम्प में देखने से ऐसा लगता था, जैसे सारी जिन्दगी उन्होंने फ़ौज में ही बितायी हो—शिष्टता की सीमा में पीते भी थे। दूसरी तरफ हिन्दी कविता से उन्हें बड़ा प्रेम था, जिसे नरेन्द्र के सम्पर्क ने और बढ़ाया था और जिससे वे मेरी ओर भी अधिक आकृष्ट हुए थे। पन्तजी उनके मित्रों में थे, झा साहब के वे कृपा-पात्र थे, फ़ाइडे क्लब के सदस्य। क्लब में, ऐसा सुना था, वे मास्टर आफ़ सेरीमनीज़ थे, जो सम्भवत: वहाँ के सेक्रेटरी का पद था। बहुत-सी कड़ियाँ थीं, जिन्होंने उनको-मुझको निकटता से जोड़ दिया था।

आदमी वे हिम्मतवर थे, जो करते थे खुले-खज़ाना, विवाहित थे, एक बेटा था, पर उनकी एक प्रेयसी भी थी, जिसको वे साथ ही रखते थे, साथ उसके सब जगह आते-जाते थे, विवाहिता को भी साथ लिये। उनका एक खतरनाक मकूला था—नारी उसकी है जो उसे आकर्षित कर सके। और इसके अपवाद में उन्होंने अपने एक परम आत्मीय मित्र की पत्नी को भी न रखा। मित्र की पत्नी भवानी शंकर की ओर इतनी आकर्षित हुई कि उनके घर ही जा बैठी, और बाद को उन्होंने उसे पत्नी रूप में स्वीकार किया, विधिवत् विवाह किया था या नहीं, यह मैं नहीं जानता, पर उससे कोई सन्तान हुई थी, ऐसा सुना था। वाह्यारोपित नैतिकता के विश्वविद्यालयी वातावरण में अपने खुले व्यवहार को खपता न देखकर उन्होंने युनिवर्सिटी से इस्तीफ़ा दे दिया, फ़ौजी शिक्षा शाखा में नौकरी कर ली जहाँ कुछ ही वर्षों में वे सर्वोच्च पद पर पहुँच गये, 1952 में भीषण रूप से बीमार पड़े, इलाज के लिए बम्बई भेजे गये, जहाँ, नरेन्द्र ने मुझे बताया, जो उनकी अन्तिम घड़ियों में उनके साथ थे, उन्होंने निर्भय, निराकुल मृत्यु का आलिंगन किया। भवानी शंकर सौन्दर्यप्रेमी, साहित्यानुरागी, अनुशासन-बद्ध सैनिक और व्यवहार-शिष्ट नागरिक के अद्भुत सम्मिश्रण थे। उनसे ईर्ष्या की जा सकती थी, उनसे दुश्मनी नहीं रखी जा सकती थी—

'वो, सूरतें, इलाही, किस देस बसतियाँ हैं,
अब जिनको देखने को आँखें तरसतियाँ हैं।'

मि. रवीन्द्रनाथ देब—विभागाध्यक्ष प्रो. एस. सी. देब के छोटे भाई—और मि. प्रकाशचन्द्र गुप्त से भी मेरी निकटता थी—गुप्तजी से कुछ फ़ासला रखते हुए। दोनो मेरे बी. ए. के सहपाठी थे—एम. ए. (प्रीवियस) के भी। देब ने अंग्रेज़ी साहित्य के अतिरिक्त चित्रकला में विशेष रुचि ली थी। गहरे रंगों की लयात्मक वर्तुल शैली उनकी अपनी ईजाद थी, जिसमें उन्होंने कई भव्य मौलिक चित्र बनाये थे। चित्रकला के विषय में मैं अधिकारपूर्वक कुछ नहीं कह सकता, पर मेरी ऐसी धारणा है कि यह पिकासो की कोण-प्रक्षेपी घनाकृति शैली की भारतीय प्रतिक्रिया थी। भारतीय जीवन अब भी लयबद्ध है, कालान्तर में उसे लय बदलनी पड़ सकती है, पर तोड़ देने से उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़

जायगी, कारण यह है कि भारतीय चिन्तन में लय का उतना ही अर्थ नहीं है जितना 'रिद्म' से पश्चिम ने समझा है। यदि समय से देब के चित्रों की प्रदर्शनी प्रसिद्ध नगरों में आयोजित की जा सकती तो उन्हें अच्छी ख्याति मिलनी थी। मुझे खेद है कि भारतीय चित्रकला की दुनिया में उनको कोई विशेष स्थान नहीं दिया गया। दुर्भाग्य यह है कि हमारा सारा दृष्टिकोण, हमारी सारी आलोचना, चाहे वह चित्रकला की हो, चाहे साहित्य की—भारतीय संगीत इस विषय में अधिक सौभाग्यशाली रहा है—पराङ्मुखी है, पश्चिमानुयायी है, हीन भावना-कुण्ठित है। स्वस्थ जहाँ यह है कि विदेशी को भी हम देशी दृष्टिकोण से देखें, वहाँ हम देशी को विदेशी नज़रिये से देख रहे हैं। मानसिक स्वाधीनता राजनीतिक स्वतन्त्रता से अधिक स्पृहणीय तो है ही, उसके लिए अधिक बड़ी क्रान्ति, अधिक बड़े संघर्ष की भी ज़रूरत है। देब को भी अपनी कला की साधना में अपने को और अधिक तपाना था। उन्होंने मेरी कृति 'बंगाल का काल' के प्रथम संस्करण के लिए आवरण चित्र बनाया था। मेरी कुछ और कविताओं पर भी उन्होंने चित्र बनाये थे, विशेष स्मृति है मुझे 'एकान्त संगीत' के 'अग्निपथ ! अग्निपथ ! अग्निपथ !' पर बने चित्र की।

मि. प्रकाशचन्द्र गुप्त इलाहाबाद युनिवर्सिटी में आने के पूर्व कई वर्षों तक सेन्ट जोन्स कालेज, आगरा, में अंग्रेजी के लेक्चरर रह चुके थे। वहीं उन्होंने मौलिक अंग्रेज़ी और हिन्दी-लेखन आरम्भ कर दिया था। अंग्रेज़ी समालोचनात्मक निबन्धों की उनकी एक छोटी-सी पुस्तक प्रकाशित हुई थी। बाद को विशेष ध्यान उन्होंने हिन्दी समालोचना की ओर दिया। रेखा-चित्र लिखने में भी उनकी रुचि थी—हिन्दी को कुछ अच्छे शब्द चित्रात्मक लघु निबन्ध उन्होंने दिये हैं। समालोचना में उनकी प्रणाली मार्क्सवादी थी जिसमें सामाजिक यथार्थ पर अधिक बल दिया जाता था। शुरू में उनका दृष्टिकोण कुछ उदार था, पर आगे चलकर वे प्रगतिवादी विचारधारा और साम्यवादी सिद्धान्त में सर्वाङ्ग रँग गये—लाल रंग में। उनसे अधिक निकटता के लिए उसी रंग में रँग जाना शायद ज़रूरी था—मेरे लिए जीवन का सहज-स्वाभाविक रंग ही पर्याप्त था जिसमें लाल रंग भी अनुपातत: सम्मिलित था ही, और इससे वे अपरिचित नहीं थे।

लगभग 25 वर्ष इलाहाबाद युनिवर्सिटी से सम्बद्ध रह वे विभागाध्यक्ष पद से रिटायर हुए। अब उनका देहावसान हो चुका है। यह भी एक विचित्र संयोग है कि मृत्युपूर्व उनका अन्तिम लेख मुझ पर था जो उन्होंने मेरे 'लोटस पुरस्कार' पाने के अवसर पर लिखा था और जिसमें उन्होंने मेरी कविता में निहित प्रगतिशील तत्वों की ओर संकेत किया था।

मि. हरिश्चन्द्र और मि. सूरज प्रसाद खत्री उम्र में मुझसे छोटे थे, पर मेरी पढ़ाई में सात वर्ष का व्यवधान पड़ने से उन्होंने मुझसे पहले एम. ए. किया था और पहले से युनिवर्सिटी में काम करते थे। हरिश्चन्द्रजी का एकेडेमिक रेकार्ड बहुत अच्छा था, आई. सी. एस. में आने के ध्येय से वे इंग्लैण्ड गये थे, पर उसमें सफल न हो, वापस आ लाचार अंग्रेज़ी विभाग में लेक्चरर हो गये थे। फिर भी सरकारी अफ़सरी का जो स्वप्न—बड़े अधिकार और भारी वेतन का—उन्होंने अपने यौवन में देखा था उसको वे युनिवर्सिटी की कुर्सी पर भी सेते रहे। आज़ादी मिलने के बाद किसी प्रकार वे केन्द्रीय सेवा में पहुँच गये और यथावसर अपनी राह बनाते युनियन पब्लिक सर्विस कमीशन में डिप्टी या ज्वाइण्ट सेक्रेटरी हो गये, अब तो शायद रिटायर हो चुके हों।

मि. खत्री के, मेरा ऐसा अनुमान है, कुछ आर्थिक दायित्व ऐसे थे जिन्हें युनिवर्सिटी के वेतन के बल पर न उठाया जा सकता था। कुछ अधिक कमाने की दृष्टि से उन्होंने यू. ओ. टी. सी. ज्वाइन कर लिया था, पर पहले कैम्प के बाद ही उनको लगा कि परेडों की रगड़न्त उनसे न झिलेगी—मैं पूरे पाँच वर्ष कैसे झेल गया। उन्होंने कुछ लिखकर पैसा कमाने की योजना बनायी—हिन्दी में अंग्रेज़ी साहित्य का इतिहास लिखा—अंग्रेज़ी में प्राप्य इतिहासों के आधार पर, जो छपा भी, समालोचना की एक बड़ी पुस्तक उनकी निकली, एक और शायद हास्य पर। बहुत कुछ उनका लिखा अप्रकाशित भी रहा। यह लेखन उनके लिए बहुत श्रमसाध्य था, और इसने उनका स्वास्थ्य चौपट कर दिया, और अन्त में उनकी असमय मृत्यु का कारण भी बना। खत्री कानपुर के थे, ठिगने शरीर के, खुले स्वभाव के, पर घोर परिश्रमी, किसी प्रकार के मनोविनोद (Recreation) में भाग लेते मैंने उन्हें नहीं देखा था। मेरे मधुकाव्य के बड़े प्रेमी थे और मुझे 'बच्चन' के बजाय Bacchus (बेकस) कहा करते थे जो युनानी दन्त कथा के अनुसार मदिरा का देवता है।

अपने ऐसे सहयोगियों के साथ काम करते जिनमें मेरे गुरु थे, गुरुवत् थे मुझसे बड़े थे, मेरे समवयस्क थे और मुझसे छोटे थे—छह लेक्चरर मेरे बाद नियुक्त हुए—मैंने अपने जीवन के ग्यारह साल बिताये—आज़ादी के दिन से लगभग समविभाजित, पर आज़ादी के पहले और आज़ादी के बाद के अंग्रेज़ी विभाग में क्या अन्तर आना था? यह अंग्रेज़ी विभाग से अधिक जिस तरह की आज़ादी हमें मिली थी उस पर टिप्पणी है। खैर। जो अन्तर आया था वह सिर्फ़ इतना कि संविधान के अनुसार हिन्दी राष्ट्र-भाषा घोषित होने से 'फ़िराक़' साहब का हिन्दी-विरोध कुछ अधिक उग्र हो गया था और अंग्रेज़ी कपड़े के साथ लोग थोड़ी-सी स्वतन्त्रता लेने लगे थे, यानी कोट टाई के बजाय अब वे बुश-शर्ट में भी युनिवर्सिटी चले आते।

युनिवर्सिटी का साल जुलाई के मध्य से शुरू होता—नये सत्र का आरम्भ, जो इलाहाबाद के सामान्यतया असक्रिय, सुस्त, अर्द्ध-सुप्त जीवन में एक हलचल बनकर आता, जैसे किसी तन्द्रिल-पंकिल तालाब में चारों ओर से ताज़े बरसाती पानी की तेज़ धाराएँ आकर गिरने लगी हों—नये चेहरे, नयी आवाज़ें, नये अन्दाज़, नयी अदाएँ, नयी पोशाकें, नयी फ़ज़ाएँ, युनिवर्सिटी के अहाते में, छात्रावासों में, सडकों पर, लानों में, दूकानों पर, मकानों में, होटलों में, रेस्टराओं में—यानी कहाँ नहीं। इस हलचल का आभास यों तो किसी न किसी रूप में सारे शहर में होता—किसी नवागन्तुक को किसी परिचित रिश्तेदार से मिलना है, कोई शहर देखने निकला है, किसी को घर की तलाश है—एकाध कमरा ही मिल जाये—किसी को और कोई काम है, पर इसका मुख्य क्षेत्र होता कटरा—नगर की उप-बस्ती जहाँ युनिवर्सिटी स्थित है, और उसका भी विशेष केन्द्र युनिवर्सिटी का कैम्पस, जो गर्मी के लम्बे महीनों में मधु-सूखे छत्ते के समान पड़ा रहता, पर अब मौसम की नम हवा के साथ उसकी ओर मधु-माखियों के झुण्ड के झुण्ड टूटे पड़ते। युनिवर्सिटी के काउण्टर पर क्या रेलमपेल होती।—युनिवर्सिटी में फ़ीस जमा करने के लिए पाकिट में पैसे ही नहीं चाहिए, बाजुओं में ताक़त भी चाहिए—पसीना से पसीना एक होता।

वाइस चान्सलर, रजिस्ट्रार के घर-दफ्तर प्रायः घेराव की स्थिति में होते—लोग बिना किसी पूर्व सूचना के, बिना पहले से समय माँगे, बिना सोचे कि उनका

काम किसी अन्य स्तर से भी हो सकता है, उच्चतम अधिकारियों की ड्योढ़ी पर आ जमते। विभागाध्यक्षों, छात्रावासों के वार्डनों, सुपरिन्टेण्डेण्टों के यहाँ भी मिलनेवालों की लाइनें लगी रहतीं—किसी को जगह नहीं मिली, किसी को मन की जगह नहीं मिली, किसी को इतनी जगहें मिल गयी हैं कि चुनाव करना मुश्किल है, किसी को वांछित विषय नहीं मिला, कोई ख़ुद आया है, कोई किसी के साथ आया है, कोई किसी की सिफ़ारिश लाया है, किसी का काम बन रहा है, किसी का बिगड़ रहा है, किसी को सिर्फ़ टाला जा रहा है,—बहुत-सी समस्याएँ समय से स्वयं हल हो जाती हैं—इन्सान क्यों सिर खपाये।

शुरू के दस-पन्द्रह दिन रजिस्ट्रार के दफ़्तर, अधिकारियों और प्रबन्धकों के लिए सिरदर्द के होते, लेक्चरर लोग मौज करते—आते, कामन रूम में कुछ देर बैठते, गप-शप करते, चले जाते—गप-शप में—कोई शिमले गया था, कोई मसूरी, किसी ने नैनीताल में गर्मी बितायी, किसी ने रानीखेत में, बहुत-से कहीं जाना अफ़ोर्ड नहीं कर सके—पहाड़ जानेवालों के चेहरों पर उच्चस्थ की आभा, मैदान में पड़े रहनेवालों के चेहरों पर निम्नस्थ की छाया—राम की माया, कहीं धूप, कहीं छाया। मैंने तीन हज़ार कापियाँ जाँची, आपने चार हज़ार, आपने इतनी हज़ार! आपने कितनी हज़ार—बड़ा बोरियत का धन्धा है—(धनदा तो है।) अब जाके आराम, और उत्तर-कापियो में 'हाउलरों' यानी परीक्षार्थियों की भोंडी ग़लतियों की रस-बयानी। कुछ लोग सूची बनाकर लाते। लेक्चरर का काम है लेक्चर देना, वह तो तब शुरू हो जब एडमिशन का काम समाप्त हो जाये, अलग-अलग सेक्शन बन जायें, दर्जों के बैठने के लिए कमरे तै कर दिये जायें, टाइम-टेबिल तैयार हो जाये। और इन सब कामों में डेढ़-दो हफ्ते लग जाते।

युनिवर्सिटी में क्लास चलते, छात्रावासों में रैगिंग होती—नयों से पुरानों की पहचान या छेड़-छाड़—पुरमज़ाक़ से अशोभन, अभद्र और कभी-कभी क्रूर और अश्लील तक—कामन रूम तक रिपोर्टें पहुँचतीं। होस्टल की परिषदों और युनियन के चुनाव होते, बड़ी पोस्टर और इश्तहारबाज़ी होती, नारेबाज़ी, ढोल-ढप्पा, और जब तक युनिवर्सिटी कैम्पस में सब कुछ सामान्य और व्यवस्थित होता दशहरे की छुट्टियाँ पहुँच जातीं। पहला टर्म समाप्त हो जाता। विद्यार्थी अपने-अपने घरों को चले जाते। युनिवर्सिटी कैम्पस शान्त और सूना हो जाता, केवल युनिवर्सिटी की टावर-घड़ी पन्द्रह-पन्द्रह मिनट पर क्रमशः चार, आठ, बारह, सोलह घण्टे बजाकर जितने बजे हों, उतने घण्टे बजाती—टिन-टुन-डिग-डांग··· टऽन, टऽन, टऽन···

दूसरा टर्म अक्तूबर से दिसम्बर तक चलता—लेक्चर क्लास और सेमिनार टाइम-टेबिल के अनुसार लिये जाते, फिर भी दूसरा टर्म मुख्यतया उत्सवों का टर्म होता। इसी टर्म में युनिवर्सिटी का कान्वोकेशन होता; पुराने छात्र अपनी-अपनी डिग्रियाँ लेने आते। कान्वोकेशन के ख़ास दिन युनिवर्सटी कैम्पस में बड़ी चहल-पहल होती, काले-काले गाउन पहने स्नातक इधर-उधर घूमते-फिरते, उन पर उनकी विभिन्न डिग्रियों के द्योतक विभिन्न रंगों के हुड यानी परतले, सिर पर चौखुण्टी काली टोपियाँ, शहर के सारे फ़ोटोग्राफ़रों के बूथ सेनेटहाल के चारों तरफ़ लगते, तरह-तरह के पोज़-ग्रुप में स्नातक फ़ोटो खिंचाते। कान्वोकेशन से अधिक उबाऊ शायद ही कोई दूसरा उत्सव होता हो—एक रटा-रटाया फ़ारमूला बोलकर विभागाध्यक्ष स्नातकों को प्रस्तुत करते, एक रटा-रटाया फ़ारमूला बोल-कर वाइस चान्सलर स्नातकों को डिग्री देते, कुछ रस आता तो तब जब कोई

विशिष्ट व्यक्ति कान्वोकेशन ऐड्रेस देने को बुलाया जाता। होस्टलों में वार्षिकोत्सव होते—ऐनुअल डिनर, डिनर-भाषण, कवि-सम्मेलन, मुशायरे, दिसम्बर में युनिवर्सिटी के वार्षिक खेलकूद होते—स्पोर्ट्स—और फिर युनिवर्सिटी बडे दिन की छुट्टियों के लिए बन्द हो जाती। युनिवर्सिटी कैम्पस फिर शान्त और सूना हो जाता, वहाँ सुनायी देती सिर्फ़ टावर घड़ी की आवाज़, पन्द्रह-पन्द्रह मिनट पर—टिन-टुन-डिग-डांग···।

तीसरा टर्म जनवरी से मार्च तक चलता—अध्ययन और अध्यापन दोनों का रुख परीक्षोपयोगिता की ओर झुक जाता—विद्यार्थियों की अन-अकादमिक हलचलें कम या प्राय: समाप्त हो जातीं, छात्रावासों के कमरों में अधिक रात तक रोशनियाँ दिखायी देतीं। अप्रैल का पूरा महीना परीक्षाओं में गुज़रता—विद्यार्थियों के लिए बहुत परिश्रम का, अध्यापकों के लिए बहुत बोरियत का—इनविजिलेशन से लेकर ढेर की ढर कापियाँ जाँचने तक। गर्मी का प्रकोप इलाहाबाद में दिन-दिन बढ़ने लगता और हम युनिवर्सिटी बन्द होने के लिए दिन गिनने लगते। मई के प्रथम सप्ताह में युनिवर्सिटी बन्द हो जाती, सिर्फ़ रजिस्ट्रार का दफ्तर सुबह खुलता; सारे लम्बे-लम्बे दिन-रात कैम्पस शान्त-सूना रहता। युनिवर्सिटी की टावर-घड़ी की आवाज़ें—टिन-टुन-डिग-डांग···दिन में चिलचिलाती धूप और झुलसाती लू सुनती, रातों में गर्दीले आसमान से झाँकते सितारे। और घड़ी की छोटी-बड़ी सुइयाँ प्रतीक्षा और विश्वास भरी चली जातीं कि फिर जुलाई आयेगी और वही सब होगा जो पिछले साल हुआ था···और सारे सत्र का पिछला टाइम-टेबिल थोड़े-बहुत सतही परिवर्तनों के साथ फिर दुहराया जायगा।

'दिवस'—दिवस नहीं—बरस 'जात नहिं लागहिं बारा।'

1941 पर 1951 आ धमका।

और 1951-52 का युनिवर्सिटी सत्र समाप्त हो, इसके पूर्व, ठीक तारीख ही क्यों न बता दूँ, 12 अप्रैल 1952 को मैं बम्बई के सान्ताक्रुज़ हवाई अड्डे से इण्डिया इण्टरनेशनल के जहाज़ में सवार होकर लन्दन के लिए रवाना हो गया।

अपनी आकांक्षाओं, क्षमताओं और सीमाओं की यथासम्भव जाँच-पड़ताल करके अपने विकास अथवा जीवन-क्रम का जो नक्शा मैंने बनाया था उसमें विदेश-यात्रा या विदेश में अध्ययन का कोई स्थान न था। यह ठीक है कि लड़कपन में मैंने स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की 'अमरीका-भ्रमण' और 'अमरीका-दिग्दर्शन' आदि पुस्तकें पढ़कर अमरीका पहुँचने के खयाली ख्वाब बहुत बार देखे थे, पर यह मैं बहुत पहले जान चुका था कि उनमें मेरी अपनी उद्भावना कम और लेखक की सफलता अधिक थी। और अब तो मेरे जीवन की गाड़ी एक ऐसी सुखद और सुविधाजनक लीक में पड़ गयी थी कि उसे छोड़कर चलने की बात भी सहसा नहीं सोची जा सकती थी—उस बहुत-चली लीक से यदा-कदा असन्तोष और ऊब का अनुभव करते हुए भी।

1952 में मैं अपनी आयु के 45वें वर्ष में था। तेजी के साथ मेरे विवाह के लगभग दस वर्ष पूरे हो चुके थे। मेरे दोनों लड़के स्वस्थ, सुन्दर, होनहार थे,—बिरवों के चीकने पात, मेरे परखे-जाने— अब तो कह सकता हूँ कि मेरी परख ग़लत नहीं थी—बड़े, अमित, ने अपनी नवीं वर्ष-गाँठ मना ली थी, और छोटा

अजित, अगले महीने, यानी 18 मई को, अपनी आयु के पाँच वर्ष पूरे करने को था। दोनों ब्वायज़ हाई स्कूल में पढ़ते थे और उनकी प्रगति पर हमें सन्तोष और हर्ष था। रहने को, गो किराये का, हमारे पास, हमारी आवश्यकताओं, सुविधाओं के लिए पर्याप्त, एक सुन्दर, खुला, बड़ा मकान था। घर को सुचारु रूप से चलाने के लिए मैं अच्छे पैसे कमा रहा था। मेरे दाहिने हाथ में भाग्यरेखा के सिरे पर एक त्रिशूल है। किसी हस्तरेखाविद् ने उसे देखकर मुझे बताया था कि धन मेरे पास तीन स्रोतों से आया करेगा। कम से कम इस समय तो आ ही रहा था—युनिवर्सिटी के वेतन से, पुस्तकों की रायल्टी से, और जब-तब पत्र-पत्रिकाओं, कवि-सम्मेलनों अथवा रेडियो से मिले पारिश्रमिक से। हम आराम से रह रहे थे, पर ऐश में नहीं, गो हमारा जीवन-स्तर ऐसा आभास कुछ लोगों को दे सकता था। विवाह के बाद हम पति-पत्नी में से किसी को कोई लम्बी या बड़ी बीमारी नहीं हुई थी, और हम दोनों ने ही कोई ऐसा भावात्मक विपर्यय भी न जाना था जो हम दोनों के बीच किसी प्रकार के भ्रम, संशय या सन्देह को जन्म दे—छोटी-मोटी ग़लतफ़हमियों की बात मैं नहीं करता—और पारस्परिक कलह का कारण बने।

हमारा सामाजिक परिवेश। जाति-गत नाते-रिश्तेदारों से हम कटे थे, कहना चाहिए हमारा पिण्ड छूट चुका था, जिसे अंग्रेज़ी में कहेंगे 'गुड रिडेन्स'। निकट के सम्बन्धियों में केवल इने-गिने दो थे—मेरे मामाजी और मेरे भांजे। ऐसी घनिष्टता जो आड़े समय हमारे काम आ सके या जिस पर हम निर्भर हो सकें, हमारी किसी से न थी। मित्रता, अधिकतर औपचारिक, हमारी कइयों से थी, शत्रु हमारा कोई न था, कम से कम किसी को शत्रु बनाने का कोई कारण हमारी तरफ़ से उपस्थित न किया गया था। अपने रहन-सहन-जीवन के ईर्ष्यालु आलोचकों और स्वभावविवश निन्दकों से हम अपरिचित न थे, जिन्हें हमने केवल उपेक्षा का पात्र समझ रखा था। पर हमारा माँ-बाप-बेटों का छोटा-सा परिवार एक ऐसा सुगठित नीड़ था, जिसे न किसी की अपेक्षा थी, न किसी से भय। युनिवर्सिटी के काम से बचे समय में अपने बच्चों को पढ़ाता हूँ या उनके साथ खेलता हूँ, राजन को पढ़ाने से छुट्टी मिल गयी है, उन्होंने बी. ए. कर लिया है और अब क़ानून पढ़ रहे हैं, स्वान्तः सुखाय स्वाध्याय करता हूँ, यथाप्रेरणा कविताएँ लिखता हूँ, काव्य-आन्दोलनों में रुचि नहीं रखता, उनमें भाग नहीं लेता। ऐसे नियमित और व्यवस्थित जीवन में क्या बुरा है कि मैं उसमें किसी प्रकार का व्यवधान चाहूँ ?

पर व्यवधान तो मेरे जीवन में आके रहा और इतना बड़ा कि उसने एक लम्बी अवधि के लिए मुझे अपने घर-परिवार, परिवेश, देश से हज़ारों मील दूर ले जाकर बिठा दिया। और इसकी शुरुआत एक बहुत छोटी-सी बात से हुई।

1951 के अन्त में ब्रिटिश कौंसिल की ओर से एक सूचना आयी जो अंग्रेज़ी विभाग के सब अध्यापकों तक पहुँचायी गयी। ब्रिटिश कौंसिल का नाम उन दिनों नया-नया सुनने में आया था। ब्रिटेन ने भारत में ब्रिटिश कौंसिल की स्थापना भारत के स्वतन्त्र होने के बाद की थी। ध्येय, स्पष्ट है, इस संस्था का यह था कि अंग्रेज़ी के माध्यम से ब्रिटेन का जो सांस्कृतिक सम्बन्ध भारत के एक विशेष वर्ग के बुद्धिजीवियों से बना है वह भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् टूटने या क्षीण होने न पाये, बल्कि पूर्व राजनैतिक सम्बन्ध के टूट जाने पर तो उस सांस्कृतिक सम्बन्ध को और सुदृढ़ किया जाये। इसके दूरगामी राजनैतिक परिणाम भी हो

सकते थे, इसे निश्चय ही अंग्रेज नीति-विचक्षणों ने देख लिया होगा। इसके अन्तर्गत प्रति वर्ष बहुत से अंग्रेज विद्वान भारत आते हैं और यहाँ के प्रख्यात विश्वविद्यालयों में व्याख्यान देते हैं, इसकी ओर से सभी बड़े-बड़े नगरों में अंग्रेज़ी के पुस्तकालय और वाचनालय चलाये जाते हैं जहाँ नया से नया अंग्रेज़ी साहित्य और नयी से नयी पत्रिकाएँ पढ़ने को उपलब्ध रहती हैं।

सूचना यह थी कि ब्रिटिश कौंसिल कुछ अंग्रेजी के अध्यापकों को इंग्लैण्ड आने-जाने का खर्च देगी बशर्ते कि वे कम-से-कम दो टर्म यानी छह महीने के लिए किसी ब्रिटिश युनिवर्सिटी में अपने दाखले का प्रबन्ध कर लें। वहाँ रहकर उन्हें युनिवर्सिटी के दर्जे पर अंग्रेजी साहित्य पढ़ाने की विधि का अवलोकन करना होगा। रहना उन्हें अपने खर्च पर होगा जो छह महीने के लिए अनुमानतः क़रीब 3000/- रुपये के आयेगा, 500/- रुपये प्रतिमास के हिसाब से इंग्लैण्ड की सैर करने, उसके अन्य सांस्कृतिक पहलुओं से परिचित होने अथवा थोड़ा-बहुत योरोप-भ्रमण के लिए 2000/- रुपये का अतिरिक्त प्रबन्ध रखना चाहिए, यानी कुल जमा 5000/- रुपये का इन्तज़ाम हो सके तो इस अभियान पर जाने की बात सोची जा सकती है।

विभाग के अध्यापकों ने यह सूचना एक कान से सुनी और दूसरे से निकाल दी, पर मेरे मन में इस पर एक तरह की खिचड़ी पकनी शुरू हो गयी। कोशिश करूँ तो क्या यह सम्भव नहीं है कि मुझे छह महीने के लिए किसी ब्रिटिश युनि-वर्सिटी में दाखला मिल जाय ? दाखला मिलने पर प्रार्थना पत्र भेजूँ तो क्या यह सम्भव नहीं है कि ब्रिटिश कौंसिल मुझे इंग्लैण्ड आने-जाने का खर्च दे दे, विभाग से तो और कोई जाने का इच्छुक नहीं, और युनिवर्सिटियों से चुनाव करने में इलाहाबाद युनिवर्सिटी की उपेक्षा शायद ही की जा सके। खर्च ? आर्थिक स्थिति ऐसी तो नहीं है कि 5000/- रुपये बैंक से निकालकर चल दूं, कुछ जमा है तो बड़े होने पर भतीजे और बेटों की शिक्षा पर व्यय करने के लिए—उसे नहीं छूना। पर कोशिश करने पर क्या यह सम्भव नहीं है कि कहीं से इतनी राशि मिल जाय, प्रकाशक ही अग्रिम रायल्टी दे सकता है। युनिवर्सिटी से छुट्टी मिल ही जायगी, नियमानुसार दस वर्ष की सेवा के बाद दस महीने की स्टडी-लीव सवेतन मिल सकती है। मुझे तो छह मास की ही चाहिए। वेतन से मेरी अनुपस्थिति में घर का खर्च चल जायेगा। घर की देख-सँभाल ? उसके लिए मैं क्या करता हूँ ? एक तिनका तो मैं खिसकाता नहीं। जो कुल करने को है वह तेजी ही करती हैं। फिर राजन तो अभी यहाँ हैं ही, क़ानून की परीक्षा पास कर लेने पर भी वे ट्रेनिंग के लिए यहाँ कुछ दिन और रहेंगे। अगर मैं इंग्लैण्ड जा सका तो मैं अंग्रेज़ी साहित्य को पढ़ाने की विधि का अध्ययन तो करूँगा ही, एक काम और कर सकता हूँ। ईट्स पर शोध का जो काम मैंने दस वर्ष पहले शुरू किया था वह अधूरा पड़ा है। वहाँ प्राप्य सामग्री के आधार पर विस्तृत नोट्स ले सकता हूँ और भारत लौटकर पी-एच. डी. के लिए, अगर काम ज्यादा अच्छा कर सका तो डी. लिट. के लिए, थीसिस प्रस्तुत कर सकता हूँ। डा. दस्तूर ने ऐसे ही डाक्टरेट ली थी—महाजनो येन गतः स पन्थः।

दस-बारह बरस पहले शोध का जो काम मैंने आरम्भ किया था वह केवल इसलिए नहीं कि उस समय और कुछ करने को नहीं था। जब से मैं ईट्स की कविता से परिचित हुआ था तभी से मैं उनके प्रति आकर्षित था। उनका या उन पर जो भी साहित्य मुझे मिलता था, मैं रुचिपूर्वक पढ़ता था, उस पर विचार करता था।

उनके विषय में जिस पहली बात का आभास मुझे हुआ था, वह यह थी कि वे अपने समकालीन अन्य अंग्रेज़ कवियों से बहुत भिन्न थे और इस भिन्नता को लाने में किसी दर्जे पर भारतीय संस्कृति और साहित्य के सम्पर्क ने कोई भूमिका अवश्य अदा की होगी। कुछ अन्य असाधारण सम्पर्कों के संकेत भी मुझे मिलते थे, पर मैं उन पर उँगली रख सकने में असमर्थ था। इनको प्रामाणिक रूप से जानना और ईट्स के मस्तिष्क और कला पर इनके प्रभाव को आँकना मेरे शोध का विषय हो सकता था। लेकिन समुचित स्वाध्याय-सामग्री और आधिकारिक निर्देशन के अभाव में मैंने ठीक दिशा में क़दम न उठाये थे। उन दिनों शेक्सपियर के आलोचना-साहित्य में एक पुस्तक को बहुत महत्त्व दिया जाता था Dowden (डाउडेन) की Shakespeare : His Mind and Art (शेक्सपियर : उनका मनस् और उनकी कला) को। वह पुस्तक मैंने पढ़ी भी थी, और सम्भवत: उसी से प्रेरणा लेकर मैंने अपने शोध का विषय W. B. Yeats : His Mind and Art रख लिया था। पर बहुत जल्द मुझे यह अनुभूति हो गयी थी कि मैं एक ऐसे वृक्ष के फूल-फल को पकड़ना चाहता हूँ जिसके मूल-तने का मुझे पता नहीं है, और यह काम मुझे अधूरा ही छोड़ देना पड़ा था।

छोड़ तो मैंने दिया था, पर भुला नहीं दिया था। अधूरी छूटी चीज़ें मुझे बहुत परेशान करती हैं। वे रह-रहकर मुझे अपनी याद दिलाती हैं, पूरी करने को आमन्त्रित करती हैं, चुनौती देती हैं। अब जब इंग्लैण्ड जाने और वहाँ किसी युनिवर्सिटी से सम्बद्ध होने की सम्भावना दिखी तो इस अधूरे काम ने मुझे एक बार फिर कुरेदा—बहुत समय से मैंने इसे लटका रखा है, अगर इस मौक़े से चूका तो फिर यह जीवन भर अटका ही रहेगा। ब्रिटिश कौंसिल से मार्ग-व्यय पाने के पहले दो काम करने थे—किसी ब्रिटिश युनिवर्सिटी में प्रवेश पाना था और 5000/- रुपये नक़द का इन्तज़ाम करना था। दोनों काम मुश्किल थे, पर असम्भव नहीं। ज़िन्दगी भर मुश्किलों से ही तो टक्कर लेता रहा हूँ। एक बार और सही।

अंग्रेज़ी में एक कहावत है 'फ़र्स्ट थिंग्स फ़र्स्ट'—अर्थात् जो चीज़ अधिक महत्त्व की हो उसकी ओर पहले ध्यान दो। सोचा, किसी युनिवर्सिटी में प्रार्थना-पत्र भेजकर देखूँ कि प्रवेश मिल भी सकता है कि नहीं।

तेजी से मैंने चर्चा चलायी तो मेरे इंग्लैण्ड जाने की सम्भावना पर उन्होंने अपना हर्ष व्यक्त किया और अपनी ओर से हर प्रकार का सहयोग देने का आश्वासन दिया। छह महीने का वक़्त होता ही कितना है, हँसते-खेलते गुज़र जायगा।

तबीयत अपनेराम को ऊँची मिली है—'मति अति नीच ऊँच रुचि आछी'। किसी ब्रिटिश युनिवर्सिटी में दाखिला माँगना है तो इंग्लैण्ड की सबसे बड़ी और विश्व-विश्रुत युनिवर्सिटियों में क्यों न माँगा जाये; यानी केम्ब्रिज या आक्सफ़र्ड में, न कि लन्दन, लीड्स, ब्रिस्टल या नाटिंघमशायर में।

विश्राम तिवारी की बुद्धि तो कुशाग्र न थी, पर ठेठ ग्रामीण की व्यावहारिक सूझ-बूझ उनमें खूब थी। तिवारीजी कहा करते थे कि जब आदमी शिकार पर निकले तो उसे अपने तरकस में दो तीर रखकर चलना चाहिए कि एक ख़ता कर जाये तो दूसरा तो निशाने पर बैठे। मैंने केम्ब्रिज-आक्सफ़र्ड दोनों युनिवर्सिटियों में प्रार्थना-पत्र भेज दिये। प्रार्थना-पत्र में अपनी अकादमिक योग्यता और अनुभव के साथ ही मैंने अपने कवि और लेखक होने की भी चर्चा कर दी, कुछ रचनाओं

के नाम भी दे दिये। 'मधुशाला' के अंग्रेज़ी अनुवाद की प्रति भी साथ लगा दी जो दो वर्ष पूर्व The House of Wine (द हाउस आफ़ वाइन) के नाम से लन्दन से प्रकाशित हो चुका था।

इस अनुवाद की भी एक रोचक कहानी है। अनुवादिका थीं मार्जरी बोल्टन, पर उनको हिन्दी बिल्कुल नहीं आती थी। बात ऐसी हुई कि जिस समय मार्जरी आक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी से बी. लिट. करने की तैयारी कर रही थी, उत्तर भारत का एक विद्यार्थी, आर. एस. व्यास नाम का, वहाँ पहुँच गया। वह मार्जरी को प्रेम करने लगा और जब-तब 'मधुशाला' की रुबाइयाँ उसे सुनाया करता, शायद मेरी ही ट्यून में, जो सम्भव है, मुझसे ही उसने किसी कवि-सम्मेलन में सुनी हो। वह ट्यून मार्जरी को इतनी मोहक लगी कि उसने कविता की पंक्ति-पंक्ति का अर्थ पूछना शुरू कर दिया। मार्जरी में पद्य-प्रतिभा थी, उसने अर्थ को पद्यबद्ध कर डाला। इस प्रकार एक अंग्रेज़ प्रेमिका और भारतीय प्रेमी के रसमय क्षणों की साक्षी के रूप में 'मधुशाला' का अंग्रेज़ी अनुवाद The House of Wine के नाम से तैयार हुआ। जब उसके छपने की योजना बनी तो मेरी प्रार्थना पर, पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने उसके लिए फ़ोरवर्ड लिख दिया था।

मेरी अकादमिक योग्यता और अनुभव में कुछ ऐसा न था जिसे विशिष्ट कहा जाय, पर मेरे सर्जक ने, मेरा ऐसा अनुमान है, निश्चय ही, युनिवर्सिटी अधिकारियों का ध्यान विशेष रीति से मेरी ओर आकर्षित किया होगा। मुझे केम्ब्रिज में दो टर्म यानी छह महीने के लिए और उसके बाद आक्सफ़र्ड में तीन टर्म के लिए एडमिशन मिल गया। दोनों जगह सफल होने की मुझे स्वप्न में भी आशा न थी। भय यही था कि कहीं दोनों जगह विफल न होऊँ। कहावत सुनी थी कि भगवान जब देना चाहता है तब छप्पर फाड़कर देता है। किसी ने उस ग़रीब की कल्पना नहीं की जिसे भगवान तो छप्पर फाड़कर दे पर उसके पास दिये हुए को समेटने के लिए झोली ही न हो।

जिस दिन विश्राम तिवारी ने मुझसे दो तीर तरकस में रखकर चलने की बात कही थी, उस दिन अपनी संशयात्मक बुद्धि से, जो मुझमें लड़कपन से मौजूद थी—एक विनोदी प्रवृत्ति बनकर, मैंने उनसे पूछ दिया था, '···लेकिन, पण्डितजी, अगर दोनों तीर ख़ता कर जायें तब ?' पण्डितजी ने फ़ौरन जवाब दिया था, 'तब उसे शिकारी बनने के हौसले को बालाए ताक़ रखकर भैंस चराने के लिए निकल जाना चाहिए।' मैं उनसे पूछना भूल गया था कि अगर दोनों तीर अपने-अपने निशाने पर बैठ जायें तो ? इसी का जवाब मुझे आज चाहिए था। शायद वे कहते कि 'ऐसे सव्यसाची में दोनों शिकारों को साथ लाने की ताक़त भी चाहिए।' तीर तो लग चुके थे, अब ताक़त पैदा करनी थी। ताक़त के मानी यहाँ थे—पैसों का जुगाड़ करना, और इस ताक़त को पैदा करने के लिए मुझे जो डण्ड-बैठकें लगानी पड़ीं, उसने मुझे बड़े कष्टकर मानसिक तनावों में डाला।

बात केवल छह महीने बाहर रहने की योजना से उठी थी। कुछ अधिक आर्थिक प्रबन्ध होने पर कुछ और दिन वहाँ ठहरने का ख़याल आता था तो लगे हाथ योरोप भी देख लेने का, दुबारा कहाँ विदेश जाने का मौक़ा मिलेगा ! एलिज़ाबेथी युग में, कहीं पढ़ा था, किसी युवक की शिक्षा तब तक पूरी न समझी जाती थी, जब तक वह योरोप की यात्रा भी न कर आये। आखिर संस्कार तो अंग्रेज़ी शिक्षा के ही मन पर पड़े थे, फिर अंग्रेज़ी के माध्यम से ही सही, योरोप की सभ्यता, संस्कृति, साहित्य, कला अत्यन्त परिचित लगती थी। उसे अधिक

निकटता से देखने का आकर्षण अस्वाभाविक न था।

अब केम्ब्रिज-आक्सफ़र्ड में रहने के लिए ही पन्द्रह महीने के खर्च की व्यवस्था करनी थी, युनिवर्सिटी से पाँच महीने का अतिरिक्त अवकाश मिल भी सकता तो बग़ैर तनख्वाह के, यानी पाँच महीने घर के ख़र्च का भी प्रबन्ध करना था। लगता था, इतने का इन्तज़ाम कर लेना मेरे लिए नामुमकिन होगा और आख़ीर में अपनी आशा-आकांक्षाओं पर पानी फेरकर बस बैठ जाना पड़ेगा, गो इस स्थिति की कल्पना भी मेरे मन को बहुत उदास कर जाती थी—तुमसे बहुत अधिक योग्यता रखनेवालों को, बरसों की कोशिशों और बड़े-बड़े लोगों की सिफ़ारिशों के बाद भी इन युनिवर्सिटियों में प्रवेश पाने में कठिनाई होती है, और तुम्हें जो यह अवसर अनायास मिल गया है, उसे तुम यों ही हाथ से निकल जाने दोगे! केम्ब्रिज और आक्सफ़र्ड गुड़-भरी हँसिया बनकर मेरे गले में अटक गये थे। गुड़ तो मैंने खाया, पर इसके लिए अपना गला भी कम नहीं चिरवाना पड़ा।

शिष्ट समाज में आमदनी-खर्च की बात करना अशोभन और कुरुचिपूर्ण समझा जाता है, पर मध्यवर्ग का जीवन, व्यवहार, आदर्श, मूल्य, नैतिकता—सब अर्थाधारित हैं, अर्थ-परिचालित हैं। इसलिए अशिष्ट बनने का ख़तरा उठाकर भी मुझे कुछ अपनी आर्थिक स्थिति की चर्चा करनी होगी। उस पर मौन रहूँ तो मुझे जीवन के भी बहुत से प्रसंगों पर मौन रहना होगा। ईमानदारी के मूल्य पर औपचारिक शिष्टता मुझे स्वीकार नहीं।

मेरे जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा ग़रीबी और संघर्ष में बीता था, पर उन्होंने मुझे स्वावलम्बी और किसी हद तक स्वाभिमानी भी बनाया था—मैं जो हूँ, जो बना हूँ, अपने बल पर, अपनी योग्यता से, अपनी मेहनत-मशक़्क़त से। विदेश जाने के लिए ख़र्च इकट्ठा करने की समस्या जब सामने आयी तो पहला विचार यही मन में उठा, इसका हल अपने बल पर ही निकालना चाहिए।

मेरे प्रकाशक बहुत दिनों से मेरी सर्वश्रेष्ठ कविताओं का एक बड़ा संग्रह निकालने का आग्रह कर रहे थे, कविताओं का चुनाव मैंने कर लिया था, नाम भी उसका सोच लिया था—'सोपान'। मैंने उनके सामने यह शर्त रखी कि अगर वे मुझे 5000/= अग्रिम रायल्टी के रूप में दे सकें तो मैं उन्हें पुस्तक प्रकाशित करने की अनुमति दे दूँगा। यह एक नयी बात थी। आज तक मैंने अग्रिम रायल्टी के रूप में उनसे एक पैसा भी न माँगा था। रक़म भी कुछ कम न थी। साल भर में मेरी सारी पुस्तकों पर इसकी लगभग आधी रक़म वे रायल्टी के रूप में मुझे अदा करते थे। 'सोपान' प्रकाशित करने का उनका उत्साह ठण्डा पड़ गया। अग्रिम रायल्टी देने को वे तैयार न हुए; पुस्तक प्रकाशित करने का विचार ही फ़िलहाल उन्होंने स्थगित कर दिया। प्रथम चुम्बने ओष्ठ भंग:।

होठ भंग हो गये थे, पर आशा भंग नहीं हुई थी।

सोचा, हिन्दुस्तान आज़ाद हो गया है। शिक्षा का विस्तार, उद्धार, परिष्कार करने के लिए एक पूरा शिक्षा-मन्त्रालय बन गया है। एक युनिवर्सिटी का शिक्षक विदेश की दो प्रसिद्ध युनिवर्सिटियों से अनुभव-समृद्ध होकर आये तो देश में शिक्षा के क्षेत्र में अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। अपनी सरकार ऐसे आदमी को सहायता देना ही चाहेगी। शिक्षा-मन्त्रालय को मैंने एक प्रार्थनापत्र भेज दिया कि मुझे कोई ऐसी छात्रवृत्ति दी जाय जो मेरे सवा बरस केम्ब्रिज-आक्सफ़र्ड में रहने के लिए पर्याप्त हो। अपने प्रार्थनापत्र में अपने कवि की भी कुछ चर्चा कर दी, सोचकर,

कुछ अपने भोलेपन में, कि मेरे सर्जक का प्रभाव केम्ब्रिज-आक्सफ़र्ड तक पहुँचा है तो क्या दिल्ली तक न पहुँचेगा !

कुछ दिनों तक कोई उत्तर न आया तो तेजी ने ज़िद की कि मैं दिल्ली जाऊँ और व्यक्तिगत रूप से शिक्षा-मन्त्रालय के अधिकारियों से मिलूँ—'द्वारिका जाहु जू, द्वारिका जाहु जू, आठहु जाम यहै जक तेरे।' उन दिनों श्री हुमायूँ कबीर शिक्षा-सचिव थे—मुग़लवंश के राजा और सन्त पन्थ के जोगी के मिले-जुले नाम-वाले व्यक्ति के सम्बन्ध में मेरी एक अजीब-सी कल्पना थी। जिस समय डा. दस्तूर कलकत्ता युनिवर्सिटी में अंग्रेज़ी के लेक्चरर थे, हुमायूँ कबीर उनके शिष्य थे। उनसे एक परिचयपत्र लेकर मैं दिल्ली पहुँचा। सचिव के कमरे में जाकर मैंने कुर्सी पर बैठे एक ठिगने, काले, चौड़ी नाक, चौड़े जबड़े, काली-मोटी कमानी के चश्मेवाले व्यक्ति को देखा—अपनी कल्पना के बिल्कुल विपरीत—यही हुमायूँ कबीर थे, व्यस्त-से दिखते, फुर्तीले। बोले, 'छात्रवृत्ति मिलने की तो कोई सम्भावना नहीं है।' शायद उन्होंने मुझसे बैठने के लिए भी नहीं कहा। उनके व्यवहार से मुझसे अधिक निराश तो डा. दस्तूर हुए। राजनीतिज्ञ ऊँचे पद पर पहुँचकर प्राय: अपने पुराने परिचितों को भुला देता है।

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद शिक्षा-मन्त्री थे, सोचा—दिल्ली आया हूँ तो उनसे भी मिलकर देख लूँ। मेरठ की कमला चौधरी उन दिनों संसद-सदस्या थीं, हिन्दी की कहानी लेखिकाओं में उनका नाम था, उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का एक अनुवाद भी उन्होंने प्रकाशित कराया था, जिसकी पाण्डुलिपि मैंने सुधारी-सँवारी थी, उसकी भूमिका भी लिखी थी। वैसे भी वे मेरी कविताओं की प्रशंसिका थीं और उनके निमन्त्रण पर एकाधिक बार मैं मेरठ के कवि-सम्मेलनों में भाग लेने गया था। उनसे परिचयपत्र लेकर मैं मौलाना साहब से मिला। मौलाना आज़ाद का क्या कहना ! दिव्य-दर्शन थे—तहज़ीब व तमद्दुन व तालीम के गढ़े-छीले मुतकल्लिम (बोलते हुए) पुतले। वहाँ शीन-क़ाफ़ से दुरुस्त आदाब-अलक़ाब तो बकसरत था, पर बवक़्ते-रुख़सत उन्होंने फ़र्मा दिया, 'जो हुमायूँ कबीर ने कहा है, उसी को आख़िरी फ़ैसला समझिए।'

मेरा ध्यान डा. राजेन्द्र प्रसाद की ओर गया—राष्ट्रपति ही थे, क्या नहीं था उनकी ताक़त में ! उनकी स्मरणशक्ति अद्भुत थी। एक बार मुज़फ़्फ़रपुर के सुहृद संघ द्वारा आयोजित कवि-सम्मेलन का मैंने सभापतित्व किया था और राजेन्द्र बाबू उसका उद्घाटन करने आये थे। इतने परिचय के आधार पर, सात-आठ साल बाद जब वे इलाहाबाद युनिवर्सिटी की डायमण्ड जुबली के अवसर पर आये तो उन्होंने मुझे देखते ही पहचान लिया और नाम से बुलाया। मैंने उनके निजी सचिव से उनसे मिलने का समय माँगा तो दूसरे ही दिन मिल गया। राजेन्द्र बाबू शिष्टाचार और विनम्रता की मूर्ति थे। उन्होंने ध्यान और सहानुभूतिपूर्वक मेरी समस्या सुनी। चलते समय उन्होंने कहा कि सम्बद्ध अधिकारियों से पुछवाकर वे मुझे सूचित करायेंगे कि मेरे लिए क्या किया जा सकता है। जहाँ तक मुझे स्मरण है, उनके निजी सचिव का उत्तर आया था कि इस सम्बन्ध में तो शिक्षा-मन्त्रालय ही कुछ सहायता कर सकता है, जहाँ से मुझे एक बार निराशाजनक उत्तर मिल चुका था। प्रजातन्त्र में राष्ट्रपति की शक्ति की भी कुछ सीमाएँ हैं—इसका प्रथम बार आभास हुआ। उन दिनों जो लोग राष्ट्रपति से मिलते थे, दूसरे दिन उनके नाम अखबारों में छप जाते थे। दिल्ली की मेरी उस यात्रा की उपलब्धि केवल यह थी कि दूसरे दिन राष्ट्रपति से मिलनेवालों की सूची में मेरा भी नाम था।

दिल्ली से बहुत हताश और खिन्न लौटा।

तेजी को सुनना पड़ा, बहुत कहती थीं, दिल्ली जाओ, दिल्ली जाओ, लाफर लूट-कर लाया हूँ दिल्ली से !

तेजी ने कहा, 'तुम सही आदमी से मिले ही नहीं। तुम्हें पण्डित जवाहरलाल नेहरू से मिलना था। तुम उन्हें पत्र लिखकर मिलने का समय माँगो, और मेरे कहने से एक बार और दिल्ली जाओ, मेरा मन कहता है, वे तुम्हें निराश नहीं करेंगे। और अगर उन्होंने भी कुछ न किया तो तीन हज़ार का इन्तजाम हम अपने पास से किसी-न-किसी तरह कर लेंगे, तुम ब्रिटिश कौंसिल को लिख दो कि तुमने उसकी दोनों शर्तें पूरी कर ली हैं, अब वह तुम्हें मार्ग-व्यय भेज दे। छह महीने केम्ब्रिज रहकर लौट आओ, आक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी को लिख दो कि किसी कारण तुम वहाँ न जा सकोगे। सपनों को सदा ही वास्तविकताओं से समझौता करना पड़ता है।'

पण्डितजी से मेरे मिलने के अवसर इने-गिने थे।

फिर भी मेरा कवि-रूप कहीं उनकी स्मृति में जमकर बैठ गया था। दो वर्ष पूर्व मेरे केवल एक बार लिखने पर उन्होंने मेरी 'मधुशाला' के अंग्रेज़ी अनुवाद के लिए प्रस्तावना लिख दी थी।

मैंने पत्र द्वारा उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने मुझे दिल्ली बुला लिया। पार्लियामेण्ट हाउस के अपने दफ़्तर में मुझसे मिले। मैंने अपनी समस्या उनके सामने रखी, अपने प्रयत्नों की असफलताओं की कहानी भी सुना दी। उन्होंने बड़े ध्यान और धैर्य से मेरी बातें सुनीं—आधे घण्टे का समय तो उन्होंने दिया होगा मुझे। अन्त में उन्होंने अपने निजी सचिव श्री बी. एन. कौल को बुलवाया और बड़े सहज भाव से उन्हें आदेश दिया कि मेरे लिए 8000/= ब्लाक ग्राण्ट की व्यवस्था करा दी जाय। मैं उनकी उदारता पर अवाक् रह गया। लड़कपन में पढ़ी एक पंक्ति दिमाग में कौंध गयी :

जिसको न दे मौला
उसको दे आसफ़ुद्दौला।

मैं पण्डितजी को धन्यवाद देकर उनसे विदा लूँ कि बज़र आ गया, बोले, 'रुको, मौलाना साहब आ रहे हैं, उनसे मिल लो, तुम्हें तो कुछ देने से उन्होंने इन्कार कर दिया था न !'—कुछ व्यंग्य, कुछ विनोद, कुछ शरारत की-सी मुद्रा में। इतने में मौलाना साहब कमरे में दाखिल हुए। पण्डितजी उनको सम्बोधित करते हुए बोले, 'आइए मौलाना, ये बच्चन साहब हैं, हिन्दी के शायर। अंग्रेज़ी के लेक्चरर इलाहाबाद युनिवर्सिटी में, अपने रिसर्च के सिलसिले में केम्ब्रिज जा रहे हैं'—जैसे इलाहाबाद और केम्ब्रिज से अपने सम्बन्धों के प्रति वे सचेत हों।—और मौलाना साहब ने मुँह खोलकर कहा, 'बड़ी खुशी से जायें, खुशी-खुशी वापस आयें।' मौलाना साहब ने अपने काले चश्मे के पीछे छिपी आँखों से यह ज़ाहिर भी न होने दिया कि अभी दो हफ़्ते पहले मैं उनसे मिल चुका था। इसके पहले कि कोई असमंजस की स्थिति आये, पण्डितजी ने मुझे संकेत किया और मैं उन्हें प्रणाम और मौलाना साहब को सलाम कर विदा हुआ—'बा मुसल्माँ अल्ला-अल्ला, बा बरहमन राम-राम।'

बाहर निकला तो कौल साहब ने मुझे बताया कि रिज़र्व बैंक के कुछ ऐसे

नियम हैं कि 5000/—से अधिक विदेशी मुद्रा मैं बाहर न ले जा सकूँगा, इसलिए अभी वे मुझे केवल 5000/—का चेक दिलाने की व्यवस्था करेंगे, शेष 3000/—वे दो सौ पौण्ड की शक्ल में बाद को हाई कमीशन आफ़ इण्डिया—इण्डिया हाउस—के द्वारा भेजवा देंगे।

दिल्ली से लौटा तो कुछ भारीपन, और कुछ हल्कापन साथ-साथ अनुभव करता—भारीपन, पण्डितजी के प्रति कृतज्ञता के भार से, हल्कापन, एक भारी आर्थिक चिन्ता के दूर हो जाने से।

केम्ब्रिज-आक्सफ़र्ड में प्रवेश पा लेने की सूचना मैंने पहले ही ब्रिटिश कौंसिल को दे दी थी, वहाँ रहने की आर्थिक व्यवस्था कर लेने की सूचना भी दे दी। न जाने क्यों मेरे मन में इस बात का पूरा विश्वास था कि अब तो ब्रिटिश कौंसिल मुझे जाने-आने का खर्च दे ही देगी। यात्रा की तैयारी करने लगा। पासपोर्ट बनवा लिया, युनिवर्सिटी से पन्द्रह महीने की छुट्टी ले ली, जो दस महीने के लिए सवेतन और पाँच महीने के लिए अवेतन मिली। मुझे 15 अप्रैल को केम्ब्रिज में उपस्थित हो जाना था, मध्य मार्च आ पहुँचा था, पर मार्ग-व्यय के सम्बन्ध में ब्रिटिश-कौंसिल की ओर से कोई सूचना न मिली थी। सोचा, ब्रिटिश कौंसिल के दफ़्तर में जाकर उसके सेक्रेटरी से मिलूँ और ठीक स्थिति का पता लगाऊँ। सेक्रेटरी महोदय जब एक बार इलाहाबाद आये थे, शायद वर्ड्सवर्थ की मृत्यु-शताब्दी के अवसर पर, तब उनसे मेरा व्यक्तिगत परिचय हुआ था।

उन दिनों ब्रिटिश कौंसिल का मुख्यालय आगरा में था। सेक्रेटरी मि. फ़िलिप्स से मिलकर मुझे ऐसा लगा कि जैसे मेरा रूप व्यक्तिगत रूप से आकर उनसे मिलना कुछ अनुचित हो। बातें जो टूक हुईं उनका सारांश यह था कि ब्रिटिश कौंसिल द्वारा चुनाव केवल इस बात पर निर्भर न होगा कि किसी को ब्रिटिश युनिवर्सिटी में दाखिला मिल गया है। तुरन्त मेरे मन की प्रतिक्रिया हुई—तो ब्रिटिश युनिवर्सिटी में मेरा दाखिला भी इस आधार पर नहीं हुआ कि ब्रिटिश कौंसिल मार्ग-व्यय देने के लिए मुझे चुनेगी। अर्थात्, मुझे उस हालत में भी इंग्लैण्ड जाने को तैयार रहना चाहिए जबकि ब्रिटिश कौंसिल मुझे मार्ग-व्यय न दे।

इंग्लैण्ड जाने के लिए मैं प्रतिबद्ध हो चुका था। मुझे कटिबद्ध भी होना था। मार्च के अन्त में ब्रिटिश कौंसिल से सूचना आयी कि इंग्लैण्ड भेजने के लिए मुझे नहीं चुना गया है। चुना भी नहीं जा सकता था। इसका रहस्य मुझे बाद को स्पष्ट हुआ, पर प्रसंग उठा है तो बात को यहीं कह दूँ। इंग्लैण्ड जाने के इच्छुक स्वयं हमारे विभाग के अध्यक्ष प्रो. एस. सी. देब थे, प्रयत्न भी कर रहे थे और इसकी खबर कानों-कान उन्होंने किसी को न होने दी। चुना उन्हीं को गया था, गो वे गये कुछ विलम्ब से, अवधि भी इंग्लैण्ड में रहने की उन्होंने कुछ कम करा ली, थोड़े-थोड़े समय के लिए कई युनिवर्सिटियों से सम्बद्ध रहे, विशेषकर लन्दन से, कुछ दिनों के लिए केम्ब्रिज भी आये थे। उनको साथ लेकर मैंने ही उन्हें केम्ब्रिज की खास-खास जगहें दिखलायी थीं, पर वे अपने अध्ययन के आधार पर केम्ब्रिज के बारे में मुझसे कहीं ज़्यादा जानते थे। कुछ अंग्रेज़ी अध्यापकों की कक्षाओं में भी वे दर्शक के रूप में गये थे, गो उनकी शिक्षण-पद्धति से वे अधिक प्रभावित न प्रतीत हुए थे। मैंने उन्हें अपने निर्देशक मि. हेन से भी मिलाया था। अध्यापकों की एक गोष्ठी में, याद है, उन्होंने अपना एक बड़ा उपहासास्पद रूप उपस्थित कर दिया था।

जिस अध्यापक के पास देब साहब बैठे थे, किसी प्रसंग पर चर्चा के बीच उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर बोले, 'फ़लाँ पुस्तक तो आपने पढ़ी होगी।' और उसका कुछ वर्णन भी कर गये।

उसने कहा, 'माफ़ कीजियेगा, मैंने वह पुस्तक नहीं पढ़ी।'

थोड़ी देर बाद उसी को फिर सम्बोधित कर देब साहब ने कहा, 'हाँ, फ़लाँ पुस्तक तो आपने ज़रूर ही देखी होगी, एक समय विद्वानों में उस पर कितनी चर्चा हुई थी—पेरिस में, न्यूयार्क में।'

उसने कहा, 'मुझे अफ़सोस है, मैंने वह पुस्तक नहीं देखी।'

तीसरी बार देब साहब फिर उसी अध्यापक से पूछ बैठे, 'क्या आपने वह किताब नहीं पढ़ी जिस पर फ़लाँ-फ़लाँ कचहरी में मुक़दमा चला था...'

अब तो अध्यापक का धैर्य टूट गया।

उसने अपनी कुर्सी देब साहब की तरफ़ घुमायी और बोला, 'Prof. Deb, could you please tell me what else you do besides reading ?'

(प्रोफेसर देब, क्या आप यह बताने की कृपा करेंगे कि पढ़ने के अलावा आप और क्या करते हैं ?)

उस पार्टी में फिर प्रो. देब ने मुँह न खोला।

ख़ैर, बाद की बात पहले, पहले की बात बाद को, ऐसा तो इस संस्मरण में कई बार होगा। पहले भी हो चुका है। स्मृति की रेखा ज्यामिति की रेखा नहीं है। और अब तक तो शायद मेरे पाठक भी मेरी लेखनी की बहक-मिज़ाजी के अभ्यस्त हो चुके होंगे। इसलिए क्षमा-याचना की आवश्यकता नहीं समझता।

ब्रिटिश कौंसिल के पत्र ने वह आधार ही खींच लिया जिसके ऊपर मैंने विदेश-यात्रा का महल खड़ा किया था। पाँच महीने बग़ैर वेतन के घर चलाने की समस्या थी ही, अब जाने के लिए व्यय के बारे में सोचना था, और लौटने के लिए भी। क्या विदेश जाने का विचार छोड़ दूँ ? आक्सफ़र्ड-केम्ब्रिज को लिख दूँ कि मैं नहीं आ सकता ? पण्डितजी को चेक लौटा दूँ ? युनिवर्सिटी से ली छुट्टी ख़ारिज करा दूँ ? स्थिति बड़ी ही उपहासास्पद लगी। जीवन कभी-कभी हमें लाकर ऐसी जगह पर खड़ा कर देता है कि वहाँ से एक ही निर्णय लेना सम्भव होता है और वह भी तुरन्त। मैंने अपने ख़र्च से ही जाने का निश्चय किया, लौटने के ख़र्च की बात फ़िलहाल दिमाग़ से टाल दी। जो काम मैं स्वेच्छया करने जा रहा था, अब लगा कि वह मैं विवशता से कर रहा हूँ, कर क्या रहा हूँ, कोई मुझसे करा रहा है और अब न मुझमें मुकरने का बल है, न मुकरने का मौक़ा ही है।

दिल्ली से लौटने के बाद से ही मैं एक तरह की भीतरी कमज़ोरी का अनुभव करने लगा था। विदेशी-यात्रा के लिए धन जुटाने में किसी हद तक सफल होने के बावजूद, मुझे लगता था कि जो मैंने पाया है, उसके एवज़ में कुछ अधिक मूल्यवान दे आया हूँ। किसी के सामने कुछ माँगने के लिए जाने में—चाहे अपने लिए हो, चाहे दूसरों के लिए—मैं महाभीरु और संकोची हूँ। ऐसी आवश्यकता जब-जब मेरे सामने आयी है, मैंने जहाँ तक हो सका है, उसे टालने का प्रयत्न किया है—उसके लिए सौ बहाने जानता हूँ, मेरी तबियत ख़राब है, मुझे बहुत ज़रूरी काम है, सम्बद्ध व्यक्ति बाहर गया है, व्यस्त है, उपलब्ध नहीं है, वह मेरी बात क्यों मानने लगा, आदि-आदि। फिर भी ऐसे अवसर आये हैं जब मुझे अपने लिए और दूसरों के लिए भी औरों के सामने जाना पड़ा है। जीवन में मुसीबतों की कमी नहीं रही। लेकिन अगर कोई मुझसे पूछे कि सबसे बड़ी मुसीबतें मैंने कब उठायीं

तो सबसे पहले याद आयेंगे मुझे वे अवसर जब मुझे कुछ माँगने के लिए दूसरों के सामने उपस्थित होना पड़ा है—भले ही वह मेरा और दूसरों का प्राप्तव्य ही क्यों न हो। न जाने क्यों मन में विश्वास है कि मनुष्य का प्राप्तव्य तो उसे स्वयं मिल जाना चाहिए। माँगा तो केवल दाता की दया, कृपा, रियायत, मुलाहज़े पर जाता है। दूसरे तरह की मुसीबतें मुझे चुनौती देती हैं—अपने में जो शक्ति-सामर्थ्य हो, उससे उनका सामना करो। इस मुसीबत के सामने मैंने अपने को सर्वथा निःशक्त और असमर्थ पाया है। निश्चय ही जब-जब ऐसे अवसर आये हैं, मेरा आध सेर खून सूख गया है। 'रहिमन वे नर मर चुके जे कहुँ माँगन जाहिं', यक्ष-प्रश्न के उत्तर में युधिष्ठिर ने भी तो कहा था, 'प्रार्थना विषं'।

पर विष तो अब पी चुका था, लगता था, शायद आगे और भी पीना पड़े। कुछ उपलब्ध करके ही इस विष का निराकरण किया जा सकता था। अगर विदेश जाकर शोध-सामग्री एकत्र कर लाऊँ और देश लौटकर उसके आधार पर डाक्टरेट ले सकूँ तो यही वह उपलब्धि होगी। कुछ इसी मनस्थिति में मैं विदेश जाने के लिए कृत-संकल्प हुआ।

परिवार के बुजुर्गों में उस समय मेरे मामाजी थे, मेरी चाची थीं—गंसी चाचा की पत्नी। सोचा, जाने के पहले उनके आशीर्वाद ले लूँ। मामा वृद्ध थे, एकाकी, निःसन्तान। बोले, 'मैंने तो समझा था, तुम मेरी मिट्टी को पार लगाओगे, कल कुछ भी हो सकता है…।' मैंने कहा, 'दिल छोटा न करें, अभी आप बहुत दिन जियेंगे, मुझे आशीर्वाद दें कि सकुशल लौटकर आपके दर्शन करूँ।' मेरी बात सच ही निकली। मेरे विदेश से लौटने के नौ वर्ष बाद वे संसार से गये और उनकी अन्तिम सेवा का अवसर भी मुझे मिला। अन्त समय में मेरी सेवा का संजोग मेरे परिवार का हर सदस्य अपने भाग्य में लिखाकर लाया था—नानी, मामी, मामा, पिता, माता, बड़ी बहन, छोटे भाई, उनकी पत्नी, श्यामा—अपवादस्वरूप मेरी छोटी बहन थी, जो अपनी ससुराल में मरी। मेरे रिश्तेदारों में यह कहन चल पड़ी है कि 'बच्चन ने जिसकी सेवा की, वह बचा नहीं।' और यह कटु सत्य एक दुःखद स्मृति बनकर जब-तब मुझे शूल की तरह वेधा करता है, गो उसका एक विनोदी पक्ष भी है। मेरी एक रिश्ते की मामी हैं, उन्हें जीवन से बड़ा मोह है। कभी वे बीमार पड़ती हैं तो मैं उन्हें लिखता हूँ कि 'जल्दी अच्छी हो जाइए, नहीं तो मैं आपकी सेवा के लिए आता हूँ।' और मामी मेरी धमकी से फ़ौरन अच्छी हो जाती हैं।

चाची मेरे विदेश जाने के कार्यक्रम के बारे में सुनकर कुछ आश्चर्य, कुछ क्रोध और कुछ शिकायत की मुद्रा बनाकर बोलीं, 'बेटवा, तुम तो कुल में होत आयी सगरी रीत, रसम, रवाज पर हर चलाय दिहे हौ, अब का समुन्दरौ कै जात्रा करबो?' मुझे एक बात सूझी। मैंने कहा, 'चाची, हम तो हवाई-जहाज़ से जाबै और सारी जात्रा में समुन्दर के एकौ बूँद से भेंट न होई।' भोली चाची आश्वस्त हो गयीं और मैं उनके पाँव छूकर चल दिया। चाची असीसती हुई दरवाज़े तक आयीं, 'बहूरानी के सोहाग और बेटवन के भाग से कुसल-छेम से लौटौ…।'

तेजी के साथ तो पंजा पकड़कर पहुँचा पकड़ने की बात हो गयी। आगे तो पहुँचा पकड़कर हाथ पकड़ने की बात होनेवाली थी। मेरा मन साफ़ है : ज़बर्दस्ती मेरी ओर से नहीं हो रही थी, परिस्थिति मुझसे जो करा रही थी उसमें उनका भी पूरा सहयोग था। योजना कौतूहल से आरम्भ हुई थी, पर उसके पूरी होने में उन्होंने मेरी उन्नति, प्रगति, विकास की सम्भावना भी देखी थी और उसके लिए

वे सब प्रकार का दायित्व लेने और सब तरह का त्याग करने को तैयार थीं। फिर भी, जैसे-जैसे मेरे प्रस्थान का दिन निकट आने लगा वैसे-वैसे उनके चेहरे का रंग उतरने लगा और वे खोयी-खोयी-सी रहने लगीं। इसके पीछे कोई आर्थिक चिन्ता न थी—दस महीने युनिवर्सिटी से वेतन मिलने को था ही, फिर किताबों की रायल्टी मिलने का समय आ जाने को था, कोई ख़ास ज़रूरत पड़ने पर बैंक में थोड़ी-बहुत जमा राशि से रुपये निकलवाये जा सकते थे। जाने के पहले ही 3000/= निकलवाने थे, उन दिनों बम्बई से लन्दन तक का हवाई टिकट ही 2000/= से कुछ ऊपर में मिलता था। तेजी के मन की गिरावट के पीछे थी, नारी की सहज दुर्बलता। उनके व्यक्तित्व में अन्तर्निहित पुरुष की ओर मैंने पहले भी संकेत किया है, पर मेरे जीवन में ऐसे भी अवसर आये हैं जिनमें मैंने तेजी का विशुद्ध, सुकुमार, निर्भराकुल नारी-रूप भी देखा है, जैसे कोई इस्पात की सीधी, कड़ी छड़ी किसी जादू से सलज, लचीली लतिका में परिवर्तित हो जाये। एक दिन उन्होंने कह ही दिया, 'इतने दिनों के लिए, इतनी दूर जा रहे हो, बच्चे छोटे-छोटे हैं, पता नहीं कैसी आये-जाये, मैं अकेली अबला-असहाय इस इतने बड़े नगर में···तुम कुछ भी न करो, कहीं मेरे साथ न जाओ, मैं सबकुछ अकेले कर लेती हूँ, पर मेरा सारा बल, सारा साहस तो इसी से आता है कि तुम घर पर बैठे हो···तुम्हारे घर से दूर जाने की कल्पना से ही मैं अपने को बहुत निर्बल-कातर पा रही हूँ।' मैंने उन्हें समझाया, 'तुम यह क्या कह रही हो! मैं तो तुम्हारे बल पर ही विदेश जाने को तैयार हुआ था, अगर तुम इस समय ऐसी दुर्बलता दिखलाओगी तो इंग्लैण्ड में मेरा एक-एक दिन रहना कठिन और कष्टकर हो जायेगा। फिर मेरे प्रस्थान को गम्भीर अथवा अवसादपूर्ण अवसर बनाने का असर बच्चों पर अच्छा न पड़ेगा। तुमसे और बच्चों से अलग होना मेरे मन पर कम भारी नहीं पड़ रहा है, पर हमें कम-से-कम बाहर से प्रसन्न दिखना चाहिए, जिससे बच्चे समझें कि मेरा जाना एक सहज, साधारण-सी घटना है।'

महीने में एकाध बार बकस-बिस्तर लेकर मेरा यात्रा पर जाना और दो-चार दिन बाद लौट आना मेरे बच्चों के लिए हस्ब-मामूल-सा हो गया था। काँगड़ा और कश्मीर की यात्रा, तथा लखनऊ में छोटे भाई की बीमारी के समय मैं एक-एक महीने से अधिक घर से बाहर रहा था। सच कहूँ तो मेरे बच्चे मेरे घर से बाहर जाने का स्वागत करते थे, क्योंकि उन्हें मालूम था कि जब मैं लौटूँगा, उनके लिए तरह-तरह की नयी चीज़ें—मिठाइयाँ, खिलौने आदि लाऊँगा। मेरे छोटे बेटे अजित ने, जिसे घर में हम बण्टी कहते थे, पन्द्रह महीने की अवधि की लम्बाई की कल्पना शायद ही की हो, और उसने मेरे विदेश जाने की बात पर अपनी सहज, स्वाभाविक प्रसन्नता ही व्यक्त की—दो-चार रोज़ बाद मेरे खिलौने-मिठाई लिये-लादे लौटने की तस्वीर आँखों में बसाये, गो बाद को मुझे पता लगा कि मेरी अनुपस्थिति का मानसिक तनाव उसी ने सबसे अधिक गहराई से अनुभव किया। उसके अन्दर एक प्रकार के भय और असुरक्षा की भावना घर कर गयी। वह रातों को सोते-सोते चौंकता-चिल्लाता, दिन को हर समय किसी-न-किसी के साथ रहने की ज़िद करता। उसकी भीति-कुण्ठा दूर करने के लिए तेजी को बड़े सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक उपाय करने पड़े। मैं इंग्लैण्ड से उसे Brave Boy Bunt—बहादुर बेटे बण्टी—करके सम्बोधित करता, जिसका उसके ऊपर अच्छा प्रभाव पड़ा और थोड़े दिनों बाद वह अपने को अपनी माँ और बड़े भाई का संरक्षक समझने लगा। आज तो बण्टी बहुत स्वस्थ, सुगठित और साहसी युवक है और

उसे यह यक़ीन कराना भी कठिन है कि वह बचपन में इतना डरपोक था।

मेरा बड़ा बेटा अमिताभ ज़्यादा समझदार था, साढ़े नौ का हो गया था। उसने अवश्य यह महसूस किया कि मैं एक लम्बे समय के लिए घर से बाहर जा रहा हूँ, पर वह उम्र अदृश्य के प्रति आशंकित होने की नहीं होती। मैं विनोद में उससे कहता कि 'देखो, अब घर में सबसे बड़े मर्द तुम हो, तुम्हें अपनी माँ और छोटे भाई की देख-रेख करनी है', और वह अपने दायित्व, अधिकार और सामर्थ्य का प्रदर्शन-सा करता अपना सिर ऊपर उठाता, अपनी उम्र के औसत लड़कों से वह ज्यादा लम्बा था ही, वह अपने को ऊपर खींच कुछ और लम्बा दिखाने का प्रयत्न करता, कन्धे पीछे कर छाती फुलाता—हूँ'''। और उसकी यह मुद्रा देख हम मुसकरा देते। उसके अन्दर का अभिनेता अपना संकेत देने लगा था, गो उसके भविष्य की हम अभी कल्पना भी नहीं कर सके थे। पर अपने महत्त्व का उसका बाल-गर्व प्रदर्शनमात्र न था। बाद को एकाधिक अवसरों पर उसने अपने दायित्व को सचमुच गम्भीरता से लिया और अपनी जैसी अवस्था के लड़के से अप्रत्याशित विवेक, सूझ-बूझ और कष्ट-सहिष्णुता का सबूत दिया।

तेजी ने इच्छा व्यक्त की कि वे मेरे साथ बम्बई तक जायेंगी और मुझे हवाई जहाज़ में बिठालकर वापस आयेंगी। और यह एक तरह से अच्छा ही हुआ। बम्बई पहुँचकर मैं बीमार पड़ गया और तेजी ने ही मेरे लिए यात्रा का सामान जुटाया : पासपोर्ट पर रुपये जमा कराये, 12 अप्रैल को इण्डिया इण्टरनेशनल हवाई जहाज़ से रवाना होने का टिकट खरीदा।

बम्बई में हम लाला कैलाशपत सिंहानियाँ के यहाँ ठहरे—जे. के. हाउस में। उनसे मेरा परिचय जमुनाप्रसाद सिंह ने कराया था। वे इलाहाबाद युनिवर्सिटी के छात्र थे, उम्र में मुझसे एक साल बड़े; वैसे ही पढ़ाई में एक दर्जे ऊपर, म्योर होस्टल में रहते थे—तन से लहीम-शहीम, बुद्धि से विचक्षण, पान, मधुपान, रस-पान तीनों के सम-शौकीन—रस की रेंज अधर-सुधा-रस से काव्य-कला-रस तक फैली। मेरी कविता के प्रेमी थे, इन्कमटैक्स विभाग में किसी ऊँचे पद पर थे। जहाँ कहीं उनकी पोस्टिंग होती, वे कवि-सम्मेलन कराते और मुझे निमन्त्रित करते। एक साल जब वे बम्बई में थे, उन्होंने जे. के. हाउस में कवि-सम्मेलन कराया था और मुझे बुलाया था। तभी मैं लाला कैलाशपत के सम्पर्क में आया था। उनकी दो पुत्रियाँ मंगला और शंकरा मेरी कविता पर मुग्ध थीं, उन्होंने मुझे अपना धर्म-बन्धु बना लिया था और हर वर्ष रक्षा-बन्धन पर वे मुझे राखी भेजती थीं—वह सम्बन्ध हमारा आज तक बना है।

बम्बई में कैलाशपतजी ने अपने परिवार के डाक्टर से मेरा इलाज कराया। पाँच दिन के बाद भी मैं पूर्णतया ज्वरमुक्त नहीं हुआ, छठे रोज़ मुझे लन्दन के लिए प्रस्थान करना था। लोग डराते, बुखार में अगर मैं लन्दन के हवाई अड्डे पर उतरा तो मुझे 'क्वारण्टीन' में डाल दिया जायेगा—'क्वारण्टीन' शायद फ्रेंच शब्द है, जिसके अर्थ हैं : चालीस—संक्रामक रोग से पीड़ित समुद्री जहाज़ के यात्री को पहले चालीस दिन तक बन्दरगाह से बाहर नहीं जाने दिया जाता था। शब्द अब भी वही प्रचलित है, अवधि कम कर दी गयी है। मैं कहता, 'चलो, उसका भी अनुभव हो जायगा।' मैं अपना प्रस्थान स्थगित करने को तैयार न था। बच्चों को छोड़कर तेजी अधिक दिन बम्बई नहीं रुक सकती थीं, बीमार मुझे छोड़कर वे जाना भी नहीं चाहती थीं। बीमारी की मजबूरी से भी इलाहाबाद लौटने में मुझे बड़ा संकोच था, कितने लोगों ने इलाहाबाद स्टेशन पर

मुझे विदा दी थी, फूल-माला पहनाकर, हाथ, रूमाल हिलाकर, शुभकामनाएँ, शुभाशीष देकर ! —कितना अजीब लगेगा कि सात रोज़ बाद मैं फिर इलाहाबाद लौट जाऊँ ! 'लौटना भी तो कठिन है, चल चुका युग एक जीवन' तो फिर लन्दन के लिए निश्चित तिथि को रवाना हो जाऊँ, शायद रास्ते में अच्छा हो जाऊँ, शायद और ज़्यादा बीमार पड़ जाऊँ—पड़ जाऊँ तो पड़ जाऊँ, जो होना है हो, पर लौटने की उपहासास्पद स्थिति का सामना तो मुझसे न किया जायेगा। तेजी ठीक समय पर मुझे हवाई अड्डे पर लिवा ले गयीं।

अब एक को विदा होना था।

अब एक को विदा देनी थी।—

'यह विदा का नाम ही होता बुरा है,
डूबने लगती तबीयत।'

और मैंने हफ़्ते भर की बीमारी से कमज़ोर शरीर और डूबती तबीयत से बम्बई से लन्दन तक का सफ़र किया। रास्ते में एक क्षण को नींद न आयी। ज़्यादातर वक्त मैं आँख मूँदे कुर्सी पर लेटा रहा—कभी उसके स्मृति-चित्र बनाता जो पीछे छूट गया था और कभी उसके कल्पना-चित्र बनाता जो आगे आनेवाला था। हमारा जहाज़ 12 अप्रैल को दोपहर में बम्बई से रवाना हुआ था और थोड़ी-थोड़ी देर के लिए केअरो और पेरिस में रुकता 13 को सवेरे लन्दन पहुँच गया।

मेरी प्रत्याशा के विपरीत लन्दन के हवाई अड्डे हीथ रो की इमारत न तो बहुत बड़ी थी, न भव्य। भीड़-भाड़ भी कुछ ऐसी न थी। सच कहूँ तो मुझे लन्दन का हवाई अड्डा कुछ सूना-सा लगा। लाउंज में सिर्फ़ हमारे जहाज़ से उतरे यात्री-भर थे। इण्डिया हाउस ने मुझे सूचित किया था कि शिक्षा-विभाग के एक सम्पर्क अधिकारी हवाई अड्डे पर मुझे लेने के लिए पहुँचेंगे, पर वहाँ पर तो कोई न था। लाउंज में लाउड-स्पीकर पर इतनी सूचना मुझे अवश्य दी गयी कि मिस मार्जरी बोल्टन विक्टोरिया टरमिनल पर मेरी प्रतीक्षा कर रही हैं, जहाँ हमें इण्डिया इण्टरनेशनल की बस से पहुँचा दिया जायेगा। मार्जरी को मैंने अपने लन्दन पहुँचने के समय और दिन से सूचित कर दिया था।

कस्टम और मेडिकल अधिकारियों का व्यवहार बहुत शिष्ट और सहानुभूति-पूर्ण था और थोड़ी-सी औपचारिक जाँच-पड़ताल के बाद मुझे बाहर जाने की इजाजत दे दी गयी।

मुझे कुछ पता नहीं कि मेरी बस लन्दन के किस हिस्से से होकर जा रही थी, फिर भी बस की खिड़की से बाहर का जो कुछ भी देखा जा सके, उसे देखता मैं चला जा रहा था। साफ़-सुथरे मकानों, शीशेदार खिड़कियों, फ़ुटपाथों पर आते-जाते गौरांग मर्द-औरतों-बच्चों, और सड़क पर दौड़ती मोटरों, बसों की धुँधली-सी तस्वीर आज भी मेरी आँखों के सामने है। स्वच्छता, समृद्धि, व्यवस्था नगर और नगर-निवासियों में स्वाभाविक-सी लगी। कहीं ऐसे दृश्य देखने की याद नहीं जो अशोभन या अप्रिय हों। सहसा हमारी बस एक इमारत के सामने खड़ी हुई और किसी ने बताया कि हम विक्टोरिया टरमिनल पर पहुँच गये हैं। बाहर इन्तज़ार करते लोगों में नीले रंग के कपड़ों में एक लड़की बस के लोगों में मुझे पहचानने का प्रयत्न करती जल्दी-जल्दी अपने हाथ हिला रही थी। यह मार्जरी थी।

मार्जरी ने कभी अपना फ़ोटो मुझे भेजा था। मुझे उसे पहचानने में कठिनाई

नहीं हुई—औसत क़द की, स्वस्थ बदन की, चेहरा भरा, माथा चौड़ा, आँखें नीली बड़ी-बड़ी, नाक अनुपातत: कुछ छोटी—प्रकृति ने यहाँ कुछ कृपणता न की होती तो मार्जरी की गणना सुन्दरियों में होती। फिर भी, उसका व्यक्तित्व मुझे मनोज्ञ और आकर्षक लगा। वह मुझे देखकर प्रसन्न हुई, मैं उसे देखकर आश्वस्त हुआ, कृतज्ञ भी। वह उन दिनों हेक्सम के किसी कालेज में अध्यापिका थी, और ईस्टर की छुट्टियों में स्टोक्स, अपने घर, अपनी माता के पास न जाकर मुझसे मिलने की ग़रज़ से सीधे लन्दन चली आयी थी, जो वहाँ से काफ़ी दूर था—ट्रेन से पाँच-छह घण्टे की यात्रा करके।

केम्ब्रिज जाने के पूर्व मुझे लन्दन में तीन दिन रुकना था। मेरे ठहरने का इन्तज़ाम इण्डिया हाउस ने गिलफ़र्ड स्ट्रीट पर इण्डियन स्टूडेण्ट्स होस्टल में कर दिया था! मार्जरी ने भी अपने ठहरने का प्रबन्ध पास के एक होटल में कर लिया। लन्दन बहुत बड़ा शहर है और बहुत कुछ वहाँ देखने को है, फिर भी तीन दिन में उसका जो कुछ भी देखा जा सकता था, मार्जरी ने मुझे दिखा दिया—लन्दन युनिवर्सिटी, ब्रिटिश म्यूज़ियम, नेशनल गैलेरी, सेण्ट जेम्स पैलेस, लन्दन म्यूज़ियम, ग्रीन पार्क, बकिंघम पैलेस, सेण्ट जेम्स पार्क, समरसेट हाउस, टेम्पल (कानून-शिक्षण संस्थान), सेण्ट पाल्स केथीड्रल, टावर, टावर-ब्रिज, पार्लियामेण्ट हाउस, वेस्टमिन्स्टर ऐबी वग़ैरह-वग़ैरह। और चौथे रोज़ जब मैं केम्ब्रिज जाने लगा—ट्रेन से, तो वह भी मेरे साथ आयी और जहाँ मुझे ठहरना था, वहाँ छोड़-कर वापस गयी। योरोप के आपाधापी जीवन में किसे फ़ुर्सत है कि किसी दूसरे के लिए इतना कुछ करे! मेरे पास शब्द नहीं थे कि मैं मार्जरी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करूँ।

सौभाग्य या दुर्भाग्य से मैं लन्दन ऐसे समय पहुँचा था, जब वहाँ ईस्टर-छुट्टियों के दिन थे, मौसम साफ़ था, और हालीडे-मेकर्स से लन्दन के फ़ुटपाथ, सड़कें, ट्रेनें, बसें, पार्क, होटल, रेस्ट्राँ, पब, सब खचाखच भरे थे—जगह-जगह ट्रैफ़िक जाम, मीलों लम्बे। प्रयाग की छोटी, ऊँघती-सी, अर्द्ध-ग्रामीण नगरी से मैं लन्दन के यातायात, भीड़-भाड़, चहल-पहल भरे महानगर में पहुँच गया था। आपने किसी देहाती को देखा है जो किसी बड़े शहर में पहली बार आया हो और अपने चारों ओर सबकुछ नये-नये को भौंचक देख रहा हो? मार्जरी ने मुझे उसी रूप में देखा हो तो कोई आश्चर्य नहीं, और मुझे ऐसा पाकर शायद उसकी करुणा भी कहीं जागी हो। उसने अपनी आँखों से मुझे आश्वासन दिया, मैं तुम्हारे साथ रहूँगी, लन्दन में सब जगह घुमा-फिरा-दिखा दूँगी, तुम्हें फ़िक्र करने या घबराने की कोई ज़रूरत नहीं। जैसे बच्चे अपनी माओं का सान्निध्य पाकर निश्चिन्त, क्वचिद् विनोद में, भीड़ में घुसते चले जाते हैं, वैसे ही मैंने मार्जरी को अपने पास पाकर अनुभव किया।

मुझे याद है, सबसे पहले स्टूडेण्ट्स होस्टल के लाउंज में बैठकर उसने मुझे पेंस, टू-पेंस, थ्रू-पेंस, शिलिंग आदि के सिक्के दिखाये और भारतीय सिक्कों में उनका मूल्य समझाया—स्कूली जीवन में पौण्ड, शिलिंग, पेंस के जोड़-बाक़ी बहुत किये थे, पहली बार उन्हें देखा। पौण्ड का सिक्का फिर भी नहीं देखा, उसके तो सिर्फ़ नोट चलते हैं। पेंस को 'बाब' भी कहते हैं, पर उसके बहुवचन का प्रयोग नहीं होता—वन बाब, टू बाब, टू बाब्स नहीं। उसने मुझे लन्दन की ट्यूब ट्रेनों का एक नक़्शा लेकर दिया, अलग-अलग रंगों से दिखायी गयी उनकी अलग-अलग लाइनें समझायीं, उनका स्टेशन पहचनवाया, बिजली से चलती सीढ़ियों पर उतरना-चढ़ना

सिखाया, और वह बहुत कुछ जिसे जानना लन्दन में बिना किसी असुविधा के घूमने-फिरने के लिए ज़रूरी है।

आज भी अनेक ऐसे दृश्य मेरी आँखों के सामने झलक रहे हैं जिनमें मार्जरी मेरा हाथ पकड़कर मुझे सड़क पार करा रही है या सड़क पार करने से रोक रही है या ट्यूब-ट्रेन के डिब्बे में चढ़ा रही है या स्केलेटर से उतार रही है। ऐसे अवसरों पर मैं विनोद में उसे 'ममी' कहता और वह मुझे 'माई ओल्ड चाइल्ड' कहकर मुसकरा देती। आज यह सब लिखते मेरा हृदय एक अजीब-सी वेदना में डूब रहा है कि मैंने कैसी घड़ी में उसे 'ममी' कहा था कि उसके किसी तन-प्रसूत ने उसे कभी 'ममी' न कहा और वह भी किसी को 'माई चाइल्ड' न कह सकी। मार्जरी एकाधिक असफल प्रेम-प्रसंगों से गुज़रकर आज तक अविवाहित है, और अब तो शायद वह विवाह करने का विचार भी छोड़ चुकी है—अपनी तीन मौसियों के समान, जो Spinster ही रह गयीं। (एक बार, Spinster के लिए हिन्दी शब्द मुझे 'कठ-कुमारी' सूझा था, 'कठ-हुज्जती', 'कठ-मुल्ला' की समता पर, ख़ैर।)

इण्डिया हाउस से मुझे जो सहायता मिली, उसे वाजबी-वाजबी ही कह सकते हैं। किसी ने मुझे पहले ही आगाह कर दिया था कि वहाँ से अधिक की प्रत्याशा न करनी चाहिए और मैंने की भी नहीं। जिन लोगों से मैं वहाँ मिला था, उनके चेहरे अब मेरी स्मृति में धुँधले पड़ चुके हैं—एक याद है तो मि. नेस्टर का चेहरा। इंग्लैण्ड जाने के सम्बन्ध में जो पत्र-व्यवहार मुझे इण्डिया हाउस से करना पड़ा था, उसका उत्तर उन्होंने बड़ी तत्परता के साथ दिया था। अधेड़ उम्र के होंगे, लम्बे, शरीर से कुछ भारी और प्रसन्न मुख। वे असिस्टेण्ट एडूकेशन आफ़िसर थे और अपने काम और दायित्व को खूब अच्छी तरह जानते और निभाते थे। नवागन्तुकों की क्या-क्या मुश्किलें हो सकती हैं, उन्हें मालूम थीं, और वे उन्हें दूर करने को जो कुछ भी कर सकते थे, करते थे, कम-से-कम उनके प्रति सचेत कर देते थे। लन्दन से ही उन्होंने केम्ब्रिज में मेरे लिए रहने का स्थान निश्चित कर दिया था और लैण्डलेडी को मेरे पहुँचने की सूचना दे दी थी, केम्ब्रिज में जिन प्रोफ़ेसरों से मुझे मिलना था, उनके नाम परिचयपत्र दे दिये थे और युनिवर्सिटी के जीवन के विषय में भी कुछ मोटी-मोटी बातें बता दी थीं।

मेरा अनुमान है कि वे स्काच थे या वेल्श। इंग्लैण्ड में तीन तरह के अंग्रेज़ हैं—ऐंग्लो-सेक्सन, स्काच और वेल्श। विशुद्ध ऐंग्लो-सैक्सन गम्भीर, चुप्पा, मुदम्मिग़ और आत्म-पर्याप्त होता है, औपचारिकता का पाबन्द, कुछ नफ़ासत भी लिये। स्काच खुली प्रकृति का होता है, अपनी सामान्य बुद्धि का विश्वासी, अपने व्यवहार-बर्ताव में दिखावटी आत्मानुशासन और शिष्टा से दूर, अधिक स्वाभाविक। वेल्श स्काच से बहुत मिलता-जुलता है पर उससे अधिक भावुक होता है—वास्तव में स्काच और वेल्श दोनों केल्ट रेस के हैं—आयरलैण्ड के निवासी भी इसी रेस के हैं—जो अपनी ख्वाब-खयाली, कल्पना और भाव-प्रवणता के लिए प्रसिद्ध हैं। नेस्टर के स्वभाव में निश्चय खुलापन, मिलनसारी और सहृदयता थी। वह जब भी केम्ब्रिज आता, मुझसे मिलता, और मैं भी जब लन्दन जाता, उससे मिले बग़ैर न लौटता। एक बार अपने घर ले जाकर उसने अपनी पत्नी से भी मुझे मिलाया था।

केम्ब्रिज लन्दन से 90 मील उत्तर है, रेल से पहुँचने में डेढ़ घण्टे लगते हैं। जैसे

कोई गहरे पानी में तैरता—घबराया, छिछले पानी में आकर खड़ा हो जाय, वैसे ही मैंने लन्दन से केम्ब्रिज में आकर अनुभव किया। मैं अस्सी लाख आबादी के विराट नगर से अस्सी हज़ार आबादी की लघु नगरी में आ गया था। कम चौड़ी सड़कों, पतली गलियों, कम ऊँचे मकानों, कम यातायात, कम चहल-पहल के केम्ब्रिज में अपने को पाकर मैं मन-ही-मन आश्वस्त हुआ कि यहाँ प्रयाग जैसी लघु नगरी के अभ्यस्त व्यक्ति के लिए अपनी सहेज-सँभाल करना कठिन नहीं होगा।

दो-डेढ़ मील की लम्बाई-चौड़ाई की प्रायः समतल भूमि पर बसे केम्ब्रिज ने प्रथम सम्पर्क में ही मुझे मोह लिया। यों तो सारा केम्ब्रिज ही स्वच्छ और सुन्दर है, पर मन्द-मन्द बहती बड़ी नहर-सी कैम नदी के किनारे-किनारे सदियों पुराने कालेजों की इमारतों के सिलसिले, उन्हें दूसरे किनारे से जोड़नेवाले विभिन्न आकार प्रकार के कई पुल—जिनमें से एक सफ़ेद संगमरमर का है, एक काली लकडी का—नदी पर तैरती रंग-बिरंगी बत्तखें और शंख-श्वेत हंसों के जोड़े, लग्गी से खेई जाती छोटी-छोटी नावें जिन्हें 'पण्ट' कहते हैं, उस पार झुकी शाखाओं से पानी की सतह को सहलानेवाले विलो वृक्षों की क़तारें, उनके पीछे सुनहरे डैफ़ोडिल के खेत और उनकी पृष्ठभूमि में झाड़ियों का हरियाला फैलाव—सब मिलकर एक ऐसा शान्त-स्वप्निल चित्र प्रस्तुत करते हैं कि उन्हें देखते आँखें नहीं अघातीं। और अगर केम्ब्रिज का थोड़ा-सा इतिहास ज्ञात हो तो स्मृति-पटल पर उभरती हैं—उन प्रतिभावानों की आकृतियाँ, जो केम्ब्रिज में विचरीं, जिन्होंने केम्ब्रिज से प्रेरणा ली, जो केम्ब्रिज में पनपीं, फूलीं, फलीं और जिनके अवदान से विज्ञान और साहित्य समृद्ध हुए, सभ्यता और संस्कृति ने प्रगति की—आकृतियाँ न्यूटन, बेकन, डार्विन, स्पेंसर, क्रामवेल, मिल्टन की; मार्लो, ग्रे, थैकरे, वर्ड्सवर्थ, बाइरन, टेनिसन की; अपने देश के रामानुजम, अरविन्द, इक़बाल, सुभाष बोस, जवाहरलाल की। मैंने पहली ही दृष्टि में केम्ब्रिज को समदिक् और ऊर्ध्व, दोनों आयामों में देखा, और उसके प्रति अपनी प्रथम प्रतिक्रिया बतलाना चाहूँ तो यही कहूँगा कि मैं अभिभूत हो गया—उसकी सौम्य सुन्दरता पर मुग्ध, उसकी चमत्कारी देन के प्रति नतमस्तक।

केम्ब्रिज विशुद्ध विश्वविद्यालयी नगर है—उसमें या उसके कुर्ब-जवार में कोई आधुनिक उद्योग-धन्धे नहीं खड़े किये गये और इस प्रकार वह फ़ैक्टरियों और चिमनियों के शोर-गुल और धुन्ध-धुएँ से आज भी बिल्कुल अछूना है। विश्वविद्यालयी नगर आक्सफ़र्ड भी है, पर वहाँ विश्वविद्यालय नगर पर हावी नहीं है, और अब तो उस पर फ़ैक्टरियों-कारखानों ने भी धावा बोल दिया है। आक्सफ़र्ड और केम्ब्रिज की तुलना करते हुए किसी पुराने प्रसिद्ध अंग्रेज़ी निबन्धकार ने कहा था कि 'आक्सफ़र्ड एक सिटी है जिसके बीच एक युनिवर्सिटी बनी है, केम्ब्रिज एक युनिवर्सिटी है जिसके बीच एक सिटी बसी है।' केम्ब्रिज की अस्सी हज़ार की आबादी में दस हज़ार विद्यार्थी हैं, पाँच हजार युनिवर्सिटी से सम्बद्ध अन्य लोग, —प्रोफ़ेसर से पोर्टर तक, शेष उनकी किसी-न-किसी आवश्यकता की पूर्ति करनेवाले कार-धन्धों से सम्बद्ध। केम्ब्रिज की सड़कों पर सबसे ज़्यादा चलनेवाली सवारी है—साइकिलें, जिन पर आते-जाते विद्यार्थियों के झुण्ड के झुण्ड किसी भी समय देखे जा सकते हैं—उनकी पीठ पर काले गाउन हवा से फूले, उड़ते दीर्घकाय चमगादड़ों के समान। प्रोफेसर, जिनके पास मोटरें हैं, वे भी एक कालेज से दूसरे कालेज, एक लेक्चर-हाल से दूसरे लेक्चर-हाल में जाने के लिए साइकिलों का ही

उपयोग करते हैं, केम्ब्रिज के सँकरे रास्तों पर अपनी मोटरें खड़ी कहाँ करें।

मनोरंजन, दिल-बहलाव और खेल-कूद के स्थानों, संस्थानों और संस्थाओं की केम्ब्रिज में कमी नहीं। कई सिनेमा-हाउस हैं, एकाधिक नाचघर हैं, नाट्य-शाला शायद एक ही है, खेलने के मैदान हैं, खुले पार्क हैं, तैरने का तालाब है, पण्टिग, बोटिंग करने के लिए कैम नदी है ही,—विचित्र है कि कैम नदी में मैंने किसी को कभी नहाते या तैरते नहीं देखा—सौ से ऊपर क्लब हैं, विभिन्न रुचियों के, विचित्र रुचियों के भी,—एक तो Night Climbers Club (रात को ऊँची इमारतों पर चढ़नेवालों का क्लब) है, जिसके सदस्य रातों को चोरी-छिपे ऊँची इमारतों, गुम्बदों और मीनारों पर चढ़ते हैं—इतने ही पब्स होंगे, पीने-पिलाने की जगहें, जिनको हम इलाहाबाद की बोली में 'हौली' कहते हैं, आप सम्मानसूचक नाम देना चाहें तो इन्हें पान-शाला या मधुशाला कह सकते हैं। साल में एक-दो बार लगनेवाले मेले-ठेले हैं, जिन्हें 'कार्निवल' कहते हैं, और 'मे-बाल' हैं विशुद्ध विद्यार्थियों के मधुपान और नृत्य-गान के उत्सव, जो मई के महीने में परीक्षाओं के समाप्त होने पर मनाये जाते हैं। फिर भी, केम्ब्रिज के वातावरण में एक गहन गाम्भीर्य की अनुभूति हर समय होती है, कुछ लोगोंने उसे उदासी और कइयों ने उसे मनहूसियत तक कहा है। बाइरन ने केम्ब्रिज के बारे में लिखा था,

Where learning robed in sable reigns and melancholy pale
(जहाँ पीतवर्णी उदासी और कृष्ण वस्त्राभूषित विद्वत्ता का शासन है)

और रुपर्ट ब्रुक ने—

In Cambridge people rarely smile
(केम्ब्रिज में कभी ही कोई मुस्कराता है)।

प्रतियोगिता के लिए खेली जानेवाली मैचों और बोट-रेसों के अभ्यास में आप 'कोच' को—खेल के प्रशिक्षकों को—इस प्रकार डाँटते-डपटते सुन सकते हैं। Don't play at it.(खेल मत करो)। हद हो गयी, खेलो भी गम्भीरता के साथ। पर यह केम्ब्रिज के लिए सच है। वहाँ खेला भी गम्भीरता से जाता है, तो अध्ययन अध्यापन की गम्भीरता का अनुमान आप सहज ही कर सकते हैं।

वास्तव में वहाँ की गम्भीरता के पीछे हैं—वहाँ के अध्यापक और विद्यार्थी। केम्ब्रिज में हर वर्ष लगभग 3000 नये विद्यार्थी लिये जाते हैं, परन्तु केवल मैट्रिक्यूलेशन की परीक्षा पास कर लेना ही, किसी उच्च श्रेणी में भी, वहाँ प्रवेश पाने के लिए पर्याप्त नहीं होता। इसके लिए युनिवर्सिटी की एक प्रतियोगिता परीक्षा में भी बैठना पड़ता है। कोई 30,000 विद्यार्थी बैठते हैं और उनमें से केवल 3000 दाखिलें के लिए चुने जाते हैं। स्पष्ट है कि उनमें बहुत ऊँचे दर्जे की योग्यता होती है और वे कुछ विशिष्ट बनने का आदर्श सामने रखकर आते हैं और उन्हें जो अवसर मिलता है, उसका पूरा लाभ उठाना चाहते हैं। 'फ़ेल' नाम की चीज़ केम्ब्रिज में सहन नहीं की जाती। फ़ेल विद्यार्थी को केम्ब्रिज से निकाल दिया जाता है, जिसे वहाँ की शब्दावली में Sending down (सेण्डिग डाउन) कहते हैं, और किसी विद्यार्थी के लिए इससे बड़े अपमान की बात नहीं सोची जा सकती। जहाँ महत्त्वाकांक्षा का इतना मानसिक तनाव और असफलता का ऐसा घनघोर आतंक हो, वहाँ के वातावरण में गाम्भीर्य न हो तभी आश्चर्य होगा।

और इस गाम्भीर्य को मैंने तो अपने स्वभाव के अनुकूल ही पाया। मैंने अपने स्वभाव की गम्भीरता की ओर पहले भी संकेत किया है। उसे मैं अच्छा तो नहीं समझता, पर मेरे ऊपर कुछ ऐसे संस्कार पड़े, मेरे जीवन में कुछ ऐसी त्रासदियाँ

घटीं, मुझे अपने प्रतिकूल पड़नेवाले बहुत-कुछ से इतनी रगड़-झगड़ करनी पड़ी कि मेरे मन की सहज प्रसन्नता खो गयी। केम्ब्रिज में मैं बिना पर्याप्त आर्थिक साधन के उतर पड़ा था, अपने बीवी-बच्चों से बिछुड़ने का ग़म मुझे था ही, पर उसका केवल भावनात्मक पक्ष न था। मैं अपनी कच्ची गिरिस्ती छोड़कर आया था, और मुझे सात समुन्दर पार अकेले पड़े अपने सुकुमार परिवार की सुविधा, सकुशलता और सुरक्षा की भी चिन्ता थी। इसका तनाव मैंने अपने प्रवास में निरन्तर अनुभव किया।

अभी तो मैं थोड़े में आपको केम्ब्रिज युनिवर्सिटी और उसके कालेजों के इतिहास-विकास और उसके वर्तमान स्वरूप के विषय में बता दूँ। कहते हैं, तेरहवीं सदी के प्रारम्भ में आक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी से कुछ विद्यार्थी, वहाँ से किसी कारण असन्तुष्ट होकर, केम्ब्रिज आये और यहाँ उन्होंने 'स्टूडियम जनरेल' के नाम से एक शिक्षा-केन्द्र की स्थापना की, जिसे शताब्दी के तीसरे दशक के अन्त में युनिवर्सिटी के रूप में राजकीय मान्यता दी गयी। इस बात को आक्सफ़र्डवाले क्वचिद् अभिमान से कहते हैं कि केम्ब्रिज युनिवर्सिटी तो हमारी ही सन्तान है। उधर केम्ब्रिजवालों का दावा है कि ईस्ट ऐंग्लिया के राजा ने सातवीं शताब्दी में ही यहाँ एक स्कूल की स्थापना की थी, जिसमें आक्सफ़र्ड के विद्यार्थी आकर भरती हुए और बाद को उसी को 'स्टूडियम जनरेल' का नाम दिया गया, उसी को केम्ब्रिज युनिवर्सिटी का। सच्चाई तो अतीत के धुन्ध में खो गयी है पर अस्तित्व में आ गयी है— आक्स-फ़र्ड और केम्ब्रिज की प्रतिद्वन्द्विता जो समय-समय पर अनेक विनोदपूर्ण रूपों में प्रकट होती रहती है।

केम्ब्रिज के कालेज केम्ब्रिज युनिवर्सिटी के अविभाज्य अंग हैं। आजकल इनकी संख्या बाईस है—इनमें से सात कालेज चौदहवीं सदी में, चार पन्द्रहवीं में, सात सोलहवीं में और चार उन्नीसवीं सदी में स्थापित हुए थे। पहला कालेज पीटर हाउस था, जो सन् 1284 में स्थापित हुआ था, उन्नीसवीं सदी के कालेजों में गर्टन और न्यूनम, जो क्रमशः 1867 और 1871 में स्थापित हुए थे, लड़कियों के लिए हैं। कालेजों की इमारतें ऐतिहासिक, भव्य और दर्शनीय हैं।

युनिवर्सिटी विभिन्न विषयों में लेक्चरों का प्रबन्ध करती है, परीक्षा लेती है, डिग्री देती है, विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की देख-रेख करती है—फ़ेनर्स नामक संस्था द्वारा—खेल-कूद का इन्तज़ाम कराती है और स्टूडेण्ट्स यूनियन चलाती है। कालेज विद्यार्थियों के आवास और भोजन की व्यवस्था करते हैं, छोटे-छोटे सेमिनारों द्वारा उनके शिक्षण पर वैयक्तिक ध्यान देते हैं और उच्च कोटि के विद्यार्थियों और स्नातकों को अच्छी छात्रवृत्तियाँ देकर युनिवर्सिटी-शिक्षा पाने अथवा विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ बनने में सहायता पहुँचाते हैं। कालेज का प्रमुख 'मास्टर' अथवा 'प्रोबोस्ट' कहलाता है, 'फ़ेलो' उन स्नातकों को कहते हैं जो कालेज की छात्रवृत्ति पर विशेषज्ञता के लिए स्वाध्याय करते हैं, एक निश्चित अवधि समाप्त होने पर उन्हें एक थीसिस भी प्रस्तुत करनी होती है जिसे डाक्टरेट की थीसिस से भी अधिक महत्त्व दिया जाता है। इन्हीं में से कालेज के सेमिनार-टीचर नियुक्त होते हैं। 'स्कालर' उन विद्यार्थियों को कहते हैं जो कालेज की छात्रवृत्ति पर 'ट्राइपास' की परीक्षा की तैयारी करते हैं —'ट्राइपास' तीन बरस का कोर्स —जैसे अपने यहाँ का बी. ए., पर स्तर की दृष्टि से उससे कहीं ऊँचा। 'पेन्शनर' वे विद्यार्थी हैं जो अपने आवास-भोजन-शिक्षण सबके लिए कालेज को फ़ीस देते

हैं। कालेज में विद्यार्थियों के रहने के लिए कमरे होते हैं, एक बड़ा भोजन-भवन होता है जहाँ सब विद्यार्थी-अध्यापक साथ बैठकर खाना खाते हैं, सेमिनार क्लासों के लिए अलग-अलग कक्ष होते हैं, एक अच्छी लाइब्रेरी होती है, विद्यार्थियों और अध्यापकों के उठने-बैठने अथवा संगोष्ठियों के लिए अलग-अलग बड़े कमरे होते हैं जिन्हें काम्बिनेशन रूम और स्टाफ़ रूम कहते हैं और प्रत्येक कालेज में एक गिरजाघर होता है। हमें न भूलना चाहिए कि इन कालेजों की स्थापना शुरू-शुरू में धार्मिक संस्थानों के रूप में हुई थी और कालक्रम में बहुत-सी रूढ़ियों से मुक्त होने के बावजूद, वह परम्परा अब तक चली आती है। कालेजों की इमारतें इस तरह बनी हैं कि उनमें आने-जाने का एक ही फाटक होता है और उससे मिला पोर्टर का कमरा होता है। पोर्टर कालेज सम्बन्धी सारी सूचनाओं का भण्डार होता है और कालेज में किसी से मिलने के लिए उससे सम्पर्क करना आवश्यक होता है। रात में एक निश्चित समय पर कालेज का फाटक बन्द कर दिया जाता है और विद्यार्थियों से प्रत्याशा की जाती है कि उसके पूर्व वे अन्दर आ जायें और फिर बाहर न निकलें। इसके बाद भी कुछ शरारती और दुःसाहसी खिड़कियों से अन्दर आने या बाहर निकलने का प्रयत्न करते हैं और कभी-कभी सफल भी हो जाते हैं।

युनिवर्सिटी के विभिन्न विभागों के प्रोफ़ेसरों, रीडरों, लेक्चररों की नियुक्ति मुख्यतः कालेजों के फ़ेलोशिप-प्राप्त लोगों में से की जाती है, युनिवर्सिटी का वाइस-चांसलर कालेजों के मास्टरों और प्रोवोस्टों में से चुना जाता है। प्राक्टर, जिस पर विद्यार्थियों को अनुशासन में रखने का दायित्व होता है, युनिवर्सिटी की ओर से नियुक्त होता है, पर उसका अधिकारक्षेत्र कालेजों के बाहर होता है, भीतर नहीं। कालेज के अन्दर उसका मास्टर या प्रोवोस्ट वहाँ का सर्वेसर्वा होता है।

युनिवर्सिटी के लेक्चर हाल, परीक्षा भवन, सेनेट हाल, प्रमुख पुस्तकालय, यूनियन हाल, रेजिस्ट्री, विभिन्न फ़ैकल्टियों के दफ़्तर, युनिवर्सिटी-प्रबन्ध सम्बन्धी अन्य कार्यालय कालेजों से अलग हैं। केम्ब्रिज का विद्यार्थी युनिवर्सिटी और कालेज दोनों के सम्पर्क-सान्निध्य से अपने को शिक्षित-दीक्षित करता है। वस्तुत: शिक्षित करने का काम युनिवर्सिटी करती है, दीक्षित करने का काम कालेज करते हैं, अगर आप शिक्षित और दीक्षित दोनों में जो सूक्ष्म अन्तर है, उसे ठीक से समझ सकें। केम्ब्रिज के युनिवर्सिटी और कालेज अपनी-अपनी सत्ता-इयत्ता और कार्य-क्षेत्र के प्रति अलग-अलग सचेत रहते हुए जिस सहयोग, सद्भावना, समझदारी और सुचारुता से केम्ब्रिज के अकादमिक जीवन को परिचालित करते हैं, उसका कोई जोड़ नहीं। आश्चर्य होता है देखकर कि इतनी बड़ी युनिवर्सिटी में शिकायत, असन्तोष अथवा आक्रोश का स्वर शायद ही कभी उठता हो, पक्षपात या अन्याय का आरोप शायद ही कभी लगाया जाता हो। यह कितनी बड़ी बात है कि हर एक को, क्या अध्यापक, क्या विद्यार्थी, क्या अन्य कर्मचारी, सबको यह विश्वास है कि युनिवर्सिटी और कालेज जो कुछ भी करेंगे, वह नियमतः होगा, न्यायपूर्ण होगा।

केम्ब्रिज युनिवर्सिटी के बारे में दो-एक मनोरंजक बातें आपको और बता दूँ, जो मुझे याद आ गयी हैं। केम्ब्रिज-युनिवर्सिटी में हाज़िरी नहीं ली जाती। हाज़िरी वहाँ मानी जाती है केम्ब्रिज में सोने की। आप दिन भर कहीं घूमिए, रात को आकर आप केम्ब्रिज में सो जाइए, आप केम्ब्रिज में हाज़िर माने जायेंगे। कालेज में सोने का गवाह पोर्टर होता है, 'डिग' में सोने की लैण्ड-लेडी। कालेजों में रहने

की जगहें युनिवर्सिटी के सभी विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त नहीं हैं, बहुतों को, जिनमें अधिकतर तीसरे वर्ष के विद्यार्थी अथवा वयस्क शोध-छात्र होते हैं, अलग मकानों में रहना पड़ता है जिन्हें 'डिग' कहते हैं। कुछ डिगें ऐसी हैं जिनमें केवल विद्यार्थी रहते हैं, इनमें रात के लौटने आदि के नियम कालेज के-से ही पाले जाते हैं, कुछ में सामान्य नागरिक भी ठहर सकते हैं। गाउन हमारे यहाँ केवल कान्वोकेशन के दिन पहना जाता है, केम्ब्रिज में अध्यापक-विद्यार्थी प्रतिदिन कक्षाओं में, भोजन के समय, गिरजाघर में गाउन पहने रहते हैं, विद्यार्थियों को रात में कालेजों के बाहर जाने पर भी गाउन पहनना ज़रूरी होता है। न पहनने पर जुर्माना होता है। केम्ब्रिज के कालेजों में बड़े सुन्दर 'लान' हैं, जिन पर चलने का अधिकार केवल 'डान्स'—यानी अध्यापकों को है, विद्यार्थी चलें तो उन पर जुर्माना होता है। अनुशासन-विरुद्ध विद्यार्थियों की कई कार्रवाइयों के लिए जुर्माने तै हैं, पुराने ज़माने में तो उन पर कोड़े पड़ते थे, और कभी-कभी उन्हें कठ-बेड़ी में भी खड़ा होना पड़ता था। किसी विद्यार्थी को किसी अपराध के लिए अगर पुलिस भी पकड़े तो उसे केवल युनिवर्सिटी-प्राक्टर के हवाले कर सकती है, ख़ुद सज़ा नहीं दे सकती, जब तक कि युनिवर्सिटी उसे निष्कासित ही न कर दे।

केम्ब्रिज में मैं जीजस लेन की एक डिग में ठहरा, जो कालेजों से बहुत दूर न थी। मेरे कमरे की खिड़की से ट्रिनिटी कालेज का ह्यूल कोर्ट दिखायी पड़ता था जहाँ पण्डित नेहरू अपने विद्यार्थी-जीवन में रहा करते थे। लैण्डलेडी मिसेज़ मलेटका थी जिसने दूसरे विश्वयुद्ध के समय एक पोलिश शरणार्थी से शादी कर ली थी—मि. मलेटका अगर तीस के होंगे तो मिसेज़ मलेटका साठ की। केम्ब्रिज की लैण्डलेडियाँ 'गोल्ड डिगर' कहलाती हैं क्योंकि वे कम-से-कम सुविधा और घटिया भोजन देकर अधिक-से-अधिक पैसे विद्यार्थियों से वसूलना चाहती हैं। सुनते हैं, कभी केम्ब्रिज में बहुत से यहूदी आकर बसे थे जो अपनी धन-लिप्सा के लिए संसार-भर में कुख्यात हैं। ये लैण्डलेडियाँ उन्हीं की सन्तानें होंगी, मलेटका तो निश्चय थी। केम्ब्रिज के कालेजों में रिहायशी जगहों की तंगी हमेशा से रही होगी और बहुत से विद्यार्थियों को डिगों में रहना पड़ना होगा। कहते हैं, 16वीं सदी में राजा हेनरी अष्टम को केम्ब्रिज की लैण्डालेडियों के विरुद्ध एक फ़रमान भेजना पड़ा था कि वे विद्यार्थियों को परेशान न करें। मलेटका मेरे केम्ब्रिज-प्रवास में ही मर गयी थी, अपनी सारी सम्पत्ति अपनी बेटी के नाम कर गयी थी और मि. मलेटका के लिए झंझी कौड़ी भी न छोड़ी थी। मलेटका एक दिन सड़क पर घूमता मिला तो बोला, Wife has ruined me (बीबी ने मुझे बर्बाद कर दिया!) शायद अंग्रेज़ी क़ानून में पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी तो पत्नी होती है, पर पत्नी की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी पति नहीं हो सकता। मलेटका की डिग में मैं चार महीने रहा, वहाँ केवल विद्यार्थी ही नहीं रहते थे, इंग्लैण्ड और योरोप के और लोग भी वहाँ आकर कई-कई हफ़्ते ठहरते थे, और इस प्रकार वहाँ रहते हुए इग्लैण्ड, जर्मनी और फ़्रांस के कई लड़के, लड़कियों से मेरा परिचय हुआ, मैत्री बढ़ी।

केम्ब्रिज युनिवर्सिटी में मेरे प्रवेश पाने के अर्थ थे कि मुझे visiting fellowship (अतिथि सह-अध्यायक की श्रेणी) मिली थी, जिसके अन्तर्गत मैं युनिवर्सिटी लाइब्रेरी का उपयोग कर सकता था, लेक्चर क्लास में बैठ सकता था, अध्यापकों से समय लेकर मिल सकता था, युनिवर्सिटी के उत्सवों में भाग ले सकता था,

अपनी रुचि के क्लब अथवा क्लबों का सदस्य बन सकता था और दर्शक अथवा श्रोता के रूप में उन सारी जगहों पर जा सकता था जो युनिवर्सिटी विद्यार्थियों के लिए खुली थीं। और मुझे क्या चाहिए था ! फ़ीस, इस सबके लिए प्रति टर्म कुछ देनी थी। ब्रिटिश कौंसिल की ओर से जाता तो मुझे साहित्य-अध्यापन की विधि का विशेष अध्ययन करना होता, पर अब तो ईट्स सम्बन्धी शोध-सामग्री पर ध्यान देना मेरी प्राथमिकता थी। फिर भी, भारत लौटकर तो मुझे अंग्रेज़ी ही पढ़ानी थी, इसलिए अगर समय मिले तो अंग्रेज़ी अध्यापन-विधि का भी मुझे ज्ञान करना था। साथ ही, कवि होने के नाते आधुनिक अंग्रेज़ी कविता के प्रति भी मेरे मन में जिज्ञासा थी, विशेषकर उसके नये प्रयोगों के प्रति, जिनकी अनुगूँज अपने देश में भी सुन पड़ने लगी थी। मैंने इन्हीं तीन दिशाओं में अपनी शक्ति और समय लगाने का निश्चय किया।

अंग्रेज़ी विभाग के अध्यक्ष और पेम्ब्रोक कालेज के फ़ेलो प्रोफ़ेसर बेज़िल विली ने मुझे सलाह दी कि अपने शोध-सम्बन्धी कार्य के लिए मैं सेण्ट कैथरीन्स कालेज के सीनियर ट्यूटर मि. टी. आर. हेन से विशेष सम्पर्क रखूँ क्योंकि केम्ब्रिज में वे ईट्स-साहित्य के विशेषज्ञ माने जाते थे और हाल ही में ईट्स पर उन्होंने एक बड़ी प्रामाणिक पुस्तक प्रकाशित की थी—The Lonely Tower (दि लोनली टावर) यदा-कदा मैं क्राइस्ट कालेज के फ़ेलो मि. ग्राहम हफ़ से भी सलाह-मशविरा कर सकता हूँ। उन्होंने ईट्स पर कोई ख़ास काम तो न किया था पर अपने किसी आलोचना-ग्रन्थ में ईट्स पर एक बड़ा निबन्ध लिखा था जिसमें उन्होंने उनके काव्य पर कुछ मौलिक प्रकाश डाला था। ऐसे ही, आक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी के अंग्रेज़ी विभाग के अध्यक्ष प्रो. सी. एम. बावरा भी अपने केवल एक निबन्ध के कारण ईट्स-साहित्य के मर्मज्ञ माने जाते थे। अंग्रेजी अध्यापन-विधि का अध्ययन करने के लिए प्रो. विली ने राय दी कि मैं उनके, डा. टिलयार्ड, विभाग के रीडर और किंग्स कालेज के फ़ेलो मि. एफ़. एल. लूकस, मि. हेन, मि. हफ़, मि. रेडपाथ, मि. रीलैण्ड तथा कुछ अन्य लेक्चरर्स के क्लास में जाकर बैठूँ—नाम अब सबके मुझे याद नहीं है, उनमें दो लेडी लेक्चरर्स भी थीं। आधुनिक और नयी कविता की विशेष जानकारी के लिए मैं डाउनिंग कालेज के फ़ेलो डा. एफ़. आर. लीविस से मिलूँ, वे केम्ब्रिज में क्या, इंग्लैण्ड भर में नयी कविता के सबसे बड़े पैरोकार माने जाते थे और नयी कविता पर Scrutiny (स्क्रूटिनी) नाम की एक पत्रिका का सम्पादन भी करते थे। उनके नाम और उनकी एक प्रसिद्ध पुस्तक New Bearings in English Poetry (न्यू बेयरिंग्स इन इंगलिश पोयट्री) से मैं भारत में ही परिचित हो चुका था।

तो पहले मैं आपको आधुनिक अंग्रेज़ी कविता से अपने रब्त-ज़ब्त और केम्ब्रिज में अंग्रेजी साहित्य पढ़ाने के तरीक़े से अपनी जानकारी के बारे में कुछ बता दूँ, क्योंकि मेरे ये शग़ल ज़्यादा दिन नहीं चल सके।

डा. लीविस से मिलने पर मैंने उनमें आधुनिक अंग्रेज़ी कविता के प्रति वह उत्साह नहीं देखा, जिसकी मैंने प्रत्याशा की थी। वस्तुत:, पिछले पच्चीस वर्षों में कविता के नाम से जो कुछ भी लिखा गया था, उससे उन्हें बड़ी निराशा थी। टी. एस. इलियट की प्रतिभा के वे अब भी क़ायल थे, पर उनके व्यक्तित्व और कवित्व की कुछ सीमाएँ भी अब वे देखने लगे थे। बुद्धिजीवीवर्ग ने तो उनको

समुचित आदर-मान दिया था पर सामान्य अंग्रेज़ जनता—और वह पढ़ी-लिखी और प्रबुद्ध जनता है—उनको अपने निकट न पा सकी। कारण कई थे। एक तो वे अमरीका-मूलक थे, और देसी-विदेशी का अन्तर अंग्रेज के मन में कहीं बहुत गहरे काम करता रहता है। फिर, उन्होंने कुछ ऐसे मूल्यों के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की थी जिनके प्रति अंग्रेज़ों की आस्था सदियों पहले डिग चुकी थी, जैसे रोमन कैथलिक चर्च और ईसाई नैतिकता, जिसको ख़ासा धक्का दो विश्वयुद्धों के समय लगा था। अंग्रेज़ी राज्य-तन्त्र की उनकी वकालत प्रगतिशील वर्ग को न भायी थी। इलियट का कवि Scholar poet (विद्वान-कवि) था, कविता उनके लिए highest intellectual activity—उच्चतम-बौद्धिक प्रक्रिया—थी और कविता की श्रेष्ठता उनके अनुसार कुछ काव्येतर मान्यताओं और कुछ तकनीकी बारीकियों पर निर्भर थी। मगर अंग्रेज़ मानस में ऐसे जन्मजात कवि की तस्वीर अटकी थी जो युगीन और शाश्वत भावनाओं, आशाओं, आकांक्षाओं, आशंकाओं को वाणी देकर सामान्य जनता के साथ सहज संवाद स्थापित कर सके। ऐसे कवि के लिए एक ललक मैंने लीविस की आँखों में भी पायी थी, गो उनकी दृढ़ धारणा थी कि इलियट के बाद अंग्रेज़ी कविता वही नहीं रह सकेगी, जो उनके पहले थी।

मार्जेरी को जब यह पता लगा कि मैं आधुनिक अंग्रेज़ी कविता में रुचि रखता हूँ तो उसने अपने निजी पुस्तकालय से इलियट के बाद उभरनेवाले प्रमुख कवियों के कोई पचास कविता-संग्रह मेरे लिए भेज दिये, कुछ आधुनिक काव्य-समालोचना की पुस्तकें भी। उनमें स्पेण्डर और आडेन की कृतियों से मैं भारत में भी परिचित हो चुका था नया परिचय एडिथ सिटवेल, मैक्नीस आदि कवियों से हुआ। स्पेण्डर जिस तेज़ी से साम्यवाद-पोषित प्रगतिशीलता की ओर झुके थे, उसी तेज़ी से उससे निराश हो सौन्दर्यवादी हो गये, आडेन में यथार्थ की चेतना और उसके प्रति कटुताहीन व्यंग्य की भावना स्पष्ट थी, पर आडेन अध्यापन का कार्य करने के लिए अमरीका चले गये और उनका कवि धीरे-धीरे दबने लगा। सभी आधुनिक कवियों पर कमोबेश इलियट का प्रभाव देखा जा सकता था। काव्य के पुराने उपकरणों के प्रति सभी का विद्रोह था, पर नयी भाषा, नये मुहावरे, नये प्रतीकों को वांछित गरिमा कम ही लोग दे पाये थे। अत्याधुनिक कवि अपनी अद्भुत अनुभूतियों—जो प्रायः अपने अवचेतन के प्रति अधिक सचेत होने से जागी थीं—और एकदम वैयक्तिक अभिव्यक्तियों के कारण किसी वर्ग के पाठक के साथ अपना संवाद न स्थापित कर पाते थे। विचित्र है कि जिन दो कवियों को सामान्य अंग्रेज़ जनता अपने निकट पाती थी, वे थे—रुपर्ट ब्रुक और डिलन टामस। रुपर्ट ब्रुक के काव्य के ताने-बाने में राष्ट्रीयता का एक प्रबल सूत्र है। महायुद्ध के समय ऐसी कविता के लोकप्रिय होने का कारण सहज ही समझा जा सकता है, पर युद्ध के समय जनता ऐसी तटस्थ मनस्थिति में नहीं होती कि काव्य के गुणों का सही मूल्यांकन कर सके। सम्भव है, युद्ध के दूर पड़ जाने पर उनके प्रति जन-रुचि बदल गयी हो, पर डिलन टामस की जन-मान्यता के कारणों पर कुछ विचार करना होगा। उन्होंने भी बहुत कुछ नये को अपनाया था, पर पुराने में जो स्वस्थ था, उसका बहिष्कार न किया था। उनकी अनुभूतियों में वैयक्तिकता है, पर वे उसे जिस गहराई तक ले जाते हैं, वहाँ दूसरे भी अपना कुछ पाते हैं। अपनी अभिव्यक्ति में वे कला अथवा तकनीक का बड़ा संयत उपयोग करते हैं—बस उतना ही, जितना पाठक के लिए भारी न पड़े। वे अपनी कविता में विद्वत्ता से अधिक मानवता को प्रक्षिप्त करते हैं। एक चौथी बात, विज्ञान की अधुनातनता, अद्यतनता

से कविता होड़ नहीं ले सकती, न उसे लेना चाहिए, उसकी गरिमा समय से कुछ पीछे रहने में है या फिर समय से बहुत आगे रहने में। डिलन टामस इस रहस्य को जानते हैं। मेरी ऐसी धारणा है कि अंग्रेज़ जन-मानस जिस प्रकार के कवि की कल्पना अपने अन्दर बसाये है, उसे डिलन टामस का ही कोई विकसित रूप साकार कर सकता है।

उस समय आधुनिक अंग्रेज़ी कविता के सम्बन्ध में मैं कुछ ऐसे ही परिणामों पर पहुँचा था। लीविस से तो मैं दुबारा मिला भी नहीं, पर केम्ब्रिज के और भी विद्वानों और विचारकों से जब कभी मेरी बातचीत हुई, मैंने उन्हें वर्तमान कविता से असन्तुष्ट और कविता के भविष्य के बारे में निराश पाया।

केम्ब्रिज युनिवर्सिटी एकमात्र 'ट्राइपास' परीक्षा के लिए विद्यार्थियों को तैयार करती है, पास करने पर विद्यार्थी अपने नाम के आगे बी. ए. लगा सकता है। एम. ए. नाम का कोई पाठ्यक्रम या परीक्षा नहीं है। ट्राइपास पास करने पर एक निश्चित अवधि के बाद कुछ फ़ीस देकर आदमी एम. ए. की डिग्री, अगर चाहे तो, ले सकता है। कहने का मतलब है; 'ट्राइपास' कोर्स के अन्तर्गत जो उच्चतम शिक्षा किसी विषय की आवश्यक है, वह युनिवर्सिटी दे देती है। ट्राइपास के अंग्रेज़ी साहित्य के पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में मेरी जिज्ञासा थी। प्रत्याशा मेरी यह थी कि अंग्रेज़ी जहाँ की भाषा है, वहाँ तो साहित्य की नवीनतम उपलब्धियाँ—या उनमें जो उच्चकोटि का होगा, वह कोर्स में होगा ही। मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि साहित्य के कोर्स में कोई ऐसी पुस्तक न थी जो 40-50 वर्ष पहले प्रकाशित न हुई हो। अन्तिम कवि जो कोर्स में था, वह था—मेथ्यू आरनल्ड, जिसकी मृत्यु 19वीं सदी के अन्त में हुई थी। ईट्स, इलियट, गल्ज़वर्दी, शा को हम अपनी युनिवर्सिटियों में कोर्स में लगाये हैं, वहाँ इनमें से कोई कोर्स में न था। जो 'नवीनतम' उपन्यास कोर्स में लगा था, वह था—डी. एच. लारेंस का Sons and Lovers (संज़ ऐण्ड लवर्स) जो 1913 में प्रकाशित हुआ था। चर्चा हम 1954 के कोर्स की कर रहे हैं। और, अपने यहाँ के हिन्दी पाठ्यक्रमों की यह स्थिति है कि कवि जी तो साइकिल पर सड़क पर चले जा रहे हैं, और क्लास में उनकी कविता पढ़ाई जा रही है। मैं शायद एक व्यंग्य-चित्र प्रस्तुत करने के मोह में कुछ अतिशयोक्ति कर गया, पर मैं युनिवर्सिटी में लगे एक ऐसे संकलन के विषय में जानता हूँ, जिसमें जिन कवि जी की कविताएँ सम्मिलित थीं, वही 'प्रोफ़ेसर' के रूप में उन कविताओं को पढ़ाते भी थे।

ऐसा नहीं है कि केम्ब्रिज में युगीन अथवा नवीन साहित्य को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। उसे पुस्तकालयों में सँजोया जाता है, लोग उसे पढ़ते हैं, उसकी चर्चा करते हैं, उसकी आलोचना-प्रत्यालोचना होती है, उस पर लेख अथवा पुस्तकें लिखी जाती हैं, पर कोई साहित्य पाठ्य-क्रमों में स्थान तभी पाता है, जब वह अंग्रेज़ी समाज अथवा जीवन में कोई स्थान बना लेता है। वहाँ साहित्य एक स्वस्थ वृक्ष के समान जब जीवन में, समाज में अपनी जड़ें गहरे जमा लेता है, तब अपनी शाखाएँ, अपने फूल-फल युनिवर्सिटी की छतों तक पहुँचाता है। यहाँ हम युनिवर्सिटी की छतों पर उसकी जड़ों को जमाने का प्रयत्न कर उसकी शाखाओं को, फल-फूल को समाज की धरती तक उतारने का प्रयत्न करते हैं। लगता है, 'ऊर्ध्वमूलमधः शाखम्' का पाठ हमने बहुत ध्यान से पढ़ा है। हम ज़रा सोचें कि हम कितने सफल हुए हैं! अंग्रेज़ी समालोचना बहुत पैनी है, वह किसी रचना के गुण-दोष को बड़ी

जल्दी ताड़ लेती है, फिर भी वह समय को सबसे बड़ा समालोचक मानती है। साहित्य का सबसे बड़ा गुण है, जीवन्तता। उसे जीना चाहिए, अपने बल पर जीना चाहिए। जो समय में नहीं ठहरता, वह दुर्बल था, निष्प्राण था। उसे स्वाभाविक गति से मरने देना चाहिए, हम कहाँ तक मुर्दे ढोयेंगे, ढुलायेंगे। अंग्रेज़ी साहित्य से परिचित जानते हैं कि बहुत से लेखक, कवि किसी समय बहुत बड़े लगे थे, बहुत पढ़े गये थे—मुझे जान मूर, मैरी कोरेली याद आ गये हैं—समय में नहीं ठहरे, युनिवर्सिटियों में कभी कोर्स में नहीं लगे। केम्ब्रिज के एक वयोवृद्ध प्रोफ़ेसर ने मुझसे कहा था कि प्रौढ़ समालोचना का काम ही यह है कि वह साहित्य की जीवन्तता—उसके समय में ठहरने के कारणों का विश्लेषण करे। इसी से साहित्य और समाज को जोड़नेवाली बहुत-सी सूक्ष्म गाँठें खुलती हैं। बहरहाल, आज से बीस-पच्चीस वर्ष पहले केम्ब्रिज म बीसवीं सदी का साहित्य पाठ्यक्रमेतर (Extra Mural) व्याख्यानों का विषय तो था, पर पाठ्यक्रम में नहीं। यह (Extra Mural) शब्द ही बड़ा व्यंजक है। इसके अर्थ हैं बाहरी दीवार—यानी जो बाहरी दीवार पर हो, लेकिन जिसे कमरे में प्रवेश न मिला हो।

कक्षाओं में जो व्याख्यान होते थे, वे प्रायः लिखित होते थे—वक्ता और श्रोता दोनों के लिए इसके जो लाभ हैं, उनकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। हम तो अपने यहाँ लेक्चर झाड़ते हैं। व्याख्यान के बीच कोई प्रश्न नहीं उठाये जाते थे, विद्यार्थी प्रायः नोट लेते थे। सप्ताह में एक बार Discussion Class (प्रश्नोत्तर कक्षा) होते थे और विद्यार्थियों के प्रश्नों का उत्तर दिया जाता था। ठीक तरह का प्रश्न उठाने के लिए भी कम योग्यता नहीं चाहिए।

व्याख्यान-कक्षाओं की पूरक होती थीं सेमिनार-कक्षाएँ, जो युनिवर्सिटी की ओर से नहीं, कालेजों की ओर से आयोजित होती थीं—अब तक कालेज और युनिवर्सिटी का अन्तर तो आपको स्पष्ट हो गया होगा। मैं कुछ सेमिनारों में भी जाकर बैठा। लेक्चर क्लास में तो तीन-चार सौ विद्यार्थी भी बैठ सकते थे, सेमिनारों में तीन-चार। यहाँ विद्यार्थी अध्यापक के अधिक निकट सम्पर्क में आता था, वह अपनी व्यक्तिगत शंकाएँ अध्यापक के सामने रख सकता था और उनका समाधान पाता था। विद्यार्थी लिखित रूप में भी अपना बहुत-सा काम अध्यापक को दिखाते थे, और वह उसका यथोचित संशोधन करता था। पर सेमिनार में अध्यापक जो सबसे महत्त्वपूर्ण काम करता था, वह था, विद्यार्थियों के पाठ्यक्रमेतर स्वाध्याय को निर्देशित करना—उनकी योग्यता, रुचि, आवश्यकता को जाँच-परख कर। बिना इसके विद्यार्थी पुस्तकों के अरण्य में खो सकता था, जैसे मैं स्वयं अपने विद्यार्थी-जीवन में खो गया था। युनिवर्सिटी का बड़ा पुस्तकालय है ही, पर नगर के, कालेजों के—कभी तो एक में एक से अधिक—अध्यापकों के निजी, इतने पुस्तकालय हैं कि ऐसा मैंने कभी नहीं देखा कि कोई विद्यार्थी कोई पुस्तक पढ़ना चाहता हो और वह उसे प्राप्य न हो। केम्ब्रिज में पुस्तकों की दूकानें भी इसको बुरा नहीं मानतीं, उल्टे इसको प्रोत्साहन देती हैं कि अगर कोई विद्यार्थी कोई किताब खरीदने में असमर्थ हो तो वहीं खड़े-खड़े पढ़े, नोट ले, चाहे घण्टों—हाँ, किताबों को मैली न करे।

जब मैं केम्ब्रिज गया, युनिवर्सिटी-स्तर पर अंग्रेज़ी साहित्य पढ़ने-पढ़ाने का मेरा अनुभव 25 वर्ष का था। पर साहित्य की जो गहरी समझ, उसके प्रति जो व्यापक दृष्टिकोण मैंने वहाँ के अध्यापकों के व्याख्यानों में पाया, वह एक नयी चीज़ थी। हम बहुत प्रयत्न करके भी उसका आयात अपने देश में नहीं कर सकते,

क्योंकि अंग्रेज़ी जिस प्रकार अंग्रेज़ी-जीवन से जुड़ी है, उस प्रकार हमारे जीवन से न जुड़ी है, न जुड़ सकती है। हाँ, अपनी भाषा, अपना साहित्य पढ़ाने में हम उससे प्रेरणा ले सकते हैं, उससे लाभान्वित हो सकते हैं। वहाँ साहित्य, चाहे वह कितनी ही बड़ी प्रतिभा की देन क्यों न हो, समाज की उपज माना जाता है, ऐतिहासिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक, आर्थिक परिस्थितियों की उपज, क्योंकि प्रतिभा अपनी विशिष्टता के प्रति सचेत होकर भी इनसे अप्रभावित नहीं रह सकती। इसलिए, साहित्य-शिक्षण में उसकी उस पृष्ठभूमि को समझने-समझाने पर पर्याप्त बल दिया जाता है। फिर साहित्य समाज की अकेली अभिव्यक्ति नहीं। किसी भी युग के स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत में जो सूक्ष्म एकसूत्रता होती है, उसे भी देखने-दिखाने का प्रयत्न किया जाता है, साथ ही कलाओं में साहित्य के उस अतिरिक्त गुण को भी, जिसे उसकी वर्धमानता कह सकते हैं। यानी जीवन्त साहित्यिक कृतियों में समय का एक आयाम जुड़ता चलता है, जिससे उनका महत्त्व और अर्थ बदलता रहता है। अध्यापकों में अगर कल्पनाप्रवणता और अन्तर्भेदी दृष्टि हो—और केम्ब्रिज में यह मैंने बहुतों में देखी—तो वह पुराने और घिसे-पिटे पाठ्यक्रम को भी बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत कर सकते हैं। मुझे एक वयोवृद्ध अध्यापक का 'रोमियो-जूलियट' पर दिया गया व्याख्यान याद आता है, जिसमें उसने यह दिखाने का प्रयत्न किया था कि जैसे शेक्सपियर को उस भावनात्मक समस्या का पूर्वाभास था, जो विश्वयुद्ध के पश्चात योरोपीय समाज में उठेगी। पुराना साहित्य इसीलिए नहीं पढ़ाया जाता कि उसका ऐतिहासिक महत्त्व है, बल्कि इसलिए भी कि किसी अंश में वह आधुनिक परिस्थितियों-परिवेश से जुड़ा है और युगीन और नवीन को बड़े या महान की संज्ञा तभी दी जाती है, जब वह किसी रूप में अपनी गौरवमयी परम्परा से सम्बद्ध हो।

अंग्रेज़ी साहित्य की धारा को प्रायः एक और बड़े प्रवाह के अंग के रूप में देखा जाता है—जिसे योरोपीय कह सकते हैं। योरोप अपनी अनेकरूपी विविधताओं के बावजूद एक इकाई है—ऐसी इकाई संसार में किसी भी महाद्वीप को नहीं मिली, न एशिया को, न अमरीका को, न अफ्रीका को, आस्ट्रेलिया को शायद कभी सुदूर भविष्य में मिल जाये। यूनानियों की मानववादिता, रोमनों की विधि-व्यवस्था, ईसाइयत का धर्म, विज्ञान का उत्कर्ष, और मशीनी उद्योगों का विकास और विस्तार—इन सबों ने पूरे योरोप को प्रभावित किया है और एक ख़ास नमूने में ढाला है। योरोपीय सभ्यता, संस्कृति के समान योरोपीय साहित्य भी एक अलग इकाई है। अंग्रेज़ी साहित्य को, कहना चाहिए किसी भी योरोपीय भाषा के साहित्य को, तभी सम्यक रूप से समझा जा सकता है, जब उसे योरोपीय साहित्य के बीच में रखकर देखा-परखा जाये। मुझे यह देखकर आश्चर्य नहीं हुआ कि केम्ब्रिज में अंग्रेजी साहित्य के बिना किसी अपवाद के, दो-तीन अन्य योरोपीय भाषाओं और साहित्यों के ज्ञाता थे।

मैं फिर कहना चाहूँगा कि भारत के अंग्रेज़ी अध्यापकों को इंग्लैण्ड भेजकर अगर यह दिखाना है कि वहाँ अंग्रेज़ी कैसे पढ़ाई जाती है और यह सिखाना है कि वे लौटकर उसी तरह से भारत में अंग्रेज़ी पढ़ायें तो ब्रिटिश कौन्सिल बड़े भ्रम में है। वह अपने उद्देश्य में कभी सफल न होगी। जो सीखा जा सकता है, वह यह है कि हम अपने देश में अपना साहित्य किस तरह पढ़ायें। मुझे हिन्दी पढ़ानी होती तो उसके तरीके में कुछ सुधार कर सकता था। पर मुझे हिन्दी पढ़ानी नहीं, और

हिन्दी पढ़ानेवाले अंग्रेजी पढ़ानेवाले से नये सुझावों का सबक़ क्यों सीखने लगे ! चलिए, बात ख़त्म हुई।

अपने शोध-कार्य के सम्बन्ध में मैं मि. हेन से मिला। वे युनिवर्सिटी में अंग्रेजी के लेक्चरर थे और सेण्ट कैथरीन्स कालेज के फ़ेलो और सीनियर ट्यूटर। हेन ऊँचे क़द, भरे शरीर, भारी सिर, छोटी-नीली, पर दूर-भेदी आँखों और घनी-भूरी मूँछों से मुझे दबंग व्यक्ति लगे—पिछले महायुद्ध में पूरे छह वर्ष उन्होंने फ़ौजी के रूप में काम किया था और लड़ाई जब रुकी थी, वे ब्रिगेडियर के पद तक पहुँच गये थे। पहले-पहल उन्हें देखकर कोई भी एक बार दहशत में आ सकता था—आवाज़ भी उनकी भारी, ठहरी-सी और कहीं गहरे से आती प्रतीत होती थी—कूप-गिरा-गम्भीर। पर यह उनका बाहरी रूप था। स्वभाव से वे कोमल और किसी हद तक भावुक भी थे, वास्तव में वे आइरिश थे—केल्ट रेस के, आयरलैण्ड के एक बड़े सम्भ्रान्त परिवार के—उनके पितामह आइरिश कचहरी में जज रह चुके थे, पिता मजिस्ट्रेट, पर उन्होंने किसी कारण ब्रिटिश नेशनैलिटी ले ली थी। उम्र उनकी पचास से कुछ ऊपर थी, पर लगते थे लगभग साठ के।

हेन अपने विद्यार्थी-जीवन में बड़े कुशाग्र थे और उन्होंने अपनी सारी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में पास की थीं। केम्ब्रिज स ट्राइपास करने के बाद उन्होंने बर्मा शेल में नौकरी कर ली थी और उस सिलसिले में दो-तीन वर्ष भारत में भी रहे थे। सेन्ट कैथरीन्स कालेज की फ़ेलोशिप मिलने पर उन्होंने अपनी नौकरी छोड़ दी थी और तब से बराबर केम्ब्रिज में अध्ययन और अध्यापन का काम करते आ रहे थे। फ़ेलोशिप के काल में उन्होंने ईट्स को अपने विशेष स्वाध्याय का विषय बनाया था। विद्यार्थी-जीवन से ही उन्हें ईट्स की रचनाओं में रुचि थी। ईट्स से तो उनका पारिवारिक सम्बन्ध था, वे उनसे कई बार मिले थे, उनका ईट्स के साथ पत्र-व्यवहार भी था। अपनी परिस्थिति, योग्यता, रुचि सभी से हेन ईट्स और उनकी रचनाओं को समझने के विशेष अधिकारी थे। आश्चर्य नहीं कि ईट्स पर लिखी उनकी पुस्तक को ईट्स के आलोचना-साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान दिया जाता है। जिस समय मैं उनसे मिला, उस समय भी ईट्स-साहित्य पर मनन-चिन्तन की अनेक मौलिक योजनाएँ उनके दिमाग में थीं। वे ईट्स को बहुत बड़ा कवि मानते थे—मिल्टन नहीं तो, वर्ड्सवर्थ के बाद अंग्रेज़ी का सबसे बड़ा कवि, और उनकी धारणा थी कि ईट्स के साहित्य का अध्ययन अभी कई दिशाओं में और कई दृष्टियों से होना बाक़ी है।

जब उन्होंने मुझसे पूछा कि 'आप ईट्स के किस पक्ष पर काम करना चाहेंगे?' तो मैंने कहा कि मेरे दिमाग़ में तो यह विषय है—'ईट्स पर भारतीय दर्शन और दन्तकथा का प्रभाव।' उनकी राय थी कि यह एकाध निबन्ध का विषय तो हो सकता है, पर शोध-प्रबन्ध का विषय नहीं। साथ ही, उन्होंने माना कि यह ईट्स के चिन्तन-मनन की दिशा थी और उसने किसी अंश में उन्हें प्रभावित भी किया था, पर ईट्स के चिन्तन-मनन की दिशाएँ और भी थीं, उनका मस्तिष्क बहुत जिज्ञासु और बड़ा ग्रहणशील था, और सभी से उन्होंने कुछ न कुछ लिया था, लेकिन उधार के रूप में नहीं, उसे अपनी प्रतिभा की आँच मे गलाकर, ढालकर, किसी अभिनव रूप में। हेन का विचार था, उसके विश्लेषण के लिए गहन अध्ययन, अन्तर्भेदी दृष्टि और सूक्ष्म कल्पना अपेक्षित है, फिर भी अपनी पकड़ और पहुँच की सीमा में जो मैंने जाना-समझा था, उसकी परख उन्होंने करनी चाही।

पहली बार जब मैंने हेन से मिलने का समय माँगा तो उन्होंने मुझे कालेज में खाने पर बुला लिया, खाना सात बजे शाम को होने को था। और खाने के पहले, खाने के दरमियान, खाने के बाद आधी रात तक वे मुझसे ईट्स के विषय में बात करते रहे, पूछते रहे और जब मैं उनसे विदा हुआ तो मुझे ऐसा लगा कि जैसे मैं ईट्स के सम्बन्ध में जो कुछ भी जानता था, जो कुछ भी मैंने सोचा था, जो कुछ भी सोच सकता था—सबका सब उनके सामने उँड़ेल आया। बहुत बाद को एक दिन उन्होंने मुझे बताया था, 'वह तुम्हारा पहला 'वायवा' (मौखिक परीक्षा) था। जब मेरे पास कोई शोधाकांक्षी आता है तो मैं यह देखने का प्रयत्न करता हूँ कि वह शोध करने का अधिकारी है कि नहीं, उसके पास शोध करनेवाला मस्तिष्क है कि नहीं? इसके लिए केवल अकादमिक योग्यता अथवा स्वाध्याय पर्याप्त नहीं, कुछ और भी चाहिए। शोध के लिए एक खास तरह का दिमाग़ चाहिए, जिसमें याददाश्त का वह माद्दा हो जो अक्सर दूर पड़ी चीजों में सम्बन्ध बिठा सके, जो ऐसे तथ्यों अथवा तत्वों की खोज कर सके, उनको पकड़ सके जो नये सत्य का संकेत करते हों। वास्तव में शोध-कार्य आरम्भ कराने के पहले निर्देशक को स्वयं एक शोध-कार्य करना पड़ता है, करना चाहिए, और वह है शोधक की शोध या खोज। अगर अधिकारी शोधक मिल गया तो शोध का आधा काम समाप्त समझो।' मैंने कहीं पढ़ा था कि प्राचीन काल में नालन्दा के विश्वविद्यालय के फाटक पर दरबान की जगह पर एक महापण्डित बैठा रहता था और जब कोई विद्यार्थी वहाँ पढ़ने के लिए आना चाहता था, तब उसे उस दरबान से प्रश्नोत्तर करना पड़ता था। यदि वह उसकी क्षमता से सन्तुष्ट होता था तो उसे अन्दर प्रवेश करने देता था, वर्ना वहीं से लौटा देता था। उस रात हेन को मैंने नालन्दा के महापण्डित के रूप में ही देखा।

जब मैं चलने लगा तो हेन ने मुझे एक आलमारी दिखलायी जिसमें ईट्स का और ईट्स पर जितना भी साहित्य उपलब्ध था, सब लगा था। पत्र-पत्रिकाओं में ईट्स पर जो अच्छे लेखादि निकले थे, वे भी टाइप कराके रखे हुए थे, एक पूरी फ़ाइल ईट्स के साथ हेन के पत्र-व्यवहार की थी। यह सारी सामग्री हेन ने स्वयं अपनी पुस्तक लिखते समय जुटाई थी, जो दो ही वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई थी। उन्होंने मुझसे कहा, 'तुम प्रतिदिन दो बजे से छह बजे तक मेरे कमरे में बैठकर इन पुस्तकों को पढ़ सकते हो, किसी पुस्तक को ले जाना चाहो तो ले भी जा सकते हो। पहला काम तो यह करो कि ईट्स-रचित और ईट्स पर जितना भी आलोचनात्मक साहित्य प्रकाशित हो चुका है, सबको पढ़ जाओ, सब तुम्हें यहाँ मिलेगा, यहाँ न मिला तो युनिवर्सिटी लाइब्रेरी में मिलेगा, कुछ बहुमूल्य दुर्लभ सामग्री ब्रिटिश म्यूज़ियम के पुस्तकालय में मिलेगी। अभी तो तुम इसी बात को नोट करने का प्रयत्न करो कि ईट्स की बौद्धिक जिज्ञासाएँ किस-किस दिशा में थीं।' आख़ीर में उन्होंने एक बात जोड़ दी कि 'सारे आलोचना साहित्य को पढ़ना इसलिए भी ज़रूरी है कि तुम जब अपना प्रबन्ध लिखो तो उन बातों को मत दुहराओ, जो और लोग कह चुके हैं।' क्या हेन ने अपने प्रथम साक्षात्कार में ही मुझे शोध का अधिकारी समझ लिया था?

उन दिनों मेरी दिनचर्या प्राय: यह होती—मैं सुबह नाश्ता करके अपनी डिग से निकलता। पहले नगर की सेण्ट्रल लाइब्रेरी में जाता, पास ही थी। वहाँ खड़े-खड़े दैनिक पत्रादि देखता और युनिवर्सिटी लाइब्रेरी चला जाता। वहाँ एक-डेढ़ बजे तक

पढ़ता। फिर वहीं के कैफ़िटेरिया में हल्का लंच ले सेण्ट कैथरीन्स कालेज में मि. हेन के कमरे में जा बैठता, वहाँ छह बजे तक पढ़ता। लौटकर खाना खाता और डिग की किसी लड़की या लड़के के साथ घूमने चला जाता, या कोई व्याख्यान सुनने, या किसी सभा-सोसाइटी की बैठक में भाग लेने—केम्ब्रिज में सन्ध्या के कार्यक्रमों की कमी नहीं। कभी-कभी नाटक या सिनेमा देखता। लौटकर रात में देर तक आधुनिक अंग्रेज़ी काव्य के संग्रह पढ़ता, डायरी, आवश्यक पत्रादि लिखता और सो जाता।

कभी-कभी जब मैं हेन के कमरे में बैठा पढ़ता होता, वे आ जाते, पूछते, 'क्या पढ़ चुके, क्या पढ़ रहे हो ? जो मैंने नोट करने को कहा था वह कर रहे हो न ?' कभी-कभी कोई नयी किताब पढ़ने का सुझाव दे जाते। मेरे काम में उनके इतनी भी रुचि लेने से मुझे बड़ी प्रसन्नता होती। अगर उन्होंने मेरे शोधक को पहचान लिया था तो मैंने भी उनमें अपना सही निर्देशक पा लिया था। बिना सही निर्देशन के शोध-कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न नहीं होता। निर्देशन भी एक कला है। केवल बहुत अधीत होने अथवा विचारक और विद्वान होने से यह नहीं आती। बहुत अधीत तो झा साहब भी थे, जिनके निर्देशन में मैंने अपना शोध-कार्य आरम्भ किया था, पर उन्होंने मुझे ग़लत रास्ते पर लगा दिया था। उस रास्ते से तो मुझे लौट आना पड़ा, नयी राह पकड़नी पड़ी। आध्यात्मिक खोज के लिए हमारे यहाँ एक कहावत प्रसिद्ध है—

'पानी पीजे छान, गुरु कीजे पहचान।'

साहित्यिक खोज के लिए भी गुरु की पहचान ज़रूरी है। मैंने गुरु को खोजा न था। खोजने की स्वतन्त्रता शोधक को शायद ही कहीं मिलती हो। ऐसी हालत में निर्देशक से कुछ साहस और विवेक की प्रत्याशा की जा सकती है कि अगर वह देखे कि किसी विषय पर वह अधिकारपूर्वक निर्देशन नहीं दे सकता तो स्वयं हट जाये। मुझे बताया गया, ब्रिटिश युनिवर्सिटियों के सामने ऐसे अवसर आये हैं, जब किसी ने किसी विषय पर शोध करना चाहा, और युनिवर्सिटी अधिकारियों ने उससे कह दिया कि खेद है अमुक विषय पर पथ-प्रदर्शन करनेवाला हमारे यहाँ नहीं है, आप किसी दूसरी युनिवर्सिटी में प्रयत्न करें। यह तो मेरा सौभाग्य था कि मि. हेन में मुझे ऐसा विज्ञ और विचक्षण निर्देशक मिल गया था, और उनसे मिलने के पहले दिन से ही मुझे यह विश्वास हो गया था कि उनके आदेशों पर चलने से मैं ठीक दिशा की ओर अग्रसर हूँगा। अभी तो मेरे शोध का विषय ही निर्धारित होना था, और हेन चाहते थे कि उस पर भी मैं अपने प्रयत्न और अपनी सूझ-बूझ से पहुँचूँ। स्वस्थ सहायता इतनी ही होनी चाहिए कि आदमी अपनी सहायता स्वयं करने में समर्थ हो सके।

जैसे-जैसे मैं ईट्स-साहित्य पढ़ता गया—कितनी ही नयी पुस्तकें सामने आयीं, इलाहाबाद में तो उनकी सम्पूर्ण मौलिक रचनाएँ भी उपलब्ध न थीं—वैसे-वैसे मुझे यह स्पष्ट होता गया कि ईट्स की अभिरुचि, उनका कौतूहल, उनकी जिज्ञासा, उनका शोध-स्वाध्याय कितनी विविध और कैसी-कैसी विचित्र दिशाओं में था। भारत के प्रति उनके आकर्षण की चर्चा मैं पहले कर चुका हूँ, पर जिस भारत के प्रति वे आकर्षित थे, वह न तो ऐतिहासिक भारत था न राजनैतिक; वह था श्रीमद्भागवत्पुराणकार के शब्दों में 'भारतमद्भुतम्'—अद्भुत भारत—भारत का वह अद्भुत चाहे उसके पुरा साहित्य में मिले, चाहे उसके दर्शन में, चाहे उसकी

दन्त-कथाओं में, चाहे उसके अन्ध-विश्वासों में। बात यह थी कि ईट्स जिस युग में वयस्क हुए, उसमें तर्क-सम्मत वैज्ञानिक शोधों ने चर्च-सम्पोषित ईसाई धर्म की जड़ें हिला दी थीं—कम-से-कम बुद्धिजीवी वर्ग की आस्था तो उसमें बिलकुल न रह गयी थी, और ईट्स की सही या ग़लत धारणा यह थी कि बिना किसी प्रकार की आस्था के उच्चकोटि की कविता नहीं लिखी जा सकती, भले ही उस आस्था की पटरी आधुनिक तार्किकता के साथ बैठती हो या न बैठती हो, बल्कि जो जितनी ही अतार्किक हो, वह उतनी ही कवि के लिए महत्त्वपूर्ण है—इसके लिए ईट्स के अपने तर्क थे जिन्हें दूसरों को मनवाने की कला उन्हें खूब आती थी। इसी धुन में आधुनिक सभ्यता से अछूते ग्रामीणजनों के अन्ध-विश्वासों, उनके बीच प्रचलित लोक-कथा-वार्ताओं में, उनके द्वारा अज्ञात पीढ़ियों से अपनाये गये धर्म-सम्प्रदायों के कर्म-काण्डों में उनका कौतूहल बढ़ा, पुराने साहित्य, पुरानी सभ्यताओं, पुरानी धर्म-संस्थाओं में जो कुछ भी आश्चर्यजनक, चमत्कारी, रहस्यपूर्ण अथवा गुह्य था, सबकी ओर उनकी जिज्ञासा जागी। उन्होंने यहूदियों के आदि धर्म-ग्रन्थ कब्बाला का अध्ययन किया, प्राचीन यूनान और मिस्र के विख्यात और अल्पज्ञात मनीषियों को अवगाहा, जर्मनी के ईसाई रहस्यवादी जैकब बेह्मेन—जो पेशे से जूता गाँठने-वाले थे, हमारे यहाँ के भक्त रैदास के प्रतिरूप—और स्वीडेन के स्वप्नद्रष्टा—अक्षरशः जाग्रत स्वप्नद्रष्टा—दार्शनिक ईमैनुएल स्वीडेनबार्ग के विचारों में डुबकी लगायी, मैडेम ब्लावास्ट्की के थियोसोफ़िकल आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया और उनकी प्रायः सभी कृतियाँ मनोयोग से पढ़ीं, साथ ही उन्होंने हरमीटिक आर्डरों, मध्ययुगीन योरोपीय कीमियागरों—ये एक प्रकार के दार्शनिक ही थे जो अपने को कीमियागरी की शब्दावली में अभिव्यक्त करते थे—रोसीक्रूशन, फ्रीमेसन मठों, मिस्मरेज़्म, सिएंस—जहाँ प्रेतात्माएँ बुलायी जाती थीं, और जिप्सियों के टैरट कार्ड—एक प्रकार के ताश के पत्ते, जिनसे जिप्सी मनुष्य का भाग्य बताते थे—और तरह-तरह के जादू-टोने में खुलकर रुचि ली, सारी ज़िन्दगी। अपने इस शुग़ल में ईट्स कितने गम्भीर थे, इसका इससे बड़ा और क्या सबूत होगा कि अपने जीवन के अन्तिम भाग में उन्होंने अपने सारे अतार्किक अध्ययन और अनुभव के आधार पर एक सुसम्बद्ध सिस्टम, दर्शन, सिद्धान्त अथवा 'धर्म' को ही जन्म दिया,—अपनी बहुचर्चित और विवादास्पद कृति A Vision (ए विज़न) के द्वारा, जिसकी भूमिका एज़रा पाउण्ड को भेजते हुए उन्होंने लिखा : I send you the introduction of a book which will, when finished, proclaim a new Divinity. (मैं तुम्हें अपनी नयी पुस्तक की भूमिका भेज रहा हूँ जो प्रकाशित होने पर एक नये ही धर्म अथवा अहदनामे की उद्घोषणा करेगी।)

यह सब जानकर ऐसी कल्पना करना मेरे लिए स्वाभाविक था कि इस सारे अनुशीलन, चिन्तन, मन्थन का प्रभाव किसी न किसी रूप में ईट्स के जीवन और सृजन पर निश्चय पड़ा होगा। इसी का विश्लेषण करना मेरे शोध का उद्देश्य हो सकता था। पर इस दर्जे पर तो केवल मेरे शोध का विषय अधिक विस्तृत होकर मेरे सामने स्पष्ट हो रहा था। एक दिन मौक़ा पाकर मैंने मि. हेन से कहा कि अगर मैं अपने शोध का विषय W. B. Yeats and the Irrational (डब्ल्यू. बी. ईट्स और अतार्किकता) रखूँ तो कैसा रहेगा? उन्होंने कुछ देर सोचकर कहा कि 'तुम्हारे पहले विषय की अपेक्षा, ज़ाहिर है, यह अधिक व्यापक है, पर शोध-प्रबन्ध के लिए इसकी भी कुछ सीमाएँ निर्धारित करनी होंगी, गो इस पर अभी से सिर खपाने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे शोध का पहला चरण समाप्त हुआ—ठीक

विषय मिल गया। दूसरे चरण में दो तरह का अध्ययन समानान्तर करना है। ईट्स के आलोचना-साहित्य को अब नहीं छूना है। अब एक ओर तो उनके मौलिक साहित्य का पारायण करना है और दूसरी ओर उस अतार्किक सामग्री का अध्ययन, जिसका अवगाहन-अवलोकन ईट्स ने स्वयं किया था। और अपनी स्मृति और कल्पना को इस भाँति सजग रखना है कि एक को दूसरे से जोड़ने अथवा प्रभावित करनेवाली कड़ियाँ चूकने न पायें।' उन्होंने मुझे आगाह किया कि 'ईट्स का मौलिक साहित्य तो बार-बार पढ़ा जा सकता है, पर जिस अतार्किक को उन्होंने पढ़ा-घोखा था, जिसमें वे भीगे-डूबे थे, उसे दुबारा पढ़ना तुम्हारे लिए सम्भव न होगा—तुम उस सामग्री को प्रायः शुष्क, उबाऊ, दुरूह और अस्पष्ट पाओगे, फिर तुम्हारे पास इतना समय भी कहाँ है! इस काम के लिए छह महीने का समय मेरी समझ में बहुत कम है, पर इतने समय में यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि अतार्किक के किन पक्षों का ईट्स के साहित्य पर विशेष प्रभाव पड़ा था और उन्हीं तक अपने को सीमित रखने और उन्हीं पर विशेष बल देने से विषय-प्रतिपादन में सुविधा होगी, उलझाव न आने पायेगा और कसाव भी बना रहेगा; आखिर शोध-प्रबन्ध की शब्द सीमा तो हर विश्वविद्यालय में तय रहती है, केम्ब्रिज में एम लिट्. के प्रबन्ध की शब्द-सीमा 40,000 और पी-एच. डी. के प्रबन्ध की 60,000 है। विषय असाधारण अथवा विशिष्ट होने पर एक-चौथाई शब्द अधिक प्रयुक्त करने की अनुमति मिल जाती है। बी. राजन ने, जो केम्ब्रिज से अंग्रेज़ी साहित्य में डाक्टरेट लेनेवाले पहले भारतीय थे, अपने शोध-प्रबन्ध में केवल 30,000 शब्दों का उपयोग किया था। हमारे यहाँ मात्रा से अधिक गुण को महत्त्व दिया जाता है।'

मि. हेन के आदेशानुसार मैंने लगकर पढ़ना और नोट लेना शुरू कर दिया। मेरे पास खोने को समय न था। अभी तक केम्ब्रिज में केवल छह महीने रहने की मेरी योजना थी, और इस अवधि में मैं मि. हेन के निर्देशन का पूरा-पूरा लाभ उठा लेना चाहता था। अक्तूबर में मुझे आक्सफ़र्ड पहुँच जाना था, और वहाँ मेरे लिए शोध-स्वाध्याय, निर्देशन की क्या व्यवस्था होगी, इसका मुझे कोई अनुमान नहीं था।

इस बीच मुझे तीन-चार दिन के लिए आक्सफ़र्ड जाने का सुयोग मिल गया। इंग्लैण्ड में एक रायल इण्डिया सोसाइटी है. पुरानी संस्था है। इसकी स्थापना इस उद्देश्य से हुई थी कि इसके द्वारा इंग्लैण्ड के लोगों को भारतीय संस्कृति, सभ्यता, जीवन का कुछ ज्ञान कराया जाय—उद्देश्य व्यावहारिक था, जिन पर हमें हुकूमत करनी है, उनको किसी हद तक जानना-समझना भी चाहिए, हालाँकि इस संस्था के माध्यम से जो जानकारी भारत के विषय में दी जाती थी, वह प्रायः सतही होती थी। सोसाइटी की ओर से प्रतिवर्ष इंग्लैण्ड के किसी प्रसिद्ध नगर में तीन-चार दिनों का एक सेमिनार आयोजित किया जाता था जिसमें विभिन्न भारतीय विषयों पर व्याख्यान अथवा चर्चा-गोष्ठियाँ होती थीं। पहले उसमें केवल अंग्रेज़ों को निमन्त्रित किया जाता था, अब उसमें भाग लेने के लिए कुछ भारतीयों को भी बुलाया जाता है। उस वर्ष यह सेमिनार आक्सफ़र्ड में होने को था और किसी संयोग से मेरे लिए भी निमन्त्रण आ गया था—मार्ग-व्यय, आवास, भोजन सबकी व्यवस्था सोसाइटी की ओर से होने को थी। मैंने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। सोचा, इसी बहाने आक्सफ़र्ड देख आऊँगा और प्रो. सी. एम. बावरा से परिचय

भी कर आऊँगा, जिनके निर्देशन में सम्भवतः मुझे अपने शोध-कार्य को आगे बढ़ाना होगा।

किसी नये नगर में प्रवेश करने पर आगन्तुक की आँखें सबसे पहले उसकी इमारतों की ओर आकृष्ट होती हैं। आक्सफ़र्ड पुराना विश्वविद्यालयी नगर है, शायद केम्ब्रिज से भी पुराना, और उसकी सबसे प्राचीन इमारतें हैं उसके कालेज और उसके गिरजे। आक्सफ़र्ड को पहली नज़र से देखकर मुझे लगा कि जैसे उसकी सब अच्छी-बड़ी इमारतें बहुत पास-पास बना दी गयी हैं—केम्ब्रिज में वे ज़्याद फैलाव में हैं। फिर केम्ब्रिज समतल भूमि पर बसा है, आक्सफ़र्ड एक छोटी-सी पहाड़ी के ढलान पर, उसकी तराई में। निश्चय ही पहाड़ी पर से आक्सफ़र्ड का विहगावलोकन करना बड़ा रोमहर्षक अनुभव होता, पर उसका संयोग मुझे न मिला। मुझे वाधम कालेज में ठहराया गया था जिसके वार्डेन मि. बावरा थे, वे उन दिनों आक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी के वाइस चांसलर भी थे। उन्होंने ही रायल सोसाइटी के सेमिनार का उद्घाटन किया था।

कार्यक्रमों को रोचक बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया था, फिर भी व्याख्यान एकाध ही गम्भीर थे, बाक़ी सामान्य, सतही विषयों पर—ज्ञानवर्धक से अधिक कौतूहल-शामक। एक गोष्ठी में मेरा कविता-पाठ भी हुआ, कई अंग्रेज़ लेखकों-कवियों से मैंने परिचय प्राप्त किया, एक अंग्रेज़-दम्पति मेरी कविताओं से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने बाद को मुझे अपने घर बुलाया, जो मानमथशायर में था। उन्होंने मेरी कविताओं के अंग्रेज़ी अनुवाद की एक योजना बनायी—मैं अपनी कविताओं का शाब्दिक अनुवाद गद्य में दे दूँ और वे उसे कवित्वपूर्ण भाषा-छन्दों में बाँधें। परिणाम अधिक सन्तोषजनक नहीं लगे, फिर इस कार्य में मेरी विशेष रुचि भी नहीं थी, अभी तो मेरे सिर पर शोध का भूत सवार था और उसी से निपटने के लिए मेरे पास पर्याय समय न था।

आक्सफ़र्ड में समय लेकर मैंने मि. सी. एम. बावरा से मुलाक़ात की। उन्होंने इस बात पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की कि केम्ब्रिज में मि. हेन की देख-रेख में मैं ईट्स पर शोध-कार्य कर रहा हूँ। मेरा विषय The Element of Irrational in the Poetry of W. B. Yeats (डब्ल्यू. बी. ईट्स की कविता में अतार्किकता के तत्व) उन्हें भी पसन्द आया। उनकी इच्छा थी कि मैं ईट्स की दर्शन-पुस्तक A Vision पर कुछ मौलिक सूझ बूझ की बातें कह सकूँ, क्योंकि ईट्स स्वयं इस पुस्तक को बहुत महत्त्व देते थे और उनके कुछ समालोचक अगर उसे उनके ज्ञान का निचोड़ मानते थे तो कुछ उनकी सनक, बहक, बकवास। दो-ढाई महीनों में अपने कार्य की प्रगति का जो ब्यौरा मैंने बावरा को दिया था, उससे उन्हें सन्तोष था और चलते समय उन्होंने मुझसे पूछा था, 'अक्तूबर से तुम्हारे लिए यहाँ जगह सुरक्षित है, आ रहे हो न ?' और मैंने तपाक से कहा था, 'निश्चय।'

तभी जैसे केम्ब्रिज से आता हुआ एक शंकालु स्वर मेरे कानों में गूँज उठा था, 'शायद नहीं।'

यह स्वर विश्वा का था।

'विश्वा' कौन ?

हमारे देश में बहुप्रचलित विश्वास है कि नक्षत्र मनुष्यों के भाग्य को प्रभावित करते या बदल देते हैं। मैंने अपने जीवन के अनुभवों से जाना है कि हमारे भाग्य को मोड़ देने या बदलने के लिए लाखों-करोड़ों मील दूर पड़े ग्रह-नक्षत्रों को प्रयत्न

करने की आवश्यकता नहीं, हमारे पथ में सहज गति से आ पड़े लोग प्राय: ऐसा काम अनजाने ही कर जाते हैं। अपने जीवन में आये ऐसे कई लोगों की मुझे याद है, न मैं उन्हें खोजने गया था, न वे मुझे खोजते आये थे, पर वे मिले तो परिचयों और घटनाओं की ऐसी श्रृंखला बनी कि उसका अनुसरण कर मैं ऐसी जगह या स्थिति पर पहुँच गया, जो मेरे लिए महत्त्वपूर्ण ही नहीं भाग्य-निर्णायक भी थी। ऐसे व्यक्तियों को मैंने अपनी निजी शब्दावली में 'नक्षत्र-पुरुष' या नारी संज्ञा दे रखी है।

मेरे लड़कपन में मेरे परिवार-पास-पड़ोस में एक शब्द इस्तेमाल होता था—नछत्रहा—फलनवाँ बड़ा नछत्रहा है। यह शब्द ऐसे व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता था, जिसका संग-संसर्ग कुछ अनिष्ट कर दे। मेरा नक्षत्र-पुरुष उसी शब्द से प्रेरित है, पर वह अनिष्टकारी तक सीमित नहीं। नक्षत्र-पुरुष मैं हर ऐसे आदमी को कहना चाहूँगा जो भाग्य को किसी प्रकार प्रभावित करे।

केम्ब्रिज में भी मुझे एकाधिक नक्षत्र-पुरुष मिले।

सबसे पहले नक्षत्र-पुरुष विश्वनाथ दत्त थे।

विश्वनाथ दत्त, जिन्हें मैं बाद को विश्वा कहने लगा था, अमृतसर के निवासी थे। उन्हें मैंने पहले-पहल अपने एक अध्यापक-मित्र के घर पर देखा था, जिनके वे प्रिय शिष्यों में थे। लखनऊ युनिवर्सिटी से इतिहास और शायद अंग्रेज़ी में भी एम. ए. करने के बाद वे डाक्टरेट करने के लिए केम्ब्रिज आये थे, पिता उनके समृद्ध व्यापारी थे और बहुत बड़ा खर्च उठाकर उन्होंने अपने बेटे को सपत्नीक तीन बरस केम्ब्रिज में रहने और पढ़ने के लिए भेजा था। विश्वा की पत्नी का नाम कमला था। वे मुझसे दो वर्ष पूर्व केम्ब्रिज पहुँचे थे। कमला ने भी किसी डिग्री या डिप्लोमा के लिए पढ़ना शुरू कर दिया था। विश्वा की अवस्था उस समय लगभग पचीस के होगी—केम्ब्रिज के प्रभावों को सचेत ग्रहण कर सकने की उपयुक्त अवस्था। जिस समय मैं केम्ब्रिज पहुँचा, विश्वा पूरी तरह केम्ब्रिज की परम्परा में भिन चुके थे।

मैं केम्ब्रिज की परम्परा को परिभाषित करने नहीं जा रहा हूँ, पर उसका एक सतही और विनोदी पक्ष है—केम्ब्रिज और आक्सफ़र्ड की प्रतिद्वन्द्विता के प्रति सचेत होना, केम्ब्रिज की महत्ता का गर्व करना और आक्सफ़र्ड को उसकी तुलना में हीन समझना—इसकी ओर मैं पहले भी संकेत कर चुका हूँ। दोनों युनिवर्सिटियों के विद्यार्थी जब आपस में मिलते हैं तो दो-एक फ़िक़रे एक-दूसरे की युनिवर्सिटी की अवमानना में ज़रूर कस देते हैं। और विद्यार्थी ही नहीं, बहुत ऊँचे दर्जे पर पहुँचे हुए लोग भी, शायद अपने विद्यार्थी-जीवन के संस्कारों से अभिभूत, ऐसी फ़िक़रेबाज़ी से बाज़ नहीं आते। आर्चबिशप आफ कैण्टरबरी जो आक्सफ़र्ड के स्नातक थे, जब केम्ब्रिज की एक धर्म-सभा में बोलने के लिए बुलाये गये तो उन्होंने अपने पहले ही वाक्य में फ़ब्ती कसी कि चूँकि पिछले पचास बरसों में केम्ब्रिज ने कोई आर्चबिशप नहीं पैदा किया इसलिए उसने सोचा, चलो आक्सफ़र्ड से उधार माँग लें। ऐसे और भी उदाहरण मेरी स्मृति में हैं।

मैंने आक्सफ़र्ड न जाने और केम्ब्रिज में ही सारा समय बिताने का जो निश्चय किया, उसका मुख्य श्रेय विश्वनाथ दत्त को है।

आते ही मैंने अपनी योजना उनसे बतायी थी कि मैं छह महीने केम्ब्रिज रहूँगा और नौ महीने आक्सफ़र्ड, और उन्होंने पहले दिन से ही मेरे आक्सफ़र्ड जाने का विरोध किया था। इसमें केवल आक्सफ़र्ड के प्रति उनकी विपक्षधरता (प्रेजुडिस)

ही न थी। केम्ब्रिज में ही रहने के पक्ष में उनके पास कुछ तर्क भी थे। उनका कहना था, 'आप छह महीने केम्ब्रिज रहेंगे, नौ महीने आक्सफ़र्ड रहेंगे, आप अपने शोध-विषय पर अच्छी से अच्छी नोट-सामग्री एकत्र करेंगे, इंग्लैण्ड की सबसे बड़ी दो युनिवर्सिटियों के दो ईट्स-विशेषज्ञों का निर्देशन आपको प्राप्त होगा, फिर भी जब आप अपना शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करेंगे और आपको डाक्टरेट मिल जायेगी—मिल तो शायद जायेगी ही—तो डिग्री आपकी हिन्दुस्तानी मानी जायेगी—घी नहीं, डालडा। हिन्दुस्तान में जैसी मनोवृत्ति है, जिससे मैं बखूबी परिचित हूँ और जिससे आप भी अपरिचित न होंगे, उसमें 'फ़ारेन' डिग्री के लिए जितनी इज़्ज़त है, उतनी 'नेटिव' डिग्री के लिए नहीं। आदमी रुपये खर्चता है, मेहनत करता है, अपनी योग्यता बढ़ाता है तो यह भी चाहता है कि उसको मान्यता मिले, उसको उसका प्राप्तव्य दिया जाये। फिर आपका विषय इतिहास या अर्थशास्त्र होता तो बहुत फ़र्क़ न पड़ता कि आप डिग्री इंग्लैण्ड से ले रहे हैं या हिन्दुस्तान से; आपका विषय तो अंग्रेज़ी भाषा और अंग्रेज़ी साहित्य से सम्बद्ध है। आपकी डिग्री तो टकसाली तभी साबित होगी जब आप अंग्रेज़ों की चोटी की युनिवर्सिटी से, अंग्रेज़ों के गढ़ से, अंग्रेज़ी डिग्री लें। आपने पन्द्रह महीने विदेश में रहने का प्रबन्ध किया है, केवल नौ महीने और रहने का इन्तज़ाम कर लें, एक ही युनिवर्सिटी से सम्बद्ध रहें—ज़्यादा अच्छा होगा केम्ब्रिज से, और किसी वजह से नहीं तो सिर्फ़ इस कारण कि आप यहाँ पहले आ गये हैं—और यहीं से डाक्टरेट लेकर देश वापस लौटें।'

विश्वा जब भी मुझे मिलते इन्हीं बातों को दुहराते, केम्ब्रिज के डाक्टर के भविष्य जीवन के सुखद सपने दिखलाते—सब्ज़ बाग़—'इस डिग्री के पाने पर आप किसी बड़ी युनिवर्सिटी में अंग्रेज़ी के विभागाध्यक्ष के रूप में ले लिये जायेंगे। आक्सफ़र्ड या केम्ब्रिज से अंग्रेज़ी में डाक्टरेट किये हुए कितने लोग हैं भारत में—केम्ब्रिज से एकमात्र बी. राजन, और वे फ़ारेन सर्विस में ले लिये गये हैं। आपको भी कोई उच्च पद सरकार दे सकती है,' वग़ैरह वग़ैरह। आश्चर्य है कि कभी-कभी विकसित मस्तिष्कवाले भी कल्पना के क्षणों में भविष्य की सच्चाइयों की धुंधली-सी झाँकी पा जाते हैं।

केम्ब्रिज से डाक्टरेट कर लेने पर—करना आसान तो नहीं था—भविष्य में किसी ऊँचे पद अथवा ऊँचे वेतन का अनिश्चित सपना विदेश में और नौ मास ठहरने के लिए मुझे मुश्किल से प्रेरणा दे सकता था। अलबत्ता एक ही जगह रहने और एक ही के निर्देशन में काम करने में जो संगति सम्भव थी, वह मुझे बावरा से केवल आधे घण्टे बातचीत करके स्पष्ट हो गयी थी—हेन के और उनके दृष्टिकोण में वैपरीत्य नहीं तो अन्तर अवश्य था। और उससे मेरे शोध की एकता विखण्डित हो सकती थी। साथ ही केम्ब्रिज में जो प्रचुर सामग्री उपलब्ध थी, उसे देखकर, और हेन के निष्णात निर्देशन में थोड़ा-बहुत काम करके, मेरी ऐसी धारणा हो चली थी कि यहाँ रहकर मैं अपने शोध-कार्य को जिस परिपूर्णता से सम्पन्न कर सकूँगा, उससे हिन्दुस्तान में नहीं। मैं अपने नाम के आगे केवल एक डिग्री जोडने के प्रलोभन में ईट्स पर काम करने को तत्पर नहीं हुआ था। ईट्स के काव्य ने मेरे मन में एक समस्या उठायी थी और उसी का समाधान पाने को मैं पिछले दस-बारह बरसों से छटपटा रहा था। मेरा शोध मेरी दृष्टि में विधिवत समाधान पाने की प्रक्रिया मात्र थी, और डिग्री होती—चाहे केम्ब्रिज की चाहे इलाहाबाद की—मेरे समाधान पाने की सफलता पर प्रामाणिकता की मुहर, केम्ब्रिज की,

निश्चय ही, अधिक सन्तोषप्रद होती, क्योंकि वह निर्विवाद रूप से अधिक अधिकारी विद्वानों द्वारा लगायी जाती।

अपने प्रवास को नौ मास और बढ़ाने का निर्णय लेने के पहले मुझे तेजी से सलाह करनी थी। साथ ही घर की और अपनी आर्थिक स्थिति और आवश्यकता को भी ध्यान में रखना था। तेजी को 14 महीने बिना युनिवर्सिटी के वेतन के, मेरी रायल्टी और बैंक में जमा थोड़ी-बहुत राशि के बल पर घर को चलाना होता। मुझे 9 मास केम्ब्रिज में रहने के ख़र्च के अतिरिक्त 6 टर्म की (साल में तीन टर्म होते हैं—ईस्टर टर्म, माइकेलमास और लेण्ट टर्म) कालेज की फ़ीस की भी व्यवस्था करनी होती, क्योंकि युनिवर्सिटी से सम्बद्ध किसी कालेज का नियमित विद्यार्थी रहकर ही मैं वहाँ की डिग्री के लिए शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत कर सकता था; शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने की फ़ीस अलग लगती और वापसी सफ़र-ख़र्च का इन्तज़ाम तो मुझे करना ही था। इस सबके लिए बड़े संयत अनुमान से मुझे 10,000/= की ज़रूरत होती। मेरे प्रवास की अवधि में 9 मास और जोड़ लेने पर अगर तेजी को आपत्ति न होती तो 10,000/= और ब्लाक ग्राण्ट की आशा मैं नेहरूजी अथवा मौलाना आज़ाद की सिफ़ारिश पर शिक्षा मन्त्रालय से कर सकता था—आशाएँ कितनी बड़ी छलना सिद्ध होती हैं!

तेजी को अपने नये प्रस्ताव के विषय में मैंने बहुत डरते-डरते लिखा। जब बात छह महीने मेरे इंग्लैण्ड में रहने की उठी थी, तब उन्होंने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की थी, जब दस महीने प्रवास में रहकर लगे हाथ योरोप-भ्रमण की, तब उन्होंने अपना समर्थन दिया था, जब पन्द्रह महीने केम्ब्रिज और आक्सफ़र्ड में रहकर शोध-सामग्री एकत्र करने की, तब उन्होंने कोई आपत्ति न की थी, और अब जब चौबीस महीने केम्ब्रिज में रहकर शोध-कार्य वहीं पूरा करके लौटने की बात खड़ी हुई तो मुझे पता नहीं था, उनकी प्रतिक्रिया क्या होगी। उनके पत्र मेरे पास बराबर आया करते थे। केम्ब्रिज में अपने मानसिक तनाव की बात मैं पहले लिख चुका हूँ, तेजी भी इलाहाबाद में बैठी उसी प्रकार का मानसिक तनाव अनुभव कर रही थीं। अक्सर उन पर कमजोरी और उदासी के दौर आते, उन्हें लगता कि उनकी हिम्मत और ताक़त आधी रह गयी है, और अब वे मुश्किलों और मुसीबतों का सामना करने में उतनी समर्थ नहीं हैं, जितनी मेरे सान्निध्य में थीं। कभी-कभी उन्हें लगता कि मेरे बिना इलाहाबाद में वे सर्वथा अजनबी और असुरक्षित हैं और अगर उन पर कोई खतरा आये तो उन्हें और उनके बच्चों को बचानेवाला कोई नहीं है। मैं अपने पत्रों से उन्हें दिलासा देता, ढाढस बँधाता, जीवन में आयी अनेक परिस्थितियों का सामना करने की उनकी क्षमता की उन्हें याद दिलाता, उनका हौसला बढ़ाता, पर मुझे यह ख़्याल भी आता कि ढाई-तीन महीने में उनका यह हाल है तो पन्द्रह महीने कैसे कटेंगे! कभी-कभी मुझे आशंका होती कि उनकी मानसिक स्थिति ऐसी ही रही तो सम्भव है, एक दिन अचानक मुझे देश लौट जाना पड़े। पर तेजी ने अपने उत्तर से मुझे आश्चर्यचकित कर दिया। एक झटके से जैसे उन्होंने अपनी सारी दुर्बलता दूर हटा दी और मेरे सामने एक स्पष्ट लक्ष्य देखकर उन्होंने बड़े आत्म-विश्वास से मुझे लिखा—'अगर नौ महीने और वहाँ रहने से आपका शोध-कार्य वहीं पूरा हो जाता है तो आप खुशी से उसे पूरा करके ही लौटें। हाँ, इतना ज़रूर निश्चित कर लें कि आपको वहाँ का ख़र्च शिक्षा मन्त्रालय से मिल जायेगा। यहाँ की चिन्ता करने की आपको ज़रूरत नहीं। यहाँ

जो कुछ उपलब्ध है और होगा, उसी से हम अपना काम चला लेंगे। कष्ट अगर उठाना ही पड़ा तो मैं उठाऊँगी, बच्चों को किसी प्रकार की तकलीफ़ न होने दूँगी। आप वहाँ एकाग्रता से काम करें। बच्चे प्रतिदिन यहाँ आपकी सफलता के लिए प्रार्थना करेंगे, देखिए, उन्हें निराश न होना पड़े, नहीं तो ईश्वर पर से ही उनका विश्वास हट जायेगा।' श्रम-संघर्ष के लिए तेजी मुझे प्रेरित कर सकती हैं, यह तो मैं जानता था, पर वे मुझे सफल होने की इतनी बड़ी क़सम भी दिला सकती हैं, इसकी कल्पना मैंने न की थी। नारि, तू अपनी भीरुता को इतनी जल्दी कैसे अपनी धीरता में बदल देती है—अपनी मृदुता को अपनी दृढ़ता में।

तेजी से लाइन क्लियर मिलने पर मैं मि. हेन से मिला। वे इस बात से बहुत प्रसन्न हुए कि मैंने दो वर्ष केम्ब्रिज में ही रहकर अपना शोध-कार्य पूरा करने और यहीं से पी-एच. डी. के लिए शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने का इरादा किया है। उन्होंने यह तो माना कि जिस प्रकार का शोध-कार्य मेरे मन में है, उसे पूर्ण करने के लिए दो वर्ष का समय पर्याप्त है पर पी-एच. डी. की डिग्री शायद मुझे न मिल सके। उन्होंने मुझे बतलाया कि 'शोध के लिए केम्ब्रिज में बाहर से बहुत-से लोग आते हैं। कुछ लोगों के पास यहाँ रहने को साल भर का समय होता है, कुछ के पास दो वर्ष का और कुछ के पास तीन वर्ष या इससे अधिक का। यहाँ की आर्ट्स फ़ैकल्टी ने शोध-सम्बन्धी कार्य को तीन श्रेणियों में बाँट दिया है कि सभी तरह के लोग अपनी रुचि-सामर्थ्य-सुविधा के अनुसार इनसे लाभान्वित हो सकें। जो केवल एक वर्ष यहाँ रह सकते हैं, उनके लिए शोध-विधि (Method of Research) पर व्याख्यान होते हैं, उन्हें पुराने ग्रन्थों को सम्पादित अथवा संशोधित करना सिखाया जाता है, शोध की नैतिकता (Ethics of Research) का व्यावहारिक ज्ञान कराया जाता है और शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने की तकनीक बतायी जाती है—एकरूपता और व्यवस्था लाने के लिए योरोप में प्रायः हर काम वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है, शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने की भी एक वैज्ञानिक रीति है। कोर्स पूरा करने पर शोधार्थी को रिसर्च का एक डिप्लोमा दिया जाता है। जो लोग दो वर्ष के लिए आते हैं, उन्हें एम. लिट्. की डिग्री के लिए तैयार किया जाता है। वे किसी बड़े विषय के एक अंग को अपने शोध के लिए चुनते हैं। उनसे किसी मौलिक खोज की प्रत्याशा नहीं की जाती। प्रायः वे अपने विषय में व्यक्त किये गये, इधर-उधर फैले ज्ञान को, अपनी स्थापना (hypothesis) के अनुरूप—और स्थापना तो उन्हें बनानी ही पड़ती है—संचित, सुव्यवस्थित करते हैं, अधिक-से-अधिक वे उस पर टिप्पणी करते हैं। जो लोग तीन वर्ष का समय दे सकते हैं, उन्हें पी-एच. डी. के लिए रजिस्टर किया जाता है। वे शोध का कोई सम्यक् विषय लेते हैं, उनसे उम्मीद की जाती है कि वे अपने विषय पर कोई ऐसी मौलिक खोज करेंगे जिससे किसी लेखक अथवा उसकी रचना अथवा उसके युग के सम्बन्ध में पुरानी और प्रायः प्रचलित या स्वीकृत धारणा को बदला जा सके, कम-से-कम उसे चुनौती दी जा सके। संक्षेप में, उनका शोध ज्ञान-वृद्धि में योगदान (Contribution to Knowledge) हो। डी. लिट्. तो प्रायः मानद डिग्री है जो किसी-किसी वयोवृद्ध स्कालर को उसके जीवन भर के सृजनशील समालोचनात्मक कार्य पर दी जाती है। केम्ब्रिज में साहित्य के एकमात्र डी. लिट्. डा. टिलयार्ड हैं। उदाहरण के लिए W. B. Yeats and India एम. लिट्. का विषय हो सकता था। W. B. Yeats and the Irrational पी-एच. डी. का विषय है, और चूंकि तुम केवल

दो वर्ष उसे दे सकोगे, इसलिए फ़ैकल्टी ऐसा समझेगी कि तुम उसके साथ पूरा न्याय नहीं कर सकोगे, और नियमत: वह तुम्हें एम. लिट्. के लिए रजिस्टर करेगी।'

यह सब बतलाने के बाद मि. हेन ने मुझे राय दी कि 'तुम्हें डिग्री के नाम का ख़याल छोड़कर शोध पर ध्यान देना चाहिए। नियम हमारे यहाँ क रूढ़ नहीं हैं। अंग्रेज़ जब भी नियम बनाते हैं तो यह ध्यान में रखकर कि सम्भव है, जीवन की कोई परिस्थिति उनके अन्तर्गत न आ सके, यानी वे अपने नियमों में अपवाद के लिए कोई न कोई लूप-होल छोड़ देते हैं। एम. लिट्. की थीसिस बहुत अच्छी हो तो डिग्री कमेटी को यह अधिकार है कि वह उसे पी-एच. डी. की डिग्री के योग्य क़रार दे। इसी प्रकार पी-एच. डी. की थीसिस अगर स्तरीय न हो तो उस पर केवल एम. लिट्. की डिग्री दे या उसे बिलकुल अस्वीकार कर दे। यहाँ ऐसे उदाहरण हैं कि लोगों ने चार-चार बरस काम कर थीसिस प्रस्तुत की है और उसे रिजेक्ट कर दिया गया है या उस पर एम. लिट्. दी गयी है, ऐसे एक अध्यापक फ़िट्ज विलियम हाउस में अब भी हैं। और ऐसे भी उदाहरण हैं—गो बहुत कम—कि एम. लिट्. के लिए थीसिस तैयार की गयी है परन्तु निर्देशक अथवा परीक्षकों ने उसे पी-एच. डी. के योग्य समझा है और डिग्री कमेटी को उनकी अनुशंसा (Recommendation) माननी पड़ी है।' अन्त में मि. हेन ने कुछ रुककर और थोड़ा मुस्कराते हुए कहा, 'मैं आशा करता हूँ कि तुम एक अच्छी थीसिस लिखोगे और मुझे उसके गुणों के आधार पर उसे पी-एच. डी. के लिए अनुशंसित करने का अवसर मिलेगा।'

मैंने मि. हेन को बतलाया कि 'मैं दो बरस से अधिक केम्ब्रिज में रहने की स्थिति में नहीं हूँ। शोध-कार्य मैं अवश्य पूरा करना चाहता हूँ, डिग्री मुझे कोई भी मिले।'

मैंने अपना नाम सेंट कैथरीन्स कालेज में लिखा लिया, और एम. लिट्. की रजिस्ट्री के लिए जो प्रमाणपत्रादि आवश्यक थे, वे आर्ट्स फ़ैकल्टी में प्रस्तुत कर दिये, जिनमें प्रस्तावित शोध-विषय पर 2000 शब्दों का एक निबन्ध भी लिखकर देना था।

मि. हेन ने ऐसी व्यवस्था करा दी कि जिस दिन से मैंने केम्ब्रिज में रहना शुरू किया था—वहाँ जितनी रातें मैं सोया था, उसका प्रमाणपत्र मिसेज़ मलेटका ने दिया—उस दिन से मैं कालेज का विद्यार्थी समझा जाऊँ, गो पिछले टर्म की फ़ीस भी मुझे देनी पड़ी। इससे लाभ यह हुआ कि छह टर्म पूरा होने पर, यानी अप्रैल '54 में मैं अपना शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत कर सकने का अधिकारी हो गया।

अब मि. हेन युनिवर्सिटी की ओर से मेरे निर्देशक नियुक्त हुए और मैं हफ़्ते में एक बार नियमित रूप से निर्देशन के लिए उनके पास जाने लगा। सप्ताह भर में जो कुछ मैं पढ़ता, उस पर जो कुछ मुझे सूझता, उसकी जो प्रतिक्रिया मेरे ऊपर होती उससे मैं मि. हेन को अवगत कराता, वे उस पर मुझसे सवाल पूछते या उस पर हमारी बहस-चर्चा होती। काफ़ी दिनों तक उनके निर्देशन का रूप केवल मौखिक रहा। कभी मैं कालेज के उनके कमरे में उनसे मिलता और कभी वे मुझे अपने बँगले पर बुला लेते—अधिकतर शाम को बँगले पर ही।

मि. हेन का बँगला शहर से कुछ दूर हटकर मिलिंगटन रोड पर था, जिस पर आमद-रफ़्त ज़्यादा न थी। वहाँ मैं इतनी बार गया था कि आज भी उसकी याद आने पर उसका पूरा नक़्शा मेरी आँखों के आगे खड़ा हो जाता है। बँगला लाल

ईंट का दुमंज़िला होकर भी छोटा था। प्रवेश द्वार आगे से न होकर बगल से था, जो एक पतली गैलरी में ले जाता था, जिसके सिरे पर ऊपर जाने का ज़ीना था। गैलरी के एक ओर था किचन, खाने का कमरा और मिसेज़ हेन के उठने-बैठने का कमरा, दूसरी ओर थी मि. हेन की काफ़ी कुशादह स्टडी, जिसका एक हिस्सा ड्राइंग रूम की तरह इस्तेमाल होता था। ऊपर की मंज़िल पर तीन बेडरूम थे। बँगले के आगे एक अच्छा-ख़ासा लॉन था, जिसके तीन ओर मौसमी फूलों की क्यारियाँ बनी थीं—बाग़बानी का काम मिस्टर और मिसेज़ हेन अपनी फ़ुरसत की घड़ियों में ख़ुद करते थे। पीछे सेब की एक छोटी बगीची थी जिसके पेड़, मि. हेन ने मुझे बताया था, उनकी पैतृक भूमि स्लाइगो (जहाँ ईट्स की ननिहाल थी) से लेकर लगाये गये थे। उसके सेबों को खाने का अवसर मुझे बहुत बार मिला था। उनके एक ख़ास तरह के स्वाद, सुगन्ध (flavour) को मैं आज तक नहीं भूला।

मकान में केवल हेन-दम्पति रहते थे। उनकी बेटी अपनी शिक्षा समाप्त कर कनाडा चली गयी थी, जहाँ वह किसी स्कूल में पढ़ाती थी, और बेटा केम्ब्रिज से ट्राइपास करने के बाद लन्दन की किसी अच्छी फ़र्म में काम करने लगा था। दोनों उस समय तक अविवाहित थे। पर उनके विवाह के लिए चिन्तित अथवा उत्सुक मैंने हेन-दम्पति को कभी नहीं देखा था। मिसेज़ हेन का नाम विवियन था, जिन्हें मि. हेन 'वी-वी' कहकर पुकारते थे और शुरू-शुरू में मैं समझता था कि वे शुद्ध हिन्दुस्तानी शब्द 'बीबी' का प्रयोग करते हैं; अनुमान करता था कि यह शब्द शायद उन्होंने अपने भारत-प्रवास में किसी हिन्दुस्तानी परिवार से सीखा होगा।

मैं हेन के यहाँ जाता तो उनकी स्टडी में बैठता, जिसकी दीवारें किताबों-भरी क़द्दे-आदम आलमारियों से ढकी थीं—हेन बताते कि उनमें बहुत-सी किताबें उनके पिता और पितामह के पुस्तकालय की हैं, अभी वे कोई-कोई निकालकर मुझे दिखाते भी। इंग्लैण्ड में किताबों की उम्र बड़ी होती है, उन पर जल्दी न तो मौसम का असर होता है और न उनमें कीड़े लगते हैं, शायद वहाँ की ठण्डी आबोहवा के कारण। स्टडी में ईट्स की वृद्धावस्था की एक तस्वीर लगी थी जो मि. हेन ने अपने कैमरे से खींची थी और बाद को बड़ी करवायी थी। काम करने की मेज़-कुर्सी के अलावा उसमें एक गद्देदार आरामकुर्सी भी थी। हेन आते तो प्रायः आरामकुर्सी पर बैठते और मैं मेज़वाली कुर्सी पर। मिसेज़ हेन एक ट्रे में चाय लाकर हमारे सामने रख जातीं, घर में कोई नौकर नहीं था, वे ख़ुद ही बनातीं। अपने प्रवास में मुझे कई अंग्रेज़ घरों में जाने का मौक़ा मिला, मैंने किसी के यहाँ घरेलू काम-काज करने-वाला नौकर नहीं देखा, गो वे अच्छी-ख़ासी माली हालतवालों के थे। कभी-कभी जब हमारी बातें ज़्यादा देर खिंच जातीं और सन्ध्या गहराने लगती तो मि. हेन कोई ड्रिंक लेते—मदिरा, मेरे लिए कोई साफ़्ट-ड्रिंक मँगायी जाती। यदा-कदा जब हमारी बातें ख़त्म न होतीं और खाने का समय आ जाता तो मि. हेन मुझे खाने के लिए रोक लेते—इंग्लैण्ड में रात का खाना लोग जल्दी ही खाते हैं, यही कोई सात-साढ़े सात बजे, डिग में हम साढ़े छह बजे खाया करते थे। मिसेज़ हेन मेरे लिए जल्दी-जल्दी कोई शाकाहारी भोजन तैयार करतीं और बात हमारी खाने की मेज़ पर भी चलती जाती।

जब शोध-सम्बन्धी बातें अधिक करने को न होतीं, या जल्दी ख़त्म हो जातीं तब हेन ईट्स से अपनी मुलाक़ातों या उनके व्याख्यानों या उनकी गोष्ठियों के अनेक रोचक संस्मरण सुनाते। शायद ही कोई ऐसा प्रसंग हो जिस पर वे ईट्स की

कुछ पंक्तियाँ नहीं उद्धृत कर सकते थे, उन्हें ईट्स की पचासों कविताएँ याद थीं, किन्हीं-किन्हीं नाटकों के पूरे के पूरे कथोपकथन। कभी-कभी वे ईट्स की कविताओं को बड़े ही भावपूर्ण अथवा आवेशपूर्ण ढंग से सुनाते—उनकी कविताएँ रसात्मक (Sentimental) भी हैं और प्रवचन-परक (Rhetorical) भी। ईट्स की कविताएँ तो मैंने भी कई-कई बार पढ़ी थीं, उन दिनों अधिक ही पढ़ रहा था, पर मि. हेन के काव्य-पाठ से जो अर्थ खुलता, जो संकेत मिलते, जो भावों और विचारों का उद्बोधन होता वह मेरे लिए अभूतपूर्व था।

ईट्स अपने एक कथन को अक्सर दुहराते थे कि कविता मन्त्र है—Incantation। एक दिन, मुझे याद है, हेन से इसी पर चर्चा चल पड़ी। हेन की यह धारणा मात्र नहीं, स्वयं उनकी खोज थी कि ईट्स यह मन्त्र-प्रभाव शब्दों की अन्तर्ध्वनि से उत्पन्न करते थे—बिना उनके अर्थों से किसी प्रकार का समझौता किये। उदाहरण के लिए उन्होंने ईट्स की वे पंक्तियाँ सुनायीं जो उन्होंने अपनी कब्र पर खुदवाने के लिए लिखी थीं—

Cast a cold eye
On life, on death.
Horseman pass by!
कास्ट ए कोल्ड आई
आन लाइफ़, आन डेथ,
हार्समन, पास बाई!

फिर इनमें प्रयुक्त शब्दों की अन्तर्ध्वनि को उभारने के लिए, उन पर बल देने के लिए, उन्होंने इन पंक्तियों को इस प्रकार पढ़ा :

कास ए को
आई आन
लाई आन
डेथ हास
मन पास
बाई···

जब उन्होंने पंक्तियाँ समाप्त कीं तो ऐसा लगा कि जैसे अब कोई उनमें 'छू:' जोड़ दे तो तत्काल कोई जादू खड़ा हो जायगा। वास्तव में उस सन्ध्या को ईट्स की पंक्तियों में मन्त्र (Incantation) खोजने का स्वयं एक मन्त्र मुझे मिल गया था।

हेन के पास ईट्स के काव्य-पाठ के कुछ रेकार्ड भी थे—उन्हीं के स्वर में। ईट्स अपनी सभी कविताएँ स्वर-लयबद्ध कर पढ़ते थे, जिसे अपने यहाँ कहेंगे, तरन्नुम के साथ। कभी-कभी हेन उन्हें मुझे सुनाते, एक पुरानी चाल के ग्रामोफ़ोन पर बजाकर। ईट्स की कुछ कविताएँ अच्छे गायकों के स्वर में भी रेकार्ड की गयी थीं, विशेष याद है इस गीत की 'O, who could have toretold that the heart grows old.' (किसने यह समझा था कि हृदय भी वृद्ध हो जाता है!) इस गीत की हू-ब-हू नक़ल मिसेज़ हेन अपनी आवाज़ में कर सकती थीं और एकाध बार इसे उनसे सुनने का अवसर भी मुझे मिला था। उनके एक गीत पर बैण्ड-ध्वनि भी बाँधी गयी थी। गीत था—'Down by the sally garden my love

I did meet.' (मिली प्रेयसी मेरी मुझको उस सैलानी बाग़ में।)

ईट्स के सम्बन्ध में मैं बहुत-सी पुस्तकें, पत्रिकाएँ पढ़ रहा था, पर उन सबसे, मैं निःसंकोच कहना चाहूँगा, मुझे ईट्स को समझने में उतनी सहायता न मिली थी, जितनी हेन के साथ उनकी चर्चा में बितायी सन्ध्याओं से। शोध की प्रक्रिया से गुज़रे हुए सभी लोग इस बात की हामी भरेंगे कि यह काम बहुत नीरस हो सकता है। कम से कम अपने शोध के सम्बन्ध में मुझे जो 10-12 घण्टे रोज़ पढ़ना पड़ता था, वह तो महा नीरस था। वह तो ऐसा ही था जैसे रेगिस्तान में सफ़र करना—इसी शीर्षक से मैंने केम्ब्रिज में एक कविता लिखी थी,* शायद वह उसी अनुभव से प्रेरित हुई हो। सुनते हैं, रेगिस्तान के यात्रियों का यह अनुभव है कि महाबंजर, बालुए मैदानों के बीच में भी कहीं-कहीं हरियाली होती है, छायादार वृक्ष होते हैं, पानी के चश्मे होते हैं जिन्हें Oasis या शाद्वल भूमि कहते हैं। मैं अपने रेगिस्तान के सफर की शाद्वल भूमियाँ उन सन्ध्याओं को कहना चाहूँगा जो मैंने मि. हेन के सान्निध्य में गुज़ारी थीं।

कभी मैंने पढ़ा था, 'काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।' मैं हमेशा सोचा करता था कि इसका लेखक काव्य को आनन्द के लिए पर्याप्त नहीं मानता, काव्य के गुण-दोष विवेचन की चर्चा में सुख मानता है, काव्य का 'शास्त्र' तो वही हुआ। निश्चय इसका लेखक कोई काव्य-रसिक नहीं, किसी विद्यापीठ में पाठ्य-पुस्तक पढ़ानेवाला अध्यापक होगा। हेन के सम्पर्क में मुझ पर इस संस्कृत की पंक्ति का एक दूसरा ही अर्थ खुला। हेन के साथ 'काव्य' की भी चर्चा होती और 'शास्त्र' की भी—यानी शोध-सम्बन्धी छान-बीन की, विश्लेषण-परीक्षण की। और यह मि. हेन जैसे कुशल कीमियागर का ही काम था कि वे काव्य' को 'शास्त्र' की चर्चा से ज्ञानमय और 'शास्त्र' को 'काव्य' की चर्चा से रसमय कर देते थे। हेन ने मेरे शोधार्थी को ही नहीं संवारा, मेरे अध्येता और अध्यापक को भी, लेकिन इसका मुझे बड़ा खेद है कि उसका लाभ मुझे जिन्हें पहुँचाना था, उन्हें मैं न पहुँचा सका।

सृजन के सम्बन्ध में एक समस्या मेरे मन में बहुत दिनों से उठती रही है और उस पर मैंने बहुत सोचा-विचारा है, पर उसका कोई समाधान मुझे अब तक नहीं मिला। समस्या संक्षेप में इस प्रकार रखी जा सकती है कि सृजन के लिए—और सृजन को मैं कविता लिखने तक ही सीमित न रखना चाहूँगा, इसके अन्तर्गत शोध-प्रबन्ध जैसी चीज़ लिखना भी रखा जा सकता है—शान्त मनस्थिति अधिक अनुकूल पड़ती है या उद्विग्न, यानी मन की उपशमित, विश्रान्त स्थिति या तनाव-खिंचाव की स्थिति। दुनिया के सर्जकों ने शायद दोनों मनस्थितियों में सृजन किया है। मैं स्वयं अपने सृजन की घड़ियों की याद करता हूँ तो लगता है कि मैंने दोनों स्थितियों में लिखा है। दोनों स्थितियों में सृजन की सम्भावना मान लें तो एक दूसरा सवाल उठता है कि किस स्थिति में सृजन ज़्यादा अच्छा होता है, और यहाँ मुझे भय है, सर्जक स्वयं निष्पक्ष निर्णय नहीं दे सकता। समीक्षक शायद बुरे-अच्छे या ज़्यादा अच्छे का विवेचन कर सकता है, किसी हद तक निष्पक्षता से भी, पर वह कैसे जानेगा कि कौन रचना किस मनस्थिति में की गयी, जब तक कि सर्जक ही उसे इसका ज्ञान न करा दे। और सर्जक का ज्ञान सदा विश्वसनीय होगा,

* देखिए 'रेगिस्तान का सफ़र' शीर्षक कविता, मेरे काव्य-संग्रह 'बुद्ध और नाचघर' में।

इसमें मुझे सन्देह है। क्यों ?

क्योंकि सृजन का क्षण सर्जक को अपनी सृष्टि में इतना डुबानेवाला होता है कि उसे यह ज्ञान ही नहीं रहता कि वह किस मनस्थिति में है। सृजन बड़ी पेचीली प्रक्रिया है और मन पारे से भी अधिक चंचल। सृजन आरम्भ होते ही, माध्यम कोई भी हो, सर्जक अपनी सृष्टि का अंग बन जाता है, और मेरा ऐसा अनुभव है, वह अपने मन की स्थिति का न स्वामी रह जाता है, न दास, न भोक्ता ही। सृजन की प्रेरक स्थिति को परिणाम, और परिणाम को सृजन की प्रेरक स्थिति समझना मन के लिए बायें हाथ का खेल है। हो सकता है, उद्विग्न मन विश्रान्ति पाने के लिए ही सृजन करता हो। अंग्रेज़ी में सृजन के लिए एक शब्द compose (कम्पोज़) करना भी प्रयुक्त होता है, विशेषकर संगीत के सन्दर्भ में। Compose होने का अर्थ विश्रान्ति पाना भी है। शायद composed स्थिति पाने के लिए मन compose करना आरम्भ करता हो या compose करते-करते मन composed (विश्रान्त) हो जाता हो। एक ही शब्द के दो अर्थों के बीच कोई सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अनुभव नहीं छिपा, इसे मानने को मैं सहसा तैयार नहीं हो सकता। शायद सारा सृजन ही खिचाव, तनाव अथवा उद्विग्नता की मनस्थिति की उपज हो, विश्रान्त मन सृजन की झंझट में क्यों पड़ना चाहेगा, गो मन इतना अनग्रकथनीय (unpredictable) है कि उससे यह बईद नहीं कि वह बैठे-बिठाये बुलाये कि आ बैल मुझे मार। फिर एक बात और समझ लेनी चाहिए, जो ज़्यादा बारीक है और शायद सर्जक के लिए ही अनुभवगम्य—सृजनशीलता अपने आप में एक तनाव पैदा करती है—कलात्मक तनाव—भाव और अभिव्यक्ति के माध्यम के बीच। यह भी हो सकता है कि सर्जक वास्तविक तनाव के अभाव में तनाव का रस पाने के लिए अपने को एक कलात्मक तनाव में डाल देता हो—विश्रान्ति की स्थिति से तनाव की स्थिति अधिक जीवन्त है, इतना तो मानना ही होगा, फिर उसके 'रस' में क्या आपत्ति हो सकती है !

एक और स्थिति हो सकती है। सृजन से विश्रान्त मन के उद्विग्न होने की बात शायद ही कभी सुनी गयी हो, विश्रान्त मन सम्भवत: सृजन से परम शान्ति को उपलब्ध होता हो—शायद सन्त सर्जकों का ऐसा ही अनुभव हो, और कलात्मक या सृजनात्मक तनाव केवल उस परम शान्ति की पूर्व स्थिति—वास्तविकता तो यही है कि शान्ति का अनुभव परिपूर्ण तभी हो सकता है, जब उसकी पूर्व पीठिका में किसी तरह का तनाव हो, भले ही वह कलात्मक अथवा कृत्रिम ही क्यों न हो।

इस ऊहापोह में तुलसीदास हमारी कुछ सहायता कर सकते हैं। 'मानस' तो सृजन ही कहा जायगा। उसके सृजन के हेतु में तुलसीदास ने दो बातें कहीं—'स्वान्त: सुखाय' और 'स्वान्तस्तम: शान्तये'। 'सुख' से शान्ति का अर्थ सहज ही ले सकते हैं, 'तम' से उद्विग्नता, खिचाव, तनाव, अशान्ति का। कह सकते हैं कि तुलसी ने स्वान्त: तम से सृजन आरम्भ किया, और सृजन करते-करते स्वान्त: सुख को उपलब्ध हुए, गो तुलसीदास ने मानस के आरम्भ में 'स्वान्त: सुखाय' लिखा, और अन्त में 'स्वान्तस्तम: शान्तये:'। सृजन की यात्रा में यह बिलकुल सम्भव है कि यात्री प्रस्थान-बिन्दु पर लक्ष्य की ओर देखे और लक्ष्य पर पहुँचने पर उलटकर प्रस्थान-बिन्दु की ओर।

आप पूछ सकते हैं कि यहाँ इतने विस्तार से सृजन की इस प्रक्रिया की चर्चा करने की क्या आवश्यकता पड़ गयी ? मैं आपसे एक वाक्य में कहना चाहता था कि

केम्ब्रिज में चाहे मैंने कविता लिखी, चाहे डायरी, चाहे शोध-प्रबन्ध, सिवा एकाध अपवाद के, सब कुछ मैंने एक तनाव की स्थिति में किया। हो सकता है, जैसा कि मैंने ऊपर सुझाव दिया है, उस तनाव से मुक्ति पाने को ही मेरा मन यह सब सृजन करता रहा। तनाव की स्थिति में जो लिखा गया, वह किस स्तर का है? वही बग़ैर-तनाव की स्थिति में लिखा जाता तो कैसा होता? तनाव की स्थिति में सृजन न किया जाता तो मेरे मन पर उसका क्या प्रभाव पड़ता?—आदि कई प्रश्न हैं, जिन पर आप भी सोच सकते हैं।

केम्ब्रिज में लिखी मेरी कविताएँ तीन संग्रहों में आ चुकी हैं, डायरी भी प्रकाशित हो चुकी है, मेरे शोध-प्रबन्ध के दो सस्करण हो चुके हैं। इनका आपकी दृष्टि में कुछ मूल्य हो तो उनके पीछे जो तनाव रहे हैं, शायद उनके प्रति भी आपका कौतूहल हो।

अपनी मुझ पर सर्वथैव निर्भरा पत्नी और अपने दो छोटे-छोटे, प्यारे-प्यारे बच्चों को छोड़कर दो बरस के लिए सात समुन्दर पार जा बैठने से जो तनाव मेरे मन में हो सकता था, उसे मैं कितनी ही बार दोहराऊँ, कितनी ही तरह से, उसका पूरा आभास मैं आपको नहीं करा सकता। इसलिए उसे मैं आपकी ही कल्पना पर छोड़ता हूँ। मेरे लिए और तरह के भी तनाव थे। उन तनावों के लिए समय पर मैंने समाज-संसार से लेकर नियति-नियन्ता तक सबको कोसा था। अब समय बीत जाने पर, मैं ऐसा समझने लगा हूँ कि तब जो कुछ मैं उपलब्ध कर सका, चाहे शोध-साफल्य के रूप में, चाहे काव्य के रूप में, चाहे गद्य-रचना के रूप में, वह सब उन तनावों के क़ारण ही सम्भव हो सका—उनकी चुनौती स्वीकार करने से, उनके साथ संघर्ष करने से, उनसे पराजित न होने से और उनकी कटुता और कठोरता से भी अपने लिए—शायद औरों के लिए भी—कुछ प्रेरक, कुछ उत्साहवर्धक सँजो लेने से—

Then, welcome each rebuff
That turns earth's smoothness rough,
Each sting that bids nor sit nor stand
But go!

तो फिर हर अड़ंगे का स्वागत,
जो जिन्दगी के चौरस रास्ते को ऊबड़-खाबड़
बना देता है,
हर ठोकर का (स्वागत), जो कहती है, न बैठो,
न खड़े रहो,
बस आगे बढ़ते चलो।

मुझे 24 महीने प्रवास में रहने और पढ़ाई के खर्च की आवश्यकता थी, और मैं दस महीने का केवल रहने-रहने का खर्च पास में रखकर केम्ब्रिज में बैठा था। जिसे मोटर से किसी ऐसे लम्बे सफ़र पर जाना हो, जिसके रास्ते में पेट्रोल मिलने की कोई सम्भावना न हो, वह निश्चिन्ततापूर्वक तभी अपनी कार चला सकता है, जब उसका टैंक फ़ुल हो। और जिसका टैंक फ़ुल न हो, उसकी आशंका और भय का अनुमान सहज ही किया जा सकता है—न जाने कब कहाँ पेट्रोल खत्म हो जाय और उसे अपनी यात्रा स्थगित कर देनी पड़े। क्या ऐसी मनस्थिति शोध जैसे एकाग्रता माँगनेवाले काम के लिए अनुकूल हो सकती थी?

दो वर्ष केम्ब्रिज में रहने की योजना बनाने के पूर्व मैंने कुछ इस प्रकार सोच-कर अपने को आश्वस्त कर लिया था—बी. एन. कौल ने जिस राशि को इण्डिया हाउस के द्वारा भेजने का वादा किया था, उसे वे वित्तीय वर्ष के अन्त में भेजवा ही देंगे, जिससे मुझे पाँच महीने और रहने का खर्च मिल जायगा। बाक़ी 10,000/= रुपये जो मुझे नौ महीने और केम्ब्रिज में रहने, कालेज की फ़ीस देने, और वापसी सफ़र के लिए चाहिए, उसके लिए मैं शिक्षा मन्त्रालय को प्रार्थनापत्र भेजूंगा। नेहरूजी ने मौलाना आज़ाद से मेरा परिचय करा दिया था, मेरी 'बोनाफ़ाइड'—हिन्दी में क्या कहेंगे, 'नाम-काम-धाम' ?—की तसदीक़ कर दी थी, केम्ब्रिज मैं किसलिए जा रहा था, यह भी उन्हें बता दिया था, साथ ही मेरे प्रति अपनी कृपा नहीं तो सहानुभूति और मेरे कार्य के प्रति अपनी अभिरुचि का संकेत कर दिया था। मैं आशा कर सकता था कि मेरे प्रार्थनापत्र पर अवश्य ध्यान दिया जायगा, पर शिक्षा-मन्त्रालय से उत्तर की प्रत्याशा में केवल दिन बीतते रहे, याद दिहानी के पत्रों का भी कोई असर न हुआ। अन्ततोगत्वा मैंने नेहरूजी को लिखा, पर पत्र जाने और उत्तर आने की सम्भाव्य अवधि के बाद मैंने केवल प्रतीक्षा और निराशा के दिन ही गिने। कारण क्या था ?

मेरे एक मित्र थे जो शिक्षा मन्त्रालय में काफ़ी ऊँचे पद पर काम कर रहे थे। उन दिनों उनकी पोस्टिंग अमरीका-स्थित भारतीय राजदूतावास के शिक्षा विभाग में हो गयी थी, वे श्रीमती पण्डित के प्रिय पात्रों में थे, जो उस समय वहाँ राजदूत थीं।

मित्र किसी निजी या सरकारी काम से भारत जा रहे थे और दो-चार दिनों के लिए लन्दन रुके थे। मुझे उनके कार्यक्रम का पता लगा तो मैं लन्दन जाकर उनसे मिला। कई घण्टे उनके साथ रहा, बहुत दिनों बाद उनसे मिलना हुआ था, अपने-अपने अतीत, वर्तमान, और भविष्य की योजनाओं के विषय में एक-दूसरे को बहुत कुछ कहना-सुनना था।

मैं अपना शोध-कार्य पूरा करने को दो वर्ष केम्ब्रिज में रह रहा हूँ, मेरी इस बात को उन्होंने कुछ सन्देह की मुद्रा से सुना, जैसे भीतर-भीतर कह रहे हों, ग़ैरों से कहने के लिए यह अच्छा है, पर अपने दोस्त से ही क्यों छिपाने की कोशिश करते हो ?

आखिर उनसे न रहा गया। बोले, 'अमरीका में फ़लाँ से तो तुम्हारे बारे में मैं कुछ और ही सुनकर आया हूँ कि तेजी से तुम्हारा विवाह-सम्बन्ध विच्छेद होने की सीमा पर पहुँच गया है, कि तुम इलाहाबाद की एक मुसलमान लड़की के प्रेम में हो जो आजकल इंग्लैण्ड में है और उसीके साथ शादी करके तुम यहीं व्यवस्थित होना चाहते हो, कि तेजी के भरण-पोषण के लिए तुमने कुछ भी वहाँ नहीं छोड़ा, यहाँ तक कि अपने छोटे-छोटे बच्चों का भी कुछ ख्याल नहीं किया। इसीलिए तेजी किसी प्रकार की नौकरी की खोज में है।'···

मेरी स्मृति सहसा बारह बरस पीछे जाकर घटनाओं के अम्बार को खुलि-हारने लगी।

उस मुसलमान लड़की का जन्म एक उदार सम्भ्रान्त परिवार में हुआ था, शिक्षा उसकी कान्वेण्ट में हुई थी, पर विवाह उसका एक निहायत दक़ियानूसी परिवार में हो गया। ससुराल कारागार हो गयी, जिससे निकलने को वह तड़प रही थी। तभी किसी ने उसका परिचय मुझसे कराया था। परिचय ने निकटता का रूप लिया। किसी क्षण में अपनी बेड़ियों से त्राण पाने को उसने मेरी ओर भी देखा था,

सम्भवत: मुझे अपने उन दिनों के अन्धकार से त्राण दिलाने के लिए भी। और एक-दो बार उसने मेरे 9-ए, बेली रोड में आकर मेरे एकाकीपन को सहलाया भी था। उसके आगे कुछ नहीं···

क्या मैंने उसकी चर्चा कभी किसी से की थी? की हो तो कुछ अस्वाभाविक नहीं। किसी ख़ास नारी से उपेक्षित हो, किसी आम नारी को आकर्षित करने का गर्व पुरुष शायद ही छिपा पाता हो। घटित ठहर गया था पर कथित चलता गया था। कहानियाँ मेरे साथ 'मधुशाला' की रचना के समय से ही जुड़ने लगी थीं और कभी-कभी वे बड़ी ही अजीबो-ग़रीब शक्ल में मेरे कानों तक पहुँचती थीं और एक दिन उनसे खिन्न होकर मैंने लिखा था, 'आकुल अन्तर' की पंक्ति है, 'नहीं यह कोई बात नयी; जहाँ कहीं मैं गया कहानी मेरे साथ गयी।'

मैंने मित्र को विश्वास दिलाया कि जो उन्होंने सुना है उसमें कोई तत्त्व नहीं। बातें बहुत से कानों, ज़बानों पर उतरती-चढ़ती एकदम विकृत हो गयी हैं। मेरे लिए तो कब की समाप्त, पर मुझमें रुचि रखनेवाले न जाने किस कारण उन्हें अपनी स्मृति में बनाये, दुहराये, अदलते-बदलते चले जाते हैं।

मित्र को मेरी बातों पर विश्वास नहीं हुआ।

किसी अन्य परिस्थिति में मित्र की बात सुनकर शायद मैं हँसकर टाल देता। पर उन दिनों मैं जिन मानसिक तनावों में था, उसमें मैं बहुत उद्विग्न हुआ। अब तो उस उद्विग्नता की साक्षी 'कड़ुआ अनुभव'* की पंक्तियाँ हैं जो मैंने उस समय लिखी थी।

कुछ दिनों के बाद मित्र वही कहानी दिल्ली की एक पार्टी में सुना रहे थे जिसमें नेहरू-पण्डित परिवार के सदस्य उपस्थित थे।

सुननेवालों में थे इलाहाबाद के मेरे एक मित्र भी।

उन्होंने वहाँ से लौटकर सारी बातें तेजी को बतायीं।

तेजी अपनी छोटी-मोटी परेशानियाँ, जो दिनानुदिन के जीवन में खड़ी ही हुआ करती थीं, मुझे न लिखती थीं, पर इस अफ़वाह को वे मुझसे न छिपा सकीं।

मुझमें उनका इतना दृढ़ विश्वास था कि इस पर अपनी प्रतिक्रिया बतलाते हुए उन्होंने मुझे लिखा था कि अगर ईश्वर भी आकर मेरे सामने ऐसा कहता तो मैं उससे फ़ौरन कहती कि तू झूठा है।

फिर भी उसकी सच्चाई की आशंका का एक सूक्ष्म सूत्र उनके पत्र में मौजूद था, जिसने उनकी शब्दावली को कातर कर दिया था।

तेजी की तेजी—जो वे कभी-कभी दिखा ही जाती थीं—तो मैं बर्दाश्त कर जाता था, वह मुझे प्रिय भी हो गयी थी पर उनकी विनम्रता, उनका दैन्य भाव, उनके साश्रु नयन मेरे लिए असह्य थे। मैंने तेजी को एक छोटा-सा पत्र लिखा, पर एक-एक शब्द जैसे अपने रक्त से कि उनकी सच्चाई में मेरे शत्रु को भी सन्देह न हो।

पर उन्हें आश्वस्त करने से अधिक मैं स्वयं अपने को आश्वस्त करना चाहता था।

मित्र ने कहाँ-कहाँ यह कहानी न सुनायी होगी? क्या शिक्षा मन्त्रालय में भी नहीं?

क्या उन्हें पता न होगा कि मेरा प्रार्थनापत्र वहाँ पहुँचा था, एक बड़ी

---

* देखिए 'कड़ुआ अनुभव' शीर्षक कविता, मेरे काव्य-संग्रह 'बुद्ध और नाचघर' में।

आवश्यक माँग के लिए, जिस पर मेरा भविष्य निर्भर था ?

क्या उन्हें इसका ध्यान न होगा कि यह कहानी मेरे कितने विरुद्ध जायगी ?

क्या वे जानबूझकर मेरा अहित करना चाहते थे ?

क्या मैंने कभी उनका अहित किया था, और वे मुझसे अपना बदला चुका रहे थे ?

नहीं, नहीं, मैंने उनके साथ कुछ असाधारण भलाई की थी। इसीलिए मेरे साथ कुछ बुरा करना उनके लिए स्वाभाविक था :

> **हमें भी आ पड़ा है दोस्तों से काम कुछ यानी**
> **हमारे दोस्तों के बेवफ़ा होने का वक़्त आया।** —हरीचन्द अख़्तर

मनस्विद कहते हैं, जिसके साथ तुम उपकार करते हो, वह दबता है, हीन भावना ग्रस्त होता है, अपने में अपमानित, लज्जित अनुभव करता है और इस कारण वह तुम्हें अपमानित-लज्जित करने का अवसर ढूँढ़ता है। किसी के प्रति कुछ उपकार करो तो उसे भी अपने प्रति कुछ उपकार करने का अवसर दो, वर्ना तुम उसे अपकार करने का अवसर दोगे। कहते हैं, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की किसी ने बड़ी बुराई की तो उन्होंने अपनी डायरी खोलकर देखी कि आश्चर्य है, इस आदमी के साथ तो मैंने कभी कोई भलाई नहीं की।

शिक्षा मन्त्रालय और प्रधानमन्त्री-सचिवालय के मौन का रहस्य खुल गया। मेरी कहानी की प्रतिध्वनियाँ शायद वहाँ पहुँच गयी थीं। एक कहावत प्रसिद्ध है, अफ़सर के आँख नहीं होती, केवल कान होते हैं।

कुछ दिनों बाद शिक्षा मन्त्रालय से पत्र मिला, सौ पौण्ड आपके लिए भेजे जा रहे हैं, अगर विदेश में अपने खर्च पर आप अपनी पढ़ाई न कर सकें तो इस राशि से अपने लौटने का प्रबन्ध कर लें।

प्रधानमन्त्री-सचिवालय से पत्र मिला कि आपसे दो सौ पौण्ड भिजवाने का जो वादा किया गया था, वह भेजा जा रहा है, आगे यहाँ से किसी प्रकार की सहायता की आशा न रक्खें।

बीबी का पंजा पकड़कर तो मैंने पहुँचा पकड़ लिया था, पर जब मैंने सरकार का पंजा पकड़कर पहुँचा पकड़ना चाहा तो उसने हाथ झटककर मुझे अँगूठा थमा दिया। क्या उसके कानों में मित्र ने कुछ कह दिया था ?

मेरा अनुमान ग़लत नहीं था।

सबूत जल्दी मिल गया।

थोड़े दिनों बाद नेहरूजी केम्ब्रिज आये। अवसर था—रानी एलिज़ाबेथ द्वितीय का राज्यारोहण समारोह। उन्हें उस अवसर पर केम्ब्रिज युनिवर्सिटी की तरफ़ से डाक्टर आफ़ ला की मानद उपाधि दी गयी थी, टामस मन को डाक्टर आफ़ लिटरेचर की, ऐसी उपाधियाँ पानेवालों में और कई विश्वविख्यात विभूतियाँ थीं।

मैंने पण्डितजी से मिलने का समय माँगा। खड़े-खड़े दो मिनट उन्होंने मुझसे बात की—उनकी मुद्रा से मुझे लगा, जैसे उन्हें मेरे बारे में कुछ सन्देह हो, पर जिसका निवारण वे मुझसे ही कर लेना चाहते हों, साथ ही ऐसी सहज मुसकान बिखेरते हुए जिसके सम्मोहन में केवल सच-सच कहना ही सम्भव हो।

'तुम अभी तक यहीं हो ! पहले तो इतने दिन ठहरने का इरादा नहीं था !

क्या कर रहे हो यहाँ पर ?'

'यहीं पर अपना शोध-कार्य पूरा कर लेने का इरादा बन गया और उसके लिए यहाँ दो बरस रहना ज़रूरी है।'

'मैंने तो कुछ और बातें सुनी हैं तुम्हारे बारे में।'

इस वाक्य के साथ पण्डितजी ने सीधे मेरी आँखों में अपनी आँखें डालीं, जैसे वे मेरे बिना कुछ कहे हुए भी मेरे मन की बात जान लेंगे।

काश, उनके पास कुछ समय होता और अकेले में बैठकर मैं उनको अपनी तरफ़ से सफ़ाई दे सकता। पर समय उनके चारों ओर तेज़ी से भाग-दौड़ रहा था। कितने ही लोग थोड़े-से फ़ासले पर खड़े थे, उनकी ओर उत्सुकता से देखते हुए कि वे उन्हें परिचय-पहचान की मुस्कान दें और वे उनसे दो बातें कर लें। मेरे मुँह से सिर्फ़ एक वाक्य निकला था—

'सच्चाई किसी दिन खुलेगी···।'

मेरे इन शब्दों से उनकी सुनी हुई बातों का प्रतिकार उनके चहरे पर रजिस्टर हो, इसके पूर्व ही पास खड़ी किसी लड़की ने अपनी आटो-ग्राफ़ बुक उनकी ओर बढ़ा दी थी, और नेहरूजी ने उस पर अपने हस्ताक्षर करने के बजाय उसके गाल पर एक हल्की-सी चपत लगा दी थी। मैं उन्हें प्रणाम कर पीछे हट आया था। उस चपत में क्या मेरे लिए भी कुछ संकेत था ?

फिर मैंने आर्थिक सहायता के लिए न उन्हें लिखा, न शिक्षा मन्त्रालय को।

केम्ब्रिज में दो बरस रहकर वहीं अपना शोध-कार्य पूर्ण करने की योजना मैंने जिस आर्थिक आधार पर बनायी थी, वह मुझे इस तरह दग़ा दे जायगी, इसकी कल्पना मैंने नहीं की थी, फिर भी केवल आर्थिक कारणों से मैं अपनी योजना को छोड़ने के लिए तैयार न था। इस योजना को पूर्ण करने के लिए बहुत-सी ऐसी बातें करनी थीं जिनमें अर्थ की बड़ी से बड़ी राशि सहायक नहीं हो सकती थी। उनके लिए अपने को तैयार करके, उनके लिए अपने में क्षमता का विश्वास जगा करके, उनके लिए अपने निकटस्थों से वांछित सहयोग का आश्वासन पा करके यदि मैं कुछ चाँदी के टुकड़ों के अभाव में अपनी योजना को अधूरी छोड़ने के लिए बाध्य होता तो इसे मैं अपने जीवन की सबसे दयनीय त्रासदी समझता।

फिर भी इतना तो सीख ही चुका था कि दुनिया में जहाँ चाँदी के टुकड़े काम आते हैं, वहाँ कोई दूसरी चीज़ काम नहीं आती।

मेरे कार्य ने मेरी योग्यता-क्षमता को चुनौती पहले ही दे रखी थी। अब दुनिया ने मेरे चरित्र को भी चुनौती दी थी। इस कलंक को मैं अपने कार्य की सफलता से ही धो सकता था। मैंने निश्चय किया, अब मैं अपने बल पर उन चाँदी के टुकड़ों को जुटाऊँगा जो मेरे काम के लिए आवश्यक हैं :

'निज भुज बल मैं बैर बढ़ावा'

मैंने अपने क़लम की ओर देखा।

जो अप्रत्याशित परिस्थिति मेरे सामने आ पड़ी थी, उसकी चुनौती तेजी ने अपने स्वभाव के अनुरूप और ज़्यादा तेज़ी से ली। उन्होंने फ़ौरन मुझे लिखा, आप अपना काम करते जायें, आपको जितने खर्च की ज़रूरत पड़ेगी, मैं आपको भेजूंगी।

शायद उन्होंने अपने ज़ेवरों की ओर देखा।

मैंने अपने प्रकाशक से 'सोपान' के प्रकाशन की बात फिर चलायी। अगर वे 5000/= अग्रिम रायल्टी नहीं दे सकते तो कुछ कम कर सकते हैं। बात 3000/= पर तै हो गयी। तेजी ने 2000/= अपने पास से मिलाकर मुझे 5000/= भेज दिये। उन्होंने तो और भेजने का आश्वासन दिया था, पर मैंने यह अन्तिम राशि उनसे ली, मेरा अन्दाज़ था, अब कम ही पैसे उनके पास बचे होंगे। अब अधिक-से-अधिक किफ़ायत करके देखना था कि अपने अनुमान से कितने कम पर मैं अपना काम चला सकता हूँ, गो अपने क़लम के बल पर कुछ और कमा सकने की योजना भी मेरे दिमाग़ में चल रही थी।

केम्ब्रिज में अपने काव्य-सृजन की चर्चा मैंने अभी तक नहीं की, पर इस दर्जे पर वह अनिवार्य हो उठी है।

मैंने 'नीड़ का निर्माण फिर' में संकेत किया था कि मैं अपनी प्रस्तावित 'प्रणय पत्रिका' के द्वारा राग का एक दर्शन प्रतिपादित करना चाहता था। मेरी वह योजना पूरी नहीं हुई। आज लगता है कि बहुत अच्छा हुआ जो मेरी वह योजना पूरी नहीं हुई। मैं एक बड़ा ख़तरनाक काम करने जा रहा था। दर्शन कितना ही गम्भीर-सूक्ष्म क्यों न हो, वह जीवन नहीं हो सकता; जीवन का स्थानापन्न नहीं हो सकता। दर्शन के प्रतिपादन में इस बात का बड़ा भय था, सम्भावना तो थी ही कि मेरा सृजन वैचारिक अथवा मानसिक स्तर से होने लगता, अनुभूतियों के अथवा जैविक प्राणों के स्तर के विपरीत। उस स्तर से मैंने कभी नहीं लिखा था, लिखता तो निश्चय असफल होता, कम-से-कम मुझे तो उससे सन्तोष न होता। उसमें बारीकी होती, कला होती, अभिव्यक्ति की सफ़ाई होती, परिष्कार-निखार होता, एक स्वीकृत, मान्यताप्राप्त मानदण्ड से शायद उसे उच्चकोटि की कविता की श्रेणी में मान लिया जाता, ऊँची कक्षाओं के पाठ्यक्रम में रखने योग्य, पर उसमें ज़िन्दगी का सबूत देनेवाली साँसें न होतीं, उसके पदों, उसकी लयों में रक्त दौड़ता हुआ न प्रतीत होता, उसके वाङ्मय शरीर में जीवन का ताप न महसूस होता—जीवन का स्पन्दन। विदेश पहुँचने पर मेरी जिन मानसिक अथवा भौतिक परिस्थितियों ने मुझे लिखने को विवश किया, उन्होंने और कुछ न किया हो, एक बार फिर मुझे जीवन से जोड़ दिया। मैं जीवन की खुरदुराहट को, यहाँ तक कि उसके भदेसपन (भनिति भदेस) को कला की चिकनाहट पर तरजीह देता हूँ, दर्शन की अरूपता, वायवीयता पर तो सौ-सौ बार। जीवन का जीवन्त स्वर ही कविता, नहीं तो कविता मुझे बख़्शे।

मेरे अन्दर कहीं जो एक ठोस कर्मठ बैठा है, वह कविता को—काव्य-रचना को—जीवन का विलास (Luxury) मात्र समझता है। जब वह जागता है, सक्रिय होता है, तब वह मेरे कवि को एक कोने में ले जाकर बिठा देता है— अब आप थोड़ी देर के लिए चुप रहिये। पर मेरा कवि भी बड़ा ज़िद्दी है, मेरा कर्मठ ज़रा-सा ग़ाफ़िल हुआ नहीं कि वह खिसककर बीच कमरे में पहुँच जाता है और अपना राग अलापने लगता है। 'अपना' कहने में ही भूल हो गयी। राग उसका अपना नहीं होता। उसमें मेरा कर्मठ अपने ही अन्तर की प्रतिध्वनि सुनने लगता है, इसलिए उसका विरोध नहीं कर पाता।

एम. ए. (फ़ाइनल) की तैयारी करते समय, मेरे पाठकों को याद होगा, मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि अब जब तक परीक्षाएँ समाप्त नहीं हो जातीं, मैं कविताओं को हाथ नहीं लगाऊँगा, पर नतीजा क्या हुआ था ? परीक्षा के ठीक पहले कविता

की पंक्तियाँ मेरे दिमाग़ में गूँजने लगी थीं और बिना उन्हें रूप दिये मैं अपने मन को पाठ्यक्रम की ओर एकाग्र नहीं कर पाता था।

बारह बरस बाद मैं वही ग़लती फिर दुहराने चला था।

मैं एक सीमित समय में एक सीमित उद्देश्य पूरा करने के लिए विदेश जा रहा था। मैंने समझा था कि मैं अपने शोधक, अध्यापक, अधिक-से-अधिक कविता के विद्यार्थी-पारखी को साथ लेकर जा रहा हूँ, अपने कवि को पीछे ही छोड़े जा रहा हूँ, पर मेरा कवि मेरे दिमाग़ की किसी परत में छिपकर केम्ब्रिज पहुँच गया था।

हवाई जहाज़ी यात्रा के कारण जिस तेज़ी से मैं अपने स्नेह-सुगठित परिवार से बीस घण्टे के अन्दर छह हज़ार मील की दूरी पर फेंक दिया गया था, उसमें मेरा भावाकुल होना स्वाभाविक था। अगर मैं चौबीस-पचीस की रूमानी उम्र में अपने को ऐसी स्थिति में पाता तो बड़े आँसू बहाता, बड़ी आहें भरता, रामगिरि आश्रम में पड़े विरही यक्ष के समान। यक्ष निश्चय अपनी जवानी में शापग्रस्त हुआ होगा। कहते हैं, यक्ष सदा जवान रहते हैं। न भी होते तो कालिदास उन्हें बना देते। कम-से-कम अपने यक्ष को उन्होंने ऐसा ही बना दिया है। यह तो मैं नहीं कहूँगा कि अपनी 45 वर्ष की अवस्था में मैं कम भावुक या कम भावप्रवण हो गया था, पर मेरा विवेक इतना अवश्य जग गया था कि भावनाओं पर अंकुश लगा सके, उन्हें अपने इच्छाबल से दबाकर रख सके। और इन्हीं दबी भावनाओं की परतों में ही तो मेरे कवि को छिपने की जगह मिल गयी। भावनाएँ एक सीमा के बाद कोई दबाव सहन नहीं कर पातीं, और जब-जब ये सीमाएँ टूटीं, मेरे कवि को शब्दों में मुखरित होना पड़ा।

मुझे अच्छी तरह याद है, केम्ब्रिज में मैंने अपनी पहली कविता विश्वा के जन्मदिन पर लिखी थी।* 'कवियों की क़ौम होती है बड़ी बदज़ात, लिखें वे किसी पर, करते हैं अपनी ही बात।'—इस कविता में भी मैंने जीवन में गम्भीरता की वकालत की थी, जो मेरे स्वभाव का अंग थी ही, और जिसे केम्ब्रिज के गम्भीर वातावरण में और प्रश्रय मिला था। विश्वा और उनकी पत्नी कमला ने जो स्नेह, सद्भाव, समादर मेरे प्रति दिखाया था, उससे मैं दिन-प्रतिदिन उनके निकट आता गया था। किसी दिन, न जाने किस प्रसंग में विश्वा के जन्मदिन की चर्चा आ गयी और अनायास मेरे मुँह से निकल गया, 'विश्वा, तुम्हारे जन्मदिन पर मैं तुम्हें एक कविता लिखकर दूँगा।'

कविता क्या मैंने लिखकर दी, पण्डोरा का बाक्स ही खोल दिया। यूनानी दन्तकथा के अनुसार पण्डोरा एक स्वर्ग-बाला थी, जिसे देवताओं ने प्रोमीथियस के भाई एपीमीथियस की पत्नी के रूप में भेजा था और दहेज में उसे एक सन्दूक दिया था पर उसे खोलने की मनाही कर दी थी। नारी-सुलभ कौतूहल से एक दिन पण्डोरा ने यह देखने को कि उस वर्जित बाक्स के अन्दर क्या है—वर्जित फल में एक अतिरिक्त आकर्षण होता ही है—उसका ढक्कन उठा दिया था और मानव की सारी आपदा-विपदाएँ उसके अन्दर से निकल-निकलकर संसार में फैल गयी थीं। सबके नीचे 'आशा' थी। इसके पूर्व कि वह भी निकले, पण्डोरा ने ढक्कन छोड़ दिया था, और वही 'आशा' अब मनुष्य की सारी दुरवस्थाओं में उसे सँभालती है। विश्वा के जन्मदिन पर लिखी रचना से मैंने कविता के बाक्स का

* देखें '....का जन्मदिन' शीर्षक कविता, 'बुद्ध और नाचघर' में।

ढक्कन ढीला कर दिया था और अपने प्रवास भर उसे बन्द न कर सका। जैसे पण्डोरा के बाक्स से 'आशा' मात्र न निकल पायी थी वैसे ही मेरे बाक्स से भी शोधकार्य पूरा करने की लगन न निकल पायी थी। उसी ने मेरी काव्य-रचना पर यत्किंचित नियन्त्रण रक्खा, वर्ना मैं थीसिस लिखने के बजाय दो-चार कापियाँ कविता से भरकर लौट आता, और लोगों को कहने का मौक़ा मिलता—'गये रहे हरि-भजन को ओटन लगे कपास।' ग़नीमत यह हुई कि मैं हरि-भजन भी करके लौटा और 'कपास ओटन' करके भी, पर इन दोनों में कितनी कशमकश मैंने झेली, इसे मैं ही जानता हूँ।

हरि-भजन तो बड़ा सरस हो सकता है, पर अपने शोध के सम्बन्ध में अतार्किकता का जो साहित्य मुझे पढ़ना पड़ता था, उससे अधिक शुष्क और नीरस से कभी मेरा साबक़ा न पड़ा था। वह तो मरुभूमि के बीच यात्रा करने जैसी अनुभूति थी, जहाँ न कहीं हरी घास, न शीतल छाया, न कहीं जल-धार, न विहगों का स्वर-विहार, न कोई संगी, न साथी। ऐसे यात्री के लिए अपना मन बहलाने को कभी-कभी गा लेना कितना ज़रूरी था! उस परिस्थिति में अपने को रखकर ही शायद यह महसूस किया जा सके कि

'होगा सबसे बड़ा वरदान
मेरे सफ़र में गाया हुआ गान'

और कुछ ऐसी घटनाएँ भी घटती रहीं, अपने सर्वथा प्रतिकूल, सर्वथा विरुद्ध, और उनका प्रतिकार करने में मैं अपने को सर्वथा असमर्थ पाता रहा, सिवा इसके कि अपने कुछ शब्दों से अपने भीतर की भड़ास निकाल लूँ या अपने अन्दर किसी सैद्धान्तिक शक्ति का संचार कर लूँ। मेरे मित्र ने मेरे बारे में जो अफ़वाहें फैलायी थीं और उनका जो दुष्परिणाम मुझे भोगना पड़ा था, वे ऐसी ही घटनाएँ थीं और उन्हीं की प्रतिक्रिया में 'कड़ुआ अनुभव' और 'दोस्तों के सदमे' जैसी कविताएँ लिखी गयी थीं।*

मैंने केम्ब्रिज-प्रवास में सौ से ऊपर कविताएँ लिखीं। आप घबराय नहीं कि मैं हर एक कविता की पृष्ठभूमि आपको बताने जा रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि केवल कविताओं की बातें बहुत-से लोगों को रुचिकर नहीं होतीं। 'नीड़ का निर्माण फिर' के बहुत-से पाठकों की यही शिकायत थी कि उसमें मैं अपने कवि के प्रति अधिक सचेत हो गया हूँ। मैं यहाँ केवल एक ही बात कहना चाहता हूँ कि केम्ब्रिज में बैठकर मैंने जितनी भी कविताएँ लिखीं, हर एक के पीछे एक ठोस घटना है, ठोस जीवनानुभूति है, ठोस पृष्ठभूमि है, ठोस मनोभूमि है—और यह बात मेरी प्रायः सभी कविताओं पर लागू है। इस आधार से जो अभिव्यक्ति हुई है, उसे कोई कविता माने, न माने, अच्छी कविता माने या बुरी कविता माने, मेरे लिए कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। मैंने अपनी भावनाओं के विस्फोट से, अनुभूतियों की कचोट से ही अपना क़लम चलाया है, अपनी ज़बान खोली है। क़लम चलाने और ज़बान खोलने की कला की अनेक श्रेणियाँ हैं, इससे मैं अनभिज्ञ नहीं हूँ। आप श्रेणियों की ऊँचाई-नीचाई की जाँच-पड़ताल करें, मैं तो जीवन की सच्चाइयों से चिपका अभिव्यंजन-कला की निम्नतम श्रेणियों पर भी सन्तुष्ट हूँ। सच कहूँ तो जीवन की कविता को सँवारने से कभी मुझे फ़ुरसत ही न मिल सकी कि शब्दों की कविता को सँवारूँ।

---

* देखिए : 'बुद्ध और नाचघर'।

वह तो सहज-स्वाभाविक गति से जैसी निकल गयी, निकल गयी।

केम्ब्रिज में हर बार कविता लिखकर मुझमें एक अपराध की भावना जागती थी कि जो समय मुझे शोध-कार्य को देना था, वह मैं अन्यायत: कविता को दे रहा हूँ, फिर भी मैंने काव्य-प्रेरणा के क्षणों पर अधिक नियन्त्रण नहीं रखा था। मेरे पास जितने पैसे थे, उतने से काम न चला तो मुझे अपना एक और संग्रह तैयार कर रखना था, अग्रिम रायल्टी पर देने को या उसका कापीराइट बेच देने को। कुछ छन्दोबद्ध कविताएँ केम्ब्रिज आने के पूर्व मैंने लिख रखी थीं, केम्ब्रिज में मैंने कुछ मुक्त छन्द की कविताएँ लिखीं। सोचा था, दोनों को मिलाकर, कुछ अजीब-सा नाम देकर, 'कुछ टूटे कुछ साबित' छपने के लिए तैयार कर दूँगा। सद्य: उपयोग इन कविताओं का यह भी था कि इन्हें भारत भेज देता था और वे वहाँ के मासिक-साप्ताहिकों में प्रकाशित हो जाती थीं और उनका थोड़ा-बहुत पारिश्रमिक तेजी को मिल जाता था। जब वहाँ आमदनी के सारे ज़रिये बन्द हो गये थे—प्रकाशक ने 'सोपान' पर अग्रिम रायल्टी क्या दी थी, शेष पुस्तकों पर सालाना रायल्टी भी बन्द कर दी थी—तब तेजी के लिए पारिश्रमिक-रूप में मिले एक-एक पैसे की क़ीमत थी। प्रस्तावित संग्रह प्रकाशक मेरी शर्तों पर लेने को तैयार न हुए और उनकी शर्तों पर मैं देने को मजबूर भी न रहा। मेरी आर्थिक आवश्यकताएँ कुछ और तरीक़ों से पूरी हो गयीं।

थी नवामोज़ फ़ना हिम्मते-दुश्वार-पसन्द,
सख़्त मुश्किल है कि यह काम भी आसाँ निकला

वास्तविकता यह है कि शोध-कार्य को साधना इतना मुश्किल था कि उसके सामने आर्थिक कठिनता आसान ही लगी।

केम्ब्रिज के पुराने विद्यार्थियों ने मुझे बताया था कि वहाँ रहनेवालों को एक ख़ास बीमारी होती है जिसे 'थाइसिस' के जोड़ पर 'केम्ब्रिजाइटिस' कहते हैं। केम्ब्रिज में लगातार बहुत दिनों तक—यानी दो-तीन महीने—रहनेवालों पर अचानक एक उदासी का दौरा आता है, जिसमें वहाँ के वातावरण का सारा गाम्भीर्य जैसे छाती पर बैठ जाता है, उस समय न वहाँ भूख लगती है, न नींद आती है, न पढ़ने में मन लगता है, न किसी का संग-साथ सुहाता है, यहाँ तक कि केम्ब्रिज का प्राकृतिक सौन्दर्य भी उस स्थिति से उबारने में कारगर नहीं होता। उसकी दवा केवल एक है कि दो-चार दिनों के लिए आदमी केम्ब्रिज से बाहर चला जाये। लौटने पर दिमाग़ तरोताज़ा मालूम होता है और केम्ब्रिज एक नयी तरह से आकर्षक और सुन्दर प्रतीत होता है।

केम्ब्रिज में मुझे भी इस प्रकार के दौरे कई बार आये, हालाँकि कारण मेरे लिए केम्ब्रिज का लगातार निवास ही नहीं था। और मैंने बीच-बीच में ब्रिस्टल, मानमथ, ब्लैकपूल, लेक डिस्ट्रिक्ट, स्टोक्स (जहाँ मार्जरी बोल्टन का घर था) और हेक्सम (जहाँ वह काम करती थी) की यात्रा की। अधिक के लिए न मेरे पास पैसे थे, न मेरे पास समय था, और न शायद मेरी आवश्यकता ही थी। 'केम्ब्रिजाइटिस' से त्राण दिलाने के लिए निश्चय मेरी कविता-कल्पना की यात्राएँ कम सहायक नहीं सिद्ध हुई होंगी—

हर रात तुम्हारे पास चला मैं आता हूँ।

जब घन अँधियारा तारों से ढल धरती पर
आ जाता है,
जब दर-परदा-दीवारों पर भी नींद-नशा
छा जाता है,
तब यन्त्र-सदृश अपने बिस्तर से हो बाहर
चुपके-चुपके
हर रात तुम्हारे पास चला मैं आता हूँ।
समतल भू-तल, बत्ती की पाँतों के पहरे
में सुप्त नगर,
अम्बर को दर्पण दिखलाते सरवर, सागर,
मधुबन, बंजर,
हिम-तरु-मण्डित, नंगी पर्वत-माला, मरुथल,
जंगल, दलदल,
सबकी दुर्गमता के ऊपर मुसकाता हूँ।
हर रात तुम्हारे पास चला मैं आता हूँ।

केम्ब्रिज से बाहर पाँव रखते ही मेरा कार्य मुझे पीछे खींचने लगता था और मैं जल्दी-से-जल्दी वापस लौटने के लिए आतुर हो उठता था, सिवा इसके कि जब मैं लन्दन जाता था, क्योंकि वहाँ जाना सिर्फ़ तफ़रीह के लिए नहीं होता था, बल्कि ब्रिटिश म्यूज़ियम के पुस्तकालय में काम करने के लिए।

कई तरह के मानसिक व्याघातों के बीच भी मैं अपना शोध-कार्य एक सन्तोष-जनक ढर्रे पर चलाये जा रहा था, पर दुर्भाग्यवश उसके रास्ते में भी एक बाहरी अवरोध आकर खड़ा हो गया। मुझे हेन का निर्देशन पाँच-छह महीने ही मिला था कि उनके लिए अमरीका से एक व्याख्यान-परियात्रा (Lecture tour) का निमन्त्रण आ गया और वे युनिवर्सिटी से चार महीने की छुट्टी लेकर चले गये। उनके जाने के समाचार से मैं बड़ा दुखी हुआ। उससे निश्चय मेरे काम में बाधा पड़नी थी। जब मुझे दो वर्ष के अन्दर अपने शोध की लम्बी यात्रा तै कर लेनी थी, तब मेरे लिए उनके एक-एक दिन के पथ-प्रदर्शन का मूल्य था और हेन 120 दिनों के लिए मुझे बीच रेगिस्तान में दिग्विमूढ़ छोड़कर यू. एस. ए. चले जा रहे थे! पर उन्हें मैं रोक भी कैसे सकता था! युनिवर्सिटी की ओर से उनके स्थान पर मि. ग्राहम हफ़ मेरे निर्देशक नियुक्त हुए। हेन के बाद वही केम्ब्रिज में ईट्स के सबसे बड़े विशेषज्ञ माने जाते थे। वे क्राइस्ट कालेज (जिसमें किसी समय मिल्टन रहा करते थे) के फ़ेलो और युनिवर्सिटी में अंग्रेज़ी साहित्य के लेक्चरर थे। हेन जाते समय मुझे आश्वस्त कर गये थे कि उन्होंने हफ़ को मेरे कार्य की दिशा और प्रगति से अवगत कर दिया है और वे मेरे काम को आगे बढ़ाने में समुचित सहायक हो सकेंगे।

हफ़ हेन से उम्र में कुछ कम ही होंगे, क़द-काठी में उनसे उन्नीस नहीं बल्कि पन्द्रह-सोलह। पिछले महायुद्ध में वे पूर्वी मोर्चे पर बन्दी बना लिये गये थे और उन्हें कई वर्षों तक जापानियों की क़ैद में रहना पड़ा था, जिसका असर उनके स्वास्थ्य पर ही नहीं पड़ा था, उनके दिमाग़-स्वभाव पर भी। उनके सिर पर असमय गंज आ गयी थी और उनके चेहरे पर झुर्रियाँ। वैसे वे ऐंग्लो-सैक्सन रेस के थे जो अपनी

प्रकृति से ही अपने में खिंचे और अपने अन्दर ही सिमटे रहने में एक प्रकार के गर्व का अनुभव करते हैं। उनका-मेरा सम्बन्ध निर्देशक-शोधार्थी की औपचारिक सीमा से कभी ऊपर न उठ सका।

उनके सम्पर्क में आने के पहले ही मैं अपने शोध-विषय की सीमाएँ बना चुका था। भारतीय प्रभाव ईट्स पर पड़ा ही था, इसके अतिरिक्त उन पर मुख्य प्रभाव थे—कब्बाला के, स्वीडेनबार्ग के और जैकब बेहमेन के। मडाम ब्लावाट्स्की की थियोसोफ़ी के प्रभाव में वे अपनी युवावस्था में ही आ गये थे, पर अपनी बढ़ती उम्र के साथ उसके सम्बन्धों से वे बराबर इन्कार करते रहे, हालाँकि मेरा ऐसा अनुमान था कि अपने दर्शन के मूल तत्व उन्होंने मडाम ब्लावाट्स्की से ही लिये थे। इसे सिद्ध करने के लिए मुझे सबूत खोजने थे। इस दर्जे तक मैं अपना ध्यान इसी पर केन्द्रित कर रहा था कि इन तत्वों से ईट्स के मस्तिष्क का निर्माण किस रूप में हुआ था या उनकी विचार-प्रक्रिया किन तन्तुओं को पकड़कर चलती थी। मैं अपने पाठकों को याद दिला दूँ कि मैंने W. B. Yeats : His Mind and Art (डब्ल्यू. बी. ईट्स : उनका मनस् और उनकी कला) पर शोध आरम्भ किया था। और इस आरम्भिक चिन्तन के कारण, अब भी मेरा मुख्य आकर्षण ईट्स के 'माइण्ड' की ओर था।

हालाँकि हफ़ को मालूम था कि वे केवल चार महीने के लिए मेरे निर्देशक नियुक्त हुए हैं, फिर भी उन्होंने मेरे कार्य में पूरी तरह रुचि ली। उन्होंने सबसे पहले मेरे शोध-प्रबन्ध की रूप-रेखा माँगी और इलाहाबाद में किये गये मेरे काम को भी देखने की इच्छा व्यक्त की।

उनकी राय थी कि मैंने अपने शोध की समस्या को साहित्यिक रखने के बजाय मनोवैज्ञानिक बना दिया है। उन्होंने मुझसे कहा कि हम ईट्स की क़द्र इसलिए नहीं करते कि उन्हें गुह्य या रहस्य में रुचि थी, और न इसलिए कि उन्हें किसी प्रकार की पराभौतिक शक्ति में विश्वास था या वह उन्हें प्राप्त थी—ऐसा दावा उन्होंने कभी-कभी किया भी था—बल्कि इसलिए कि उसके द्वारा या उसके प्रभाव में उन्होंने उच्च कोटि की कविता कैसे लिखी, एक नयी तरह की कविता, एक नयी अभिचेतना (Sensibility) जगानेवाली कविता। मुझे पता नहीं कि हेन मुझे किस दिशा में ले जाते, पर हफ़ के अभिमत ने निश्चय ही मेरे शोध को एक नया मोड़ दिया और मैं ईट्स की चित्र-विचित्र अभिरुचि और उनके सृजन में सम्बन्ध देखने की ओर अधिक उन्मुख हुआ।

हफ़ ने मेरे शोध-विषय के शीर्षक पर भी आपत्ति की। और इसके लिए उनके पास कुछ अकाट्य तर्क थे। अतार्किकता के अन्तर्गत मैं भारतीय प्रभावों को भी रख रहा था, जिसमें उपनिषद भी अनिवार्यतः सम्मिलित थे। पुरोहित स्वामी के सहयोग से ईट्स ने दस उपनिषदों का अनुवाद किया ही था। हफ़ का कहना था कि हम उपनिषदों को अतार्किकता के अन्तर्गत कैसे रख सकते हैं—वे तो तर्क की सबसे ऊँची उड़ानों से उच्चरित हुए हैं। मैं यह बता दूँ कि अपने बन्दी जीवन में हफ़ को बौद्ध और हिन्दू दर्शन पर पढ़ने को कुछ किताबें मिल गयी थीं। उन्हीं के सुझाव पर, मैंने अपने शोध-शीर्षक को बदलकर W. B. Yeats and Occultism (डब्ल्यू. बी. ईट्स के साहित्य में निगूढ़ तत्त्व) किया।

हफ़ के ही निर्देशन में मैंने W. B. Yeats and India (डब्ल्यू. बी. ईट्स और भारत) पर अपना पहला निबन्ध लिखा, जिसे बाद को मैंने दो में विभाजित किया।

(i) Yeats and Mohini Chatterji and Tagore.
(ईट्स और मोहिनी चटर्जी तथा टैगोर)
(ii) Yeats and Purohit Swami and the Upanishads.
(ईट्स और पुरोहित स्वामी तथा उपनिषद)
आगे चलकर यही मेरे शोध-प्रबन्ध के दो अध्याय बने।

प्रबन्ध लिखने की मेरी प्रक्रिया यह थी : पहले मैं पेन्सिल से एक रफ़ ड्राफ़्ट तैयार करता, फिर उसको संशोधन कर क़लम से साफ़ कापी बनाता। चूँकि मेरी हस्तलिपि पढ़ने में हफ़ को कठिनता होती इसलिए मैं उसे टाइप करा लेता। टाइपिंग का ख़र्च बहुत आता था। मैंने एक पोर्टेबिल टाइपराइटर ख़रीद लिया कि सीखकर ख़ुद टाइप किया करूँगा। सीख तो थोड़ा-बहुत मैंने लिया पर तेज़ी न पकड़ सका। उस पर बहुत-सा समय बर्बाद होते देख, मैंने बाहर की टाइपिंग की ही शरण ली। हफ़ की टिप्पणी जब लेख पर मिल जाती तो उनके सुझावों के प्रकाश में मैं उसे एक नये रूप में ढालता। उसकी तीन टाइप-कापियाँ बनवाता। एक मार्जरी बोल्टन को भेज देता, उसकी टिप्पणी के लिए—उसने शुरू से मेरे काम में रुचि ली थी। एक अपने सहयोगी शोधार्थी को — केम्ब्रिज में ऐसी प्रथा है कि शोधार्थी एक-दूसरे के प्रबन्ध को पढ़कर उसकी त्रुटियों की ओर संकेत करते हैं। एक अपने पास रखता। जब मार्जरी और सहयोगी की टिप्पणियाँ और सुझाव आ जाते तो अपनी प्रति पर 'मास्टर कापी' तैयार करता। वही अन्तिम रूप से शोध-प्रबन्ध में सम्मिलित की जाती।

शोध-विषय से सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन करना, उस पर नोट लेना, निर्देशक से चर्चा-विवाद करना, चिन्तन करना, यह सब अपनी जगह पर ठीक था, पर मुख्य बात तो यह थी कि उसको शोध-प्रबन्ध के अंग के रूप में कैसे प्रस्तुत किया जाय? मुझे यह देखकर सन्तोष था कि हफ़ एक व्यावहारिक दृष्टि से मुझसे काम करा रहे थे। उन्होंने विश्लेषणात्मक रीति से काम करने का सुझाव देकर मेरे लिए सुविधाजनक कर दिया था कि मैं एक बड़ी समस्या को अंशों में विभाजित कर उसका हल निकाल सकूँ। हेन का दृष्टिकोण संश्लेषणात्मक था, ईट्स का दिमाग़ पूरे का पूरा अपने उलझे-पुलझे रूप में जब मेरे सामने आता था तो मैं समझ नहीं पाता था कि किस ओर से उसे निरुवाना शुरू करूँ। यह बात भी मुझे हफ़ के निर्देशन से स्पष्ट हुई कि ईट्स के दिमाग़ की सुलझाहट कविता के सिरे से शुरू की जा सकती थी। दूसरे शब्दों में, ईट्स के चित्र-विचित्र दार्शनिक विचारों का उलझा-पुलझापन सृजन के, कला के. कविता के स्तर पर उतरकर सुलझाहट में बदल जाता था। इसी में उनकी कविता का आकर्षण भी था, उनकी कविता की मौलिकता भी थी। हफ़ का निर्देशन एक तरह से मेरे लिए सौभाग्यपूर्ण ही रहा, बाद को मेरे शोध-प्रबन्ध के दो परीक्षकों में एक वे रखे गये।

जब हेन अपनी छुट्टी से वापस लौटे, तब फिर उन्होंने मुझे अपने निर्देशन में लिया। उन्होंने हफ़ द्वारा कराये गये काम के प्रति अपनी सहमति प्रकट की और उसी प्रकार कब्बाला, स्वीडेनबर्ग और जैकब बेहमेन पर अध्याय तैयार करने का आदेश मुझे दिया। ईट्स के दर्शन की संश्लिष्ट व्याख्या पर फिर भी उनका आग्रह बना रहा, यानी उनकी दर्शन पुस्तक A Vision पर। मुझे स्मरण आया कि प्रोफ़ेसर सी. एम. बावरा ने भी मुझसे यह प्रत्याशा की थी कि मैं उक्त ग्रन्थ पर कुछ नया प्रकाश डाल सकूँगा। ईट्स के समालोचकों के लिए यह अद्‌भुत पुस्तक एक पहेली

बनकर खड़ी थी। इस पुस्तक को, और इस पर जितना मैंने पढ़ा-सोचा था, और इसके रचयिता के दिमाग़ को जैसा मैंने समझा था, उससे मेरी यह धारणा बन गयी थी कि इसका उत्स मैडम ब्लावाट्स्की की थियोसोफ़ी में है, पर इसे सिद्ध करने के लिए केवल थियोसोफ़िकल साहित्य का अवलोकन ही पर्याप्त न था, इसके लिए मुझे लन्दन और डबलिन की थियोसोफ़िकल सोसाइटी से सम्पर्क करना था, उनके प्रारम्भिक रेकार्ड को देखने के लिए, और अगर सम्भव हो तो श्रीमती ईट्स से भी मिलना था, जो उस समय तक जीवित थीं और डबलिन में रहती थीं।

हेन मुझसे कहते कि 'इस काम के लिए तुम्हें एकाध महीने आयरलैण्ड में जाकर रहना भी पड़ सकता है—श्रीमती ईट्स के पास ईट्स के पुराने से पुराने कागद-पत्र सब सुरक्षित हैं, उनमें तुम्हारे काम की बहुत महत्त्वपूर्ण सामग्री मिल सकती है। A Vision के सम्बन्ध में एक स्थान पर ईट्स ने स्वयं कहा था कि वह श्रीमती ईट्स की 'आटोमेटिक स्क्रिप्ट' के आधार पर लिखी गयी थी। तुम्हें श्रीमती ईट्स आटोमेटिक स्क्रिप्ट दिखा सकती हैं, अगर वह वास्तव में हो। फिर अभी आयरलैण्ड में डबलिन की थियोसोफ़िकल सोसाइटी के कुछ पुराने सदस्य जीवित मिल सकते हैं जो ईट्स के यौवन के साथी थे और उनसे इस सम्बन्ध में बड़ी रहस्योद्घाटनकारी सूचनाएँ इकट्ठी की जा सकती हैं।'

शोध की पूर्णता के लिए आयरलैण्ड की यात्रा ज़रूरी।

यात्रा के लिए अतिरिक्त ख़र्च ज़रूरी।

मुझे चिन्ता बनी रहती, ख़र्च कहाँ से आयेगा, जब केम्ब्रिज में ही पूरा समय रहने के लिए मेरे पास पैसे नहीं थे।

मैंने इतने दिनों में यह हिसाब लगा लिया था कि मेरे रहने-खाने और कुछ ऊपरी ख़र्च पर लगभग एक पौण्ड प्रतिदिन आता है। मैं हर रात कंजूस के समान अपने पौण्ड गिनता। कालेज की फ़ीस के लिए आवश्यक राशि अलग करके देखता तो बस इतना ही बचता कि चार-पाँच महीने मुश्किल से चल सकता, और रहना मुझे था बारह महीने और।

इस चिन्तनीय स्थिति से कुछ त्राण मुझे एक-दूसरे नक्षत्र-पुरुष ने दिलाया।

उनका नाम रनवीर सिंह बावा था।

उनसे मेरा प्रथम परिचय 1950 में धर्मशाला में हुआ था जहाँ मैं अपने मित्र महाराज कृष्ण रसगोत्र के साथ कुछ समय बिताने के लिए गया था। उस समय तक वे दोनों कुँवारे थे और अपने एक और कुँवारे मित्र के साथ 'माउण्ट प्लेज़ेण्ट' में रहते थे। तीनों साथी वहाँ के एक डिग्री कालेज में अध्यापक थे। मुझे 'माउण्ट प्लेज़ेण्ट' की विशेष स्मृति इसलिए है कि वहाँ रहते हुए मैंने अपनी 'मिलन यामिनी' को अन्तिम रूप दिया था, और उसकी प्रेस कापी बनायी थी।

केम्ब्रिज में बावा स्टेटिक्स (सांख्यिकी) में डिप्लोमा करने के लिए आये थे। एक दिन किसी बातचीत के सिलसिले में उन्होंने बताया कि उनका साप्ताहिक ख़र्च तीन-साढ़े तीन पौण्ड आता है। मैं तो फ़ौरन इसका गुर सीखने के लिए उत्सुक हो गया।

बावा ने रहने के लिए एक ऐसी 'डिग' खोज ली थी, जहाँ कमरे में गैस का चूल्हा था, और वे अपने लिए रात का खाना स्वयं बनाते थे। उन्होंने बताया कि यहाँ खाने-पीने की चीज़ें मँहगी नहीं हैं, हाँ, आदमी जरूर मँहगा है, वह जिस चीज़

में अपना श्रम लगायेगा, वह ज़रूर मँहगी हो जायगी। सूप, सब्ज़ी, डबलरोटी वही; लैण्डलेडी गर्म कर देगी, उबाल देगी, टोस्ट बना देगी तो उसका दाम चौगुना लेगी। ज़रूरी बर्तन लैण्डलेडी से मिल जाते हैं। सब्ज़ी, डबलरोटी, अण्डा, नमक, चीनी, चीज़, मक्खन, फल आदि हफ़्ते में एक बार लाकर रख दो, खराब नहीं होते, सारा मुल्क ही फ़्रीजिडेयर है — ठण्ड इतनी पड़ती है। कितनी ही चीज़ें टिन-बन्द मिलती हैं, उन्हें बस खोलो, गर्म करो, खाओ। उन्होंने मुझे बताया कि खाना बनाने पर वे पन्द्रह मिनट से ज़्यादा सर्फ़ नहीं करते।

बावा ने मेरे लिए गैस चूल्हेवाले कमरे की डिग खोज दी। एक दिन मेरे साथ चलकर ज़रूरी सामान ख़रिदवा दिया। मेरे कमरे में आकर कई शामों को उन्होंने मुझे खाना बनाने की शिक्षा दी। मेरा इम्तहान भी उन्होंने लिया। और मैं अच्छे नम्बरों से पास हुआ, यानी एक दिन मैंने उन्हें अपने हाथ से बनाकर खाना खिलाया और वे खाकर प्रसन्न-सन्तुष्ट हुए। केम्ब्रिज में आकर मैंने बहुत-कुछ नया सीखा और बहुत-से गुरु किये। सुनते हैं, दत्तात्रेय ने चौबीस गुरु किये थे। 'एकाक्षर प्रदातारं योन गुरुमभि मन्यते' की आन पर चलूँ तो केम्ब्रिज में किये मेरे गुरुओं की संख्या चौबीस से कम न आयेगी। मुझे याद आ रहा है, डिग की एक लड़की ने मुझे क़मीज़ में बटन लगाना सिखाया था। बटन तो क़मीज़ों के टूटते ही थे, और तेजी वहाँ टाँकने के लिए नहीं, या टाँकना भूल जाने पर डाँटने के लिए। वहाँ तो किसी-न-किसी तरह अपने आप ही टाँकना पड़ता था और हर बार इस काम को बिना उँगलियों का दो-चार बूँद रक्त-दान किये मैं न कर पाता था। एक दूसरी फ्रेंच लड़की ने मुझे मोज़े रफ़ू करने की विधि बतायी थी। इंग्लैण्ड में पहुँचते ही मार्जरी और नैस्टर ने मुझे कितनी ही ज़रूरी बातें बतायी-सिखायी थीं, उनको गुरु न मानना कृतघ्नता होगी। पंटिंग — कैम नदी में नाव चलाना — मुझे एक अंग्रेज़ लड़के ने सिखाया था। टाइपिंग सीखी ही थी, लौटने के पहले डांसिंग के भी दो-चार क्लासों में गया था। शोध से सम्बद्ध मेरे दो निर्देशक थे ही, फिर केम्ब्रिज के बहुत-से व्याख्यानों से मैंने कितना ज्ञान संचित किया। इन सब वक्ताओं को अपना गुरु मानूँ — मानना तो चाहिए — तो दत्तात्रेय, शायद, मेरे गुरुओं की संख्या पर मुझसे ईर्ष्या करेंगे।

साढ़े तीन पौण्ड प्रति सप्ताह की बचत पर मैं बहुत प्रसन्न हुआ, बहुत पछताया भी। बावा से मेरी भेंट पहले क्यों न हुई!

पर केम्ब्रिज में बावा के भी एक गुरु थे, रूपचन्द साहनी। उनका रहने-खाने का खर्च केवल ढाई पौण्ड प्रति सप्ताह आता था। उन्होंने एक ऐसी डिग खोज ली थी, जहाँ सेल्फ़ सर्विस थी। कमरे का किराया एक पौण्ड प्रति सप्ताह था — कमरे की सफ़ाई और बिस्तर लगाने का काम खुद करना पड़ता था। वे अपना सुबह का नाश्ता भी खुद बनाते, रात का खाना भी, लंच तो हल्का जहाँ लोग काम करते हैं, वहीं ले लेते हैं। उन्होंने साइंस के किसी विषय पर पी-एच. डी. की, और करते ही उन्हें अमरीका की किसी युनिवर्सिटी में बड़ी अच्छी जगह मिल गयी। किफायतशारी के उनके पास अचूक नुस्खे थे। कान्वोकेशन में डिग्री लेने के लिए केम्ब्रिज में काला सूट और काला जूता पहनना पड़ता है। डा. साहनी के पास जूता ब्राउन था। जूते इंग्लैण्ड में बहुत मँहगे मिलते थे। साहनी ने एक डिब्बी काले पालिश की खरीदी और रात में कई बार जूते पर पालिश कर-करके सुबह तक उसे काला कर दिया।

बावा बाद को एक कमरा खाली होने पर उसी डिग में चले गये।

जब साहनी ने अमरीका के लिए प्रस्थान किया तो बावा ने उनका कमरा मुझे दिला दिया। बावा के और मेरे कमरे तीसरी मंज़िल पर थे, साथ मिले। साथ रहने से हम एक-दूसरे के बहुत निकट आये। फिर तो हमने एक ही 'रसोई' कर ली। सुबह दोनों के लिए नाश्ता मैं तैयार करता, शाम को दोनों के लिए खाना बावा बनाते। इससे हमारे खर्च में और भी कमी आयी। औसतन दो-दो पौण्ड से अधिक प्रति सप्ताह हमारे खर्च न आते।

पाँच पौण्ड प्रति सप्ताह की बचत !

मेरे लिए तो यह बहुत बड़ा वरदान सिद्ध हुई।

मेरे शोध का दो-तिहाई काम हो चुका था। केवल ईट्स-दर्शन पर मुझे जो कहना था, उस पर मैं समुचित सामग्री न एकत्र कर सका था। लन्दन की थियोसोफ़िकल सोसाइटी से जो सामग्री मिल सकती थी, वह तो मैं वहाँ कुछ रोज़ रहकर देख-परख आया। वह मेरे बड़े काम की थी, पर उससे अधिक महत्त्वपूर्ण सामग्री डबलिन में थी, विशेषकर श्रीमती ईट्स के पास।

मैंने आयरलैण्ड की यात्रा करने का निश्चय किया।

इस बीच घर पर—इलाहाबाद में—एक बड़ी विषम परिस्थिति उठ खड़ी हुई, और मुझे लगा कि अब तो शायद आयरलैण्ड न जाकर मुझे भारत ही लौट जाना पड़ेगा। मैंने किस बुरी साइत में विदेश के लिए प्रस्थान किया था !

तेजी घर-गिरिस्ती और बच्चों की देख-रेख के लिए सर्व समर्थ हैं, यह मानते हुए भी, चलते समय इस बात से मैं अतिरिक्त आश्वस्त था कि यदा-कदा मर्द की आड़ को पूरा करने के लिए राजन वहाँ हैं। उनकी क़ानून की अन्तिम परीक्षा होनेवाली थी, पर वकालत की ट्रेनिंग के लिए फिर भी लगभग एक साल उनको इलाहाबाद में ही रहना था, और तेजी ने भी जब-तब अपने नारि-स्वभाव की भीरुता में राजन की उपस्थिति से कुछ बल-सम्बल ग्रहण किया था।

लेकिन अपनी ट्रेनिंग समाप्त करने के बाद राजन को अपनी प्रैक्टिस आरम्भ करने के लिए अपने घर बाँदा जाना था, जहाँ उनके वृद्ध पिता अकेले ही रहते थे।

मेरे विदेश चले जाते ही, अपने अन्दर सामर्थ्य-साहस की कमी की बात तेजी ने अपने पत्रों में बहुत बार लिखी थी, पर वास्तव में अपने अकेले, असुरक्षित और असहाय होने की अनुभूति उन्हें राजन के बाँदा चले जाने के बाद हुई। हमने संस्कारों से अपनी नारी को कितना पुरुष-निर्भरा बना दिया है !

नगर में अगर हमारी घनिष्ठता किसी से न थी तो हमारी शत्रुता भी किसी से न थी। अगर मुझे इसकी आशा नहीं थी कि किसी मुसीबत में कोई हमारी मदद करेगा तो इसका भय भी नहीं था कि कोई अकारण हमारे निरीह परिवार को नुक़सान पहुँचायेगा।

फिर मेरे तो लड़कपन और यौवन के कई वर्ष गली-मुहल्लों में बीते थे। गली-मुहल्ले के जीवन की कुछ खराबियाँ हैं तो कुछ खूबियाँ भी हैं। वहाँ आपके निजी जीवन में ताक-झाँक तो की जायगी, पर साथ ही अगर आपका परिवार किसी ऐसी स्थिति में है, जैसी स्थिति में दुर्भाग्यवश मेरा परिवार था, तो उसकी मान-मर्यादा की रक्षा का दायित्व सारा मुहल्ला अपना समझेगा। मैं भूल गया था कि अब मैं सिविल लाइन में रहता हूँ, जहाँ आपके यहाँ कुछ अनहोनी हो जाय तो उसका पता आपके पड़ोसी को अखबारों से लगता है। जहाँ आस-पड़ोस के

हस्तक्षेप की कोई आशंका न हो, वहाँ कोई सिरफिरा किसी की नाजुक हालत का नाजायज फ़ायदा उठाने की बात सोचे तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। 'सिविल' लाइन ने 'अनसिविल' नहीं तो कैसी नकारात्मक शालीनता विकसित की है !

तेजी ने अपनी एकाकी और अरक्षित स्थिति में—एकाकी नारी तो सीता के समय से अपने को अरक्षित समझती आयी है—एक ऐसे ही सिरफिरे 'सज्जन' की काली छाया अपने निकट घनीभूत होती देखी।

'सज्जन' मेरे हम उम्र, पढ़े-लिखे, प्रकाशन के व्यवसाय में थे। उनके पिता ने कहीं बाहर से आकर इलाहाबाद में प्रेस का काम शुरू किया था और उसमें बहुत सफल हुए थे। इलाहाबाद की मिट्टी में एक खसूसियत है—बाहर से आकर उस पर जमनेवालों के लिए वह बहुत अनुकूल पड़ती है। इलाहाबाद में जितने जाने-माने, नामी-गिरामी लोग हैं, उनमें से 99% आपको ऐसे मिलेंगे जो बाहर से आकर इलाहाबाद में बस गये, खासकर उसकी सिविल लाइन में—स्यूडो इलाहाबादी। और हाँ, एक बात और ग़ौर करने के क़ाबिल है कि इलाहाबाद का पौधा तभी पलुहाता है, जब वह इलाहाबाद छोड़ दे।

छोटे शहर में भी बिना किसी समान रुचि के लोगों का आपस में मिलना-जुलना कम ही हो पाता है। लेखक-प्रकाशक का सम्पर्क कभी-न-कभी हो ही जाना था। 'सज्जन' से किसी पार्टी में परिचय हुआ था और कई वर्षों तक हमारी निकटता उससे आगे नहीं बढ़ी जिसे, अंग्रेज़ी में सोशल फ्रेण्डशिप कहते हैं, यानी कहीं हम मिल जाते तो सलाम-दुआ हो जाती, या कभी-कभार एक-दूसरे के घर हो आते।

प्रकाशन के अतिरिक्त उन्हें बाग़बानी का शौक था, विशेषकर गुलाब उगाने का, जिसमें एक समय तेजी की भी बड़ी रुचि थी, और उसके कारण हमारा एक-दूसरे के यहाँ आना-जाना बढ़ा था।

मेरे विदेश जाने के बाद वे तेजी के पास अधिक आने लगे—बहाना, उनके गुलाब के बाग़ की देख-रेख।

पहले जब आते, अपनी पत्नी को साथ लाते।

बाद को यदा-कदा अकेले भी आने लगे।

फिर तो जब आते, पत्नी को कभी साथ न लाते।

राजन जब तक घर पर थे, उनके व्यवहार में एक सुसंस्कृत नागरिक का शिष्टाचार दृष्टिगोचर होता।

राजन के जाने के बाद, धीरे-धीरे उनकी चेष्टाओं में परिवर्तन आने लगा।

तेजी को उनके इरादों को भाँपते देर न लगी।

और एक दिन उन्होंने अपना बाहरी भिखारी भेस उतारकर अपने को अपने असली राक्षसी रूप में प्रकट कर दिया।

कामातुराणां न भयं न लज्जा

पर जिस धनुहीं को अपनी ओर झुकाकर उन्होंने उस पर प्रत्यंचा चढ़ाने की कल्पना की थी, वह तो शम्भु-शरासन सिद्ध हुआ। 'टरइ न सम्भु सरासन कैसे'...

और जो तेजी की ओर से उन्हें विरोध मिला तो वे उग्रता, उद्दण्डता पर उतर आये।

कामात् जायते क्रोधः ।

और उस क्रोध में उन्होंने जो अनर्गल बातें कहीं और जो अशोभन, असभ्य और वहशियाना हरकतें कीं, उनको अगर तेजी ने मुझे ज्यों-का-त्यों लिख दिया होता तो मैं पत्र पाने के बाद पहले हवाई जहाज़ से घर लौट आता और उनका···।

पर तेजी ने अपने ऊपर संयम रक्खा।

मूल बात का संकेत तो उन्होंने कर दिया, पर स्थिति की गम्भीरता मुझ पर न व्यक्त होने दी। फिर भी वे जानती थीं कि उनके पत्र की प्रतिक्रिया मुझ पर क्या होगी। आवेश में आकर लौट आने की मुझे उन्होंने मनाही की थी। सूचित किया था कि उन्होंने सम्बद्ध व्यक्ति को आगाह कर दिया है कि भलमंसी इसी में होगी कि वे आगे से हमारे घर पर पाँव न रक्खें। साथ ही राजन को तार देकर बुला रही हैं, और 'सज्जन' की पत्नी को उनके पति की सारी हरकतों से अवगत करा रही हैं।

तेजी के ये दोनों क़दम कारगर सिद्ध हुए।

राजन के पिता ने उन्हें फ़ौरन इलाहाबाद भेजा और उन्हें ताक़ीद की कि जब तक मैं न लौटूँ, तब तक वे तेजी के पास ही रहें और उनकी और उनके बच्चों की पूरी तरह देखभाल करें। अपने किसी सम्बन्धी से मुझे उनके जैसी आत्मीयता नहीं मिली।

'सज्जन' ने अपने घर जो नाटक देखा होगा, उसका मज़ा तो वे ही जानते होंगे।

मेरे घर तो फिर उन्होंने मुँह न दिखाया, सिवा एक बार के।

फिर भी हैरानी, परेशानी और बेचैनी के मैंने कितने दिन काटे, कितनी रातें काटीं!

और मेरा मन आश्वस्त नहीं हुआ, जब तक राजन ने इलाहाबाद पहुँचकर मुझे विश्वास नहीं दिलाया कि वहाँ सब कुछ ठीक है और मुझे चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। पर चिन्ता ने मुझे जल्दी न छोड़ा।

तेजी ने बार-बार मुझे पत्र लिखा—'आपने जो काम उठाया है, उसमें सफल होने को हमने बहुत कुछ दाँव पर लगा दिया है।

एक जुआ के दाँव पर हम सब दीन लगाय
लाज बचै, इज्जत रहै राम जो देयँ जिताय।

अगर इस काम में भी व्याघात पहुँचता है तो हम सब प्रकार वंचित होंगे। वह तो आपको पूरा करके ही लौटना है। मेरी इज़्ज़त को जो चुनौती मिली थी, उसका उत्तर मैंने अपनी दृढ़ता के साथ दिया है। आपका काम भी आपकी इज़्ज़त के लिए एक चुनौती ही है। आप भी इसका उत्तर अपने श्रम-संकल्प से दें। किसी भी कारण आपको असफलता मिली तो कितनी भी व्याख्याओं से आप उसे सफलता में नहीं बदल सकेंगे। अपने जीवन-भर का अर्जित धन, मान लुटाकर अगर हम दुनिया की हँसी के पात्र ही बनकर रह गये तो हमसे अधिक अभागा कौन होगा!'

उन दिनों के मानसिक तनावों में मैंने एक कविता लिखी थी—शीर्षक था···
'तेरे कूचे से हम निकले'

ग़ालिब का शेर याद आया था—

'निकलना खुल्द से आदम का सुनते आये थे लेकिन
बहुत बे-आबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले।'

वह कविता मैंने प्रकाशित नहीं की। कर देता और उसे 'सज्जन' देखते और उनमें हया होती तो वे आत्महत्या कर लेते।

ठण्डे दिमाग़ से सोचने पर मैंने भी यही समझा कि मेरे लिए 'नान्यः पन्था विद्यते अयनाय'—शोध-कार्य को किसी भी हालत में पूरा करना ही है।

पर इसके बाद विदेश में एक भी दिन मैंने शान्ति और निश्चिन्तता से न बिताया। हर दिन का महत्त्व केवल इतना रह गया कि वह आकर मुझे अपने कार्य-लक्ष्य की ओर बढ़ाये और जाकर मेरे और मेरे घर-परिवारके बीच समय की दूरी को कम करे।

शोध-कार्य की पूर्णता के लिए मुझे आयरलैण्ड जाना ही था।

मैंने सारी तैयारी कर ली।

हेन ने मुझे श्रीमती ईट्स तथा अन्य कई ईट्स और ईट्स-साहित्य में रुचि रखनेवालों के नाम पत्र दिये, सीधे भी उन्हें पत्र लिखे। एक पूरी शाम उन्होंने मुझे देकर बताया कि 'मैं तुम्हें आयरलैण्ड वहाँ केवल कुछ कागद-पत्रों को देखने-परखने के लिए नहीं भेज रहा हूँ, गो यह काम भी ज़रूरी है और वहीं हो सकता है, मैं तुम्हें इसलिए भेज रहा हूँ कि वहाँ तुम घूम-फिरकर विभिन्न वर्गों के लोगों से मिलो—नगर, क़स्बों, गाँवों में, शिक्षा-संस्थानों, हाट-बाज़ारों में, क्लबों-पबों में, गिरजाघरों में, मेले-ठेले में। आइरिश-चरित्र की एक अपनी विशेषता है जो उसे औरों से अलग करती है। मेरी ऐसी धारणा है कि उसे समझे बिना कोई ईट्स को पूरी तरह नहीं समझ सकता—ईट्स टिपिकल (नमूने के ?) आइरिश-मैन हैं। अतार्किकता की ओर उनका झुकाव भी ईट्सियन से अधिक आइरिश है।'

पिछले दिनों जिन तनावों से मैं गुज़रा था, उनकी चर्चा मैंने हेन से न की थी, पर वे समझ गये थे कि किसी कारण मैं उखड़ा-उखड़ा-सा रहता हूँ और मेरा मन काम से उचट गया है, क्योंकि उन दिनों विशेष बल देकर वे मेरे कुशल-क्षेम के विषय में पूछा करते थे। चलते समय उन्होंने कह दिया, 'अपनी ऐसी मानसिक स्थिति में तुम्हें आयरलैण्ड की यात्रा सुखद होगी। आयरलैण्ड बड़ा सुन्दर देश है, उसके निवासी और सुन्दर हैं, पुरुषों से अधिक स्त्रियाँ, विशेषकर उसकी 'कोलीन्स'*।' फिर उन्होंने हँसकर जोड़ दिया, 'देखो, किसी 'कोलीन' के सम्मोहन में न पड़ जाना। वे बहुत आकर्षक होती हैं। मुझे आशा है, तुम अपनी यात्रा से तरो-ताज़ा होकर लौटोगे, साथ ही अपने काम के लिए बहुत-सा उपयोगी मसाला भी इकट्ठा करके।'

इंग्लैण्ड-निवासियों को आयरलैण्ड जाने के लिए आइरिश वीज़ा की ज़रूरत नहीं होती, यह छूट इंग्लैण्ड से सम्बद्ध और कई देशों के लिए है, जिनमें भारत भी सम्मिलित है। पर ट्रेवेल एजेण्ट के द्वारा ट्रेवेलर्स आइडेण्टिटी कार्ड बनवा लेना अच्छा रहता है। जहाँ तक आइरिश सरकार का सम्बन्ध है, आयरलैण्ड में प्रवेश करने पर चुंगी के दफ़्तर में जो अता-पता माँगा जाता है, उतना ही पर्याप्त होता

---

* Colleens—आयरलैण्ड की वारांगनाएँ

है। मेरे पास अपना पासपोर्ट था ही, मैंने थामस कुक से समुद्री मार्ग से आयरलैण्ड जाने का टिकट ख़रीद लिया।

उन दिनों लिवरपूल से रात को एक स्टीमर छूटता था जो सुबह-सुबह डबलिन पहुँचा देता था। थामस कुक से ही मैंने डबलिन में प्रथम सप्ताह रहने का प्रबन्ध भी पक्का करा लिया।

ट्रेन से लिवरपूल पहुँचकर मैंने स्टीमर पकड़ा। स्टीमर बहुत बड़ा नहीं था—कुल यात्री डेढ़-दो सौ के लगभग होंगे। अगस्त का महीना था, न बहुत ठण्डा, न बहुत गर्म, प्रायः लोग खुले डेक पर पड़ी बेंचों और कुर्सियों पर बैठकर यात्रा कर रहे थे। स्टीमर पर आइरिश बियर बहुत सस्ती मिलती है, और 99% यात्रियों ने तो बोतलों पर बोतलें चढ़ाई होंगी। बीच रास्ते में हवाएँ तेज़ हो गयीं और हमारा स्टीमर हचकोले खाने लगा। छोटे स्टीमर वैसे भी ज़्यादा हिलते-डुलते हैं। मैंने सुन रखा था कि अंग्रेज़ समुद्र-यात्रा की अभ्यस्त क़ौम है—द्वीप में रहनेवाले जो हुए। पर मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि आधे से अधिक मुसाफ़िरों को सी-सिकनेस हुई और बहुतों ने उल्टियाँ कीं। समुद्र में स्टीमर से यह मेरी पहली यात्रा थी, फिर भी दूसरों को उल्टी करते देखकर भी मुझे मतली तक न आयी।

उठ पड़ा तूफ़ान देखो,
मैं नहीं हैरान देखो,
एक झंझावात भीषण मैं हृदय में से चुका हूँ।
मूल्य अब मैं दे चुका हूँ।

—निशा निमन्त्रण

आयरलैण्ड की यात्रा की छाप मेरे मानस-पटल पर जितनी स्पष्ट, जितनी गहरी है, उतनी कम जगहों की है। वहाँ मैंने जो कुछ भी देखा-सुना, वह अपने पूरे विस्तार में मेरी स्मृति में अंकित है और आज चौबीस वर्षों के बाद भी धुँधला नहीं पड़ा। मैं सोचता हूँ, ऐसा क्यों हुआ होगा? कारण शायद यह है कि मैं एक बड़े दुःख की अनुभूति के बाद आयरलैण्ड गया था। अज्ञेय की एक पंक्ति है :

दुःख सबको माँजता है।

यह सच है। दुख मनुष्य के मन को माँजकर दर्पण-स्वच्छ कर देता है। फिर जो भी उसके समक्ष आता है, वह उसमें अविकल, अविरल प्रतिबिम्बित होता है। मुझे भय हो रहा है—कहीं मैं अपनी आयरी-यात्रा को अनुपात से अधिक स्थान न दे दूँ।

बन्दरगाह से डबलिन सात मील दूर है, बन्दरगाह डुनलियरी कहलाता है। शहर को बस या टैक्सी से जाते हैं। क्षितिज से निरभ्र आकाश में उठते हुए सूर्य के प्रकाश में डबलिन को देखकर मुझे ऐसा लगा जैसे मैं आँखों पर हरा चश्मा लगाकर वहाँ उतर पड़ा हूँ—चारों ओर हरियाली ही हरियाली। हरी घास-भरी भूमि, हरे पेड़-पौधों की सघनता की प्रत्याशा तो मैं करता हुआ आया ही था—इसी कारण तो आयरलैण्ड को 'एमरल्ड आइलैण्ड' कहते हैं—मरकत द्वीप। पर मैं यह नहीं जानता था कि यहाँ मनुष्य ने प्रकृति की हरियाली से होड़ लगाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी—यहाँ ट्रेन के डिब्बे हरे हैं, ट्रामें, बसें हरी हैं, लेटर-बाक्स हरे हैं, मार्ग-निर्देशक स्थान हरे हैं, पुलिस—जिन्हें आयरलैण्ड में 'सिविक गार्ड्स' कहते हैं—और फ़ौजियों की पोशाकें हरी हैं, लाल ईंट के बने मकानों के

दरवाज़े-खिड़कियाँ हरी रँगी हैं, वैसे ही जगह-ब-जगह रेलिंगें हरी हैं, करेंसी नोट भी हरे रंग के हैं। पर इतनी हरियाली का शौक़ीन यहाँ का बाशिन्दा स्वयं हरा नहीं है—'हरा' इस अर्थ में कि कच्चा! वह पकी, सिझी, मेच्योर क़ौम का है। उसके पास अपना इतिहास है, अपनी परम्परा है, अपनी संस्कृति है और इन पर उसे गर्व है। 'हरा' खुश व खुर्रम के अर्थ में लें—'राम भरोसे जो रहें जंगल में हरियायें'—तो भी आयरवासी 'हरा' नहीं। इसके लिए एक तो उसका रोमन-कैथलिक धर्म उत्तरदायी है, जिसमें हर ईसाई आदम की आदि अपराध-भावना से दबा रहता है; दूसरे, उसके देश पर हुए आक्रमणों की शृंखला, और सात सौ वर्षों की दासता और उससे त्राण पाने का उनका अनवरत संघर्ष, जिसमें भोगी-झेली यातनाएँ आयरी जनता को ऐसी ही याद हैं, जैसे वे कल की घटनाएँ हों। अच्छी स्मृति कितना बड़ा अभिशाप है, इसे मुझसे अधिक कौन जानेगा! कभी-कभी मैं सोचा करता हूँ कि पूर्वजन्म में मैं आइरिशमैन रहा हूँगा। उसके चेहरे पर सस्ती हँसी नहीं, उसकी आँखों में मूल्य देकर सँजोई गम्भीरता है, संजीदगी है,

आये थे हँसते-खेलते मैख़ाने में 'फ़िराक़'
जब पी चुके शराब तो संजीदा हो गये।

उसने कटु-अनुभवों की शराब छककर पी है। वह संजीदा है, पर मनहूस नहीं। उसने शायद अपनी गम्भीरता की अतिशयता से राहत पाने के लिए ही एक Sense of Humour (सेंस आफ़ ह्यूमर), एक विनोद-वृत्ति, एक व्यंग्य-वृत्ति विकसित की है। वह अपनी चुटीली बातों से, बिना खुद हँस, आपको हँसा सकता है। वह बोलता है, प्रायः अधिक ही, तो अपने को हल्का करने के लिए। वह भीतर कहीं भारी है।

डबलिन पहुँचकर सबसे पहले मैंने श्रीमती ईट्स से सम्पर्क किया, फ़ोन से। मेरे बारे में मि. हेन ने उन्हें अलग से पत्र लिख दिया था, जो उन्हें मिल चुका था। उन्होंने मुझसे कहा कि 'आजकल 'अन्तर्राष्ट्रीय अश्व प्रदर्शनी सप्ताह' चल रहा है। आप फ़ोनिक्स पार्क आ जायें और प्रदर्शनी में कुआला प्रेस स्टाल पूछ लें। मैं दिन भर वहीं रहती हूँ।'

कुआला प्रेस ईट्स ने अपनी दो विधवा बहनों के भरण-पोषण के लिए अपने मकान के निचले हिस्से में खुलवा दिया था। वे ईट्स की छोटी-छोटी पुस्तकों का प्रथम संस्करण सीमित संख्या में हाथ-बने काग़ज़ पर स्वयं अपने हाथों से ट्रैडिल मशीन चलाकर छापती थीं, प्रतियों का दाम अधिक होता था, पर उनकी बड़ी माँग रहती थी, कभी-कभी ईट्स प्रतियों पर अपने हस्ताक्षर भी कर देते थे। उनके दूसरे संस्करण नहीं छप सकते थे। ईट्स के देहावसान के बाद कुआला प्रेस आर्ट-प्रिण्टर हो गया था। ईट्स की पंक्तियाँ, अक्सर उन पर चित्र बनवाकर, मोटे काग़ज़ों पर छपती थीं जिन्हें लोग अपने ड्राइंग रूमों में टाँगने के लिए खरीदते थे। पंक्तियों पर हाथ-बने चित्र भी बेचे जाते थे। कुछ चित्र ईट्स की बेटी के बनाये होते थे, वह चित्रकार थी, चित्रकारी ईट्स परिवार में पुश्तैनी थी। ईट्स के पिता जान ईट्स चित्रकार थे, छोटे भाई जैक ईट्स भी, ईट्स ने स्वयं कई वर्षों तक चित्रकारी की नियमित शिक्षा ली थी और इसका प्रभाव उनकी कविताओं पर स्पष्ट है।

डबलिन का हार्स-शो एक तरह से नागरिक मेले का अवसर प्रदान करता है

और आयरलैण्ड की कला-कारीगरी-व्यवसाय की बहुत-सी चीजें वहाँ बिकने को आती हैं। कुआला प्रेस स्टाल भी इसी ध्येय ले लगाया गया था। वहीं मैं पहले-पहल मिसेज़ ईट्स से मिला, जो अपनी ननदों की सहायता करने के लिए स्टाल पर बैठती थीं। स्टाल छोटा था, सहायता की कोई विशेष आवश्यकता न थी, पर मुझे उनके चेहरे से लगा कि वे अपने पति के प्रेमियों, प्रशंसकों को देखकर हर्षित होती थीं, जो उनकी पंक्तियों से सज्जित चित्रों को खरीदने आते थे। श्रीमती ईट्स-सी पतिपरायणा मैंने पश्चिम में शायद ही कोई दूसरी देखी हो।

अश्व-प्रदर्शनी की जो छाप मेरे दुख-मँजे मन पर पड़ी, वह मेरे अगले तीन जन्मों तक भी मिटायी न जा सकेगी। अमृतोद्भव उच्चैःश्रवा के वंशजों का ऐसा चुस्त, दुरुस्त, स्वस्थ, सुन्दर, जीवन्त स्वरूप न मैंने पहले कभी देखा था और न बाद को ही देखा। कोलीनों के सम्मोहन में तो मैं न पड़ा, पर घोड़ों के सम्मोहन से मैं अपनी रक्षा न कर सका। वे मुझे पीठ पर चढ़ा साहित्य-क्षेत्र के न जाने कितने घोड़ों से मेरा परिचय करा लाये। ईट्स ने तो एक बादल से दूसरे बादल पर छलाँग मारनेवाले घोड़ों से लेकर ऊबड़-खाबड़ सड़कों पर गाड़ी खींचनेवाले घोड़ों तक का ज़िक्र किया है। अपने ऐपीटाफ़ में जिस 'हार्समैन' को उन्होंने सम्बोधित किया है उसका घोड़ा कितना थका है!—'न' होते घोड़े पर 'हार्समै' का दीर्घ स्वर-भार—तो बीतती उम्र का प्रतीक है—घुड़सवार जीवात्मा। याद आया, ग़ालिब ने भी घोड़े को उम्र का प्रतीक माना है, पर वह किस तेज़ी से उम्र को काट रहा है, और घुड़सवार का कोई बस उस पर नहीं चलता,

रौ में है उम्रे-अस्प कहाँ देखिए थमे,
नै बाग हाथ में है न पा है रकाब पर।

शेक्सपियर के घोड़ों पर तो एक पुस्तक लिखी जा सकती है। एन्टनी के प्रेम में पड़ी क्लियोपाट्रा उस घोड़े से ईर्ष्या करती है, जिसे अपनी पृथुल जाँघों से दबाकर एन्टनी दौड़ाता है। 'मैकबेथ' में डंकन की हत्या की भीषण रात को घोड़े एक-दूसरे को खाने को उद्यत हो उठते हैं—कैसा भयावना दृश्य है!

औ' यह जितना अद्भुत है, उतना ही सच है—
डंकन के घोड़े मस्ताने, तेज तुखारी,
ताज़ी तड़पे, तोड़ अस्तबल बाहर झपटे,
बँधे न बाँधे; जैसे वे विरुद्ध मानव के
युद्ध छेड़ने को उद्यत हों
और यह सुना
गया, उन्होंने एक दूसरे को खा डाला।

और तुलसी के 'सावँकरन' हयों को कोई कैसे भूले

जे जल चलहिं थलहिं की नाईं
टाप न बूड़ बेग अधिकाई।

ईट्स के घोड़े बादलों पर चलते हैं, तुलसी के जलाशयों पर। किस पर किसको तरजीह दें?

और

> **जेहि बर बाजि राम असवारा,**
> **तेहि सारदउ न बरनै पारा।**

क्लियोपाट्रा ने तो एन्टनी के घोड़े के प्रति अपनी ईर्ष्या व्यक्त कर दी, शारदा से इतना भी न हुआ। चुप ही हो गयीं। और राम को बन मे छोड़कर सुमन्त के रथ के घोड़ों की मूक-मुद्रा-व्यक्त विरह-वेदना किसे न विचलित कर देगी :

> **चरफराहिं मग चलहिं न घोरे,**
> **बन मृग मनहु आनि रथ जोरे।**
> **अढुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे,**
> **राम वियोगि विकल दुख तीछें।**
> **जो कह रामु लखनु बैदेही,**
> **हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही।**
> **बाजि विरह गति कहि किमि जाती,**
> **बिनु मनि फनिक विकल जेहिं भाँती।**

कभी मैंने 'मानस' के पशु-पक्षियों पर एक निबन्ध लिखना चाहा था। शायद अब भी कभी लिखूं। कोई और भी इस विषय पर लिख सकता है।

अश्व-प्रदर्शनी से अश्व काव्य-प्रतीक रूप में शायद मेरे दिमाग़ में भी पैठा। इससे पहले घोड़े को प्रतीक-रूप में अपनी कविता में सम्भवतः मैं कभी नहीं लाया था। इसके बाद तो कई बार लाया हूँ। 'आरती और अंगारे' से 'जाल समेटा' तक अगर मेरे घोड़ों में कोई दम-खम, कोई सजीवता हो तो मैं चाहूँगा उसका श्रेय आप डबलिन के हार्स-शो को दें।

सुन्दर-स्वस्थ घोड़ों को देखकर चमकती आयरी आँखों से मुझे यह समझने में देर न लगी कि हिन्दुओं ने जो भक्ति गाय को दी है, अंग्रेज़ों ने जो प्रेम कुत्तों को, वह आयरवासियों ने घोड़ों को दिया है। पशु-प्रेम प्रकृति से जोड़नेवाली ऐसी कड़ी है, जिसकी मशीनी युग में उपेक्षा कर मनुष्य अपनी बहुत बड़ी हानि करेगा। खैर, हम तो पशुपतिनाथ के उपासक ही हैं।

अश्व-प्रदर्शनी जब तक चलती रही, मैं बराबर वहाँ जाता रहा, वहाँ मुझे आयरी जनता का एक प्रतिनिधि क्रास-सेक्शन (लघु संस्करण ?) देखने को मिला और उससे आयरी चरित्र को समझने में मुझे बड़ी सहायता मिली। बीच-बीच में मैं कुआला प्रेस के स्टाल पर जाकर बैठता और श्रीमती ईट्स से बात करता।

पहले उन्हें मुझसे बात करने में कुछ हिचक थी। कारण यह था कि एक साक्षात्कार करनेवाले से उन्हें बड़ा कटु अनुभव हुआ था। वह अमरीकी था। उसने ईट्स के जादू-टोने में विश्वास और उसके कुछ प्रयोगों के विषय में मिसेज़ ईट्स से कुछ गोपनीय बातें कहलवा लीं जो एक छिपे टेपरेकार्डर पर रेकार्ड होती रहीं। अमरीका जाकर उसने Yeats and Black Magic (ईट्स और जादू-टोना), W. B. Yeats the Magician (जादूगर डब्ल्यू. बी. ईट्स) शीर्षक से कई लेख लिखे। अमरीका में ऐसे सनसनीखेज़ लेखों के लिए बड़ा बाज़ार है। मैंने मिसेज़ ईट्स को यक़ीन दिलाया कि मैं कोई ऐसी धोखेबाज़ी करने नहीं आया हूँ, मेरा ध्येय विशुद्ध साहित्यिक है। मुझे प्रसन्नता हुई कि मैं जल्दी ही उनका विश्वास प्राप्त कर सका और उनसे मुझे जो सूचनाएँ मिलीं, जो सहयोग मिला, वह मेरे शोध के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ।

मुझे दूसरे-तीसरे दिन ही पता चल गया कि थामस कुक ने मेरे ठहरने की जो जगह तै की है, वह ईट्स के मकान से बहुत दूर है। मिसेज़ ईट्स ने मुझे एक 'डिग' का पता दिया, जो उनके यहाँ से नज़दीक थी और सस्ती भी थी।

मैं सुबह नाश्ता लेकर उनके यहाँ पहुँच जाता और दिन भर ईट्स के अध्ययन-कक्ष में बैठकर काम करता, लंच पास के एक रेस्टराँ में कर आता।

ईट्स को दिवंगत हुए लगभग पन्द्रह वर्ष बीत चुके थे, पर ईट्स की कोई पुस्तक, कोई पाण्डुलिपि, कोई चीज़ उन्होंने इधर-उधर न होने दी थी; बल्कि ईट्स के जीवन-काल में जो चीज़ें इखरी-बिखरी थीं, उन्हें भी उन्होंने सँभालकर रख दिया था। यह काम बिना अपने पति के प्रति अनन्य प्रेम और उनके कार्य के प्रति अदम्य आस्था के सम्भव नहीं था।

ईट्स का मकान काफ़ी बड़ा था—चारों ओर उसके बहुत-सी खुली ज़मीन। उनका अध्ययन-कक्ष एक हाल जैसा था—मकान का सबसे बड़ा कमरा, चारों ओर ऊँची शीशेदार आलमारियाँ किताबों से भरी, एक सिरे पर काम करने की मेज़ और कुर्सी, पीछे आतशदान, कारनिस पर कलाकृतियों के कुछ नमूने—एक चीनी कृति थी, जिससे प्रेरित होकर ईट्स ने अपनी Lapiz Lazuli (लापीज़ लाज़ूली = नील मणि) कविता लिखी थी, दीवारों पर ब्लेक के कुछ चित्र, जिनकी कविता के भी ईट्स बड़े प्रेमी थे, और जिन पर अपने एक मित्र के सहयोग से उन्होंने एक बड़ी प्रामाणिक पुस्तक लिखी थी। मिसेज़ ईट्स ने पहले ही दिन जैसे किसी पुरानी यादगार को सहलाते हुए, और उसे सुरक्षित रखने के अपने प्रयत्नों पर कुछ गर्व-सा करते हुए, मुझसे कहा था, 'विली का अध्ययन-कक्ष'—वे अपने पति के लिए 'विलियम' का संक्षिप्त रूप 'विली' नाम का प्रयोग करती थीं—'अब भी वैसा ही है, जैसा वे छोड़कर गये थे'···

ईट्स के पुस्तकालय की पुस्तकों का नाम देखना भी अपनेआप में एक शिक्षा थी। उसमें एक आलमारी में मैडम ब्लावाट्स्की की कृतियों को देखकर मैं बड़ा आश्वस्त हुआ। मेरी स्थापना थी कि ईट्स ने अपने दर्शन के मूल सिद्धान्त मैडम ब्लावाट्स्की से लिये थे, यहाँ एक सबूत था। पुस्तकों पर लगे निशानों ने कुछ और संकेत दिये।

ईट्स ने अपने हाथ से जिस काग़ज़ पर कुछ भी लिखा था, श्रीमती ईट्स ने उसे नष्ट नहीं होने दिया था। ऐसे पन्नों की संख्या सत्तर हज़ार से ऊपर थी, और कमाल तो यह था कि इन सबकी श्रीमती ईट्स ने विषय-काल के क्रम से तालिका बना रखी थी।

मुझे ईट्स का सम्बन्ध थियोसोफ़िकल सोसाइटी से जतानेवाले कागद-पत्रों की आवश्यकता थी। श्रीमती ईट्स ने उन्हें मेरे लिए निकाला।

डबलिन-लन्दन थियोसोफ़िकल सोसाइटी की सदस्यता के समय ईट्स ने कुछ पैम्फ़्लेट लिखे थे; ये छपे भी थे; इनकी प्रतियाँ केवल श्रीमती ईट्स के पास थीं। ये D.E.D.I. (डी. ई. डी. आई.) के नाम से छपी थीं। सदस्यों को इस तरह का एक गुप्त नाम दिया जाता था। यह नाम ईट्स को मिला था। यह लैटिन में 'डेविल एस्ट डियस इनवर्सस' का सांकेतिक रूप है—शैतान है खुदा का उलटा। इस शीर्षक से मैडम ब्लावाट्स्की की पुस्तक The Secret Doctrine (दि सीक्रेट डाक्ट्रिन) का एक अध्याय ही है। मैंने इस पैम्फ़्लेट से कुछ उद्धरण अपनी थीसिस में दिये हैं।

A Vision, ईट्स की दर्शन-पुस्तक के सम्बन्ध में मेरी जिज्ञासा होने पर

मिसेज ईट्स ने मुझे उसके सात ड्राफ्ट दिखाये। उन दिनों मिसेज ईट्स ने ईट्स की टाइपिस्ट का काम किया। प्रथम ड्राफ़्ट ईट्स की हस्तलिपि में है। उससे मिसेज ईट्स ने टाइप किया। हर बार ईट्स उसमें कुछ काट-छाँट कर देते और मिसेज ईट्स फिर-फिर टाइप करके नया ड्राफ़्ट उनके सामने प्रस्तुत करतीं। इन ड्राफ़्टों के सूक्ष्म अध्ययन से दो बातें स्पष्ट हुईं—

1. पहले और अन्तिम ड्राफ़्ट में लगभग बारह वर्ष का अन्तर है।

2. अन्तिम ड्राफ़्ट में जिन विश्वविश्रुत दार्शनिकों के नाम जोड़े गये हैं, उनकी प्रथम ड्राफ़्ट में कोई चर्चा नहीं है।

इससे यह परिणाम सहज ही निकाला जा सकता है कि उनके दर्शन का उत्स कहीं और है। बाद के दार्शनिकों के अध्ययन से क्रमशः उनका अधिकाधिक समर्थन लिया गया है। पर एक समस्या बनी की बनी रह गयी। A Vision का प्रथम ड्राफ़्ट किस आधार पर तैयार किया गया? ईट्स ने ऐसा संकेत दिया था कि वह मिसेज ईट्स की 'आटोमेटिक स्क्रिप्ट' के आधार पर तैयार किया गया। मैंने श्रीमती ईट्स से जानना चाहा कि क्या 'आटोमेटिक स्क्रिप्ट' सुरक्षित है और क्या वे मुझे दिखा सकती हैं? श्रीमती ईट्स ने मुझसे कहा कि आटोमेटिक स्क्रिप्ट है, परन्तु वे अभी उसे दिखाने के लिए तैयार नहीं हैं। यहीं बात खत्म हो गयी।

डबलिन में मैं मि. जे. एम. होन से भी मिला। वे ईट्स के Official Biographer (अधिकारप्राप्त जीवनीकार) बनाये गये थे और उन्होंने 1942 में ईट्स का सम्यक् जीवन-चरित प्रकाशित किया था। ईट्स के आदेशानुसार उनके सारे कागद-पत्र होन के देखने-परखने के लिए उपलब्ध कराये जाने को थे—निजी और गोपनीय सभी प्रकार के। उन्होंने मुझसे बताया कि श्रीमती ईट्स ने उनसे कुछ भी नहीं छिपाया, पर जब आटोमेटिक स्क्रिप्ट की बात उठी तो उन्होंने अपना मुँह बन्द कर लिया। जहाँ होन को भी सफलता न मिली थी, वहाँ मेरी दाल क्या गलती! मुझे कुछ निराशा हुई, पर मिसेज ईट्स के प्रति किसी प्रकार की शिकायत का भाव मेरे मन में नहीं उठा। प्राप्त तथ्यों से जो परिणाम मैंने निकाले, वे मेरी थीसिस में हैं, यहाँ उनका विस्तार सामान्य पाठक के लिए शायद ही रुचिकर हो।

फिर भी मिसेज ईट्स ने मुझे बहुत सहयोग दिया और मेरे प्रति बड़ी सद्भावना दिखायी।

वे बड़ी ममतामयी थीं और अपने पति के जीवन और काव्य में रुचि लेने-वालों को बड़े स्नेह और समादर से देखती थीं। मैंने उनके घर में बैठकर लगभग एक मास काम किया। मुझे याद आता है, कभी लंच के समय वर्षा हो रही होती तो वे मुझे बाहर न जाने देतीं, कहतीं, 'मुझे अपने लिए तो खाना बनाना ही है, तुम्हारे लिए भी कुछ बना दूँगी—तुम खाते ही क्या हो, अण्डा, टोस्ट, उबली हुई सब्जियाँ, फल! शाकाहारी जो ठहरे।' वे मुझे अपनी ही टेबिल पर बिठाकर खाना खिलातीं और अपने और मेरे घर-परिवार के विषय में बातें करतीं। लड़का उनका विवाहित था और उसके अपने बाल-बच्चे थे, अलग रहते थे, इतवार-इतवार मिलने आते थे। आज़ादी मिलने के बाद आयर की अपनी राष्ट्रभाषा गेलिक के प्रचार पर ज़ोर दिया जा रहा था, स्कूलों में वह अनिवार्य कर दी गयी थी। मिसेज ईट्स को शिकायत थी, 'मेरे पोते-पोतियाँ जो भाषा बोलते हैं, वह मैं नहीं समझ पाती। पता नहीं, भविष्य में वे अपने दादा की लिखी हुई चीज़ें पढ़ पायेंगे या नहीं।' उनकी लड़की किसी स्कूल में पेण्टिंग की शिक्षा लेती थी, सुबह

ही घर से निकल जाती थी और शाम को लौटती थी। बेटा उनका आइरिश पार्लियामेण्ट में सेनेटर था, ईट्स भी अपने अन्तिम वर्षों में थे। विचित्र है कि बेटे को अपने पिता के साहित्य में कोई रुचि नहीं थी, कुछ थी तो बेटी को। मिसेज़ ईट्स अक्सर चिन्ता व्यक्त करतीं, 'विली की चीज़ों का, जो मैंने सालों से जोगा कर रखी हैं, पता नहीं, मेरे बाद क्या होगा!'

ईट्स की एक-एक चीज़ के साथ जो स्मृतियाँ जुड़ी थीं, उन्हें वे माला की तरह फेरती थीं। एक दिन याद है, उन्होंने मुझे वह प्रशस्ति-पत्र और तमग़ा दिखाया था, जो उन्हें नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने पर दिया गया था। उस अवसर पर ईट्स ने जो व्याख्यान दिया था, बड़ा ही मार्मिक है। सोने के तमग़े के एक ओर ईट्स का पूरा नाम खुदा है, दूसरी ओर कविता की देवी खड़ी है और एक नवयुवक उसके चरणों में बैठा वीणा बजा रहा है। ईट्स ने उसे देखकर कहा था, 'एक दिन मैं जवान था और मेरी कविता निर्बल-जर्जर थी, आज मैं बूढ़ा हो गया हूँ और मेरी कविता जवान हो गयी है'—विरोधों को एक-दूसरे के समक्ष लाकर उनके प्रभाव को बढ़ाना ईट्स की कला की विशेषता है, जो, ईट्स के कथनानुसार, उन्होंने कब्बाला के प्रतीकों से सीखी थी। मैंने ईट्स के भावों को कभी अपने शब्दों में रखा था—

है कहा किसी ने, जब शायर बूढ़ा होता,
उसकी कविता तब नौजवान हो जाती है

शायद सरोजिनी नायडू पर लिखी मेरी कविता में ये पंक्तियाँ हैं।

एक दिन ईट्स के प्रतीकों पर हमारी बात हो रही थी। वे प्राय: दो तरह के हैं—एक, जो सीधे अपने लक्ष्य पर जाते हैं और दूसरे, जो गोल-गोल घूमते हैं, चक्कर काटते हैं। सीधे जानेवाले दार्शनिक दृष्टि के प्रतीक हैं, गोल-गोल जानेवाले काव्यात्मक दृष्टि के। ईट्स कवि और दार्शनिक दोनों होना चाहते थे, दोनों के संघर्ष में, तनाव में सदा रहे, और न जाने कितने प्रतीकों से उन्होंने इसे व्यक्त किया :

कवि का पन्थ अनन्त सर्प-सा
जो है मुख में पूँछ दबाये,
और मनीषी तीर सरीखी
सीधी अपनी लीक बनाये

काव्य और दर्शन के द्योतक सर्प और तीर भी कब्बाला के आदि प्रतीक हैं।

श्रीमती ईट्स उठीं और एक छोटी-सी डिबिया लायीं। उसमें एक सोने की अँगूठी थी। अँगूठी के ऊपर बाज और तितली की शक्ल बनी हुई थी—बाज सीधे झपटनेवाला, तितली गोल-गोल घूमनेवाली। यह अँगूठी ईट्स ने खुद डिज़ाइन की थी और अपनी छिगुनी में हमेशा पहने रहते थे—जैसे उन्हें याद दिलाते रहने को कि वे बाज भी हैं, तितली भी, दार्शनिक भी, कवि भी। मिसेज़ ईट्स ने मेरी छिगुनी पकड़ी और वह अँगूठी उस पर खिसका दी, जब वह ठीक फ़िट हो गयी तो ग़ौर से उसकी ओर देखकर बड़े स्मृति-करुण स्वर में बोलीं, 'विली की उँगली ठीक तुम्हारी जैसी थी।' मैं किन भावों में डूब गया, मैं नहीं कह सकता; जैसे उस अँगूठी की किसी जादुई शक्ति ने मुझे छू दिया।

एक शाम को वे मुझे एबी थियेटर में एक नाटक दिखाने ले गयीं। एबी

थियेटर को राष्ट्रीय रंगमंच के रूप में स्थापित करनेवालों में ईट्स का प्रमुख योग-दान था। कहते हैं, पहले यह मुर्दाघर था—शायद ईट्स को लगा कि यहीं से आयर का भूत-अतीत बोल सकता है। ईट्स ऐसे प्रतीकात्मक काम बहुत करते थे। एक बार जब उनका दार्शनिक उनमें प्रखर था, तब थूर बलाइली में अपने रहने को उन्होंने एक पुराना कासिल ख़रीद लिया था, जिसमें एक टावर था, जिसकी सबसे ऊँची मंजिल पर उन्होंने अपनी स्टडी बनायी थी—टावर, सीधी उर्ध्वगामी दृष्टि का प्रतीक। उस शाम एबी थियेटर में जो नाटक खेला गया था, गेलिक भाषा में था। गेलिक, ध्वनि से मुझे सशक्त भाषा लगी। अंग्रेज़ों ने व्यर्थ ही उसे नेस्त-नाबूद करने का प्रयत्न किया, वह मारी नहीं जा सकती। काश, आयरी लोगों ने गेलिक की अपनी लिपि का भी आग्रह न किया होता। तब योरोपीय भाषाओं के साथ उसका मेल-जोल जल्दी बढ़ता। दूसरे की भाषा के सम्बन्ध में मैं कुछ कहने का अधिकारी नहीं, शायद भाषा और लिपि का कोई अनिवार्य सम्बन्ध हो। वर्तनी और उच्चारण के अन्तर में गेलिक अंग्रेज़ी के भी कान काटती है।

डबलिन की थियोसोफ़िकल सोसाइटी का मुझे कुछ अता-पता न मिला। किसी ने मुझे बताया, डबलिन की आग और बमबारी में बहुत-सी इमारतें नष्ट हो गयी थीं, शायद थियोसोफ़िकल सोसाइटी की इमारत भी उन्हीं में हो—प्रसंगवश बता दूँ कि संसार में सबसे पहली हवाई बममारी सहनेवाली डबलिन की ही धरती थी।

ईट्स-सम्बन्धी कुछ कागद-पत्र मुझे डबलिन के नेशनल म्यूज़िम में मिले, पर वे मेरे लिए अधिक उपयोगी न थे। ईट्स को लिखे गये टैगोर के कुछ पत्र भी वहाँ सुरक्षित थे और एक बार उन्हें देखकर मेरे मन में यह लोभ समाया कि इन्हें नक़ल करके ले जाऊँ तो 'विश्व भारती' में इनका बड़ा स्वागत होगा। कुछ पत्र मैंने नक़ल भी किये, फिर किसी ने मुझसे कहा कि ये पत्र दुर्लभ नहीं, शायद प्रकाशित भी हो चुके हैं, टैगोर अपने महत्त्वपूर्ण पत्रों को भेजने के पहले उनकी प्रतिलिपि अपने पास रख लेते थे। प्रतिभा अपने महत्त्व के प्रति कितनी सचेत होती है और अपनी कृति को सुरक्षित रखने के लिए कितना श्रम करती है! मैं प्रतिभा को अपने महत्त्व के प्रति लापरवाह पाऊँ तो निश्चय मैं उसे अधिक आदर दूँ।

ईट्स के पुस्तकालय के बाद मुझे सबसे अधिक उपयोगी सामग्री डबलिन युनिवर्सिटी के ट्रिनिटी कालेज में मिली। वहाँ के अंग्रेज़ी विभाग के अध्यक्ष प्रो. व्हाइट को हेन ने मेरे बारे में पत्र लिख दिया था। पर वे छुट्टी पर जा रहे थे और मेरी सहायता करने का काम अपने एक सहयोगी को सौंप गये थे। उनकी सहायता से मुझे 'डबलिन युनिवर्सिटी रिव्यू' की पूरी की पूरी फ़ाइल मिल गयी, केम्ब्रिज की लाइब्रेरी में केवल कुछ अंक उपलब्ध थे। इसमें ईट्स की कविताएँ सबसे पहले प्रकाशित हुई थीं। कइयों को तो ईट्स ने बाद में अपनी कृतियों में सम्मिलित ही न किया। साधारण पाठक के लिए न हों, पर शोधार्थी के लिए ये रचनाएँ बड़े महत्त्व की हैं। कवि की नवीनतम रचनाओं से भले ही इस बात का पता लगे कि उसने अपनी कला में कितना ऊँचा स्थान प्राप्त किया है, लेकिन यह उसकी पहली और प्रारम्भिक रचनाएँ ही बतायेंगी कि कवि ने कहाँ से चलकर और किन साधनाओं द्वारा वह उच्चता प्राप्त की है। फल का पूरा महत्त्व तभी समझा जा सकेगा, जब बीज के महत्त्व को समझ लिया जाये। 'डबलिन युनिवर्सिटी

रिव्यू' से जो सामग्री मुझे मिली थी, उसके प्रकाश में मुझे अपने प्रारम्भिक अध्यायों को फिर से लिखना पड़ा।

ट्रिनिटी कालेज के पुस्तकालय में दो और अद्भुत वस्तुएँ देखने की याद मुझे बनी है हालाँकि मेरे शोध-कार्य से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था—एक थी— 'बुक आफ केल्स' और दूसरी थी बार्कले की टेबिल।

'बुक आफ़ केल्स' एक मज़बूत शीशे के केस में रखी बाइबिल की सचित्र प्राचीनतम पाण्डुलिपि है। कहते हैं, यह छठी शताब्दी में सेण्ट कोलबा के केल्स-स्थित मठ में सन्तों द्वारा तैयार की गयी थी। इसके चित्रों में रंग-रेखाओं की जो ज्यामिती कलाकारी दिखायी गयी है, उसके बारे में यही कहा जाता है—'न भूतो न भविष्यति'। इस पाण्डुलिपि की जिल्द सोने के मोटे पत्र से मढ़ी गयी थी, जिसमें बहुमूल्य हीरे-जवाहर जड़े थे। दसवीं शताब्दी में मठ पर आक्रमण हुआ और यह बहुमूल्य पाण्डुलिपि हमलावरों के हाथ लगी, फिर इसे चोर उठा ले गये और उन्होंने इसके सोने के पत्र उधेड़े, उनके हीरे-जवाहरात उखाड़े। फिर यह कई अनाड़ी हाथों में पड़ती मध्ययुग में इंग्लैण्ड के राजा हेनरी अष्टम के पास पहुँची, 1661 में उसके बचे-खुचे 339 पन्ने डबलिन के ट्रिनिटी कालेज के अधिकार में आये और तब से आज तक उसी के पास हैं। इसके किसी पन्ने का चित्रांकन दूसरे पन्ने की तरह नहीं है। नियमपूर्वक इसका एक पन्ना प्रतिदिन उलटा जाता है और फिर शीशे का केस चौबीस घण्टों के लिए बन्द कर दिया जाता है। आयर-निवासी सैकडों की संख्या में प्रतिदिन इसे देखने जाते हैं और इसे अपनी सबसे पवित्र और सबसे मूल्यवान सम्पत्ति समझते हैं। बहुतों को आश्चर्य हो सकता है कि ईट्स ने 'बुक आफ़ केल्स' पर कुछ नहीं लिखा। सच्चाई तो यह है, कला के सामने कला उसकी प्रतिद्वन्द्विता में नहीं खड़ी होती। अजन्ता, एलोरा पर कविता की एलोरा, अजन्ता तक्षित-चित्रित हुई? कोणार्क, ताजमहल पर काव्य का कोणार्क, ताजमहल खड़ा हुआ? कविता पर कविता क्या लिखी जायगी! लिखी जायगी तो उससे बहुत-बहुत फीकी होगी। 'बुक आफ़ केल्स' का हर पृष्ठ कविता है, कला है, साधना है, पूजा है, आत्मसमर्पण है—कलाकार सन्तों ने इस पर कहीं भी अपना नाम नहीं लिखा, पर इसके किसी पृष्ठ पर एक नाम लिखा है। किसका? क्वीन विक्टोरिया का। कहते हैं, जब क्वीन विक्टोरिया आयरलैण्ड की राजसी यात्रा पर आयी थीं, तब उन्होंने उस पर अपने हस्ताक्षर कर दिये थे। 'बुक आफ़ केल्स' का यह एकमात्र कलंक है— 'केहि न राजमद दीन्ह कलंकू'।—हम अजन्ता, एलोरा के चित्रकारों-तक्षकों का नाम जानते हैं?

दार्शनिक बार्कले के नाम से सब पढ़े-लिखे लोग परिचित हैं। उनका दर्शन पाश्चात्य-दर्शन के इतिहास में प्रगति का एक प्रमुख सोपान है। उचित ही है कि उनकी स्मृति में उनकी टेबिल ट्रिनिटी कालेज में सुरक्षित रखी गयी है। (लगता है, प्रसिद्ध लेखकों की टेबिल को आयरवासी विशेष महत्त्व देते हैं, सेण्ट पेट्रिक हास्पिटल में डीन स्विफ़्ट की टेबिल भी रखी है, जिस पर, कहा जाता है, स्विफ़्ट ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'गलिवर्स ट्रैवेलस' लिखी थी।) इसी टेबिल के सामने बैठकर, या या खड़े होकर बार्कले ने अपना दर्शन लिखा होगा। मैंने उसका अध्ययन बी. ए. में किया था। 'खड़े होकर' शब्द से आप चौंके होंगे। यही तो इस टेबिल की विशेषता है। यह इस तरकीब से बनायी गयी है कि उसे इच्छानुसार ऊँचा या नीचा किया जा सकता है। मेरे गाइड ने बताया कि इस पर बिस्तर पर लेटे-लेटे

भी लिखा जा सकता है। उसके ऊपर का पटरा भी इच्छानुसार विभिन्न कोणों पर झुकाया-उठाया जा सकता है।

केम्ब्रिज लौटने पर मुझे घण्टों कुर्सी पर बैठकर लिखना पड़ता था, जिससे मेरी कमर दुखने लगती थी। बार्कले-टेबिल से प्रेरणा लेकर मैंने एक टेबिल बनवायी, जिसके सामने खड़े होकर मैं देर तक काम कर सकता था। वह इच्छानुसार उठायी-गिरायी, झुकायी-उठायी तो नहीं जा सकती थी। अब जब से मुझे स्पाण्डिलाइटिस की तकलीफ़ हुई है, डाक्टर गर्दन झुकाने को मना करते हैं, ज़्यादा तकलीफ़ होने पर गर्दन में पट्टा भी पहना देते हैं—पर लिखना तो गर्दन झुकाकर ही किया जा सकता है। बिना गर्दन झुकाये लिखना हो तो एक दूसरी तरकीब की जा सकती है, लिखने की टेबिल को सामने से झुकाया और पीछे से उठाया जाय। कहाँ तक तरह-तरह की टेबिलें बनवाता फिरूँ, रखने को जगह भी चाहिए। इन दिनों मुझे बार्कले की टेबिल बहुत याद आयी है। काश, मुझे उसका डिज़ाइन मिल जाता तो मैं एक अपने लिए ज़रूर बनवाता। फ़िलहाल, लिखना ही बन्द करने की बात सोच रहा हूँ। क्षमा करेंगे, मुख्य प्रसंग से कुछ बाहर चला गया।

डबलिन में मैं अपने शोध के सम्बन्ध में जिन लोगों से मिला, उनमें से दो के नाम और लेना चाहूँगा, एक थे आरलैण्ड अशर और दूसरी थीं सालकेल्ड ब्लनेड।

अशर मेरी ही उम्र के होंगे, स्वतन्त्र लेखन करते थे, स्वस्थ, हट्टे-कट्टे, पता नहीं अपने सिर के बाल प्रायः मुँडा क्यों रखते थे! साल भर पहले उनकी पुस्तक Three Great Irishmen (थ्री ग्रेट आयरिशमेन) लन्दन से प्रकाशित हुई थी—तीन बड़े आयरी जनों में उन्होंने ईट्स, बर्नार्ड शा और जेम्स ज्वायस को रखा था। मुझे देखकर कुछ आश्चर्य होता था, कुछ प्रसन्नता भी होती थी कि ईट्स के जिस पक्ष पर मैं काम कर रहा था उसमें बहुत लोगों की रुचि थी, शायद वे इसी कारण ईट्स के प्रति आकर्षित होते थे और कुछ दिन उस गोरखधन्धे को सुलझाने में सिर खपा, प्रायः असफल हो, उनकी कविता के प्रेमी बनकर रह जाते थे। कुछ लोगों को यह सन्देह होने लगा था कि ईट्स की यह प्रदर्शनकारी विचित्र अभिरुचि महज़ मज़ाक़ तो नहीं थी, जिससे वे लोगों को अपनी ओर खींचते थे। इसी को लेकर एक दिन अशर से मेरी लम्बी बातचीत हुई। अन्त में, हम इसी परिणाम पर पहुँचे कि आयरी आदमी कब गम्भीरता में मज़ाक़िया और कब मज़ाक में गम्भीर हो जायगा, कोई नहीं कह सकता।

उन्होंने 'टैरट' कार्डों पर अपना एक अप्रकाशित लेख भी मुझे पढ़ने को दिया था। टैरट कार्डों की एक गड्डी ईट्स के सामान में भी थी। अशर का ख्याल था कि ईट्स ने अपने कुछ प्रतीक टैरट कार्ड से उठाये थे। यह अंशतः ठीक हो सकता है, पर प्रतीकों के चुनाव के विषय में हेन की राय मुझे अधिक ठीक लगती है। जब कोई प्रतीक ईट्स को आकर्षित करता था, तब वे साहित्य, चित्रकला, लोक-कथा, दन्तकथा, पुरा इतिहास सबमें उसे पहचानने-परखने का प्रयत्न करते थे और जब वह कई सन्दर्भों में अपनी अर्थवत्ता सिद्ध करता था तभी उसे स्वीकार करते थे। हेन का ख्याल था कि समय-स्वीकृत प्रतीकों से ईट्स के अपने गढ़े प्रतीकों की संख्या कम-से-कम चौगुनी होगी। इनमें अर्थ-संकेतों की कितनी सम्भावना छिपी है, इसे तो आगे के प्रयोग बतायेंगे, अगर आगे के कवियों ने इन्हें स्वीकारा और इन्हें प्रयुक्त किया।

डबलिन में मैंने जिन लोगों से ईट्स के सम्बन्ध में बातें कीं, उनमें सबसे

अधिक तत्व की बातें शायद सालकेल्ड ब्लनेड ने कहीं। जिस समय मैं उनसे मिला, उनकी उम्र लगभग सत्तर के होगी। ईट्स उस समय जीवित होते तो नब्बे के होते। वे ईट्स की पीढ़ी की कवयित्री थीं, ईट्स के यौवन की प्रेयसी माडगान की सहेलियों में, विशुद्ध आइरिश, आयरीजन की विनोद-व्यंग्य वृत्ति से पूर्णतया चेतन्त !

उन्होंने अपनी बातों से मुझे जितना हँसाया, उतना आयरलैण्ड में किसी ने न हँसाया होगा। वे अपने बेटे-बहू और दो सुन्दर पोतियों के परिवार में चौधरानी की तरह रहती थीं, जो कुछ उनके चारों ओर था, जैसे उससे पूर्णतया सन्तुष्ट-प्रसन्न। क्या आप विश्वास करेंगे कि इस बुढ़िया ने अपनी 65 वर्ष की अवस्था में अपनी पोतियों के साथ गेलिक सीखनी शुरू की थी और अब उसमें बखूबी बात कर सकती थीं !

उन्होंने ईट्स के सम्बन्ध में जो कहा, अब उसे मैं हिन्दी में आदरसूचक क्रिया के साथ न कहूँगा। शायद इससे ब्लनेड का मूड शब्दों में अधिक प्रतिबिम्बित हो सके। अंग्रेज़ी में आदरसूचक क्रिया है भी नहीं।

ईट्स की चर्चा चलने पर उन्होंने कहा, जैसे वे ईट्स के चरित्र का कोई सूत्र ही दे रही हों।

'वह व्यक्ति नहीं था, वह एक विरोधाभास था, जो उसके नामकरण के साथ ही शुरू हो गया था, विलियम बटलर ईट्स—विलियम = राजा, बटलर = कलवार···'

इतना कहकर वे ठठाकर हँसीं।

मैंने कहा, 'हमारे यहाँ एक कहावत है, कहाँ राजा भोज, कहाँ भोजवा तेली।'

बोलीं, 'ईट्स दोनों एक साथ था, एक दिन वह लन्दन के हाउस आफ़ लार्ड्स में भाषण दे सकता था और दूसरे दिन गालवे के मछुआरों से गप लड़ा सकता था।

'शिक्षा उसने ली चित्रकारी की,
लिखता रहा वह कविता।
पैदा हुआ प्रोटेस्टेण्टों के घर,
पूजता रहा कैथलिक सन्तों को।
प्रेम करता रहा माडगान से,
पतित्व निभाता रहा जार्ज से।
(जार्ज ईट्स की पत्नी का नाम था)
जवानी में बूढ़े होने की कल्पना करता था,
बुढ़ापे में जवान होने की।'

सत्तर वर्ष की उम्र में यौन-शक्ति प्राप्त करने के लिए डॉ. वारनाफ़ से आपरेशन भी कराया था।

(हमारे यहाँ इन्दौर के सेठ हुकुमचन्द ने भी कराया था।)*

और बीस मिनट तक वे ईट्स के जीवन के विरोधाभासों की गणना ही

* सुना था, डॉ. वारनाफ़ यह आपरेशन करने के लिए एक लाख रुपये लेते थे। इसमें अण्ड-कोष की ग्रन्थि (Iland) को बन्दर की ग्रन्थि से बदल दिया जाता था। इसकी ओर संकेत करने को ईट्स को व्यंग्य से डबलिन में Grand old man के बजाय Gland old man कहा जाता था।

कराती गयीं।

अन्त में वे सहसा गम्भीर हो गयीं।—

'जिन्दगी भर उसका एक हिस्सा अपने ही दूसरे हिस्से से लड़ता रहा। उसका जीवन एक लम्बा तनाव था। वह बहुत ही दुखी आदमी था।...'

आरलैण्ड अशर ने ठीक ही कहा था कि पता नहीं कब आयरीजन मज़ाक़ करते-करते गम्भीर हो जाये।

यह बहुत बड़ा सत्य है कि ईट्स का जीवन तनावों का जीवन था। मैं यह भी मानता हूँ कि कुछ तनाव उनके जीवन में अपने-आप आ गये थे, पर कुछ उनके स्वनिर्मित भी थे। किसी दर्जे पर, अपनी अनुभूति से या साहित्य और इतिहास के किसी उदाहरण से उन्हें यह स्पष्ट हो गया था कि ज़िन्दादिल तो तनावों में ही जीता है,

मुर्दादिल खाक़ जिया करते हैं।

ईट्स बड़े ही जीवट के आदमी होंगे कि प्रकृति-नियति के विहित तनावों के बावजूद उन्होंने कुछ और भी अपने पर आरोपित कर लिये थे। और मैं समझता हूँ कि मैं बहुत ग़लत नहीं हूँ, अगर मैं ऐसा कहूँ कि इन परस्पर विरोधी तनावों ने कभी-कभी एक-दूसरे के प्रभाव को नकारकर ईट्स को एक सन्तुलन की अनुभूति भी करायी होगी, जिसे पहुँचे हुए योगी ही प्राप्त करते हैं—समत्वं योग उच्यते। अन्यथा उनसे ऐसी पंक्तियाँ न निकलतीं :

एक दृष्टि निरपेक्ष
डालता हूँ जीवन पर और मरण पर
औ' घोड़े को एड़ लगाता
विदा विधाता*—

सालकेल्ड ब्लनेड ने मुझे अपनी कविताओं का एक संग्रह दिया था—And the Engine did not stop (एण्ड द एंजिन डिड नाट स्टाप) नाम का। उसकी एक पंक्ति मुझे बहुत अच्छी लगी थी, जिसका उपयोग मैंने अपनी एक कविता में किया है—'सार्त्र के नोबेल पुरस्कार ठुकरा देने पर'

आइरिश कवि की लिखी
यह पंक्ति
स्मृति में कौंध जाती—
The Kings are never more royal
Than when abdicating.
राजसी लगता अधिकतम
जबकि राजा
राजसिंहासन स्वयं ही त्याग देता।

कुछ लोगों ने समझा था कि ये पंक्तियाँ ईट्स की हैं। इन पंक्तियों का सत्य भारत-भूमि पर जितनी बार मूर्तिमान हुआ है, उतनी बार संसार में शायद और कहीं नहीं।

---

* उनके Epitaph (एपीटाफ़—मृत्युलेख) का मेरा अनुवाद।

डबलिन में जिन लोगों से मिलने के लिए हेन ने मुझे पत्र दिये थे, वे सभी ईट्स के प्रेमी और प्रशंसक नहीं थे, कुछ उनके कटु आलोचक और निन्दक भी थे। कभी-कभी मैं सोचता था कि हेन ने क्यों चाहा होगा कि मैं उनसे मिलूँ, पर कभी-कभी निन्दक कुछ ऐसे सत्य प्रकट करते हैं जो प्रशंसक दबा जाते हैं। कबीर ने निन्दक को नेड़े रखने की सलाह शायद इसी से दी होगी। ईट्स के पथ में आयरलैण्ड ने सदा फूल ही नहीं बिछाये थे, उनका विरोध भी किया गया था। वे आस्था से प्रोटेस्टेण्ट नहीं थे, पर प्रोटेस्टेण्ट परिवार में जन्मे तो थे। आयरलैण्ड का राष्ट्रीय आन्दोलन मुख्यतया कैथलिक आन्दोलन था। कभी-कभी, इसी कारण ईट्स के राष्ट्रप्रेम को भी सन्देह की दृष्टि से देखा गया था। उनके कतिपय नाटकों को धर्म विरोधी अथवा राष्ट्रविरोधी घोषित किया गया था, और जब वे खेले गये थे, तब उन पर धरना भी लगा था। नयी पीढ़ी के लोग अतार्किकता के प्रति उनके झुकाव को नापसन्द ही नहीं करते थे, उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे। ऐसे लोगों में स्वयं ईट्स के सुपुत्र थे। उनका ख्याल था कि आयरलैण्ड के एक ऐसे विश्वविख्यात व्यक्ति का ऐसी तर्कहीन, दक़ियानूसी बातों में रुचि लेना आयरलैण्ड की मनीषा को लांछित करनेके साथ, उसकी बौद्धिकता को निम्नस्तरीय सिद्ध करता है। जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं ईट्स की 'ओकल्टिज़्म' पर शोध कर रहा हूँ, तब उन्होंने मुझसे मिलने से ही इन्कार कर दिया—'आपको मुझसे कोई सहायता नहीं मिलेगी, मुझसे मिलकर आप अपना समय ही नष्ट करेंगे।' वे तो शायद समझते होंगे कि इस विषय में उलझकर मैंने अपने जीवन के दो-ढाई वर्ष नष्ट ही किये। आज चौबीस वर्षों बाद भी मैं अपने उन दो-ढाई वर्षों को अपने जीवन के सबसे अधिक सार्थक वर्षों में गिनता हूँ, अन्यथा उनकी स्मृति को सँजोये रखने और उन्हें इस लेखन के द्वारा एक बार फिर, शायद अधिक सघनता से, जीने के अर्थ क्या हैं!

डबलिन में रहते हुए मैं छह दिन काम करता, लोगों से मिलता-जुलता और सातवें दिनयानी रविवार कोसरकारी टूरिस्ट बसों से दिन-भर के लिए आयरलैण्ड के विभिन्न भागों की यात्रा के लिए चला जाता।

आयरलैण्ड के कितने पहाड़, नदी, झील, झरने, बन, उद्यान, ऐतिहासिक इमारतें, पुराने गढ़, गिरजे, खण्डरात, अनगढ़ पत्थरों से बनी गोली ऊँची कुकुर, मुत्ताशक्ली मीनार, शिला-सलीब, बारीक से भद्दे नक़्क़ाशियों तक के, और बलुहे-पथरीले, कँकरीले, गहरे, छिछले समुद्र-तट मेरी आँखों के सामने घूम गये हैं, कानों में गूँजने लगी हैं गाइडों द्वारा बतायी हर स्थान से जुड़ी कहानियाँ, दन्तकथाएँ, अन्धविश्वास, झूठे-सच्चे इतिहास। अगर मैं सबका वर्णन करूँ तो यह आत्मकथा नहीं, आयरलैण्ड की गाइड-बुक हो जायगी। प्रकृति, और मानव के विभिन्न रूप भी, केवल मेरी गहरी भावनाओं की छाया में सजीव हो पाते हैं और गहरी भावनाओं में आदमी ज़्यादा देर नहीं ठहर सकता। कभी किसी गहरी भावना में डूबे हुए मेरे मुँह से कविता फूटती है, इन क्षणों की उपेक्षा न कर सकूँ तो आप मेरे कवि को क्षमा करेंगे। इन सारी यात्राओं में एक समुद्र-तट भुलाये नहीं भूलता।

सूर्यास्त हो गया है, पर सन्ध्या के नारंगी रंग के बादलों से अभी समुद्री क्षितिज आलोकित है, पीछे निचली बंजर पहाड़ी पर एक छोटा-सा पत्थर का काटेज है, खस्ता हालत में, शायद बहुत दिनों से इसमें कोई रहता नहीं, कौन आया होगा कभी एकाकी इस सुनसान में रहने को! पहाड़ी की तराई से लगी सड़क पर आकर हमारी टूरिस्ट बस रुकी है और सब लोग उतरकर सहसा चुप क्यों खड़े हैं! यहाँ का उदास सौन्दर्य चुप-निश्चल होकर ही देखा जा सकता है।

सिन्धु का छिछला-छिछला तीर,
अकम्पित, नील मुकुर-सा नीर।
यहाँ लगता है कोई छोड़
गया है मन की गहरी पीर।

यह कविता मैंने किसी संग्रह में नहीं दी। हाँ, यह पूरी कविता है, पर इसी समुद्र-तट पर सुनने, सुनाने को।

आयरलैण्ड में मैं बहुत देर ठहर गया। अब बस दो कुछ लम्बी यात्राएँ करके मैं केम्ब्रिज लौट जाऊँ—एक डबलिन से स्लाइगो तक की, आयरलैण्ड के उत्तर आर-पार, पूर्व से धुर पश्चिमोत्तर; दूसरी डबलिन से किलानी तक की, आयरलैण्ड के दक्षिण आर-पार, पूर्व से धुर पश्चिम-दक्षिण। थीसिस तैयार करने के लिए अब सिर्फ़ छह महीने हाथ में हैं।

हेन ने मुझसे बार-बार आग्रह किया था कि जब मैं आयरलैण्ड जाऊँ तो तीन-चार दिन स्लाइगो में ज़रूर बिताऊँ, और वहाँ से कुछ मील पर ड्रमक्लिफ़ भी जाऊँ, जहाँ बेन बुलबेन पहाड़ी के चरणों में ईट्स अनन्त निद्रा में सोये हैं।

'वहाँ जाकर तुम कुछ देर क़ब्र के सामने खड़े होना। तुम ईट्स की मिट्टी के इससे अधिक निकट न आ सकोगे।'

हेन ने स्लाइगो के एक वयोवृद्ध सज्जन बर्टी ऐण्डरसन से भी मिलने को कहा था, जो ईट्स को भलीभाँति जानते थे और उनके पारिवारिक मित्र थे। 'तुम उन्हें स्लाइगो में सबसे अधिक रोचक व्यक्ति पाओगे।'

स्लाइगो मैं ट्रेन से गया, बस से भी जा सकता था, लगभग डेढ़ सौ मील की दूरी पर है डबलिन से, कोई चार घण्टे लगे होंगे सफ़र में। आयरलैण्ड में चाहे आप बस से यात्रा करें, चाहे रेल से, दोनों ओर आपको घनी हरियाली ही दिखायी देगी, और थोड़ी-थोड़ी दूर पर पानी के लम्बे-चौड़े फैलाव, हरे-भरे खेतों के बीच पन्द्रह-बीस घरों के छोटे-छोटे गाँव, और कहीं-कहीं पुराने या नये गिरजे आसमान में अपना सिर उठाये हुए, किसी नज़दीक के गाँव से गुज़र रहे हों तो मोटे-टाँठे गधों पर सामान लादे किसान या बिना ज़ीन-रकाब ऊँचे घोड़ों की नंगी पीठों पर सिर्फ़ लगाम के सहारे घोड़े भगाते लड़के, लड़कियाँ भी। नवयुवती माडगान ऐसे ही घोड़े पर चढ़कर जब पहले-पहल डबलिन आयी थी, तब ईट्स उसे देखते ही अपना दिल खो बैठे थे।

ट्रेन में ज़्यादा भीड़ नहीं, स्टेशन पर कोई चालीस-पचास आदमी उतरे होंगे, इससे ज़्यादा लोग तो हमारे छोटे-छोटे गाँवों के स्टेशनों पर उतरते-चढ़ते हैं। स्लाइगो टर्मिनस है, वहाँ जाते हैं या तो सैलानी या मछली के व्यापार से सम्बद्ध लोग। स्लाइगो के समुद्री तटों पर जो मछलियाँ मिलती हैं, उनकी आयरलैण्ड भर में माँग है, स्टेशन की मत्स्य-गन्ध ही यह बता देती है। ईट्स ने यहाँ के मछली-मछुआरों को अपनी कविता में कितना उठाया है, यहाँ तक कि कवि को भी मछली के रूप में देखा है—

Shakespearean fish swam the sea far away from land;
Romantic fish swam in nets coming to the hand;
What are all those fish that lie gasping on the strand !
(शेक्सपियरी मछली तट से दूर समुद्र में तैरी;

रूमानी मछली तट के इतने निकट तैरी कि जाल में आ फँसी;
ये कैसी मछलियाँ हैं जो तट पर पड़ी तड़फड़ा रही हैं !)

अंग्रेज़ी के आधुनिक कवियों को तीसरी पंक्ति की कटिया अपने मुँह में पाकर नाराज़ न होना चाहिए। हिन्दी के आधुनिक कवि, 'अब के कवि खद्योत सम जहँ-तहँ करहिं प्रकास' की कटूक्ति बहुत पहले से सहते आये हैं। खैर, खूबी कवि को गिराने में नहीं, मछली को उठाने में थी, पर यहाँ कम-से-कम हमें लज्जित होने की ज़रूरत नहीं, हम भगवान को भी मछली के रूप में देख चुके हैं।

डबलिन से स्लाइगो आकर मैंने ऐसा ही अनुभव किया जैसे लन्दन से केम्ब्रिज आकर किया था—कुल जमा आबादी यहाँ की 14,000 और गिनती की तीन ऊँची इमारतों—यानी स्लाइगो टाउन हाल, स्लाइगो एबी और स्लाइगो कैथीड्रल—के साये में सारा शहर या क़स्बा।

ठहरा मैं लेक आइल गेस्ट हाउस में जो स्टीफ़ेन स्ट्रीट और माल रोड के नुक्कड़ पर था, सस्ती और सुविधाजनक जगह। श्रीमती ईट्स यहीं ठहरती थीं। उन्होंने मुझे बताया था, वे हर वर्ष ईट्स के मृत्यु-दिवस पर ड्रमक्लिफ़ जाती हैं और उनकी समाधि पर माल्यार्पण करती हैं। हम लोग जन्म-जयन्ती मनाते हैं, पाश्चात्य मृत्यु-दिवस। उनका कहना है कि जन्म से जो जीवन आरम्भ होता है, वह मृत्यु पर समाप्त हो जाता है, पर मृत्यु से जो जीवन आरम्भ होता है, वह अनन्त होता है। अपना-अपना दृष्टिकोण।

जिस दिन पहुँचा, व्यवस्थित होते-होते शाम हो गयी। दूसरे दिन सवेरे गेस्ट हाउस में पूछने पर पता लगा कि यहाँ गाइड तो बस जब-तब टूरिस्ट बसों के साथ आते हैं, जो डबलिन से आती हैं। लेकिन यहाँ का हर आदमी गाइड है, आप किसी से पूछें, निराश नहीं होंगे।

बर्टी ऐण्डरसन को यहाँ कौन नहीं जानता ?—That old man young or young man old' (जिसे बूढ़ा-जवान भी कहा जा सकता है और जवान-बूढ़ा भी) शहर से कुछ दूरी पर रहते थे। मौसम सुहाना था, पैदल ही चलकर उनके घर पहुँच गया। गाल्फ़ खेलकर लौटे थे, प्लसफ़ोर में, क़द से मँझोले, शरीर से कुछ स्थूल, पर हर अंग अनुशासन में, जैसे कभी फ़ौज में रहे हों और बदन तब की क़वायद-कमाई अब तक खा रहा हो।

मैं अप्रत्याशित नहीं पहुँच गया था।

हेन का पत्र उन्हें मेरे बारे में मिल चुका था।

काउण्टी स्लाइगो का चप्पा-चप्पा उनका जाना-पहचाना, वहाँ के कितने परिवारों का इतिहास उनकी आँखों के आगे घटित, उनकी स्मृति में टंकित। उनकी ज़बान का घोड़ा जो छूटा तो भूसे-दाने की आवश्यकता पड़ने पर ही रुका, यानी लंच टाइम पर।

'स्लाइगो बहुत बड़ी जगह नहीं है, पर बहुत खूबसूरत, कार्लाइल तक ने इसकी तारीफ़ की है (जैसे कार्लाइल बड़ी मुश्किल से किसी जगह की तारीफ़ करते हों) उनकी 'फ्रेंच रेवोल्यूशन' तो आपने पढ़ी होगी ? यहाँ आपका स्वागत। यहाँ बहुत-से अमरीकन आते हैं The Lake Isle of Innisfree (दि लेक आइल आफ़ इनिसफ़्री) देखने। लूगिल झील में है। यहाँ से दक्षिण बस दो मील पर। एक मील और आगे 'डूनी राक' है। ईट्स की एक कविता है The Fiddler of Doony (दि फिड्लर आफ डूनी)। कविता इसी राक से सम्बद्ध है। वह भी देखने की चीज़ है। आप तो अभी जवान हैं, पैदल जायें। मैं अस्सी का हूँ, फिर भी

दस मील रोज़ चलता हूँ। कई द्वीप हैं, किसी-किसी पर पुराने गिरजों के खँडरात हैं, पहले वहाँ किश्तियाँ जाती थीं, अब तो मोटरबोट मिलती है। किसी ज़माने में लूगिल पर रईसों की अपनी-अपनी किश्तियाँ होती थीं, हेन के पिता की किश्ती पर हम लोग कितनी बार लूगिल पर घूमे हैं। ईट्स किसी द्वीप के खँडहर में अपने नये धर्म (cult) का मन्दिर स्थापित करना चाहते थे, ऊँचे ख्वाबों के आदमी थे। इस जगह को अमर कर गये। नहीं कौन इसे जानता! यहाँ से उत्तर पाँच मील पर ड्रमक्लिफ़ है। ईट्स ने वसीयत की थी कि उन्हें इसी जगह पर दफ़नाया जाय। वे यहाँ की मिट्टी को कितना प्यार करते थे, इसकी हर जगह, हर चीज़ को उन्होंने अपनी कविता में स्थान दिया। आप ड्रमक्लिफ़ ज़रूर जाइए। सुबह एक बस जाती है, एक शाम को। ईट्स के नाना वहाँ के गिरजे के पादरी थे। हेन के दादा की यहाँ बड़ी जायदाद थी, सेब के खुशनुमा आर्चर्ड थे, पता नहीं वे सब कुछ बेच-बाच कर इंग्लैण्ड क्यों जा बसे? उनका लड़का आजकल कहाँ है? वह एक बार इधर आया था, कहता था, वह फिर यहीं आकर घर बसायेगा। मिट्टी मिट्टी को खींचती है। आपको समुद्री किनारों से प्रेम है? स्लाइगो के कई समुद्री किनारे बहुत सुन्दर हैं। रासेज़ प्वाइण्ट तो नज़दीक ही है, यहाँ से पच्छिम पाँच मील पर, दिन में कई बसें वहाँ जाती हैं। वहाँ स्लाइगो का सबसे अच्छा गाल्फ़ टर्फ़ है, मैं रोज़ वहाँ तक पैदल जाकर गाल्फ़ खेलता हूँ, मौसम अच्छा हुआ तो पैदल ही लौटता हूँ। खेल के दौरान जो चलता हूँ, वह अलग। रासेज़ प्वाइण्ट पर ईट्स के नाम पर 'ईट्स कण्ट्री होटल' है। शनिवार को गाल्फ़ खेलने के बाद मैं स्लाइगो नहीं लौटता। 'ईट्स कण्ट्री होटल' में ठहर जाता हूँ, इतवार को वहीं रहता हूँ। सोमवार को गाल्फ़ खेलकर स्लाइगो आता हूँ। हर वीकएण्ड के लिए मेरे नाम वहाँ एक कमरा सुरक्षित रहता है। ईट्स का छोटा भाई चित्रकार था। उसने रासेज़ प्वाइण्ट की एक पेण्टिंग की थी। असली कापी 'ईट्स कण्ट्री होटल' में अब भी लगी है। स्लाइगो और उसके आसपास को हम लोग ईट्स कण्ट्री कहते हैं। आप कितने दिन यहाँ हैं? 'ईट्स कण्ट्री' को जितना देख सकिए, देख लीजिए। पैदल घूमकर देखिए तो सबसे अच्छा। ईट्स न जाने यहाँ कितना पैदल घूमे होंगे। पैदल चलकर देखना किसी नयी जगह को देखने का सबसे अच्छा तरीक़ा है। चलते-चलते इस भूमि की सुगन्ध लें। यहाँ के जलाशयों की लहरियों का कलकल-छलछल, यहाँ के पशु-पक्षियों का स्वर सुनें। यहाँ के पेड़-पौधों की रंगीनी देखें। फिर कभी आप ईट्स की कविताएँ पढ़ेंगे तो आपको पता लगेगा कि इसकी कितनी चेतना अपने मन में बसाकर ईट्स ने अपनी क़लम चलायी है। ईट्स प्रकृति के कवि नहीं हैं, जैसे वर्ड्सवर्थ थे, पर प्रकृति का संस्पर्श वे कभी भूलते नहीं। वे सस्ते मानों में राष्ट्रकवि भी नहीं हैं। पर राष्ट्र की मिट्टी, पानी, हवा उनकी कविता की पृष्ठभूमि में सदा अपनी उपस्थिति का आभास देती है।'···

बीच-बीच में ऐण्डरसन की एकाध बातों का जवाब देने के अतिरिक्त वे जो कहते रहे, मैं उसकी हुँकारी भरता रहा। लौटा तो लगा निर्जीव पृष्ठों पर ईट्स की आलोचना पढ़ने से यह कितना भिन्न अनुभव था! किसी कवि का सच्चा महत्त्व समालोचना-ग्रन्थों में नहीं लिखा जाता, वह अंकित किया जाता है—उसके प्रेमियों के हृदय-पटल पर।···

अपराह्न में मैं पैदल जाकर लूगिल के तटीय वन-पर्वती सौन्दर्य को उसके नील जल-दर्पण में प्रतिबिम्बित देख आया। किनारे की सड़क के एक कोने से इनिसफ़्री का द्वीप भी दिखायी देता है। ईट्स का वह छोटा-सा गीत बहुत लोकप्रिय हुआ।

सीधी-सादी अभिव्यक्ति है, भावनाओं की कोई गहराई नहीं, कल्पना की कोई उड़ान नहीं। सादगी को भी ईट्स ने उद्बोधक कैसे बनाया है ! गीत को शुरू करते हैं बाइबिल की शब्दावली से—I will arise and go to my father—St. Luke (आई विल एराइज़ ऐण्ड गो टु माई फ़ादर—मैं यहाँ से उठूँगा और अपने पिता के पास चला जाऊँगा—सेण्ट लूक), जो अपने ध्वनि-संस्कार से हमें भौतिक संसार से ऊपर उठा देती है, फिर तो ईट्स हमें अध्यात्म की दुनिया में न ले जाकर, रूमान की दुनिया में ले जाते हैं और हम कोई एतराज नहीं कर पाते।

कुछ दूर और आगे बढ़कर 'डूनी राक' भी देख आया। राक की छाया में नीची छतों के थोड़े से घरों की बस्ती। लगता है, किसी घर से निकलकर डूनी का फ़िडलर अभी अपनी फ़िडिल बजाने लगेगा और फिर यहाँ से लौटना असम्भव होगा। उसके आने के पहले ही यहाँ से चल देना चाहिए।

When I play on my fiddle in Doony
Folk dance like the wave of the sea.
(जब डूनी में बजता मेरा इकतारा
तब डूनी के लोग नाचते हैं ऐसे
जैसे लहरें नाच रही हों सागर पर।)

अपने मुरलीधर का ही कोई विदेशी संस्करण है।

'नाद सुनि बनिता विमोहीं घर बिसारे चीर
मुरली अधर सजी बलबीर।'

शाम को बस से रासेज़ प्वाइण्ट गया। कितने लोग, कितने जोड़े, कितने अकेले। पर वे रासेज प्वाइण्ट के फैलाव को भर नहीं पाते। फैलाव—जैसे किसी की प्रतीक्षा में पलक पाँवड़े बिछाये पड़ा है, सभी आये हैं, वही नहीं आया,

'आवन कह गये, अजहुँ न आये दिवस रहे अब थोरी'

मीरा, तुम्हारा स्वर कहाँ-कहाँ प्रध्वनित होता है !

दूसरे दिन सबेरे-सबेरे ड्रमक्लिफ़ गया, पैदल, साथ कुछ फूल ले गया था, मेरे लिए तीर्थ-यात्रा ही थी—रास्ते में बर्टी ऐण्डरसन के आदेशानुसार ईट्स-प्रदेश के सौन्दर्य को आँखों से पीता।

ड्रमक्लिफ़ में सड़क के एक ओर पत्थर की गोल मीनार है, ऊपर से खण्डित; इस तरह की गोल मीनारें आयरलैण्ड में सब जगह हैं, स्लाइगो काउण्टी में यह एक मात्र। बताते हैं, पुराने ज़माने में इन मीनारों का उपयोग हमलावरों पर निगह-बानी रखने के लिए किया जाता था। एक के बाद एक उत्तरी योरोप की चार-पाँच जातियों ने आयरलैण्ड पर हमले किये। केवल रोमन वहाँ नहीं पहुँचे, जिनसे योरोप का कोई प्रदेश नहीं बच सका था। इतिहासवेत्ताओं का कहना है कि केवल इस एक बात ने आयरलैण्ड की सभ्यता और संस्कृति को एक विशिष्टता दे दी है। खण्डित मीनार के पास ही पत्थर का एक बड़ा-सा सलीब खड़ा है—बारीक नक़्क़ाशी की गयी है उसके ऊपर। आयरलैण्ड के शिला-सलीबों की एक विशेषता है, इनके ऊपरी हिस्से को एक चक्र से घेरा गया है। ऐसा क्यों किया गया होगा, इसका रहस्य अभी तक नहीं खुला। ईट्स को तो अपने लम्बे-गोल प्रतीकों को साथ रखने के औचित्य का एक साक्ष्य इन सलीबों में भी मिला होगा—तीर के

साथ साँप, बाज़ के साथ तितली, दर्शन के साथ काव्य। एक अनुमान है, ईसाइयत के साथ लोकविश्वास को मान्यता देने का संकेत तो इन सलीबों से नहीं किया गया ? ईट्स को निश्चय ऐसी कल्पना सन्तोषप्रद लगती।

सड़क के दूसरी ओर ड्रमक्लिफ़ का गिरजा है—सामने कुछ दूरी पर क़ब्रों का सिलसिला है। ईट्स की क़ब्र को कोई विशिष्टता नहीं दी गयी। कई क़ब्रों पर भटकने के बाद उनकी क़ब्र पर पहुँचा। कोई ऊँचाई भी उसे नहीं दी गयी, भूमि से समतल, शरीर की लम्बाई-चौड़ाई की ज़मीन पक्की ईंटोंसे घेर दी गयी है, बीच की ज़मीन कच्ची है, सिर की ओर तीन फ़ीट ऊँचे पत्थर पर ईट्स की पंक्तियाँ, जिनकी चर्चा पहले कर चुका हूँ, उनका नाम, जन्म और निधन तिथि। घेरे के अन्दर की कच्ची ज़मीन पर उन दिनों कम ऊँचाई के लाल फूलों के पौधे उग रहे थे—

उमर ख़ैयाम की रुबाइयों के अपने अनुवाद का एक पद याद आता है :

> **वही होते अति लाल गुलाब**
> **जड़ें जिनकी कर पातीं पान**
> **गड़े अवनी पतियों का ख़ून**
> **देख यह आता मुझको ध्यान—**
> **हाय, वन की हर सुम्बुल बेलि**
> **रही जो हिल-खिल आज समोद,**
> **किसी सुमुखी की कुन्तल राशि**
> **पड़ी जो गिर उपवन की गोद।**

फूल जो मैं लाया था, पाँवों की ओर रख दिये। ये फूल तो मुर्झा जायेंगे, पर मेरी श्रद्धा ताज़ी रहेगी। दूर बेन बुलबेन पहाड़ी पर नज़र जाती है—ईट्स का यश इन्हीं चट्टानों के समान अटल है।

ईट्स की समाधि के सामने खड़े होकर एक प्रार्थना करता हूँ—

> तुम पर कुछ कहने जा रहा हूँ,
> तुमको सही प्रस्तुत करूँ;
> तुमको ग़लत न प्रस्तुत करूँ।

मुझे न और कुछ करना था, न और किसी से मिलना था। स्लाइगो की ओर जानेवाली बस आने में बहुत देर थी। पैदल ही वापस चल पड़ा। रास्ते में उधर जाती एक मोटर दिखी। मैंने अँगूठा दिखाया—यह संकेत है कि अगर मोटर में जगह हो तो मुझे भी बिठा लो। मोटर में दो नवयुवक जा रहे थे। उन्होंने मुझे बिठा लिया और लेक आइल गेस्ट हाउस पर छोड़ गये।

डबलिन के लिए गाड़ी सबेरे मिलती थी। एक दिन वहाँ और गुज़ारना था। बर्टी ऐण्डरसन के ही पास कुछ वक़्त काट सकता था। शनिवार था, आशा नहीं थी कि वे रासेज़ प्वाइण्ट से आज स्लाइगो लौटे होंगे। शाम को फ़ोन किया। घर पर ही थे, मुझे बुला लिया, 'मुझे मालूम था, आज आप मुझसे मिलना चाहेंगे, इसीलिए मैं रासेज़ प्वाइण्ट में नहीं रुका।'

वे इस बात से बड़े खुश हुए कि ड्रमक्लिफ़ तक मैं पैदल गया था। उन्होंने मुझे चाय पिलायी और देर शाम तक बातें करते रहे। ऐण्डरसन अपने छोटे भाई के साथ रहते थे, विधुर थे, सन्तान कोई न थी। छोटे भाई एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट के

व्यापार में थे। ऐण्डरसन भी उनका कुछ हाथ बँटाते थे। ट्रिनिटी के पुराने छात्र थे। किसी समय थियोसोफ़िकल आन्दोलन से सक्रिय रूप में सम्बद्ध थे। थियोसोफ़ी की ओर प्रोटेस्टेण्ट नवयुवकों के झुकाव का उन्होंने एक नया कारण बताया। राष्ट्रीय आन्दोलन कैथलिक आन्दोलन था, प्रोटेस्टेण्ट अंग्रेज़ी सरकार के ख़िलाफ़। जो प्रोटेस्टेण्ट राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ थे, उन्हें सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था। उन्होंने प्रोटेस्टेण्टिज़्म को भी तिलांजलि दे दी, थियोसोफ़िस्ट हो गये। प्रोटेस्टेण्टों ने एक दूसरी तरह राष्ट्रीय आन्दोलन को सहायता पहुँचाने की सोची—आयरलैण्ड का सांस्कृतिक पुनर्जागरण लाकर। डा. हाइड इन लोगों के नेता थे। ईट्स, लेडी ग्रिगोरी, सिंज, जार्ज रसेल—सब उन्हीं से प्रेरणा लेकर साहित्यिक और सांस्कृतिक आन्दोलन में कूदे।

ऐण्डरसन ने मुझे अपने परिवार का पुराना अलबम दिखाया। उसमें ईट्स के भी कई चित्र थे। ईट्स किसी भी कम्पनी में कवि ही लगते। माडगान के यौवन की एक बहुत ही सुन्दर तस्वीर थी। सम्भव है, बर्टी ने भी अपने यौवन में उस पर तबीयत फेंकी हो। कहते थे, 'माडगान की आँख बड़ी पैनी थी। उसने ताड़ लिया था कि लेडी ग्रिगोरी भी ईट्स को प्रेम करती थी और वे भी उससे किसी रूप में सम्बद्ध थे, बस उसने ईट्स से शादी करने से इन्कार कर दिया।'

जार्ज की उन्होंने बड़ी तारीफ़ की—'वह लाखों में एक स्त्री है। वह जानती थी कि ईट्स माडगान को नहीं भूले, लेडी ग्रिगोरी से उनका कोई सम्बन्ध है, फिर भी उसने ईट्स के साथ अपना वैवाहिक जीवन गरिमा के साथ बिताया। ईट्स तो अपनी वृद्धावस्था में भी एक नवयुवती के प्रेम में थे—डोरोथी के; जार्ज यह जानती थी, पर उसने इसे कभी पारिवारिक कलह का कारण नहीं बनाया।'

बर्टी सचमुच बड़े आशावादी थे। ईट्स जन्मशती आने को अभी बारह वर्ष थे, पर वे तभी से उनकी शती-जयन्ती स्लाइगो में मनाने का सपना देख रहे थे। वे बड़े गर्व से कहते थे, 'ईट्स ने अपनी अस्थियाँ हमें सौंपी हैं तो हम भी उनकी कीर्ति की रक्षा करने का दायित्व निभायेंगे।'

मुझे खबर मिली थी कि ईट्स की जन्मशती स्लाइगो में मनायी गयी थी और मि. हेन प्रमुख वक्ता के रूप में वहाँ गये थे, पर बर्टी ऐण्डरसन तब मौजूद थे या नहीं, मैं नहीं कह सकता। न रहे होंगे तो भी, मुझे विश्वास है, वे जन्मशती मनाने की सारी तैयारी कराके गये होंगे। रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं, तब वे 92 वर्ष के होंगे। मेरे एक चाचा, मेरी बुआ दादी के पुत्र, 97 वर्ष की अवस्था में भगवान की दया से अभी मौजूद हैं—बाबू हर हरनारायण लाल—अकोढ़िया, रायबरेली में। अभी तक अपने हाथ से मुझे पत्र लिखते हैं। चार वर्ष पहले उन्होंने मुझे लिखा था, 'सुना है कि तुम्हारा लड़का अमिताभ फ़िल्म अभिनेता हो गया है, मैं कभी लखनऊ जाकर उसकी फ़िल्म देखूँगा।' ये पुराने लोग जीवन से अपने को कितना जुड़ा रखते हैं, तभी शायद वे बहुत दिन जीते भी हैं।

डबलिन लौटकर केम्ब्रिज जाने के पहले मुझे सिर्फ़ दो काम करने थे, एक किलार्नी देख आना; दूसरे श्रीमती ईट्स और डबलिन के मित्रों को भोज देना। जब से वहाँ पहुँचा था, हर एक ने मुझे लंच या डिनर पर बुलाया था—लौटने के पहले मुझे भी एक दिन सबको खाने पर बुलाना था—'मित्र के जेंयिये तो आप हू जेंवायिये।'

किलार्नी के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन हर आयरी ने मुझसे इस तरह किया

था जैसे वह वहाँ का कश्मीर हो। और हर एक का आग्रह था कि उसे देखे बग़ैर मैं इंग्लैण्ड न लौटूँ।

मैंने टूरिस्ट ट्रेन से जाने के लिए टिकट ले लिया; साथ चलने को नैनसी तैयार हो गयी, मेरी ही डिग में रहती थी, किसी पास के क़स्बे की लड़की, शहर की किसी लाइब्रेरी में काम करती थी। मैंने सोचा, चलो साथ रहेगा। प्रकृति का सौन्दर्य घूरते अकेले बौंड़ियाते फिरने में मुझे विशेष रस नहीं।

टूरिस्ट ट्रेन सुबह-सुबह डबलिन से चली थी—सीटें हर यात्री के लिए अलग, कुशादह, आरामदेह। रास्ते में जिस प्रदेश से हम गुज़र रहे होते उस पर कमेण्ट्री होती चलती थी, कमेण्ट्री एक डिब्बे से होती पर लाउडस्पीकरों से हर डिब्बे में साफ़ सुनायी पड़ती। कुछ जगहें केवल ट्रेन से देखने की होतीं, ट्रेन यथावश्यकता रोक दी जाती या धीमी कर दी जाती। कुछ जगहें ट्रेन से उतरकर देखने की होतीं। ट्रेन रुकती, मुसाफ़िर उतरते, जगह लाइन से क़रीब होती तो हम वहाँ तक पैदल जाते-आते, दूर होती तो टूरिस्ट विभाग की बसें खड़ी मिलतीं। सबको जगह दिखला, फिर ट्रेन पर छोड़ जातीं। इतने गढ़, गिरजों, खण्डरातों की कथा-व्यथा कौन याद रक्खे! नज़र से हटे, ध्यान से हटे, आगे आनेवालों के लिए कौतूहल।

पैक लंच ट्रेन में मिल गया था।

अपराह्न में हम किलार्नी पहुँच गये।

कश्मीर पहली बार मैं पठानकोट से जम्मू, जम्मू से श्रीनगर बस से गया था। मुझे याद है, पीर पंजाल की सीढ़ीदार सड़कों को पार कर जब आखिरी टनल में होकर हमारी बस बाहर निकली थी तो कश्मीर घाटी का अफाट सौन्दर्य सहसा हमारी आँखों के सामने फट पड़ा था। किलार्नी देखकर मुझे कुछ ऐसी ही अनुभूति हुई। कुछ क्यों? पूरी क्यों नहीं? इसलिए कि किलार्नी के नेत्रों के समक्ष आने के साथ वह अचानकता का तत्व न था जो कश्मीर में था। किलार्नी के निकट पहुँचते रास्ते की मनोज्ञता से जैसे हम उसकी मनोरमता के लिए तैयार होते गये थे।

पहाड़ियाँ, नदी, झील, झरना, बन, उद्यान, नहरें, पुराने खँडहर, नये निर्माण, इतिहास, विज्ञान, प्रकृति, मानवी कौशल—सबका कैसा यथास्थान समायोजन, सम्मिलन यहाँ किया गया था!

इस सारे सौन्दर्य को हमने बस से देखा था, बोट से देखा था, घोड़े की पीठ से, और 'उँटाँगे' से। 'उँटाँगा' आपने नहीं समझा होगा। आयरलैण्ड में एक तरह का टाँगा होता है जो ऊँट जितना ऊँचा होता है, इसको 'जाण्टिग कार' कहते हैं। इसको 'उँटाँगा' नाम मैंने दिया है। इसके पुश्तैनी पेशेवर हाँकनेवाले अपनी व्यंग्य-विनोदी बतकही के लिए भी विख्यात हैं।

किलार्नी में आँखों को ही नहीं खुला रखना होता, कानों को भी। कितनी तरह की ध्वनियाँ आपको सुनायी पड़ती हैं, पशु-पक्षियों की, नदी-झरनों की, तरह-तरह के वृक्षों से गुज़रती हवाओं की और चट्टानों की। आश्चर्य न करें, किलार्नी की चट्टानें बोलती हैं। पोनीमैन—घोड़ों की रास पकड़कर चलनेवाले—तरह-तरह के बिगुल और गाँवों में बनी सिंगी या हार्न रखते हैं। जब वे उन्हें बजाते हैं तो विभिन्न चट्टानों से भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिध्वनियाँ निकलती हैं—कोई मनोहारी, कोई भयावनी भी। कोई तो इतनी भयावनी कि कोई अपरिचित लडकी भी यदि आपके पास खड़ी हो तो आपसे चिपक जायगी।

प्रकृति का सौन्दर्य मौसम के साथ उभरता, दबता, बदलता है।

अगर किलार्नी पर बदली घिर आती ?
अगर किलार्नी पर चाँदनी छा जाती ?
उस सन्ध्या को किलार्नी पर पूरा चाँद निकल आया था।
चाँद से ताजमहल का सौन्दर्य ही नहीं निखरता, किलार्नी का भी।
सफ़ेदी पर सफ़ेदी एक चीज़ है।
रंगीनी पर सफ़ेदी दूसरी ही चीज़ है।

मैंने चाँदनी में ताजमहल भी देखा है, किलार्नी भी देखी है। सौन्दर्य की सौन्दर्य से तुलना नहीं करनी चाहिए। इस समय किलार्नी के सौन्दर्य को पूरी तरह भोगने के लिए ताजमहल को याद भी न करना चाहिए।

नैनसी अधिक सौभाग्यवान है। उसने ताज नहीं देखा है।
वह किलार्नी के ही सौन्दर्य में डूब गयी है।

टूरिस्ट बसों से हार्न बजने लगे हैं। वापस जाने के लिए बुलावा है। मुसाफ़िरों के क़दम सब ओर से बसों की ओर बढ़ने लगे हैं।

नैनसी को हिलाता हूँ—लौटने का समय हो गया है।
नैनसी धीमे से कहती है—

हम टूरिस्ट ट्रेन से आये ज़रूर थे, हम टूरिस्ट ट्रेन से वापस जाने के लिए बाध्य तो नहीं हैं ? कि हैं ?...

वह रात हमने चाँदनी और किलार्नी के साथ बितायी।
और बहुत-से लोग रुक गये थे।
फिर हम सब साथ मिलकर एक फूलों के झुरमुट के पास बैठे।
सबने अपने-अपने देश के गीत गाये-सुनाये या मनोरंजक 'एनेक्डोट्स'।
सुबह की गाड़ी से हम डबलिन लौटे।

खिड़की से ठण्डी-ठण्डी हवा के झोंके आ रहे थे और मैं अधसोया-अधजागा-सा आड़ लगाकर बैठा था, बिल्कुल विश्रान्त, और मेरे कानों में एक गीत गूँजने लगा था—जैसे कोई दूसरा गा रहा हो और मैं सुन रहा हूँ।

डिग में आकर मैंने बड़े सहज भाव से वह गीत लिख डाला—देर कर दूँ तो शायद वह मेरी स्मृति से उतर न जाये।

वह गीत मैं पूरा यहाँ देना चाहता हूँ। पंक्तियों का संकेत कर दूँ और वह गीत आप इसी वक्त अपने निकट न पा सकें तो आपका सारा मज़ा किरकिरा हो जायेगा, और इस गीत पर जो मैं कहना चाहता हूँ, वह भी आपके पल्ले न पड़ेगा।

तुम्हारे नील झील-से नैन, नीर-निर्झर-से लहरे केश।

तुम्हारे तन का रेखाकार वही कमनीय कलामय हाथ
कि जिसने रुचिर तुम्हारा देश रचा गिरि-ताल-माल के साथ
करों में लतरों का लचकाव, करतलों में फूलों का वास,
तुम्हारे नील झील-से नैन, नीर-निर्झर-से लहरे केश।

उधर झुकती अरुनारी साँझ, इधर उठता पूनों का चाँद,
सरों, शृंगों, झरनों पर फूट पड़ा है किरनों का उन्माद,
तुम्हें अपनी बाहों में देख नहीं कर पाता मैं अनुमान,
प्रकृति में तुम बिम्बित चहुँ ओर कि तुममें बिम्बित प्रकृति अशेष।
तुम्हारे नील झील-से नैन, नीर-निर्झर-से लहरे केश।

जगत है पाने को बेताब नारि के मन की गहरी थाह—
किये थी चिन्तित औ बेचैन मुझे भी कुछ दिन ऐसी चाह—
मगर उसके तन का भी भेद सका है कोई अब तक जान।
मुझे है अद्‌भुत एक रहस्य तुम्हारी हर मुद्रा, हर वेष।
तुम्हारे नील झील-से नैन, नीर-निर्झर-से लहरे केश।

कहा मैंने, मुझको इस ओर कहाँ फिर लाती है तक़दीर,
कहाँ तुम आती हो उस ओर जहाँ है गंग-यमुन का तीर,
विहगम बोला, युग के बाद भाग से मिलती है अभिलाष,
और···अब उचित यहीं दूँ छोड़ कल्पना के ऊपर अवशेष।
तुम्हारे नील झील-से नैन, नीर-निर्झर-से लहरे केश।

मुझे यह मिट्टी अपनी जान किसी दिन कर लेगी लयमान,
तुम्हें भी कलि-कुसुमों के बीच न कोई पायेगा पहचान,
मगर तब भी यह मेरा छन्द कि जिसमें एक हुआ है अंग
तुम्हारा औ' मेरा अनुराग रहेगा गाता मेरा देश।
तुम्हारे नील झील-से नैन, नीर-निर्झर-से लहरे केश।

पीछे मैंने तनाव और विश्रान्ति से सृजन की चर्चा चलायी है। बहुत-सी रचनाओं के तनाव में सृजन की चेतना के साथ ही, अपने इस उपर्युक्त गीत को मैं विश्रान्ति से सृजन की कृति कहता हूँ। इसको रचकर मुझे कुछ क्षणों के लिए परम शान्ति की-सी उपलब्धि हुई। यह मेरा एकमात्र गीत, एकमात्र कविता, है—जो मैंने आयरलैण्ड की भूमि पर लिखा। मुझे अपने सैकड़ों गीतों में अगर पाँच सर्वश्रेष्ठ गीत चुनने हों तो मैं एक इसको रखना चाहूँगा। वस्तुतः इस गीत को मैं अपने लिए आयरलैण्ड की सबसे मधुर भेंट समझता हूँ। काश, मैं ऐसे बहुत से गीत लिख सकता जो मन को ऐसी शान्ति की अनुभूति कराते हैं। ऐसी मनःस्थिति-परिस्थिति को, किसी उपाय से तैयार कर लेना शायद सम्भव नहीं। यह कभी-कभी भाग्य से बन जाती है। ऐसी स्थिति को स्थायी बना लेना बहुत बड़ी साधना है, जो कवीन्द्र रवीन्द्र जैसी विभूतियों के बस की है—ईट्स के बस की भी नहीं। वे तो सदा तनाव के ही कवि रहे। उन्हें टैगोर से शिकायत थी कि वे शान्ति की अतिशयता में लिखते हैं। प्रायः टैगोर के और ईट्स के समान रहस्यवादी होने की बात समालोचकों द्वारा कही गयी है। सरासर भ्रम है। वे समान क़द के कवि हों, समान पद के नहीं। टैगोर शान्ति के कवि हैं, ईट्स संघर्ष के। टैगोर सन्त हैं, ईट्स योद्धा। मैंने अपने को प्रायः ईट्स के वर्ग का पाया है, कभी-कभी टैगोर के वर्ग का। यदा-कदा टैगोर के तनाव और ईट्स के शान्ति के क्षण भी आते हैं।

मैंने डबलिन पहुँचकर श्रीमती ईट्स को शाम के खाने के लिए निमन्त्रित किया, उन्हीं से पूछा, 'आप और किसको बुलाना चाहेंगी ?' उन्होंने कहा, 'आप जिसे भी बुलाना चाहें, होन, अशर-दम्पत्ति और ब्लनेड की कम्पनी अच्छी रहेगी।' मैंने ट्रिनिटी के अंग्रेज़ी लेक्चरर को भी बुला लिया जिन्होंने मुझे वहाँ की लाइब्रेरी से पुरानी पत्र-पत्रिकाएँ सुलभ कराने में सहायता दी थी।

भोज का प्रबन्ध मैंने शेलबोर्न होटल में किया था जो ईट्स का प्रिय होटल था और जहाँ वे अक्सर जाते थे। प्रसिद्ध था—वहाँ थैकरे, बर्नर्ड शा, आस्कर वाइल्ड जैसे लोग भोजन कर चुके थे।

खाने के पहले थोड़ी ड्रिंक ली गयी—

सबने मेरे लिए 'टोस्ट' उठाया—To your success in your research work !

(आपके शोध-कार्य में सफलता के लिए हमारी शुभकामनाएँ !)

मैंने अपनी स्लाइगो, किलार्नी यात्रा के अनुभव बताये। औरों ने और-और रोचक-विनोदपूर्ण बातें कीं। ब्लनेड की उपस्थिति से पार्टी में विशेष जीवन्तता बनी रही।

भोजन समाप्त होने के बाद बिल की प्रतीक्षा।

बिल मेरे सामने लाया गया।

देखकर चकित।

You are our guest. We are honoured by your visit. No charges.

(आप हमारे अतिथि हैं; हम आपके पधारने से गौरवान्वित हुए, आपको कुछ देना नहीं है।)

मैनेजर से मेरा कोई अनुरोध न चला।

शायद श्रीमती ईट्स ने पहले ही मैनेजर को फ़ोन करके कह दिया था कि आज शाम का बिल उनके हिसाब में डाल दिया जाये।

मेरे पास कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए शब्द नहीं थे।

मैंने कहीं पढ़ा था, आयरलैण्ड का दूसरा नाम अतिथि-सत्कार (Hospitality) है, उसका यहाँ सद्भावनापूर्ण सबूत मिला।

दूसरे दिन मैं केम्ब्रिज के लिए रवाना हो गया।

आयरलैण्ड से मैं बहुत कुछ लेकर लौटा।

डेढ़ महीने बाद केम्ब्रिज लौटा हूँ। मौसम पर ध्यान जाता है। इंग्लैण्ड में रहते-रहते मौसम के प्रति अधिक सचेत हो गया हूँ। यहाँ के आदमी की आँख तो हर समय मौसम पर रहती है। हर अभिवादन के साथ मौसम याद किया जाता है—गुड मार्निंग, गुड ईवनिंग, चाहे बैड मार्निंग, बैड ईवनिंग ही क्यों न हो। कभी-कभी होती ही है। खैर, पतझड़ अब पक गया है, पेड़ों के पत्ते पीले पड़ गये हैं और टूट-टूटकर गिरने लगे हैं, नवम्बर तक डालें नंगी हो जायेंगी, दिसम्बर से तो उन पर बरफ़ जमने लगेगी, दिन छोटे होने लगे हैं। और सब तो केम्ब्रिज में वैसा ही है, जैसे पहले था।

समय लेकर मैंने मि. हेन को बता दिया, जो मैंने आयरलैण्ड में देखा, सुना, किया था।

बोले, 'तुमने आयरलैण्ड-यात्रा का अच्छा उपयोग किया है, अब थियोसोफ़ी के प्रभाव में, जैसी कि तुम्हारी स्थापना है, ईट्स के ओकल्ट-दर्शन पर अपना प्रबन्ध लिख डालो। यह काम सितम्बर के अन्त या अक्तूबर के मध्य तक हो जाना चाहिए। दो और छोटे अध्याय तैयार करने होंगे, एक भूमिका के रूप में, एक उपसंहार के रूप में। उसके बाद निर्देशन समाप्त। तुम अपने शोध-प्रबन्ध को अन्तिम रूप दो। इस काम में प्रायः छह महीने लगते हैं। तुमने कहा था कि तुम 24 महीने से अधिक यहाँ नहीं रुक सकोगे। तुमने '52 के ईस्टर टर्म यानी अप्रैल से काम शुरू किया था, '54 के लेण्ट टर्म पर यानी मार्च के अन्त तक तुम छह टर्म पूरे कर लोगे। उसके बाद तुम्हारे लिए दो रास्ते खुले हैं।

'अगर मार्च के अन्त में तुम्हें स्वदेश लौट जाना है तो तुम वहाँ से भी, यथा सुविधा, अपनी थीसिस प्रस्तुत करा सकते हो, साल-छह महीने बाद भी। अगर परीक्षक तुम्हारी थीसिस से सन्तुष्ट हुए तो वे तुम्हें मौखिक परीक्षा से छूट भी दे सकते हैं। किसी कारण कुछ संशोधन करने का सुझाव उनको देना पड़ा तो तुम वहीं से संशोधित रूप भी भेज सकते हो।

'अगर तुम दो-ढाई महीने और केम्ब्रिज में रुक सको तो मैं दूसरा रास्ता बताऊँ। मैंने युनिवर्सिटी कैलेण्डर देख लिया है। व्यक्तिगत रूप से मैं दूसरे रास्ते को तरजीह दूंगा, पर तुम अपनी सुविधा देख लो। तुम मार्च के अन्त तक अपनी थीसिस को अन्तिम रूप दे दो। एक महीने टाइपिंग, प्रूफ़ रीडिंग—थीसिस में टाइपिंग की कोई ग़लती नहीं रहनी चाहिए, इससे परीक्षक चिढ़ जाता है और शोधार्थी को लापरवाह समझता है—जिल्दबन्दी में लगेंगे। अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में तुम अपनी थीसिस यहीं प्रस्तुत कर दो। परीक्षक प्राय: एक महीना लेते हैं। मई के अन्तिम सप्ताह में तुम्हारा 'वाइवा' हो जायगा। और दोनों परीक्षक अलग-अलग और एक साथ अपनी रिपोर्ट दे चुके होंगे। पहली जून को डिग्री कमेटी की मीटिंग है जिसमें अगले कान्वोकेशन पर दी जानेवाली सब डिग्रियों का फ़ैसला होगा। कान्वोकेशन 12 जून को है। अगर तुम्हारी थीसिस स्वीकृत होती है तो तुम युनिवर्सिटी के कान्वोकेशन में डिग्री लेकर जाओ।'

(केम्ब्रिज में थीसिस को 'डिस्सर्टेशन' और 'कान्वोकेशन' को 'कानग्रिगेशन' कहते हैं। मैं अपने पाठकों की सुविधा के लिए भारत में प्रचलित शब्दावली का प्रयोग कर रहा हूँ।)

मैंने हेन से कहा, 'तरजीह तो मैं भी दूसरे रास्ते को देना चाहूँगा; पहले काम तो पूरा करूँ।'

दूसरे रास्ते का निर्णय लेने से पहले मुझे बहुत-बहुत कुछ सोचना, करना था।

फ़िलहाल, अपने शोध-कार्य के सम्बन्ध में ही एक बड़ी समस्या मेरे सामने खड़ी हो गयी थी। शोध-कार्य तभी निर्बाध गति से आगे बढ़ता है, जब निर्देशक और शोधार्थी में ताल-मेल हो। हफ़ के और मेरे दृष्टिकोण में जो अन्तर था, उससे शुरू-शुरू में उन्हें भी कुछ बौद्धिक व्यायाम करना पड़ा होगा, मुझे अपनी ओर लाने को और मुझे भी कुछ दबना-हटना पड़ा होगा, उनके अनुरूप होने को। शोध के स्तर पर यह तो हो नहीं सकता कि मौलवी साहब कान पकड़कर जिधर चाहें शागिर्द को घुमा दें और न शागिर्द ही अपने कान को इतना मजबूत समझ सकता है कि मौलवी साहब को जिधर चाहे, खींच ले जाये। लेकिन अगर निर्देशक और शोधार्थी में संघर्ष की स्थिति आये तो न तो वह शोभन होगी, न हितकर, निश्चय ही शोधार्थी के लिए, क्योंकि निर्देशक फिर भी शोधार्थी का बहुत कुछ बना-बिगाड़ सकता है, न्यायतः अथवा अन्यायत:।

बिना आपको तकनीकी विस्तार में खींचे, संक्षेप में समस्या को इस प्रकार रखना चाहूँगा। ईट्स के दर्शन-स्रोतों के सम्बन्ध में जो धारणा मेरी बन रही थी, उससे हेन की पूर्ण सहमति न थी और वे अधिकाधिक अकाट्य सबूतों की माँग करते रहते थे। आयरलैण्ड में मुझे जो सामग्री मिली थी, उसको देख-परखकर मैं अपनी धारणा में अधिक दृढ़ हो गया था। स्थिति अब और नाजुक इसलिए हो गयी थी कि कुछ कविताएँ जिनको मैं अपने समर्थन में प्रस्तुत करना चाहता था, उन्हीं के सम्बन्ध में हेन कुछ दूसरी बातें अपनी पुस्तक में कह चुके थे। बिना उनको

ग़लत साबित किये हुए मैं अपने तर्क में आगे नहीं बढ़ सकता था। मेरे सामने तरह-तरह के प्रश्न उठते थे, क्या मैं उनको ग़लत साबित करूँ ? अगर मैं ऐसा करता हूँ तो क्या हेन मेरे तर्कों को स्वीकार करेंगे ? अगर वे तर्क मानने ही पड़े तो क्या हेन इससे नाराज़ नहीं होंगे ? उस नाराज़गी में क्या यह सम्भव नहीं कि वे मेरी थीसिस को ही रिजेक्ट कर दें। तब तो मेरा दो वर्ष में किया-कराया सारा काम ही चौपट हो जायेगा। मैं तो इस आशा से काम कर रहा था कि वे मेरी एम. लिट्. की थीसिस को पी-एच. डी. की थीसिस की समता का समझेंगे। क्या अपनी इस धृष्टता के बाद भी मैं ऐसी प्रत्याशा कर सकता हूँ ? क्या मैं इन कविताओं का ज़िक्र लाये बग़ैर अपनी बात नहीं सिद्ध कर सकता ? अगर नहीं, तो क्या मैं अपने तर्कों को स्वयं कमज़ोर नहीं बनाऊँगा ? इन प्रश्नों की उधेड़-बुन में कई दिनों तक मैंने कुछ काम नहीं किया। फिर मैंने प्रयोगात्मक रीति से अपना लेख लिख डाला। कई बार मैंने उसको इस दृष्टि से पढ़ा कि अगर हेन उसे पढ़ेंगे तो उनको कैसा लगेगा। उनकी प्रतिक्रिया क्या होगी ? निर्देशन का दिन समीप आता जा रहा था और मैं अपने संकोच में डूब-उतरा रहा था। मैंने अपनी शैली को बार-बार माँजा, बातें बड़े संयत ढंग से कहीं, फतवेबाज़ी की कहीं बू तक न रक्खी, आक्रामकता उसमें कहीं भी न आने दी। साथ ही, जो बातें मुझे कहनी थीं, निश्चयात्मकता के साथ कहीं, असन्दिग्धता के साथ।

हेन ने लेख मेरे सामने ही पढ़ा। मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि उन्होंने मेरे उस प्रबन्ध में कम-से-कम संशोधन सुझाये। उनके सम्बन्ध में जो मैंने लिखा था, उस पर तो उन्होंने एक शब्द भी न कहा, वे लेख इस तरह पढ़ गये जैसे वे किसी तीसरे व्यक्ति के बारे में पढ़ रहे हों। उनकी इस निरपेक्षता से मैं बहुत दिनों आशंकित रहा। इससे तो अच्छा होता, वे मेरा विरोध करते, किसी अंश में सही, या मेरा लेख बिलकुल रिजेक्ट कर देते। उस दर्जे पर मेरा ऐसा समझना मेरी अहम्मन्यता की हद ही होती कि जो मैंने कहा था, वह सवा सोलह आने ठीक था और उसमें एक शब्द भी जोड़ने-घटाने की आवश्यकता न थी।

दूसरा लेख, भूमिकावाला, मैंने दो सप्ताह के अन्तराल पर पूरा कर दिया और उसमें कोई विवादास्पद बात न थी।

पर तीसरे, उपसंहारवाले लेख ने फिर एक समस्या खड़ी कर दी।

संक्षेप में और अ-तकनीकी ढंग से, उसे मैं इस प्रकार रखना चाहूँगा।

उन्नीसवीं सदी की वैज्ञानिक खोजों ने परम्परागत ईसाई धर्म में लोगों की आस्था डिगा दी थी।

लेकिन आस्था, आध्यात्मिक नहीं तो कलात्मक आवश्यकता थी ईट्स की।

उसका आधार उन्होंने देश-काल में दूर-सुदूर ज्ञात-अल्पज्ञात स्रोतों से, सभ्यता की दौड़ में पीछे रह गये, प्रकृति के निकटतम रहकर जीवन जीनेवाले ग्रामीणों के अन्धविश्वासों से, और कुछ अतिशय तार्किकता के विद्रोह में उग्र अतार्किकता की आग्रहपूर्ण कल्पनाओं से एकत्र किया था।

इससे उनकी कलात्मक आवश्यकता की पूर्ति हुई थी, पर क्या पूर्णतया उसी से ? क्या ईसाइयत की उस परम्परा से उन्हें कोई सहायता न मिली थी, जिसमें रहकर पिछले दो हज़ार वर्षों से योरोप की साहित्य-कला-साधना होती आयी थी ? क्या परम्पराएँ केवल सचेतन रूप से प्रभावित करती हैं, अचेतन रूप से नहीं ?

अपनी आस्था के नये (या, नये रूप में प्रस्तुत अति प्राचीन ?) आधार से

कलात्मक तुष्टि पाकर, जब ईट्स ने उसे आध्यात्मिक तुष्टि का साधन बनाने का भी अध्यवसाय किया था, तब क्या उन्हें सफलता मिली थी, या सफलता मिलने की आशा थी ?

ईट्स ने सचेतन रूप से ईसाइयत की अवहेलना की थी, यह स्पष्ट है। पर ईसाई समालोचक फिर भी उन्हें ईसाई-परम्परा के घेरे से बाहर न जाने देना चाहते थे। उनका कहना था, अचेतन रूप से ईसाइयत ने ईट्स पर काफ़ी प्रभाव डाला था, यहाँ तक कि उसके प्रभाव के बिना वे वह ऊँचाई और बड़प्पन प्राप्त ही नहीं कर सकते थे, जो उन्होंने की। वे दान्ते, मिल्टन की परम्परा (यानी ईसाई परम्परा) में हैं, उससे अलग नहीं।

इसको अनुभव करने के लिए ईसाइयत की एक सूक्ष्म समझ चाहिए, जो प्रोफ़ेसर विली ऐसे ऊँचे पाये के स्कालर और अध्यापक-आलोचक ने घोषित किया था, केवल जन्मजात ईसाई में विकसित हो सकती है।

यहाँ मेरी सीमा थी।

मैं तो ईट्स को ग़ैर-ईसाई दृष्टि से ही देख सकता था।

इससे बहुत सम्भव था कि ईट्स में ईसाई-परम्परा के अवदान की ओर मुझसे उपेक्षा हो जाय।

मुझे आगाह किया गया था कि ब्रिटिश युनिवर्सिटियाँ बहुत आधुनिक होकर भी ईसाई युनिवर्सिटियाँ हैं। उनके हर कालेज में चर्च है और उनके सारे पुराने कालेजों की स्थापना धर्मशिक्षा-संस्थानों के रूप में हुई थी। उस परम्परा से वे जुड़े ही नहीं, उसके प्रति सचेत हैं और कहीं-न-कहीं उस पर गर्व भी करते हैं। उनकी युनिवर्सिटियों में भोजन से लेकर पदवीदान तक धार्मिक कर्मकाण्ड के रूप में किया जाता है। यदि मैंने ईट्स द्वारा ईसाइयत की अवहेलना पर बल दिया तो बहुत सम्भव है, मेरी थीसिस को रिजेक्ट कर दिया जाय या मुझसे उसे संशोधित रूप में प्रस्तुत करने को कहा जाये।

विस्तार से बातें मैं जल्दी कह लेता हूँ।

संक्षेप में कहने में मुझे देर लगती है।

मुझे उपसंहार का लेख छोटा ही रखना था। मैं अपने थीसिस की शब्द-सीमा पहले ही पार कर चुका था, और मैंने डिग्री कमेटी से एक-चौथाई शब्द अधिक रखने की विशेष अनुमति ली थी।

लेख मुझे बड़ी सतर्कता से लिखना था।

ईट्स के ओकल्ट-दर्शन को महत्त्व न दूँ तो हेन मुझसे खुश न हों।

ईट्स में ईसाई-परम्परा को महत्त्व न दूँ तो युनिवर्सिटी मुझसे खुश न हो।

एक तरफ़ खाई, दूसरी तरफ़ ख़न्दक़।

मैंने अपने को खुश करने को महत्त्व दिया।

इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता न था, उपसंहार को मेरी सारी थीसिस का प्रतिफलन होना था। कई बार मैंने पिछले अध्यायों को पढ़ा, गो मैं उन्हें अन्तिम रूप न दे पाया था। कई ड्राफ़्ट तैयार किये, फाड़े, फिर लिखे, फिर-फिर उन्हें संक्षिप्त किया, एक महीने के श्रम के बाद मुझे लगा कि मैं अपने को खुश कर सका, यानी लेख से मैं सन्तुष्ट हुआ।

हेन ने मेरे लेख को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया।

अब मेरी थीसिस का कोई भाग ऐसा न था, जिसको हफ़ या हेन ने न देख लिया हो। उनके सुझावों के प्रकाश में उसे सुधारना-सँवारना अभी बाक़ी था।

हेन ने कहा था कि टाइपिंग के लिए मास्टर कापी बनाने में प्राय: छह महीने लग जाते हैं। सारा अक्तूबर 'उपसंहार' वाले लेख ने ही ले लिया था, अब मार्च के पहले मेरे पास केवल पाँच महीने थे, फिर भी मुझे विश्वास था कि मैं छह महीने का काम पाँच महीने में कर लूँगा।

इस दर्जे पर मुझे निर्णय लेना था कि मार्च के बाद भारत लौटकर अपनी थीसिस वहाँ से प्रस्तुत करूँगा या दो-ढाई महीने और अपना प्रवास बढ़ाकर अप्रैल में यहीं से।

कई बातें थीं जो मुझे प्रेरित करती थीं, विवश करती थीं कि मैं मार्च के अन्त में स्वदेश लौट ही जाऊँ।

पिछले महीनों में जो तूफ़ान मेरे घर पर उठ खड़ा हुआ था, उसका ज़ोर टूट तो गया था, पर वह पूरी तरह शान्त नहीं हुआ था।

राक्षस जल्दी अपनी पराजय स्वीकार नहीं करता।

रावण को निश्चय हो गया था कि सीता उसका कहा न मानेंगी, फिर भी वह उन्हें बहुविधि त्रास देने से बाज नहीं आनेवाला था।

इलाहाबादी रावण की निसिचरियाँ या निसिचर थे—वे कलमी-कायर जो तेजी को, जगदीश राजन को और यहाँ तक कि मुझे केम्ब्रिज में धमकी-भरे, अश्लील और वीभत्स गुमनाम पत्र भेजते थे।

मैं बड़े खेद के साथ लिखता हूँ, पर अपने और कई लोगों के अनुभव के बल पर कि गुमनाम पत्र लिखना हमारे इलाहाबादी नागरिकों की खास बीमारी है।

इसकी छूत का शिकार न होने का एकमात्र इलाज यह है कि ऐसे पत्रों को पढ़कर या बिना पढ़े—अगर ऊपर-नीचे पता-नाम नहीं है तो—आग में झोंक दिया जाये और फिर न उसका ज़िक्र किसी और से किया जाये न अपने से, यानी उसके बारे में फिर सोचा ही न जाये। जिस कायर में इतना भी दम नहीं कि अपने बाप के दिये हुए नाम को बताने की हिम्मत कर सके, उसकी बात से भयभीत या विचलित होना या तो अपने-आपको उससे बड़ा कायर सिद्ध करना है, या अत्यन्त दुर्बल और लिजलिजी मनोशिराओं का। पर मुझे और खेद के साथ लिखना पड़ता है, कि ऐसे पत्रों से मैंने बहुतों को प्रभावित और पस्त होते देखा है।

मैं दस वर्ष प्रधानमन्त्री के मन्त्रालय से सम्बद्ध था। जब कभी इलाहाबाद के किसी आदमी की नियुक्ति या पदोन्नति केन्द्र से होने को होती थी तो उसके विरुद्ध वहाँ से पचीस-तीस गुमनाम पत्र ज़रूर आ जाते थे और आश्चर्य है, देखे जाते थे, और उनका असर भी पड़ता हो तो कोई आश्चर्य नहीं!

तेजी अद्‌भुत मनोशिराओं की महिला हैं।

यदि सामान्य परिस्थितियों में वे फूलमाला के समान कोमल हो सकती हैं तो चुनौती मिलने पर लौह-दण्ड के समान कठोर भी हो सकती हैं।

गुमनामी पत्रों में जब तक धमकियाँ उनके लिए थीं, तब तक वे अविचल रहीं, पर जब उनके बच्चों को भगा ले जाने और राजन को, जिनको उन्होंने अपने बेटे-सा मान रखा था, जान से मार देने की धमकियाँ आने लगीं तो वे कुछ घबरायीं।

एक बार तो उन्होंने बच्चों को राजन के साथ बाँदा भेजकर अकेले इस तूफ़ान का सामना करने का भी इरादा किया था।

मैं उनको बार-बार समझाता कि वे इन पत्रों की बिलकुल परवाह न करें।

'जो गरजते हैं बरसते नहीं।' जो ऐसे जघन्य इरादे कर सकता है, उसमें इतनी भलमन्सी नहीं हो सकती कि अपने दुश्मन को पहले आगाह करे। अगर उनमें कुछ करने की हिम्मत होती तो कर ही डालते, कहते नहीं। बग़ैर कहे करना शायद ज्यादा आसान होता है। यह कोरी बन्दरभपकियां हैं कि तुम डरो, घबराओ, अव्यवस्थित हो कि राक्षस को कुछ सन्तोष हो कि उसे जो मुँहतोड़ उत्तर मिला है, जो आँख न उठा सकनेवाली लज्जा, भर्त्सना मिली है, उसका कुछ बदला उसने तुमसे ले लिया।

यह सब लिख ज़रूर देता, पर मैं कितनी बार सोचता कि अगर यह तूफ़ान ही है तो मुझे तेजी के साथ खड़े होकर उसका सामना करना चाहिए, गो मैं जानता था कि मेरे घर पहुँचते ही यह तूफ़ान हवा हो जायगा। और मेरे दो वर्ष के धन-श्रम-व्यय और सौ तरह की उठायी मुसीबतों की व्यर्थता पर वे गुमनाम गीदड़ छिपकर हँस सकेंगे।

इसको मुझसे अधिक तेजी समझतीं और बार-बार आग्रह करतीं, क़समें दिलाती कि मैं अपना काम सरंजाम किये बग़ैर न लौटूँ। मि. हेन द्वारा सुझाये दूसरे रास्ते की बात मैंने उनको लिख दी थी, और वे अपने चारों ओर सारी प्रतिकूलता के बावजूद इसके लिए तैयार हो गयी थीं कि मैं ढाई महीने और रुककर कान्वोकेशन में डिग्री लेकर ही लौटूँ—जैसे उनको इसका दृढ़ विश्वास हो कि मुझे डिग्री मिल ही जायेगी, मुझे तो नहीं था।

इतना ही नहीं, वे जानती थीं कि इसके लिए अतिरिक्त खर्चे की आवश्यकता होगी, थीसिस टाइप कराने के लिए, थीसिस-परीक्षा के और डिग्री-सर्टिफ़िकेट के लिए, रहने-सहने के खर्च के अलावा। न जाने किस बल पर उन्होंने मुझे लिख दिया था कि नये वर्ष के आरम्भ में वे मुझे 5000/—और भेज सकेंगी। उनके पास जो था और जो उनका खर्च आ सकता था, उसके किसी अनुमान से मैं यह कल्पना नहीं कर सकता था कि उनके पास इतना बचा होगा कि वे मुझे 5000/—भेज सकेंगी, सिवा इसके कि अपने ज़ेवरों को बेचकर, अगर वे पहले ही नहीं बिक चुके होंगे।

राक्षस के क्रिया-कलाप गुमनामी पत्रों तक ही सीमित नहीं थे। एक दिन मौक़ा पाकर उसने एक सनसनीखेज़ घटना की भूमिका रच डाली, पर तेजी ने मुझसे इसकी साँस तक न ली। और इसका पता मुझे तब लगा जब मैं घर लौटा।

तो उसकी चर्चा काल-क्रम में।

अगर समय पर मुझे इसका पता लगता तो मुझे अपने शब्दों की सौगन्ध खाकर कहना पड़ता,

काम ऐसा कौन जिसको छोड़ मैं सकता नहीं हूँ
कौन ऐसा, मुंह कि जिससे मोड़ मैं सकता नहीं हूँ

शृंखला वह कौन जिसको तोड़ मैं सकता नहीं हूँ
चाँद - सूरज भी पकड़ मुझको नहीं बिठला सकेंगे।

मैं बुझाता हूँ पगों से आज अन्तर के अँगारे,
और वे सपने कि जिनको कवि करों ने थे सँवारे,
आज उनकी लाश पर मैं पाँव धरता आ रहा हूँ···
खींचतीं किन मौन दृग के जल-कणों से जो कि रुक सकता नहीं मैं···

तेजी की बात मानकर मैंने हेन से कह दिया था कि मैं ढाई महीने और केम्ब्रिज में रुककर थीसिस यहीं प्रस्तुत करूँगा और 'वायवा' देने के पश्चात डिग्री कमेटी के निर्णय की प्रतीक्षा करूँगा।

ख़र्चे का हिसाब लगाया तो मैंने पाया, कालेज की फ़ीस, और थीसिस प्रस्तुतीकरण से सम्बद्ध और ख़र्चे तो मैं उठा लूँगा पर छह महीने रहने-खाने का ख़र्च मेरे पास न होगा और न वापस जाने का—क्या छह महीने चिड़िया की तरह पेड़ों पर रहना और पंखों पर उड़कर घर पहुँचना सम्भव होगा ?

मैं किस बल पर तेजी से ख़र्च भेजने को कहूँगा ?
क्या यहाँ कुछ अर्जित करना सम्भव होगा ?
क्या यहाँ कुछ काम मिल सकेगा ?
काम कर भी क्या सकता हूँ सिवा ट्यूशनगिरी के ?
अंग्रेज़ी कौन यहाँ पढ़ना चाहेगा हिन्दुस्तानी से ?
हिन्दी पढ़नेवाला कोई मिल सकता है ?
जिन खोजा तिन पाइयाँ···

केम्ब्रिज में बस्ती से दूर एक साहित्य-कला प्रेमी दम्पति रहते थे—कोट्स। शायद उनके पास कुछ अच्छी पुश्तैनी सम्पत्ति थी। बड़ा-सा एकमंज़िला मकान था, जिसमें पति-पत्नी रहते थे, बाल-बच्चा कोई नहीं। रोटी कमाने का, जहाँ तक मुझे मालूम है, वे कोई काम नहीं करते थे। पति मि. कोट्स संगीतज्ञ थे, उन दिनों भारतीय संगीत में रुचि ले रहे थे, इसराज पर कभी-कभी अभ्यास करते उन्हें देखा था। पता नहीं, भारतीय संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने किससे, कहाँ ली थी। पत्नी आइरीन कोट्स कवयित्री थी, Poetry Periodical (पोएट्री पीरियाडिकल) नाम की एक मासिक पत्रिका निकालती थीं, पर अकादमिक रुचि से, किसी व्यावसायिक दृष्टि से नहीं। दोनों ने अगले वर्ष भारत जाने और कुछ समय दिल्ली में रहने की योजना बनायी थी। उन्हें किसी ऐसे टीचर की ज़रूरत थी जो उन्हें हिन्दी का साधारण ज्ञान करा दे। मैं तैयार हो गया। हफ़्ते में दो सन्ध्याएँ —शनिवार और रविवार की मैं उनके साथ बिताता, उन्हें कुछ बोल-चाल की हिन्दी सिखाता, वे मुझे भोजन कराते और दो पौण्ड प्रति सप्ताह दक्षिणा के रूप में देते। बावा के साथ जिस सस्ती डिग में मैं रहता था, उसमें दो पौण्ड सप्ताह भर रहने-खाने के लिए पर्याप्त होते।

चिड़ियों की तरह अब पेड़ों पर न रहना होगा।
पर वापस जाना तो पंखों पर उड़कर ही होगा।

किसी ने बताया, अगर कोई हिन्दुस्तानी यहाँ 'स्ट्रैण्डेड' हो जाय, यानी अगर उसके पास न यहाँ रहने का ख़र्च रह जाये, न भारत वापस जाने का, तो 'इण्डिया हाउस' उसे 'लोन' देता है।

इण्डिया हाउस से पूछा कि 'लोन' लेने की प्रक्रिया क्या है तो इतने तरह के फ़ार्म आये कि उन्हें भरने और भरे वक्तव्य की प्रामाणिकता के लिए उचित अधिकारियों के समुहर हस्ताक्षर लेने में महीनों लगते, फिर फ़ार्म दिल्ली जाते, वहाँ से पुलिस की तफ़तीश के लिए इलाहाबाद जाते और जो कुछ लिखा था, सब कुछ ठीक पाये जाने पर सरकार निर्णय देती कि मुझे लोन मिल सकता है या नहीं।—नाम, बाप का नाम, जिन्दा हैं कि मुर्दा, जिन्दा हैं तो उनकी आमदनी कितनी, चल-अचल सम्पत्ति कितनी, किसी के नाम बै हुई कि नहीं, लोन वापस न दे सकने की हालत में गारण्टी देनेवाले का नाम पता, जो उसकी जगह लोन अदा करेगा,

उसके बाप का नाम, उसकी आमदनी, जमा, जायदाद और गारण्टी लेनेवाले की गारण्टी देनेवाले का अता-पता वग़ैरह-वग़ैरह-वग़ैरह। अपने से तो यह झंझट न सपरेगा। किसी ने ठीक आगाह किया था कि 'इण्डिया हाउस' से कुछ प्रत्याशा न करनी चाहिए, वह किसी का काम नहीं करता।

देस चोरी परदेस भीख।

देस यह है नहीं, और इस परदेस में भीख माँगना अपराध है। कोशिश करने पर जेल पहुँच जाऊँगा।

पर वापस जाने की चिन्ता में घुला करूँगा तो थीसिस को सही, साफ़-सुथरे रूप में कैसे प्रस्तुत करूँगा ?

बहुत काम हैं : अपने पास चार महीने से ज़्यादा नहीं।

शायद तेजी कुछ भेज ही दें।

शायद यहीं किसी से कर्ज़ मिल जाय।

चार महीना भूत की तरह काम करना पड़ा। मूल पाठ को दुहरा-तिहरा कर अन्तिम रूप दिया, एक-एक कामा, फुलस्टाप ठीक जगह पर लगाये, उद्धरणों को मूल पुस्तकों से चेक किया, फुटनोट में पुस्तक, लेखक, प्रकाशक, प्रकाशन वर्ष, प्रकाशन स्थान, उद्धरण की पृष्ठसंख्या सब कुछ एक-एक पुस्तक से चेक करके लिखी, प्रयुक्त सामग्री की तालिका बनायी, पुस्तकों की, पत्र-पत्रिकाओं की, अप्रकाशित लेख आदि की। 18 घण्टे रोज़ काम करना पड़ता—कई घण्टे नीची मेज़ के सामने बैठकर, कई घण्टे ऊँची मेज़ के सामने खड़े होकर।

मार्च का अन्त आ गया है।

थीसिस की मास्टर कापी तैयार हो गयी है।

तीन कापियों में टाइप कराने को दे देता हूँ।

टाइप पृष्ठों की मूल कापी से मिलान करता हूँ—मैगनीफ़ाइंग ग्लास लगाकर स्पेलिंग जाँचता हूँ—हेन ने कहा था स्पेलिंग, पंक्चुएशन की ग़लतियाँ शोधार्थी की लापरवाही बताती हैं। ऐसा अवसर क्यों देना !

टाइप किये पृष्ठ जिल्दसाज़ को दे देता हूँ।

अप्रैल का अन्तिम सप्ताह आ गया है। थीसिस की तीन कापियाँ जिल्द बँध-कर आ गयी हैं।

मेरे दो वर्षों का अध्ययन, चिन्तन, मनन, मन्थन, लेखन स्थूल रूप में।

देखने में सुन्दर। भीतर की सामग्री भी अधिकारी विद्वानों द्वारा सुन्दर समझी जाय, तब तो सम्यक सुन्दरता सिद्ध हो। हेन ने मुझसे कहा था, जब थीसिस तैयार हो जायगी, तब वे एक बार शुरू से आखीर तक पढ़ेंगे। उसके बाद ही उसे डिग्री कमेटी में परीक्षण के लिए प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

कैथरीन्स कालेज के उनके कमरे में जाकर मैंने थीसिस की एक प्रति उनके सामने रख दी।

वे इस बात से खुश हुए कि काम शिड्यूल से हो रहा है।

उन्होंने मुझसे कहा, 'तीसरे दिन आकर थीसिस ले जाना और डिग्री कमेटी के दफ्तर में जाकर वांछित फ़ीस यानी दस पौण्ड के साथ दो प्रतियाँ जमा कर देना।'

तीसरे दिन जब मैं मि. हेन से मिलने गया, वे प्रसन्न दिखे, उन्होंने मेरी थीसिस पूरी पढ़ ली थी। वे मेरे काम से सन्तुष्ट थे। उन्होंने कहा, 'मैं डिग्री कमेटी

को लिख रहा हूँ कि तुम्हारा डिस्सर्टेशन पी-एच. डी. के लिए परखा जाय। इससे तुम्हारे शोध-प्रबन्ध से परीक्षकों की प्रत्याशा ज़रूर बढ़ जायगी, पर यह खतरा उठाने योग्य है।'

मैंने उनसे कहा, 'आपने इसे पी-एच. डी. के योग्य समझा यह मेरे लिए अपने आप में बड़े सम्मान की बात है, अब डिग्री कमेटी इसे पी-एच. डी. के योग्य समझे, न समझे, इस पर मुझे एम. लिट्. दे या मेरी थीसिस को बिलकुल रिजेक्ट कर दे। जहाँ तक खतरा उठाने की बात है, मैंने पहले ही बहुत-से खतरे उठा रखे हैं।'

मि. हेन ने कहा, 'मैं जानता हूँ।'

उनका संकेत क्या था ?

जैसे-जैसे थीसिस सम्बन्धी दिमाग़ी काम से मुझे फ़ुरसत मिल रही थी वैसे-वैसे मेरा मूड हल्का होने लगा था, और तेजी के पत्रों से लगता था कि वे गम्भीर होती जा रही हैं। बाईस महीने उन्होंने जिस धीरज-हिम्मत से काटे थे, लगता था कि वह टूट रही है। हिम्मत तो मैं भी उन्हें बराबर बंधाता रहता था, कभी पत्रों से, कभी कविताओं से—

बीच खड़ी हैं हम दोनों के अभी न जाने कितनी रातें—
अभी बहुत दिन करनी होंगी केवल इन गीतों में बातें
कितने रंजित प्रात, उदासी में डूबी कितनी सन्ध्याएँ,
सब के बीच पिरोना होगा, प्रिय, हमको धीरज का धागा।
याद तुम्हारी लेकर सोया, याद तुम्हारी लेकर जागा।

जब चौदह महीने लौटने को शेष थे, तब लिखा था—

अलग हुए कितने दिन बीते सोच ग़लत घबराना,
गये हुए की ओर न देखो देखो जिसको आना
दूर नहीं अब साँझ मिलन की, लो, गिनकर बतलाता—
ऐसे ही चौदह चाँद फ़क़त हैं बाक़ी, यह चाँद नया है नाव नयी आशा की।

अब तो चार ही महीने रह गये थे, एक हल्की-फुल्की तुकबन्दी कर डाली। गीत शायद गम्भीर क्षणों की वाणी है। जीवन में कभी अगम्भीर बनने की भी ज़रूरत है।

लो फ़रवरी भी गई,
मार्च अप्रैल, मई,
जून में लिया जहाज़,
लन्दन बाई-बाई
करते हुए कल-आज
पहुँच गये बम्बई,
बम्बई से ली रेल,
तेज चला मेल,
किसी जुलाई की रात
पहुँच गये इलाहाबाद
स्टेशन पर अमित-अजित-तेज;
घर पर सुख की सेज,

न लन्दन, पेरिस, डबलिन,
न रोम, बेनिस, बर्लिन
न केम्ब्रिज, न आक्सफ़ोर्ड
जो सत्रह क्लाइव रोड।

'जो बलख न बुखारे, वह छज्जू के चौबारे' की आधुनिक प्रतिध्वनि। अपने छज्ज का चौबारा तो 17 क्लाइव रोड ही था।

तेजी न मुस्करायीं।

फिर दूसरा प्रयत्न किया।

तेजी और गम्भीर हो गयीं।

थीसिस जब टाइप हो रही थी तब मैंने तेजी को चिट्ठी लिखी और मज़ाक़-मज़ाक़ में कहा कि 'तुमने तो मुझे 5000/—और भेज देने के लिए कहा था, अब अगर भेज दो तो मैं योरोप का भ्रमण कर आऊँ। मैंने बहुत मेहनत की है और मुझे कुछ मनोरंजन, कुछ सैर-सपाटे की ज़रूरत है।' उन्होंने मुझे पाँच-पाँच हज़ार के मेरे तीनों जान-बीमों के नम्बर और उन्हें चुकता करा लेने के लिए फ़ार्म वग़ैरह भेज दिये थे कि मैं उन पर हस्ताक्षर करके लौटा दूँ और वे मुझे 5000/—भेज देंगी। मुझे स्पष्ट हो गया था कि जब तेजी बचत के इस अन्तिम स्रोत को छूने के लिए विवश हो गयी हैं तो उनकी आर्थिक स्थिति क्या होगी।

मैंने उन्हें लिख दिया, 'बच्चों की शिक्षा के लिए जमा राशि को न चाहते हुए भी अपनी शिक्षा पर खर्च करके मैं वैसे ही अपराध-भावना से दबा हुआ हूँ, अब जो किसी आकस्मिक घटना के लिए यह राशि जमा है, उसे मैं न छूना चाहूँगा।'

बावा अपना डिप्लोमा कोर्स खत्म करके अमरीका होते हुए भारत लौटना चाहते थे। उनके मित्र डा. साहनी वहाँ पहले ही पहुँच चुके थे, उनका निमन्त्रण भी था। पर अचानक बावा के पिता का देहावसान हो गया था, घर पर केवल उनकी विधवा माँ, छोटे भाई, छोटी बहन थी, इसलिए परीक्षा देते ही, अब वे सीधे भारत लौट जाना चाहते थे। बावा मेरी आर्थिक परिस्थिति से अवगत थे, उन्हें यह भी मालूम था कि लौटने का खर्च पास न होने से मैं चिन्तित हूँ। एक दिन उन्होंने मुझे अपने एहसान और स्नेह-सद्भावना से दबा दिया। जब वे 16 जून के जहाज़ से अपने लिए टिकट बुक कराने लन्दन गये, तो उसी जहाज़ से मेरे लिए भी एक टिकट बुक करा आये। टूरिस्ट क्लास का टिकट लगभग 80 पौण्ड का मिला था। यदि वे मुझे इस चिन्ता से मुक्त न करते तो मैं नहीं जानता कि स्वदेश लौटने के लिए मुझे क्या करना पड़ता!

अब पंखों पर उड़कर स्वदेश लौटने का दुःसाहस न करना पड़ेगा।

दुनिया बड़ी विचित्र है।

इन्सानियत के कैसे-कैसे नमूने यहाँ हैं!

एक मेरे वह दोस्त थे कि मेरे बारे में झूठी खबरें फैलाकर उन्होंने मुझे सब प्रकार की आर्थिक सहायता से वंचित करा दिया था।

एक मेरे वह दोस्त थे जिन्होंने मेरी अनुपस्थिति में मेरे घर-परिवार की इज्जत मिट्टी में मिला देने को कुछ न उठा रक्खा था।

एक मेरा यह दोस्त था जिसने बिना मेरे माँगे, मेरी ऐसी सहायता की थी जैसी कोई दूसरा उस अजनबी देश में न कर सकता था।

मेरी थीसिस के दो परीक्षक नियुक्त किये गये थे। एक थे वीवियन डि सौला पिन्टो, जो नाटिंघम युनिवर्सिटी के अंग्रेज़ी विभाग के अध्यक्ष थे, दूसरे थे ग्राहम हफ़, क्राइस्ट कालेज के फ़ेलो और सीनियर इंगलिश ट्यूटर, जिन्होंने हेन की अनु-पस्थिति में 4 मास मेरा निर्देशन भी किया था।

थीसिस प्रस्तुत करने के बाद केवल 'वाइवा' की तैयारी करनी थी। हेन ने मुझसे कहा था कि मैं अपनी थीसिस को बराबर देखता रहूँ। 'वाइवा' के समय थीसिस की एक-एक प्रति मेरे दो परीक्षकों के हाथ में होगी और एक मेरे हाथ में। मैं उनके प्रश्नों के उत्तर के लिए अपनी थीसिस भी खोल सकूँगा, मगर अगर मैं अपनी थीसिस बिना देखे, उनके उत्तर दे सकूँ तो वे अधिक प्रभावित होंगे।

इसी प्रकार, मुझे उनके प्रश्नों के उत्तर के लिए अपनी थीसिस में दिये तर्कों या आधारों तक सीमित रहना ज़रूरी नहीं। अगर मैं थीसिस के अतिरिक्त भी कुछ सार्थक जोड़ सकूँ तो उसका अधिक प्रभाव पड़ेगा।

ज़रूरी नहीं कि परीक्षक ईट्स अथवा उनके ओकल्टिज़्म तक अपने को सीमित रक्खें। वे उनके समय और उनके समकालीनों के विषय में भी कुछ प्रश्न उठा सकते हैं या कुछ ऐसे प्रश्न, जो शोध-विषय से सीधे सम्बद्ध न हों। उनके सन्तोष-जनक उत्तर परीक्षकों पर अच्छा प्रभाव डालेंगे।

वस्तुत: अच्छे परीक्षक शोध-प्रवृत्ति की सूक्ष्म परख के लिए निश्चित विषय से कुछ बाहर की ही बात करते हैं। वे जानते हैं कि शोध-विषय को तो तुमने दो वर्षों से घोखा है। उस पर तुमने सटीक उत्तर दिये तो क्या कमाल किया! वे देखना यह चाहते हैं कि शोध-कार्य करके तुम्हारा बौद्धिक स्तर कुछ बढ़ा, कुछ व्यापक हुआ है या नहीं।

मई का महीना थीसिस का आधा दर्जन पारायण, और ईट्स के इर्द-गिर्द के विषयों पर बहुत कुछ पढ़ते, चिन्तन, मनन करते बीता।

वाइवा के विषय में तरह-तरह की आशंकाएँ मन में उठतीं।

पिछले दिनों हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों ने केम्ब्रिज में अच्छा प्रभाव न डाला था।

विश्वनाथ दत्त ने तीन वर्ष तक पी-एच. डी. के लिए काम करके थीसिस प्रस्तुत की थी और परीक्षकों ने उन्हें केवल एम. लिट्. दी थी। कैसी विडम्बना है कि जिसने मेरे लिए डाक्टरेट का सपना सँजोया था, वह खुद केम्ब्रिज से डाक्टरेट न ले सका। जाते समय विश्वा-कमला कितने निराश और दुखी थे!

कहीं मुझे भी ऐसे ही न जाना पड़े।

शिवकुमार ने भी तीन वर्ष तक The Current of Unconscious in Modern Novel (आधुनिक उपन्यास में अवचेतन की लहर) पर काम करके पी-एच. डी. के लिए थीसिस प्रस्तुत की थी, पर वाइवा के बाद उन्हें कोई डिग्री न दी गयी थी, परीक्षकों ने उन्हें साल-भर का समय दिया था कि वे अपनी थीसिस को संशोधित कर पुन: प्रस्तुत करें।

मेरे लिए भी यही कहा गया तो मैं तो काम ही छोड़ बैठूँगा।

जो मैं कर सका हूँ, उससे बेहतर अब इस दिशा में मैं और कुछ नहीं कर सकूँगा। हर एक की शक्ति की सीमा होती है। मैंने अपनी पूरी शक्ति लगायी है। इससे अधिक की प्रत्याशा किसी को मुझसे या मुझे अपने से नहीं करनी चाहिए।

सिद्ध गिरकर कर दिया मैंने कि अपनी
शक्ति भर ऊपर उठा मैं।

इन्हीं ऊहापोहों में दिन कटते गये और वाइवा की तारीख आ गयी।

मेरा वाइवा मई के अन्तिम सप्ताह में क्राइस्ट कालेज में था।

केम्ब्रिज में डाक्टरेट की डिग्री शोधार्थी को अच्छी तरह ठोंक-बजाकर दी जाती है। लिखित प्रबन्ध से अधिक महत्त्व 'वाइवा' को दिया जाता है। लिखने में आप पुस्तकों से या दूसरे जानकार लोगों से वांछित अथवा अवांछित सहायता लेकर कुछ ऐसा भी प्रस्तुत कर सकते हैं, जो आपकी सूझ-बूझ या आपकी योग्यता से उद्‌भूत न हो, पर मौखिक परीक्षा में आप परीक्षक के रू-ब-रू हैं। जो आप हैं, जो आप सोच रहे हैं, जो आपकी स्थापना है, जो आपका तर्क है, वह आपकी आँखों से प्रतिबिम्बित, आपकी मुख-मुद्रा से प्रतिच्छायित हो रहा है। आपके लब-लहजे ही बताते हैं कि जो आप कह रहे हैं वह कहाँ तक स्वयं आपकी प्रतीति है। अब न धोखाधड़ी से काम चल सकता है, न उधारी से। यही कारण है कि कई मामलों में शोध-प्रबन्ध तो स्तरीय माना गया पर शोधार्थी को डिग्री का हक़दार नहीं क़रार दिया गया।

मौखिक परीक्षा के विषय में मैंने तरह-तरह की बातें सुन रक्खी थीं कि परीक्षक लोग थीसिस की धज्जियाँ उड़ा देते हैं—Tear it to bits; कि परीक्षा खुले कमरे में होती है, जिसमें श्रोता और प्रश्नकर्त्ता के रूप में भी युनिर्वसिटी के अध्यापक और शोधार्थी उपस्थित रह सकते हैं। ट्राइपास की परीक्षाएँ एक समय इसी प्रकार होती ही थीं। मेरे कुछ सह-शोधार्थियों ने तो मुझे विनोदपूर्ण धमकियाँ भी दे रखी थीं कि वे मेरी मौखिक-परीक्षा में आयेंगे और मुझे embarass करेंगे—यानी मुझे छेड़ेंगे, और मैंने उनसे चिरौरी की थी कि 'बाबा, बख्शो मुझे।'

मेरा 'वाइवा' दो बैठकों में हुआ—11 से 1 तक की पहली बैठक में, जिसमें प्राय: वीवियन डि सोला पिन्टो ने मुझसे प्रश्न किये, फिर लंच के बाद—2 से 4 तक की दूसरी बैठक में, जिसमें प्राय: ग्राहम हफ़ ने मुझसे प्रश्न किये।

हेन ने 'वाइवा' के सम्बन्ध में जो हिन्ट्स मुझे दिये थे उनका मैंने ध्यान रक्खा। मैं समझता हूँ कि 'वाइवा' मैंने अच्छा किया।

स्वाभाविक था कि अपने परीक्षकों का चेहरा देखकर मैं यह भाँपना चाहूँ कि मेरी थीसिस अथवा मेरे मौखिक उत्तरों के सम्बन्ध में उन्होंने कैसी राय क़ायम की—अनुकूल कि प्रतिकूल। स्फ़िंक्स का चेहरा भले ही अपना भेद कभी कह दे, पर अंग्रेज़ का 'स्टोनी फ़ेस' (ईट्स के शब्द हैं) अपने भीतर के भाव को कभी बाहर न झलकने देगा।

एक जून को डिग्री कमेटी की मीटिंग थी। 2 जून को दस बजे कार्यालय के बाहर के नोटिस बोर्ड पर परिणाम टाँग दिये जाने के पूर्व मुझे यह पता न लग सका कि मेरी थीसिस पी-एच. डी. के लिए स्वीकृत कर ली गयी है और मैं अगले कान्वोकेशन में डिग्री ले सकता हूँ।

मुझे याद है, मैं बावा को साथ लेकर गया था और उसी को आगे भेजकर मैंने नोटिस बोर्ड देखने के लिए कहा। वह दौड़ता हुआ आया और उसने मुझे बाहों में भर लिया।

मेरे मुह से सहसा एक वाक्य निकला,

'इज्ज़त रह गयी।'

मैंने सबसे पहले मि. हेन के पास जाकर उन्हें खबर दी और उन्हें प्रणाम किया, फिर मैं मि. हफ़ के पास गया।

हेन और हफ़ ने सबसे पहले 'डाक्टर' कहकर मुझे सम्बोधित किया और मुझे बधाई दी। उनसे विदा लेकर मैंने तेजी को तार दिया।

श्रम सुफल होने पर मुझे खुशी तो बहुत हुई थी,

पर उसे मनाने के साधन का सर्वथा अभाव था।

ग़रीब के घर लड़का पैदा हुआ था।

जो ही मिलता था बधाई देता था और कहता था The occasion should be celebrated (इस अवसर पर तो दोस्तों को दावत दी जानी चाहिए), और मैं था कि आँखें चुराता था।

मैंने उस रात अपने को कमरे में बन्द कर लिया और रामायण का अखण्ड पाठ किया।

दूसरे दिन तेजी और बच्चों की बधाई का तार आया।

सबकी बधाई फीकी पड़ गयी।

चार दिन बाद तेजी का पत्र मिला। उनकी भी प्रतिक्रिया वही थी—मेरी इज़्ज़त रह गयी।

तेजी ने मेरे डाक्टरेट पाने की ख़बर मेरे चित्र के साथ पत्रों में प्रकाशित करा दी थी और उसकी कटिंग मुझे भेज दी थी।

फिर तो कालेजों में डिनर के सिलसिले शुरू हुए। कालेज के मास्टरों अथवा प्रोवोस्टों ने मुख्य अतिथि के रूप में मुझे निमन्त्रित कर हाई टेबिल पर अपने दाहिनी ओर बिठलाकर मुझे खाना खिलाया। यह केम्ब्रिज के कालेजों में सबसे बड़ा सम्मान समझा जाता है।

मेरी सफलता पर सबसे अधिक उत्साह-उल्लास सेण्ट कैथरीन्स कालेज की शर्ले-सोसाइटी के सदस्य-विद्यार्थियों ने दिखाया, मैं भी उसका सदस्य था। उन्होंने आपस में चन्दा करके मुझे एक शाम काकटेल पार्टी दी। वे जानते थे, कई अवसरों पर देख चुके थे कि मैं शराब नहीं छूता, पर उस सन्ध्या को उनका आग्रह ज़बर-दस्ती की सीमा पर पहुँच गया। सबने डा. बच्चन के लिए जामे-सेहत उठाये और कुछ ने एक शैम्पेन की बोतल ख़टाक से खोलकर उसकी फेनदार शराब मेरे सिर पर उलट दी।

मैं कैसे कहूँ कि उसकी कुछ बूँदों का स्वाद मेरे अधरों तक न पहुँचा!

उनकी स्नेह-सुरा से मैं भीग गया।

आज तक भीगा हूँ।

तेईस वर्ष बाद, जब ये पंक्तियाँ मैं लिख रहा हूँ, उस शराब की ठण्ड अपने माथे, पलकों, गालों पर अनुभव कर रहा हूँ, होठों पर उसका स्नेह-स्वाद भी।

इसका मलाल भी आज तक सँजोये हूँ—

मैं उन्हें कोई पार्टी न दे सका।

मैंने कभी एक गीत लिखा था, प्रथम पंक्ति थी,

प्यार की असमर्थता कितनी करुण है!

उस शाम को जी चाहा इसे थोड़ा बदल दूँ,

दैन्य की असमर्थता कितनी करुण है!

तब से वह शाम मुझे जितनी बार याद आयी, मैंने वह बदली हुई पंक्ति मन में दुहरायी है।

कान्वोकेशन की तारीख़ नज़दीक आ रही थी।

नियमानुसार डिग्री लेने के लिए फ़ीस के रूप में पाँच पौण्ड कालेज और छह पौण्ड युनिवर्सिटी को देने थे। यह भी बाबा ने मेरे लिए चुकाये।

कान्वोकेशन के अवसर पर डिग्री लेनेवालों को एक ख़ास तरह की पोशाक पहननी पड़ती है। कालेज से आदेश उसके लिए आ गया—काला जूता, काला मोज़ा, काला डिनर-जैकेट-सूट, सफ़ेद क़मीज़, सन्ध्या को बाँधी जानेवाली सफ़ेद टाई, सबके ऊपर एम. ए. का गाउन और सिर पर पी-एच.डी. की काली-चौखुण्टी चोटीदार टोपी।

नये स्नातक बड़े उत्साह से नया सूट सिलवाते हैं; उनके जीवन का एक महत्त्व-पूर्ण अवसर होता है, फिर-फिर तो नहीं आनेवाला है। केम्ब्रिज-भर के दर्ज़ी व्यस्त।

मैं तो नया बनवाने की स्थिति में नहीं था।

पर कपड़ों के सम्बन्ध में युनिवर्सिटी के नियम की अवहेलना नहीं की जा सकती थी।

किसी से मँगनी माँगने पड़े।

पहनकर चार्ली चैपलिन लगता हूँ।

अपने पर ठठाकर हँसता हूँ।

रुदन कभी-कभी हँसी का बाना भी धारण करता है। छिपता है क्या?

केम्ब्रिज युनिवर्सिटी का कान्वोकेशन बड़ा चित्रात्मक अवसर होता है।

वाइस चांसलर का जलूस चलता है, कालेजों के सामने के मार्ग के बायें फ़ुट-पाथ पर, सेनेट हाल की ओर, जो बायीं ही तरफ़ पड़ता है। दर्शक दाहिने फ़ुटपाथ पर लाइन लगाकर देखने को खड़े हो जाते हैं।

आगे-आगे ख़ास तरह की काली वर्दी, काली टोपी में प्राक्टर और उसके दो सहायक चलते हैं, काँधों पर चाँदी की चमकती गदा रक्खे, गदा अपने हनुमानजी की-सी नहीं, मोटे डण्डे-सी, एक सिरे पर कुछ ज़्यादा मोटी। वाइस चांसलर काला, ऊपर कुछ चमकीले काम का, लम्बा गाउन पहनते हैं, दो 'पेज ब्वाएज़' काली वर्दियों में उसे पीछे से उठाये रहते हैं, फिर कोर्ट के सदस्य, बड़े अध्यापक अपनी-अपनी डिग्री के अनुरूप रंग-बिरंगे गाउनों में।

वाइस चांसलर सेनेट हाल में आकर एक सिरे पर ऊँचे डायस पर बीचोबीच में रखी एकमात्र कुर्सी पर बैठ जाते हैं। प्राक्टर-पेज-ब्वाएज़ पीछे खड़े हो जाते हैं।

कार्रवाई सब लैटिन में होती है। अपने पल्ले कुछ नहीं पड़ती। संस्कृत में जैसे अनुस्वार-मकार की ध्वनि बहुतायत से आती है वैसे ही लैटिन में भी। ध्वनि से लगता है जैसे कोई बड़ी गम्भीर बात कही जा रही है। वातावरण गम्भीरता का होता ही है। ऊँची छत से आवाज़ प्रतिध्वनित होती गूँजती है।

स्नातक वाइस चांसलर के सामने जाकर घुटनों के बल बैठ जाता है, अपना हुड उतारकर दाहिनी तरफ़ रख देता है। बिल्कुल भारतीय पद्धति से हाथ जोड़कर बैठता है। वाइस चांसलर उसका जुड़ा हुआ हाथ अपने दोनों हाथों में लेते हैं, लैटिन में कुछ कहते हैं, स्नातक दाहिने हाथ से हुड उठाकर सिर पर रखता है, खड़ा होता है और बायीं ओर को मुड़ जाता है, जहाँ दरवाज़े पर उसकी डिग्री का काग़ज़ी सर्टिफ़िकेट उसे दिया जाता है, जिसे लेकर वह हाल से बाहर निकल जाता है। अभी तक वह युनिवर्सिटी के सामान्य विद्यार्थी का गाउन ही पहने रहता है, बाहर निकलने पर वह अपनी विशेष डिग्री का गाउन पहन सकता है।

मुझसे पूछा गया था, डिग्री आप ईसाई पद्धति से लेंगे या ग़ैर-ईसाई पद्धति

से। शायद डिग्री देते समय जो शपथ दिलायी जाती है वह एक में फ़ादर, सन ऐण्ड होली गोस्ट के नाम पर होगी, दूसरी में सिर्फ़ परमात्मा के नाम पर। अन्तर समझ में तो आनेवाला था नहीं, फिर भी मैंने कह दिया था, ग़ैर-ईसाई पद्धति से।

काश, तेजी और बच्चे यहाँ मौजूद होते और मुझे डिग्री लेते देखते।

ऐसे अवसरों पर अपने प्रियजनों का अभाव बहुत खलता है। शोक शायद हम अकेले भी मना लें, खुशी मनाने के लिए दो-चार अपने निकट होने ही चाहिए।

हेन और श्रीमती हेन मुझे डिग्री लेते देखने के लिए आ गये थे।

बावा अपना कैमरा लेकर आया था। उसने बाहर मेरी कुछ तस्वीरें लीं।

मिसेज़ हेन बोलीं, 'आज मैं तुमको पी-एच. डी. के शानदार गाउन में देखने की प्रत्याशा कर रही थी।'

मि. हेन ने उनका हाथ दबाया। वे मेरी आर्थिक स्थिति से अनभिज्ञ न थे। मिसेज़ हेन ने उनका संकेत समझा, और फिर पी-एच. डी. के गाउन की बात न की।

मेरे दो साथी अपनी पी-एच. डी. गाउन में पास ही खड़े थे, उन्हें भी मेरे साथ ही डिग्री मिली थी।

एक हीन भावना का मन में उठना स्वाभाविक है।

मैंने पी-एच. डी. का गाउन और हुड दूकानों पर शीशे के लम्बे केसों में सजा अक्सर देखा था। अक्सर उनके सामने से जाते हुए सोचा था, एक दिन मैं ऐसा गाउन पहनने का अधिकारी बनूँगा, कितनी बार अपनी पीठ पर उस गाउन की कल्पना भी की थी, अच्छा सजता मुझ पर।

आज जब मैं उसे पहनने का अधिकारी हूँ, मैं उसे नहीं पहन सकता, नहीं ख़रीद सकता।

लाचारी अपने को सन्तोष देने के बहुत से तर्क खोज लेती है।

गाउन न पहनने से मेरी डिग्री तो मुझसे नहीं छिन जायगी!

दिल के बहलाने को ग़ालिब यह ख़याल अच्छा है

रात को कालेज में मुझे डिनर पर बुलाया गया। चूँकि सेण्ट कैथरीन्स कालेज से डाक्टरेट लेनेवाला एकमात्र मैं था, इसलिए मुझे टेबिल पर प्रमुख स्थान दिया गया।

आज जो भी मुझे सम्बोधित करता है डा. बच्चन कहता है। नाम से पहले यह विशेषण पहले-पहल सुनता हूँ तो अनभ्यस्त होने से कभी-कभी लगता है जैसे किसी दूसरे को बुलाया जा रहा है।

खाना ख़त्म होने के बाद ऐण्टी-रूम में बैठता हूँ। सभी लोग मेरे शोध की उपलब्धि पर मुझसे बात करना चाहते हैं। मुझसे कोई बात करे भी तो किस विषय पर! मैं दो वर्ष से ऊपर इस विषय पर इतनी बातें करता-सुनता रहा हूँ कि अब चाहता हूँ लोग मुझसे इसकी चर्चा बन्द करें। अब मैंने अपने दिमाग़ का गियर बदल दिया है।

घर लौटने के सपने देख रहा हूँ।

बावा की भी परीक्षा का परिणाम घोषित हो गया है। 'स्टेटिस्टिक्स' में उसे डिप्लोमा मिला है। प्रथम स्थान जिसकी उसे आशा थी, शायद, उसे नहीं मिला।

हम दोनों ही अपने-अपने कमरों में अपने-अपने सामान की पैकिंग में लगे हैं।

कितना सामान इकट्ठा हो गया है मेरे चारों तरफ़! सोचना है, क्या ले जाना है, क्या छोड़ना है, क्या सामान लकड़ी के क्रेटों में जायगा, क्या बक्सों में। 'हल' में जानेवाले कौन से बक्से होंगे, केबिन में रखनेवाला कौन बाक्स। काग़ज़ों की छँटाई भी घण्टों होती है। शोध के लिए एकत्र नोटों की कापियाँ और थीसिस के सातों ड्राफ़्ट बचाकर रखता हूँ। तेजी मेरे श्रम का सबूत पायेंगी, बच्चे कभी उनसे अपने काम के लिए प्रेरणा लेंगे।

डिग के कमरों में सेल्फ़ सर्विस थी, यानी हमें अपना कमरा अपने आप साफ़ करना पड़ता था।

सात-आठ दिन से बावा ने अपने कमरे की सफ़ाई बन्द कर दी है। इतने रद्दी काग़ज़ फाड़-फाड़कर उसने फेंके हैं कि उसका कमरा चिरे-फटे-गन्दे काग़ज़ों का एक समुद्र हो गया है, उसी में छोटे-छोटे टापुओं के समान उसके दो बाक्स, एक बड़े टापू के समान उसकी चारपाई।

मुझे भी अपने बहुत से काग़ज़ों को नष्ट करना पड़ा है, पर मैं रोज़ उन्हें ले जाकर बाहर फेंक आता हूँ। कमरे की झाड़-पोंछ भी रोज़ करता हूँ। कमरे को पहले से ज़्यादा ही साफ़ रखता हूँ।

बावा मुझे यह सब करते देखकर हँसता है। व्यंग्य करता है, 'मालूम होता है, अभी आपको केम्ब्रिज में और रहना है!'

'नहीं, बात ऐसी नहीं है, मैं चाहता हूँ कि अगर कभी मुझे यह कमरा याद आये तो मैं इसका साफ़-सुथरा रूप आँखों के आगे देखूँ। जाते समय यह कमरा मैं जैसा देखकर जाऊँगा वैसा मेरी स्मृति में बहुत दिनों तक बना रहेगा।'

आज बाईस वर्षों के बाद भी वह कमरा मेरी आँखों के सामने है—तीसरी मंज़िल पर कमरा—सड़क की ओर दो खिड़कियाँ, उस पर पतली जाली के परदे, खिड़की के पास काम करने की मेज़-कुर्सी, बगल में खड़ी मेज़, कुर्सी से ऊबता हूँ तो खड़ा हो जाता हूँ, खड़े-खड़े थकता हूँ तो बैठ जाता हूँ। उस कोने बिजली की अँगीठी, साथ की आलमारी पर खाना खाने-बनाने के सामान-बर्तन। उस कोने में चारपाई, साथ की दीवार से लगी आलमारी किताबों, कापियों से लदी। चारपाई के साथ एक आरामकुर्सी है, कभी थककर उस पर बैठा हूँ और थोड़ी देर को आँख झँप गयी है, और मैं अपने घर-परिवार के बीच पहुँच गया हूँ या घर-परिवार मेरे पास आ गया है···

बावा कहता है, 'मैं तो अपने कमरे को कभी नहीं याद करूँगा।'

क्यों याद करेगा! एक बड़ी दुखद स्मृति इसके साथ जुड़ी है, इसी में उसे अपने पिता के अचानक देहावसान का तार मिला था और उसने रो-रोकर कमरे को सींच दिया था।

मेरे भी कितने तनाव, खिंचाव, हृदय-मन-मस्तिष्क मथनेवाले क्षण इस कमरे से जुड़े हैं, पर उनसे त्राण के भी, राहत के भी। तनाव-खिंचाव के क्षण शायद भूल भी जायें, राहत के क्षण कैसे भुलाये जा सकेंगे, क्योंकि वे स्वर बन गये हैं, शब्द बन गये हैं, लय बन गये हैं।

मधुर लय का क्या कहीं अवसान है?

शोध-प्रबन्ध कह रहा था मेरे साथ चल···
कविता कह रही थी, मेरे साथ बह···
मैंने अपने मन से कहा था,

गर्म लोहा पीट
ठण्डा पीटने को
वक़्त बहुतेरा पड़ा है।

क्या बताना पड़ेगा कि 'गर्म लोहा' क्या है, 'ठण्डा लोहा' क्या है? कविता का 'गर्म लोहा' फ़ौरन पीटना होता है। कल्पना की ललाई, भावनाओं का उत्ताप, लयों का लचीलापन ज़्यादा देर नहीं ठहरता।

यह कविता वहाँ उस कुर्सी पर बैठकर लिखी थी।

लाइब्रेरी में काम करनेवाली लड़कियों से जिस दिन कहा था, 'अब मेरा काम पूरा होनेवाला है और मैं देश लौटनेवाला हूँ,' उस दिन उन्होंने अपनी आँखों से जो प्रश्न किया था, उसके उत्तर में यह गीत उस मेज़ पर खड़े-खड़े लिखा था—

चार दिन मेरा तुम्हारा हो चुका है, हेम हंसिनि,
और इतना भी यहाँ पर कम नहीं है।

कल्पना कंकड़ को उठाकर मुट्ठी में बन्द करती है और जब वह खोलती है, कंकड़ हीरा हो जाता है। हीरे की क़द्र कम न करें, क्योंकि मैंने बता दिया है कि उसके मूल में कंकड था।

उस खिड़की से हवा का जो कम ठण्डा झोंका आया था उसने यह गीत लिखने को प्रेरित किया था,

अब हेमन्त-अन्त नियराया
लौट न आ तू, गगन बिहारी।

और उसी खिडकी से दूर पर दिखती वृक्षावली से मेरे क़लम में जो हरकत हुई थी, उससे यह गीत उतर पड़ा था—

कह रही है पेड़ की हर शाख़
अब तुम आ रहे अपने बसेरे।

उस दरवाज़े से अंग्रेज़ी बसन्त का जो रूप देखा था उससे अपना देसी बसन्त कितना-कितना याद आया था!—

बौरे आमों पर बौराये भौंर न आये, कैसे समझूँ मधु ऋतु आयी।
माना अब आकाश खुला-सा और धुला-सा,
फैला-फैला, नीला, नीला,
बर्फ़-जली-सी, पील-पीली दूब हरी फिर,
जिस पर खिलता फूल फबीला,
तरु की निरावरण डालों पर मूँगा, पन्ना
औ दखिनहटे का झकझोरा,
बौरे आमों पर बौराये भौंर न आये, कैसे समझूँ मधु ऋतु आयी।
माना, गाना गानेवाली चिड़ियाँ आयीं,
सुन पड़ती कोकिल की बोली,
चली गयी थी गर्म प्रदेशों में कुछ दिन को
जो, लौटी हंसों की टोली,

सजी-बजी बारात खड़ी है रंग-बिरंगी,
किन्तु न दूल्हे के सिर जब तक
मंजरियों का मौर मुकुट पहनाये कोई, कैसे समझूँ मधु ऋतु आयी।
डार-पात सब पीत पुष्पमय जो कर लेता
अमलतास को कौन छिपाये,
सेमल और पलाशों ने सिन्दूर पताके
नहीं गगन में क्यों फहराये ?
छोड़ नगर की सँकरी गलियाँ, घर-दर बाहर
आया, पर फूली सरसों से
मीलों लम्बे खेत नहीं दिखते पियराये, कैसे समझूँ मधु ऋतु आयी।
प्रात: से सन्ध्या तक पशुवत मेहनत करके
चूर-चूर हो जाने पर भी,
एक बार भी तीन सैकड़े पैंसठ दिन में
पूरा पेट न खाने पर भी,
मौसम की मदमस्त हवा पी जो हो उठते
हैं मतवाले, पागल, उनके
फाग-राग ने रातों रक्खा नहीं जगाये, कैसे समझूँ मधु ऋतु आयी।
बौरे आमों पर बौराये भौंर न आये, कैसे समझूँ मधु ऋतु आयी।

बार-बार अपने को याद दिलाता हूँ, अपनी कविताओं के बारे में कम-से-कम कहना है, पर क्या करूँ, केम्ब्रिज का कमरा याद आये तो वे कविताएँ कैसे भुलायी जायें जो उसमें लिखी गयी थीं और वे गीत याद आयें तो वह कमरा कैसे भुलाया जाय जिसमें ये गीत लिखे गये थे ! आख़िरकार यह संस्मरण है।

केम्ब्रिज छोडने को अब फ़क़त दो दिन हैं।

समय लेकर मि. हेन से विदा लेने गया।

हेन का मुझ पर बहुत बड़ा ऋण है। निर्देशक-शोधार्थी का औपचारिक सम्बन्ध तो हफ़ ने भी निभाया था, निश्चय मेरे व्यावहारिक हित को ध्यान में रखकर, पर एक फ़ासला बनाये हुए। उनके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ, पर हेन के प्रति मैं ऋणी हूँ। जिस दिन से मैं उन्हें मिला था उसी दिन से उन्होंने मुझे अपने विश्वास में लिया था, मेरे अन्दर छिपी शोध-प्रकृति को पहचाना था, उसे विकसित करने में हार्दिक रुचि ली थी, मुझे जैसे एक बड़े और अनुभवी का स्नेह-संरक्षण दिया था, मुझे अपनाया था।

मुझे अनेक ऐसे अवसर याद हैं जब अपने अवसाद, निराशा या चिन्ता के क्षणों में—प्रवास में इनकी कमी तो नहीं रही—मैंने उनके सान्निध्य से विश्रान्ति पायी थी, सहारा पाया था, बल संचय किया था।

एक घटना का ज़िक्र करूँ ?

'53 के अन्तिम और '54 के आरम्भिक महीनों में इंग्लैण्ड में भीषण जाड़ा पड़ा, तापमान ज़ीरो से कई डिग्री नीचे चला गया। इतनी बर्फ़ पड़ी कि मकानों की छतें ढक गयीं, पेड़ों की नंगी डालें बर्फ़ से सफ़ेद हो गयीं, हर खुली जगह पर बर्फ़ की परतें जम गयीं। अखबारों में निकला कि पिछले पचीस वर्षों में ऐसी

ठण्ड नहीं पड़ी। और ठण्ड बढ़ते-बढ़ते इस हद तक पहुँची कि एक दिन केम्ब्रिज की कैम नदी जम गयी। जमी नदी की कल्पना आप शायद ही ठीक से कर सकें। लगता है, नदी मर गयी और कफ़न ओढ़कर पड़ी है—'जब नदी मर गयी—जब नदी जी उठी' शीर्षक से मेरी एक कविता है मेरे किसी संग्रह में।

धन्य हैं इंग्लैण्ड के लोग, जो ऐसी भीषणता को भी त्योहार में बदल देते हैं। बच्चे जमी नदी पर दौड़ने को निकल पड़े, नवयुवकों ने अपनी सहेलियों के साथ उस पर नृत्य किया, बहुतों ने उस पर स्केटिंग की। कुछ दुर्घटनाएँ भी हुईं एकाध जगह, बर्फ़ पाँवों के नीचे धसक गयी और बच्चे नीचे चले गये और लापता हो गये।

मैं अपनी डिग से चला, कुछ दूर पर एक पुल पार कर मुझे हेन के कमरे में जाना था, पर यह देखकर कि कई लोग नदी पर स्केटिंग कर रहे हैं, मैंने सोचा, नदी पर चलकर मैं भी पार हो जाऊँ, यह भी एक अद्वितीय अनुभव रहेगा।

उस सर्वथा नवीन अनुभव से उद्वेलित, हेन के कमरे में पहुँचकर उन्हें प्रसन्नचित्त पा मैंने कहा, 'श्रीमन, आज तो मैं नदी के ऊपर चलकर आपके पास आया हूँ...'

हेन की मुद्रा बदल गयी, भौंहें तन गयीं, फिर अपने क्रोध को क्वचित् नियन्त्रित कर उन्होंने व्यंग्य से कहा, 'तो अब आप दूसरे क्राइस्ट के रूप में माने जायेंगे।'... (क्राइस्ट ने एक बार पानी पर चलने का चमत्कार दिखाया था)। और फिर वे अपने को न रोक सके, बरस ही पड़े, 'तुमने यह क्या बेवकूफ़ी की, तुम बीवी-बच्चेवाले आदमी, मैंने तो समझा था तुममें कुछ अक्ल है, दुर्भाग्यवश बरफ़ टूट जाती तो तुम्हारा पता न मिलता, कुछ सोचा, तुम्हारे बीवी-बच्चों पर क्या गुज़रती...मैं तुमसे बहुत नाराज़ हूँ।'

उस दिन उनकी डाँट से मुझे जैसी आत्मीयता का अनुभव हुआ था, वैसी उनके मीठे वचनों से नहीं। केम्ब्रिज में मुझे कोई डाँटनेवाला तो है, अपना समझकर। अपने पर ही क्रोध भी किया जाता है, ग़ैर की तो उपेक्षा की जाती है।

विदा-भेंट के रूप में मैं सफ़ेद और लाल गुलाबों के दो गुच्छे ले गया था। मैंने कहा 'प्राचीन भारत में जब शिष्य गुरु से विदा होने जाता था तो उसे दक्षिणा प्रदान करता था। वही परम्परा निभाने के रूप में मैं दो पुष्प-गुच्छ लाया हूँ, सफ़ेद आपके लिए है, लाल श्रीमती हेन के लिए। इस समय और कुछ के लिए मेरी असमर्थता तो आप...।' मुझे कुछ भावुक होते देख हेन हँसे, 'देखो जी, प्राचीन भारत में शिष्य को फ़ीस तो नहीं देनी पड़ती थी। कालेज तो तुमसे फ़ीस लेता रहा है, वह दक्षिणा तो हुई ही। ये फूल ही बहुत हैं, धन्यवाद, लेकिन दूसरा गुच्छा तुम जाकर वीवियन को खुद दो, इससे वे ज़्यादा प्रसन्न होंगी और तुम्हारे केम्ब्रिज से जाने के पहले वे तुम्हें अपने हाथ से बनायी एक प्याली चाय ज़रूर पिलाना चाहेंगी।'

उन्होंने मुझसे कहा, 'केम्ब्रिज की डाक्टरेट अकादमिक दुनिया में एक बड़ी उपलब्धि मानी जाती है, इससे तुम्हारे कैरियर में भी उन्नति होगी, योरोप और अमरीका में अंग्रेज़ी तो लोग हिन्दुस्तानियों से नहीं पढ़ेंगे, पर जापान, हांगकांग, नैरोबी और अफ़्रीका के कई नगरों से केम्ब्रिज-शिक्षित-दीक्षित अंग्रेज़ी के अध्यापकों की माँग बराबर रहती है, सर्विस कण्डिशन्स बहुत अच्छी, तुम जाना चाहो तो मैं तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ।' मैंने कहा, 'हिन्दी का छोटा-मोटा लेखक भी होने के नाते अपने भाषा-क्षेत्र से दूर जाना मेरे लिए हितकर न होगा, फिर मेरे बच्चे ऐसी अवस्था में हैं, जिसमें मैं चाहूँगा कि वे देश के ही संस्कारों में

पलें-बढ़ें।' वे मेरे विचार से सहमत हुए।

हेन की प्रसिद्ध पुस्तक The Lonely Tower (दि लोनली टाअर) मैंने बहुत पहले खरीदी थी, साथ लेता गया था कि इस पर उनके हस्ताक्षर ले लूंगा। मैंने पुस्तक उनकी ओर बढ़ा दी। और उन्होंने जो उस पर लिखा, उससे वे मेरी दृष्टि में बहुत ऊँचे उठ गये।

With gratitude for many wrong things which the owner has pointed out in this book! —Tom Rice Henn.

(इस पुस्तक के मालिक ने इसमें जो बहुत-सी ग़ल्तियाँ दिखलायी हैं उसके लिए मैं आभार प्रकट करता हूँ।—टाम राइस हेन)

पाठकों को स्मरण होगा कि अपनी किसी स्थापना को सही साबित करने के लिए मि. हेन की किसी स्थापना को मुझे ग़लत साबित करना पड़ा था। इसके लिए मेरे मन में बड़ा संकोच था, बड़ा भय भी था, उनकी नाराज़ी का; अपने से छोटों, अपने से कम योग्यों द्वारा अपनी आलोचना कौन सहन करेगा—उनके सामने मेरी हस्ती ही क्या थी!—सहन ही नहीं करेगा, उसके लिए कृतज्ञ होगा? वही, जो तथाकथित नहीं, वास्तव में बड़ा होगा, बड़े जिगरेवाला होगा, और इस बात से आश्वस्त होगा कि वह ऐसी जगह बड़ा है, जहाँ उसके बड़प्पन को चुनौती नहीं दी जा सकती।—हेन कहे जा रहे थे, 'किसी गुरु के लिए इससे अधिक हर्ष और गर्व का अवसर नहीं हो सकता कि उसका शिष्य उसकी भूलों को देख सके और उन पर उँगली रखने का साहस कर सके।' कौन कह सकता है कि हेन उन महान गुरुओं की परम्परा में नहीं थे जिन्होंने यह उद्घोषणा की थी—शिष्यात्पुत्रादिच्छेद पराभवम्!

केम्ब्रिज की पी-एच. डी की डिग्री बहुत बड़ी है।

आप चाहें तो कह सकते हैं, और मैं उस पर आपत्ति नहीं करूँगा कि इसे पाने का मुझे गर्व है।

पर आप इसे सच मानें कि इस पर मुझे अधिक गर्व है कि केम्ब्रिज में मैं हेन जैसे गुरु का शिष्य रहा।

उनकी एक और पुस्तक The Apple and Spectroscope (दि ऐपिल ऐण्ड स्पेक्ट्रास्कोप) भी मैं अपने साथ ले गया था; उस पर उन्होंने अपने हाथ से मेरा नाम लिख दिया था H. R. Bachchan (Discipulo) नीचे अपना पूरा नाम Tom Rice Henn लिख दिया था—लैटिन Discipulo, अंग्रेजी Disciple, हिन्दी शिष्य।

फिर भी मैं स्मरण करना चाहूँगा तुलसी का एक दोहा,

> **हौंहु कहावत सब कहत राम सहत उपहास।**
> **साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास॥**

हेन ने जीवनपर्यन्त मेरे प्रति अपना गुरुत्व निभाया।

वे बराबर मेरी गतिविधि जानने को मुझे पत्र लिखते रहे—मैं कैसा हूँ, कहाँ हूँ, क्या कर रहा हूँ, क्या लिख रहा हूँ—मेरी कौन पुस्तक प्रकाशित हो रही है?

केम्ब्रिज से लौटने के ग्यारह वर्ष बाद, ईट्स की जन्म-शताब्दी पर जब मैंने अपनी थीसिस पुस्तक-रूप में प्रकाशित की तो उन्होंने बड़ी ख़ुशी से उसकी भूमिका लिखी। कभी आपको अवसर मिले तो उस भूमिका को देखें, मूल पुस्तक तो आपको रुचिकर न लगेगी, जब तक आप ईट्स की रचनाओं से पूर्णतया भिज्ञ न

हों। मेरी पुस्तक को जो महत्त्व उन्होंने दिया, उसमें मेरे प्रति उनकी कृपा और उदारता ही अधिक बोलती है। ऐसे महान व्यक्ति का कृपापात्र होना ही क्या कम महत्त्व की बात है !

भूमिका में एक स्थान पर वे लिखते हैं—

Dr. Bachchan is himself a Hindi poet of reputation and (so far as one may judge in translation) there is a striking similarity of approach particularly as regards images and symbols as between his own technique and that of Yeats.

(डॉ. बच्चन स्वयं हिन्दी के प्रख्यात कवि हैं, और जहाँ तक अनुवादों को देखकर कोई निर्णय कर सकता है, यह कहना ग़लत न होगा कि काव्य के प्रति दृष्टिकोण में, विशेषकर रूपकों और प्रतीकों के उपयोग में, उनकी और ईट्स की तकनीक़ में अद्‌भुत समानता है।)

मेरे ऊपर शोध-कार्य करनेवाले भारत की कई युनिवर्सिटियों में मेरी कविता की मिट्टी पलीद कर रहे हैं। काश, उनमें से कोई हेन की इस स्थापना को लेकर कुछ तत्त्व की बात कहता। ख़ैर।

शताब्दी-वर्ष में ही जब मैंने ईट्स की 100 कविताओं का अनुवाद हिन्दी में करके छपाया, 'मरकत द्वीप का स्वर' के नाम से, तब उन्होंने उसकी एक प्रति मुझसे मँगायी, हालाँकि वे हिन्दी का एक अक्षर भी नहीं पढ़ सकते थे। उन्होंने मुझे लिखा था, 'अब तो केम्ब्रिज युनिवर्सिटी में हिन्दी विभाग भी खुलनेवाला है और यहाँ बहुत-से हिन्दी जाननेवाले होंगे, मैं किसी से पढ़वाकर तुम्हारा अनुवाद सुनूंगा।'

1970 में एक जम्बो जेट दिल्ली से न्यूयार्क तक की अपनी प्रथम उड़ान पर जा रहा था। ऐसे अवसर पर ऐसी प्रथा है, भारत सरकार कुछ जाने-माने नागरिकों को अतिथि-रूप में यात्रा करने के लिए आमन्त्रित करती है। तेजी को भी निमन्त्रण मिला था। तेजी लौटते समय लन्दन से मेरे पूर्व शिष्य ओंकारनाथ श्रीवास्तव को साथ लेकर, जो वहाँ बी. बी. सी. में उन दिनों काम करते थे, केम्ब्रिज गयीं। केम्ब्रिज पहुँचकर तेजी सेण्ट कैथरीन्स कालेज गयीं और वहाँ से हेन को फ़ोन किया। उन्होंने फ़ोन पर कहा, 'आप जहाँ हैं, वहीं रुकें, मैं आ रहा हूँ।' और वे अपनी कार लेकर फ़ौरन कालेज आये और तेजी और ओंकार को अपनी गाड़ी में बिठालकर सारा केम्ब्रिज दिखाया, एक-एक जगह दिखायी, जहाँ मैं रह चुका था, लाइब्रेरी, कालेज का अपना कमरा, जहाँ-जहाँ मैंने काम किया था, फिर अपने घर, अपनी स्टडी में, लिवा ले गये जिसे दिखलाकर श्रीमती हेन ने कहा, 'इसी कमरे में आपके और मेरे पति ने न जाने कितनी शामों को घण्टों बैठकर काव्य और साहित्य की चर्चा की है।'

चलने लगे तो ओंकार ने हेन के पाँव छुए, 'आप तो मेरे गुरु के भी गुरु हैं।' तेजी बताती थीं, हेन की आँखों में आँसू भर आये थे।

अमिताभ 1973 में अपने विवाह के बाद हनीमून मनाने को लन्दन गये तो केम्ब्रिज भी गये और अपनी पत्नी के साथ उन्होंने मि. हेन के दर्शन किये। वे भाव-विभोर हो उठे। बहुत वृद्ध हो गये थे, बैसाखी पर चलते थे। एक पारिवारिक त्रासदी ने उनकी कमर तोड़ दी थी। उनके एक मात्र लड़के का भरी जवानी में अकस्मात देहान्त हो गया था। मुझे सूचित करते हुए लिखा था, 'कृपया कोई संवेदना न व्यक्त करें।' मैंने ईट्स की पंक्तियाँ लिख भेजी थीं,

So like a bit of stone I lie
Under a broken tree,
I could recover if I shrieked
My heart's agony
To passing bird, but I am dumb
From human dignity.

मेरा हिन्दी अनुवाद है :

टूटे तरु के नीचे
छोटे-से पत्थर-सा पड़ा हुआ हूँ मैं कब से,
विजड़ित जड़िमा से ।
मेरा दिल हल्का हो जाता,
डाली पर बैठी चिड़िया को
यदि मैं अपनी पीर सुनाता,
लेकिन मैं मुँह बन्द किये मानव गरिमा से ।

एक पंक्ति में उनका उत्तर मिला था, 'तुम्हारा पत्र प्रतिध्वनि के समान आया है।'

और हेन अपना मुँह बन्द किये ही, पर मानव-गरिमा के साथ, इस दुनिया से चले गये।

हेन से जो मुझे मिला था, मेरे भाग्य ने अवसर ही न दिया कि मैं अपने शिष्यों को दे सकूँ। वही उनसे उऋण होने का एकमात्र उपाय होता—

गुरु ऋण रहा सोच बड़ जी के ।

काश, मेरे पाठक परशुराम के प्रति कही गयी लक्ष्मण की इस व्यंग्योक्ति को उसके सन्दर्भ से अलग करके देख सकते।

मन में बड़ा मलाल हो रहा था कि इतने दिन बाद लौट रहा हूँ और बच्चों के लिए कुछ नहीं ले जा रहा हूँ। बावा ने मेरी वेदना देखी और मुझे दस पौण्ड और दे दिये। मैंने अमित के लिए एक छर्रेवाली बन्दूक़ ले ली—उसकी बाढ़ देखकर हम पहले सोचा करते थे कि वह फ़ौज में जायगा, हम उसे कभी-कभी फ़ील्ड मार्शल अमिताभ कहकर पुकारते भी थे। बंटी के लिए मैंने बिजली से चलनेवाली एक रेलगाड़ी ली। सोचा, तेजी पूछेंगी, 'मेरे लिए क्या लाये?' तो कहूँगा, 'तुम्हारे लिए तो मैं खुद ही आ गया'—वही उत्तर, जो मैं किसी समय श्यामा को बाहर से लौटने पर देता था। न उनके लिए कुछ लिया, न अपने लिए, राजन के लिए एक टाई ज़रूर ले ली, अपने स्नेह-बन्धन के प्रतीक रूप। पाँच पौण्ड बचाकर अपने पास रख लिये, नक़द इतना ही अधिकतम समुद्री यात्रा में साथ ले जा सकता था।

केम्ब्रिज में हमारी आखिरी शाम आ गयी। बावा ने और मैंने सारी शाम घूम-घूमकर केम्ब्रिज के प्राकृतिक सौन्दर्य पर आखिरी नज़रें डालीं। मौसम ऐसा सुहाना तो कभी हुआ ही नहीं था, नदी, किनारों, फूल-पौधों, पेड़ों सब पर प्रसन्नता की आभा। हमारे जाने पर उसे उदास क्या होना था, न जाने कितने यहाँ आये और यहाँ से चले गये। कहीं हम भी तो प्रसन्न थे, अपने घर वापस

लौटने की घड़ी आ जाने पर। कहीं हमारी भीतरी प्रसन्नता ही तो केम्ब्रिज नहीं प्रतिबिम्बित कर रहा था। अंग्रेजी निबन्धकार हैज़्लिट ने कहा है—The happiest part of the journey is the return. (यात्रा का सबसे सुखद अनुभव यात्रा से लौटने का है।)

केम्ब्रिज में हमारी आखिरी सुबह। हम उठकर तैयार हुए हैं, डिग के साथियों ने हमें नाश्ता करा दिया है, दस बजे हमें लन्दन के लिए ट्रेन पकड़नी है, बड़ा सामान एक दिन पहले टामस कुक के एजेन्टों द्वारा सँभाल लिया गया है, अब तो हाथ में रहनेवाला सामान साथ है, कुछ संगी-साथी मिलने आ गये हैं, मैं बड़े हल्के मूड में हूँ, सबको एक गीत सुनाता हूँ :

बाबुल मोरा केम्ब्रिज छूटो री जाय।
चार दोस्त मिल बक्सा उतारें
हेन-हफ़ छूटो री जाय। बाबुल मोरा···

सेण्ट कैथ पर्वत भया, जीसस ग्रीन अकास,
जा गोरी घर आपने, मैं चला तेज के पास।
बाबुल मोरा केम्ब्रिज छूटो री जाय।

कमरे में हँसी के फ़ौआरे छूट जाते हैं।

पर यह हल्का मूड बहुत देर नहीं रह पाता।

डिग से निकलकर बस स्टैण्ड तक जाने के लिए सेण्ट कैथरीन्स कालेज के सामने से होकर जाना पड़ता था।

कालेज के सामने पहुँचा तो मेरा पाँव ठिठक गया है। मि. हेन कालेज के लान पर टहल रहे थे, मुझे देखकर बाहर आ गये हैं, कहते हैं—

I knew you would like to have a look at your college before leaving Cambridge. (मुझे मालूम था कि केम्ब्रिज छोड़ने के पहले तुम अपने कालेज को एक नज़र देखना चाहोगे।)

मेरी आँख सेण्ट कैथरीन्स कालेज के लोहे के फाटक पर लगे सुनहले पहिये पर टिक जाती है। सेण्ट कैथरीन पुराकाल में एक साध्वी थी जिसे रोमनों ने लोहे के पहिये के नीचे कुचल-कुचलकर मरणान्तक यातनाएँ दी थीं। बाद को यही पहिया सेण्ट कैथरीन की अदम्य आस्था का प्रतीक हुआ, जैसे क्रास क्राइस्ट का। जब उसके नाम पर इस कालेज की स्थापना हुई, तब पहिया कालेज का विशेष चिह्न (Emblem) बनाया गया। केम्ब्रिज में जब-जब मुझे मानसिक यातनाओं से गुज़रना पड़ा था, यह पहिया मुझे याद आया था। मैं उस कालेज का सदस्य हूँ जिसकी संरक्षिका (Patron Saint) सेण्ट कैथरीन है। मुझे उसके धैर्य, उसकी आस्था से बल संचय करना चाहिए। नियति ने यों ही नहीं, किसी ध्येय से मुझे सेण्ट कैथरीन्स का सदस्य बनाया है। अगर मैं आज जीवन के पहिये के नीचे हूँ तो क्या शिकायत करूँ, मुझसे बहुत बड़े, बहुत निर्दोष, बहुत पावन जीवन के पहिये के नीचे आ चुके हैं और उन्होंने जो वेदना झेली है, उसे देखकर बहुतों को अपनी वेदना झेलना सहज हुआ है।

मेरे भीतर किसी ने कहा कि इस पहिये से जो प्रेरणा तुम लेते रहे हो, उसके लिए तुम्हें सेण्ट कैथरीन को धन्यवाद दिये बिना केम्ब्रिज से नहीं जाना चाहिए।

एक क्षण के लिए मैं पहिये के सामने नतमस्तक हो गया।

हे सन्त, तुम्हारे उस बलिदान का सन्देश मैं कभी न भूलूँ। न जाने अभी

जीवन कितना है, और न जाने अभी कितनी बार ऐसे पहियों के नीचे होकर जाना है।*

हेन, 'बॉं वइयाज़' (यात्रा शुभ हो) कहकर अपना हाथ उठा रहे थे।

और उनके उस उठे हाथ में मुझे सेंण्ट कैथरीन का आशीषदायी हाथ भी दिखायी पड़ा था।

लन्दन में दो दिन, दो रात रहना था। लगता था, कैसे कटेगा यह वक्त। अब जी यही चाहता है कि जल्दी-से-जल्दी जाकर जहाज़ में बैठ जाऊँ और वह चले और बम्बई आने के पहले कहीं-कभी न रुके। ख़ैरियत है, कुछ करने को था। 14 को लन्दन स्टेशन के गोदाम में जाकर चेक करना था कि जो सामान केम्ब्रिज से थामस कुक ने इकट्ठा करके भेजा है, वह ठीक पहुँच गया है कि नहीं। 15 को वह जहाज़ में लदनेवाला था। उसी दिन लन्दन युनिवर्सिटी के ओरियण्टल विभाग में मुझे अपनी कुछ कविताएँ रेकार्ड करानी थीं, 18 को वहाँ एक हिन्दी कवि-सम्मेलन आयोजित था, मैं तो रुक नहीं सकता था, मेरी कुछ कविताएँ सुनवाने को रेकार्ड कर ली गयीं, मुझसे वादा किया गया था कि उसकी डिस्क बनवाकर भेजवा देंगे। अभी तक तो वह आयी नहीं।

रात जैसे-तैसे कट गयी।

15 को दिन को क्या करूँ ? लन्दन में रहो तो कुछ घूमो-फिरो, कुछ करो-धरो।

लन्दन का क्यू गार्डन अपनी ख़ूबसूरती के लिए दुनिया भर में प्रसिद्ध है। देखने चला गया।

बाग़ अपनी पूरी जवानी पर था।

April showers
Bring May flowers.

अप्रैल की झड़ी
मई-फूलों की लड़ी !

और अप्रैल की बरसात से मई में जो फूल आये थे, वे जून के पहले पखवारे तक लहलहा रहे थे। पर हरे-भरे पौधों के बीच से झाँक रही थी तेजी, रंग-बिरंगे फूलों से अमिताभ-अजिताभ।

इंग्लैण्ड में आखिरी रात। इंग्लैण्ड में पहली रात भी इसी होस्टल में, घटना-वश, इसी कमरे में काटी थी। तब से ठीक दो बरस, दो महीने, दो दिन की न जाने कितनी सुखद-दुखद घड़ियों पर उँगली रखती स्मृति निद्रालोक में खो गयी है।···

सोते में जैसे सुबक-सुबककर किसी के रोने की आवाज़ सुनकर जाग पड़ा हूँ।

पास के बिस्तर पर बावा नींद में रो रहा था।

उसने अपने पिता के शव को सपने में देखा था।

सुबह होने को थी।

---

* देखें मेरी कविता—'जीवन के पहिये के नीचे, जीवन के पहिये के ऊपर'—(बुद्ध और नाचघर)

पास रहनेवाले दो भारतीय विद्यार्थियों ने आखिरी नाश्ते के लिए हमें निमन्त्रित कर रखा था।

10 बजे ट्रेन लन्दन से टिलबरी डाकयार्ड के लिए छूट गयी।

शुक्र है, लौटानी सफ़र शुरू हो गया है।

पी ऐण्ड ओ स्ट्राथीडेन बहुत बड़ा जहाज़ था। इतने बड़े जहाज़ में मैंने पहले कभी सफ़र नहीं किया था। आया था हवाई जहाज़ से, डबलिन गया था स्टीमर से। बावा इंग्लैण्ड आया भी था समुद्री जहाज़ से। जहाज़ पर वह मेरा गाइड बन गया था।

स्ट्राथीडेन होगा तो कम-से-कम एक फ़र्लांग लम्बा और सौ फ़ीट चौड़ा, और ऊँचा? समुद्री सतह के ऊपर आठ डेक A, B, C, D, E, F, G, H. ऊपर के तीन डेक प्रथम श्रेणी के, शेष पाँच टूरिस्ट क्लास के। टूरिस्ट क्लास के कोई नौ सौ यात्री थे, फ़र्स्ट क्लास के कितने होंगे, नहीं कह सकता। फ़र्स्ट क्लास के लोग प्राय: टूरिस्ट डेकों पर नहीं उतरते और न टूरिस्ट क्लास के ही फ़र्स्ट क्लास के डेकों पर चढ़ते हैं। मैं तो चढ़ता था। फ़र्स्ट क्लास में सबसे ऊँचे डेक पर किनारे-किनारे चारों ओर चलने का रास्ता बना था, उस पर लिखा था, 'इतने चक्कर करो तो एक मील होता है।' कुछ लोगों को चलने का शोक होता है, और कुछ लोग न चलें तो उनकी तन्दुरुस्ती ठीक नहीं रहती। ऐसों की सुविधा के लिए यह रास्ता बनाया गया था। मैं दोनों में हूँ। अलस्सुबह अभी जब फ़र्स्ट क्लास के यात्री सोते ही रहते होंगे, मैं ऊपर जाकर तीन-चार मील का चक्कर रोज़ लगा आता था। चलन्तू किसी भी प्रथम श्रेणी के यात्री से कभी मेरी भेंट न हुई। मिलता भी तो शायद ही एतराज़ करता। मेरी पीठ पर कोई छाप लगी थी कि मैं टूरिस्ट क्लास का यात्री हूँ!

जहाज़ में यात्रियों के लिए केबिन होते हैं, रेल के डिब्बों जैसे, एक से छह 'बर्थ' के। स्ट्राथीडेन में कोई दो सौ केबिन तो होंगे। केबिन में कपड़े टाँगने के लिए एक आलमारी होती है, कुछ दराज़ कपड़े रखने के लिए, एक वाश बेसिन, और एकाध बैठने की छोटी कुर्सियाँ— कोशिश करने पर भी बावा को और मुझे एक ही केबिन न मिला था। पर हम सिर्फ़ सोने के लिए अपने-अपने केबिन में जाते, बाक़ी वक़्त साथ रहते।

जहाज़ पानी पर तैरता एक छोटा-सा नगर ही होता है। स्ट्राथीडेन पर क्या नहीं था—केबिनों के अलावा, बैठक (लाउंज), मधुशाला, भोजनालय, काफ़ी-खाना, धूम्रपानगृह, नाचघर, बाल भवन, धोबी-दफ़्तर, नाई की दूकान, अस्पताल, बैंक, पोस्ट ऑफिस, टेनिस कोर्ट, (डेक टेनिस खेलने के लिए, जो एक तरह के रबर के चक्र से खेला जाता है), सब तो था, यहाँ तक कि नहाने, तैरने के लिए एक तालाब भी। जहाज़ पर काम करनेवाले खलासी, बेयरे तथा अन्य कर्मचारियों के रहने की जगहें अलग थीं।

दो वक़्तों का खाना, नाश्ता, चाय टिकट में शामिल होता है। इसके अलावा कुछ खाना-पीना चाहें—केक, पेस्ट्री, सिगरेट, शर्बत, शराब तो उनके दाम अलग देने पड़ते हैं, पर जहाज पर चीज़ें बहुत सस्ती मिलती हैं सिर्फ़ जहाज़ पर ही खाने-पीने के लिए—खरीदकर बन्दरगाह पर उतरें तो भारी चुंगी देनी पड़ती है।

हम दोनों ने ही केम्ब्रिज में दो बरस जी-तोड़ मेहनत की थी, ऊपर से तरह-

तरह की मुसीबतों के शिकार हुए थे। साथ ही हम दोनों यह भी जानते थे कि अपने-अपने घर पहुँचते ही हमें कई तरह की नयी और कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। क्यों न हम इस अन्तराल में विगत और अनागत दोनों को भूलकर सिर्फ़ वर्तमान में जियें, इससे पिछली थकान से भी हमारा निस्तार होगा और अगली चुनौतियाँ भी हमें ज़्यादा ताज़ा और तैयार पायेंगी। भूत-भविष्य की स्थूल परिस्थिति, परिवेश से असम्बद्ध, निस्सीम समुद्र की सतह पर द्वीप की तरह तैरते हुए छोटे-से जहाज़ पर असम्भव तो नहीं कि यह सम्भव हो सके। हमने अपनी सागर-यात्रा भर के लिए एक-दूसरे को इस साबर-मन्त्र से दीक्षित किया—

जो बीत गयी सो बात गयी
जो आयी नहीं छू पायी नहीं।

हमने आपस में तै किया कि हममें से कोई अगर दूसरे को कभी उदास देखे तो ज़ोर से गुदगुदा दे। और हमने मौक़े-बे-मौक़े एक-दूसरे को काफ़ी गुदगुदाया।

जहाज़ में नींद बड़ी अच्छी आती है। एक तो, जहाज़ के प्रोपेलर के चलने की गरर-गरर-गर···आवाज़ निरन्तर कानों में आती रहती है। और, यह और कुछ न करे किसी और विचार को दिमाग़ पर बैठने नहीं देती। दो-एक दिन के बाद यह जहाज़ के अनवरत मन्द-मधुर संगीत के समान कानों में गूँजने लगती है, यहाँ तक कि जब आप जहाज़ से उतरते हैं तो कई दिनों तक इसके अभाव में आपको नींद नहीं आती। दूसरे, अगर मौसम सामान्य हो तो चलते हुए जहाज़ दाहिने-बायें धीरे-धीरे हिलता है, ऐसा लगता है कोई आपको झूले में डालकर मन्द-मन्द झुला रहा हो और आप सो जाते हैं।

कोई गाता मैं सो जाता।
संसृति के विस्तृत सागर पर
सपनों की नौका के अन्दर,
सुख-दुख की लहरों पर उठ-गिर बहता जाता मैं सो जाता।
कोई गाता मैं सो जाता।

सुबह उठकर मैं तो ऊपर डेक पर घूमने चला जाता और बाबा किसी खुले डेक पर ज़्यादा मशक़्क़त-तलब कसरत करता। फिर नहा-धोकर हम लोग नाश्ता करने जाते। बाद में हम लाउंज में जाकर नये-नये लोगों से परिचय करते। जहाज़ में बड़ी अनौपचारिकता का वातावरण रहता है और किसी में मिलनसारी हो तो बहुत-से मित्र बना सकता है। लोग इससे ख़ुश होते हैं कि आप स्वयं अपना परिचय देकर दूसरों से उनका परिचय माँगें। यह तो जहाज़ में ही स्पष्ट होता है कि दुनिया में कैसे-कैसे विचित्र लोग हैं और कैसी अकल्पनीय परिस्थितियों से गुज़रते हुए अपने जीवन का मार्ग बनाते हैं। अपने-आप बनाकर खाने से ऊबे हम बना-बनाया खाना डटकर खाते और दिन में कुछ देर को सो जाते। शामों को जहाज़ पर तरह-तरह के मनोरंजन का आयोजन होता है, जिनमें हर आदमी अपनी रुचि के अनुसार भाग ले सकता है। दो-चार दिन तो समुद्र का फैलाव, उठती-गिरती लहरें अच्छी लगती हैं, फिर इनसे ऊब होने लगती है। जिन पेड़-पत्तों-घास की ओर हम कभी ध्यान नहीं देते, उन्हीं को देखने को हम तरसने लगते हैं। जहाज़ पर इनका अभाव बहुत खलता है। कभी नोटिस करें, जहाज़ों में जो तस्वीरें लगी होती हैं वे

पेड़, उद्यानों, जंगलों की होती हैं।

जिन्हें इन्सान की सोहबत पसन्द हो, जिन्हें इन्सानों में रुचि हो, जिन्हें मनुष्यों के वैविध्यपूर्ण चरित्र और वृत्ति के प्रति कौतूहल हो, उन्हें समुद्र के उबाऊ परिवेश से घबराने की जरूरत नहीं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है और समाज से अपनी पटरी बैठी रखने के लिए प्रायः वह एक समाज-प्रत्याशित रूप अपने ऊपर आरोपित किये रहता है। जहाज़ हर मनुष्य को इस सामाजिक दबाव और नियन्त्रण से मुक्ति देता है और वह कुछ समय के लिए निजत्व में रहने का अवसर पाता है और अपने इस निजत्व में हमीं दूसरों की ओर आकर्षित नहीं होते, दूसरे भी हमारी ओर निःसंकोच खिच आते हैं। मैं भारत या आयरलैण्ड के किसी ऐसे परिवेश की कल्पना नहीं कर सकता जिसमें नोरा ऐसी लड़की हमारे उतने निकट आ सके जितनी कि वह उस जहाज़ी यात्रा में आयी।

नोरा को पिछले वर्ष आयरलैण्ड की सौन्दर्य-प्रतियोगिता में पुरस्कार मिला था, पर वह अपनी सुन्दरता के प्रति रंचमात्र सचेत न थी, साथ ही वह इतनी प्रसन्नचित्त थी कि लगता था, जैसे उसकी आन्तरिक प्रसन्नता के प्रवाह में उसका सौन्दर्य एक फूल के दोने के समान उतराता चला जा रहा हो। यदि वह यह जानकर मेरे निकट आती कि मैंने उसके देश के सबसे बड़े कवि के काव्य पर शोध किया है तो यह उसके आने की बड़ी ज़ाहिर व्याख्या होती। नहीं, यह उसने कभी नहीं जाना। वह तो मेरे पास ऐसे आ गयी थी जैसे किसी कवि के पास उसकी कविता का विषय आ जाय और वह उसके प्रति न्याय न कर सके।

नोरा पर अपने प्रवास की मैंने अन्तिम कविता लिखी। कुछ पंक्तियाँ आप सुनना चाहेंगे ?

सबसे कोमल
आयर-मधुवन की कलिका का
सबसे निर्मल
आयर-सागर के मोती का
सबसे उज्ज्वल
आयर-अम्बर के तारे का
तुम नाम अगर मुझसे पूछो,
भर आह कहूँगा मैं नोरा।

वह पोर्ट सईद में उतर गयी।

उसके बाद हमें उसका कोई समाचार न मिला।

वह हमारा पता ले गयी थी।

मुझे पता नहीं कि बावा ने कभी उसके बारे में फिर सोचा या नहीं पर मैंने सोचा।

नोरा कहाँ होगी, कैसी होगी ?

और मेरा मन भीतर से बोला है, नोरा कहीं होगी, सुखी नहीं होगी।

इतनी अन्धकारमयी, गन्दभरी और कठोर दुनिया नोरा जैसी कोमलता, निर्मलता, उज्ज्वलता को सह सकी होगी !

उसकी तो सत्ता ही प्रतिक्षण दुनिया को उसकी हीनता का बोध कराती होगी।

नोरा को अपने धरातल पर उतार लाने को दुनिया ने क्या न किया होगा !

दुनिया की खींच, घसीट, बलात्कार ने नोरा की सहज, स्वाभाविक, सुकुमार प्रसन्नता को मिटा दिया होगा।

वह निश्चय दुःखी होगी।

सुखी होती तो हमें ज़रूर लिखती।

ऐसे अपने मन का उल्लास ही बाँटते हैं, अपने मन का अवसाद-भार अकेले ढोते, अनजाने, अनसुने रास्तों पर चले जाते हैं—'दे मन का उपहार सभी को, ले चल मन का भार अकेले।'

पोर्ट सईद की याद आते ही आँखों के सामने आ जाते हैं, उसके अरबी व्यापारी, जो लम्बी-लम्बी खुली नावों में मिस्र की कला-कारीगरी का रंगा-रंग सामान प्रदर्शित करते हुए जहाज़ को घेर लेते हैं। बिना जहाज़ पर आये वे डेक पर खड़े मुसाफ़िरों से—ऊँचे से ऊँचे डेक पर खड़े—कितनी ख़रीद-फ़रोख़्त कर लेते हैं! वे लम्बी-लम्बी रस्सियाँ जहाज़ के सबसे ऊँचे डेक तक फेंकने में माहिर होते हैं। मुसाफ़िर उन्हें पकड़ लेते हैं और उन्हींके सहारे वे बड़े से बड़ा सामान ऊपर पहुँचा देते हैं और मुसाफ़िर उनका दाम नीचे। बड़ी मोलतोल-सौदेबाज़ी होती है, नये मुसाफ़िर ठगे जाते होंगे, दाम वे चौगुना-पँचगुना माँगते हैं, यात्री कितना कम करने को कहेगा! कितनी भाषाएँ वे जानते हैं, मुसाफ़िर को देखते ही वे उसकी भाषा बोलने लगते हैं। मुझे क्या लेना था, मुझे तो किसी व्यापारी ने सम्बोधित भी न किया। तजुर्बेकार अरबी व्यापारी सूरत देखते ही अन्दाज़ा लगा लेते हैं कि यह खरीदनेवाला असामी है या नहीं।

दुनिया का हूँ दुनिया का तलबगार नहीं हूँ,
बाज़ार से गुज़रा हूँ, खरीदार नहीं हूँ।

स्वेज़ नहर में जहाज़ बहुत धीमे चलता है, कहीं-कहीं नहर इतनी सँकरी है कि डेक पर से किनारे खड़े आदमियों से बातचीत हो सकती है—होती भी है। बात करनेवाले होते हैं—नहर के रक्षक, किनारे की छावनियों में पड़े फ़ौजी सिपाही। लम्बी-लम्बी अवधि तक नारी-सम्पर्क से वंचित ये सिपाही डेक पर खड़ी स्त्रियों को कितनी प्यासी नज़रों से देखते हैं! कोई-कोई प्यार-भरे शब्दों से उन्हें सम्बोधित भी करते हैं, 'फ़्लाइंग-किस' भेजते हैं। विनोद में योरोपियन स्त्रियाँ 'फ़्लाइंग-किस' से प्रत्युत्तर भी देती हैं, क्या जाता है उनका, सिपाही क्षण-भर के लिए खुश हो जाता है।

लाल सागर में प्रवेश करते ही मौसम बदल गया—गर्मी पड़ने लगी। हम अपना तकिया-चद्दर लेकर खुले डेक पर आ जाते और वहीं सोते। खुले आसमान के नीचे सोने का सुख जब से भारत छोड़ा था, सपना हो गया था। चाँद-तारे हमारी कितनी प्रतीक्षा में थे! कभी हम जहाज़ के पिछले हिस्से पर जाकर खड़े होते तो जहाज़ चलने से समुद्र पर बनती, पीछे छूटती, सफ़ेद फेन की लम्बी लीक दूर तक दिखायी देती, जैसे कोई लम्बा अज़दहा, जहाज़ को पकड़ने को चला आ रहा हो, पर पकड़ न पाता हो।

जहाज़ अदन पहुँचा कि किसी जहाज़ी कर्मचारी ने सूचित किया कि You will be received on behalf of the Government of India. यानी बन्दरगाह पर भारत सरकार की ओर से आपका स्वागत किया जायगा। सोचने लगा, मैं कौन ऐसी मुहिम मारकर आया हूँ कि भारत सरकार मेरे स्वागत को तुतुआ उठी है। अदन में भारत सरकार का कांसुलावास है यानी

Consulate ! कांसुल महोदय अपनी किश्ती लेकर सीढ़ियों के पास मौजूद थे, हो गया न स्वागत ! वे मुझे किश्ती में बिठाकर बन्दरगाह पर ले गये और उनकी वजह से बिना किसी पूछ-पछोर के मुझे बाहर जाने दिया गया। वहाँ उनकी कार खड़ी थी, अपने निवास पर ले गये, चटपटी मसालेदार आलू की तरकारी और पूरी का नाश्ता कराया। रोम-रोम उनके प्रति कृतज्ञ हो उठा। चलने लगा तो बोले, 'एक पेटी है, क्रोकरी की, उसे अगर तकलीफ़ न हो तो अपने सामान के साथ रखवा लीजिए, इलाहाबाद में फ़लाँ सज्जन को आप पहुँचा दीजियेगा, या उनको कहला दीजियेगा, वे आकर आपके यहाँ से ले जायेंगे।' पूरी तरकारी का स्वाद अभी जीभ पर से न गया था, तकलीफ कैसे होती ! पेटी रखवानी ही थी साथ। स्वागत का रहस्य खुल गया। अदन में विदेशी क्रोकरी सस्ती मिलती है, फ्री पोर्ट है, यानी चुंगी-फुंगी वहाँ नहीं लगती। कांसुल साहब अपने किसी सम्बन्धी को निहाल करना चाहते थे। यात्री-सूची से उनको मेरा पता लग गया होगा। और भारत सरकार की आड़ से उन्होंने अपना उल्लू साध लिया। उस पेटी को लेकर बम्बई में मुझे कितनी ज़हमत उठानी पड़ी।

लौटते समय अदन के बाज़ार से गुज़रा तो लगा जैसे हिन्दुस्तान के ही किसी बाज़ार से गुज़र रहा हूँ। कितने हिन्दुस्तानियों ने वहाँ अपनी दुकानें बैठा ली हैं। जहाँ सस्ते लाभ की गुंजाइश हो, वहाँ की ओर हिन्दुस्तानी व्यापारी बड़ी जल्दी लपकता है। दुनिया के किसी फ्री पोर्ट की मैं कल्पना नहीं कर सकता, जहाँ हिन्दुस्तानी व्यापारी न पहुँच गये हों। फिर ब्रिटिश भारत की प्रजा होने के नाते जहाँ-जहाँ ब्रिटेन की हकूमत हो, वहाँ जाने-बसने का उन्हें क़ानूनी अधिकार था। सोचता हूँ, ब्रिटिश सत्ता की अधीनता का सबसे अधिक लाभ हिन्दुस्तान के बनियों ने उठाया था। इसी से तो शायद एक बनिये ने उस पाप का प्रायश्चित भी कर दिया।

जून समाप्त होने को था और अरब सागर में मानसूनी हवाएँ ज़ोरों से चल रही थीं। जहाज़ खूब हचकोले खाता, और हमें समुद्री मतली का भी शिकार होना पड़ा। सारा जहाज़ ही समुद्री मतली से पीड़ित था और मैंने ऐसा सुना कि कई वक़्त खाने के हाल में कोई गया ही नहीं और बम्बई थी कि जैसे-जैसे नज़दीक आती जाती थी, वैसे-वैसे वह और दूर लगती थी।

आखिरकार दो जुलाई की शाम को हमें सूचित किया गया कि तीन को सवेरे हमारा जहाज़ बम्बई पहुँचेगा।

रात के लिए जहाज़ पर फ़ैंसी-ड्रेस-शो आयोजित किया गया था। मुझे नहीं याद है कि बावा ने या मैंने उसमें कोई खास भाग लिया था। अगर हम अपने प्रियजनों के पास पहुँच रहे थे तो हमारी समस्याएँ भी हमें घूरती नज़दीक आ रही थीं। हमारे साबर-मन्त्र का प्रभाव अपनी अवधि समाप्त कर घटने लगा था। फिर भी अपनी ज़मीन पर पाँव रखने की आतुरता तो हमारे मन में थी ही।

रात देर तक चलनेवाले खेल-तमाशे के बाद हम अपनी-अपनी कुर्सियाँ डेक पर ही डालकर लेट गये, प्रभात की पहली किरणों के साथ हम अपने देश की धरती के दर्शन करेंगे।

सुबह छह बजे से ही कुछ हिन्दुस्तानियों ने दूरबीन की सहायता से और हमने उसके अभाव में आँखों पर जोर डालकर ही भारत के समुद्री-तट की धुँधली-सी रेख देखनी शुरू कर दी। हमें लग रहा था, जैसे वह धरती के नयनों की कोर है

जिससे वह हमारी सतत प्रतीक्षा कर रही है। अपने देश की धरती नहीं, धरती माता की, माटी की, अपनी माटी की सन्तानों की प्रतीक्षा, जो कई दिनों से पानी-ही-पानी की सतह पर उतरा रही थीं।

जहाज़ 16 जून को लन्दन से रवाना हुआ था। इन 18 दिनों में कभी भी उसकी चाल इतनी धीमी प्रतीत नहीं हुई—स्वेज़ कनाल में भी नहीं···जितनी आज के तीन घण्टों में। नहा-धोकर डेक पर आया हूँ—किनारा दूर है। सामानादि ठीक-ठाक करके आया हूँ—किनारा दूर है। नाश्ता-वास्ता करके आया हूँ—किनारा दूर है। यात्रा के साथियों से विदा लेकर डेक पर आया हूँ—और किनारा अब भी दूर है। और सहसा अब किनारा निकट आने लगा है तो जल्दी-जल्दी पास, और पास आता जाता है। दिन चढ़ने लगा है, हरे-हरे पेड़ों के कहीं आगे, कहीं पीछे, कहीं उनके बीच, कहीं लाल ईंटों के, कहीं सफ़ेद चूने-पुते मकान, कहीं ऊँचे, कहीं नीचे दिखायी दे रहे हैं। और अब तो आदमी, जानवर, गाड़ियाँ, छोटी-छोटी, पर साफ़ दिखती हैं। समुद्री चिड़ियाँ जैसे जहाज़ का स्वागत करने को उसके चारों ओर मँडलाने लगी हैं और उसके साथ-साथ उड़ती उसे किनारे पर ले जा रही हैं। जहाज़ तट पर लग गया है। कितने लोग अपने मित्रों-सम्बन्धियों का स्वागत करने आये हैं, हाथों में बम्बइया फूल-पत्तियों की मोटी-भारी मालाएँ लिये, चमकीले तागों से चमकती। बम्बई उतरनेवाले यात्री डेक पर आ गये हैं। डेक पर, तट पर खड़े लोग आँखें-ही-आँखें हो रहे हैं। दोनों ओर प्रत्याशित व्यक्तियों की तलाश में आँखें एक से दूसरे चेहरे पर फिसलती तट और डेक की लम्बाइयाँ नाप-नाप आती हैं।

तेजी ने मुझे केम्ब्रिज में ही सूचित कर दिया था कि वे बम्बई नहीं आ सकेंगी, बम्बई पहुँचने पर जो पहली गाड़ी मिले, उससे मैं इलाहाबाद के लिए रवाना हो जाऊँ, उन्हें तार दूँ, वे स्टेशन पर मेरा स्वागत करेंगी। फिर भी, इस पर मुझे पूरा विश्वास नहीं हुआ था। मुझे आश्चर्याल्हादित करने को तो न उन्होंने ऐसा लिख दिया हो कि जब मैं उनकी प्रत्याशा न कर रहा हूँ, वे सहसा प्रकट हो जायें।

मेरी आँखें तट के एक छोर से दूसरे छोर तक उन्हें खोज-खोजकर थक गयीं। वे नहीं आयी थीं। यह कल्पना मेरे लिए दुखदायी थी कि शायद पैसों के अभाव ने उन्हें आने से रोका होगा। अपनी आर्थिक विवशता में इस समय वे कितनी उदास होंगी! सोच तो रही होंगी इस समय कि मेरा जहाज़ बम्बई आ गया होगा और मैं···

मुझसे कुछ दूर पर बावा खड़ा था। उसे भी इसकी कोई प्रत्याशा न थी कि उसका स्वागत करने को कोई बम्बई आयेगा। वह भी किन्हीं ख़यालों में डूबा, उदास, डेक पर खड़ा था, रेलिंग पर झुका, शून्य में घूरता, जैसे यहीं से पंजाब के किसी क़स्बे में बसे अपने परिवार के लोगों को देखने की कोशिश कर रहा हो।

मैंने उसे गुदगुदाने की सोची। उसके पास जाकर बोला, 'चलो, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ।' और उसके गले में माला पहनाने का अभिनय किया। फिर मैंने कहा, 'अब तुम इसी तरह मेरा स्वागत करो।' हम दोनों ही एक-दूसरे से गले मिलकर खूब हँसे।

इतने में देखता हूँ कि जहाज़ से तट पर उतरने के लिए पुल जोड़ दिया गया है और मंगलाबाई और शंकराबाई खेतान एक बड़ी-सी माला लिये ऊपर आ रही हैं। उन्होंने मुझे माला पहनायी, 'डा. बच्चन का स्वागत।' फिर दोनों बहनें मेरे

अगल-बगल खड़ी हो गयीं, एक फ़ोटोग्राफ़र ने हमारी तस्वीर भी ले ली। मैंने दोनों बहनों से बावा का परिचय कराया।

तटकर अधिकारियों ने सामान के बारे में मुझसे जितने सवाल पूछे, उतने तो मेरे वाइवा के परीक्षकों ने भी न पूछे होंगे। फिर भी मुझसे बिना कुछ पुजाये उन्होंने मेरा पिण्ड न छोड़ा।

हमें मंगलाजी अपने घर लिवा ले गयीं—पीरामल हाउस, वर्ली में। बावा ने 3 की शाम को ही अपने घर के लिए प्रस्थान करने का आग्रह किया। मुझे 3 को इलाहाबाद जाने देने को मंगलाजी तैयार न हुईं। उस रात उन्होंने मेरे स्वागत में अपने यहाँ एक गोष्ठी का आयोजन कर रक्खा था। बोलीं, 'आपके बम्बई के परिचित, प्रशंसक, मित्र आपसे मिलना चाहेंगे और हम आपकी नयी कविताएँ आपके मुख से सुनना चाहते हैं जो पिछले दो वर्षों से 'धर्मयुग' आदि पत्रों में निकलती रही हैं।' मैं उनकी ज़िद न टाल सका।

घर के लिए मेरी उत्सुकता देखकर मंगलाजी ने इलाहाबाद के लिए एक ट्रंक काल बुक कर दी और जल्दी ही लाइन मिल गयी। तेजी और बच्चे आश्वस्त हुए कि मैं देश पहुँच गया हूँ, मैं आश्वस्त हुआ कि वे लोग कुशल-मंगल से हैं। कुछ और बात के लिए दोनों ओर मन बहुत भारी था। मैं सिर्फ़ इतनी सूचना दे सका कि 4 को कलकत्ता मेल से चलकर 5 की शाम को इलाहाबाद पहुँच रहा हूँ।

शाम को हम लोग बावा को स्टेशन पर छोड़ने गये। पिछले दो वर्षों में केम्ब्रिज में प्राय: रोज़ मिलने, महीनों साथ रहने से हम एक-दूसरे के बहुत निकट आ गये थे। एक-दूसरे से कोई दुराव-छिपाव नहीं, एक-दूसरे को समझने के लिए दिली आपसदारी, एक-दूसरे की व्यस्तता या फ़ुरसत में, बग़ैर हस्तक्षेप किये हुए, जहाँ भी आवश्यक हो, परस्पर सहयोग। घर से दूर, परदेस में, एक-दूसरे को बड़ा सहारा थे। बावा का मुझ पर अतिरिक्त एहसान था। किफ़ायत से रहने के व्यावहारिक तरीक़ों में मुझे दीक्षित करके, उसने मेरे लिए यह सम्भव किया था कि केम्ब्रिज में दो वर्ष बग़ैर बहुत कठिनाई के रहकर मैं अपना कार्य पूरा कर सकूँ। अन्त में, अपनी किफ़ायत से बचाये हुए सौ पौण्ड से मेरी मदद कर उसने मुझे जीवन भर के लिए ऋणी बना दिया था। मैं उसका सौ पौण्ड यथासमय चुकाकर भी ऐसा अनुभव करता हूँ कि उसे सौ बार भी चुकाकर मैं उससे ऋण-मुक्त नहीं हो सकता।

हमको अब अलग होना था। और एक-दूसरे से अलग-एकाकी अपनी-अपनी मुसीबतों, मुश्किलों से निबटना था। गाड़ी छूटने में अभी देर थी, पर हम दोनों ही चुप प्लेटफ़ार्म पर खड़े थे, जैसे इस समय जो बहुत कुछ कहने को भीतर-भीतर उमड़ रहा है, उसकी भाषा चुप्पी है। हम एक-दूसरे की भावनाएँ आँखों-आँखों में समझ रहे थे। गाड़ी ने सीटी दी तो हमने एक-दूसरे के हाथों को ज़ोरों से दबाया, जैसे हमने आपस में कोई वादा किया हो। हाँ, हमने एक वादा किया था और वह वादा हम दोनों ही आज तक निभाते चले आ रहे हैं। वादा क्या था, इसे आपकी कल्पना पर छोड़ता हूँ। यह वादा मेरी बहुत बड़ी ताक़त है, और अगर आप बावा से कभी पूछें तो वह भी मेरा ख्याल है, इन्हीं शब्दों को दुहरायेगा। वह आजकल होशियारपुर में व्यवस्थित है और वहाँ के गवर्नमेण्ट कालेज में गणित (सांख्यिकी) का प्राध्यापक है।

आज का दिन मेरे मन पर बड़ा भारी था। सुबह तेजी की असफल प्रतीक्षा,

दिन को फ़ोन पर उनकी भाव-भीगी आवाज़, शाम को बाबा से विदा। मेरा जी चाहता था, किसी से न मिलूँ, न कुछ खाऊँ, न पिऊँ, दरवाज़ा भीतर से बन्द कर लूँ और बिस्तर पर जा गिरूँ। उधर मंगलाजी के मेहमान आ रहे थे, उन्होंने तीस-चालीस मित्रों-सहेलियों को खाने पर बुला लिया था, ड्राइंगरूम में बैठे लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनकी बातचीत, हँसी-ठट्ठे की आवाज़ फ़्लैट-भर में गूँज रही थी···तेजी मेरे लौटने के आख़िरी चौबीस घण्टों के मिनट-मिनट गिन रही होंगी···बाबा पंजाब मेल के डिब्बे में बैठा 'अपनी विधवा माँ और अनाथ भाई-बहन को किस हालत में पाऊँगा' की चिन्ता में डूबा होगा···

मैंने अपने से कहा, इस समय अपने में सिमटे रहना ठीक न होगा, बाहर निकलो ! मैंने सिर के एक झटके से अपना मूड बदला, स्नान किया, जैसे मुझ पर से दिन-भर का सारा गर्द-गुबार धुल रहा हो, तेज नारायण—मंगलाजी के पति-देव—से एक ढीला पाजामा और तनज़ेबी कुर्ता उधार माँगा—मँगनी के कपड़ों में केम्ब्रिज की डाक्टरेट ले आया, अब किसी अवसर पर किसी के मँगनी के कपड़े पहनने में क्या शर्म ! मंगलाजी से बोला, 'घर में कोई इत्र हो तो मुझे लगा दो।' और खुश-खुश ड्राइंग रूम में आ गया। खिड़की से देखा, दूर समुद्र ठाठें मार रहा था। समुद्र कम गम्भीर है ? पर ऊपर-ऊपर कैसा अट्टहास कर रहा है ! आज एक छोटे-से समुद्र का अभिनय तुम भी करो।

कमरे में कई टेप-रेकार्डर लगे थे। मंगलाजी ने गोष्ठी रचाई थी, मेरी नयी कविताएँ सुनवाने के लिए, और लोग हैं कि सुनना चाहते हैं 'मधुशाला', 'इस पार-उस-पार'। कहता हूँ, 'भाई, अब तो उस पार से इस पार आ गया।' लोगों का मन रखना पड़ता है। मूड को हल्का रखने के लिए एक फ़िलबदी शुरू कर देता हूँ, "अच्छा, मेरा नया 'आत्म-परिचय' सुनिये' :

मैं हूँ बच्चन जी मस्ताना,
लिखता हूँ मस्ती का गाना,
मैंने खोली है मधुशाला,
जिसमें रहती है मधुबाला,
जिसके हाथों में घट-प्याला,
मुझको निशा-निमन्त्रण आया,
मैंने गीत अकेले गाया,
('एकान्त संगीत' की ओर संकेत)
सुनकर सबका दिल घबराया,
('आकुल अन्तर' की ओर संकेत)
मुझ पर क्या रंगीनी छायी,
मैंने सतरंगिनी सजायी,

बीच की पंक्तियाँ भूल रहा हूँ, जिनमें मेरी और रचनाओं की ओर इशारा था। आख़ीर की पंक्तियाँ शायद यों थीं—

मैंने प्रणय-पत्रिका भेजी,
पढ़कर बहुत खुश हुई तेजी,
डिग्री लाया हूँ केम्ब्रिजी
मुझको कहो डाक्टर ए जी।
लेकिन नब्ज नहीं दिखलाना,
मैं हूँ बच्चनजी मस्ताना···

कमरे में हँसी के फ़ौआरे छूट गये और जैसे मैं उसी में नहा उठा।

मैंने पढ़ना बन्द किया तो लोगों ने टेप चला दिये। भवानी भाई पास बैठे थे—अनुप्रास की महिमा देखिये कि 'भवानी' के साथ 'भाई' कैसा चस्पा हुआ है—उन्होंने साहित्यिक भाषा में मेरे कान में कहा, 'भैया, यह आत्म-विदूषकत्व आपको शोभा नहीं देता, हम आपकी गणना महाकवियों में करते हैं, कुछ गम्भीर सुनायें···' मुझे नहीं मालूम था कि भवनियाँ इतना बड़ा मुहर्रमी है। मैंने कहा, 'भवानी, तुम मेरा मूड नहीं समझ रहे हो, आज मैं अपना मज़ाक नहीं बनवाऊँगा तो खिड़की से कूद जाऊँगा।'

ख़ैर, कुछ और कविताओं के बाद 'मधुशाला' हुई। नयी कविताओं तक लोगों ने आने ही नहीं दिया। मेरे काव्य-पाठ का कोई यज्ञ बिना 'मधुशाला' के शान्ति-पाठ के पूर्ण नहीं समझा जाता। लोग मेरा श्राद्ध कराके ही तृप्त हुए— 'प्राणप्रिये, यदि श्राद्ध करो तुम मेरा तो ऐसे करना···'

मेहमान विदा हुए तो हास-उल्लास की वह हल्की चादर भी खींचकर ले गये जो मैंने ऊपर से ओढ़ रखी थी। अब मैं नंगा था, अकेला, अपनी प्राकृतिक मनः-स्थिति के लिए खुला। ऐसा लगता था, जैसे तीन घण्टे जादू की दरी पर उड़ने के बाद सहसा ज़मीन पर गिर पड़ा हूँ—शरीर भारी-भारी, मन दबा-दबा, साँस घुटी-घुटी। समुद्र बहुत अशान्त था, वर्षा होने लगी थी और हवा का झोंका जब कमरे में आता था, तब सौ-सौ बूँदों से बदन को नम कर देता था। आधी रात से ऊपर हो चुकी थी। मुझे पता नहीं, किस समय उस अध-बेहोशी की अवस्था में मैं अगाध निद्रा में ढुलक गया।

तेज नारायण ने 4 को कलकत्ता मेल में, फ़र्स्ट क्लास में एक नीचे की बर्थ मेरे लिये रिज़र्व करा दी। कूपे था, ऊपर की बर्थ पर कोई आया नहीं। डिब्बे में मेरा सामान और मैं अकेला, और पिछले की याद और अगले की चिन्ता करने को कितना कुछ। पिछला तो जहाज़ की फ़ुरसत-ऊबी घड़ियों में कितनी बार किसी फ़िल्म की रील की तरह आँखों के सामने से गुज़र चुका था—12 अप्रैल 1952 को बम्बई के सांताक्रुज हवाई अड्डे से विमान द्वारा लन्दन के लिए प्रस्थान करने से लेकर 16 जून 1954 को लन्दन के टिलबरी यार्ड से जहाज़ द्वारा बम्बई के लिए रवाना होने तक—बीच में नवीन अनुभवों-संवेदनाओं, परिस्थितियों-प्रति-समाधानों, परिचयों-प्रीति सम्बन्धों, सुविधाओं-असुविधाओं, आशाओं-आशंकाओं, आकर्षणों-विकर्षणों, दुर्बलताओं-दृढ़ताओं, अवसादों-उल्लासों, और कभी-कभी दोनों से परे सुनसानों-दिवास्वप्नों, निशा-स्वगतों, और सबके ऊपर दिन-दिन स्वाध्याय, रात-रात सृजन की समाधिस्थ घड़ियों की कितनी कड़ियाँ!—जो सब की सब केम्ब्रिज युनिवर्सिटी के सेनेट हाल में पी-एच. डी. की डिग्री प्राप्त करने के अवसर से जुड़ जातीं—यह अवसर न आता तो सब न जाने कहाँ टूट-बिखर जातीं। मेरा जीवन इतना विविधतापूर्ण, इतना कार्य-व्यस्त, इतना भाव-विचार-ग्रस्त शायद ही कभी रहा हो।

अब अगले की चिन्ता बराबर सिर उठाती है—घर-परिवार को किस दशा में पाऊँगा? विश्वविद्यालय में अपनी स्थिति अब क्या रहेगी? देश में, विदेश में, मेरे सृजन का क्या मूल्य लगाया गया होगा? हिन्दी कवियों में शायद मैं पहला व्यक्ति हूँ जिसने योरोप की धरती पर पाँव रखा है, इंग्लैण्ड-आयरलैण्ड के संस्कृति-साहित्य से इतना घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित किया है, विदेश की धरती से इतनी रचनाएँ की हैं। मेरा नया ज्ञानानुभव क्या मेरी अभिव्यक्तियों को कोई नया मोड़

देगा ?···मगर सबसे पहले और सबसे अधिक तो मुझे घर की चिन्ताएँ खायेंगी। स्थिति शायद मेरी आशंका से अधिक बिगड़ चुकी है।

कल इस समय इलाहाबाद पहुँच जाऊँगा। सारी वस्तुस्थिति का सामना होने में 24 घण्टे ही तो बाकी हैं—वस्तुस्थितियाँ अपने-आप ही कुछ सोचने-करने को विवश करेंगी और मेरी सारी लब्धियाँ-उपलब्धियाँ मुझे कसौटी पर कसेंगी। बस, ये अन्तिम 24 घण्टे हैं जिनमें मैं इस कशमकश से अपने को मुक्त रख सकता हूँ। ये मेरे दो वर्ष तीन मास एक प्रकार के पलायन ही तो थे—ठीक 5 अप्रैल को इलाहाबाद से चला था, ठीक 5 जुलाई को इलाहाबाद लौट रहा हूँ। मैं अपने पलायन के 24 घण्टे और भोग लूँ।

रात कटी, प्रात आया। गाड़ी मध्यप्रदेश के किसी भाग से जा रही थी, और दिन भर स्टेशन पर स्टेशन पार करती अब सूर्यास्त के पश्चात बरसाती सन्ध्या की लाली में जमुना पुल पर धड़-धड़ करती इलाहाबाद नगर में प्रवेश कर रही थी।

दाहिनी ओर क़िला, क़िले के नीचे संगम, बायीं ओर गंगा से मिलने की आतुरता में जमुना का सवेग प्रवाह, सामने क्रिश्चियन कालेज, इसके पीछे कटघर, वहीं हमारा पुराना घर, और अब सड़क के ऊपर बना पत्थर का पुल—सड़क, दाहिनी ओर बाई के बाग़ को जाती हुई, बायीं ओर चौक को—और लो दाहिनी ओर म्योर कालेज का टावर, नज़दीक ही सेनेट हाल का टावर—घड़ी वाला—और अब सूरजकुण्ड, दाहिने बिजलीघर, पीछे कायस्थ पाठशाला, बायें चौक को जाती सड़क, घण्टाघर की एक झलक···जगह-जगह से जुड़ी स्मृतियाँ जागने भी नहीं पातीं कि गाड़ी आगे खींच ले जाती है और लो, अब प्लेटफ़ार्म आ गया है—गाड़ी रुक गयी है।

खिड़की से गर्दन निकालकर देखता हूँ। यह जो लडका उचक-उचककर डिब्बों को देखने का प्रयत्न कर रहा है, यह तो अमित है, अजित को कोई गोद में उठाये है, दोनों ने मुझे पहचान लिया है, हाथ हिलाता हूँ, और ये हैं तेजी, इनके बदन पर फूलों के गहने हैं। (क्या इसके पीछे कोई संकेत है?) साथ और दो-चार परिचित चेहरे, जिनमें एक मेरे वृद्ध मामाजी का है, एक मेरे भांजे राम का, एक-दो मेरे कटघर के पुराने मित्रों का, दो-एक मेरे पुराने विद्यार्थियों का।

अमित-अजित देखने में स्वस्थ लगते हैं, अजित को मैं गोद में उठा लेता हूँ, अमित ने मेरा सामान उतरवाना शुरू कर दिया है, गिनना, सँभालना। बारह का होने को है, समझता है—अब वह बड़ा हो गया है और ज़िम्मेदारी के काम में उसे बड़ों का हाथ बँटाना चाहिए। तेजी के स्वास्थ्य से निराश होता हूँ, क्या कर डाला है उन्होंने अपने शरीर को, गहनों के फूलों का ताज़ापन भी उसकी कुम्लाहट को नहीं छिपा सकता, शायद और ज़ाहिर कर रहा है। पर स्टेशन पर ज़्यादा कुछ पूछने का मौक़ा नहीं है। राजन को भी यहाँ देखने की प्रत्याशा कर रहा था, मालूम हुआ, उनके पिता बीमार हैं, वे कुछ दिन हुए बाँदा चले गये हैं। स्टेशन पर जो लोग मिलने आये थे, उनसे स्टेशन पर ही बिदा ले ली।

कुछ सामान ताँगे, कुछ मोटर में डाल हम लोग घर आये, 17, क्लाइव रोड, ललिताश्रम—बहुत बड़ा मकान, चार हिस्सों में किराये पर उठा। फाटक में घुसते ही मैंने मज़ाक़ किया—'जान बची लाखों पाये, घर के बुद्धू घर को आये।'

घर प्रायः वैसा ही, जैसा छोड़कर गया था, तेजी ने, जब हम इस घर में आये थे,

मेरे अध्ययन-कक्ष के सामने एक लता-मण्डप बनवाया था, जिस पर दो तरह की बेलें चढ़वायी थीं—दोनों के फूल नीले, गिलास-नुमा, पर एक दिन को फूलती, रात में उसके फूल बन्द हो जाते, दूसरी रात को फूलती, दिन में उसके फूल बन्द हो जाते। तेजी ने कभी सोचा भी न होगा कि ईट्स इन एक-दूसरे से उलटी जाती लताओं को बहुत पसन्द करते। रातवाली बेल के फूल इस समय गहगहाकर फूले हुए थे।

सामने का लान वैसा ही हरा था। उसके पार बेलों की ऊँची बाड़ के पास, सीमेंट का गोल तालाब, पानी भरा, पर वे नीले, सफेद, लाल कमल उसमें नहीं, जो मैंने कभी लगाये थे,

कौन श्यामल, श्वेत औ रतनार नीरज—
के निकुञ्जों ने तुझे भरमा लिया है ?

बग़ल के हिस्से में गुलाब के पौधे कुछ और बढ़ गये थे। पीछे नींबू के पेड़ों की क़तार वैसी ही खड़ी थी, लान के उधर केलों की गाछ भी। रसोई के सामने कुछ साग-सब्ज़ी लगायी जाती थी, अभी नहीं लगी।

तेजी अपनी नयी महराजिन का परिचय देती हैं, 'खाना बहुत अच्छा बनाती है।'

महराजिन टुप से बोल देती है, 'जब सरकार, सामानौ अच्छा होय।' (मतलब ?)

सबने साथ बैठकर खाना खाया। शुक्र है, यह दिन भी आया।

अमित-अजित का कौतूहल पल-पल बढ़ रहा था जानने को कि इंग्लैण्ड से क्या चीज उनके लिए आयी है।

वे अपना-अपना उपहार सिरहाने रखकर सो गये। रात ज़्यादा हो चुकी थी।

सब कुछ अपने चारों ओर प्रायः वैसा ही पाकर भी, जैसा छोड़कर मैं गया था, मुझे लग रहा था कि जैसे इस सबके पीछे कुछ ख़ाली-ख़ाली, खोखला-खोखला है, जैसे दीमक कभी-कभी किताबों में इस भाँति लगती है कि बाहर से तो वे जैसी की तैसी दिखती हैं, पर भीतर से उन्हें वे सफ़ाचट कर चुकी होती हैं।

तेजी मेरे साथ एकान्त पाने को बेताब हो रही थीं। और जब घर की सब बत्तियाँ बुझा दी गयीं, तब वे उस अँधेरी बरसाती रात के सन्नाटे में एक छिन्न लता की भाँति निराधार-निःसहाय मेरे ऊपर गिर पड़ीं। उनकी साँसें ऐसे चल रही थीं जैसे कोई थककर टूटा, त्यक्ताश तैराक अपनी समाप्तप्राय शक्ति के अन्तिम प्रयत्नों से किनारे को किसी तरह पकड़ हाँफ रहा हो।

कितनी देर बाद वह कुछ कहने की स्थिति में हुईं, मुझे कुछ पता नहीं, और जब बातें शुरू हुईं तो रात खतम हो गयी, बातें खत्म नहीं हुईं। मैं तो समझता था कि दिनानुदिन मिलनेवाले उनके पत्रों से मैं यहाँ के तियाँ-तियाँ समाचार से भिज्ञ हूँ, पर जो मुझे बताया गया था, जो मैंने जाना या अनुमाना था, वह तो बहुत सतही था, और अब जो यहाँ के हालात की असली शक्ल मेरे सामने नुमायाँ हो रही थी, उसे देखकर आश्चर्य मुझे इस बात पर था कि मेरे बाल सहसा सफ़ेद क्यों नहीं हो गये और मेरे पाँवों के नीचे से धरती खिसक क्यों नहीं गयी!

और अगर यह पाँवों के नीचे से धरती खिसकानेवाली बात नहीं थी तो और क्या हो सकती थी

कि तेजी का आखिरी ज़ेवर बेचा जा चुका था,

कि बैंक से आख़िरी पैसा निकाला जा चुका था,

कि घर का आख़िरी दाना पकाया जा चुका था !

और दूसरे दिन का राशन उस पाँच पौंड में से आया था जिनको मैंने जहाज़ पर 75/—रुपयों में बदलवा लिया था।

युनिवर्सिटी से जो मैं 27 महीने अध्ययन-अवकाश पर था, उनमें से केवल 10 महीने की छुट्टी मुझे सवेतन मिली थी।

मेरे दो प्रकाशकों में से एक ने दो वर्षों में रायल्टी के हिसाब में कानी कौड़ी न दी थी, और दूसरे ने 'सोपान' की अग्रिम रायल्टी के रूप में 3000/—क्या दिये थे, मानो उन्होंने मेरी सारी किताबों का कापीराइट ही ख़रीद लिया था, यानी उन्होंने भी वार्षिक रायल्टी का हिसाब देना बन्द कर दिया था।

रेडियो, कवि-सम्मेलनों से होनेवाली आमदनी की मेरे प्रवास में होने के कारण कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

ले-दे के आते थे कुछ पैसे तो पारिश्रमिक के रूप में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं से, जिनमें छपने को अपनी कविताएँ मैं विदेश से भी भेजता रहता था—ऊँट के मुँह में ज़ीरा !

भारतीय नारी आभूषणों को बड़े चाव से बनवाती, पहनती और प्राण-पण से उनकी रक्षा करती है, पर जब उसके या उसके परिवार के मान, मर्यादा का सवाल उठता है तो वह उतने ही विरक्त भाव से उन्हें अपने बदन से उतारकर अलग कर देती है। हमारे परदादा नायब साहब के बाद, दुर्भाग्यवश, हमारे परिवार की कोई पीढ़ी ऐसी न गयी जिसके मान, मर्यादा को किसी-न-किसी अ थिक संकट ने चुनौती न दी हो। और इन चुनौतियों का सामना कर मेरी दादी, मेरी माँ, मेरी पूर्व पत्नी श्यामा ने खान्दान की इज़्ज़त बचायी थी। तेजी ने वही परम्परा निभायी।

जब मेरे एक मित्र ने मेरे बारे में झूठी अफ़वाहें सरकार के कानों में भरकर उससे मिलनेवाली सहायता से मुझे वंचित करा दिया, तब तेजी ने सरकार को भी चुनौती दी : 'मेरा पति, सिर्फ़ तेरे कुछ चाँदी के टुकड़ों के भरोसे केम्ब्रिज से डाक्टरेट करने नहीं गया। वह तेरी सहायता के बग़ैर भी अपना लक्ष्य पूरा करके आयेगा।'

और इसी ज़िद पर, जब एक दूसरे 'सज्जन' ने उनकी इज़्ज़त-अस्मत को चुनौती देकर ऐसी स्थिति खड़ी कर दी कि मैं अपने काम को अधूरा छोड़कर देश लौट आऊँ, तब केवल अपने बल-बूते उनका सामना करने का निर्णय लेकर उन्होंने मुझे शपथ दिलायी कि मैं अपना काम पूरा किये बग़ैर देश न लौटूँ। मैं आ ही जाता तो शायद वे कई वित्तीय साँकरों से बच जातीं। पर वे उन गुमनाम नपुंसकों को, जो उनकी बेबुनियाद बदनामी से शहर को ध्वनित-प्रध्वनित कर रहे थे, और हाथ की मैल जैसी चीज़ रुपये-पैसों को—मेरे मार्ग का रोड़ा बनने का श्रेय भी न देना चाहती थीं।

मेरी योग्यता-क्षमता, मेरे श्रम-संघर्ष, और अन्त में मेरी सफलता में उनका कितना दृढ़ विश्वास होगा कि उसके लिए उन्होंने अपना सबकुछ दाँव पर लगा दिया था,

> **औ' अडिग विश्वास का है श्वास चलता**
> **पूछता-सा, डोलता तिनका नहीं है···**
> **प्राण की बाज़ी लगाकर खेलता है**
> **जो कभी क्या हारता वह भी जुआ है ?**

और

प्राण लगे हों बाज़ी पर तो पाँसे कब दो फेंके जाते ?

और तेजी को अपने बल-बूते का भी कितना विश्वास था और उसकी कैसी कठिन परीक्षा हुई !

बेटों की सौगन्ध दिलाकर मुझे उन्होंने यह घटना बतायी कि मैं सम्बद्ध व्यक्ति के प्रति किसी प्रकार का क्रोध-विरोध कभी न प्रकट करूँगा, सुनूँगा और भुला दूँगा। बात ख़त्म हो चुकी है सदा को।

घटना मैं भूल नहीं सका।—

पिछली दिसम्बर में राजन के पिता सख्त बीमार हो गये, उन्हें राजन को कुछ दिनों के लिए अपने पास बुलाना पड़ा। 'राक्षस' को उसका पता लग गया। वह इस घर की हर बात का अता-पता रखता था।

एक शाम वह अपनी मोटर में अकेला अचानक आ गया और तेजी से साथ चलने को कहा, और जब उनकी ओर से इन्कार हुआ तो उसने ज़बरदस्ती उन्हें मोटर में बिठाल लिया। तेजी ने भी बहुत विरोध न किया—आज यह भी देख लूँ कि यह किस बात पर उतारू हैं ? घर पर वे कोई नाटकीय स्थिति न घटने देना चाहती थीं।

वह साठ-सत्तर मील की रफ़्तार से मोटर चलाता उन्हें द्रौपदी घाट के निकट में ले गया :

तुमने मेरे पुरुषत्व का तिरस्कार किया,
मेरे घर में मुझे बदनाम किया,
आज तुम्हें आख़िरी फ़ैसला करना है।

उसने अपनी पिस्तौल निकाल ली :

आज के तुम्हारे इन्कार के अर्थ होंगे कि मैं तुम्हें भी खत्म कर दूँगा और ख़ुद को भी। तुम्हें क्या कहना है ?

सीता तैं मम कृत अपमाना
कटिहँउ तव सिर कठिन कृपाना
नाहिं त सपदि मानु मम बानी
सुमुखि होति न त जीवन हानी।

सब राक्षस एक ही प्रकार की भाषा बोलते हैं।

तेजी एक कगार के सहारे खड़ी हो गयीं।

'मुझे जो कहना था, एक बार कह चुकी।
मुझे न उसे दुहराना है, न बदलना है।
तुम चलाओ गोली। अगर मेरे बच्चों और बच्चन के भाग्य में यही देखना बदा है···मेरा भाग्य तो अब समाप्त होता है।'

और राक्षस ने गोली चला दी।

तेजी निश्चल खड़ी रहीं।

निशाना उसने अलग लिया। मारना वह चाहता भी नहीं था। प्राणों की धमकी से जो सम्भव हो सकता था, उसके लिए भी प्रयत्न एक बार कर लेना चाहता था।

उसने अपनी पिस्तौल हाथ से गिरा दी।

और अपना सिर लटका लिया।

वह पूरी तरह परास्त हो चुका था।

तेजी जाड़े की कुहरा-उतारती सन्ध्या में सधे और दृढ़ क़दमों से चलती, लाल कुरती आयीं और वहाँ एक रिक्शे को खाली पाकर उसमें बैठ घर वापस आ गयीं, इतनी अविचल-शान्त जैसे सिविल लाइन से शापिंग करके लौटी हों। प्राणों का सौदा तो करके आयी ही थीं।

तेजी कह रही थीं—

'देखो, अब मुझे कभी अकेली मत छोड़ना।

मैंने देख लिया है कि इस समाज में अकेली नारी कितनी असमर्थ, कितनी असहाय, कितनी दयनीय है!'

तेजी ने यह घटना मुझे केम्ब्रिज में लिख भेजी होती तो?

तेजी ने मुझे बेटों की सौगन्ध न दिलायी होती तो?

मैंने केम्ब्रिज की डाक्टरेट लेने के लिए कितना बड़ा खतरा उठाया था! कितनी भारी क़ीमत अदा की थी!

बे दिये क़ीमत यहाँ वरदान कोई
मुफ़्त में पाता कहाँ है?

पर वरदान डाक्टरेट नहीं थी।

वह तो बड़ी नगण्य वस्तु थी।

वरदान था, दोनों को मिला, अपनी-अपनी कसौटी पर खरा उतरा आत्म-विश्वास, जो मनुष्य की सबसे बड़ी निधि है, और एक-दूसरे के प्रति विश्वास, जो मनुष्य द्वारा मनुष्य को सौंपी सबसे बड़ी धरोहर है।

सुबह होने को थी पर न तेजी की आँखों में नींद थी, न मेरी आँखों में—'न तुम सो रही हो, न मैं सो रहा हूँ मगर यामिनी बीच में ढल रही है'—उस रात तो एक उम्र ही जैसे ढल गयी थी। मैं तो दिन में ट्रेन में सो लिया था, और तेजी ने रातों को जागने की आदत डाल ली थी। जब से उनको बच्चों को ग़ायब करा देने की धमकी से भरे गुमनाम पत्र आये थे, तब से वे दिन को थोड़ा-बहुत सो लेतीं और रात-रात जागती रहतीं, सिरहाने एक बिजली का लैम्प जलता रहता और वे कोई उपन्यास पढ़ती रात काट देतीं, अपने बच्चों पर पहरा भी देतीं—इलाहाबाद में तो छह महीने हम बाहर खुले में या बरामदे में सोते थे—किसी चौकन्नी शेरनी के समान। वे कहीं भी कमज़ोर हों, उनके बच्चों पर कोई आँख उठाये तो वे सिंहनी बनकर उस पर टूटेंगी। महीनों दिन-सोने, रात-जागने के विपर्यय की थकान और तनाव उनके शरीर पर भी था, मनोशिराओं पर भी। उनका स्वास्थ्य बस टूटने-टूटने को हो रहा था।

और तेजी को परेशान करने में बाहर के बदमाशों ने जो कोर-कसर छोड़ी थी, वह साथ के किरायेदारों ने पूरी कर दी थी, विशेषकर उन्होंने जो हमारे हिस्से के ठीक ऊपर के हिस्से में रहते थे—पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसी बड़े ज़मींदार के साहबज़ादे, जो कई सालों से युनिवर्सिटी में लॉ पढ़ रहे थे। किसी साल हाज़िरी पूरी न होने से उन्हें इम्तहान में बैठने की इजाज़त न मिलती, किसी साल वे खुद ही ड्राप कर जाते और किसी साल बेफ़िकरी से फ़ेल हो जाते, और इस प्रकार अपनी पढ़ाई को शहर में रहने का एक बहाना बनाये रहते। वे और उनके गँवर

भुच्च नौकर अपनी देहकानी हरकतों से हमें हर समय परेशान रखते थे। फिर भी मेरे युनिवर्सिटी में होने के कारण उनकी अचगरी कहीं एक सीमा मानती। मेरी अनुपस्थिति में उन्होंने तेजी को अपनी वहशियाना आदतों से बहुत हलाकान किया। आदमी ऐसी छोटी-छोटी, गो दिमाग़ को उलझन में डालनेवाली, झंझट-बखेड़ा खड़ा करनेवाली, सुरुचि पर आघात करनेवाली और शान्तिकामी, क्रमबद्ध जीवन में ख़लल पहुँचानेवाली बातों के लिए थाना-कचहरी तो नहीं दौड़ता। पंजाबी में एक कहावत है, घर और कबर अकेली ही भली।

तेजी तो, जिसे कहते हैं, एकदम नर्वस ब्रेकडाउन की हालत में थीं। उन्होंने अपने ऊपर बहुत भार ले लिया था, और इसके लिए अपराधी मैं कम नहीं था। उस भार का दबाव अब अपनी सीमा पार कर चुका था और आवश्यकता इस बात की थी कि तुरन्त उनके भार को हल्का कर उन्हें कुछ राहत, आराम, विश्रान्ति दी जाय। अन्यथा किसी अनिष्ट के लिए मुझे तैयार होना पड़ेगा।

नर्वस ब्रेकडाउन की हालत तो मेरी न थी, पर पिछले दो वर्षों में जो श्रम मैंने किया था और जिन शारीरिक और मानसिक तनावों में होकर निकला था, उनसे मैं कम थका-टूटा नहीं था। और घर लौटकर जो मैंने देखा और पाया था, उससे अगर मैं न टूटा होता तो भी टूट जाना था। और मेरी सबसे बड़ी व्यथा तो यह थी कि अपनी सब प्रकार की थकन-टूटन में जिसका मुझे सबसे अधिक सहारा था, वह स्वयं टूट रहा था।

ऐसे समय मेरा ध्यान किपलिंग की प्रसिद्ध कविता If की ओर गया और उससे मैंने बड़ा बल संचय किया। पढ़ तो उसे मैंने बहुत पहले रक्खा था, पर शायद उसे समझने का उपयुक्त अवसर अब आया था, उससे प्रेरित होने का और उस पर चलने का भी। अब उसे पढ़ता तो मुझे ऐसा लगता जैसे वह मेरी ही सारी परि-स्थितियों को ध्यान में रखकर लिखी गयी हो। बड़ी कविताएँ अपने को पूरी तरह व्यक्त करने के लिए जीवन के गहन अनुभवों की प्रतीक्षा करती रहती हैं।

उसका एक भावानुवाद देना चाहूँगा, शायद वह मेरी जैसी स्थिति में पड़े किसी और को कभी बल दे—

"अगर तुम अपना दिमाग ठीक रख सकते हो, जब कि तुम्हारे चारों ओर सबके बे-ठीक हो रहे हों, और दोषी इसके लिए वे तुम्हें ठहरा रहे हों,

अगर तुम अपने ऊपर विश्वास रख सकते हो, जब कि सब लोग तुम पर सन्देह कर रहे हों, पर साथ ही उनके सन्देह की अवज्ञा भी तुम न कर रहे हो।

अगर तुम नीके दिनों की प्रतीक्षा कर सकते हो, और प्रतीक्षा करते-करते ऊबते न हो,

या जब सब लोग तुम्हें धोखा दे रहे हों, पर तुम किसी को धोखा न देते हो,

या जब सब लोग तुम्हें घृणा कर रहे हों, पर तुम किसी को घृणा न करते हो, साथ ही न तुम्हें भले होने का अभिमान हो, न बुद्धिमान होने का,

अगर तुम सपने देख सकते हो पर सपनों को अपने पर हावी न होने दो, अगर तुम विचार कर सकते हो पर विचारों में डूबे रहने को ही अपना लक्ष्य न बना बैठे हो,

अगर तुम विजय और पराजय दोनों का स्वागत कर सकते हो, और दोनों में से कोई तुम्हारा सन्तुलन न बिगाड़ सकता हो,

अगर तुम अपने शब्दों को सुनना, मूर्खों द्वारा तोड़े-मरोड़े जाने पर भी, बर्दाश्त कर सकते हो, और उनके कपट-जाल में नहीं फँसते हो,

या उन चीज़ों को ध्वस्त होते देखते हो, जिनको बनाने में तुमने अपना सारा जीवन लगा दिया था, और अपने थके हाथों से उन्हें फिर से बनाने को उद्यत होते हो,

अगर तुम अपनी सारी उपलब्धियों का एक अम्बार खड़ा कर उसे एक दाँव पर लगाने का खतरा उठा सकते हो—हार होय कै जीत,

और सब कुछ गँवा देने पर अपनी हानि के विषय में एक शब्द भी मुँह से न निकालते हुए, उसे कण-कण पुन: प्राप्त करने के लिए सन्नद्ध हो जाते हो,

अगर तुम अपने दिल, अपने दिमाग़ और अपने पुट्ठों को फिर भी कर्म-नियोजित होने को बाध्य कर सकते हो जब कि वे पूरी तरह थक-टूट चुके हों, जब कि तुम्हारे अन्दर कुछ भी साबित न बचा हो सिवा तुम्हारे इच्छा-बल के, जो उनसे कह सके, तुम्हें पीछे नहीं हटना है,

अगर तुम भीड़ में घूम-फिर सको मगर अपने गुणों को भीड़ में न खो जाने दो, और सम्राटों के साथ उठो-बैठो मगर जन-साधारण का सम्पर्क न छोड़ो,

अगर तुम्हें प्रेम करनेवाले मित्र और घृणा करनेवाले शत्रु, दोनों ही तुम्हें चोट न पहुँचा सकते हों,

अगर तुम सब लोगों का लिहाज़ रक्खो, लेकिन एक सीमा के बाहर किसी का भी नहीं,

अगर तुम क्षमाहीन काल के एक-एक पल का हिसाब दे सको,

तो यह सारी पृथ्वी तुम्हारी है और हर एक वस्तु जो इस पर है; साथ ही, वत्स, तुम सच्चे अर्थों में इन्सान कहे जाओगे,

जो उससे भी बड़ी उपलब्धि है।"

मैंने अपने चारों ओर की स्थिति का जायज़ा लिया तो मैंने अपना कर्तव्य साफ़ देखा—अपने लिए अगले कई वर्षों तक केवल श्रम-संघर्ष का जीवन। एक युग के श्रम-संघर्ष के परिणाम पर जो खुशी होनी थी, वह केम्ब्रिज में ही हो ली। अब फिर श्रम-संघर्ष का दूसरा युग आरम्भ हो रहा था।

हलाहल के दो युग के बीच
एक मदिरा की कल्पित रेख।

हलाहल के दूसरे युग में केवल एकाकी इन्सान की गरिमा के बल पर शायद ही मैं प्रविष्ट हो सकता जिसकी प्रत्याशा और माँग किपलिंग अपनी कविता में करते हैं। मेरे सामने मेरी पत्नी थी, मेरे बच्चे थे—देखने में स्वस्थ,—इसके लिए शाबाशी तेजी को मिलनी चाहिए—पढ़ने लिखने में तेज़—वे हर साल परीक्षा में अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होते रहे और स्कूल से उनकी रिपोर्टें बड़ी अच्छी आती रहीं—मन से प्रसन्न, निश्चिन्त, निर्द्वन्द्व—उनकी छोटी-छोटी बातों में उनके होनहार होने के संकेत, मेरे लिए वे भविष्य की आशा, उज्ज्वलता और विश्वास के प्रतीक थे, और श्रान्त-क्लान्त होने पर भी श्रम-संघर्ष करने की प्रेरणाएँ। जब कोई हो, जिसके लिए मनुष्य जी सके, तभी जीवन का कुछ अर्थ होता है, कठिन होने पर भी वह सरल, सुखद लगता है। केवल अपने लिए जीना, जीने के लिए जीना, नरक भोगने से कुछ कम नहीं। मैं एक समय यह नरक भोग चुका था। तभी तो

पूछा था,

किसके लिए ? किसके लिए ?

और मेरा प्रश्न निरुत्तर प्रश्न बनकर मेरे चारों ओर ध्वनित-प्रतिध्वनित होता रहा था। अब मैं अपने प्रश्न का उत्तर अपने सामने मूर्तिमान देख रहा था। इन आँखों का स्वप्न, इन कण्ठों का मुक्त हास, इन हाथों की महत्त्वाकांक्षा, इन पाँवों की अबाध प्रगति, इन कलियों का विकास, निश्चय ही मेरे अश्रु, स्वेद, रक्त का योग्य अधिकारी है। मैंने फिर अपनी कमर कसी और खुशी से, उत्साह से।

मैंने तेजी के घावों को सहलाया। जो बीत गयी सो बात गयी। जो हो गया सो हो गया। हम दोनों ही एक कठिन परीक्षा से निकले हैं, और 'असफल' हमारे शत्रु भी हमें नहीं कह सकते, उसके लिए मुसीबतें हमें चाहे जितनी उठानी पड़ी हों। आओ, हम एक-दूसरे को बधाई दें, हमें बधाई देनेवाले बहुत नहीं हैं—जो हैं, उनमें भी अधिकतर औपचारिकता निभानेवाले, धन्यवाद भी दें—पति-पत्नी में भी थोड़ी औपचारिकता, थोड़ा शिष्टाचार शोभन होता है—तुमने जो साहस दिखाया, सहयोग दिया, उसी से मेरा यज्ञ पूरा हुआ। लोगों ने तो दूसरी ही भविष्यवाणियाँ कर रखी थीं। शुक्र है कि वे सच नहीं हुईं—आज वे ईर्ष्या-लज्जित हैं और मैं विजेता की भाँति घर लौटा हूँ—घर जो मेरी अनुपस्थिति में बहुतों की अशुभ प्रत्याशा और कुछ के हैवानी-शैतानी प्रयत्नों के बावजूद उजड़ा नहीं। ज़रा कल्पना करो, यदि यह यज्ञ विध्वस्त हो जाता—इसकी भी सम्भावना कम नहीं थी—तो आज हम कहाँ होते, लोग हमें क्या-क्या न कहते ! हमें छोड़ो, हमारे बच्चे भी कितनी हीन भावना के शिकार होते, और हमारा भविष्य कितना अनिश्चित होता ! क़ीमत तो हर उपलब्धि की चुकानी पड़ती है। ज्ञान किसी भी क़ीमत पर सस्ता ही माना गया है—यहाँ मैं अपनी काग़ज़ी डिग्री की बात मात्र नहीं सोच रहा हूँ। हम सबने—तुमने, मैंने, बच्चों ने उस अनुभव से कुछ पाया है। हर बात का परिणाम जल्दी सामने नहीं आता। मेरे बहुत से विश्वास टूट चुके हैं, फिर भी मैं आज भी ऐसा मानता हूँ कि तप का परिणाम अच्छे के सिवा दूसरा हो नहीं सकता—और यह तब भी होता जब उसका कोई प्रत्यक्ष रूप सामने न आता—मेरा मतलब है, अगर किसी कारण मुझे डाक्टरेट न मिलती—गो अच्छे का रूप पहचानने में हमसे भूल हो सकती है, विलम्ब भी हो सकता है। आज हम जिस जगह हैं, उससे असन्तुष्ट होने का मैं कोई कारण नहीं देखता। एक बार मैं शून्य पर भी सीढ़ी खड़ी करने का साहस रखता हूँ। हम ऐसे आधारहीन नहीं। फिर हमें ऊपर खींचनेवाले दो तारे हैं, उनको तारों के ही रूप में मैं केम्ब्रिज से देखा करता था—किसी कविता में इसका संकेत है, तुम्हें भेजी थी,

आँख जो ऊपर उठायी तो सितारे
दो रहे थे कर इशारे,
और तब से आज तक चलता रहा हूँ
एक उनके ही सहारे।

कल तक तुमने कुछ भी सोचा हो, सहा हो, पर आज तो मैं आ गया हूँ, और मेरा आना ऐसा कुछ बेमानी तो नहीं है। मैं सबकुछ सँभाल लूंगा, तुम कुछ समय के लिए अपने को एकदम ढीला छोड़ दो, तन को भी विश्राम दो, मन को भी, दिल को भी, दिमाग़ को भी। घर का प्रबन्ध भी मेरे हाथों में छोड़ दो, नौकरों को भी, बच्चों को भी, मोटर को भी—देखो, मैं कितनी किफ़ायत से घर चलाता हूँ।

तुमसे हाथ नहीं खिंच सकेगा, मैं ज़्यादा बढ़ाऊँगा ही नहीं, हमें कुछ बचाना भी पड़ेगा, सबसे पहले बच्चों की शिक्षावाली राशि पूरी करनी है---पाई-पाई---इसके बिना मुझे चैन नहीं, फिर तुम्हारे बदन पर तुम्हारे गहने वापस लाने हैं---इन सबके ऊपर कुछ जोड़ना-बटोरना भी होगा, कभी किसी आपाती स्थिति के लिए, जो जीवन में अक्सर अचानक उठ खड़ी होती है---किसी अघटित-घटित में हमारे बच्चों के पाँवों के नीचे धरातल इतना अस्थिर-अनिश्चित न रहे कि वे अपने को असहाय पायें। अपने दो बेटों, एक भतीजे को विकास के पथ पर हमें लगा देना है। लक्ष्य प्राप्त हो, न हो, लक्ष्य पर पहुँचना अपने ही हाथों में नहीं होता, पर लक्ष्य बनाकर ही चला जाता है। यह कम सौभाग्य की बात नहीं है कि हमारे सामने लक्ष्य है। वह आकर्षक है---प्रेरक भी। जब तक मैं अपनी पूरी शक्ति, सामर्थ्य नहीं लगा देता, तब तक मैं दैव, नक्षत्र, नियति को दोष नहीं देता। अव्यवस्था को व्यवस्था देना ही कला है। कलाकार तुम भी हो, मैं भी हूँ। आज अव्यवस्था ने हमें चुनौती दी है। मैं अपने कलाकार का सबसे बड़ा और पहला क्षेत्र जीवन मानता हूँ। शब्दों के क्षेत्र में सफल होकर जीवन में असफल हो जाऊँ तो मैं अपने कलाकार को असफल ही मानूँगा। कलाकार की सफलता बाहर से ही देखने की चीज़ नहीं है। सफल हूँगा तो उसका संकेत मेरे मन की 'हारमनी' देगी, शान्ति देगी। अभी मैं विक्षुब्ध हूँ। पर 'हारमनी' लाने-पाने की खोज मेरी आज से ही शुरू होगी···अभी से···

सुबह मैंने यात्रा में साथ लाये पैसे से राशन तो मँगा दिया था, पर जब-जब मुझे यह ख्याल आता था कि अगर मुझे दो-चार दिन की देर हो जाती तो? तब मेरी ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की साँस नीचे ही रह जाती थी।

मुझे याद आता, ईट्स की प्रेयसी माडगान ने कहीं लिखा था कि जब स्वाधीनता-संग्राम के दरमियान आयरलैण्ड में अकाल पड़ा तो आयरी किसान अपनी दीनता प्रदर्शित करने को बाहर न निकले, उन्होंने अपने दरवाज़ों पर कीलें मार दीं और मुँह में कपड़ा भरकर बिस्तरों में जाकर लेट गये।

तेजी में इतना स्वाभिमान है, इतनी आन है---सोडी सिक्खों के परिवार में पैदा होने के कारण कुछ प्रबल संस्कार तो वे लायी ही हैं---कि किसी के सामने हाथ फैलाने की नौबत आने पर कुछ उसी प्रकार का उग्र निर्णय लेने को वे तैयार हो जातीं···

नियति के किसी क्षेमकर विधान से मैं ठीक उसी दिन आ गया था जिस दिन मुझे आना था।

और मेरे आने के साथ ही, इलाहाबादी कायरों की धमकी-भरी बन्दे-खुदाई चिट्ठियाँ और अश्लील लांछनों से पूर्ण गुमनामी पत्र ग़ायब हो गये थे।

कहाँ चले गये थे वे सब गोबरी गुण्डे और सींकिया सूरमा जो महीनों से टट्टी की आड़ में खड़े हुए अपने क़लम भाँजा करते थे?

और कहाँ चले गये थे वे इलाहाबादी कौए और गीदड़ जो तेजी के, राजन के और मेरे बारे में कुछ सुनी, कुछ गढ़ी अफ़वाहों और कुछ कुरुचिवश, कुछ ईर्ष्या-द्वेष के कारण, कुछ बिल्कुल अकारण हम पर मढ़े आरोपों को शहर की गली-सड़कों पर, चाय-काफ़ीखानों में, पान-बीड़ी की दूकानों पर, और अपनी गप्प-गपोड़ी-गोष्ठियों में कोंकोआते और हुहुआते फिरते थे?

क्यों यह शहर का शहर हमारा दुश्मन हो गया था?

हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता थी कि तुरन्त कहीं से कुछ पैसे मिलें।

10 जुलाई को युनिवर्सिटी खुल गयी। और क़ायदे से मुझे दो महीने की गर्मी की छुट्टियों की तनख्वाह के रूप में 1000/—मिल गये। मुझे खेद के साथ लिखना पड़ता है कि इलाहाबाद युनिवर्सिटी में भी मेरे प्रति यदि विरोध का नहीं तो असहानुभूति और उपेक्षा का वातावरण था। स्वयं मेरे विभागाध्यक्ष यह नहीं चाहते थे कि गर्मियों की छुट्टी की तनख्वाह मुझे मिले, इसे वे उस व्यक्ति को दिलाना चाहते थे, जिसने मेरी अनुपस्थिति में अस्थायी रूप से काम किया था। यह बड़ी आसानी से हो जाता अगर मैं उसी दिन युनिवर्सिटी न ज्वाइन करता, जिस दिन युनिवर्सिटी खुली थी। केम्ब्रिज छोड़ने के पहले विभागाध्यक्ष ने जो पत्र मुझे लिखा था—वह पत्र अभी तक मेरे पास रक्खा है—उसमें चार स्थानों पर लिखा था कि युनिवर्सिटी 13 जुलाई को खुल रही है, कि किसी तरह यदि मैं 10 को न पहुँचूं तो उनकी मंशा पूरी हो जाय। उन्होंने पहले भी जो किया था और आगे भी जो किया, उससे ऐसा भोलाभाला षड्यन्त्र उनसे वईद न था।

उस वर्ष अंग्रेज़ी विभाग में एक अतिरिक्त रीडर की नियुक्ति होनेवाली थी। मुझे इलाहाबाद लौटने पर पता चला था कि वह पद मेरे वापस आने के पूर्व दफ्तरी वरिष्ठता के आधार पर भर दिया गया था। जब वाइस चांसलर, विभागाध्यक्ष, पदार्थी (पद+अर्थी) एक ही जाति के हों, तब परम्परागत वरिष्ठता की आड़ लेकर भाई-भतीजावादी मनोवृत्ति को सन्तुष्ट कर लेना कितना आसान हो सकता था! क्या रीडर की नियुक्ति में जल्दबाज़ी इसलिए नहीं की गयी थी कि केम्ब्रिज से डिग्री लेकर वापस आने पर निश्चय मैं उनका एक सबल प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध हूँगा? और क्या कभी-कभी वरिष्ठता की परम्परा के अपवाद के उदाहरण भी युनिवर्सिटी के इतिहास में नहीं मौजूद थे?

इतना ही नहीं, वे आगे भी पदोन्नति के 'क्यू' में लगे लोगों के हित में, जिनमें उनका अपना सगा भाई भी था, मेरा युनिवर्सिटी में रहना ठीक समझते थे। वे मेरी बड़ी प्रशंसा करते, 'तुम इतनी बड़ी युनिवर्सिटी से इतनी बड़ी डिग्री लाये हो, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी से डाक्टरेट लेनेवाले तुम दूसरे भारतीय हो, पर कितनी बड़ी विडम्बना है कि यहाँ वरिष्ठता की परम्परा चलती है, और हम तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं कर सकते।' (दुर्भाग्यवश, वे स्वयं वरिष्ठता की परम्परा से ही अपनी कुर्सी पर बैठे थे और चाहते थे ऐसा दुर्भाग्य सबके भाग्य में आये।) वे मेरे सामने सुझाव रखते, 'अगर किसी युनिवर्सिटी में विभागाध्यक्ष की जगह खाली हो तो तुम्हें फ़ौरन मिल सकती है।' इसके लिए वे पूरी तरह मेरी सिफ़ारिश करने को भी तैयार थे। शायद उन्हें नहीं मालूम था कि केम्ब्रिज की डिग्री अपने आप में इतनी बड़ी है कि वह किसी की सिफ़ारिश की मुहताज नहीं रहती। पर विभागाध्यक्ष अपनी महत्ता और प्रभाव के प्रति अचेत कैसे रहे! विभाग से मुझे हटाने का उनका सूक्ष्म षड्यन्त्र देखते हुए भी मैं उनके प्रति बाहर से कृतज्ञता दिखलाता।

मन से मैं इलाहाबाद छोड़ना नहीं चाहता था। पीढ़ियों से इलाहाबाद मेरी मातभूमि-पितृभूमि थी। इलाहाबाद युनिवर्सिटी के प्रति भी मेरा कम लगाव नहीं था। जिस युनिवर्सिटी का मैं विद्यार्थी था, उसी युनिवर्सिटी में मैं अध्यापक हूँ, इस पर मुझे गर्व ही नहीं था, इसका मेरे लिए एक भावात्मक मूल्य था। यह संस्था एक कड़ी थी जो मुझे मेरे प्रारम्भिक यौवन के श्रम-संघर्ष के दिनों के साथ मेरे वर्तमान जीवन के कतिपय सुख-सुविधाजनक दिनों को जोड़ती थी। नियति के

किसी विधान से मेरी गिरावट का दिन फिर लौट आया था, और मैं इसी ज़मीन पर एक बार फिर उठने का स्वप्न देखता था। युनिवर्सिटी के साथ मेरा और एक विशिष्ट सम्बन्ध था, जिसके प्रति मैं सचेत भी था और जिसका किसी अर्थ में अभिमानी भी। ऐसे लोग युनिवर्सिटी भर में इने-गिने थे, अंग्रेज़ी विभाग में तो कोई भी और न था। कोई कानपुर का था, कोई गोरखपुर का, कोई देहरादून का तो कोई लखीमपुर का, कोई झाँसी का तो कोई फ़र्रुखाबाद का, कोई बम्बई का तो कोई बारीसाल का, या और कहीं-कहीं का—सब 'स्यूडो इलाहाबादी'। मैं खान्दानी इलाहाबादी होकर इलाहाबाद युनिवर्सिटी का था, जिसकी सात पीढ़ियाँ यहीं की मिट्टी में जनम, पल, बढ़, इसी की मिट्टी में विलीन हो गयी थीं। मेरे दोनों लड़के भी यहीं जन्मे, और इसी की माटी में खेले थे और मेरा अरमान था कि उन्हें यहीं के संस्कार मिलें। इसकी मिट्टी, इसके हवा-पानी, इसकी परम्परा, इसकी शिक्षा संस्था, सबसे बड़ी शिक्षा-संस्था से मेरी जो रक्त की आत्मीयता थी, उसे विभागाध्यक्ष समझ ही नहीं सकते थे। उनकी बातों को सुनकर मैं सोचता, क्या जो मेरा मातृ-विद्यालय (आलमा मेटर) है, वह अपने एक योग्य बेटे को अपनी गोद में शरण देने को तैयार नहीं है? क्या मैं यहीं रहकर अपनी रोज़ी-रोटी नहीं कमा सकता? क्या यहीं रहते हुए मेरी उन्नति-पदोन्नति का द्वार नहीं खुल सकता? केम्ब्रिज में बैठे हुए भी मैं अपने इलाहाबाद को नहीं भूला था, याद किया था, लिखा था, '**लिखता हूँ अपनी लय-भाषा सीख इलाहाबाद नगर से।**'

और वही इलाहाबाद मेरी अवहेलना कर रहा था, मुझे बहिया देना चाहता था, क्योंकि कुछ अयोग्यों को मेरी योग्यता सह्य न थी।

मैं जिस दिन से लौटकर आया था, उस दिन से विभाग क़दम-क़दम पर मुझे महसूस करा देना चाहता था कि तुम यहाँ वांछित नहीं हो।

मुझे नहीं याद कि केम्ब्रिज से मेरे डाक्टरेट लेने पर किसी ने खुलकर मुझे बधाई भी दी हो, सिवा डाक्टर दस्तूर के, जो अपनी नयी पत्नी के साथ मेरे घर आकर मुझसे मिले थे, और मुझे मुबारकबाद दी थी।

विलायत की एक बहुत ग़लत तस्वीर अपने मन में बसाये मेरे बहुत से सह-योगियों को पहली मुलाक़ात पर सिर्फ़ यही कहने को था, 'खूब मज़े किये होंगे।' मेरे पूर्व मेरे विभाग के एक नवयुवक सहयोगी श्री इक़बाल अहमद 9 महीने के लिए इंग्लैंड गये थे और योरोपीय नाच सीखकर लौट आये थे, साथ लाये थे सर-पेण्टाइन लेक, हाइड पार्क और सोहो की सस्ती रात-बालाओं से अपने प्रेमाभिसार के जूसी क़िस्से जिन्हें हमारे यौन-बुभुक्षित साथी लोग मुँह बा-बाकर सुना करते थे; जैसे उनके वर्णन से भी दो-चार बूँदें उनके मुख में टपक पड़ेंगी। इक़बाल साहब अब पाकिस्तान चले गये थे, पर अपने क़िस्सों की प्रतिनिधियाँ यहीं छोड़ गये थे।

स्कालर कहलाते हैं! पर किसी ने मेरे काम के प्रति कुछ भी जिज्ञासा नहीं प्रकट की। मेरी थीसिस ही एक नज़र देखना चाहते।

मैं चाहता था कि युनिवर्सिटी मेरी थीसिस ही प्रकाशित करा दे। मैंने भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय से प्रार्थना कर प्रकाशन का आधा खर्च देने के लिए उसे तैयार कर लिया था बशर्ते कि युनिवर्सिटी आधा खर्च देने को तैयार हो। युनिवर्सिटी नहीं तैयार हुई। विभागाध्यक्ष ने मुझसे कहा था, 'अभी तो हमारे यहाँ ही प्रस्तुत की गयी थीसिसें अप्रकाशित पड़ी हैं, हम केम्ब्रिज युनिवर्सिटी की थीसिस कैसे प्रकाशित करें!' काश, वे प्रकाशित हो जातीं तो इतना तो पता चलता कि

इलाहाबाद युनिवर्सिटी में अंग्रेज़ी शोध का स्तर क्या है !

युनिवर्सिटी से एक अंग्रेज़ी की पत्रिका निकलती थी। सम्पादक हमारे ही विभाग के थे। उन्होंने साल-भर में एक बार भी मुझसे न कहा कि मैं उनकी पत्रिका में केम्ब्रिज में युनिवर्सिटी-जीवन या ईट्स से सम्बन्धित किसी विषय पर कुछ लिखूँ।

युनिवर्सिटी में एक्स्ट्रा म्यूरल व्याख्यान होते हैं। मुझसे कभी प्रार्थना न की गयी कि केम्ब्रिज युनिवर्सिटी के विषय में या ईट्स-साहित्य के किसी पक्ष पर कोई व्याख्यान दूँ। 'भारत और ईट्स' पर एक व्याख्यान देने के लिए मुझे नगर के रोटेरी क्लब ने निमन्त्रित किया। मुझे नहीं याद कि मेरे सहयोगियों में से कोई उस व्याख्यान में उपस्थित हो।

और तो और, जब मैं इंग्लैंड जाने लगा था, तब विभाग की ओर से मुझे चाय-पार्टी दी गयी थी। जब मैं लौटा, तब ? मुझे याद आया केम्ब्रिज के कितने कालेजों ने, मुझे निमन्त्रित कर अपने यहाँ के हाई टेबिल पर मुझे मुख्य अतिथि का सम्मान दिया था।

कहने की सीमा होती है
सहने की सीमा होती है
कुछ मेरे भी वश में मेरा कुछ सोच-समझ अपमान करो।

और अपमानित कर रहे थे मुझे विभागाध्यक्ष और मेरे सहयोगी, मेरी उपेक्षा करके। हम तुम्हारी डिग्री को कोई महत्त्व नहीं देते। उसकी कोई परवाह नहीं करते। केम्ब्रिज से डिग्री ले आये तो कौन बड़ी लाट खड़ी कर दी। शायद उन्होंने मुझे 'डाक्टर बच्चन' कहकर सम्बोधित करने में भी अपनी हीनता समझी। उनके लिए मैं बच्चनजी था, बच्चनजी बना रहा—हिन्दी का कवि !

देखत ही हर्षे नहीं नयनन नहीं सनेह
तुलसी तहाँ न जाइये कंचन बरसे मेह।

ये सारी बातें, न चाहते हुए भी, मुझे भीतर से कहीं तैयार कर रही थीं कि अवसर मिले तो मैं इलाहाबाद से हट जाऊँ।

जुलाई में ही पण्डित जवाहरलाल नेहरू इलाहाबाद आये—साल में दो-तीन चक्कर उनके इधर लगते थे। वे जब आते, आनन्द-भवन पर एक नयी आभा छा जाती। भीतर-बाहर चारों ओर सफ़ाई होती, रात को कमरे-कमरे में रोशनी, मिलनेवालों का ताँता लग जाता—मोटर, ताँगों, रिक्शों, इक्कों से आनन्द-भवन घिर जाता—'एक प्रविसहिं एक निर्गमहिं भीर भूप दरबार'—भूप-से वे थे ही, देश के भी, देशवासियों के दिलों के भी। सामने से आने-जानेवालों को भी पता लग जाता, पण्डितजी आ गये हैं। उनमें कुछ ऐसा आकर्षक और उत्प्रेरक था कि उनके आते ही नगर भर कुछ अज्ञात उल्लास का अनुभव करता।

मैंने केम्ब्रिज से अपनी सफलता की सूचना उन्हें दे दी थी। उन्होंने पूरी नहीं तो एक बहुत बड़ी सहायता तो दी ही थी। सूचना देने के पीछे मेरा एक ध्येय यह भी था कि उन्हें जता दूँ कि जो सहायता उन्होंने दी थी, वह मैंने व्यर्थ नहीं की थी—जिसकी आशंका उनको बीच में हो गयी थी—उसको मैंने किसी अर्थ में सुफल किया, उसका कुछ अच्छा उपयोग किया, जिससे उनको भी कुछ सन्तोष हो सकता था। स्वदेश लौटने पर मैं दिल्ली जाकर उनकी पूर्व आशंका को निर्मूल करना

चाहता था, जिसके लिए अपने शोध-कार्य में सफलता पा, मैं अधिक अनुकूल स्थिति में था। लेकिन लौटने पर जो आर्थिक कठिनाइयाँ मेरे सामने आ खड़ी हुई थीं, उनके कारण ऐसा सम्भव न हो सका, और मैं अपनी इच्छा को दबा गया था। अब वे स्वयं इलाहाबाद आ गये थे।

मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वे मुझे भूले न थे, और एक शाम उन्होंने तेजी को और मुझे खाने पर बुला लिया था।

पण्डितजी का दर्शन सदा सुखद होता था—वही परिचित, प्रत्याशित, अपरिवर्तनशील पोशाक-मुद्रा—दिल्ली के औपचारिक दफ़्तरी हाँ-हुजूरी के वातावरण से दूर अधिक स्वाभाविक लगती-सी, वे अधिक सहज-प्राप्य लगते-से।

हम लोग पहुँचे तो हमें देखते ही वे आगे बढ़े और एक हाथ तेजी के कन्धे पर रखकर और एक मेरे, उन्होंने अपने से चिपका लिया, एक बार तेजी की ओर देखकर मुस्कराये, एक बार मेरी ओर—वे अपनी दृष्टि, अपनी मुस्कान में कितना अर्थ भर सकते थे!

केम्ब्रिज में उनकी बेरुखी का परिहार हो गया।

वे कुछ न बोले पर लगा कि उन्होंने मेरी सफलता पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की, मुझे बधाई दी, साथ ही तेजी को भी बधाई दी, जैसे कह रहे हों कि बिना उनके सहयोग के, जो काम मैंने किया, वह सम्भव नहीं था, शायद अपनी मुद्रा से अधिक श्रेय उन्होंने तेजी को ही दिया। नारी के प्रति वे सहज उदार थे—और उनकी मुसकान में यह भी था कि तुम लोगों के बारे में मेरे पास तो और ही कहानियाँ पहुँचायी गयी थीं, पर अब मुझे मालूम हो गया है कि वे सब झूठी थीं। मैंने मन-ही-मन याद किया, केम्ब्रिज में मैंने उनसे कहा था, 'सच्चाई किसी दिन खुलेगी।'

खाने की मेज़ पर इने-गिने लोग ही थे—डा. सामन्त (कमला नेहरू अस्पताल की), श्याम कुमारी ख़ान और उनके पतिदेव श्री जमील अहमद ख़ान और हम पति-पत्नी। हमें पण्डितजी ने अपने दायें-बायें बिठलाया। आमों का मौसम था—उन्होंने खाने के बाद हमें ख़ुद काट-काटकर आम खिलाये—'केम्ब्रिज में तो मिला नहीं होगा।' मेज़ पर ही केम्ब्रिज की बातें हुईं—वे स्वयं केम्ब्रिज के स्नातक थे, वहाँ के मानद डाक्टरेट-प्राप्त भी। मुझे लगा, जैसे वे अपने-मेरे सम्बन्ध में केम्ब्रिज की एक और कड़ी जुड़ी पाकर प्रसन्न हैं।

उन्होंने मेरे शोध-कार्य के विषय में पूछा। ईट्स की कविता और फ़िलासफ़ी पर थियोसोफ़ी के भी प्रभाव का विवेचन मैंने किया था, और एक समय थियोसोफ़ी आन्दोलन में नेहरू-परिवार ने पर्याप्त रुचि ली थी। मोतीलालजी थियोसोफ़िकल सोसाइटी के सर्वप्रथम सदस्यों में थे, जवाहरलालजी भी कई वर्ष तक उसके सदस्य थे—उन्हें दीक्षा मिसेज़ ऐनी बीसेण्ट ने दी थी, जो आन्दोलन की प्रवर्तिका मादाम ब्लावाट्स्की की निकटतम शिष्या थीं, उनके लड़कपन के गृह-शिक्षक एफ़. टी. ब्रुक्स अच्छे और उत्साही थियोसोफ़िस्ट थे। 'आत्मचरित' में स्वयं उन्होंने अपने विकास में थियोसोफ़ी के योगदान को स्वीकार किया है और उसके प्रति अपने को ऋणी माना है। जब मैं थियोसोफ़ी की बातें कर रहा था, मैंने देखा, पण्डितजी जैसे बग़ल के पुराने 'आनन्द भवन' (अब स्वराज भवन) में, अपने लड़कपन के दिनों में चले गये हों, और उनकी आँखों के सामने से उनके मास्टर, ऐनी-बीसेण्ट, मादाम ब्लावाट्स्की, आनन्द भवन में ही थियोसोफ़ी पर आयोजित साप्ताहिक बैठकें, थियोसोफ़ी की अद्भुत मान्यताएँ स्मृति-चित्रों की

भाँति गुज़र रही हो। मेरे कार्य में उन्होंने रुचि दिखायी, कभी मेरी थीसिस पढ़ने की इच्छा भी प्रकट की। मैं जानता था कि उनके व्यस्तातिव्यस्त जीवन में मेरी थीसिस पढ़ने को समय कहाँ मिलेगा, पर उनके इतना कहने से भी मैं गद्गद् हो गया। युनिवर्सिटी के मेरे सहयोगियों ने मेरी उपलब्धि के प्रति जो उदासीनता और मेरे कार्य के प्रति जो उपेक्षा प्रदर्शित कर मुझे क्षत-विक्षत किया था, पण्डित-जी की सहृदयता ने जैसे उस पर मरहम लगा दिया।

उन्होंने मेरे वेतन आदि के बारे में चर्चा चलायी थी। वे चाहते थे कि शिक्षण-क्षेत्र में रहते हुए मेरी पदोन्नति हो। जजों के भोज में एक बार जाने पर उन्होंने युनिवर्सिटी के वाइस चांसलर बी. एन. झा को अपने पास पाकर मेरी प्रशंसा उनसे अतिशयोक्तियों में की थी—यह मुझे झा महोदय ने स्वयं बताया था। यह मेरी अनुशंसा करने का उनका तरीक़ा था कि इससे प्रभावित हो, शायद, अधि-कारी मुझे आगे बढ़ने का अवसर दें। पर एकमात्र पद, जिस पर मुझे अधिकार-पूर्वक बिठलाया जा सकता था, उसके बारे में फ़ैसला पक्षपातपूर्ण ढंग से हो चुका था।

दिल्ली में बैठे हुए भी, वे मेरे बारे में सोचा करते थे, मेरी योग्यता-क्षमता के अनुरूप किसी अच्छे काम में मुझे लगाना चाहते थे, इसकी भी ख़बर मुझे मिली थी। पण्डितजी की आदत थी कि जब किसी मीटिंग वग़ैरह में बैठते तो किन्हीं भावों-विचारों को वे किसी-न-किसी रूप में चित्रित किया करते थे—पेंसिल से। इसे अंग्रेज़ी में 'डूडलिंग' कहते हैं। साहित्य अकादमी के उस समय के उप-सचिव डा. प्रभाकर माचवे ने मुझे एक बार उनकी एक डूडलिंग भेजी थी जो उन्होंने साहित्य अकादमी की किसी मीटिंग में बैठे हुए की थी। उस डूडलिंग में उन्होंने मेरा नाम एक काग़ज़ के टुकड़े पर लिखा था और उसके चारों ओर किरणें-जैसी बनायी थीं, ऊपर आग के कुछ चिह्न थे, नीचे पानी के। पता नहीं पण्डितजी के दिमाग़ में मेरे बारे में क्या विचार आये थे ? वह डूडलिंग मेरे काग़ज़-पत्रों में कहीं रखी है, मिल गयी तो उसका ब्लाक बनवाकर पुस्तक* में देना चाहता हूँ। पण्डित-जी के बहुत से डूडलिंग नेहरू म्यूज़ियम में सुरक्षित हैं, कुछ के ब्लाक बनाकर छापे भी गये हैं।

मुझे उस समाचार से प्रसन्नता हुई थी। इतना महत्त्वपूर्ण व्यक्ति कभी-कदा मेरे बारे में सोचता है, यह मेरे लिए कम गौरव की बात नहीं है।

मेरी ऐसी धारणा है कि पण्डितजी के मन में कहीं इस बात की छोटी-सी ग्लानि थी कि उन्होंने किसी ग़लत फ़हमी में, किसी वक़्त, मेरे प्रति उचित न्याय नहीं किया था। वे मेरे लिए कुछ करके जैसे इसका प्रतिकार करना चाहते थे और उन्होंने समय आने पर किया भी।

मैं इलाहाबाद युनिवर्सिटी में अपनी पुरानी जगह पर काम करता जा रहा था, वहाँ से सन्तुष्ट न होते हुए भी, पर मन में यह विश्वास रखे हुए कि पण्डितजी मेरे योग्य कोई अच्छी जगह दृष्टि में आने पर उस पर काम करने के लिए मुझे बुलायेंगे।

पण्डितजी ने युनिवर्सिटी के मेरे वेतन के बारे में पूछा था।

विभाग का सारा तन्त्र मुझे यह कटु अनुभूति करा देना चाहता था कि तुम

---

* इस डूडलिंग की छाया लिपि प्रस्तुत खण्ड के प्रारम्भ में दी गयी है।

आज भी ठीक उसी जगह पर हो, जहाँ सवा दो वर्ष पूर्व अपने को छोड़कर गये थे, जिसमें मेरा वेतन भी सम्मिलित था। शेष तन्त्र के सामने तो भीतर से मैं विद्रोह भी कर सकता था कि, 'जी नहीं, मैं सवा दो वर्ष पूर्व जहाँ था वहीं नहीं हूँ, सवा दो वर्ष तो बहुत होते हैं',

मैं जहाँ खड़ा था कल उस थल पर आज नहीं

पर रुपया, आना, पाई के सामने तो भावना की नहीं चलती।

जिस समय मैं इंग्लैंड गया था उस समय वेतन के रूप में मुझे 460/—मासिक मिलते थे, 35/—प्रतिमास मँहगाई भत्ता, 20/—प्रतिवर्ष वेतनवृद्धि का क्रम था। जब मैं लौटा तो मुझे एक साथ दो वर्षों की वेतनवृद्धि के साथ 500/—मासिक मिलने लगे, पर मँहगाई भत्ता बन्द हो गया, क्योंकि वह पाच सौ से नीचे पाने-वालों के लिए था। शायद आप समझें कि 5/—की वेतनवृद्धि फिर भी हुई। वह भी नहीं हुई। भत्ते पर इनकम टैक्स-प्राविडेण्ट फण्ड नहीं कटता था, वह पूरे का पूरा मिल जाता था। तनख्वाह पर तो कटना ही था, और फलस्वरूप जितनी राशि पहले हाथ में आती थी, अब उससे 1/—ज़्यादा आने लगी। दो वर्ष से अधिक पहाड़ खोदने पर यही चुहिया मेरे हाथ लगी थी। मेरे सहयोगी मेरी पीठ-पीछे अगर यह कहकर मुझ पर व्यंग्य करते थे कि 'फ़रहाद मर गया, अंग्रेज़ी विभाग में अपनी औलाद छोड़ गया,' तो क्या अनुचित करते थे!

पर दो बातें मेरे सहयोगी नहीं जानते थे। एक यह कि किसी आर्थिक लाभ को दृष्टि में रखकर मैं अपना शोध-कार्य पूर्ण करने के लिए इंग्लैंड नहीं गया था। हाँ, इतना मैं ज़रूर चाहता था कि यह कार्य यदि अपनी सँजोई यत्किंचित राशि को हाथ लगाये बग़ैर हो सके तो अच्छा। पर परिस्थितिवश अगर वह सम्भव नहीं हो सका तो अपना सबकुछ होम कर भी यह यज्ञ पूरा कर लेने में न मैं हिचका, न मेरी पत्नी हिचकी। और, और भी जो कठिनाइयाँ आयीं, उनके लिए हम बे-तैयार तो नहीं थे। हम बहुत पहले जान चुके थे :

जिस जगह यज्ञ होता राक्षस आ ही जाते।

दूसरी बात, कि मेरे अर्जन का क्षेत्र केवल युनिवर्सिटी ही नहीं थी। युनि-वर्सिटी से इतर क्षेत्र मेरे लिए अब भी उसी प्रकार खुले थे जैसे मेरे जाने के पहले।

एक बार जब हम दोनों ने यह निर्णय ले लिया कि हम अपने मासिक व्यय को अपनी युनिवर्सिटी की तनख्वाह की सीमा में रक्खेंगे तो हमारी जो भी अतिरिक्त आमदनी थी, वह उस कमी को पूरा करने में लग गयी, जो पिछले दो वर्षों में आयी थी—

बूंद-बूंद ते घट भरै, टपकत रीतो होय

और जब तक वह घट नहीं भरा, उसमें बूंद-बूंद टपकाते जाने का मेरा क्रम बना रहा।

कठिन आर्थिक परिस्थितियों में प्राय: लोग ऐसा काम कर जाते हैं, जिसके लिए उनकी आत्मा गवाही न देती हो, या जिसके लिए उन्हें बाद को पश्चात्ताप हो। परमात्मा को धन्यवाद है कि इसके लिए प्रलोभन आने पर भी मैंने ऐसा कुछ नहीं किया, जिसे मैंने ग़लत समझा हो या जिसे करके मैं पछताया हूँ। फ़रहाद अपनी चट्टान डाइनेमाइट से भी उड़ा सकता था, पर तब शायद फ़रहाद ख़ुद उसके साथ उड़ जाता। फ़रहाद ने अपनी चट्टान तिल-तिल काटी। चट्टान कट के रही और

इस प्रक्रिया में फ़रहाद के पुट्ठे टूटे नहीं, मज़बूत ही होते गये।

श्री सत्येन्द्र अथैया बम्बई में मुझसे मिले थे। इलाहाबाद युनिवर्सिटी के पूर्व छात्र थे—बड़े चलते-पुर्ज़े, बड़े मिलनसार, कुशाग्र बुद्धि जितने थे उससे अधिक अपने को प्रदर्शित करने में प्रवीण, पी. सी. बैनर्जी होस्टल में रहते थे। अपनी पढ़ाई समाप्त कर, कई प्रतियोगी परीक्षाओं में नाकामयाब हो, सिनेमा-संसार में अपनी क़िस्मत आज़माने के लिए बम्बई पहुँच गये थे। बड़े तपाक से मिले और बड़ी प्रलोभनपूर्वक शब्दावली में चट उन्होंने एक प्रस्ताव मेरे सामने रख दिया, 'पार्टनर, एक तस्वीर के लिए गीत लिख दो और अपनी मोटर से इलाहाबाद जाओ। आपके गीतों से भाव उड़ा-उड़ाकर लोग चाँदी काट रहे हैं।' सिनेमा की दुनिया ने ऐसे प्रलोभन मेरे पथ में पहले भी डाले थे, पर मैं उनसे अपने को बचा ले गया था। उस समय भी मेरे कानों में किसी ने कहा, 'सतीत्व भ्रष्ट करने के लिए एक वेश्यावृत्ति पर्याप्त है।' मैंने उनसे क्षमा माँगी।

'ग़लती कर रहे हो, बिरादर, सोच लो, आदर्शों के चक्कर में मारे जाओगे,' वे बोले।

मैंने कुछ सोचकर कहा, 'मेरे पूर्व-लिखित गीतों को कोई लेना चाहे तो मुझे आपत्ति न होगी, दी परिस्थिति, दी मनःस्थिति, दी लय पर मुझसे गीत न लिखा जायगा।'

जब से अमिताभ फ़िल्म-क्षेत्र में आये हैं, मेरे कुछ गीत फ़िल्मों के लिए माँगे गये हैं। मेरे बहुत से पाठक मुझसे पूछते हैं, 'क्या अब आप फ़िल्मों में गीत लिखने लगे हैं?' बिल्कुल नहीं। मेरे जो भी गीत लिये गये हैं, वे पूर्वलिखित हैं, अपने पूर्व रूप में ही।

इलाहाबाद में ही एक प्रकाशक ने मुझे घेरा, 'हमारे लिये पाठ्य-पुस्तक तैयार कर दीजिए, हिन्दी के साथ अब अंग्रेज़ी में भी आपके नाम की धाक है, तीन बरस के लिए भी आपकी पुस्तक हाई स्कूल या इण्टर में लग गयी तो आप मालामाल हो जायेंगे।'

मैंने उनको एक दोहा सुनाया,

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डार
जहाँ काम आवे सुई, कहा करै तलवार।

उन्होंने मेरा मतलब न समझा तो समझाना पड़ा। पाठ्य-पुस्तक बनाने का काम पेंउदों को सीने-जोड़ने का है, या कैंची, लेई का। यह काम मैंने कभी नहीं किया। काम की अवज्ञा नहीं करता, काम शायद होशियारी का है। मुझसे करायेंगे तो बिगड़ जायगा। सुई का काम सुई से ही लेना बुद्धिमानी है।

बहुत कुछ तर्क-वितर्क के बाद वे इस पर उतर आये कि आप केवल अपना नाम दे दें, काम वे दूसरों से करा लेंगे।

प्रकाशक से मैंने हँसकर कहा, 'नाम को छोड़कर और मेरे पास क्या है, वही मेरा एकमात्र आधार है, नाम को ही लेकर तो मैं खटता-खपता हूँ। नाम को ही बेच दूँगा तो मेरे पास रह क्या जायगा? मेरा नाम बिकाऊ नहीं है।'

प्रकाशक फिर मेरे पास न आया।

मेरे अपने प्रकाशक ने अगर एक पुस्तक पर अग्रिम रायल्टी देकर शेष पुस्तकों की भी रायल्टी बन्द कर दी थी तो मैं उससे झगड़ा नहीं कर सकता था। लेखक का

प्रकाशक से झगड़ा उसके लिए हितकर नहीं। गिरधर कवि राय ने अपनी एक कुण्डलिया 'साईं ये न विरुद्धिये…' से आरम्भ करके उन तेरह लोगों के नाम गिनाये हैं, जिनको तरह देने से ही बन आती है। आज गिरधर मुझसे मिलते तो मैं उनसे कहता उसमें 'प्रकाशक' का नाम भी जोड़ दें। लेकिन यह अक़्ल आये, इसके पहले मैं अपने प्रकाशक से झगड़कर कुछ किताब दूसरे प्रकाशक को दे चुका था। अगर दूसरे ने उन पर रायल्टी न दी थी तो रायल्टी की रक़म भी कुछ ख़ास न बनी थी। कारण यह था कि पिछली किताबें विज्ञापित तो बहुत दिनों से पहले प्रकाशक के नाम थीं। आर्डर उन्हीं के पास आते, और वे आर्डर चुपचाप फाड़कर फेंक देते, वे अपने प्रतिद्वन्द्वी को फ़ायदा क्यों पहुँचायें, पर मारा बीच में जा रहा था मैं।

फिर भी, जब नयी पुस्तक प्रकाशित कराने की योजना बनी तो मैंने वह नये प्रकाशक को ही दी, उनसे लाभ लेने को, मुझे उन्हें विज्ञापित भी करना था। पंजाबी में एक कहावत है कि 'अन्धे से कुछ काम कराना तो उसे घर छोड़ने जाना।'

प्रवास में लिखी मेरी कविताएँ जब टाइप होकर आ गयीं तो मुक्त छन्द और छन्दोबद्ध कविताओं की अलग-अलग फ़ाइलें बनाकर मैंने अपनी मेज़ पर रख दीं —अपनी थीसिस के साथ—जब कभी उन पर दृष्टि जाती, तब मेरे पिछले वर्षों के शोध-सृजन का यह मूर्त रूप मुझे बहुत सन्तोष देता।

कविताएँ—मुख्यतया गीत—मैंने 'मिलन यामिनी' के पश्चात एक विशिष्ट योजना के अन्तर्गत लिखनी आरम्भ की थीं, और अपने शोध-काल में भी मैंने वह क्रम जारी रखा था, परन्तु देश लौटकर अपनी उद्विग्न मन:स्थिति में उसे आगे बढ़ाने में मैंने अपने को असमर्थ पाया, और फ़िलहाल उसे मैंने अपने मन से उतार दिया, या वही मेरे मन से उतर गया। जो मेरे सिर चढ़कर नहीं बोला उसे मैंने शायद ही कभी लिपिबद्ध किया हो। उसे आंशिक रूप में प्रकाश में लाने की मेरी इच्छा नहीं थी, भले ही योजना पूरी होने में और कई वर्ष लग जायें। पर कई बातों ने मेरे इच्छा-बल को कमज़ोर कर दिया।

मेरे नये प्रकाशक का कहना था कि पिछले चार वर्षों से मेरी कोई नयी किताब नहीं निकली, निकलेगी तो उसकी ख़ूब माँग होगी और इससे उनका प्रचार हो जायेगा। मेरे गीत मेरे प्रवास में भी देश की पत्र-पत्रिकाओं में निकल रहे थे और मेरे लौटने पर लोग मेरे किसी नये संग्रह की प्रत्याशा कर रहे थे। उधर चुनाव करने को भी मेरा मन तैयार नहीं था—मुझे लगता था कि एक इमारत जो अभी अधबनी ही है, कैसे उसकी ईंटों को जहाँ-तहाँ से निकालना शुरू कर दूँ। यह अप्रिय कार्य करने का भार श्री (अब डाक्टर) ओंकारनाथ श्रीवास्तव ने लिया। वे युनिवर्सिटी के नाते मेरे प्रिय पूर्व-शिष्य थे, मेरे पास अक्सर आते-जाते थे, मेरी फ़ाइलें प्रायः कौतूहलवश उलटते-पलटते थे। उनका भी आग्रह था कि मेरा नया संग्रह आना चाहिए। अन्ततोगत्वा मैं पुस्तक निकलवाने को सहमत हो गया। ओंकार ने 59 कविताएँ चुनीं और वे छपने के लिए भेज दी गयीं, जो जनवरी 1955 में 'प्रणय-पत्रिका' के नाम से निकलीं। प्रूफ आदि देखने का काम भी उन्हीं ने कर दिया। प्रूफ़ देखते समय मैं अपनी कविताओं में कुछ सुधार-परिष्कार कर दिया करता हूँ। 'प्रणय-पत्रिका' मेरे अन्तिम स्पर्श से वंचित रही।

बाईस वर्षों बाद मैं यह अनुभव करता हूँ कि अपनी योजना को खण्डित कर आंशिक रूप में प्रकाशित करने में मुझसे एक भारी सृजनात्मक भूल हो गयी—

अक़्ल आने में बहुत दिन लगते हैं।

ओंकार ने भी एक शरारत की थी, पता नहीं जानकर या अनजाने, उन्होंने अपने चुनाव से कविताओं का हीर निकाल लिया था। अवशेष को मैं देखता तो समझ ही न पाता कि कहाँ-कहाँ और कैसे मैं फिर से ईंटों की जोड़ाई, चुनाई शुरू करूँ। शेष कविताएँ जब 'आरती और अंगारे' (1958) के नाम से निकलीं तब तक भी, मुझे यह आशा थी कि मैं अपनी योजना किसी दिन पूरी कर सकूँगा, आगे के गीत 'मेरे और तुम्हारे बीच' शीर्षक से लिखूँगा और तब फिर तीनों संग्रहों की कविताओं का क्रमांकन नये सिरे से करूँगा और उन्हें एक बड़ी सम्यक् कृति के रूप में प्रस्तुत करूँगा, 'अभिनव प्रणय पत्रिका' के नाम से, जिसके बाद उपर्युक्त पिछले तीनों खण्ड-संग्रह स्वतन्त्र रूप से नहीं निकलेंगे। बात यह है कि किसी बड़ी सांगोपांग रचना की कल्पना में, सर्जक के नाते मेरा यह अनुभव है, उसकी परिणति—तीव्रतम स्थिति—पहले सामने आती है। उसे लक्ष्य में रखकर प्रस्थान बिन्दु से चलना होता है, लक्ष्य से प्रस्थान करना, यह कला-जगत की विरोधाभासी, पर मान्य प्रक्रिया है।

मेरी आयोजित 'प्रणय पत्रिका' की तीव्रतम स्थिति, उसका लक्ष्य उन गीतों में अभिव्यक्ति पा चुका था जो 'प्रणय पत्रिका' में चुन लिये गये थे, विशेषकर उसके अन्तिम गीतों में। वे निकल गये तो मेरे सामने सिर से अलग धड़ ही पड़ा रह गया जैसे, और उससे फिर सिर जोड़ उसे प्राण-प्रतिष्ठित करना मेरे लिए सम्भव न हो सका। मेरी योजना पूरी नहीं हो सकी और अब तो शायद ही कभी हो सके। मेरे मन पर लगे हुए धक्के, मेरी बदली परिस्थितियाँ, तेज़ी से बदलता-भागता समय और आवेगपूर्वक परिवर्तित होता हिन्दी-कविता का सारा परिवेश—शायद सभी मुझे उस मन: वातावरण से दूर हटा ले गये, जिसमें मेरी कल्पित 'प्रणय-पत्रिका' की रचना सम्भव थी। इस कारण ओंकार को, अपने प्रकाशक को, अथवा अपने को ही इस विफलता के लिए उत्तरदायी ठहराना ग़लत होगा। सृष्टि में अपूर्णताएँ कम हैं? और साहित्य में भी क्या कम हैं? और अपनी दृष्टि से जिन्हें हम पूर्ण समझ लेते हैं, वे ही कितनी पूर्ण हैं! सब कुछ प्रयोग ही तो है, और असफल प्रयोगों से भी कुछ सीखा जा सकता है, कम-से-कम मैंने कुछ सीखा है। वैसे जीवन और सृजन की भूलें भी आगे ही ले जाती हैं। हम ऐसे यन्त्र पर आरूढ़ हैं जो रुक जाये, दिग्भ्रमित हो जाये, लौट आये, आगे ही बढ़ता है, पीछे कभी नहीं जाता। यह कम सन्तोष की बात है? यदि मेरे सृजन का मेरे विकास में, मेरे माध्यम के विकास में, कोई स्थान है तो मेरे असफल प्रयोगों का भी उसमें योगदान नि:संशय सुनिश्चित है।

'प्रणय पत्रिका' को प्रत्याशित लोकप्रियता मिली, पर उससे मिली रायल्टी से कहीं अधिक कवि-सम्मेलनों से मिले पारिश्रमिक ने मेरी आर्थिक स्थिति सुधारने में मेरी सहायता की। दो-ढाई वर्षों से मैंने किसी कवि-सम्मेलन में भाग न लिया था। अब निमन्त्रणों की भरमार रहती थी। मैंने बहुत पहले कवि-सम्मेलनों में जाने के लिए अपने ऊपर एक शर्त बाँधी थी—कवि सम्मेलनों में तभी जाऊँगा, जब युनिवर्सिटी में छुट्टी हो, कवि-सम्मेलनों के लिए युनिवर्सिटी से कभी छुट्टी न लूँगा। और उस नियम का पालन मैं अब भी करता था। कवि-सम्मेलन में भाग लेने के लिए पारिश्रमिक लेने की प्रथा एक प्रकार से मैंने ही चलायी थी, और शुरू-शुरू में 'हिन्दी-सेवा' के लिए भी पारिश्रमिक चाहने पर जो गालियाँ मुझे दी गयी थीं, जो लांछन मुझ पर लगाये गये थे, वे सब मैंने सहे-झेले थे। अब तो यह माँग सर्व-स्वीकृत

है, और हिन्दी के बहुत से गले-बाज़ कवि इन कवि-सम्मेलनों से, जो अब हर नगर, क़स्बे में—कभी-कभी गाँव में भी—हर मेले-ठेले, नुमाइश, वार्षिकोत्सव, जयन्ती, सभा, सम्मेलन, समारोह के अवसर पर आयोजित किये जाते हैं, अच्छी-खासी रक़म लूट रहे हैं—एक से दूसरे कवि-सम्मेलन में धावा मारते हुए—हर दिन उनका बिस्तर बँधा, हर वक़्त वे पा-ब-रकाब।

उन्हीं दिनों मैंने कवि-सम्मेलनों के ह्रास के लक्षण भी देखे। धीरे-धीरे उनका साहित्यिक रूप घट और मनोरंजनी रूप बढ़ रहा था। कवि जनता को अपने स्तर पर उठाने के बजाय वाहवाही लूटने के लिए उसके धरातल पर उतर रहा था—या तो गलेबाज़ी और सिनेमाई तर्ज़ों का सहारा लेकर या हल्के-फुल्के हास-व्यंग्य विनोद का। फिर तो गायक और नबी के स्वरों में बोलनेवाले हूट किये जाने लगे और विदूषकों की आरती उतारी जागे लगी। महफ़िलों का यह रंग देखकर किसी ने लिखा था, 'बुलबुलों को यह शिकायत है हम उल्लू न हुए।' दादुरों के बोलने और कोकिलों के मौन रहने की बेला आ गयी थी। नयी कविता से काव्य-पाठ की एक नयी विधा का आरम्भ हो सकता था, पर नये कवि यह मानकर चले कि कविता सुनाने की चीज़ नहीं है—छपे हुए पेज पर आँख से पढ़ने की चीज़ है। उन्होंने कवि-सम्मेलनों का बाइकाट कर दिया। परिणाम यह हुआ कि कवियों के दो दल हो गये—कवि सम्मेलनी कवि और पुस्तकी कवि। इससे कविता और कवि-सम्मेलन दोनों की हानि हुई। कवि-सम्मेलन नयी विचार-भावधारा से वंचित हो हास्य कवियों का अखाड़ा हो गया और नयी कविता केवल किताबी चर्चा हो गयी, उसका जन-सम्पर्क समाप्त हो गया, जो कविता के लिए स्वस्थ स्थिति नहीं।

युनिवर्सिटी में पढ़ाने को मुझे वही क्लास दिये गये थे जिन्हें मैं इंग्लैण्ड जाने से पहले भी पढ़ाता था, यानी बी. ए. के; एम. ए. के नहीं—दिये जाते तो उनसे मेरी गरिमा न बढ़ जाती, जिसे घटाने की नहीं तो जैसी थी, वैसी ही है बताने की—कम से कम मुझे—सारी कोशिश की जा रही थी। पढ़ाना मुझे अच्छा लगता था। मैं मेहनत से पढ़ाता, यथायोग्यता, विधिवत्—पाठ को आकर्षक, रोचक, ग्राह्य बनाकर, प्रत्येक विद्यार्थी पर दृष्टि रखते हुए, प्रत्येक में रुचि लेते हुए। पढ़ाना मुझे सदा से एक सर्जनात्मक क्रिया लगती थी—एक सजीव, सम्भावना-संकुल, उभरते, ताज़गी बिखेरते—कभी कुछ शरारत या नटखटपने के रूप में भी—माध्यम को निखारना, सँवारना, संस्कार देना। मैंने अपने विद्यार्थियों से सदा सहयोग पाया है, कुछ उससे भी बढ़कर, उनका समादर, उनका स्नेह। कैसे विद्यार्थी अपने अध्यापकों को छेड़ते, परेशान करते, पढ़ाने न देते, उनकी बात न मानते, उनका विरोध करते या क्लास में शोर-गुल मचाते—यह मैंने जाना ही नहीं, जैसे कवि-सम्मेलनों में हूट होना। और न यही मेरी कल्पना में आता है कि कैसे अध्यापक अपने सामने उठती विद्यार्थियों की नयी पीढ़ी को अवज्ञा, उदासीनता अथवा निरपेक्षता की दृष्टि से देख सकता है,

सब उठती चीज़ें मन मेरा हर लेती हैं—
दाहक निदाघ के बाद
गगन उनये बादल,
उफनी नदियाँ,
उगते पौधे,
बढ़ती फ़सलें,
उभरा यौवन,

उठती क़ौमें,
उमड़े भावों के गीत गठे
धरती की फोड़ परत
नभ को
छूने को/उठते/फ़ौ/आ/रे !

—उभरते प्रतिमानों के रूप

मैंने केम्ब्रिज में सृजन-शोध साथ-साथ किया था—बहुत असफलतापूर्वक नहीं, हालाँकि पहले मुझे ये दोनों प्रक्रियाएँ एक-दूसरे की विरोधी लगती थीं। पर बाद को मुझे दोनों में एक प्रियकर समन्वय दिखा था, अनुभव हुआ था। जब कोई गाड़ी बहुत तेज़ी से चलायी जाती है तो इंजन को रोक देने पर भी वह अपनी पूर्व गति के बल पर कुछ देर चलती रहती है। ज़ाहिर है कि थीसिस पूरी कर देने पर शोध की प्रक्रिया रुक गयी थी, पर सृजन तो चल रहा था। क्या आप विश्वास करेंगे कि सृजन-प्रक्रिया में जब मेरा दिमाग़ सक्रिय होता था तब कोई न कोई शोध की योजना पर काम करने की इच्छा भी उसमें जागती थी। मैंने अपने दिमाग़ में शोधक-केन्द्र जाग्रत कर लिया था और वह इतनी जल्दी सुप्त होनेवाला नहीं था। बी. ए. को पढ़ाने के लिए मुझे किसी प्रकार की तैयारी की आवश्यकता न होती—वही पाठ्य पुस्तकें, वही नाटक, वही कविताएँ, वही निबन्ध—सब पर मेरे नोट्स तैयार, लेक्चर तैयार, बरसों से। सृजन का काम तो कोई नित्य-नैमित्तिक काम न था—प्रेरणा मिली तो रोज़, न मिली तो महीनों नहीं। ऐसी अवस्था में मैंने शोध की एक नयी योजना बनायी जो अगर मैं युनिवर्सिटी में रहा आता तो शायद किसी दिन पूरी हो जाती। मनुष्य, जीवन में अधूरी छोड़ी किन-किन चीज़ों को लेकर रोये ! शायद बहुत-सी ऐसी चीज़ें मन को कुछ संस्कार देकर चली जाती हैं, सम्भवत: अगले जन्म में सक्रिय होने को। कौन जाने !

केम्ब्रिज के दिग्गज आचार्यों ने मुझे शोध का यह रहस्य स्पष्ट किया था कि अध्येता शोधार्थी को अपना विषय ऐशोन्मेष (Revelation) के रूप में प्राप्त होता है। बाद को उसे तथ्यों तथा तथ्याधारित कल्पना के पथ से उस तक पहुँचना चाहिए। मुझे अपने पूर्व शोध का विषय भी क्या इसी तरह प्राप्त नहीं हुआ था !

तथ्यों से पथ का शोध, और तथ्याधारित कल्पना के सहारे उसका निर्माण भी करने के लिए मुझे कितना पूर्वी और पश्चिमी धर्म-तन्त्र और ओकल्ट ('रहस्य-वादी' के बजाय 'निगूढ़' शब्द शायद 'ओकल्ट' के अधिक निकट है 'रहस्यवादी' 'मिस्टिक' के लिए रूढ़ हो चुका है।) से सम्बद्ध साहित्य चाटना पड़ा था—नीरस, नि:स्वाद, दुर्गम और दुर्बोध और उनके प्रति कवियों की रुचि और कुतूहल ने ब्लेक से लेकर ईट्स तक की कितनी रचनाओं को कितना क्लिष्ट, अस्पष्ट किन्तु साथ ही कितना सार-गर्भित बना दिया था। इन रचनाओं पर पश्चिमी ओकल्ट के प्रभाव का थोड़ा-बहुत विश्लेषण हुआ था, परन्तु पूर्वी धर्म-तन्त्र के प्रभाव की प्राय: उपेक्षा हुई थी, जान-बूझकर उतनी नहीं जितनी पाश्चात्य मस्तिष्क द्वारा उसकी अग्राह्यता के कारण। क्यों न इस पर एक विस्तृत शोध-प्रबन्ध लिखा जाय The Shadow of the Orient on English Poetry from Blake to Yeats—'ब्लेक से लेकर ईट्स तक की अंग्रेज़ी कविता पर पूर्व की छाया।' एक बार तो मुझे ऐसा लगा था जैसे मेरे लिए मेरे शोध का विषय ऐशो-न्मेषित हो गया। इंग्लैण्ड के पुस्तकालयों में कितनी सामग्री इस पर मिलती ! पर, जो सामग्री युनिवर्सिटी और पब्लिक लाइब्रेरी में थी, उससे कुछ शुरुआत करने में

क्या हर्ज था ! मैं युनिवर्सिटी का काम खत्म कर, किसी रेस्ट्राँ में चाय आदि पी, कभी पब्लिक लाइब्रेरी में, कभी युनिवर्सिटी लाइब्रेरी में जा बैठता और विषय से सम्बद्ध पुस्तकें निकलवाकर पढ़ता, उन पर सोचता और नोट लेता। लाइब्रेरी बन्द होती तो घर लौटता—पब्लिक लाइब्रेरी अधिक रात तक खुली रहती। वहाँ युनिवर्सिटी के किसी अध्यापक को न पाकर कभी-कभी सोचता—इक्के-दुक्के विद्यार्थी और लाइब्रेरी के कर्मचारी मुझे कितना बड़ा सनकी समझते होंगे ! क्या मुसीबत पड़ी है इन्हें जो अकेले बुद्धू-से यहाँ बैठे हैं ! इन्हें और कोई काम नहीं है? और न जाने कब मैं केम्ब्रिज युनिवर्सिटी लाइब्रेरी के ऐण्डरसन रूम में पहुँच जाता —शोधार्थियों के लिए खास—अब तो वहाँ की आलमारी पर मेरी भी थीसिस लगी होगी—कितने सहयोगी, साथ काम करते हुए, कितनी पठन-सामग्री, कितनी शान्ति ! और यहाँ युनिवर्सिटी की सड़कों पर ढोल-ताशों के साथ कभी सिनेमा के पोस्टरों का जुलूस निकलता, कभी लाउड-स्पीकरों से विद्यार्थी आन्दोलनों के नारे लगते, कभी कुछ और एलान किये जाते। ऐसे शोर-गुल में चिन्तन क्या होता, ख़ाक ! —युनिवर्सिटी के अधिकारी अभी इतना भी नहीं कर सके कि इन बाजों-गाजों, लाउड-स्पीकरों पर युनिवर्सिटी क्षेत्र में प्रतिबन्ध लगा दें। अपने देश की परिस्थितियाँ हैं, उन्हें बदल नहीं सकते तो उन्हें स्वीकारो। आँगन को टेढ़ा कहोगे तो यहाँ यह कहनेवाले बहुत मिलेंगे कि नाच नहीं जानता।

1954-55 के युनिवर्सिटी सत्र में अपने खाली वक्त को मैंने अपनी उसी सनक़ में काटा—और मैं क्या पढ़ रहा हूँ, किस दृष्टि से पढ़ रहा हूँ, इसका पता मैंने किसी को भी न दिया, तेजी को भी नहीं। तेजी को आश्चर्य होता, लाइब्रेरी में इतनी-इतनी देर मैं क्यों बैठने लगा हूँ ? ऐसा मैं पहले तो कभी नहीं करता था ! पर, शायद, वे जानती थीं कि इंग्लैण्ड से लौटने पर जो कुछ अप्रिय, असह्य और अप्रत्याशित मैंने पाया है, उसे झेल जाने के लिए मुझे कहीं-न-कहीं व्यस्त रहने की जरूरत है, चाहे वह काम इस कोठी का धान उस कोठी में करने जैसा बेकार ही क्यों न हो। मेरे दिमाग़ की दो बरस पुरानी शोधार्थी आदत मुझसे यह सब करा रही है, इस ओर उनका ध्यान शायद ही गया हो। लाइब्रेरी से किताबें मैं घर पर भी लाता और जब भी खाली रहता, उनमें जुटा रहता। शोध-दृष्टि मेरी वास्तव में पैनी हो गयी थी— कितनी ही पढ़ी हुई चीज़ें फिर पढ़ता तो उनके पीछे कुछ नये ही संकेत देखता। अफ़सोस, कि इलाहाबाद युनिवर्सिटी को मेरी नयी दृष्टि की कोई आवश्यकता नहीं थी। नहीं याद कि कोई शोधार्थी भी मेरे निर्देशन में काम करने को मुझे सौंपा गया हो।

समकालीन इलाहाबादी साहित्यिक परिदृश्य की भी एक झाँकी मेरी आँखों के सामने है, हालाँकि मेरी हस्ती उसमें एक नदी के द्वीप से अधिक की न थी। वहाँ का साहित्यिक-जगत, जैसा कि उसके एक सदस्य ने स्वयं कभी कहा था, मुझे 'आउट-साइडर' समझता था, और मैं भी न तो 'इन-साइडर' होने की तमन्ना रखता था, और न 'आउट-साइडर' माने जाने से किसी तरह से विक्षुब्ध। बहुतों को कारण शायद मेरे अंग्रेज़ी विभाग से सम्बद्ध रहने में दिखायी दे, हालाँकि कारण कहीं और गहरे थे जिनका सम्बन्ध जीवन, सृजन और साहित्य के प्रति मेरे अपने दृष्टिकोण से था—कवि को जीवन की सच्ची अनुभूतियों को वाणी देनी चाहिए, कवि अपने ही निकट से निकट जाकर जीवन के अधिक से अधिक समीप आ जाता है, कवि यदि जीवन से प्रतिबद्ध हो तो उसे किसी और के साथ प्रतिबद्ध होने की

आवश्यकता नहीं, न किसी वाद से, न किसी तथाकथित साहित्यिक आन्दोलन से, न किसी सभा-सोसाइटी से, सृजन एकान्त क्षणों की वाणी होकर ही पाठक के एकान्त क्षणों का उद्‌बोधक होता है, सर्जक और भावक के बीच की एकमात्र कड़ी सृजन है जिससे अपना सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उसे किसी दूसरे की ज़रूरत नहीं रह जाती, यानी कवि के लिए सीधे अपने पाठक तक और पाठक के लिए सीधे अपने कवि तक जाने के लिए मार्ग खुला है। वहाँ किसी की सिफ़ारिश न सहायक होती है, न किसी का विरोध आड़े आता है, पर्याप्त है कि हम जिस समाज और युग के लिए सृजन कर रहे हैं, उसके समक्ष पूरी तरह खुले रहें कि उसको पूरी तरह अपने सृजन-व्यक्तित्व में आत्मसात कर सकें। समाज और युग अलग इकाइयाँ नहीं हैं, वे देश और काल से जुड़कर, यानी इतिहास से जुड़कर ही अपने पूरे सन्दर्भ में प्रकट होते हैं; और उसको समझने के साधन हैं—हर एक की अपनी क्षमता और सीमा में ग्राह्य, बोधगम्य। ऐसे सिद्धान्तों को जीनेवाला प्राय: समाज के प्रति लापरवाह या उससे अलग भी लग सकता है, गो वह वास्तव में होता नहीं। वह स्वयं भी ऐसी ग़लतफ़हमी में रह सकता है। आखिर कुछ अलग, कुछ असामान्य होना ही तो उसके होने का औचित्य है, अधिकार है। कम से कम वह इसकी कामना तो कर ही सकता है :

मैं गाऊँ तो मेरा कण्ठ-
स्वर न दबे औरों के स्वर से,
मैं जीऊँ तो मेरे जीवन
की हो सबसे अलग रवानी।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे आयर के शायर अभिमानी।

अपने चारों ओर के साहित्यिक दृश्य की एक झाँकी प्रस्तुत करने का लोभ इसलिए नहीं संवरण कर पा रहा हूँ कि शायद आप मुझे उसके बीच रखकर देखना चाहें या मेरी दृष्टि से उसे—नदी से द्वीप को, द्वीप से नदी को।

इस साहित्यिक नदी के दो पुराने, बड़े घाट थे पन्त और निराला—एक-दूसरे से भिन्न ही नहीं, एक-दूसरे के ध्रुव विपरीत।

पन्त जार्ज टाउन (अब टैगोर टाउन), अंग्रेज़ी सिविल लाइन के देसी संस्करण, की हैमिल्टन रोड पर रहते थे, रेडियो के चीफ़ एडवाइज़र के रूप में ऊँची तनख्वाह पा रहे थे, उनसे मिलने-जुलनेवालों में थे शिष्ट, सम्भ्रान्त, सफ़ेदपोश नागरिक। निराला मोहल्ला दारागंज की गन्दी गली में रहते थे, दूसरों की सहायता-उदारता पर निर्भर-आश्रित थे, उनसे मिलने-जुलनेवालों में थे प्राय: कुछ अपढ़, अधपढ़े, अर्ध-ग्रामीण-अर्ध-नागरिक जो उनके सम्पर्क से अपनी ही महत्ता बढ़ाने के प्रति सचेत थे। मैं पन्त के पास अधिक जानेवालों में था, निराला के पास कम। निराला के चारों ओर जो महादेवी ('महदेव' से विशेषण, जैसे 'स्कूल' से 'स्कूली') बारात होती, उससे मेरी रुचि बिदकती थी।

ये बाहरी बातें हुईं। औदास्य और दैन्य के जिस वातावरण में मैं निराला के विक्षुब्ध और विक्षिप्त रूप को देखा करता था, उसे भूल सकना मेरे लिए शायद कभी सम्भव न होगा। एक त्रासदी का नायक अपने जीवन-नाटक के अन्तिम अंक में प्रवेश कर चुका था। वह त्रासदी ही इसलिए थी कि वह नायक का दायित्व, उसकी निर्मिति, उसकी नियति थी। परिस्थिति से संघर्ष करने की स्थिति जब रही हो, तब रही हो, अब तो उन्होंने उसे जैसे स्वीकार कर लिया था। यह स्वीकार

ही जैसे उस परिस्थिति पर एक कटु व्यंग्य हो, उसके प्रति एक तीक्ष्ण दृष्टि मौन विद्रोह। उन्हें आप अपनी संवेदना, करुणा दे सकते थे, पर उन्हें अपने त्रासद अन्त की ओर जाने से एक क़दम भी पीछे नहीं लौटा सकते थे।

पन्त ने अपने जीवन की लड़ाई आदर्शवादी तलवार से ही नहीं, समझौतावादी ढाल के सहारे भी लड़ी थी, इसलिए वे जीवन-समर में यदि विजयी नहीं हुए थे तो पराजित भी नहीं हुए थे। साथ ही वे जीवन में विभाजित व्यक्तित्व की इकाई थे, यानी भावना-जीवन में उन्हें कुछ भी सहना-भोगना पड़े, उनका सर्जक-व्यक्तित्व एक परिनिष्ठित परिष्कृत शैली में उनके बुद्धि-विवेक-गत विचारों को वाणी देने से उपराम न होता था। निराला के व्यक्तित्व में ऐसा कोई विभाजन न था, इसलिए जिस समय उनका व्यक्तित्व हारा, उस समय उनका सर्जक भी सृजन से पराङ्मुख हो गया, जिस समय वे संघर्ष में टूटे उस समय उन्होंने अपने कवि-लेखक को भी ध्वस्त-धराशायी पाया। निराला जिस आग में आहुति हो गये, पन्त ने उस आग को साधा। आहुति बनना कठिन है तो आग को साधना भी सरल नहीं है। मैंने दोनों को श्लाघा की दृष्टि से देखा था।

महादेवीजी इन दोनों घाटों के बीच में पुल के रूप में थीं। उनका कवि तो उनसे बहुत पहले विदा ले चुका था पर गद्य जब भी वे लिखती थीं, उसमें जीवन्तता होती थी, ताज़गी बोलती थी। सृजन जैसे-जैसे उनका कम होता गया था, वे सृजनेतर साहित्यिक कार्य-क्षेत्रों में अधिकाधिक सक्रिय होती गयी थीं। इधर उनकी प्रसिद्धि अपने घर को 'ज़ू' बनाने की हो गयी थी, जिसमें वे पाले हुए थीं—कुत्ते, बिल्ली, हिरन, खरगोश, मोर, मैना, तोते आदि के साथ एक पीर, बबर्ची, भिश्ती, खर भी।

युनिवर्सिटी हिन्दी विभागी घाट की औपचारिक अध्यक्षता थी डॉ. धीरेन्द्र वर्मा की, पर सृजनशील साहित्यकार के नाते वहाँ चौधराहट थी डा. रामकुमार वर्मा की—जैसे पुराने नेपाल में, राज चले राजा का पर हुक्म चले राना का—उनके विधार्थी, शोधार्थी, बोधार्थी उनकी आज्ञाकारिता में, चाटुकारिता में। किसी समय उनकी गिनती 'वर्मात्रयी' में होती थी, भगवतीचरण वर्मा और महादेवी वर्मा के साथ और वे छायावाद के परम परिष्कृत (Polished) कवि माने जाते थे। पर अब वे कविता से हटकर एकांकियों पर अपने क़लम का ज़ोर आज़मा रहे थे, उनके कुछ विद्यार्थी-शोधार्थी तो उन्हें एकांकियों का प्रवर्तक और सम्राट भी मानते थे, हालाँकि उनसे पहले भी हिन्दी में एक एकांकीकार हुआ था, जिसका नाम गणेशप्रसाद द्विवेदी था।

युनिवर्सिटी घाट अपने में वैविध्य की एक मिसाल था। वहाँ एक ओर 'रसाल' ऐसी हस्ती थी, जो रीतिकाल के बाद की कविता को कविता ही नहीं मानती थी तो नयी कविता को ही कविता माननेवाले जगदीश गुप्त और धर्मवीर भारती जैसे कवि थे और डा. रघुवंश और रामस्वरूप चतुर्वेदी जैसे आधुनिकतम मानदण्डों से लैस समालोचक।

भारती का परिमली रूप इतना उभरकर लोगों के सामने आ गया था कि उनकी व्यक्तिगत उपलब्धियों की ओर लोग कम देखते थे। उनकी प्रतिभा 'स्यूडो' इलाहाबादी नहीं, खाँटी इलाहाबादी थी और उस वर्ग में अपने बाद, कम से कम समय-क्रम में—मैं उनको सर्वप्रमुख मानता था। भारती ने अपने 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' और 'ठण्डा लोहा' से हिन्दी गद्य-पद्य को जो आक्रामक ताज़गी दी थी, उसका मैं प्रशंसक था—अभिव्यक्ति में कुछ ऐसा नियमन-सन्तुलन, चिन्तन-

भावना में कुछ ऐसी तरतीबी जो पश्चिम के मुख्यत: विज्ञान-युगीन साहित्य में आभासित होती है। मेरी ऐसी धारणा है, उनकी कविता का यह अनुशासन उनके आधुनिक पाश्चात्य काव्य के अध्ययन से आया था जिसका सबूत बाद को 'देशान्तर' (1960) ने दिया। इस सबसे 'अन्धा युग' की भूमिका तैयार हो रही थी।

खाँटी इलाहाबादी प्रतिभा का ज़िक्र आ गया है तो पण्डित पद्मकान्त मालवीय को कैसे भूलूँ ? वे मेरे समकालीन थे, पर वे साहित्य संसार से रिटायर हो द्रौपदी घाट से रहे थे। भारती के बाद उस कड़ी में मैं पं. उमाकान्त मालवीय को मानता हूँ, बीच में 'गोपेश' भी उभरे थे। सी. बी. राव इलाहाबाद से बाहर जाकर पलुहाये। जब लौटे अपने कवि को बाहर ही छोड़ आये थे, उनका गद्यकार मुखर हो गया था।

दुनिया के साहित्य का इतिहास देखें तो स्वप्न और सत्य दोनों से उच्च कोटि का काव्य लिखा गया है—आकाश की तरफ़ भी देखकर, धरती की तरफ़ भी देख-कर। एक की अतिशयता पर दूसरे का विद्रोह भी बराबर हुआ है। आकाशी उड़ान और धरती गड़ान दोनों अतिशयताएँ हैं। आदर्श स्थिति यह है कि गड़ा रहे ज़मीन में, उठा रहे आसमान में, धरहरे या मीनार के समान।

हिन्दी में शताब्दी के मध्य दर्शकों में जो नयी कविता का आन्दोलन चला, वह वास्तव में छायावादी अति ऊर्ध्व की प्रतिक्रिया में अति समता का आन्दोलन था। एक अर्थ में यह आन्दोलन, गो आन्दोलन की शक्ल में हरगिज़ नहीं, मेरी कविता के साथ ही आरम्भ हो गया था, पर 'आउट-साइडर' की ओर 'इन-साइडर' की नज़र नहीं जाती। ख़ैर !

प्रयाग में इस नये आन्दोलन की केन्द्र 'परिमल' नामक संस्था थी ! 'परिमल' की स्थापना के समय मैं मौजूद था। उसकी सौवीं बैठक मेरे मकान (17 क्लाइव रोड, इलाहाबाद) की छत पर हुई थी। मैं उसका सदस्य कभी नहीं रहा, निमन्त्रित सदा उसकी सार्वजनिक बैठकों में किया जाता था। हर संस्था के कुछ नियम, कुछ मर्यादाएँ होती हैं, सदस्यता के अर्थ हैं—उनसे बँधना। मैं नहीं बँधा। आन्दोलन, प्रचार, विज्ञापन, वकालत, गुटबन्दी दो-चार लोगों को, या दो-चार विचार-सिद्धान्तों को, थोड़ी देर के लिए, उभार-उछाल भले ही दें, पर सृजन का आन्तरिक मूल्य निर्धारित करने के लिए काल जिस मानदण्ड का प्रयोग करता है, उसे बनाने में ये सब योग नहीं देते। आन्दोलन और संस्थाओं का उपयोग अथवा शोषण (मेरा मतलब 'एक्सप्लायट' करने से है, जो शोषण से शायद कम स्वार्थ-व्यंजक शब्द है) भी कुछ इने-गिने लोग कर पाते हैं, गो उनमें कुछ प्रतिभा का होना भी आवश्यक है। 'परिमल' से लाभ उठानेवाले चन्द लोगों के नाम छिपे नहीं हैं। मुझे संस्था से कुछ लेना नहीं था, और मैं संस्था को कुछ देने योग्य हूँ, इसमें किसी सदस्य को शायद ही विश्वास हो।

वस्तुत: यह नयी उभरती पीढ़ी की संस्था थी, जो एक ओर तो संकीर्ण राजनीति-पीड़ित प्रगतिवादिता की विरोधिनी थी और दूसरी ओर उस विघटित और अभिनव छायावादिता की, जिसकी स्वप्निलता, आदर्शवादिता, भावातिशयता और छन्द-रागमयता अब उनके चारों ओर के कटु सत्यों की दुनिया से दूर की चीज़ लगने लगी थी। इस नयी पीढ़ी को अपने से पहले की पीढ़ी के सब लोग इन्हीं उपर्युक्त विरोधी शिविरों में दिखायी पड़ते थे। स्वाभाविक है कि अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए, अपने लिए रास्ता बनाने के लिए, यह

पीढ़ी तथाकथित 'बड़ों' की उपेक्षा ही नहीं करती थी, बल्कि एक सूक्ष्म सुनियोजित ढंग से उनका उपहास करना, उन पर प्रहार करना, उन्हें नीचा दिखाना और उन्हें गिराना भी चाहती थी—गो साहित्य के क्षेत्र में मनुष्य किसी के गिराने से नहीं, अपनी कृतियों की कमज़ोरी से गिरता है। साथ ही कुछ पुराने संस्कारों से, या पुरानों के नाम-स्थान का अपने हित में कुछ उपयोग करने के लिए वे उन्हें पूछते भी थे। 'नयी कविता', डा. जगदीश गुप्त और डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्पादकत्व में निकली तो उसका प्रवेश-लेख पन्तजी से लिखाया गया। 1954 में परिमल का जो द्वि-दिवसीय वार्षिक उत्सव हुआ उसका सभापतित्व करने को 'दिनकरजी' बुलाये गये। भारती, विजयदेव नारायण साही, केशवचन्द्र वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी, जगदीश गुप्त, डा. रघुवंश 'परिमल' से विशेष रूप से सम्बद्ध हुए।

रेडियो घाट पर दो प्रतिभाएँ थीं, पन्त के अतिरिक्त—भारत भूषण अग्रवाल और डा. प्रभाकर माचवे—दोनों 'तार सप्तक' के कवि थे। वे अपने को 'अज्ञेय' का शिष्य तो न मानते थे, पर 'अज्ञेय' अपने को उनका गुरु अवश्य मानते थे, गुरु नहीं तो पथ-प्रदर्शक अवश्य। उनमें से एक ने जब गुरु से विद्रोह किया तो गुरु ने बड़ी डाँट-भरी कविता लिखकर उसकी भर्त्सना की। अग्रवाल के काव्य में चुटीला व्यंग्य था। माचवे, लगता था, कविता को सयत्न कुछ असाधारण बनाते हैं। अपनी प्रतिभा को बहुत दिशाओं में बिखेरने से वे एक स्थान पर विशिष्टता पाने से वंचित रह गये।

अज्ञेय बहुत इलाहाबाद में रहे, बहुत कुछ यहाँ उन्होंने किया, 'प्रतीक' निकाला, 'जवाहरलाल नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ' सम्पादित किया, बहुत कुछ अपना सृजनशील साहित्य भी लिखा होगा। पर वे यहाँ के होकर न रह सके। उनमें अन्तर्राष्ट्रीयता और यायावरी के तत्व इतने प्रबल हैं कि वे एक देश से दूसरे देश, एक नगर से दूसरे नगर में बसते-उखड़ते रहते हैं। इलाहाबाद आकर फिर कोई इलाहाबाद से जाता है? वे यहाँ आकर यहाँ से चले गये, यह उनकी या तो कोई खासियत बताता है या उनमें कुछ कमी। कल्पना आप करें! अज्ञेय, माचवे, अग्रवाल 'परिमल' के निकट न आ सके। वे लोग प्रयोगवादी थे; 'परिमल' का आन्दोलन उनसे चार क़दम आगे नयी कविता का था। 'अज्ञेय' को इलाहाबाद से उखाड़ने में 'परिमल' ने भी तो कोई भूमिका न अदा की थी?*

खुसरूबाग़ के घाट पर उपेन्द्रनाथ अश्क थे—कवि, उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, निबन्धकार, सम्पादक, सदा-बीमार मगर सदा लिक्खाड़। उनकी शायद ही कोई किताब आप पढ़ें जिसमें उनकी गम्भीर बीमारी का ज़िक्र न हो। सच हो तो उनके दुर्निवार कलम-संचार पर उनके आगे नत-मस्तक होना पड़ेगा। साहित्य आधी कला है, आधा व्यापार, इसको उन्होंने खूब अच्छी तरह समझा था। नीलाभ प्रकाशन उनका अपना था। उदीयमान लेखकों से अश्क हमेशा सम्बद्ध रहे। कुछ लोगों का ख्याल है कि वे उनके पोषक थे, कुछ का कि वे उनके शोषक, अपना-अपना अनुभव। खेवट वे जीवट के थे और हर हवा को अपने पाल के अनुकूल कर लेने में माहिर।

अश्क के प्रतिलोम थे इलाचन्द्र जोशी। कलकत्ता बदर होकर, पता नहीं

---

* क्या इसी की भड़ास निकालने को उन्होंने अपना व्यंग्य लिखा—'पांच पूत परिमल बन्नो के करते आत्मप्रचार?'...

किस कारण, इलाहाबाद में आकर बसे थे। इलाहाबाद में उन्होंने कवि-रूप में प्रवेश किया था। बाल-संस्कार तो वे छायावादी कवियों से लाये थे, कविता-संस्कार भी। आते ही उनका एक काव्य-संग्रह निकला था। पर इलाहाबाद में कवि-रूप में इतने बड़े-बड़े दिग्गज डटे थे कि वे उभर न सके और उपन्यास-विधा की ओर झुके। गद्य-शैली वे अपने बड़े भाई हेमचन्द्र जोशी के साथ 'विश्वमित्र' के सम्पादन-काल में ही परिमार्जित कर आये थे। स्वयं संघर्ष कर आगे बढ़ने का माद्दा उनमें न था। उन्हें आगे बढ़ानेवालों में थे धर्मवीर भारती और गंगाप्रसाद पाण्डेय। पाण्डेय उन्हें 'आदरणीय जोसीजी' कहकर सम्बोधित करते थे। साथ सम्पर्क भी 'जोशीजी' का इन्हीं दो तक सीमित था। जोशीजी ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को अपने चरित्र-चित्रणों में विशेष स्थान दिया। मेरी ऐसी धारणा है, भारती ने 'गुनाहों के देवता' में जोशीजी की कला से काफ़ी प्रेरणा ली।

अमृतराय प्रेमचन्द के सुपुत्र की ख्याति और उग्र प्रगतिवादी का बाना पहनकर इलाहाबाद आये थे। सुनते हैं कि इलाहाबाद की मातदिल आबोहवा ने उनको बहुत साधा है। आम-फ़हम, बामुहाविरा और उर्दू-हिन्दी की गंगा-जमुनी शैली से वे खिलाड़ी की तरह खेलते थे। 'कलम का सिपाही' से जीवन-चरित साहित्य का उन्होंने एक मानदण्ड स्थापित किया। पर प्रगतिशीलता के समर्थन में उनको श्रीकृष्णदास और भैरवप्रसाद गुप्त से आगे कोई न मिला।

नरेश मेहता उन दिनों इलाहाबाद नये-नये आये थे और अपनी कोई प्रकाशन-संस्था खोलने के फेर में थे, इलाहाबाद में नवागन्तुकों को यह रोग बड़ी जल्दी लगता है। कहानीकार मार्कण्डेय के भी कोई पत्रिका निकालने, कोई प्रकाशन-संस्था खोलने के असफल प्रयासों की याद लोगों को न भूली होगी।

इलाहाबाद तो अशरण की शरण है। शमशेर भी बारह घाटों का पानी पीकर फिर इलाहाबाद आ गये थे और किसी घर के किसी कोने में अपनी चित्रकला का अभ्यास करते थे। याद है, एक बार पन्तजी ने उनके चित्रों की एक प्रदर्शनी का उद्‌घाटन किया था। पुरानी पीढ़ी के होकर भी उनके नयी कविता के मसीहा माने जाने में अभी दस-पन्द्रह बरसों की देर थी।

लक्ष्मीकान्त वर्मा इलाहाबाद की किसी कम जानी-मानी बस्ती में रहते थे, पर अपनी काव्य-प्रतिभा के अदम्य विश्वासी थे, पैना गद्य भी उनके जैसा कम लोग लिख सकते थे। साहित्य में उनके प्रति न्याय नहीं हुआ और समय ने उनको बहुत तोड़ा, पता नहीं, आजकल कहाँ हैं, कहाँ ग़ायब हो गया है उनका साहित्य!

इलाहाबाद भी क्या अजीबोग़रीब शहर है! यह इसी शहर में सम्भव था कि एक तरफ़ तो यहाँ ऐसी नयी कविता लिखी जाय जिस पर योरोप और अमरीका को रश्क हो और दूसरी तरफ़ यहाँ से एक ऐसी पत्रिका प्रकाशित हो जिसका आधुनिकता से कोई सम्बन्ध न हो—सम्पादकीय को छोडकर। पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी 'सरस्वती' को द्विवेदी युग से भी पीछे ले जाकर जिलाये जा रहे थे, आश्चर्य इस पर था।

और अन्त में इलाहाबाद का एक आदमी और था जिसे आप वहाँ की हर सभा-सोसाइटी-गोष्ठी में अवश्य पाते। उसका नाम था वाचस्पति पाठक। कभी उसने कहानियाँ लिखी थीं, अब वह भारती भण्डार प्रकाशन का प्रबन्धक था। बनारस का था, बनारसी पान से हर समय मुखरंजित किये। 'स' को 'फ़' बोलता था, यानी 'प्रसाद' को 'प्रफ़ाद' कहता था। कुछ बहरा था इस कारण वह सबको बहरा समझता था और इतने ज़ोर से बोलता था कि किसी भी जलसे में उसकी

आवाज़ को आप अनसुनी नहीं कर सकते थे। भारती भण्डार का कोई लेखक—बड़े से बड़ा भी, जिनमें पन्त-निराला भी थे—उसकी अवहेलना नहीं कर सकता था, क्योंकि लेखकों की रायल्टी तो उसकी मुट्ठी में रहती ही थी, वह लेखकों को परेशान करने के बहुत से तरीक़े जानता था। दुर्भाग्य से मैं भी उसके चंगुल में था।

ऐसा था वह साहित्यिक परिवेश जिसमें मैं अपने को उन दिनों पा रहा था। पता नहीं, इसमें 'आउट-साइडर' समझे जाने के लिए आप मुझसे ईर्ष्या करेंगे, या मुझे सहानुभूति देंगे।

मेरे इंग्लैण्ड के लिए प्रस्थान करने के पूर्व ही जिस कविता को 'प्रयोगशील' के नाम से अभिहित किया जाता था, उसने 'नयी कविता' का नाम ले लिया था। प्रथम 'तार-सप्तक' के प्राय: उपेक्षित रहने—और आठ वर्ष के बाद भी उसके दूसरे संस्करण की माँग न होने के बावजूद 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित कर दिया गया था, लौटने पर नवयुवक कवियों से बातचीत करने के दौरान, 'भोगा हुआ यथार्थ', 'क्षण की अनुभूति', 'लघु मानव की अभिव्यक्ति', 'अर्थ की लय' आदि टुकड़े उनके द्वारा बराबर प्रयोग किये और दुहराये जाने लगे। उसी साल 'नयी कविता' का पहला अंक निकला। उसकी कविताएँ मुझे उन कविताओं से बहुत दूर नहीं लगीं, जैसी कि मैं छह हज़ार मील की दूरी पर बैठा पिछले दो वर्षों में लिखता रहा था, मेरा मतलब है मुक्तछन्दवाली कविताओं से। अमूर्त सिद्धान्तों की बहस में तो मैं न पड़ा था, पर मेरा ऐसा ध्यान था कि हिन्दी की काव्य-मनीषा जिन भाव-विचारों से आन्दोलित हो रही थी, उसके स्पन्दनों का अनुभव मेरी कविता ने भी किया था। नये आन्दोलन से मैं भी किसी प्रकार सम्पृक्त हूँ, इससे अधिक सन्तोष इस बात का था कि हिन्दी की मनीषा एक संगठित इकाई है—उसमें कहीं कुछ सबल-सशक्त घटित होगा तो उसके प्रभाव से उसका दूर-सुदूर कोई कोना भी वंचित न रहेगा।

भाषा से सम्पृक्त होने का अर्थ मेरे लिए है—समाज से सम्पृक्त रहना। भाषा यदि समाज के चिन्तन-मनन, गति-विधि, विकास का अपरिहार्य माध्यम है तो कोई भी सप्राण लेखक, चाहकर भी, चूँकि वह भाषा के माध्यम से अपने को व्यक्त करता है, समाज से असम्पृक्त नहीं रह सकता।

नये आन्दोलन से मेरे सम्पृक्त होने की यह व्याख्या आपको न भाये तो आप यह भी कह सकते हैं कि मैं सींग कटाकर बछड़ों में शामिल होना चाहता हूँ और मैं इस पर कोई आपत्ति न करूँगा, आपत्ति करना होगा तो करेंगी मेरी 'बुद्ध और नाचघर' से लेकर 'जाल समेटा' तक की कविताएँ।

54-55 के युनिवर्सिटी सत्र की मेरी स्मरणीय यात्राएँ थीं कलकत्ता और पटने की और सत्रान्त पर ग्रीष्मावकाश में नेपाल की।

कलकत्ता में 'भारतीय संस्कृति संसद' नाम की एक संस्था है। उससे मेरा पुराना सम्बन्ध था। वह प्रति वर्ष बड़े पैमाने पर एक कवि-सम्मेलन कराती थी और मुझे ज़रूर बुलाती थी। विदेश में रहने के कारण दो-तीन वर्षों से मैं उसमें भाग न ले सका था। संसद की ओर से प्रस्ताव आया कि वह केम्ब्रिज से मेरे डाक्टरेट लेने के उपलक्ष्य में मेरे सम्मान में एक आयोजन करना चाहता है।

प्रस्ताव मुझे कुछ अजीब-सा लगा। मेरी नयी उपलब्धि का सम्मान जहाँ होना चाहिए था, वहाँ तो मुझे अँगूठा दिखाया जा रहा था और हिन्दी की एक साहित्यिक संस्था मेरा सम्मान करना चाहती थी।

मैंने उसे लिखा, 'यदि संसद मुझे औपचारिक सम्मान देने का आग्रह न करे और आयोजन को एक विशुद्ध कवि-सम्मेलन का रूप दे जिसमें मुझे अपनी नयी कविताएँ सुनाने का अवसर दिया जाय तो मुझे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार्य होगा।' संसद मान गया।

आधुनिकता के चातुर्य-चटुल युग में लोग एक ही तीर से कई लक्ष्य भेदना चाहते हैं। मंच पर कई मूर्तियाँ ऐसी थीं जिनका सम्बन्ध पत्रकारिता, युनिवर्सिटी-शिक्षण तथा बंगाल के सामाजिक जीवन से था। विदेशी डाक्टरी का ऐसा सुरखाब का पर मैं लगाकर गया था कि उसके लिए बधाई तो मुझे दी ही जानेवाली थी, फिर भी आयोजन का मुख्य बल मेरी नयी कविताओं के पाठ पर रहा। मुझे देखकर प्रसन्नता हुई कि मेरी नयी कविताएँ भी जन-मानस को छूती हैं। अधिक कहना मेरे लिए उचित न होगा।

उस आयोजन की एक खास बात मुझे आज तक याद है। उन दिनों भारत सरकार के डाक तार संचार मन्त्री रफ़ी अहमद क़िदवई कलकत्ता में थे। संसद ने उन्हें भी आमन्त्रित कर दिया था और वे आने को तैयार हो गये थे। मुझसे उनका व्यक्तिगत परिचय न था पर मेरे नाम से शायद वे अपरिचित न थे।

हमारे गुलामसंस्कारी देश में कुछ ऐसी प्रवृत्ति है कि शुद्ध साहित्यिक समारोहों में भी यदि राजनीतिक नेता पधार जायें तो लोगों का सारा ध्यान उन्हीं की ओर खिच जाता है—प्रबन्धक, पत्रकार, फ़ोटोग्राफ़र, ऐरे-ग़ैरे—सब उन्ही के पीछे-आगे, बायें-दायें लुलुआने लगते हैं। क़िदवई साहब के आने पर भी यही हुआ, पर उस दिन उनके व्यवहार से मुझे उनके बड़प्पन का एक अचूक सबूत मिला। शायद बर्क ने कहीं लिखा है कि अगर बड़े आदमी के साथ बरसात से बचने के लिए तुम्हें किसी छाया में खड़े होने का अवसर मिले तो वह इतने थोड़े समय में भी अपने बड़प्पन का कोई-न-कोई सबूत तुमको दे देगा। स्वाभाविक था कि मन्त्रीजी के आने पर लोग उन्हें मंच पर ले जाते और वे चले भी जाते। क़िदवई आये तो बिना किसी प्रदर्शन के, सहज रूप में, झट से श्रोताओं के बीच बैठ गये। अब क्या था, मंचस्थ लोग नीचे उतर पड़े, संसद के अधिकारी, उत्सव के प्रबन्धक उन्हें घेरकर उनसे ऊपर बैठने का आग्रह करने लगे। पर वे इसके लिए तैयार न हुए, बोले, 'साहब, यह अदीबों और शायरों का स्टेज है। मैं ठहरा सियासती गुण्डा। मैं इस पर पाँव रखने की जुर्रत नहीं कर सकता।' काश, क़िदवई जैसे गुण्डे कुछ और होते!

संसद ने मुख्य सम्मेलन के अतिरिक्त दो गोष्ठियों का भी आयोजन किया था, एक बंगाल क्लब में, जिसमें मेरे समवयस्क बंगला के कुछ साहित्यकारों को आमन्त्रित किया गया था, दूसरी किसी सम्भ्रान्त महिला के घर पर, जिसमें कुछ नवयुवक कवि बुलाये गये थे।

पहली गोष्ठी में बातें शुरू हुई नहीं कि रवीन्द्रनाथ टैगोर पर आ गयी—बंगला लेखकों से बातचीत करने का जब-जब अवसर मिला है, मैंने देखा है कि टैगोर की चर्चा कहीं-न-कहीं ज़रूर आ जाती है, यहाँ तो आनी ही चाहिए थी, मेरा परिचय ईट्स-साहित्य के विशेष स्वाध्यायी के रूप में दिया गया था। लोग टैगोर और ईट्स के व्यक्तिगत सम्बन्ध को जानते थे, और उनके सम्बन्ध में कुछ सही-ग़लत बातें—ईट्स ने गीतांजलि का अनुवाद किया था (उन्होंने केवल अनुवाद सुधारा था), उसकी भूमिका लिखी थी, टैगोर को नोबेल पुरस्कार दिलाया था (हालाँकि उन्हें खुद तब तक यह पुरस्कार नहीं मिला था) और यह कि वे

टैगोर के समान रहस्यवादी थे। यह धारणा भारत के कुछ-पढ़े, कुछ-सुने शिक्षित, शायद ज़्यादा ठीक होगा कहना अर्द्धशिक्षित, लोगों में इतनी व्यापक है कि मुझे बीसों जगह इसका प्रतिवाद करना पड़ा है। टैगोर और ईट्स के सम्बन्ध में समता का इतना आकर्षण नहीं था, जितना विषमता का। इस गोष्ठी में भी मैंने कहा कि टैगोर नि:संशय आस्था और वांछित की प्राप्ति के कवि हैं, ईट्स के सामने सर्वदा प्रश्न खड़े रहे, ईट्स की खोज हमेशा जारी रही। टैगोर का बल उपनिषदों से लेकर सन्त कवियों तक की परम्परा है, ईट्स ने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में व्याप्त विज्ञानपोषित सन्देहवाद के प्रभाव में ईसाइयत के भी सचेत संस्कारों को नकार दिया, और सर्वथैव अप्रतिबद्ध मानव के जग-जीवन-काल सम्बन्धी सौ-सौ सवालों का जवाब ढूँढ़ने के लिए वे कहाँ-कहाँ नहीं मारे-मारे फिरे। प्रश्न पूछा जा सकता है कि उन्होंने कुछ समाधान पाया? ईट्स ने न समाधान पाया, न तलाश छोड़ी। टेनीसन की 'युलिसीज़' शीर्षक कविता की पंक्ति है,

To strive, to seek to find and not to yield.

(यत्न करना, खोजना, पाना और न हार मानना)

रोमे रोलाँ ने इस पंक्ति को अपने किसी उपन्यास का मोटो बनाया, उसमें एक शब्द जोड़कर, पर उसकी प्रखरता सौ गुनी बढ़ाकर,

To strive, to seek, not to find and not to yield.

(यत्न करना, खोजना, न पाना और हार न मानना)

यह वाक्य मोटो के रूप में ईट्स की जीवनी को भी दिया जा सकता है। वे जीवन भर ऐसी लड़ाई लड़ते रहे जिसमें न वे विजेता हुए और न उन्होंने पराजय स्वीकार की। इस कारण वे उस मानव के सहज प्रिय हो जाते हैं जिसे जीवन अनवरत समर के रूप में प्राप्त हुआ है। टैगोर की शान्ति या तो सहज पलायन है या दुर्लभ साधना, पर आज के साधारण मनुष्य का साधारण भाग्य तो वह संघर्ष है, जिसमें विजयी होना तो सम्भव नहीं, पर वह अपने हठ से, ज़िद से, रगड़ से, दृढ़ता से अपनी पराजय को भी असम्भव कर सकता है। मैंने कहा, 'ईट्स और टैगोर के परस्पर-विरोधी दृष्टिकोणों का विश्लेषण मैंने अपने शोध-प्रबन्ध में किया है, कभी प्रकाशित हो तो देखियेगा।'

गोष्ठी में जिन बंगला साहित्यकारों और कवियों ने भाग लिया था, उनके नाम मुझे याद नहीं हैं, सिर्फ एक का छोड़कर—श्री बुद्धदेव बसु का। मैं उनको किसी अंश में अपना बंगाली 'काउण्टरपार्ट' (प्रतिरूप) समझता हूँ—उम्र में मुझसे केवल एक वर्ष दो दिन छोटे, उन्होंने भी अंग्रेज़ी लेकर उच्च शिक्षा प्राप्त की थी, जादवपुर युनिवर्सिटी में तुलनात्मक साहित्य (अंग्रेज़ी-बंगला) के प्रोफ़ेसर थे, लेकिन उन्होंने अपनी सृजन-प्रतिभा का लाभ बंगला को दिया था—कवि, उपन्यासकार, समालोचक, निबन्धकार, बाल - साहित्य - प्रणेता - अनुवादक, सम्पादक—सभी रूपों में वे बंगला साहित्य-संसार की ख्यातिप्राप्त विभूति थे। शरीर से दुबले-पतले, क़द में नाटे, रंग में साँवले, बड़ी-बड़ी आँखें, चौड़ा ललाट, कुछ चौड़ी नाक, फैला मुँह, छोटी ठोढ़ी—देखने में वे मुझे प्रतिभावान, मौलिक चिन्तक और परिश्रमी लगे थे। वे भी, मुझे बताया गया था, हाल ही में किसी अमरीकी युनिवर्सिटी में एक वर्ष अंग्रेज़ी साहित्य के अतिथि-प्रोफ़ेसर के रूप में काम करके स्वदेश लौटे थे। बंगला न जानने के कारण मैंने उनका साहित्य नहीं पढ़ा था, पर अपने बंगाली और बंगला जाननेवाले मित्रों से उनके विषय में बहुत कुछ सुन रक्खा था। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी, पर उनका विशेष योगदान

कविता के क्षेत्र में माना जाता था। लोगों का कहना था कि रवीन्द्र मेघ-मण्डित काव्य नभोमण्डल को भेदना बहुत कठिन काम था, और यह बुद्धदेव बसु और उनके कुछ साथियों ने किया था। आधुनिक योरोपीय साहित्य और विचारधारा के विदग्ध अध्येता होने के कारण, अपनी नवीनता के लिए उनको वहीं से प्रेरणा और शक्ति मिली थी, सिद्धान्त-रूप में फ़ायड से, उदाहरण-रूप में टी. एस. इलियट से—उनकी अभूतपूर्व कविताओं से, और उनकी काव्य-सम्बन्धी नयी स्थापनाओं से। मैं यह कहने का अधिकारी नहीं हूँ कि बुद्धदेव इलियट को कितना और किस रूप में बंगला काव्य के लिए ग्राह्य बना सके, अथवा बंगला काव्य पर इलियट का क्या प्रभाव पड़ा। मेरी ऐसी धारणा है कि कवि इलियट न तो स्थानान्तरणीय हैं न अनुकरणीय—कारणों की विवेचना के लिए एक स्वतन्त्र निबन्ध आवश्यक होगा—पर समालोचक इलियट किसी भी काव्य-मान्यता को आमूल हिला देने की क्षमता रखते हैं जिसके फलस्वरूप मौलिक सृजन निश्चय बदल जाता है।

इलियट ने, सम्भवत: एज़रा पाउण्ड के विचारों से सहमत होकर, कविता को उच्चतम बौद्धिक व्यवसाय माना। इसके बाद कवि से, और पाठक से भी, सम्यक अध्येता होने की माँग स्वाभाविक थी। काव्य-रचना में बौद्धिकता का योगदान पहले भी नकारा नहीं गया था, पर प्रमुखता प्रेरणा, अनुभूति और काव्य-वस्तु को दी जाती थी, इलियट के साथ प्रमुखता काव्य-रूप को मिल गयी, जिसकी अति में कविता बौद्धिक व्यायाम मात्र बनकर रह जा सकती थी। पर जब काव्य-रूप अति परिचय के कारण अवज्ञा पाने लगे, अनाकर्षक और प्रभावहीन हो जाये, तब काव्य को गतिशील रखने के लिए, उसे बदलना आवश्यक हो जाता है। और, यह कुछ उल्टी प्रक्रिया भले ही प्रतीत हो, लेकिन है यह सत्य कि काव्य-रूप बदलने से काव्य-वस्तु भी अन्तत: बदल जाती है। इलियट ने काव्य-रूप को भी बदला, काव्य-वस्तु को भी, और उन्होंने अंग्रेज़ी काव्य को निश्चय ही एक नया मोड़ दिया, पर उनकी अति बौद्धिकता उनकी सीमा बन गयी। काव्य-वस्तु के परिवर्तन में इलियट स्वयं तो अतीतोन्मुखी और रूढ़िवादी बने, पर उनके अन्य समकालीनों और परवर्तियों पर फ़ायड हावी होते चले गये।

ईट्स की स्थिति उनसे भिन्न थी। उन्होंने अपने काव्य-जीवन के प्रारम्भिक काल में आयरी तत्व लाकर रूमानियत को नयी आभा दी थी, परन्तु रचना-विधान उन्होंने उत्कृष्ट रूमानी कवियों का ही स्वीकार कर लिया था। बुद्धि को धार देनेवाली अकादमिक शिक्षा उन्हें नहीं मिली थी पर काव्य-प्रतिभा उनकी इतनी अग्रधर्षी थी कि उसने उनकी अप्राप्ति को भी सौभाग्यपूर्ण उपलब्धि माना। उन्होंने अपनी पूरी सह'नुभूति उस अ-बौद्धिक आन्दोलन को दी, जो उन्नीसवीं सदी की अति बौद्धिकता की प्रतिक्रिया में भीतर-भीतर पक रहा था। उन्होंने अपने को उस खुली, भोली, सहज विश्वासी मन:स्थिति के निकट रखने का प्रयत्न किया, जिसमें जीवन के उच्चतर सत्य और गहनतम मर्म स्वत: उन्मेषित होते हैं। काव्य-रूप को उन्होंने उसी सत्य और मर्म से निरूपित होने को छोड़ दिया। काव्य-जीवन के विकास-क्रम में, और उसके लिए उन्हें आधी शताब्दी का समय मिला था, उनमें बौद्धिकता भी जगी, यथार्थ ने भी उन्हें घूरा, पर कविता को कुछ प्राप्ति, कुछ उन्मेष, कुछ मन्त्रवत् वे जीवन के अन्त तक मानते गये। उनके समस्त काव्य में कहीं प्रतीक में, कहीं रूपक में, कहीं संकेत में, कहीं सन्दर्भ में, कहीं ध्वनि-लय में ही, कुछ अव्यक्त है जो अव्याख्येय है और सम्भवत: उसका

सतत आकर्षण।

सम्यक अध्येता, इलियट के शब्द-शब्द की व्याख्या कर सकता है, पर इसके बाद उसके लिए इलियट-काव्य का आकर्षण समाप्त भी हो जायगा, इलियट की बौद्धिक सूक्ष्मता और रुचि-विस्तार से वह एक बार चमत्कृत भले ही हो ले। यही उनकी सीमा है, जिसकी ओर मैंने ऊपर संकेत किया है। साधारण पाठक के लिए वे अग्राह्य हैं, अधीत के लिए अस्थायी रूप से आकर्षक। आश्चर्य नहीं, और यह मेरा नहीं, पाश्चात्य आलोचकों का कथन है, निश्चय ही किसी आधार पर, कि समय के साथ ईट्स की लोकप्रियता विद्वानों और साधारण पाठकों, दोनों में बढ़ी है, इलियट की घटी है। अंग्रेज़ी काव्य के विकास-इतिहास में दोनों का महत्त्व है। प्रतिभाओं की न तुलना ठीक होती है, न उनकी पुनरावृत्ति होती है, न उनकी नक़ल की जा सकती है। हाँ, उनसे सीखा बहुत कुछ जा सकता है।

बुद्धदेव ईट्स को उतनी सहानुभूति और समझदारी नहीं दे पाते थे, जितनी इलियट को, विशेषकर उनके फ्रायडीय प्रसार को; मेरे लिए इलियट न उतने ग्राह्य थे, न उतने आकर्षक जितने ईट्स; मैंने ईट्स-काव्य का अध्ययन पिछले पचीस वर्षों से किया था और उसमें मेरी रुचि अब भी बनी हुई थी। मैंने यह बात केम्ब्रिज में भी नोट की थी, जो प्रोफ़ेसर इलियट के प्रशंसक थे, वे ईट्स के नहीं, जो ईट्स के, वे इलियट के नहीं। लीविस बात-बात पर इलियट का नाम लेते थे, हेन से दो वर्षों में शायद ही कभी इलियट पर चर्चा चली हो।

ऐतिहासिक क्रम में, मुझे यह मानने में कोई आपत्ति न थी कि जहाँ तक अंग्रेज़ी काव्य का सम्बन्ध है, इलियट ईट्स के आगे के क़दम हैं। बुद्धदेव को इस पर विनोदपूर्ण आश्चर्य था, मेरी कुछ कविताएँ सुनने के बाद, कि मेरा सर्जक भी ईट्स के साथ, वह भी अधिक पूर्व-ईट्स के साथ, बँध गया है, जबकि वे इलियट-परवर्ती फ़्रायडवाद को भी पीछे छोड़, सद्यः प्रस्फुटित अमरीकी बीट-कविता को भी अपनी सहानुभूति दे सकते थे। सम्भवतः उन्हें अपने अमरीकी प्रवास में इस आन्दोलन को निकट से देखने का अवसर मिला था। केम्ब्रिज में—आक्सफ़र्ड-केम्ब्रिज अतीतोमुखी नहीं तो समय से कुछ पीछे ही रहने में गर्व-गरिमा का अनुभव करते हैं, सामयिक हवा के हर झोंके के साथ उड़ने में नहीं—बीट-आन्दोलन की कोई चर्चा मैंने न सुनी थी। नवयुवक नये कवि फ़्रायडीय परम्परा में ही नये-नये प्रयोग कर रहे थे; बीट—नयी कविता का कोई आन्दोलन-जैसा वहाँ मैंने न देखा था। लेकिन भारत के साहित्य-सचेत नगरों में नये आन्दोलन की प्रसव-पीड़ा मौन-भंग कर चुकी थी। उसे मैंने प्रयाग में अनका था, अब कलकत्ता में, (और आगे चलकर काठमाण्डू में भी)।

दूसरी गोष्ठी में अधिक लोग नहीं थे—केवल दस-बारह नवयुवक, उनके चेहरों पर असन्तोष, बेचैनी, आक्रोश, उनके स्वर में अनादर, विद्रोह, प्रखरता। उनके समक्ष मुझे ऐसा लगा जैसे एक पुराना, बीता युग नये, नयी सम्भावनाओं से उच्छल युग के सामने लाकर खड़ा कर दिया गया है। प्रत्याशा यहाँ आदर की नहीं करनी, आरोप-आलोचना के लिए तैयार होना है। बातें यहाँ भी रवीन्द्रनाथ से आरम्भ हुईं पर उनको सम्मान देने की अथवा उनके प्रति ऋणी या कृतज्ञ होने की भावना किसी में नहीं, जैसे वे बंगला के लिए कोई दुर्भाग्य सिद्ध हुए हों, जैसे उनके कारण बंगला की नयी प्रतिभाओं को उभरने में, बंगाल के बाहर उनके ज्ञात-विज्ञापित होने में बाधा खड़ी हुई हो, जैसे उनका समस्त वाङ्मय एक बड़ा सुखद, स्वप्निल, किन्तु क्षयकारी पलायन हो, जैसे उन्होंने बंगला भाषा को

कान्तासम्मित, मृदुल और लिजलिजी बना डाला हो, जैसे उसी के फलस्वरूप बंगाल के अकाल जैसी दुर्घटना बंगला में अमुखरित रह गयी हो, आदि-आदि (क्या आज बंगाल की भूखी पीढ़ी उसी उपेक्षित भूख का प्रायश्चित करने के लिए यौन-बुभुक्षा को मुखरित कर रही है ?)

प्रसंगवश मैंने बताया कि बंगाल के अकाल पर मैंने एक लम्बी कविता लिखी थी जिसका अनुवाद भी पुस्तक-रूप में बंगला में प्रकाशित हुआ था; भूपेन्द्र नाथ दास ने अनुवाद किया था; पर उसे किसी ने नहीं पढ़ा था। मेरा यह समझाने का प्रयत्न बेकार था कि बड़ी-से-बड़ी प्रतिभा भी देश-काल-भाषा, सामयिक भाव-विचारधारा से प्रभावित और परिसीमित होती है। यदि रवीन्द्र के विरुद्ध उनके जीवन-काल में ही विद्रोह उठ खड़ा हुआ था—बुद्धदेव और उनके सहयोगियों की रचनाओं में—तो भी श्रेय रवीन्द्रनाथ को देना पड़ेगा। जब कोई सबल शक्ति सामने हो, तभी विद्रोह खड़ा होता है, तभी उसमें बल आता है, तभी उसमें तेज़ी आती है, हमारे यहाँ कहावत है कि खूँटे के बल बछड़ा कूदता है। नवयुवकों की राय में बुद्धदेव आदि ने जो क्रान्ति की थी, वह भी अपूर्ण थी, बुद्धदेव स्वयं सौन्दर्यवादी थे, बादलेग़ (उन्नीसवीं सदी के मध्य का फ्रांसीसी कवि जिसका अति सौन्दर्यवाद अस्वस्थ और रुग्ण माना जाता है) से प्रभावित, जिसका अनुवाद भी उन्होंने किया था, उन्होंने केवल सौन्दर्य का स्तर बदला था, उनकी भाषा में भी साहित्यिकता है, कृत्रिमता है, प्रेमेन्द्र मित्र आदि वामपक्षी थे, प्रगतिवादी सिद्धान्त से बँधे। जीवन और यथार्थ को खुलकर बोलने का समय अब आया है। मध्ययुगीन रूढ़ियों, दासता की लम्बी परम्परा और उसके संस्कारों ने इस देश के मनस् को इतना दमित रखा है कि उसे अपने को विमुक्त, व्यक्त करने का कभी अवसर ही नहीं आया। पश्चिम में क्या हो रहा है, अभी तो आप देखकर आये होंगे, पूर्व अब पश्चिम का पिछलगुआ बनकर नहीं चल सकता, उससे काँधा से काँधा मिलाकर चलेगा, पश्चिम का मनस् भी ईसाइयत से दमित था, उसके विरुद्ध क्रान्ति से ही रूमानियत जगी थी, बन्धन कुछ ढीले हुए, पर वह स्वप्नों में खो गयी, आधुनिक मनोविज्ञान ने मनुष्य को फिर से आज़ाद किया है, विज्ञान ने मनुष्य को नया यथार्थ-बोध दिया है। व्यक्ति को पुरासंगठित समाज का अंग नहीं बनना है, नये व्यक्तित्वों का, नये अस्तित्वों का समाज बनाना है। भविष्य पुराने का विस्तार नहीं होने जा रहा है, बल्कि पुराने से टूटकर एक नवारम्भ। इस नये अभियान को कोई रोक नहीं सकता। असली क्रान्ति तो काव्य में, साहित्य में अब होने जा रही है, आदि, आदि।

नवयुवकों से अंशतः सहमत होना कठिन नहीं था, पर उनके बढ़-चढ़कर बोलने को मैं समझ रहा था, क्रान्ति का स्वर प्रायः असन्तुलित होता है। मुझे याद है, किसी नवयुवक कवि ने अपनी रचनाएँ भी सुनायीं। सुनकर मुझे लगा कि मैं बहुत पीछे छूट गया हूँ, और समय बहुत आगे चला गया है।

कलकत्ता से रवाना हुआ तो मेरे दिमाग़ में सवाल पर सवाल उठ रहे थे—क्या सचमुच भविष्य अतीत से एकदम टूटकर चलेगा ? या ऐसी कल्पना अतीत से उग्र असन्तोष का संकेत मात्र है ? क्या हमारा अतीत इतना निरर्थक है कि भविष्य के लिए उसे कुछ नहीं देना है ? या हमारा अतीत एक ऐसे वृत्त का अंग है जो अब पूर्ण हो चुका है और कोई नया वृत्त आरम्भ होनेवाला है ? (ईट्स-दर्शन के अनुसार—Surely some revelation is at hand; surely the second coming is at hand निश्चय ही कोई ऐशोन्मेष निकट है; निश्चय

ही कोई दूसरा अवतार होने को है।) क्या काव्य और साहित्य भी 'टेबुला-रासा' (सादी-स्लेट) पर लिखा जायगा? क्या वह सर्वदा, सर्वत्र लिखे के ऊपर लिखे जाने से ही मौलिक, अर्थवान और सारगर्भित नहीं बना? क्या समाज में रहने-वाला व्यक्ति अपनी इकाई में सारे बन्धनों को तोड़कर भी मुक्त हो सकता है? क्या वह सामाजिक संगठन में सहायक नियन्त्रण और संयमों के बिना उच्छृंखल ही नहीं हो जायेगा? क्या पश्चिम का मनोवैज्ञानिक सत्य हमारे सार्वजनिक जीवन का—पश्चिम में भी सार्वजनिक जीवन का—अंग हो चुका है? क्या पूर्व का, भारत का संस्कृत मनस् सचमुच आधुनिक चेतना के उसी स्तर पर है, जिस-पर पश्चिम का? क्या अपनी सामाजिक परिस्थिति से असम्पृक्त यह सारा पश्चिमी और आधुनिक तथाकथित यथार्थबोध हमारे कवियों को अपने ही देश में अजनबी नहीं बनाने जा रहा है? क्या इस यथार्थता के आवरण में एक नये तरह की अयथार्थी रूमानियत ही नहीं जन्म लेने जा रही है? क्या यह नया 'अभियान' भी एक नये तरह का पलायन ही नहीं होगा—पहलेवाले से केवल इसी रूप में भिन्न कि यदि वह अफ़ीम के नशे में सुला देता था तो यह निराश, हताश, कुण्ठित और विक्षिप्त बनाकर छोड़ देगा। जिसे नये कवि काँधा से काँधा मिलाकर चलना कह रहे हैं, क्या वह पिछलगुआपन और अनुकरण ही नहीं है? क्या मुख में अंग्रेज़ी भाषा, तन पर योरोपीय कपड़े, घर में मेज़-कुर्सी, आलमारी पर कामू, सार्त्र, काफ़का की किताबें रख लेने से ही हम आधुनिक पश्चिमी बन गये हैं? क्या भौगोलिक दूरियों के दूर हो जाने से ऐतिहासिक दूरियाँ भी मिट गयी हैं? मिट सकती हैं? क्या योरोपीय मनस् की बेचैनी और भारतीय मनस् की बेचैनी—अनुभूत होने पर भी—एक ही प्रकार की है? क्या यह बेचैनी बस सिर का दर्द है कि एक ही तरह की ऐस्प्रो की टिकिया दोनों के लिए डाक्टर साहब तजवीज़ कर दें? यदि नहीं—क्योंकि सामाजिक, ऐतिहासिक आदि पृष्ठभूमियाँ दोनों की भिन्न हैं—तो क्या साहित्य, काव्य, कला में उसकी अभिव्यक्ति का एक ही रूप होगा? क्या पश्चिम की ग़ुलामी से मुक्त हो जाने के बाद हमसे यह प्रत्याशा न की जायगी कि हम अधिक अपने होकर सोचें? क्या हम राजनैतिक ग़ुलामी से मुक्त होकर मानसिक ग़ुलामी को अभी भी सिर चढ़ाये हैं? क्या काव्य-कला-साहित्य के क्षेत्र में मौलिक चिन्तन करने, मौलिक दिशा लेने की शक्ति भारत ने खो दी है? क्या पश्चिम के अनुभवों, प्रयोगों से लाभ उठाकर पूर्व की मौलिक दृष्टि में वांछित परिवर्तन-सन्तुलन लाकर हम कोई ऐसी राह नहीं ले सकते जिस पर हमारे अपनेपन की—हमारी सभ्यता की—संस्कृति की, हमारे ऐतिहासिक चरणों की व्यक्तित्वपूर्ण छाप हो?

कलकत्ता से लौटते हुए मैं दो दिन के लिए पटना रुक गया। पण्डित अमरनाथ झा वहीं थे। युनिवर्सिटी की वाइस चांसलरशिप के तीन टर्म पूरे कर लेने पर—किसी नियम से शायद वे और अधिक उस पद पर न रह सकते थे—उन्होंने उत्तर प्रदेश पब्लिक सर्विस कमीशन की चेयरमैनशिप स्वीकार कर ली थी, और कुछ समय बाद उनका स्थानान्तरण बिहार पब्लिक सर्विस कमीशन में हो गया था जिसका मुख्यालय पटना में था। मेरे इंग्लैण्ड से लौटने के बाद कई बार उन्होंने मुझे पटना आने और अपने साथ ठहरने को आमन्त्रित किया था। मैंने सोचा, कलकत्ता से लौटते समय दो दिन उनके पास भी रुकता चलूँ।

मैंने उनको कलकत्ता से अपने आने के बारे में तार दे दिया था, वे मेरी

प्रतीक्षा में थे, और उन्होंने अपनी दो शामें मेरे लिए खाली रक्खी थीं। दिन को उन्हें अपने दफ्तर जाना था, मैं पटना कालेज चला गया, वहाँ मुझे श्री देवेन्द्रनाथ शर्मा से मिलना था, जो मेरे केम्ब्रिज-प्रवास के दिनों में लन्दन में थे और रूसी भाषा में डिप्लोमा कर रहे थे। मेरी समझ में आज तक नहीं आया कि इस हिन्दी व्याख्याता को सपरिवार इंग्लैण्ड जाकर रूसी में डिप्लोमा लेने की क्यों सूझी! जहाँ तक मुझे मालूम है, इस ज्ञान का उन्होंने कोई उपयोग नहीं किया। रूसी जानकर भी रूस में कोई काम पाने, वहाँ जाने की नौबत उनके लिए नहीं आयी। उन्होंने रूसी की किसी विशेष कृति का अनुवाद भी हिन्दी में नहीं प्रस्तुत किया—किसी लम्बी योजना पर काम कर रहे हों तो मैं नहीं जानता।

शर्माजी से मेरा परिचय पुराना था, मेरी कविता के प्रशंसकों में थे, इंग्लैण्ड में हम अधिक निकट आये। लन्दन जाता तो शर्माजी के यहाँ बढ़िया हिन्दुस्तानी खाना खाने को मिलता। शर्माजी मुझे खाना खिलाते और एवज़ में मैं उनको अपनी ताज़ी से ताज़ी कविताएँ सुनाता। केम्ब्रिज में लिखी मेरी बहुत-सी कविताओं के प्रथम श्रोता वे ही थे। ब्राह्मण के यहाँ भोजन करने में मैं विशेष तृप्ति का अनुभव करता हूँ। मैं कहता हूँ, 'तुम्हारे पूर्वजों ने हमारे पूर्वजों का कितना अन्न खाया है, उनके वंशजों को कुछ तो अदा करो!'

शर्माजी बड़े प्रेम से मिले। मेरे आने की खबर उनके विद्यार्थियों में पहुँची और शीघ्र ही कालेज-भर में फैल गयी। उन्होंने उनका कमरा घेर लिया, 'हमें बच्चनजी से कुछ सुनवा दीजिए, हम बिना उनकी कविताएँ सुने उन्हें जाने नहीं देंगे।' शर्माजी ने मुझसे विद्यार्थियों का आग्रह रखने का अनुरोध किया, मैंने सहमति दे दी। उन्होंने विद्यार्थियों को सूचित कर दिया कि शिक्षण के घण्टे समाप्त होने पर मैं कविता-पाठ करूँगा, सब हाल में एकत्र हों। लड़के हँसते-कूदते चले गये। अब दो घण्टे क्या किया जाये! उन्होंने कहा, 'चलिए, विभागाध्यक्ष श्री नलिन विलोचन शर्मा से मिल आयें।'

शर्माजी से मैं अपरिचित न था। कई वर्ष पूर्व आरा में रैदास-जयन्ती पर आयोजित कवि-सम्मेलन में मैं उनसे मिला था, उन्होंने सभापतित्व किया था, ठहरे भी थे हम दोनों एक ही कमरे में। शर्माजी को मेरी कविता से असन्तोष था, मेरी लोकप्रियता पर साश्चर्य क्षोभ, जो, उनकी दृष्टि में, मेरे ही लिए हानिकारक थी। वे निःसंकोची स्पष्टवादी थे। उनका कहना था, लोग मेरे काव्य-गुणों के कारण मुझ पर नहीं रीझते बल्कि इसलिए कि मैं उनकी चिर-दमित यौन-भावना को सहलाता-गुदगुदाता हूँ। भीड़ कविता की पारखी हो ही नहीं सकती। सन्त तुलसीदास भी अपने कवित्व-विवेक के बल पर जनप्रिय नहीं थे, बल्कि अपनी भक्ति-भावना के कारण। कालिदास उनके आदर्श कवि थे, आधुनिकों में टी. एस. इलियट; समालोचक इलियट से भी वे पूरी तरह अभिभूत थे। विशुद्ध कविता सम्बन्धी आधुनिकतम फ्रांसीसी और अंग्रेजी सब सिद्धान्तों से वे अभिज्ञ थे और उनकी अभ्यर्थना भी करते थे। शर्माजी बहु-पठित थे, विद्वान थे, पूर्व-पुरातन और पश्चिम-नवीनतम के अद्भुत सम्मिश्रण।

मैं उनका आदर करता था, पर उनके चिन्तन को एकांगी भी समझता था। बहस में तो उनसे नहीं पड़ना चाहता था, पर इतना ज़रूर मैंने कहा था, 'कविता का सम्बन्ध यदि जीवन जीने-भोगने से है (मेरे 'भोगने' की परिभाषा में त्यागने के लिए भी स्थान है) तो यौन-भावना अथवा भक्ति-भावना से कवित्व का उद्भव

क्यों ग़लत समझा जाय ? दुनिया की तीन-चौथाई कविता तो यौन-भावना से ओत-प्रोत होगी, और फ्रायडीय मत मानें तो समस्त कविता किसी-न-किसी रूप में यौन-भावना ही की प्रतिमूर्ति है।' शर्माजी ने कहा, 'आप मेरी बात नहीं समझे।' मैंने कहा, 'आप भी मेरी बात नहीं समझे, इसलिए अब हम एक-दूसरे को समझने-समझाने का प्रयत्न न करके अपने-अपने को सम्प्रेषित करें—यानी आप अपनी कविताएँ मुझे सुनायें, मैं अपनी कविताएँ आपको सुनाऊँ।' हमारी पिछली मुलाक़ात इसी नोट पर समाप्त हुई थी।

किसी को अभिभूत करने में उनके दिमाग़ से उनकी देह कम नहीं थी—बड़ा-सा सिर, बाहर निकलती-सी बड़ी-बड़ी आँखें और उन पर मोटे फ्रेम का मोटे-मोटे लेंस का चश्मा, देव-सी काया, फूली-फैली-ढीली, शुण्डहीन लम्बोदर साकार। कुर्सी में कसे बैठे थे।

पहले तो केम्ब्रिज में मेरे काम-धाम की चर्चा हुई, फिर उन्होंने मुझ पर अपना आक्रमण शुरू किया। प्रवास से भारत की पत्रिकाओं के लिए भेजी मेरी कविताएँ वे देखते रहे थे, उन्हें पहले भी इस पर आश्चर्य था कि हिन्दी कवियों में अंग्रेज़ी की उच्चतम शिक्षा से दीक्षित होकर भी मैंने आधुनिक पश्चिमी या अंग्रेज़ी काव्य-विधा से कुछ भी नहीं सीखा था, अब तो उन्हें और भी निराशा थी कि दो वर्ष इंग्लैण्ड में रहकर भी मैं छायावाद की ह्रासशील प्रवृत्तियों से ही बँधा था। ईट्स को वे पुराने खेवे के कवियों में गिनते थे, और उन्हें आशंका थी कि ईट्स से प्रतिबद्ध होकर मैं हिन्दी के नये प्रयोगों के लिए और अप्रस्तुत हो जाऊँगा।

मैंने कहा, 'शर्माजी, न मैं छायावाद से बँधा हूँ, न ईट्स से, न कविता से, मैं तो अपने से बँधा हूँ।'

शर्माजी बोले, 'पूरे नहीं आप अपने से उतना ही बँधते हैं जितने से आप देखते हैं कि आप दूसरों से टूटते नहीं। आप अपने से ही बँधते तो बहुत बड़े कवि होते, भले ही इतने लोकप्रिय नहीं। आपका लोक-मोह आपको अपने से पूरी तरह प्रतिबद्ध होने नहीं देता।'

मैंने उत्तर दिया, 'मैं तो नहीं समझता कि मेरा सर्जक मेरे अतिरिक्त किसी दूसरी ओर देखता है, मैं सच्चाई से कहता हूँ कि यह मेरे सर्जक की सीमा नहीं, हाँ, यह मेरे व्यक्तित्व की ही सीमा हो तो मैं नहीं कह सकता। मैं अपने को अद्वितीय, असाधारण, नहीं समझ पाता।'

शर्माजी के पास उत्तर मौजूद था, 'कवि तो असाधारण होने से ही कवि होता है।'

मैंने विनम्रतापूर्वक कहा, 'यदि मैं साधारण होकर असाधारण होने का 'पोज़' बनाऊँ तो यह और बड़ा झूठ होगा, जो मेरे लिए और बड़ी सीमा बनेगी।'

नलिनजी को बहुत-सी बातों के बारे में कहना था—अपनी कविता, कविता नहीं 'प्रपद्य', अपने दो और सहयोगियों—केसरी कुमार और नरेश, के प्रपद्य, (तीनों के नामों के प्रथमाक्षरों को जोड़कर अपने गुट को उन्होंने 'न. के. न.,' त्रयी की संज्ञा दी थी, शायद छायावादी युग में उद्घोषित वृहत्‌त्रयी—पन्त, प्रसाद, निराला—लघुत्रयी या वर्मात्रयी—महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा—के जोड़ पर; इतिहास अपने को दुहरा रहा था।), 1952 का प्रयोग दश-सूत्री घोषणा-पत्र—जिसे हाल ही 'प्रपद्य-द्वादश सूत्री' के रूप में सम्वर्द्धित किया गया था, प्रपद्यवाद-दर्शन, अज्ञेयी प्रयोगशीलता और 'न के नी' प्रयोगवादिता में अन्तर, और 'तार सप्तक' (1943) के कवियों से भी एक सप्तक पूर्व (यानी

1936 में) हिन्दी में प्रयोगवादी कविताएँ लिखने और इस प्रकार हिन्दी के सर्व-प्रथम प्रयोगी होने का अपना दावा। वे निकट भविष्य में अपने न के न-त्रयी का एक सिद्धान्त सुपोषित संकलन भी प्रकाशित करने की योजना बना रहे थे जिसके बाद, उन्हें आशा थी, प्रपद्यवाद का जगन्नाथी-रथ सब वाद-विवादों को कुचलता-पुचलता हिन्दी कविता के पथ पर अबाध गति से अग्रसर होगा।

शर्माजी की बातें सुनकर मुझे ऐसा लगा कि उन्होंने 1936 में ही प्रयोगवादी कविताएँ क्यों न लिखी हों, उसके बाद का समय तो जनसाधारण में दिनकर और बच्चन की लोकप्रियता का ज़माना था, और स्कूल-कालेजी धरातल पर पाठ्य-पुस्तकिया समालोचक पन्त और निराला की प्रगतिवादी प्रवृत्तियों के विवेचन में उलझे थे—हिन्दी का कोई तीसरा धरातल तो है नहीं—लेखक-पाठकों का ही हम एक तीसरा धरातल न मान लें तो। फलस्वरूप, नलिनजी के प्रयोगों पर कहीं भी ध्यान दिया गया हो, इसकी मुझे जानकारी नहीं, नलिनजी भी शान्त हो गये। प्रथम 'तार सप्तक' (1943) भी अर्चचित रह गया था। पर अज्ञेयजी सहज हार माननेवाले नहीं थे। उन्होंने 1951 में दूसरा 'तार सप्तक' भी प्रस्तुत कर दिया था। तब तक प्रयोगवाद को न तो कोई मान्यता मिली थी, न उसकी कोई विशिष्ट उपलब्धि ही ध्यानाकर्षित कर सकी थी, लेकिन मोदर्रिस-समालोचकों के लिए उसकी उपेक्षा करते जाना सम्भव न था। तिरस्कारी स्वरों में ही सही, उसकी चर्चा चल पड़ी थी। अब नलिनजी फिर जागे। प्रयोग की उद्भावना तो उनकी थी, पर उसका श्रेय अज्ञेयजी लिये जा रहे थे। उन्होंने अज्ञेय की प्रयोगशीलता को अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण बताया और प्रयोगवाद का एक नया घोषणा-पत्र निकाला, और नाम-साम्य-जनित ग़लत-फ़हमी को बचाने के लिए अब अपने वाद को 'प्रपद्यवाद' की संज्ञा देनी चाही। शर्माजी की विचार-प्रक्रिया के पीछे संकुचित प्रान्तीयता भी काम कर रही हो तो कोई आश्चर्य नहीं, उनकी इस प्रवृत्ति के और भी संकेत मैंने पाये थे,

> **पटना-कलम है यह।**
> **पश्चिम की कला का लगा है कलम इसमें···**
>
> **—चित्राधान—नलिन**

प्रान्तीयता के साथ विदेशीयता पर गर्व। करेला और नीम चढ़ा।

हाल से विद्यार्थियों का कोलाहल सुनायी पड़ने लगा था। हम लोग वहाँ पहुँचे। देवेन्द्रनाथजी मेरे विषय में कुछ कहने को खड़े हुए, पर श्रोताओं ने उन्हें बिठला दिया। वे व्याख्यान सुनने नहीं, कविता सुनने आये थे। मैंने अपनी नयी-पुरानी कविताएँ सुनायीं, विद्यार्थियों की फ़रमाइशें पूरी कीं, 'मधुशाला' सुनायी जिसके लिए एक स्वर से माँग थी। नवयुवकोचित उच्छल उमंग-उल्लास के बीच नलिनजी गम्भीर मुद्रा में बैठे रहे, यह मेरी कविता पर उनकी मौन टिप्पणी थी। नलिनजी से यही मेरी आखिरी भेंट थी। चार वर्ष बाद मेरी 'आरती और अंगारे' (1958) छपी तो परिषद पत्रिका की ओर से उनके पास समालोचनार्थ भेजी गयी। मैंने देखा तो नहीं, पर मुझे किसी ने बताया कि उन्होंने केवल एक पंक्ति लिखी थी, 'इन रचनाओं को मैं कविताएँ नहीं मानता, इसलिए इनकी आलोचना करने से इन्कार करता हूँ' या इसी आशय का कुछ। 'माने न माने गुल ही न माने बाग़ तो सारा माने है' (मीर से 'जाने' को 'माने' करने के लिए क्षमायाचना सहित)।

आठ बरसों के अन्दर 'आरती और अंगारे' के चार संस्करण हुए, और न वह कोर्स में लगी है न सरकारी खरीद पर चढ़ी है।

1961 में गृह-मन्त्रालय की किसी समिति में बैठा था कि दिनकरजी ने आकर समाचार दिया 'नलिनजी चल बसे।' सुनकर दिल डूब गया। मुझसे 9 बरस छोटे थे। मुझसे छोटों की मृत्यु मुझे बहुत कष्ट देती है—मुझे वह बड़ी अप्राकृतिक लगती है। जो पहले आया है वह पहले जाय, जो बाद को आया है बाद को, पर बहुत बार, शोक है, ऐसा नहीं होता। मैंने उनकी मृत्यु पर एक कविता लिखी—'डूबनेवाली नावें', जो 'नयी धारा' के नलिन स्मृति अंक में छपी। अंक आया तो अपनी कविता देखते हुए न जाने क्यों, मेरा ध्यान इस ओर चला गया कि नलिन-जी स्वयं इसे देखते तो कहते, 'मैं इसे कविता नहीं मानता'। और मैं उनसे कहता, 'ऐसा कहने के आपके अधिकार को मैं मान देता हूँ, ऐसा लिखने के मेरे अधिकार को आप मान दें।'

कालेज से लौटा तो झा साहब अपने कमरे में अकेले बैठे चाय पी रहे थे। धीमे-धीमे रेडियो बज रहा था, और सब शान्त। उनका बँगला सेक्रेटेरियट के समीप था जो एक बड़ी शान्त बस्ती है, विशेषकर दफ़्तर के घण्टों के बाद। वहाँ रहन-सहन का उनका वही तरीक़ा था जो इलाहाबाद में—वैसे ही किताबों से लदी आलमारियों के कमरे में उनकी मेज़-कुर्सी, वैसे ही मेज़ पर नयी-नयी किताबें, वही नियमित कार्यक्रम, सुबह-शाम आये हुए लोगों से मिलना, दिन को दफ़्तर, खाली समय में चिट्ठियाँ लिखना या किताबें पढ़ना। घर में सिर्फ़ तीन नौकर थे, एक उनका खाना बनाता था, एक ऊपर का काम करता था, एक चपरासी जो उनके कमरे के बाहर खड़ा रहता था, आनेवालों की सूचना उन्हें पहुँचाने के लिए —सब अपना काम जानते हुए और यथासमय करते हुए।

अपने यौवन में ही जो विधुर-एकाकी जीवन उन्होंने अपनाया था, उसे बड़ी खूबी के साथ निभा दिया था। वे मुझे थके-उदास लगे, कुछ अस्वस्थ-से। पर, चाय पीने के बाद जो एकाध प्रश्न मुझसे उन्होंने पूछे उससे मुझे लगा कि वे मेरी कुछ सुनने को उत्सुक हैं, उनके बिना पहल किये उनसे बात करने की हिम्मत किसे थी! सारी शाम मेरी गाथा में ही बीत गयी, मैंने अपनी थीसिस भी उन्हें दिखायी जो मैं साथ लेता गया था। उन्होंने उसे उलटा-पलटा, बोले, 'अच्छा काम कर डाला तुमने, प्रकाशित करा देना, इससे तुम्हारा पथ प्रशस्त होगा।'

खाना खाने के बाद उन्होंने मेरी कविताएँ सुननी चाहीं। वे मेरे 'मधुशाला', 'मधुबाला' के बड़े प्रेमी थे। उस रात 'मधुबाला' से सिर्फ़ एक कविता उन्होंने सुनी—'इस पार—उस पार'। फिर उन्होंने 'निशा निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत' के गीतों के लिए आग्रह किया। उन्हें अपने भावों पर ज़बरदस्त संयम था। उन्होंने अपनी आँखें मूँद लीं। मैं बीच-बीच में उनकी ओर देख लेता था। उनके मूर्त मौन ने उस रात मुझसे बहुत कुछ कहा। ग्यारह बजे उन्होंने धीमे से कहा, 'जाओ, अब सो रहो।'

दूसरी शाम को उन्होंने मेरे सम्मान में अपने बँगले के लान में 'एटहोम' का प्रबन्ध किया था। चालीस-पचास लोग उसमें आये थे—झा साहब के मित्र, बहुत-से इलाहाबाद युनिवर्सिटी के पूर्व छ त्र, कुछ साहित्यिक बन्धु। झा साहब ने मुझे अपने साथ ले जाकर सबसे परिचित कराया। समाप्ति पर कविता की फ़रमाइश तो होनी ही थी। मैंने कुछ नयी कविताएँ सुनायीं। 'मधुशाला' सुनाये बिना कहाँ

पिण्ड छूटता !

जब सब लोग चले गये तो मैंने झा साहब से कहा, 'आज तो आपने मुझे बड़ा आदर दिया।'

'क्योंकि तुमने मेरे जजमेण्ट को जस्टीफ़ाई किया,' वे बोले, 'जब मैंने युनिवर्सिटी में तुम्हें लिया था तब लोगों ने कहा था, बच्चन की गति अंग्रेज़ी में नहीं, झा ने उनकी हिन्दी कविता के प्रेम में आकर उन्हें अंग्रेज़ी विभाग में रख दिया।'

चीज़ों को देखने का झा साहब का अपना अलग दृष्टिकोण था जिसमें सबसे अधिक महत्त्व वे अपने को देते थे। इसमें सन्देह नहीं कि वे आत्मकेन्द्रित थे, पर बड़ी गरिमा के साथ, उसमें ओछेपन के लिए कहीं जगह नहीं थी। उनको बुरा-भला कहनेवाले, उनकी निन्दा करनेवाले कम नहीं थे। यह कहना ग़लत होगा कि उनको उन्होंने क्षमा कर दिया था। उनको उन्होंने उपेक्षापूर्वक अनसुना रक्खा था। वे बड़े थे तो अपने अधिकार से, किसी को छोटा करके नहीं, और कोई उनको किसी साज़िश से छोटा कर सके, इसके बहुत ऊपर। उनका उठना, बैठना, चलना, हँसना, बोलना, देखना, सुनना, उनकी पोशाक, उनके कमरों की साज-सज्जा, उनकी हर बात ऐसी होती थी, जिसे अंग्रेज़ी में 'स्टडीड' कहेंगे, हिन्दी में शायद सुविचारित या सविवेक। हर बात सही करने के अभ्यास ने उन्हें यह आत्मविश्वास दे दिया था कि वे जो करते हैं, वही सही है। उनका अपने हर क्षण पर नियन्त्रण था। वे जो करते थे, वे जानते थे; कुछ उनसे हो गया है, ऐसी स्थिति ने श.यद ही कभी उनका सामना किया हो। वे अपने व्यक्तित्व में बेजोड़ थे।

उस रात भी खाना खाने के बाद देर तक उन्होंने मेरी कविताएँ सुनीं। उनकी राय थी कि मैंने हिन्दी गीतों के आयाम को बढ़ाया है, जैसे मिल्टन ने सानेट के आयाम को विस्तृत किया था— कुछ ऐसे विषयों पर सानेट लिखकर, जिनकी परम्परा नहीं थी, पर उनकी सम्मति थी, ऐसे गीतों में टेक की दुहराहट नहीं होनी चाहिए। टेक गीतों में इस बात का संकेत करते हैं कि जैसे भावना-कल्पना-जगत में घूम-फिरकर आदमी फिर उसी जगह पर लौट आया है जहाँ से वह चला था। गीत की भूमि पर विचरण कर आने से भावना जैसे अपनी ही जगह पर अधिक गहरी हो गयी है। झा साहब की राय थी कि मेरे नये गीत एक जगह से दूसरी जगह ले जाते हैं; हम लक्ष्य पर पहुँच उलटकर यह क्यों देखें कि कहाँ से चले थे; देखें ही नहीं बल्कि लौटकर वहाँ पहुँच भी जायें तो कैसा उपहासास्पद होगा। टेक की तुकें मिलें तो कोई हर्ज नहीं, उससे गीत में ऐकिकता (Unity) और गठन बनी रहती है, पर टेकों की दुहराहट गीतों में सन्निहित प्रगति का प्रभाव मार देती है।

गुरु थे, उनकी बात मैंने सुन ली, प्रतिवाद मैंने नहीं किया, किसी अंश में उनका कहना तर्कसंगत भी था। लेकिन अपने नये गीतों को मैं सीधी रेखा मानने को तैयार नहीं था। टेक को मैं केन्द्र-बिन्दु मानता हूँ। वहाँ से चलकर परिधि को एक बिन्दु पर छू लिया और फिर केन्द्रबिन्दु पर लौट आये, और फिर चलकर परिधि को दूसरी जगह पर छुआ, इस प्रकार चार-पाँच स्टैंज़ा में चार-पाँच बार परिधि छू ली, किन्तु अलग-अलग बिन्दुओं पर। यहाँ प्रगति है, क्रम है, पर एक वृत्त की परिधि पर। मेरी ऐसी धारणा है, गीत बिना एक भाव-जगत को वृत्त-बद्ध किये नहीं लिखा जा सकता। अन्य स्फुट कविताओं के लिए सीधी रेखा का रूपक अधिक उपयुक्त होगा। झा साहब को आश्चर्य था कि दो वर्षों के अन्दर इतनी बड़ी आलोचनात्मक थीसिस लिखने के बावजूद मैंने सौ से ऊपर कविताएँ कैसे लिखी

थीं। उनका अन्तिम रिमार्क था, 'दि पोएट इज़ इनकरिजिबिल इन यू' (कविता तुम्हारा पिण्ड नहीं छोड़ती)।

रात बहुत हो गयी थी। न जाने किस प्रसंग में उनके स्वास्थ्य पर बात चल पड़ी। वे अपनी व्यक्तिगत बातें किसी से नहीं कहते थे, पर उनके मुँह से निकले तीन-चार वाक्य रात भर मेरे मन में घुमड़ते रहे—जिसे हार्ट अटैक हो जाये उसे किसी भी समय जाने के लिए तैयार रहना चाहिए···मृत्यु निकट आती है तो हर मनुष्य को उसका आभास हो जाता है···सफल से सफल व्यक्ति को भी जीवन अन्त में निराश और उदास ही छोड़ जाता है।

दूसरे दिन सुबह मैं उनसे विदा ले इलाहाबाद के लिए चल पड़ा। झा साहब के निराश और उदास होने का कारण था। विधुर एकाकीपन की परिणति जो होती है, उसके लिए वे तैयार थे, उसी के लिए वे बने थे, इसके अतिरिक्त और कुछ उनसे निभता भी नहीं। मेरा संकेत उसकी ओर नहीं है।

पश्चात्ताप का शब्द उनके कोश में नहीं था। बात यह थी कि जीवन भर वे युनिवर्सिटी, शिक्षा, विद्यार्थियों के सम्पर्क में रहे थे। पिछले कुछ वर्षों से जब से वे पब्लिक सर्विस कमीशन के चेयरमैन रहे थे, तब से विद्यार्थियों का सजीव सम्पर्क उनसे छूट गया था। दफ़्तरी जीवन में वे इस अभाव को बराबर महसूस करते रहे। फिर, वे भारत के गिने-चुने शिक्षाविदों में थे; उन्हें शायद यह आशा थी कि स्वतन्त्रता मिलने पर भारत की सरकार उनके ज्ञान और अनुभव का कुछ उपयोग शिक्षा के क्षेत्र में करेगी, परन्तु उनकी उपेक्षा की गयी। किसी ने शासन तन्त्र में इसका सुझाव दिया भी तो—अपने से वे सरकार के पास पहुँचनेवाले थे नहीं—किसी बड़े नेता ने यह कहा कि 'उनमें कल्पना का अभाव है।' पता नहीं, जिनमें कल्पना का भाव समझा गया उन्होंने शिक्षा में कौन मौलिक क्रान्ति की।

झा साहब से यह मेरी अन्तिम भेंट थी। कुछ ही महीनों बाद उनके देहावसान का दुखद समाचार मिला। वे जान गये थे कि उनकी मृत्यु निकट है और वे इसके लिए तैयार भी थे। बाद को मुझको किसी ने बताया कि पिछली बार जब वे इलाहाबाद आये थे तो अपने शव-दाह के लिए कई मन चन्दन की लकड़ी भी चुपचाप साथ खरीदकर ले गये थे। उनके स्वभाव में अभिजात का जो सर्वविदित और सर्वत्र प्रकट संस्पर्श था, उसके अनुरूप तो यह था ही कि उनकी लाश साधारण लकड़ियों से नहीं, चन्दन की लकड़ियों से जलायी जाये, कुछ और भी था। उनके शत्रु भी शायद ही यह कह सकें कि उन्होंने अपने जीवन में जान-बूझकर किसी को भी हानि पहुँचायी थी—वे सम्भवत: नहीं चाहते थे कि जो उनका दाह-संस्कार करने के लिए आयें उन्हें उनकी जलती लाश की दुर्गन्ध भी लगे। उनका आभिजात्य उनके रहन-सहन में, बात-व्यवहार में, उनकी नैतिकता में, बौद्धिकता में सब जगह सक्रिय, समर्थ और प्रबल था, और अन्त में वह करुण भी हो उठा था—अपने हाथों अपनी चिता की लकड़ी भी खरीदना। उस स्थिति से बस एक क़दम पीछे।

> **अपने पर मैं ही रोता हूँ,**
> **मैं अपनी चिता सँजोता हूँ,**
> **जल जाऊँगा अपने कर से रख अपने ऊपर अंगारे।**
> **खिड़की से झाँक रहे तारे!**

कलकत्ता-पटना में मुझे जो स्नेह, संवेदन, समादर मिला था उसके बाद

इलाहाबाद लौटने पर अपने सहयोगियों से मिली परिचित उपेक्षा और ईर्ष्या-द्वेष भरी दृष्टि मुझे अधिक खलने लगी थी—मैं सोचता, मैंने इनका क्या बिगाड़ा है, इन्हें किस तरह हानि पहुँचाई है, किस तरह इनका अपमान किया है, किस तरह इन्हें चोट पहुँचाई है या इन्हें दुखी किया है जो मुझे ऐसे व्यवहार का अधिकारी माना जाता है !

जो मैंने किया था, वह तो सिर्फ़ इतना था कि मैं केम्ब्रिज से एक डिग्री लाया था जो प्राय: सहज प्राप्य न थी।

अगर मैं अपने देश की मनोवृत्ति समझता तो मुझे यह पूर्वाभास हो जाना चाहिए था कि मेरी यह लब्धि आसानी से लोगों के गले न उतर सकेगी। तब उनका व्यवहार मुझे अप्रत्याशित न लगता।

क्या यह सच नहीं है कि ईर्ष्या पूर्व का नहीं तो भारत का अपना विशेष गुण है, जैसे फूट यहाँ का विशेष फल ?

इंग्लैण्ड में किसी साधारण परिचित से भी अपनी किसी प्राप्ति, लब्धि या उपलब्धि का वर्णन करो तो उसके मुँह से निकलता है, 'हाउ नाइस !'—'क्या अच्छी बात है !' उसके मुख की प्रसन्नता यह व्यक्त करती है कि उसे आपके सुख वृद्धि, समृद्धि में ख़ुशी है। अपने देश में यह अनुभव असम्भव नहीं तो दुष्प्राप्य अवश्य है। आपकी बात सुनते ही लोगों की नसें खिंच जाती हैं, चेहरे उतर जाते हैं और एक औपचारिक दिखावे का जड़-प्रसन्न मुखौटा चढ़ाने का प्रयत्न प्रारम्भ हो जाता है। तुलसीदास खल की वन्दना करने चलते हैं तो सबसे पहले उनका ध्यान उसके इस अवगुण पर जाता है, जिसे वे कई तरह से कहते हैं, 'जे बिनु काज दाहिनेहु बायें,' 'उजरे हरष विषाद बसेरे', 'परहित घृत जिनके मन माखी', 'पर-हित हानि लाभ जिन्ह केरे', 'उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति'। नारदमोह प्रसंग में भी नारद के मुख से नारायण के लिए कहलाते हैं, 'पर सम्पदा सकहु नहिं देखी, तुम्हरे इरिषा कपट विशेषी'; रामराज्याभिषेक में देवताओं के विघ्न डालने पर वे उनके इसी अवगुण की ओर संकेत करते हैं, 'ऊँच निवास नीच करतूती, देखि न सकहिं पराइ विभूती,' और भी कितनी जगहों पर उन्होंने इस ईर्ष्या का बड़े दर्द के साथ वर्णन किया है—उन्हें कम ईर्ष्या का सामना करना पड़ा होगा !

योरोप और भारत की मनोवृत्ति में अन्तर का कारण क्या है ? हमारे जीवन का सर्वत्र-व्यापी अभाव ही शायद कारण नहीं है—हाय, फ़लाँ को मिल गया, मैं टापता ही रह गया। ऐसी हालत में फ़लाँ के प्रति ईर्ष्या होना स्वाभाविक है। इस ईर्ष्या का डंक सौ गुना तीखा होगा, यदि देनेवाला सकारण देता है और पानेवाला सयत्न पाता है। पश्चिमी जीवन में एक शब्द चलता है 'लक'। 'लक' का अर्थ उसका हिन्दी पर्याय देने से स्पष्ट न होगा। 'लक' का अर्थ समझना होगा। 'लक' स्वेच्छाचारी है, अन्धा-बहरा है, पागल है, पागल नहीं है तो तर्क-परिचालित अथवा दायित्व-बद्ध तो हरगिज़ नहीं है। वह किसी को कुछ देता है तो किसी कारण नहीं, उसके किसी तप-साधन के फलस्वरूप नहीं। किसी को पश्चात्ताप करने की आवश्यकता नहीं कि उसने प्रयास नहीं किया। किसी को श्रेय देने की आवश्यकता नहीं कि उसने प्रयास किया, साधना की। लेकिन हमने तो 'भाग्य' को भी 'कर्म' कर डाला है—'करम फूट गया', 'करम में नहीं था'। किसी को कुछ मिले, कोई कुछ पाये तो हम उसे उसके कर्म का फल मानते हैं। कर्म देखकर दिया गया है, कर्म करके पाया है, और हाय, हम कर्म नहीं कर पाये, न पूर्व जन्म में, न इस जन्म में।

यही 'हाय' हमारी ईर्ष्या बनती है—क्योंकि यह हमको हीन, दोषी, कर्म-कुण्ठित, प्रमादी, लापरवाह होने का दुःखद और दाहक आत्मबोध कराती है। जाति-मनोवैज्ञानिक शायद और भी कारण सोच सकते हों।

सत्रान्त पर जब युनिवर्सिटी गर्मी की छुट्टियों के लिए बन्द हुई तो मैं तेजी और बच्चों को लेकर नेपाल चला गया और तभी लौटा जब युनिवर्सिटी खुलने को हुई।

मेरे मित्र श्री महाराज कृष्ण रसगोत्र, आई. एफ. एस., उन दिनों नेपाल स्थित भारतीय राजदूतावास में सचिव के पद पर काम कर रहे थे। राजदूत थे श्री भगवान सहाय, उनसे मेरा व्यक्तिगत परिचय नहीं था, पर उनके नाम-काम से मैं अपरिचित नहीं था, इलाहाबाद युनिवर्सिटी के पूर्व छात्र थे। और वे भी मेरे नाम-काम यानी मेरे कवि रूप से अपरिचित न थे।

रसगोत्र ने मुझे गर्मी की छुट्टियाँ सपरिवार काठमाण्डू में बिताने को आमन्त्रित किया और मैंने उसे स्वीकार कर लिया। इलाहाबाद ने मेरे साथ जो व्यवहार किया था, उससे मेरे मन में उसके लिए इतनी वितृष्णा जग उठी थी कि इलाहाबाद से कहीं दूर चले जाने की बात मेरे लिये एक बड़ी राहत-सी लगी। जब से मैं विदेश गया था, तेजी और बच्चे भी कहीं बाहर न गये थे। मुझे लगा, मेरी यह यात्रा उन लोगों के लिए भी सुखकर परिवर्तन सिद्ध होगी।

विद्यार्थी जीवन से मेरे मन में नेपाल के लिए कुतूहल था। नक़शे पर भारत के उत्तर में, कम चौड़े ज़्यादा लम्बे, इस देश को दिखाकर हमारे अध्यापक यह बताना न भूलते थे कि नेपाल एक स्वतन्त्र देश है, और अपनी गुलामी के दिनों में यह कल्पना करने में मन में एक प्रकार का हर्ष होता था कि नेपाल में कुछ ऐसी शक्ति तो होगी कि जब अपना लम्बा-चौड़ा देश अंग्रेज़ों से पराजित हो गया था तब नेपाल ने आज़ादी का झण्डा ऊँचा रक्खा था। घर-मुहल्लों में नेपाल की चर्चा चलने पर यह किंवदन्ती भी सुनायी देती थी कि पशुपतिनाथ के मन्दिर में पारस पत्थर है, जिसे छुलाने से लोहा सोना बन जाता है। यदा-कदा पशुपतिनाथ की तीर्थयात्रा से लौटे धर्मात्मा लोग अतिशयोक्तियों में वहाँ का वर्णन करते थे—नेपाल के राजा वास्तव में पशुपतिनाथ भगवान हैं, राजा-राणा उनकी ओर से शासन करते हैं। भगवान-शासित देश कैसा होगा! तुलसीदास का राम-राज्य वर्णन कानों में ध्वनित-प्रतिध्वनित होने लगता। हमारी युनिवर्सिटी के इतिहास विभाग के डा. ईश्वरी प्रसाद को एक बार नेपाल बुलाया गया था, शायद वहाँ का इतिहास लिखने के लिए। लौटकर वे बड़े गर्व से कहते थे कि वहाँ पर हिन्दू राज्य है और गो-हत्या के लिए प्राण-दण्ड का विधान है, और इससे हमारी संस्कारी गो-भक्ति को सन्तोष की एक हल्की-सी थपकी लगती थी। वहाँ की ये कल्पित और तथ्यगत विशिष्टताएँ अब मेरे लिए अर्थहीन हो गयी थीं। नेपाल में राणाशाही अपदस्थ हो चुकी थी और प्रगतिशील राजा जनता द्वारा निर्वाचित मन्त्रियों की सहायता से शासन कर रहे थे। उन दिनों श्री मातृका प्रसाद कोइराला प्रधानमन्त्री थे। अभिनव नेपाल के लिए मेरे मन में कम कुतूहल नहीं था।

पटने तक रेल और वहाँ से हवाई जहाज़ से गया था। गोचर हवाई-अड्डे पर (जहाँ गोचर भूमि थी, वहाँ अब हवाई अड्डा था, मध्ययुग से आधुनिक युग में पहुँचने का यह कम संकेतक था?) मुझे लेने को रसगोत्र आये थे। बोले, 'बच्चनजी, यहाँ प्रथा है, काठमाण्डू आने पर सबसे पहले लोग भगवान पशुपतिनाथ के

दरबार में हाज़िरी देते हैं।' चित्रों में देख रखने के कारण मन्दिर यथा प्रत्याशित लगा—स्थापत्य शैली नेपाल की अपनी, शेष सब कुछ भारतीय मन्दिरों जैसा, चारों ओर वही गाय, गोबर, गन्दगी, भिखमंगे, ढोंगी, जोगी, कोढ़ी, रोगी !—(मुक्तिप्रदाय भगवान शंकर के सान्निध्य में देह-त्यागार्थी मरणासन्न रोगियों के लिए मन्दिर में ही आवास व्यवस्था है—'व्यवस्था' शब्द पर विद्रूप व्यंग्य करती हुई अव्यवस्था।) भूतनाथ, प्रेताधिपति, मरघटाधीश्वर का खुला दरबार है, यहाँ कुछ न कहिये।

रसगोत्र ने हमें अपने साथ ठहराया। उनका मकान कमल पोखरी पर था—मकान क्या, महल, ऊँची दीवारों से घिरा, बीच में बड़ा-सा बाग़, किनारे पर तैरने का तालाब, पानी भरने को कई पम्प लगे—बहुत दिनों से जैसे इस्तेमाल न किया गया हो—किसी भूतपूर्व राणा का निवास स्थान रहा होगा। रहते थे उसमें सिर्फ़ अकेले रसगोत्र, उन दिनों वे अविवाहित थे, सारे कमरे दरी-कालीन दीवार-शृंगार-तस्वीर, शीशे, फ़र्नीचर युक्त प्रायः राणाशाही के समय के, पर सब रसगोत्र की सुरुचि से लगे-सजे। ख़ास इमारत से अलग, निकट ही एक सर्व-सुविधा-युक्त अतिथि गृह भी था। जब हम लोग पहुँचे तो रसगोत्र अतिथिगृह में चले गये और मुख्य इमारत हमें रहने को दे दी गयी—तेजी का कमरा अलग, मेरा अलग, बच्चों का अलग, फिर भी मकान में कई कमरे ख़ाली। खाना बनाने को उनके पास एक गोवानीज़ कुक था, कई नौकर ऊपर का काम करने को।

भगवान सहायजी को अधिक निकटता से देखने का अवसर मिला। उनके धीमान, कुशल, सफल, अनुभवी अधिकारी होने की बात मैंने बहुतों से सुन रक्खी थी। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि वे अच्छे कलाकार भी हैं। राजदूतावास में एक कमरा रंग-फलक-तूली आदि चित्रकला के उपकरणों से भरा था। पेरिस प्लास्टर से वे मूर्तियाँ भी बनाते थे। नेपाली प्राकृतिक दृश्यों और जन-जीवन के उन्होंने कई सुन्दर और सजीव तैलचित्र बनाये थे। साहित्य के प्रति भी उनकी खरी रुचि थी। उनका मूल्यांकन दूसरों की सम्मति-आलोचना से अप्रभावित स्वतन्त्र हुआ करता था। भगवतीचरण वर्मा उनके प्रिय उपन्यासकार थे, कविताएँ मेरी उन्हें अधिक पसन्द थीं। उनकी पत्नी श्रीमती विद्या देवी तो भावुकता की मूर्ति ही थीं। मेरे 'निशा-निमन्त्रण' के गीत उन्हें विशेष प्रिय थे। मुझसे सुनतीं तो किसी-किसी पर बरबस उनके मुख से सीत्कार निकल जाती।

नेपाल हम छुट्टी मनाने गये थे और रसगोत्र ने हमें अपनी तरह से छुट्टी मनाने की पूरी छूट दे दी। वे तो सुबह तैयार होकर दफ़्तर चले जाते और लंच के समय आते, पर वे इस बात का आग्रह न करते कि हम उनके साथ लंच लें, वे लंच लेकर फिर दफ़्तर भागते और शाम को लौटते। हमारे लिए आज़ादी थी कि जब हमारा जी चाहे उठें, जब चाहें नहायें, धोयें, जब चाहें खाना खायें, सोयें, बैठें, घूमने जायें। वक़्त से बँधकर चलनेवालों के लिए शायद सबसे बड़ी छुट्टी यह है कि उन्हें वक़्त-बन्धन से एकदम मुक्त कर दिया जाये। हम सब वर्षों से वक़्त से जकड़े थे, हमने अपनी आज़ादी का खुलकर सुख लिया और असली अर्थों में छुट्टी मनायी।

हमारा अधिकतम समय काठमाण्डू में बीता, पर हर सप्ताहान्त पर हम लोग कार से नेपाल के आन्तरिक अंचलों को भी देखने जाते, जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य के अलावा बहुत कुछ अद्भुत-आकर्षक होता। नेपाल के चप्पे-चप्पे से कथाएँ-वार्ताएँ, इतिहास, देवकथाएँ, विश्वास जुड़े हैं और वहाँ का जन-जीवन उनसे कितना बल-सम्बल, कितनी प्रेरणा, कितना मनोविनोद पाता है, कौन जान सकता है! किसी

बड़े इतिहासकार का कहना है कि छोटे-छोटे स्थानों से जुड़ी ये जनश्रुतियाँ उस देशभक्ति की मूल हैं जिसके बल पर बड़े-बड़े युद्ध जीते जाते हैं। सिपाही अमूर्त देश के लिए नहीं लड़ता; वह लड़ता है अपने गाँव के उस टीले या बावड़ी के लिए जिसमे किसी प्रेत या पहलवान की कथा जुड़ी है और जिसने उसके बचपन से उसे उस कथा-सजीव भूमि से बाँधा है। क्या इन्हीं के बल से तो नहीं नेपाल सदा अपराजेय रहा है ?

काठमाण्डू मुझे मध्ययुगीन वातावरण में पलती धर्माभासी नगरी लगी—महायानी बौद्ध, तान्त्रिक, शाक्त, पौराणिक विश्वासों, अन्धविश्वासों, मिथ्यान्ध विश्वासों में विजड़ित—इतस्ततः नेपाल से बाहर अंग्रेज़ी पढ़े नवयुवकों में आधुनिकता की आकाशी, वायवी चेतना जिससे सामान्य जन-जीवन अछूता—असम्पृक्त। काठमाण्डू में ऐसा कम नहीं जो आँखों के आगे आकर अपनी आधुनिकता का उद्घोष करे, पर यह आधुनिकता उस मुखौटे से कुछ अधिक नहीं जिसे अपने चेहरे पर लगाकर मध्य युगीनता ही छदमवेश में जीने का उपक्रम कर रही हो। ऐतिहासिक प्रक्रिया ने भारतवर्ष में मध्ययुगीनता को आधुनिकता स्वीकार करने के लिए जिस प्रकार तैयार और विवश किया है उस प्रकार नेपाल में नहीं। मैं सोचता हूँ कि अगर हिन्दुस्तान पर मुसलमानों का आक्रमण और हिन्दुस्तान में इस्लाम का आगमन न होता, अगर भारत पर अंग्रेज़ों की हुकूमत और भारत में पश्चिमी सभ्यता की पैठ न होती तो हम अपने को आज नेपाल की-सी सामाजिक स्थिति में पाते। इस्लाम के बिना कबीर, नानक, तुकाराम, नामदेव यहाँ तक कि तुलसीदास की भी,—पश्चिमी सभ्यता के बग़ैर राजा राममोहनराय, दयानन्द, विवेकानन्द, रवीन्द्र, अरविन्द, गांधी की कल्पना मैं नहीं कर पाता।

नेपाल में मुझे कवि रूप में जाननेवाले कम नहीं थे। बहुत से लोग मेरे मुख से मेरी कविताएँ सुनने को उत्सुक थे। नेपाल में मेरे प्रवासकाल में कई बार, कई जगहों पर कवि-सम्मेलनों और गोष्ठियों का आयोजन किया गया, जिनमें नेपाली कवियों ने भी भाग लिया। नेपाल के जिन कवियों के नाम मुझे अब तक स्मरण हैं, वे थे श्री बालकृष्ण सम, श्री देव कोटा, श्री घिमीरे, श्री केदारमान व्यथित और श्री भवानी भिक्षु। समजी नेपाली के नाट्यकार और अभिनेता हैं—उन्होंने अपने कई नाटकों के अंश अभिनेता की मुद्रा में सुनाये, जो बड़े प्रभावकारी थे। जिस कवि से मैं सबसे अधिक प्रभावित हुआ, वे थे श्री देव कोटा—शरीर से हृष्ट-पुष्ट, क़द से ऊँचे, उनकी कविताओं की आधुनिकता ऐसी कि पश्चिम की आधुनिक कविताओं से होड़ ले, नेपाली में उनके प्रयोग एकदम नये, स्वर में प्रखरता, आक्रोश, व्यंग्य। राजनीति में भी दखल रखते थे। बाद को वे किसी विभाग के मन्त्री के रूप में नेपाल-शासन से सम्बद्ध हुए। पीते डटकर थे—जैसे नेपाल में सब उच्च वर्गीय—उनके मुख से लगी सिगरेटों की शृंखला टूटती ही न थी—जवानी में ही उन्हें कैंसर हो गया जो असाध्य सिद्ध हुआ, और पारिवारिक प्रथा के अनुसार अपनी सारी आधुनिकता के बावजूद, सम्भवतः उनकी सहमति से ही, उन्हें पशुपतिनाथ-मन्दिर में डाल दिया गया, जहाँ उनकी असमय मृत्यु हुई।

देव कोटा के बिल्कुल विपरीत थे श्री घिमीरे—दुबले-पतले, मझोले क़द के, मध्यवित्त परिवारी, वेश-भूषा से ठेठ नेपाली, स्वभाव से बालकों-जैसे, नेपाली लोक धुनों में गीत लिखते थे, सस्वर पढ़ते थे, गीत उनके प्राकृतिक शोभा और पहाड़ी ग्रामीण जीवन से सम्बद्ध। जैसे बच्चे आपस में मिलते ही कोई खेल शुरू कर देते हैं वैसे ही वे बातें करते-करते कोई गीत सुनाने लगते, सुनाने को भी कहते

और विभोर होकर सुनते, मानो उनका अंग-अंग काव्य श्रवण कर रहा हो।

'भिक्षु' हिन्दी-छायावाद से प्रभावित थे, 'व्यथित' प्रगतिवाद से। भिक्षु, जैसे छायावादी प्रतिक्रिया से, कभी-कभी घोर यथार्थ की ओर झुक जाते थे। उनकी एक कविता 'मेहतरानी' पर थी। नेपाली में शीर्षक कुछ और था। 'व्यथित' खुलकर न कह सकने की स्थिति में व्यंग्य का आश्रय लेते थे।

कहीं किसी शाम की गोष्ठी की भी मुझे स्मृति है जिसमें श्री रेगमी और श्री टंका प्रसाद उपस्थित थे—किसी समय शासन से शायद मन्त्री या उपमन्त्री के रूप में सम्बद्ध। दोनों ही राणाशाही के समय अपने क्रान्तिकारी विचारों के कारण दस-दस बरस जेलों में रहे थे। उनके कई साथियों को प्राण-दण्ड मिला था। टंका प्रसादजी ब्राह्मण होने के कारण फाँसी के फन्दे से बच गये थे। उन्होंने ही मुझे बताया था कि कारावास की यह लम्बी अवधि उन लोगों ने 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'निशा निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत' पढ़-पढ़कर काटी थी।

मेरे काव्य-पाठ की कुछ विशेष बैठकें रसगोत्र ने अपने घर पर आयोजित की थीं। ऐसी बैठकें प्रायः रात को भोजनोपरान्त आरम्भ होतीं और सुबह तक चलतीं, लोग जब विदा होते, प्रभात की चिड़ियाँ बोलने लगतीं। रसगोत्र बड़े कल्पनाशील हैं, स्वयं भी जो कवि हैं, बाद को उनकी कविताओं का एक संग्रह 'दो परतें' के नाम से प्रकाशित हुआ था, काव्य-परख में भी उनकी पैठ गहरी है, अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी कविता पर उनके लेख अक्सर प्रकाशित हुए हैं। उन्होंने एक रात एक ऐसे काव्य-पाठ का आयोजन किया जैसा मेरे जीवन में न कभी पहले हुआ था न बाद को। उन्होंने मुझसे आग्रह किया कि 'निशा निमन्त्रण' के एक सौ गीत, सन्ध्या से लेकर प्रभात तक के, मैं एक रात एक साथ सुनाऊँ,

दिन जल्दी - जल्दी ढलता है।
हो जाय न पथ में रात कहीं,
मंजिल भी तो है दूर नहीं—
यह सोच थका दिन का पन्थी भी जल्दी - जल्दी चलता है।

भीगी रात विदा अब होती।
हाथ बढ़ा सूरज किरणों के
पोंछ रहा आँसू सुमनों के,
अपने गीले पंख सुखाते तरु पर बैठ कपोत - कपोती।

तक के कल्पना-विनिर्मित वातावरण में।

कविता में खरी रुचि रखनेवाले 20-25 लोगों को उन्होंने आमन्त्रित किया था; मुझे याद है, उसमें श्रीमती और श्री भगवान सहाय भी उपस्थित थे। मेरे मन पर उस रात का काव्य-पाठ बहुत भारी पड़ा था, पर कलानुभूति का यही भार तो जग-जीवन-काल के भार को हलका भी करता है। श्रोताओं पर क्या बीती, वे ही जानें, बहुत-से चुपचाप उठे और चले गये थे, न जाने किन भावनाओं में डूबे; मेरे प्रति धन्यवाद उन्होंने कई दिन के बाद व्यक्त किया था।

नेपाल के अपने प्रेमियों, मित्रों, प्रशंसकों के बीच समय बड़ी जल्दी बीत रहा था। युनिवर्सिटी खुलने के दिन निकट आने लगे। मुझे इलाहाबाद लौटना ही था। पहले मैं कहीं भी जाता, थोड़े समय के लिए या अधिक समय के लिए, इलाहाबाद लौटने की मेरे मन में ललक होती थी। अब मैं इलाहाबाद लौटने में डर रहा था। युनिवर्सिटी मुझे काटने लगी थी।

जुलाई में युनिवर्सिटी खुल गयी और वही सत्र का रूटीनी जीवन आरम्भ हुआ।

जुलाई में नेहरूजी इलाहाबाद आये। मुझे नहीं याद कि वर्ष में कभी किसी विषय पर मेरा-उनका पत्राचार हुआ।

वे आये तो एक शाम उन्होंने मुझे चाय पर बुलाया। निमन्त्रण-पत्र विभाग में ही आ गया था। प्रधान मन्त्री द्वारा स्मरण किया जाना, कोई साधारण बात तो न थी, मेरे सहयोगियों की प्रतिक्रिया की कल्पना आप ही करें। श्री पी. डी. टण्डन, इलाहाबाद के प्रसिद्ध पत्रकार भी उस समय विभाग में किसी प्रसंग में उपस्थित थे। उन्होंने निमन्त्रण-पत्र देखकर कहा, 'बस, अब नेहरूजी तुम्हें दिल्ली ले गये।' उनकी भविष्यवाणी सच ही निकली। वे नेहरूजी से निःसंकोच मिलनेवालों में थे, सम्भव है, नेहरूजी ने जो बातें मुझसे कहीं, उनका कुछ संकेत उन्हें दे चुके हों।

नेहरूजी ने मेरी स्थिति के बारे में पूछा तो मुझे कहना ही था कि मैं जहाँ पिछली जुलाई में था, उसी जगह पर अब भी हूँ—लेक्चरर ग्रेड के अधिकतम वेतन पर मैं पहुँच गया था, यानी 500/—की सीमा पर, और भविष्य में किसी वृद्धि की सम्भावना नहीं थी।

पण्डितजी ने कहा, 'मुझे अफ़सोस है, मैं अभी तक तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं कर सका। पर जल्द ही विदेश मन्त्रालय में एक ऐसे अफ़सर की ज़रूरत होगी जो अच्छी हिन्दी के साथ अच्छी अंग्रेज़ी भी जानता हो, क्योंकि काम प्रायः अनुवाद का होगा, राजनयिक दस्तावेजों-पत्रों का; तुम आना चाहोगे ? तनख्वाह अच्छी होगी।'

मैंने कहा, 'आप मुझे किसी काम के योग्य समझकर बुलायेंगे तो मैं निश्चय आऊँगा, तनख़्वाह के कम-ज़्यादा होने के बारे में मैं नहीं सोचूंगा।'

मैं तो अब किसी बहाने इलाहाबाद छोड़ने को आतुर था।

मेरे उत्तर से नेहरूजी प्रसन्न हुए।

मेरे नक्षत्रों में हरकत हो गयी थी।

अगस्त में डा. केसकर इलाहाबाद आये, वे उन दिनों सूचना एवं प्रसारण मन्त्री थे। उनके आने के पूर्व ही नगर के साहित्यकारों में यह खबर फैल गयी थी कि आल इण्डिया रेडियो अपने विभिन्न केन्द्रों पर जाने-माने साहित्यकारों को 'प्रोड्यूसर' के रूप में नियुक्त करनेवाला है। रेडियो के सन्दर्भ में तब यह शब्द नया-नया था और किसी को पता नहीं था कि 'प्रोड्यूसर' का काम क्या होगा। डा. केसकर की प्रयाग-यात्रा उसी सम्बन्ध में थी। इलाहाबाद रेडियो केन्द्र ने उनके स्वागत में एक पार्टी दी थी जिसमें प्रायः सभी स्थानीय लेखकों को निमन्त्रित किया गया था और वे आये भी थे, निराला और महादेवी को छोड़कर, पर उन्होंने सदा से रेडियो से बाइकाट किया था। पार्टी में डा. केसकर ने एक छोटा-सा भाषण भी दिया था, जिसमें उन्होंने अपनी नयी योजना को स्पष्ट किया था। संक्षेप में 'प्रोड्यूसर' का काम वही होने को था जो पत्रिका में सम्पादक का होता है—वह अपने क्षेत्र के लेखकों से सम्पर्क बनाये रहे और उनकी नवीन और उत्कृष्ट रचनाओं को प्रसारित कराने के सम्बन्ध में रेडियो को सलाह-सहायता दे। प्रोड्यूसर के अच्छे-खासे वेतन की कल्पना लोगों ने शायद स्वयं कर ली थी। पन्तजी को 1000/—प्रतिमास मिल ही रहे थे।

जहाँ तक मुझे स्मरण है, डा. केसकर के सम्मान में दो-तीन पार्टी-गोष्ठियाँ हुई थीं और सभी में साहित्यकारों की अच्छी उपस्थिति थी—कुछ-कुछ ज़्यादा ही

उनके आगे-पीछे, जाहिर है उनकी नजरों में चढ़ने या उन्हें प्रभावित करने की दृष्टि से, कुछ अपनी चाल-ढाल में सामान्यतया लापरवाही बरतनेवाले प्रयत्न-पूर्वक संयत, सलीकेदारी से, कुछ ने, याद पड़ता है, उन्हें अपनी रचनाएँ भी भेंट की थीं।

डा. केसकर आये और चले गये, छोड़ गये प्रयाग के प्राय: प्रत्येक साहित्यकार के मन में रेडियो की प्रोड्यूसरी का सुखद स्वप्न सेने को—न जाने किसके नाम किस दिन दिल्ली से नियुक्ति का पत्र आ जाये।···

जिन लोगों से मन्त्री महोदय ने अलग-अलग बातचीत की थी उनमें मैं भी था। बीस वर्ष के बाद मुझे याद तो नहीं कि उनसे मेरी क्या बातें हुई थीं, पर उन दिनों केम्ब्रिज और अपने शोध-विषय W. B. Yests and Occultism से मैं इतना भरा था कि सम्भवत. इन्हीं पर मैंने ज़्यादा बातें की होंगी, ज़्यादा क्या यही 5-7 मिनट, और निश्चय ही उससे उनके समक्ष मेरे हिन्दी साहित्यकार की अपेक्षा मेरे अंग्रेज़ी अध्यापक का रूप अधिक उभरा होगा। अपने साहित्यकार रूप से उन्हें प्रभावित करने का मैंने कोई प्रयत्न नहीं किया था क्योंकि मेरे भविष्य की आशा मुख्य रूप से कहीं और अटकी थी, फिर भी यह कल्पना प्रीतिकर लगी थी कि उन्होंने अपनी पसन्द की सूची में मुझे भी सम्मिलित किया है, क्योंकि कई स्टेशनों के लिए कई लोग चुने जाने को थे।

कल्पना सच हो गयी।

सितम्बर में सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय से मेरे लिए पत्र आ गया—मुझे इलाहाबाद रेडियो स्टेशन पर हिन्दी प्रोड्यूसर के रूप में नियुक्त किया गया था, वेतन मुझे 750/—मिलने को था, पद अस्थायी था और शुरू-शुरू में केवल एक वर्ष के लिए था।

मैं तो नेहरूजी से वचनबद्ध हो चुका था कि वे जब भी मुझे बुलायेंगे, मैं उनके मन्त्रालय में काम करने को हाज़िर हो जाऊँगा। मैंने उचित समझा कि रेडियो का काम स्वीकार करने के पहले पण्डितजी की अनुमति ले लूँ। ऐसे विषय में उनसे मिलकर ही उनकी सलाह लेना ठीक था। मैं दिल्ली गया तो उन्होंने मुझे रेडियो का काम ले लेने की सलाह दी। वेतन आदि के बारे में पूछकर उन्होंने मुझसे कहा कि 'अगर तुम कुछ महीने यह काम कर लोगे तो तुम्हें विदेश मन्त्रालय में ज़्यादा तनख़्वाह दिलाना मेरे लिए आसान होगा। क़ायदा यह है कि जब केन्द्र में किसी काम पर किसी को बुलाया जाता है तो उसका वेतन उसके पिछले वेतन से केवल 20% बढ़ाया जा सकता है। 500/—पर कितना बढ़ेगा! 750/—पर कुछ अधिक बढ़ सकेगा—दिल्ली ज़्यादा ख़र्चीली जगह है।' उनकी सद्भावना से अभिभूत लौटा—वे मुझमें कितनी व्यक्तिगत रुचि ले रहे थे।

युनिवर्सिटी छोड़ने को मैं मानसिक रूप से बहुत पहले से तैयार हो रहा था, फिर भी निर्णायक क़दम उठाने के पहले मन में हिचक तो थी ही—मेरा कार्य, कार्य-क्षेत्र, कार्य-माध्यम सबका सब एक दिन में बदल जायगा। इस अचानक परिवर्तन को क्या मैं आसानी से सहार जाऊँगा? अध्यापक से सहसा सम्पादक?—साफ़ ही क्यों न कहूँ—किसी रूप में क्लर्क, बन जाने पर मुझे कैसा लगेगा! विडम्बना तो यह थी कि जिस समय अपने अकादमिक जीवन के लिए मैं ज़्यादा तैयार होकर आया था, अधिक सक्षम-योग्य बनकर उस समय नियति मेरे उचित कार्यक्षेत्र से मुझे दूर हटा रही थी।

इसका संकेत मुझे साल भर पहले मिल चुका था। इंग्लैण्ड से लौटने पर एक

दिन पन्तजी ने मेरा हाथ देखकर मुझे बताया था कि 'लगभग एक वर्ष के बाद तुम्हारा कैरियर बदल जायगा।' यह बात जुलाई '54 की होगी, और अब सितम्बर '55 था। इससे पूर्व भी एक बार उनकी भविष्यवाणी मेरे सम्बन्ध में इतनी सटीक उतरी थी कि मुझे पूरा विश्वास हो गया था कि जो वे कह रहे हैं, वह होके रहेगी, वह तो होनी ही है।

मीरा का एक पद कानों में प्रतिध्वनित हुआ—

'...होनी हो सो होई।'

होनी स्वीकार ही करनी पड़े तो विवशता से स्वीकार करने से कहीं अच्छा है कि साहस के साथ स्वीकार की जाय। दिल्ली से लौटने के दूसरे दिन युनिवर्सिटी जाकर मैंने विभागाध्यक्ष को एक वर्ष की अवैतनिक छुट्टी के लिए अर्ज़ी दे दी—अगर वर्ष भर बाद रेडियो की प्रोड्यूसरी का पद समाप्त कर दिया जाय, अथवा मुझे अन्य प्रत्याशित जगह न मिले तो मैं फिर अंग्रेज़ी के लेक्चरर के रूप में लौट सकूँ, हालाँकि मेरे अन्तरतम में जैसे कोई कह रहा था, 'यहाँ से तुम्हारी यह अन्तिम विदा है और अब तुम कभी युनिवर्सिटी नहीं लौटोगे।' इस आवाज़ पर मेरे मन में एक अवसाद भी था, एक राहत भी थी—अवसाद इस बात पर कि अपनी युनिवर्सिटी में अध्यापक पद पाने के लिए एक समय मैंने कितने अरमान सँजोये थे और आज उससे पीठ फेरकर चला जा रहा था, राहत इस पर कि अगर युनिवर्सिटी ने मेरे श्रम-संघर्ष के प्रति उदासीनता दिखायी थी, मेरी अध्यवसाय-प्राप्त योग्यता की उपेक्षा की थी तो मुझे भी यह दिखाने का अवसर मिला था कि मैं कहीं अपेक्षणीय भी हूँ।

विभागाध्यक्ष ने मेरे युनिवर्सिटी छोड़ने पर अफ़सोस ज़ाहिर किया था—पर शब्द भावों को प्रकट करने के सहज माध्यम हैं तो भावों को छिपाने के छली उपकरण भी हैं। मैं जानता था, मेरे विभाग छोड़ने का उन्हें ज़रा भी अफ़सोस न था, और न मेरे सहयोगियों को ही, मेरे प्रति एक अहानिकर ईर्ष्या उनमें सदा से थी—मैं अंग्रेज़ी लेक्चरर के अतिरिक्त किसी और क्षेत्र में भी कुछ था—और फिर, नगण्य नहीं। मेरे इंग्लैण्ड से लौटने के बाद उनके बीच मेरी उपस्थिति उनमें एक हीन भावना भी जगाती थी। युनिवर्सिटी से मेरे हट जाने पर उन्होंने भी एक राहत की साँस ली हो तो आश्चर्य नहीं। चलने लगा तो मेरे सहयोगियों के बीच से एक आवाज़ सुनायी दी,

Just for a handful of silver he left us.

(बस कुछ चांदी के टुकड़ों की ख़ातिर उसने हमको छोड़ा।)

राबर्ट ब्राउनिंग ने यह पंक्ति विलियम वर्ड्सवर्थ के पोएट लारिएट का सरकारी पद स्वीकार करने पर लिखी थी। यहाँ कौन राजकवि बनने जा रहा था! सच्चाई तो यह थी कि जो मैं कर रहा था, वह अपनी आवश्यकताओं से विवश होकर और किसी अंश में अपने घायल अहं पर मरहम लगाने के लिए। मेरे handful of silver (कुछ चाँदी के टुकड़ों) से भी क्या एक बार फिर मेरे सहयोगियों की ईर्ष्या ही नहीं मुखर हो उठी थी?

हाँ, अगर मेरे लिए युनिवर्सिटी छोड़ने का अफ़सोस सचमुच किसी को हुआ था तो मेरे विद्यार्थियों को। जुलाई से आरम्भ होनेवाले सत्र में लेक्चर और सेमिनार क्लासों को लेकर लगभग सौ विद्यार्थी मेरे सम्पर्क में थे। बच्चों ने जल्दी-जल्दी आपस में कुछ चन्दा इकट्ठा किया, मुझे एक विदा पार्टी दी, मुझे एक पुस्तक भेंट की, जिसके प्रारम्भिक पृष्ठों पर उन सबने अपने-अपने हस्ताक्षर किये—पुस्तक थी मानतेन की The Selected Essays (दि सेलेक्टेड एसेज़) जो अब

तक मेरे पुस्तकालय में है—मेरे प्रति मेरे अन्तिम विद्यार्थियों के स्नेह का प्रतीक, जिसे अपने समस्त विद्यार्थियों के स्नेह का प्रतीक मानकर मैं बहुत सँजोकर रखे हुए हूँ। अध्यापक जीवन की कतिपय सीमाओं के बावजूद उसके कुछ सुख-लाभ की कल्पना भी सहज ही की जा सकती है, पर उसकी शायद सबसे बड़ी उपलब्धि है, अपने विद्यार्थियों का स्नेह प्राप्त करना। जिसे यह नहीं मिला, मैं तो कहूँगा, उसका अध्यापक-जीवन व्यर्थ गया। काश, यह मुझे कम मिला होता, तो उससे वंचित होने की वेदना मुझे कम सालती।

मुझे ठीक याद नहीं कि किस तारीख़ से मैंने रेडियो के दफ़्तर में जाना शुरू किया था, पर एक बात नहीं भूली कि पहले दिन जब मैं दफ़्तर जाने के लिए घर से निकला था तो मेरी गाड़ी अनायास युनिवर्सिटी की ओर मुड़ गयी थी, और ऐसी भूल मुझसे कई बार हुई, शायद अपने जीवन का जो परिवर्तन मैंने स्वीकार कर लिया था, मेरा अवचेतन उसे बहुत दिनों तक अपने तरीक़े से नकारता रहा।

स्मृतियाँ और कल्पनाएँ जीवन में आये अचानक परिवर्तनों को झेलने में मनुष्य की कितनी सहायता करती हैं, इसका अन्दाज़ा सहज नहीं लगाया जा सकता। रेडियो के दफ़्तर में बैठे हुए युनिवर्सिटी जीवन की मुझे कितनी-कितनी याद आती। और कभी-कभी तो मानो मैं अपनी कक्षा में ही जा बैठता।

प्रोड्यूसर के लिए एक अलग ही कमरा दे दिया गया था, उसी में पन्तजी भी बैठते थे, पर वे अपराह्न में केवल दो-ढाई घण्टों के लिए आते। शेष समय मैं अपने कमरे में अकेला बैठा प्रसारण के लिए आयी सामग्री की जाँच-पड़ताल करता।

मनुष्य किस काम के लिए अपने को तैयार करता है और क्या उसे करना पड़ता है!

मैं सोचता, अगर कुछ समय बाद मुझे विदेश मन्त्रालय में ही बुला लिया गया तो वहीं केम्ब्रिज में प्राप्त किये मेरे ज्ञान का क्या उपयोग होगा!

क्या केम्ब्रिज में व्यय किया गया मेरा सारा धन, सारा समय, सारी शक्ति, उस अवधि में सही-झेली सारी मुसीबतें, सारी दिमाग़ी परेशानियाँ व्यर्थ ही गयीं?

अगर मुझे इसका विश्वास होता तो मुझे आत्महत्या कर लेने से कौन रोकता! ऐसे विश्व-तन्त्र में जहाँ एक निरीह व्यक्ति को व्यर्थ परेशान करने का षड्यन्त्र चल सकता हो, उसमें कौन जीना चाहेगा!

नहीं।

जो भी मैंने सीखा, सहा, भोगा, अनुभव किया है वह सब-का-सब मेरे व्यक्तित्व का अंग हो गया है।

चाहे मैं रेडियो में प्रसारण-सामग्री की परीक्षा करूँ, चाहे विदेश मन्त्रालय में राजनय सम्बन्धी दस्तावेजों का अनुवाद, चाहे मैं कविता लिखूँ, चाहे गद्य. सबमें मेरे जीवन की शिक्षा-दीक्षा के साथ मेरे केम्ब्रिज का संस्कार भी बोलेगा, झलकेगा, महकेगा!

क्या आपको इस आत्मचित्रण में केम्ब्रिज के कण्ठ का स्वर भी नहीं सुनायी पड़ा? केम्ब्रिज के दृश्यों की झाँकी भी नहीं दिखायी पड़ी? केम्ब्रिज के फूल-कलियों की सुगन्ध भी नहीं आयी? क्या वहाँ पर मेरे मन, मस्तिष्क, हृदय पर पड़े संस्कार भी मेरी पंक्ति-पंक्ति, मेरे शब्द-शब्द में नहीं साकार हुए?

तब वहाँ सीखा-समझा, देखा-सुना, भोगा-झेला कुछ भी व्यर्थ कैसे हुआ ?

रेडियो के कार्य-काल में मुझे एक लम्बे सेमिनार की याद है जो प्रोड्यूसरों के लिए दिल्ली रेडियो केन्द्र पर आयोजित किया गया था। सरकार ने सभी भाषाओं के उच्चकोटि के लेखकों को रेडियो से सम्बद्ध कर लिया था। सेमिनार में प्रसारण के सम्बन्ध में कुछ तकनीकी और कुछ सरकारी नीति का मोटा-मोटा ज्ञान कराया गया था। श्री मर्ढेकर सेमिनार के इंचार्ज थे, उनका स्वर्गवास हो चुका है, मराठी में नयी कविता आन्दोलन के अग्रणी कवियों में थे।

250/—प्रतिमास अधिक वेतन की सम्भावना का द्वार खुलते ही तेजी ने और मैंने सबसे पहला निर्णय यह लिया कि हम अमिताभ और अजिताभ को पढ़ाने के लिए शेरवुड कालेज, नैनीताल, भेजेंगे जो उन दिनों भारत प्रसिद्ध कान्वेण्ट शिक्षा-संस्था थी। वहाँ के प्रिंसिपल रेवरेण्ड लेवेलिन केम्ब्रिज युनिवर्सिटी के स्नातक थे। उस नाते उन्होंने मेरे दोनों लड़कों को फ़ौरन अपने कालेज में प्रवेश दे दिया और आगामी सत्र में उन्हें वहाँ भेजने की तैयारी होने लगी। बहुत दिनों से इतने उत्साह से हमने शायद ही कोई काम किया हो। हमने उससे सही निर्णय भी अपने जीवन में शायद ही कोई और लिया। अपने बच्चों के भविष्य को सँवारने से अधिक महत्त्वपूर्ण काम हमारे लिए हो भी क्या सकता था। अमिताभ और अजिताभ जो भी आज जीवन में हैं उसके लिए अपनी माँ की शिक्षा-दीक्षा के बाद वे अपने को शेरवुड का ऋणी मानते हैं।

मैंने रेडियो में पूरे तीन महीने भी काम न किया था कि मुझे विदेश मन्त्रालय दिल्ली से बुलावा आ गया।

उस वर्ष जहाँ तक मुझे स्मरण है, बड़ा दिन इतवार को पड़ा था, इस कारण बड़े दिन के उपलक्ष्य में छुट्टी सोमवार 26 दिसम्बर को दी गयी थी। साल समाप्त होने में पाँच दिन शेष थे। मैंने पाँच दिनों की कैजुअल लीव ले ली, जो मेरा प्राप्तव्य था। मुझे दो कवि-सम्मेलनों में भाग लेना था—काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय में और होलकर कालेज इन्दौर में, जहाँ उन दिनों शिवमंगलसिंह 'सुमन' हिन्दी विभागाध्यक्ष थे। दोनों जगहों से अच्छे पारिश्रमिक का वादा किया गया था, मेरी आर्थिक आवश्यकताएँ अब भी कवि-सम्मेलनों द्वारा कुछ अर्जित करने को मुझे विवश करती थीं। 24 दिसम्बर की रात को काशी के कवि-सम्मेलन में भाग लेकर मैं 26 को सवेरे इन्दौर पहुँच गया, उसी रात को वहाँ कवि-सम्मेलन था।

'सुमन' ने बहुत बड़े पैमाने पर कवि-सम्मेलन का आयोजन किया था, बहुत-से कवि निमन्त्रित किये गये थे। विदेश से लौटने के बाद पहली बार मैं इन्दौर गया था। 'सुमन' ने बड़े उत्साह से, विद्यार्थियों की एक बड़ी भीड़ के साथ मेरा स्वागत किया, जैसे किसी राजनीतिक नेता का। कवि-सम्मेलन मेरे सभापतित्व में होगा, इसकी घोषणा उन्होंने पहले से करा दी थी।

यात्रा का थका था, दिन को सो गया था, रात को जागने की तयारी में भी।

सोने गया था, तब इसकी कल्पना भी न की थी कि सोकर उठूँगा तो मेरा जीवन मुझे एक नये मार्ग पर चलने के लिए संकेत करेगा—जीवन का क्या, वह नियति का ही संकेत होगा—और बस उस पर चल ही पड़ना होगा।

उठा ही था कि किसी ने आकर खबर दी—मेरे लिए इलाहाबाद से ट्रंककाल है।

तेजी मुझे बधाई दे रही थीं। इंगलैण्ड से लौटने के बाद तेजी की आवाज़ से इतनी ख़ुशी का विस्फोट मैंने नहीं जाना था। भगवान के यहाँ देर है, अन्धेर नहीं है।

विदेश मन्त्रालय से मेरी नियुक्ति का पत्र घर पहुँच गया था। मुझे आफ़िसर आन स्पेशल ड्यूटी (हिन्दी) के पद पर बुलाया गया था। मैं मन्त्रालय के हिन्दी सेक्शन का हेड हूँगा। मेरा काम होगा विदेश मन्त्रालय में उत्तरोत्तर हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देना और हिन्दी को राजनयिक काम-काज का सक्षम माध्यम बनाना। मेरा वेतन 1000/—प्रतिमास होगा। पत्र में कहा गया था कि जितनी जल्दी हो सके, मैं विदेश मन्त्रालय पहुँचकर अपना पद सँभाल लूँ।

तेजी ने राय दी कि मैं उसी रात को इन्दौर से चलकर दूसरे दिन दिल्ली पहुँच जाऊँ—मंगल का दिन होगा, नया काम शुरू करने के लिए शुभ दिन, 27 तारीख़ भी होगी, तीन से कटनेवाली संख्याएँ मेरे लिए शुभ होती हैं, फिर 27 तो मेरे जन्मदिन की संख्या होने से और शुभ। इसलिए जैसे भी हो मैं 27 दिसम्बर को दिल्ली पहुँचकर विदेश मन्त्रालय में अपने को प्रस्तुत कर दूँ।

कुछ सोचने-विचारने के लिए समय ही न था। जल्दी जल्दी टाइम-टेबिल देखा। दस बजे रात को एक ऐसी गाड़ी थी जिसे रतलाम से पकड़कर दूसरे दिन सवेरे दिल्ली पहुँचा जा सकता था। जाड़े के दिन थे, 7 बजे रात से कवि-सम्मेलन था। गाड़ी पकड़ने के लिए मुझे साढ़े सात तक कार से रतलाम के लिए रवाना हो जाना चाहिए था। 'सुमन' मुझे सभापति की गद्दी पर बिठलाकर रात-भर कवि-सम्मेलन जमाने की कल्पना किये हुए थे। मैंने इलाहाबाद के ट्रंककाल की बात उन्हें बतायी तो वे मारे ख़ुशी के उछल पड़े, पर जब मैंने उनसे कहा कि कवि-सम्मेलन आरम्भ होने के आधे घण्टे बाद वे मुझे जाने की आज्ञा दे दें तो वे बड़े निराश हुए। उनकी पहली प्रतिक्रिया यही थी—यह कैसे हो सकता है! पर जब मैंने उन्हें तेजी के आग्रह से अवगत किया तो वे मान गये और सारा प्रबन्ध ऐसा कर दिया कि मैं कार से समय पर रतलाम पहुँचकर दिल्ली की गाड़ी पकड़ सकूँ।

सात बजे ठीक हम लोग कवि-सम्मेलन में पहुँचे। सारा पण्डाल खचाखच भरा था, आठ-दस हज़ार जनता तो होगी वहाँ। सुमन ने मेरे स्वागत और विदा में जो भाषण दिया था, वह मुझे अब तक याद है—'स्वागत के ही साथ विदा की होती देखी तैयारी।' मेरी पंक्तियाँ मुझ पर ही जितनी सटीक बैठी हैं, शायद ही किसी और कवि की उस पर।

'सुमन' अपनी जीवन्तता से हर स्थिति को बड़े सहज भाव से नाटकीय बना देते हैं। विदेश मन्त्रालय में मेरी नियुक्ति की घोषणा उन्होंने सार्वजनिक रूप से उस भरी सभा में कर दी—'नेहरूजी ने देश-विदेश सम्बन्धों में हिन्दी को स्थान दिलाने के लिए अपने सहायक के रूप में बच्चनजी को दिल्ली बुलाया है'...आदि-आदि। मालवा में हिन्दी-प्रचार के लिए जो उत्साह था, मेरे कवि के प्रति जो आकर्षण था और नेहरू के नाम में जो जादू था—सबने मिलकर उस जन-समुद्र में उल्लास की जो लहरें उठायी थीं, उनसे खेलना 'सुमन' का ही काम था। उन्होंने जनता से यह मनवा लिया कि सभापति होने के बावजूद सबसे पहले मैं कविता-पाठ करूँगा क्योंकि मुझे 10 बजे रतलाम से दिल्ली के लिए गाड़ी पकड़नी है...। बिना उनकी इस भूमिका के 'सुमन' राज़ी हो जाते, तो भी, शायद ही जनता मुझे सभा से उठने देती।

जनता की फ़रमाइश की एक कविता सुनाने के बाद 'जीवन की आपा-

धापी···' से मैंने अपना कविता-पाठ समाप्त किया। कविता के अन्तिम पद का परिस्थिति और मेरी मनःस्थिति से जो सामंजस्य था उसने कवि-सम्मेलन में एक अजीब समाँ बाँध दिया।

मैं कितना ही भूलूँ, भटकूँ या भरमाऊँ
है एक कहीं मंज़िल जो मुझे बुलाती है,
कितने ही मेरे पाँव पड़ें ऊँचे-नीचे
प्रतिपल वह मेरे पास चली ही आती है,
मुझ पर विधि का एहसान बहुत-सी बातों का
पर मैं कृतज्ञ उसका इस पर सबसे ज्यादा—
नभ ओले बरसाये, धरती शोले उगले,
अनवरत समय की चक्की चलती जाती है।
मैं जहाँ खड़ा था कल उस थल पर आज नहीं,

मैं जनता से विनोद करता हूँ, 'कल मैं काशी में था, आज मैं इन्दौर में हूँ' ···फिर मैं आगे की पंक्ति पढ़ना आरम्भ करता हूँ,

कल इसी जगह फिर पाना मुझको मुश्किल है

जनता से मेरा विनोद चल रहा है, 'कल इसी वक़्त मैं दिल्ली में हूँगा'··· फिर पद की अन्तिम पंक्तियाँ पढ़ता हूँ,

ले मापदण्ड जिसको परिवर्तित कर देतीं
केवल छूकर ही देश-काल की सीमाएँ
जग दे मुझ पर फ़ैसला उसे जैसा भाये,
लेकिन मैं तो बेरोक सफ़र में जीवन के
इस एक और पहलू से होकर निकल चला···

और जनता की हर्ष-ध्वनि और पंक्ति की सहस्रों प्रतिध्वनियों के बीच मैं कवि-सम्मेलन से निकल चलता हूँ।···सुमन विदाभिभाषण देने के लिए माइक पकड़कर खड़े हो ग- हैं···उल्लसित जन-समुद्र ने उन्हें रूपक की भाषा में बोलने को प्रेरित किया है। तुलसी उनके परम प्रिय कवि हैं, जैसे मेरे, और यथा-प्रसंग वे उनमें कुछ अवसरानुकूल खोज ही लेते हैं।—

लिंग थापि विधिवत करि पूजा
शिव समान प्रिय मोहिं न दूजा।

इस जन-समुद्र से तरने के लिए कवि-सम्मेलन ही सेतु है। सर्वप्रथम मंगला-चरण के रूप में बच्चनजी का काव्य-पाठ ही इस सेतु पर लिंग-स्थापना थी, अब इस पर कवियों का कटक उतरे,

अब विलम्ब केहि काम बंध्यो सेतु उतरै कटक!

और उन्होंने किसी सुकण्ठ को काव्य-पाठ करने के लिए आमन्त्रित किया।

मैं जन-रव, जनोल्लास, सामूहिक प्रशंसा, रस-रंग-राग, जगमगप्रकाश की दुनिया से पीठ फेरकर इन्दौर से किसी की कार में रतलाम जा रहा था।

ट्रेन मिल गयी। सोने को मुझे एक पूरी बर्थ मिल गयी थी, शायद वह कूपे था

और ऊपर की बर्थ पर कोई न था, पर मुझे बड़ी देर तक नींद न आयी। बड़ी देर तक कवि-सम्मेलन का दृश्य और उसका गुंजार मेरी स्मृति में प्रतिबिम्बित-प्रतिध्वनित होता रहा···बार-बार, हर बार, मुझे मेरी ही अन्तिम पंक्ति के प्रति कुछ बड़ी निजी रीति से सचेत करता,

(तू) इस एक और पहलू से होकर निकल चला।···

27 दिसम्बर, 1955 को दोपहर में मैं विदेश-मन्त्रालय के भव्य-भवन के सामने आकर खड़ा हो गया, अपनी नयी कर्मभूमि के सामने। लेकिन उसमें प्रवेश करने के पहले ज़रा ठिठक गया, जैसे जी चाहा, अपनी पुरानी कर्म-भूमि से विदा ले लूं, अपनी जन्मभूमि ('जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि') बाल-भूमि, युवा-भूमि, और प्रारम्भिक प्रौढ़ता की भूमि से—मैं अपने 49वें वर्ष में दिल्ली आया था।

मैं यह नहीं कहूँगा कि दिल्ली आने की मुझे खुशी नहीं थी,
मुझे आदर से बुलाया गया था।

मेरे लिए एक नया काम था—जिसकी अपनी महत्ता थी।

मुझे अच्छा वेतन दिया गया था,
जिससे मेरे लड़कों की अच्छी शिक्षा सुनिश्चित हुई थी।

मैं अपने निन्दकों, छिद्रान्वेषियों और अपनी शान्ति के शत्रुओं से दूर चला आया था।

और मेरा आना,

एक अच्छे पद पर आना,

उन लोगों के मुँह पर एक तमाचा था जो मुझे केवल उपेक्षणीय और अवहेलनीय समझते थे।

अपने विरोधियों को नीचा दिखाने का सुख, अपने अहं की तुष्टि, अपनी सन्तान के प्रति दायित्व निभाने की खुशी—तीनों का अवसर एक साथ पाने पर भी, क्या अपनी ज़मीन छोड़ने की कचोट मुझे बिना साले रह सकती थी? नहीं, नहीं, नहीं। 'ज़मीन' वही नहीं, जिस पर मैं जन्मा, पला, बढ़ा था, जिस पर मेरी काया खड़ी थी। 'ज़मीन' वह भी, जो मेरे आधे व्यक्तित्व का अंग थी, जिस पर मेरा अध्यापक पिछले तीस वर्षों से खड़ा था। शायद मेरी कविता को या मेरे कवि को अधिक वज़नी समझनेवाले यह सोचते हों कि मुझमें निहित अध्यापक-मास्टर-टीचर-फटीचर महज़ मेरी तराज़ू का पासंग है। मैं शब्दों की इस मीनार पर खड़े होकर यह उद्घोषित करना चाहता हूँ कि वे नितान्त भ्रम में हैं। वयस्क होने से लेकर मेरे अधेड़ होने तक मेरा अध्यापक मेरे कवि के साथ काँधे के साथ काँधा मिलाकर चला था। इतना ही नहीं, बहुत समय तक वह मेरे कवि को अपने काँधे पर बिठाकर चला था। 'था' उसके लिए कहना भी मेरे लिए कम दुखद नहीं है। पर इस तथ्य को अस्वीकार भी कैसे किया जा सकता है कि एक दिन वह मेरे जीवन से चला गया! उसका जाना स्वाभाविक काल-गति से नहीं हुआ। जब मेरी दुर्निवार नियति ने राजनयिक दस्तावेज़ों-पत्रों के अनुवादक रूप में मुझे माँगा, तो मेरे अध्यापक ने अपने को सहर्ष बलिदान कर दिया, मेरे कवि ने अपने को नहीं किया। मुझे अकारण अपने अध्यापक पर गर्व नहीं है। और अपनी ओर से, मैं पहले भी कह चुका हूँ और अब दुबारा अधिक बल देकर कहना चाहता हूँ कि अपने अध्यापक को शिक्षित, दीक्षित, संस्कृत बनाने, और उसे हृष्ट-पुष्ट रखने, सजाने-सँवारने, अलंकृत करने को मैंने जितना श्रम-संघर्ष किया, जितना उस पर

समय-शक्ति-धन वारा उतना अपने कवि पर नहीं। उसका शतांश भी नहीं! विदेश-मन्त्रालय के सिंहद्वार की ऊँची मेहराब के नीचे खड़े होकर मैंने अपने अध्यापक से सदा के लिए विदा ली थी। अध्यापक जिस पर खड़ा था उस ज़मीन से विदा ली थी, पर विदा की पीड़ा से आज तक नहीं ले सका, शायद इसकी साक्षी के रूप में ये कुछ शब्द पर्याप्त होंगे।

हाँ, उसी दिन मैंने उस ज़मीन से विदा ली थी, जिस पर मेरी काया प्रायः आधी शताब्दी से खड़ी थी। इस संस्मरण के दौरान उससे अपनी नाराज़गी का संकेत मैंने इतनी बार किया है कि आपने समझा होगा जब उससे पिण्ड छुड़ाने का अवसर आया होगा तब मैंने एक उपेक्षा-भरी दृष्टि से उसको देखा होगा, उसे एक ठोकर लगायी होगी, और उसकी ओर पीठ करके चल दिया हूँगा। शब्द मनुष्यों की भावनाओं को अभिव्यक्त करने के कितने अपूर्ण माध्यम हैं। मैं इलाहाबाद से इतना नाराज़ नहीं था जितना दुखी। उससे नाराज़ होना तो अपने से ही नाराज़ होना होता। क्योंकि मैं उसी की मिट्टी था, उसी का पानी, उसी की साँस, उसी का स्वर, उसी की मुद्रा—

और यहीं के मिट्टी-पानी
से विरचित है मेरी काया···

जिस बोली में गंगाजमुना
आपस में बोला करती हैं,
जाड़ा, गर्मी, बरसातों में
जिस गति से डोला करती हैं,
नक़ल उसी की मैंने की है,
अपने शब्द-पदों-छन्दों में
मेरी स्वर-लहरी आयी है गंग-जमुन की अमर लहर से।
गाता हूँ अपनी लयभाषा सीख इलाहाबाद नगर से।

और मैं उससे दुखी भी कहाँ था, दुखी था भी तो उसके एक अंश से, उस पर आ बसे कुछ लोगों से। वह मेरी माँ थी, माँ से भी कोई दुखी होता है, माँ में भी कोई दोष देखता है, 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति,' मैं दुखी था उसके कुछ कुपुत्रों से, अपने कुछ भाइयों से, माँ से नहीं, यह झगड़ा भाई भाई का था, सगे-सौतेले भाइयों का, माँ-बेटे का नहीं। मुझे यही तो नियति से शिकायत थी कि उसने ऐसी माँ से मुझ ठीक से विदा लेने का अवसर भी न दिया। मैं गया था इन्दौर, वहाँ से मुझे दिल्ली जाने का वारण्ट मिल गया। और फिर विदा लेने को इलाहाबाद जाने का अवसर न मिला,

मैं पुरानी यादगारों
से विदा भी ले न पाया
था, कि तुमने ला नये ही
लोक में मुझको बसाया

जिस ज़मीन ने मुझे जन्म दिया, पाला-पोसा, बड़ा किया, उम्र की आधी सीढ़ियाँ चढ़ायीं उससे मैं केवल मानसिक विदा ले सका। और यह विदा मेरे लिए अधिक मर्मवेधी इसलिए हो गयी थी कि मेरे अन्दर कोई कह रहा था—और अब तो कह ही सकता हूँ कि ठीक ही कह रहा था—कि 'यह विदा इलाहाबाद से मेरी अन्तिम विदा है, अब इलाहाबाद मुझसे और मेरे परिवार से सदा के लिए छूट रहा है।'

मैं तो नगर की उपज हूँ, पर जनपद से भी तो जुड़ा रहा हूँ। मन शायद नगर से विदा लेने से पूर्व जनपद की परिक्रमा करना चाहता है।

याद आता है तिलहर—हमारे पुरखा मनसा का गुरु-ग्राम—हमारा परिवार सात पीढ़ियों से गुरु-आशीष साकार रहा है—हर पीढ़ी के लोग अपने दुख-संकट में गुरु की गद्दी की निरवलम्ब यात्रा करते रहे हैं—निराश नहीं लौटे—अन्तिम बार मेरे पिता ने की थी—मैंने ही नहीं की—उनके वंशज का दर्शन तो किया था—अनुभव से जाना था कि सन्त का दर्शन अमोघ हो सकता है—अब ऐसा अनुभव मेरे परिवार में किसे होगा? कौन गुरु-सन्तान का दर्शन करेगा? कौन उनकी गद्दी की निरवलम्ब यात्रा? 'कोई नहीं—कोई नहीं'—हे गुरु के ग्राम, मुझे विदा दो!

यह सोराँव—पितम्बर पण्डित, मंगल पण्डित, कर्कल का पैतृक गाँव—एक बार कर्कल मुझे अपने गाँव घसीट ले गये थे—कितना चलाया था उन्होंने मुझे। —कर्कल को गाँव-नगर ने मिलकर कितना मनोज्ञ रूप दिया था—उनमें था गाँव का स्वास्थ्य, नगर का शृंगार, गाँव का सारल्य, नगर का शिष्टाचार, ग्रामीण की सहज बुद्धि, नागरिक का शास्त्रीय ज्ञान। उनको मैंने कच्ची तरुणाई में ही खो दिया और ज़िन्दगी-भर आँखें उन्हें खोजती रहीं—किसी गली-सड़क के नुक्कड़ पर अचानक उन्हें पा जाने की आशा में,—ओ कर्कल की माटी के मूल स्थान, मुझे विदा दो!

फूलपुर तहसील का रामापुर गाँव—मेरी परदादी बुआ की ससुराल—उनके वैधव्य को कितना त्रासा गया था वहाँ—कष्ट-गाथा रोंगटे खड़े करती थी—मैंने उसकी माटी पर कभी पैर न रक्खा—पर उसका नाम मेरे लिए सांसारिक क्रूरता का केन्द्र बन गया था—तुमने मुझे यह देख सकने के लिए तैयार किया था कि दुनिया का ज़ोर-ज़ुल्म किस हद तक जा सकता है और उन्हें सहने की ज़िद भी दी थी। हे रामापुर की माटी, मेरी कृतज्ञता स्वीकारो, मुझे विदा दो, तुमसे अब मैं बहुत दूर जा रहा हूँ।

और यह झूँसी-अरैल—जमुना-गंगा और उनकी सम्मिलित धारा से बँटे तीन भू-भागों में से दो पर—झूँसी, पुराना प्रतिष्ठानपुर, शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट के शिष्य भास्कराचार्य का साधना-पीठ; साधक, साधु-संन्यासियों का आज भी आश्रम, दारागंज और झूँसी के बीच में गंगा बहती, जैसे राग और विराग के बीच में—मोहन चाचा शहर से झूँसी पहुँच सन्यस्त हो गये थे—और कितने ही हुए होंगे—अरैल, महाप्रभु बल्लभाचार्य के चरण-रज से पवित्र तीर्थ—गद्दी पर पूजा-आरती नित्य होती है—कितनी बार आरती में खड़े होने की याद—कर्कल भी साथ—आचार्य ने किन आँखों से सारी सृष्टि को मधुर देखा होगा—'सृष्टिर्मधुरा' —और मैं सन्देह, शंका, संशयों का सताया सृष्टि को तिक्त भी पाता हूँ—बहुत दिन बाद समझा कि उन्होंने सृष्टि नियन्त्रक 'यष्टि' को भी मधुर देख लिया था— 'यष्टिर्मधुरा'—यही तो तिक्त है—मधुर को मधुर के साथ तिक्त को भी मधुर पा लिया था! उनकी पूर्ण दृष्टि सदा प्रयाग पर पड़ती रहे! हे पावन भूमियो, तुमसे दूर जा रहा हूँ, मुझे विदा दो!

और यह बारा—मेरे नाना-मामा की पैतृक भूमि, मेरी माँ की बाल क्रीड़ा-स्थली—पूर्वजों ने पढ़ने को 'रामचरितमानस' उर्दू अक्षरों में लिखा रखा था—प्रति अब भी मेरे पास—ननिहाल में खेती-बारी होती थी—माँ को खेतिहर-जीवन की कितनी झाँकियाँ देश-काल की दूरी पर भी स्पष्ट—वृद्धावस्था में भी उमड़े बादलों

को देखकर कहतीं, 'सहर में बरसै तुम्हार पानी नारी-नरवा में बहि जाई; हे बादर जाव, बारा में बरसौ।' ओ बारा के हरे-भरे खेतो, जिनकी मेड़ों पर मैं सँभल-सँभल चला हूँ, मुझे विदा दो, मैं तुमसे दूर जा रहा हूँ।

यह सिराथू का रूपनारायणपुर—श्यामा की काया यहीं की माटी से बनी थी—काश, तुम्हारा नाम रूपलक्ष्मीपुर होता! —तुम्हारी माटी का उससे अधिक सिद्ध-समृद्ध उपयोग हुआ हो तो मुझे बताओ—वहाँ श्यामा के साथ बितायी कई रातें—चाँदनी रातें—प्रश्न उठा था, वह धवलिमा चाँद की थी या श्यामा के व्यक्तित्व की!

पास कड़े की देवी की जलहरी—एक बार माता-पिता कोई मन्नत पूरी कराने को मुझे वहाँ लिवा ले गये थे—कहते हैं, देवी असन्तुष्ट हों तो जलहरी नहीं भरती। मुझसे तो भर गयी थी। देवी के असन्तुष्ट होने का कोई कारण मैंने न दिया होगा। निकट ही मलूकदास की गद्दी—सन्त वे आलसियों के या परमहंसों के—

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम।

गद्दी से मैंने एक आवाज़ सुनी थी—'तू न अजगर, न पंछी, न दास मलूका-सा आस्थावान कि सर्वथा राम-निर्भर हो, तू काम कर!' तुम्हारा यह सन्देश मेरी तरह सब सुनें। तुम्हारी गद्दी से दूर जा रहा हूँ, सन्त, मुझे विदा दो!

परिक्रमा पूर्ण हुई।
अब आँखों के संगम सामने आता है—
कुमारिल भट्ट के तुषाग्नि में आत्मदाह का,
सम्राट हर्ष के सर्वस्व दान का,
सन्त ज्ञानेश्वर के संन्यासी-गृहस्थ पिता-माता की जल-समाधि का।
कितने मेले-पर्वों का,
कितने-कितने लोगों के अस्थि-प्रवाह का—

ऊँचा से ऊँचा भी अन्तिम बार
यहाँ रजकण बन जाता!

स्मृतियाँ जगाऊँगा,...
तो लहरें नहीं, तरंगें उठेंगी,
सागर उमड़ेगा, प्रलयार्णव,
और उसी में मैं डूब जाऊँगा।

दीर्घायुष्य मार्कण्डेय मुनि को तो अक्षय बट के पत्ते का सहारा मिल गया था—मुझ अल्पायुष्य को वह भी न मिलेगा—

वृक्ष अक्षयवट सनातन
जहाँगीरी हुक्म से काटा गया था
और उसकी जड़ जला डाली गयी थी।

हे गंगा-जमुना, सरस्वती की श्वेत, श्याम रतनार धारा के संगम और इन तीनों प्रतीकों के पीछे न जाने कितनी त्रयियों के मिलनस्थल, तुममें डुबकी लगा, तुम्हारे समन्वयी-जल में तन-मन-प्राण निमज्जित कर तुमसे दूर जा रहा हूँ, मुझे विदा दो!

और यह बँधवा के नीचे लेटे हनुमान—हनुमान की अन्य कोई लेटी मूर्ति मैंने नहीं देखी—मूर्ति यह है भी या नहीं, साक्षात हनुमान हैं—माँ ने बताया था—राम-रावण युद्ध के पश्चात गंगा में नहाकर अपना श्रम शान्त करने आये थे, और

तट पर यह कहकर लेट गये थे, 'बहुत थक गया हूँ,' तब से उठे ही नहीं। मेरे शंकालु मन ने पूछा था, 'पर, माँ, उनकी आँखें तो खुली हैं।' माँ ने बताया था, 'वे सोते भी जागते हुए हैं, हम जागते भी सोये हुए हैं।' माँ की बात समझ में नहीं आयी थी, विश्वास से मान ली थी। अब समझता हूँ, बड़ी बात कही थी माँ ने। हे बँधवा के सोते हुए जागते हनुमान, मुझे विदा दो, मैं अब तुमसे दूर जा रहा हूँ।

और यह दारागंज—इसका नाम तो गंगागंज होना चाहिए था—गंगागंज भी है प्रयाग में, पर गंगा से दूर, दारागंज पर व्यंग्य करता—यह गंगा से पोषितों की बस्ती, उसके पूजकों और शोषकों की भी—गंगा के दरबार से उठकर लोग सीधे महादेव की बारात में शामिल हो सकते हैं—इस दारागंज पर एक दिन कविर्मनीषी निराला की उदास, पागल, पर सशक्त छाया, जैसे किसी देव की, पड़ने लगी, और एक दिन यह पूरा मोहल्ला उससे आच्छादित हो गया—दारागंज का नाम लेना उस छाया को अपने ऊपर अनुभव करना-सा लगता—उस बस्ती में प्रवेश करते ही कितनी बार उस छाया ने मुझे विचार-विचलित किया है।—उस छाया की स्मृतियों से अब सदा को जुड़ी दारागंज की धरती, मुझे विदा दो, मैं तुमसे दूर जा रहा हूँ।

यह कीटगंज—गंगापुत्रों की बस्ती—इन्हीं में से एक के घर चम्पा ने जन्म लिया था—उसी घर में उसने देह-त्याग भी किया—एक दिन उसने अपनी देह में मुझे डुबा लिया था, एक दिन अपनी आत्मा में—'देवि, माँ, सहचरि, प्राण' पन्त की कल्पना में ही रही होगी—मैंने उसे साक्षात देखा था—चम्पा को जन्म देकर उसे अपने में आत्मसात भी कर लेनेवाली कीटगंज की धरती, मुझे विदा दो, मैं तुमसे दूर जा रहा हूँ।

यह चक—मेरे बाल-काल और प्रथम तरुणाई का चक, अब काल के गाल में जा चुका है—उसकी स्मृति केवल दो जगहों पर अब भी बनी है—या तो चकेसरी देवी के चक्षुओं में या फिर मेरी आँखों में—चक की याद करते, विदेश-मन्त्रालय के प्रवेश द्वार की ऊँची मेहराब से नीचे खड़े होकर, मेरे मुँह से निकला था—'क्या भूलूँ क्या याद करूँ'—मुझे उस दिन क्या पता था कि एक दिन ये सजीव स्मृतियाँ जड़ पुस्तक हो जायेंगी।—हे मेरी बाल-क्रीड़ा और चढ़ती जवानी की भूमि, तुम पर विचरण कर कितना तरोताज़ा हो जाता था, कितना विषाद-उदास भी, मुझे विदा दो, मैं अब तुमसे दूर जा रहा हूँ।

यह कायस्थ-पाठशाला—मेरी शिक्षास्थली—अब वहाँ प्रेस है, हिन्दुस्तानी अकादमी है—यहाँ कितना पढ़ा-लिखा, कितना खेला-कूदा, कितनी शैतानियाँ कीं—एक बार एक हथेली पर एक दर्जन बेंत भी खायी थी—आखिरी चोट पर बेंत पकड़ ली थी—वह मेरी मुट्ठी में लेखनी हो गयी थी—लिखते-लिखते कभी थका हूँ तो वे बारह बेंतें याद हो आयी हैं—तूने उधड़ी हुई हथेली से बेंत पकड़ ली थी, कलम छोड़ देगा!—हे मेरे खेल, पढ़ाई, मुरहाई की भूमि, मुझे विदा दो, मैं तुमसे दूर जा रहा हूँ।

और यह कटघर का हमारा नया मकान—पिताजी का बनवाया—और उसका सारा परिवेश स्मृति पर इस प्रकार टूटता है जैसे किसी पतझरी हवा में वृक्ष के पत्ते—यह जमुना रोड—मिशन कालेज का कम्पाउण्ड—जमुना तट—जमुना का नीलम-नील प्रवाह—इस तरफ़ बारादरी, राजा बनारस की कोठी—उस तरफ़ जमुना पुल, लँगड़ी कोठी,—उस पार जमुना का बलुहा किनारा—बरसातों में जल-निमग्न, जाड़ों में उस पर धूप सेंकते कच्छप—दो-चार मगरमच्छ भी—

गर्मी में उस पर खरबूजे-तरबूज़-ककड़ी के खेत—तैरने-नौका चलानेवाली बाहों के लिए जमुना की चौड़ी छाती खेल का मैदान—जिस भूमि पर 'मधुशाला', 'निशा-निमन्त्रण' ऐसी रचनाएँ लिखी गयीं, उस पर उन्माद और अवसाद की सीमाओं को छूनेवाली कैसी-कैसी घटनाएँ घटी थीं।

कला के लिए उर्वर भूमि जीवन के लिए बंजर सिद्ध हुई—उस पर भाई के और मेरे अपने-अपने नीड़ बसाने के प्रयत्न विफल हुए—भाई के दो बार—मेरा एक बार—पिता-माता ने वह घर अपनी वृद्धावस्था में शान्ति से जीने, शान्ति से मरने के लिए बनवाया था—भाई के और मेरे अशान्ति के तूफ़ानों ने उन्हें न शान्ति से जीने दिया, न मरने—उनकी मौतें तो किसी और भूमि पर बदी थीं—

उस भूमि से घबराकर मैंने पहले ही विदा ले ली थी, आज फिर लेता हूँ, ओ मदिरा और आँसुओं की धारा से निमज्जित भूमि, मुझे विदा दो, मैं अब तुमसे बहुत दूर जा रहा हूँ।

दृगों ने मोती की निधि खोल
चुकाया था मदिरा का मोल !

और यह युनिवर्सिटी,

भरद्वाज मुनि जहाँ बसे थे
उसी जगह पर आते-जाते
मेरी आधी उम्र चुकी है
लिखते-पढ़ते और पढ़ाते,
उनके यज्ञस्थल पर अब भी
सरस्वती सरिता लहराती
अनुमानो उसकी गहराई मत मेरी इस अल्प गगर से।
गाता हूँ अपनी लय-भाषा सीख इलाहाबाद नगर से।

कौन कहता है कि भूमि जड़ है ? या तप का प्रभाव केवल तपी पर पड़ता है ? तप तपी को भी संस्कार देता है, तपोभूमि को भी। यह तप की विष्णुता है जो जड़ पर भी जयी होती है या भूमि की प्रभविष्णुता जो अपनी ग्राह्य शक्ति से तप को अपनी ओर खींच लेती है ! शायद दोनों। अंग्रेज़ों ने युनिवर्सिटी स्थापित की तो उसी जगह—उसी के पार्श्व में—जहाँ भरद्वाज की तपोभूमि थी। काश, इलाहाबाद युनिवर्सिटी का नाम भरद्वाज विश्वविद्यालय रखा गया होता !

उभरती जवानी से पकती प्रौढ़ता तक मेरा हर दिन युनिवर्सिटी से सम्बद्ध। उसने मुझे बनाया भी, बिगाड़ा भी। उसके बिगाड़ने से जो बचते हैं, वे हैं शेक्स-पियर-टैगोर। मैं 'अल्प गगर' बनने-बनने के लिए ऋणी। वह मुझे 'टीचर' से लेक्चरर की कोटि में ले गयी। उसने मुझे आगे नहीं बढ़ने दिया, किये को मान, अनकिये को अवमान मत। आख़ीर में मैं उससे नाराज़ हुआ, मेरे लगाव का ही सबूत, अपनों से ही आदमी नाराज़ होता है, ग़ैर से तो नहीं। ख़ैर, इस विदा के क्षण में, ओ मेरी मातृ शिक्षापीठ, तूने जो मेरी उपेक्षा-अवहेलना की, उसे मैं भूलता हूँ; मुझे विदा दे, मैं तुझसे अब दूर जा रहा हूँ।

और अन्त में स्मृति पटल पर उतरते हैं कुण्डूबाग़, बैंक रोड, स्ट्रेची रोड, एडेल्फ़ी और 17, क्लाइव रोड के बँगले, तेजी के मधुर, मनोरम, मनस्वी, तेजस्वी सान्निध्य में, जो अपने आप में यह आश्वासन हैं कि कैसी भी परिस्थिति आये, कैसा भी परिवर्तन, वे उसे मनोनुकूल बनाने की क्षमता रखते हैं। उसके भौतिक अंग से विदा तो लूँ, पर उनके मानसिक, भावात्मक, संस्कारात्मक अंग को साथ

भी रक्खूँ---भविष्य की हर कठिन-कुरूप स्थिति को सुन्दर, मनोज्ञ बनाने के लिए सरस, मनभावन बनाने के लिए।

इलाहाबाद से विदा लेने में बड़ी देर लग गयी। कहाँ ? एक क्षण ही तो बीता है। लिखने में ज़्यादा देर लगी, जीने में बहुत-बहुत कम। अनुभूति के क्षण घड़ी की सुई से नहीं नपते। हज़रत मुहम्मद सातवें आसमान पर चढ़े और उतरे, पास की एक सुराही लुढ़क गयी थी, पानी अभी उससे बह ही रहा था।

मुख्य द्वार से प्रवेश करता हूँ तो नेहरूजी कहीं बाहर जाने को निकल रहे हैं, मुझे देखते हैं, उनके मुख की मुद्रा बदलती है, जैसे मन पर से किसी हल्के भार के गिरने पर बदले।

'तुम आ गये, मुझे खुशी है।'

इलाहाबाद की खाँटी माटी का एक सजीव टुकड़ा सामने दिखायी पड़ता है।

वे मीरगंज में पैदा हुए थे।

मैं चक पर पैदा हुआ था। फ़ासला दो फ़र्लांग का भी नहीं।

इलाहाबाद की माटी, इलाहाबाद की माटी को पहचानती है।

वे निकल जाते हैं।

मैं प्रवेश करता हूँ।

मेरे जीवन का एक अध्याय बन्द होता है,

एक खुलता है।

पाठको, क्या यह अवसर नहीं कि आपसे भी विदा ले लूँ ? आपने मेरी लम्बी आत्मकथा बड़े धैर्य से सुनी, आपका धैर्य टूटे उसके पूर्व मुझे उसे समाप्त कर देना चाहिए, कथा कहने की कोई कला है तो उसका यह सबसे बड़ा गुर।

मुझे इसकी याद न दिलायें कि आपने तो चार खण्डों में अपना आत्म-संस्मरण देने को कहा था, और तीन ही पर अपना क़लम खींच रहे हैं। अब आपको बता ही दूँ, वह मेरा हथकण्डा था। चार तक के लिए आपको इसलिए तैयार किया था कि कम से कम तीन तक तो आप मेरी कहानी से न ऊबें—अभी से ऊबने से कैसे वक़्त कटेगा, अभी तो एक खण्ड और आने को है। वह खण्ड उबानेवाला ही होता, अच्छी-से-अच्छी चीज़ से भी आदमी ऊब जाता है। मैं वह उबानेवाली स्थिति आने ही न दूँगा। होशियार साक़ी, पीनेवाले को कुछ प्यासा ही छोड़ देते हैं, अघाकर जानेवाला फिर पलटकर मधुशाला की तरफ़ नहीं देखता।

इस आत्मचित्रण का ध्येय अपने को आपके सामने प्रस्तुत करना ही नहीं रहा है, अपने को अपने सामने प्रस्तुत करना भी रहा है—जैसे कोई शीशे के सामने खड़े होकर अपने को देखे।

और इसमें सफलता का जो मानदण्ड मैंने रखा था, वह भी आपको बता दूँ।

मैं अपने को आपके सामने ऐसा प्रस्तुत करूँ कि मुझमें आप अपने को भी देख सकें।

और मैं अपने को अपने सामने ऐसा प्रस्तुत करूँ कि उसमें मैं आपको भी देख सकूँ।

शायद आत्म-चित्रण की इससे कठिन कसौटी नहीं हो सकती।

कला और जीवन दोनों इस कसौटी पर चढ़े हैं।

और मुझसे पूछें तो मैं यही कहूँगा कि दोनों इस पर खरे नहीं उतरे। आप इस असफलता की कथा सुनते ऊबे या न ऊबे हों, पर मैं कहते-कहते ऊब उठा हूँ।

झा साहब ने मुझसे कहा था, 'ज़िन्दगी मोह से शुरू होती है, मोह-भंग पर खत्म।' मैंने अपने अनुभव से भी यही जाना है, कविता का जाल समेटते हुए 'जाल समेटा' की एक कविता में मैंने कहा था,

> **(किन्तु) अभागे जो ज़्यादा दिन जीते**
> **उनका नशा उतरता,**
> **उनकी आँखों के ऊपर से पर्दा हटता**
> **औ जीवन की कटु कठोर सच्चाई उनके आगे आती।**
> ....
>
> **मोह-भंग करना ही तो है काम वक़्त का।**

और वक़्त का यह प्रभाव जीवन भी जानता है, कला भी जानती है। कुछ लोग ऐसे हो सकते हैं कि जीवन से मोह-भंग होने के बाद भी कला से मोह बनाये रहें, या इसके विपरीत, कला से मोह-भंग हो जाने पर जीवन से मोह बनाये रहें।

लेकिन इसके लिए जीवन और कला—मेरे सन्दर्भ में लेखन—मांस-त्वचा के समान जुड़े रहे हैं उसके लिए यह असम्भव है कि जीवन से तो उसका मोह-भंग हो जाय पर लेखन से बना रहे। लेखन से भी मेरा मोह-भंग हो चुका है।

अब आपसे क्या छिपाना। तो कह ही दूँ—

आत्म-संस्मरण लिखते समय मैं ऐसा समझता था कि मैं अपने जीवन की सच्ची तस्वीर आपके सामने रख सकने में समर्थ हो सकूँगा, पर अब मुझे यह कटु अनुभूति हो गयी है कि जीवन और शब्द एक-दूसरे से बहुत अलग स्तर की चीज़ें हैं, और एक सतह की चीजें दूसरी सतह पर नहीं चढ़ायी या उतारी जा सकतीं, नहीं पहुँचायी जा सकतीं; और बहुत ईमानदारी और अध्यवसाय से ऐसा उपक्रम करने पर भी वे ऐसी प्रतिच्छायाएँ और प्रतिध्वनियाँ बनकर रह जाती हैं, जो जीवन और यथार्थ से बहुत दूर की होती हैं।

दूसरे शब्दों में, मैं यह कहना चाहूँगा कि जीवन का सत्य और शब्द का सत्य अलग-अलग इकाइयाँ हैं। संसार का सारा साहित्य, जो शब्द का साहित्य है, जीवन को पकड़ने का एक बहुत निर्बल और निष्फल प्रयास है। यदि इसे मेरी अतिशयोक्ति न समझा जाय तो मैं कहना चाहूँगा कि जीवन के सत्य और शब्द के सत्य में कोई साम्य नहीं है, और जीवन की दृष्टि से शब्दों का सत्य एक बहुत बड़ा, लेकिन बहुत सुन्दर झूठ है। जो चीज़ रक्त से लिखी जाती है, वह स्याही से लिखी जा सकती है? जो काम हमारी शिराएँ, हमारी मांस-पेशियाँ करती हैं, क्या हम उसे जड़ लेखनी से करा सकते हैं? और हृदय और मस्तिष्क के फ़लक पर जो मर्मस्पर्शी और मर्मबेधी स्पन्दन होते हैं, क्या उन्हें कोरे काग़ज़ों पर फैलाया जा सकता है? नहीं। नहीं। नहीं।

इस प्रकार, पाठको, (मुझे मानतेन के लहजे में बोलने के लिए क्षमा करें) मेरी पुस्तक जीवन का एक बहुत बड़ा झूठ है, और मैं कोई वजह नहीं देखता कि आप मेरे शब्दों की सुन्दरता के धोखे में आकर अपनी कामकाजी घड़ियाँ ऐसे बेकार और बे-सार शग़ल पर सर्फ़ करें। इसलिए बच्चन की विदा स्वीकार कीजिए—
7.7.'77.

ooo

परिशिष्ट

मूलपाठ में जिन कविताओं का संकेत किया गया है, वे **रचनावली** के किस खण्ड के किस पृष्ठ पर हैं उनका संकेत पाठकों की सुविधा के लिए इस परिशिष्ट के अन्तर्गत दिया जा रहा है।

पृष्ठ 80 पर संकेतित कविता **रेगिस्तान का सफर**, खण्ड 2, पृष्ठ 300-303
पृष्ठ 84 पर संकेतित कविता **कड़ुआ अनुभव**, खण्ड 2, पृष्ठ 312-316
पृष्ठ 88 पर संकेतित कविता **—का जन्मदिन**, खण्ड 2, पृष्ठ 288-291
पृष्ठ 89 पर संकेतित कविता **दोस्तों के सदमे-1**, खण्ड 2, पृष्ठ 303-308

प्रवास की डायरी

[सन् 1952 में लिखित]
[सन् 1971 में सम्पादित]

'प्रवास की डायरी' : प्रथम प्रकाशन 1971; पहला संस्करण राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, से प्रकाशित।

अपने पाठकों से

आज आपके हाथों में अपनी एक नयी पुस्तक—प्रवास की डायरी—रखते हुए मैं बड़ी, और कुछ विशेष प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ।

'कुछ विशेष' क्यों ? इसलिए कि यह नयी पुस्तक ही नहीं, एक नये प्रकार की पुस्तक है, मेरी रचनाओं में ही नहीं, शायद हिन्दी की रचनाओं में भी।

डायरी के रूप में मेरी यह पहली रचना है। डायरी के ढाँचे में हिन्दी में एकाधिक कहानियाँ, उपन्यास, लघु निबन्ध अथवा साहित्यिक-चिन्तन प्रकाशित हो चुके हैं, पर जहाँ तक मुझे मालूम है किसी ने अभी तक अपनी नियमित, वास्तविक डायरी नहीं प्रकाशित की।

पश्चिम में डायरी और जरनल को साहित्यकारों ने साहित्यिक विधा मानकर स्थापित अथवा विकसित न किया हो, पर समालोचकों और साधारण पाठकों ने उसे साहित्यिक विधा मान लिया है। साहित्यकारों की डायरियाँ और जरनल जब-जब प्रकाशित हुए हैं, उनका स्वागत किया गया है। कई डायरी और जरनलों को बड़ी महत्ता, मान्यता और लोकप्रियता मिली है। प्रायः डायरियाँ प्रकाशित करने के ध्येय से नहीं लिखी जातीं, पर जब वे प्रकाशित होती हैं तो उनमें स्वाभाविकता, सच्चाई, सरलता और सजीवता का वह गुण पाया जाता है जिसके लिए सचेत साहित्य झख मारता है। जीवन का सीधा सम्पर्क अभिव्यक्ति को जो सप्राणता और जीवन्तता प्रदान करता है वह किसी भी साहित्यिक तकनीक से साध्य नहीं।

अंग्रेज़ी में सबसे प्रसिद्ध और पुरानी डायरी सेमुएल पीप्स की मानी जाती है जो सत्रहवीं सदी के मध्य में लिखी गयी थी। निश्चय ही यह विश्व के डायरी-साहित्य में अद्वितीय है। सेमुएल पीप्स उच्च नौसेना अधिकारी थे; उन्होंने नौसेना के सम्बन्ध में एक पुस्तक प्रकाशित भी की थी, जिसे आज शायद ही कोई जानता हो; पर डायरी उन्होंने नितान्त निजी अभिव्यक्ति के लिए लिखी थी—शार्ट हैंड में। डेढ़ सौ वर्षों तक यह डायरी माडलिन कालेज, केम्ब्रिज, में सेमुएल पीप्स के काग़ज़ों में दबी पड़ी रही। बाद को शोधकों और विद्वानों की तीन पीढ़ियों ने सत्तर-पचहत्तर वर्ष के परिश्रम से इस शार्ट हैंड के पोथे को पढ़ा और उसे उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में प्रकाशित किया। इसी से आज उनकी प्रसिद्धि है और वे दुनिया के प्रथम और सर्वश्रेष्ठ डायरी-लेखक माने जाते हैं। इससे सेमुएल पीप्स के समय के इतिहास, जीवन और रहन-सहन पर तो प्रकाश पड़ा ही, उनके व्यक्तित्व का एक नया और अनोखा

पहलू भी सामने आया। वे अपने से सर्वथा तटस्थ हो किस सच्चाई, गहराई और निर्ममता से अपना मनोविश्लेषण कर सकते थे ! अपने परि-पूर्ण व्यक्तित्व को उघाड़कर सामने रखनेवाली फिर ऐसी डायरी प्रकाश में नहीं आयी, जैसे कोई अपने कमरे में क़द्दे-आदम शीशे के सामने नंगा खड़ा हो जाये। पीप्स के सौ बरस बाद लिखा जानेवाला रूसो का 'कन्फ़ेशन' ईमानदार होकर भी सचेत साहित्य की कृत्रिमता से मुक्त नहीं, साथ ही इसका ध्येय आत्म-विश्लेषण इतना नहीं, जितना दूसरों को धक्का (शॉक) देना या चकित करना।

अपने व्यक्तित्व के किसी पहलू पर ध्यान केन्द्रित कर अथवा किसी घटना, प्रसंग एवं रुचि को प्रमुखता दे अंग्रेज़ी के साहित्यकारों ने कई अच्छे और रोचक जरनल प्रकाशित किये हैं; उदाहरणार्थ बॉसवेल ने हेब्रिडीज़-यात्रा और स्विफ़्ट ने लन्दन-प्रवास का जरनल लिखा था। विलियम बटलर ईट्स समय-समय पर अपने अध्ययन, चिन्तन, मनन की डायरी रखते थे जिन्हें उन्होंने अपने जीवनकाल में ही प्रकाशित भी कराया था। शायद उन्हें प्रकाशित कराने के ध्येय से लिखा भी गया था। निजी और प्रकाशित कराने के लिए लिखी चीज़ों में एक आधार-भूत अन्तर होना स्वाभाविक है।

जो पुस्तक आज आपके हाथों में है वह मेरी डायरी है जिसे मैंने इंग्लैण्ड-प्रवास के समय लिखा था। विद्यार्थी जीवन में अक्सर हमारे अध्यापक हमें डायरी लिखने के लिए प्रोत्साहित करते थे। याद आता है, कभी मैंने अपनी डायरी लिखी थी, कभी बहुत विस्तृत, पर बाद को काल-क्रम में, या मेरी लापरवाही से वह नष्ट हो गयी, या रखने योग्य न समझ-कर मैंने खुद नष्ट कर दी। वह मेरे गद्य-लेखन की खाद बनी होगी।

फिर कभी विधिवत् डायरी लिखने की स्मृति नहीं।

कह नहीं सकता कि मैं विदेश गया तो क्यों मुझे कुछ दिनों तक अपनी डायरी रखने की सूझी। कई कापियाँ भर गयीं। फिर ईट्स पर अपने शोध के सिलसिले में इतना पढ़ने-लिखने को था कि डायरी लिखने का समय ही न रह गया। एक बार क्रम टूटा तो फिर नहीं चला।

बीस बरसों से ये कापियाँ मेरे किसी बक्स में पड़ी थीं।

आत्म-चित्रण का तीसरा खण्ड लिखने के लिए जब मैं अपने पुराने कागद-पत्रों को उलटने-पलटने लगा तो ये कापियाँ मेरे हाथ लगीं और मैं उन्हें पढ़ने लगा। वे मुझे रोचक और आकर्षक लगीं। मन में प्रश्न उठा, क्या ये औरों के लिए भी आकर्षक और रोचक न होंगी ?

मेरे आत्म-चित्रण के दो खण्डों में आपने जो रुचि ली है उससे मुझे यह विश्वास हो गया है कि आप मेरे साधारण-से जीवन में दिलचस्पी रखते हैं। बहुत स्वाभाविकता से लिखी जाने पर भी आत्मकथा प्रकाशित करने के ध्येय से लिखी गयी थी, और उसने निश्चय ही मेरी स्वाभाविकता को परिसीमित किया है। प्रस्तुत डायरी प्रकाशित करने के ध्येय से नहीं लिखी गयी थी। इसमें क्या है, क्या नहीं है; इसके गुण-दोष क्या हैं; इसमें मेरे जीवन-अनुभव, भाव-विचार का क्षेत्र कितना विस्तृत है, कितना संकुचित; कितना गहरा, कितना छिछला—यह तो पाठक बतायेंगे। सौभाग्य से डायरी की कोई रूढ़ अथवा मानक विधा नहीं

बनी; बन भी नहीं सकती थी; और लेखक को अपनी निजी रीति से अपनी बात कहने, छिपाने को—छिपाना अपने से भी होता है!—स्वतन्त्रता है। फिर भी प्रत्येक पाठक के मन में डायरी के सम्बन्ध में एक अपनी कल्पना हो सकती है। मैं केवल इतना दावा कर सकता हूँ कि इसमें मैं अपने अधिक स्वाभाविक रूप में आपके सामने हूँ। यदि मैं अपनी स्वाभाविकता के कारण ही आपके निकट आ सका हूँ तो अपनी इस गद्य कृति के द्वारा आपके अधिक निकट आने की आशा रखता हूँ। गद्य, पद्य से अधिक स्वाभाविक होता ही है।

अपनी आत्मकथा में स्वाभाविक रीति से जो मैंने लिखा है उसे जाने-माने विद्वानों और समालोचकों ने अच्छा गद्य कहा है। फ्रेंच हास्य नाट्यकार मोलियर के एक पात्र को एक दिन यह रोम-प्रहर्षक (थ्रिलिंग) 'आत्म-ज्ञान' होता है कि वह अपने सारे जीवन गद्य ही बोलता रहा है!—गद्य जिसे लिखने के लिए बड़े-बड़े साहित्यकार अपना सिर खपाते हैं।

कुछ वैसी ही भोली अनुभूति से मैं अपनी डायरी को अपना सहज गद्य समझ आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ।

कुछ विनोद, आनन्द, सूझ, समझ, सूचना के रूप में इस पुस्तक पर ख़र्च किये गये आपके पैसे वसूल हों तो मैं अपने इस प्रयास को दुःसाहस न समझूँगा।

कभी समय-सुविधा से इस पर अपनी प्रतिक्रिया देंगे तो आभारी हूँगा।

डायरी के सम्पादन में अपना समय, सहयोग और सुझाव देने के लिए श्री सत्येन्द्र शरत् के प्रति हृदय से आभारी हूँ।

13, विलिंगडन क्रिसेण्ट
नयी दिल्ली-11
मई, 1971

बच्चन

12-13 अप्रैल, 1952

5 बजे आँख खुली। आज प्रस्थान का दिन था। उठते ही बुख़ार लिया। नार्मल से भी कम था, पर कमज़ोरी बहुत मालूम हो रही थी। तेजी भी जगीं। यही निर्णय हुआ कि आज ही रवाना होना चाहिए। न जाने से आगे का सारा प्रबन्ध गड़बड़ हो जायेगा। सामान पहले से ही बँधा था। मुझे कुछ काग़ज़ अलग करने थे। बिस्तर पर लेटे ही लेटे मैंने उन्हें छाँटा। पृथ्वीराज कपूर, शिव शर्मा, मंगला और शंकरा से फ़ोन पर ही विदा ले ली। शिव शर्मा, तेज नारायण खेतान, जमुना प्रसाद सिंह मिलने को आये। डॉ. अम्बालाल ने आकर पेनीसिलीन का आख़िरी इंजेक्शन दिया। आश्वासन दिया कि अब तबीयत बिगड़ने न पायेगी। नाश्ते में मैंने केवल दूध लिया। घर से चलने का समय निकट आने लगा। तेजी की आँखें रह-रहकर भर आती थीं। मेरे बाहर जाने में प्रेरणा-प्रोत्साहन सब कुछ उन्हीं का था, पर जाने के समय उन्होंने अपना अकेलापन अनुभव करना आरम्भ किया। मेरे मन में भी पहले तो विदेश जाने का बहुत उत्साह था, पर जाते समय यह उत्साह न जाने कहाँ चला गया। एक तो हफ़्ते-भर की बीमारी, दूसरे मुझे भी बराबर तेजी और बच्चों का ध्यान आने लगा। अपने इन प्रियजनों को छोड़कर कहाँ जा रहा हूँ! पर नियति का संकेत हो चुका था। मैं परवश था। मेरे नक्षत्र मुझे कहीं खींचे लिये जा रहे थे।

हवाई अड्डे पर मुझे दो फ़ार्म भरने पड़े; एक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में था और दूसरा कस्टम के सम्बन्ध में। बक्सों का चार्ज तो हवाई जहाज़वालों ने ले लिया, मेरे हाथ में दो बैग और ओवरकोट रह गये। हम बैठे ही थे कि कलकत्ते से जहाज़ आ गया। इसी से मुझे जाना था। थोड़ी देर बाद लाउड-स्पीकर पर कहा गया कि यात्रियों को कस्टम के लिए भीतर आ जाना चाहिए। तेजी से विदा ली। वे कहने लगीं, प्रयाग में कितने फूलों के साथ तुम्हारी विदाई हुई थी, यहाँ मैं कुछ भी नहीं लायी। उन्होंने देखा, औरों को विदा देने के लिए लोग फूल-मालाएँ लाये हैं। उनके आँसू नहीं थम रहे थे, और मेरा मन भीतर एक-एक बूँद के सागर में जैसे डूबा जा रहा था। कमज़ोरी दिखलाना मैंने उचित न समझा। दिल कड़ा करके उनसे विदा ली। यशोविमलानन्द आ गये थे। उनसे मैंने कहा कि तेजी को शाम को इलाहाबाद जाने के लिए कलकत्ता मेल में सवार करा दें। बीच में लकड़ी का कटघरा—उस पार तेजी, इस पार मैं। कुछ कहना चाहता था पर आवाज़ वहाँ तक नहीं जा सकती थी। तेजी का मुँह लाल था। आँसू चल रहे थे। इतना सुना, कैरो से भी पत्र लिख सकते हो, ज़रूर लिखना। इतने में उमेश माथुर मिलने को आ गये। मैंने तेजी को इस ओर बुलवाया, क्योंकि मैंने देखा कि और लोग भी मिलने को इधर आ गये थे, पर तभी हवाई जहाज़ से संकेत किया गया और मैं बग़ैर उनकी प्रतीक्षा किये जहाज़ के पास चला आया। दूर से वे हाथ हिला रही थीं। मैंने भी सीढ़ी पर से हाथ हिलाया और फिर भीतर चला गया। जहाज़ में बेहद गर्मी थी। जब जहाज़

चला, लोग हाथ दिखा रहे थे। उन्हीं में तेजी भी थीं, शंकरा भी हवाई-अड्डे पर आ गयी थीं। मन को धीरज दिया कि शंकरा तेजी को सँभाल लेंगी।

जहाज़ में पचास आदमियों के बैठने की जगह थी, पर मुसाफ़िर तीस से अधिक नहीं थे। मैं एक फ्रेंच लेडी के बग़ल की सीट पर बैठा। वह पेरिस जा रही थी। बहुत खुली, बहुत बातूनी।

जगह यों तो कुर्सी की थी, पर एक बटन दबाने से वह पीछे को झुक जाती थी और आराम से लेटा जा सकता था। हवा आने के लिए दो सूराख़ ऊपर की तरफ़ थे जिनको घुमाकर इच्छानुसार जिधर चाहे उधर किया जा सकता था। उनसे ठण्डी हवा आती थी। जब तक जहाज़ नीचे था और गर्मी थी तब तक उनका उपयोग था। ठण्डक होने पर ये सूराख़ हमने बन्द कर दिये। रोशनी के बल्ब भी उन्हीं के पास लगे थे। ऊपर के स्विच दबाने से रोशनी हो जाती थी। एअर होस्टेसेज़ को बुलाने के लिए भी बटन लगे थे जिनके दबाने से भीतर घण्टी बजती थी और सीट के ऊपर रोशनी हो जाती थी, जिससे उनको पता लग जाता था कि कौन बुला रहा है। ओवरकोट तो अलग टाँग दिया गया। बैग मैंने पाँवों के पास रक्खे। सीट के ऊपर भी छोटी-मोटी चीज़ें रखने की जगह थी। उसी में कम्बल रक्खे थे जो आवश्यकता पड़ने पर लिये जा सकते थे। वैसे जहाज़ के अन्दर एक कम्बल से ज़्यादा की सर्दी कभी नहीं मालूम हुई। मैं तो पूरा सूट पहनकर बैठा था, पुलओवर के साथ। और लोग भी ऐसे ही बैठे थे।

एअर होस्टेसेज़ दो थीं —सुन्दर, स्वस्थ, हँसमुख। उनमें से एक ऐंग्लोइण्डियन लगती थी, दूसरी सिन्धी। वे बुलाने पर बड़ी प्रसन्नता से आती थीं, और जो कुछ माँगो देती थीं, जो काम कहो कर देती थीं।

ऊपर उठते ही बम्बई आँखों से ओझल हो गयी, और हमारा जहाज़ समुद्र पर उड़ने लगा। नीचे देखने को भी क्या था—सिर्फ़ नीला समुद्र। कहीं-कहीं सफ़ेद बादल के टुकड़े दिखायी देते थे। गर्मी कुछ कम हुई। कुर्सी टेढ़ी की और आँखें मूँदकर लेट गया। लगा, दूर नीचे कहीं मेरा छोटा-सा घर है और मेरे दोनों बच्चे खेल रहे हैं— प्रार्थना की, भगवान, जा तो रहा हूँ, लौटकर अपने इन हृदय के टुकड़ों को सकुशल देखूँ।

लगभग 4-5 बजे हवाई जहाज़ फ़ारस की खाड़ी के निकट आया। कुछ देर फ़ारस के पहाड़ी इलाक़ों पर से भी गुज़रा। धारान की तेल की खान से हम 25 मील उत्तर थे। फ़ारस की खाड़ी में हमें नीचे कुछ स्टीमर भी दिखायी पड़े। खिलौनों की तरह मालूम होते थे। एक छोटा-सा द्वीप तो ऐसा लगा जैसे कोई बड़ी-सी सूखी पत्ती पानी पर उतरा रही हो। हम तो जैसे सूरज का पीछा ही कर रहे थे। आठ बजने को आये फिर भी उजाला था। धीरे-धीरे शाम हुई, अँधेरा हो गया, और बाहर सिर्फ़ हवाई-जहाज़ की लाल बत्ती दिखायी देने लगी। थोड़ी देर बाद तारे भी दिखायी पड़ने लगे। हमारा जहाज़ अरब के रेगिस्तान पर से जा रहा होगा। क़रीब साढ़े बारह बजे रात को हमारा जहाज़ कैरो पहुँचा। घड़ी में चार घण्टे का अन्तर आ चुका था। उतरने के पूर्व कैरो की जगमगाती झलक जो दिखायी दी वह कभी नहीं भुलायी जा सकती। कैरो नाम सीज़र से पड़ा होगा—सीज़र, क़ैसर, क़ैहर (अरबी में उसे क़ाहिरा कहते हैं), कैरो!

ईजिप्ट की पुलिस ने आकर हम लोगों की गिनती की और हम रेस्ट्राँ में लाये गये। कैरो में काफ़ी ठण्डक थी। हवा भी तेज़ चल रही थी। मैं तो सिर्फ़ सूट पहने नीचे उतर पड़ा। ऊपर ओवरकोट डालने का ख़्याल ही न आया। कुछ सर्दी लगी।

अफ़सर, पुलिस, बेयरे सब लाल टोपी—टर्किश कैप—पहने हुए थे। साइनबोर्ड वग़ैरह सब दो भाषाओं में थे—अरबी और अंग्रेज़ी में—अरबी ऊपर। बेयरे लम्बे-लम्बे चोगे पहने थे। देश की राष्ट्रीयता ऊपर झलक रही थी। मैंने रास्ते में तेजी के लिए एक ख़त लिखा था। शिलिंग का स्टैम्प मेरे पास नहीं था। एक क्यूरियो डीलर मि. कोस्टा ने कहा, ख़त मैं भेज दूँगा, आप शिलिंग का स्टैम्प बाद को भेज दीजिएगा। उसकी सज्जनता से बहुत प्रभावित हुआ। ईजिप्ट की कला-कौशल की चीज़ें दूकानों में सजी थीं। लौटते समय इनमें से कुछ चीज़ें अवश्य ले जाऊँगा। ईजिप्ट से हमारा जहाज़ क़रीब दो बजे के (ईजिप्ट के टाइम से दस बजे) रवाना हुआ। अभी मैं अपनी घड़ी पर हिन्दुस्तान का टाइम ही रक्खे हुए था।

रास्ते में मेडीटरेनियन पर जाते हुए बहुत-से स्टीमर दिखे। रात में उनकी रोशनी और पानी में उनकी परछाईं बहुत अच्छी लगती थी। बिजली से जगमग करता एक बड़ा नगर भी दिखा। सम्भवतः रोम होगा—कह नहीं सकता, पर काफ़ी बड़ा नगर था और दूर-दूर तक रोशनी की लाइनें फैली हुई थीं।

पेरिस हम हिन्दुस्तान के समय से 10 बजे पहुँचे। वहाँ हमें लगभग दो घण्टे रुकना पड़ा। सुबह होने लगी थी। सूर्योदय हमने वहीं से देखा। हवाई अड्डे पर जो दूकानें थीं उनमें इत्र ख़ास चीज़ थी। शीशियों के नमूने तो देखते ही बनते थे। उनकी सजावट भी मौलिक और कलापूर्ण ढंग से की गयी थी। फ्रांस के इत्रों की बात सुन रक्खी थी। उसका कुछ आभास यहाँ भी मिला। विशेष ध्यान मेरा दो स्त्रियों की ओर गया। नीले एपरन पहने वे आयीं और जल्दी-जल्दी उन्होंने सब जगह सफ़ाई की। झाड़ू ये ऐसा इस्तेमाल करती हैं जिसे खड़े-खड़े ही चलाया जा सके। सफ़ाई करने के बाद उन्होंने अपना एपरन उतारा और हमारी ही मेज़ पर चाय पीने को बैठ गयीं। क्या हम कल्पना कर सकते हैं कि हिन्दुस्तान में जमादार सफ़ाई करना ख़त्म करके आये और सब लोगों के बैठने की कुर्सी या मेज़ पर बैठकर चाय या शर्बत पिये। होना तो चाहिए ऐसा और कभी होगा भी। पर अभी हमने मनुष्य और मनुष्य में कितना अन्तर बना रक्खा है।

पेरिस से हम बारह बजे रवाना हुए। ऊपर से पेरिस कितना घना, क़ायदे से बसा, कितना सुन्दर लग रहा था। घण्टे-भर के बाद हम इंग्लैण्ड के ऊपर आ गये। इंग्लैण्ड में बादल छाये हुए थे और हमारा जहाज़ बड़ी देर तक बादलों के ऊपर उड़ता रहा—सफ़ेद बादलों के—जैसे नीचे बर्फ़ जमी हुई हो। अपनी तमाम यात्रा में इतने सफ़ेद बादलों की सतह पर से हमारा जहाज़ नहीं गुज़रा था। रात की बात नहीं जानता। दूर एक और जहाज़ समानान्तर उड़ रहा था। उतरने में काफ़ी समय लगा। पर बादलों को भेदकर जब जहाज़ नीचे आया तो ज़मीन पर पहुँचने में कोई दिक़्क़त नहीं हुई।

जहाज़ से उतरने पर हम लोग एक कमरे में लाये गये। यहीं मुझे मार्जरी बोल्टन और त्रिनयन कुमार के सन्देश मिले—वे विक्टोरिया टरमिनल पर मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। समाचार से दिल को तसल्ली हुई कि लन्दन में राह दिखानेवाला कोई है और अजनबी की तरह भटकना नहीं पड़ेगा। नाग ने चिट्ठी लिखी थी कि एरोड्रोम पर किसी सन्देश या तार की प्रतीक्षा करना। पर उनकी ओर से यहाँ कुछ भी न था। लगभग आध घण्टे वहाँ हमें रुकना पड़ा। कस्टमवालों ने ज़रा भी तंग नहीं किया। किसी सज्जन ने लन्दन में किसी के लिए खाने की तम्बाकू का एक डिब्बा भेजा था। उसके विषय में विशेष पूछताछ हुई, पर वह खोला नहीं गया। पासपोर्ट-परीक्षा भी केवल नाम-मात्र थी। स्वास्थ्य-परीक्षा में

भी देर नहीं लगी। इतनी लम्बी यात्रा के पश्चात् स्वस्थ आदमी भी रोगी-सा लगता है। मुझे तो 24 घण्टे नींद नहीं आयी थी। एक कार्ड भरने को दिया गया जिसमें तीन सप्ताह के भीतर डाक्टर को दिखाने का आदेश था। इसके पश्चात् हम बस से विक्टोरिया टरमिनल के लिए रवाना हो गये। रास्ते में काफ़ी भीड़-भाड़ थी। लन्दन के लोग छुट्टियाँ मनाने जा रहे थे -- ईस्टर की छुट्टियाँ। लन्दन मुझे स्वच्छ-सुन्दर लगा। रास्ते में पेड़ों की काट-छाँट बड़े कलापूर्ण ढंग से हुई थी।

विक्टोरिया टरमिनल पर मैंने सबसे पहले मार्जरी को देखा, उसके बाद त्रिनयन कुमार को। मार्जरी का चित्र मैंने देखा था; उसने भी मुझे पहचान लिया। हमने दूर से ही एक-दूसरे को हाथ हिलाकर इशारा किया। मार्जरी से मिलकर मुझे बहुत ख़ुशी हुई। M. was literally thrilled to bits to meet me। पश्चिम के लोग अपनी भावनाओं को व्यक्त करने की औपचारिकता ख़ूब निभाते हैं। हम लोग प्रायः भीतर ही भीतर अनुभव करते हैं पर कहने में संकोच करते हैं। नाग साहब का कहीं पता न था। सुन रक्खा था कि इण्डिया हाउस से प्रायः लोगों को निराशा होती है। वह बात सच निकली। टैक्सी लेकर हम लोग इण्डियन स्टूडेण्ट्स होस्टल, गिल्फ़र्ड स्ट्रीट को चले। नाग साहब ने यहीं मेरे ठहरने का प्रबन्ध किया था।

किराये के ऊपर दो शिलिंग और त्रिनयन ने दिलवाये। बोले, यहाँ टिप की प्रथा बहुत प्रचलित है। दस प्रतिशत टिप साधारणतया देनी चाहिए।

सामान मैंने ऊपर के कमरे में रक्खा। इसमें दो सज्जन और ठहरे थे। वार्डेन से मैंने कहा, मुझे तो पूरा कमरा चाहिए। पर उनके पास कोई कमरा ख़ाली न था, और इतनी जल्दी लन्दन में कमरा, ख़ासकर आजकल, मिल नहीं सकता था। इतने में नाग साहब का फ़ोन आया। बोले, अभी आता हूँ, मेरी प्रतीक्षा कीजिए। मैं मार्जरी और त्रिनयन से बातें करता रहा। नाग साहब के आने पर वार्डेन ने आश्वासन दिया कि कल एक अलग कमरा मुझे मिल जायेगा, आज मैं किसी तरह काम चला दूँ। मैं मार्जरी और त्रिनयन को लेकर तारघर की तरफ चला—तेजी को सकुशल पहुँचने का तार देने। रसेल स्क्वयर ट्यूब स्टेशन से लीस्टर जाना था। लिफ़्ट और स्केलेटर से होकर ट्यूब रेल की सवारी की। बिलकुल नया ही अनुभव हुआ। अपने-आप चढ़ती-उतरती सीढ़ियों का ज़िक्र जब पहले सुना था तब लगता था कि इन पर चढ़ भी पाऊँगा कि नहीं, पर मैं सहज ही इन पर चलने लगा, कभी-कभी तो चलती सीढ़ियों पर चढ़ा-उतरा भी। तार के पाँच शिलिंग लगे। लौटते हुए रास्ते में एक प्याली चाय पी। मारे नींद के आँखें गिरी जा रही थीं। मैंने मार्जरी और त्रिनयन को विदा किया और कमरे में जाकर बिस्तर पर लेट गया। कमरे के साथी दिन को कहीं निकल गये थे।

5 बजे शाम को सोकर उठा। मार्जरी को बुलाया था, वह ठीक पाँच बजे आ गयी। 5 से 6॥ उसी के साथ मैं लन्दन घूमने गया। ट्रेफ़लगर स्क्वयर, हाउस आफ़ कामन्स, वेस्टमिन्स्टर एबी और चन्द ख़ास-ख़ास सड़कों को देखकर हम वापस आये। खाना 6॥ बजे से था। 4 शिलिंग खाने के देने पड़े। खाना हिन्दुस्तानी था, पर मेरी भूख नहीं खुली थी। खाने पर कई हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों से मेरा परिचय हुआ। कुछ ने मुझे पहले देखा था; कुछ ने मेरी कविताएँ पढ़ी थीं। ऊपर आकर सो गया। साथ के दो लड़कों ने रात को काफ़ी शोर-गुल मचाया। काश कि मुझे एक अलग कमरा मिला होता ! मैं ही जानता था कि मैं कितना थका-थका अनुभव कर रहा था। सर्दी भारत में नवम्बर महीने जैसी थी। ओढ़ने को जो मुझे दिया

गया था वह ज़रूरत से ज़्यादा था। नींद किसी तरह आ ही गयी। तेजी और बच्चों का बराबर ध्यान आता रहा। आँखों के सामने वे बराबर बने रहे। इस प्रकार लन्दन में पहली रात बीती।

14 अप्रैल, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ। ब्रेकफ़ास्ट का समय 8 से 9 तक था। मार्जरी को मैंने 9 बजे आने को कहा था। ब्रेकफ़ास्ट करके लाउन्ज में आया तो वे मेरी प्रतीक्षा में बैठी थीं। हम दोनों लन्दन देखने को निकल पड़े। लन्दन युनिवर्सिटी और ब्रिटिश म्यूज़ियम तो पास ही थे। बाहर-बाहर से ही देख सका। छुट्टियों के कारण सब जगहें बन्द थीं। फिर हम नेशनल गैलरी, सेण्ट जेम्स पैलेस, लन्दन म्यूज़ियम, ग्रीन पार्क, बकिंघम पैलेस और सेण्ट जेम्स पार्क गये। बकिंघम पैलेस देखकर निराशा हुई। कितना भव्य है हमारा राष्ट्रपति भवन! जब स्वराज्य नहीं हुआ था तब सचमुच हिन्दुस्तान का वायसराय इंग्लैण्ड के बादशाह से अधिक शान-शौकत से रहता होगा। पार्क हॉलीडे-मेकर्स से भरा हुआ था। कितनी जगहें नवयुवतियाँ-नवयुवक एक-दूसरे से लिपटे-चिपटे पड़े थे, पर कोई उनकी ओर देखता भी नहीं था। शायद एक मेरी ही आँखें उनकी ओर जा रही थीं। कोशिश कर रहा था कि उन्हें न देखूँ। वे तो दुनिया से बेख़बर थे। दोपहर को एक रेस्ट्राँ में जाकर हमने लंच लिया। दोनों के 13 शिलिंग लगे। दो शिलिंग टिप के देने पड़े। खाना हिन्दुस्तानी मिला। पुडिंग में आम भी मिल गया। मार्जरी को हिन्दुस्तानी खाना बहुत पसन्द आया। उसकी ख़ूराक अच्छी है, मुझे तो अभी वैसे भी भूख नहीं लगती।

लंच के बाद समरसेट हाउस, टेम्पल (यह यहाँ का 'ला' कालेज है। गांधीजी ने यहाँ शिक्षा पायी थी।) होते हुए हम लोग सेंटपॉल्स कैथीड्रल पहुँचे। भीतर भी जाकर हमने देखा। हज़ारों मर्द, औरतें, बच्चे देखने को आये थे, पर शोर का नाम तक नहीं था। गुम्बद पर जाने का रास्ता भी है, पर मैं बहुत थका था। बहुत-से लोग ऊपर जा रहे थे। कैथीड्रल में बहुत-से अंग्रेज़ वीरों की यादगारें बनी हैं। कितने ही पुराने झण्डे लगे हैं। अंग्रेज़ पुरानी चीज़ों की बड़ी क़द्र करते हैं। हमने रेस्ट्राँ में चाय पी और टावर, टावर-ब्रिज, और मज़दूरों की बस्तियों की ओर गये। अंग्रेज़ मज़दूर अच्छी हालत में रहते हैं। लौटते समय हमने ग्लोब थियेटर साइट देखी। यहीं शेक्सपियर के नाटक हुआ करते थे। बहुतों में वह स्वयं अभिनय भी करता था। शेक्सपियर पर हर अंग्रेज़ को बड़ा अभिमान है, और बिना सेण्टीमेण्टल हुए वह शेक्सपियर का नाम नहीं ले सकता। शाम हो रही थी। मुझे साढ़े छह बजे खाने को आना था। मार्जरी को धन्यवाद देकर विदा ली। मार्जरी ने जाते समय कहा, You have seen all that could be seen of London within two days.

दिन भर ट्यूब ट्रेन, बस, टैक्सी सभी में घूमा। ट्यूब कुछ समझ में आने लगा है। इतने निशान लगे हैं कि कोई रास्ता भूल ही नहीं सकता। जहाँ भी भ्रम हो, दीवारों पर देखो, कुछ न कुछ संकेत अवश्य ही मिल जाता है। टिकट मशीनों से मिलते हैं। कर्मचारी और नागरिक पूछने पर सब बातें बताते हैं। मार्जरी मेरे साथ थी, पर मैं अकेला भी होता तो, मुझे विश्वास है, कोई दिक्कत न होती। मार्जरी को बुध को मिलने को कह दिया था। मंगल को यानी कल मुझे इण्डिया हाउस जाना था।

होस्टल में आने पर मालूम हुआ कि आज बंगालियों और दक्षिणियों का नया

वर्ष है और उस उपलक्ष्य में रात को एक उत्सव मनाया जायेगा। मुझे भी निमन्त्रण दिया गया—कविता सुनाने के लिए। खाना मैंने नहीं खाया, पेट भारी था। केवल एक प्याला दूध ले लिया। उत्सव में 10-15 महिलाएँ और 40-50 पुरुष थे। इण्डियन स्टूडेण्ट्स होस्टल में एक मकान स्त्रियों के लिए अलग है। खाने के समय सब एकसाथ बैठते हैं—उत्सव वग़ैरह में भी। उनके उठने-बैठने का लाउंज वैसे अलग है। उत्सव की कार्रवाई सब अंग्रेज़ी में ही हो रही थी। जो गाने वग़ैरह हुए वे बंगाली के, और उनका अनुवाद अंग्रेज़ी में सुनाया गया। लगता था जैसे हिन्दुस्तानियों की Lingua Franca ही अंग्रेज़ी है। यहाँ भारत के विभिन्न भागों के लोग थे। हिन्दी का अभी इतना प्रचार कहाँ हुआ है। अभी तो हमारी Lingua Franca सच पूछो तो अंग्रेज़ी ही है। पर हिन्दी के लिए किसी प्रकार का प्रयत्न भी मैंने नहीं देखा। लाउंज में बैठे सब अंग्रेज़ी में बात कर रहे थे; मार्जरी ने सोचा होगा, क्या भारतवासियों की अपनी कोई भाषा नहीं है। दासता ने हमें कितना कृत्रिम बना दिया था। उसका परिणाम अभी हमें बहुत दिनों तक भोगना पड़ेगा। जब मुझे कविता-पाठ करने के लिए बुलाया गया तो मैंने हिन्दी में बोलना शुरू किया। मैंने कहा, भारत के संविधान में हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा मान ली गयी है। पर अभी न तो हमारे मन में हिन्दी के लिए उत्साह है और न हमने उसे सीखने का प्रयत्न किया है। मैं तो सही अंग्रेज़ी बोलने के बजाय इसे ज्यादा पसन्द करूँगा कि आप कोशिश करके टूटी-फूटी हिन्दी ही बोलें। मैं भी रोटी कमाने भर को अंग्रेज़ी जानता हूँ। मैं आपसे अंग्रेज़ी में कुछ कह भी सकता था, पर मैं आपसे हिन्दी में ही बोल रहा हूँ। यदि आप हिन्दी में की गयी मेरी बात नहीं समझेंगे तो मेरी कविता क्या समझेंगे; और अगर आप मेरी कविता नहीं समझेंगे तो मैं अपनी बात से आपको क्या अच्छी चीज़ बता सकूँगा। मुझे जो सबसे सुन्दर देना है वह तो मैंने अपनी कविता के द्वारा दिया है। कविता में बहुत कुछ ध्वनि और लय से भी कहा जाता है। जो भाषा का अर्थ न समझें वे ध्वनि और लय पर ध्यान दें, कुछ उनके पल्ले अवश्य पड़ेगा।—मैंने देखा कि उपस्थित जनता मेरे विचारों को स्वीकृति दे रही है। फिर मैंने कविता पढ़ना आरम्भ किया—'इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो।' मुझे आश्चर्य हुआ कि अहिन्दी-भाषी लोग भी उसे समझ-से रहे थे। या वे केवल मुझे प्रसन्न करने के विचार से ऐसा कर रहे थे। संगीत तो उनको अच्छा लगा ही। कुछ लोग लय और ध्वनि के सहारे कुछ समझ सके। उत्तर भारत के लोगों ने कविता का पूरा आनन्द उठाया। कई और गीत-गायन के पश्चात् फिर मुझसे फ़रमाइश की गयी, 'मधुशाला' की। 'मधुशाला' की मैंने पाँच रुबाइयाँ सुनायीं। लोग झूमने लगे। भारत का-सा समाँ दिखा। 'मधुशाला' में क्या है जो लोग उसे इतनी जल्दी समझने और उसके रस में बहने लगते हैं। किसी डाक्टर ने उठकर धन्यवाद दिया। मेरे बारे में उन्होंने बहुत कुछ कहा जिसका सम्भवतः मैं अधिकारी नहीं। अपनी बड़ाई भूल जानी चाहिए। दोष याद रखना चाहिए। 'जन गण मन' के साथ उत्सव समाप्त हुआ। कुछ और लोगों ने आकर मुझसे परिचय किया। मुझे नींद आ रही थी। आज मुझे अकेला कमरा मिल गया था। ऊपर जाकर सो गया।

15 अप्रैल, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ। ब्रेकफ़ास्ट लिया। अण्डे की जगह दोशा मिला। अण्डे हफ़्ते में दो ही मिलते हैं, शाकाहारियों को एक अण्डा रोज़, पर राशन कार्ड बनवाने

पर। मैं केम्ब्रिज जाकर राशन कार्ड बनवाऊँगा। तैयार होकर ज़रूरी कागज़ इकट्ठा करता रहा। इण्डिया हाउस जाने का रास्ता पहले से पूछ रक्खा था। गिल्फ़र्ड स्ट्रीट से निकलकर सदैम्पटन रो, किंग्सवे होते हुए जाना था। आज दूकानें सब खुली थीं। शीशे की खिड़कियों पर सामान की ऐसी सजावट रहती है कि मन बरबस रुकने और देखने को करता है। किताबों की दूकानों से हटने के लिए ख़ास प्रयत्न करना पड़ता है। जी चाहता है कि पैसा हो और नयी-नयी किताबें लेकर किसी कमरे में बैठ जायें। रास्ता सिर्फ़ एक जगह पूछना पड़ा। आल्डविच पहुँचने पर एक बड़ी इमारत दिखी, जिस पर दो मूर्तियाँ बनी हैं, लिखा है, To the Union of English speaking people. सुना है, यहाँ अंग्रेज़ी भाषा-भाषियों का एक बड़ा संघ है। क्या हम हिन्दी-भाषी संघ की स्थापना नहीं कर सकते ? हमें तो उसकी ख़ास ज़रूरत है। हिन्दी को हमें किताबों से ज़बान पर लाना है। तभी हिन्दी सजीव होगी और उसका प्रचार होगा। देश जाकर इस पर विचार करूँगा। इसी की इमारत से लगा हुआ इण्डिया हाउस है। बीच में अंग्रेज़ी में लिखा है, इधर-उधर उर्दू और हिन्दी में 'हिन्दुस्तान'—वह भी अशुद्ध—'हिन्दूस्तान'। अभी इस ग़लती को सुधारा नहीं गया। संविधान में तो देश का नाम 'भारत' रक्खा गया है। इस सबको खुदवाकर नागरी लिपि में 'भारत' लिखवा देना चाहिए। कभी लोग चेतेंगे। मुझे चौथी मंजिल पर जाना था। पूछ-ताछ के दफ्तर में पहुँच-कर मैंने एक फ़ार्म भरा। इतनी देर में डॉ. रोज़ारियो बरामदे से गुज़रे, उन्होंने मुझे पहचाना और अपने दफ्तर में लिवा ले गये। रोज़ारियो ने प्रयाग विश्व-विद्यालय से एम. एस-सी. किया था। हिन्दी बहुत अच्छी बोलते हैं। हमारी बात-चीत हिन्दी में ही शुरू हुई। बहुत अच्छी तरह मिले और देश-नगर का समाचार पूछते रहे। उन्होंने फ़ोन पर मिस्टर नैस्टर – डेपुटी सेक्रेटरी एडूकेशन—और उनके असिस्टेण्ट मिस्टर नाग को मेरे आने की सूचना दी। थोड़ी देर बाद वे मुझे नैस्टर के कमरे में छोड़ गये। नैस्टर की उम्र क़रीब 50 वर्ष होगी। बड़ा हँसमुख और मिलनसार लगा। उसने मुझे केम्ब्रिज के प्रोफ़ेसरों का परिचय दिया, और मेरे जाने का सारा कार्य-क्रम बना दिया। नक्शा खींचकर कालेजों का पता बताया, जैसे कोई किसी बच्चे को समझाये। फिर बताया, कहाँ से टिकट लेना चाहिए, किस स्टेशन से जाना चाहिए, वग़ैरह-वग़ैरह। मैंने नैस्टर को बहुत धन्यवाद दिया और कहा कि मैं तो आपके ही कारण आने का साहस कर सका। बोला, You had to be in the diplomatic service. वह मेरी बातचीत से प्रसन्न हुआ। उसने कहा, फिर कभी आओगे तो अपने घर ले चलूँगा, मेरी पत्नी से मिलना और साथ खाना खाना। यह भी कहा, मैं केम्ब्रिज अक्सर आता-जाता रहता हूँ; जब आऊँगा तब मिलूँगा। इण्डिया हाउस में मिस्टर नैस्टर से अधिक प्रसन्न-मुख व्यक्ति मैंने नहीं देखा। थोड़ी देर में नाग ने आकर केम्ब्रिज की लैण्डलेडी का पता दिया और कहा, जगह अच्छी है, आप पसन्द करेंगे। इसके पश्चात् मैं श्री धर्मवीर से मिलने के लिए तीसरी मंज़िल पर आया। उनके नाम पण्डित नेहरू ने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी श्री बी. एन. कौल से एक चिट्ठी लिखा दी थी जो मैं साथ ही लाया था। श्री धर्मवीर राजा ज्वालाप्रसाद के लड़के हैं जो बनारस युनिवर्सिटी के प्रो-वाइस चैंसेलर रह चुके थे। धर्मवीर मेरी कविता से परिचित थे। उनका लड़का थोड़े दिनों में केम्ब्रिज आनेवाला है। धर्मवीरजी ने सब तरह से सहायता देने का आश्वासन दिया। कहा, जब फ्रांस या योरोप के किसी अन्य देश में जाना चाहेंगे तो एम्बेसीज़ के नाम परिचय-पत्र आदि दे देंगे। पर अभी तो मैं केम्ब्रिज

पहुँचना चाहता हूँ। डॉ. कौमुदी भी डॉ. रोज़ारियो के कमरे में मिल चुकी थीं, कहा था, सबसे मिलकर मेरे पास आइएगा, पर इतनी देर में लंच का समय हो गया। मैंने सुना था कि इण्डिया हाउस में हिन्दुस्तानी लंच मिलता है, पर जगह मुझे नहीं मालूम थी। मैं उतरकर टामस कुक की शाखा पर गया और लिवरपूल स्टेशन से केम्ब्रिज तक का टिकट लिया। फिर पोस्ट आफ़िस से कुछ स्टैम्प खरीदे, लौटकर फिर डॉ. कौमुदी के कमरे में गया पर अभी वे लंच से वापस न हुई थीं। मैं इधर-उधर घूमकर इण्डिया हाउस देखने लगा। पहली मंज़िल पर गुम्बद पर बड़े सुन्दर चित्र उरेहे गये हैं—भारत के इतिहास के विभिन्न प्रमुख अवसरों के चित्र हैं। गैलरी में काले पत्थर की बुद्ध की एक प्रतिमा है। सीढ़ियों पर रवीन्द्र-नाथ टैगोर की सफ़ेद पत्थर की एक मूर्ति है। इसके पश्चात् मैं पुस्तकालय में चला गया। यहाँ गांधीजी का बड़ा भारी चित्र टँगा है। पुस्तकें सब अंग्रेज़ी की हैं। पिछली दिसम्बर में आगरे में ब्रिटिश कौंसिल गया था। एक स्थान पर बड़ी सुरुचि से नवीनतम अंग्रेज़ी प्रकाशन सजे हुए थे। पत्रिकाएँ भी लगी थीं। यहाँ भारतीय प्रकाशनों का कोई अता-पता नहीं। पत्रिकाएँ सब अंग्रेज़ी की थीं— भारत के अंग्रेज़ी दैनिक-साप्ताहिक भी थे। इसके बाद मैं डॉ. कौमुदी से मिलने गया। उन्होंने हमारी युनिवर्सिटी से डॉक्टरेट ली थी, वैसे शिक्षा उनकी पंजाब में हुई थी। जब तेजी को लिवा लाने को पहली बार लाहौर गया था तो ये उन्हीं के पड़ौस में रहती थीं, अपनी बहन के साथ। प्रयाग में भी इनसे मुलाकात हुई थी। झा साहब ने इनके नाम मेरे सम्बन्ध में एक चिट्ठी लिख दी थी। प्रयाग विश्वविद्यालय की बहुत-सी बातें पूछती रहीं। फिर हम मि. कृपाल से मिले। ये शिक्षा मन्त्रालय, दिल्ली, में थे। आजकल यूनेस्को, पेरिस, में हैं। छुट्टी मनाने लन्दन आये हुए थे। उनके भाई अमरनाथ कृपाल 17, क्लाइव रोड में मेरे पड़ोसी रह चुके थे। कृपाल जी ने मेरे पेरिस जाने पर विशेष सहायता देने का वचन दिया।

फिर मैं मिस्टर क़िदवाई से मिला। ये लखनऊ की शकुन्तला जसपाल के पति हैं। शकुन्तला की छोटी बहन कमला भी इण्डिया हाउस में काम करती है। प्रकाश के यहाँ इन लोगों से पहले परिचय हुआ था। क़िदवाई मुझे मिस्टर हक्सर के कमरे में ले गये। ये इलाहाबाद के ही हैं। बहुत प्रेम से मिले। इलाहाबाद और इलाहा-बाद युनिवर्सिटी से सम्बद्ध लोगों ने बड़ा अपनापन दिखलाया। वहीं विपिन बिहारी टण्डन का फ़ोन आ गया। ये आजकल रायटर में हैं। बदली में यहाँ आ गये हैं। उन्होंने शाम को अपने यहाँ खाने पर बुलाया; बोले, खुद आकर लिवा जायेंगे, क्योंकि मुझे रास्तों का पता अभी तक नहीं है। क़िदवाई साहब से न रहा गया, बोले, इलाहाबाद वालों में बड़ा भाईचारा है—हफ़्तों से शोर मचा रक्खा था कि बच्चनजी आनेवाले हैं, बच्चनजी आनेवाले हैं। मैं हाई कमिश्नर से भी मिलना चाहता था। उचित भी था। परन्तु वे सुबह ही किसी काम से भारत चले गये थे। फिर कभी लन्दन आने पर उनसे मिलूँगा। इस समय तक चार बज गये थे। मैं पैदल चलकर अपने होस्टल पहुँचा। रास्ते से कुछ स्टेशनरी ली। पहला काम था तेजी को ख़त लिखना। तार तो भेज दिया था, पर ख़त अभी तक न लिख सका था। वादा किया था कि पहुँचते ही ख़त लिखूँगा, पर छुट्टियों की वजह से यह सम्भव न हो सका। उन्हें चिन्ता तो बहुत ही होगी। ख़त लिखकर ख़त्म किया था कि विपिन आ गये। कुछ देर तो हम दोनों कमरे में ही बैठे बातें करते रहे। फिर खाने के लिए चल पड़े। ट्यूब रेल की सवारी करके हम लोग एक इण्डो-एशियाटिक रेस्ट्राँ में पहुँचे। नौ बज चुके थे। हम लोगों ने हिन्दुस्तानी खाना खाया। यहाँ भी

आम खाने को मिल गया। आम अब बहुतायत से यहाँ आने लगा है। कुछ अंग्रेज़ लोग भी हिन्दुस्तानी रेस्ट्राँ में आकर खाना खाते हैं। वेजीटेरियन खाना सब जगह मिलता है। अभी तक तो मुझे किसी प्रकार की कठिनाई हुई नहीं। खाना ख़त्म करते-करते दस बज गये। विपिन ने कहा, चलो, मेरा निवासस्थान भी देख लो।

उनके लैण्डलार्ड कोई ईजिप्शियन आर्टिस्ट हैं। वे सबसे ऊँची मंज़िल पर रहते हैं। मकान में लिफ़्ट नहीं है। प्राइवेट घरों में लिफ़्ट बहुत कम हैं। प्राय: लोग ज़ीने से ऊपर-नीचे जाते हैं। अच्छी कसरत लोगों की होती है। मैं तो विपिन के साथ पहली मंज़िल पर लाउंज में बैठ गया। आर्टिस्ट के कुछ चित्र भी लगे थे। एक नग्न लेटी स्त्री का चित्र बहुत अच्छा लगा। वे पोर्ट्रेट पेण्टर हैं। कई पोर्ट्रेट बहुत सजीव मालूम हुए।

जब लौटा, क़रीब 11 बज रहे थे। इस समय लन्दन की सड़कों पर और ही दृश्य रहता है। दूकानें तो इंग्लैण्ड में 5।।-6 तक बन्द हो जाती हैं। फिर चहल-पहल केवल सैलून, बार और पब्स में रहती है। होटल और रेस्ट्राँ भी खुले रहते हैं। सैलून उच्च श्रेणी के लोगों के लिए हैं। यहाँ प्राय: डांस हाल और म्युज़िक-आर्केस्ट्रा भी होता है। लोग पीते-खाते और वाद्य-संगीत पर नाचते हैं। बार मध्यम श्रेणी के लिए होता है। यहाँ सस्ते क़िस्म की शराब चलती है। डांसिंग के लिए जगह होती है; म्यूज़िक-बैण्ड नहीं होता। रेडियो या ग्रामोफ़ोन लगाकर नाचते हैं। पब्स साधारण श्रेणी के लोगों और विद्यार्थियों के लिए होते हैं। यहाँ प्राय: हल्की शराब बियर-साइडर चलती है। कॉफ़ी-चाय भी मिल सकती है। लोग मिल-बैठकर बातें करते हैं — दुनिया के हर विषय पर, खुलकर, ज़ोरों से, जोशोख़रोश से। 11-12 बजे रात इन बार-पब्स से निकलते युवतियाँ-युवक लिपटते-चिपटते, चूमते-चाटते, झगड़ते-झपटते, दौड़ते-भागते, लन्दन की काकनी इंगलिश बोलते, शोर मचाते देखे जा सकते हैं। बड़ी सड़क से इधर छोटी गली जा रही है। कुछ अँधेरा है। वहाँ क्या हो रहा है? मत देखो। अपनी राह जाओ। उधर देखने का अधिकार केवल 'बॉबी' को है। लन्दन-पुलिस को 'बॉबी' कहते हैं। और जो देखे वह असभ्य गिना जाता है। यहाँ लोग अपने काम से काम रखते हैं; दूसरा क्या करता है, इसे नहीं देखते। ट्यूब ट्रेन में अक्सर देखा, युवक युवती को प्यार कर रहा है। कोई उसकी ओर देखता तक नहीं। गिलफ़र्ड स्ट्रीट में घुसने के पहले ही रसेल-स्क्वेयर खुला पार्क है। अभी तक यहाँ युवक-युवतियों की चहल-पहल थी। गिलफ़र्ड स्ट्रीट में भी कई स्थानों पर नवयुवक-युवतियों के गुट दिखे — पिये, शोर मचाते और कल्पनातीत मुद्राओं में। लन्दन युनिवर्सिटी कालेज नज़दीक होने से इधर बहुत-से विद्यार्थी रहते हैं। युनिवर्सिटी कालेज के दूसरी ओर गावर स्ट्रीट है; वह भी विद्यार्थियों की बस्ती के लिए प्रसिद्ध है। गावर चासर का समकालीन था। सम्भवत: यहीं रहता होगा।

अपने कमरे में जाकर सो गया।

16 अप्रैल, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ। 8 बजे ब्रेकफ़ास्ट कर लिया। मार्जरी ने 9-9।। पर आने को कहा था, पर मैं नौ बजे स्टेशन के लिए रवाना हो जाना चाहता था। मार्जरी के लिए एक चिट्ठी लिखी कि मैं केम्ब्रिज जा रहा हूँ; वहाँ पहुँचकर ख़त लिखूँगा। सड़क पर आकर खड़े होते ही टैक्सी मिल गयी। मैंने त्रिनयन को फ़ोन किया कि लिवरपूल स्टेशन पर आकर मुझसे मिल लें, शायद वहाँ कोई दिक़्क़त हो। पहली बार इंग्लैण्ड की ट्रेन पर सवारी करनी थी। त्रिनयन को कालेज जाना था,

फिर भी उन्होंने कहा कि समय निकाल सकेंगे तो वे स्टेशन पर आ जायेंगे। मुझे सन्देह हो गया था कि शायद ही वे आ पायें। इतने में देखा कि मार्जरी आ रही है। मैंने कहा, अगर तुम कुछ और नहीं कर रही हो तो मुझे लिवरपूल स्टेशन पर केम्ब्रिज की गाड़ी में बिठा दो; वहाँ से मैं अकेला चला जाऊँगा। मार्जरी कहने लगी, मैं तुम्हें केम्ब्रिज तक छोड़ आ सकती हूँ। —मेरे मना करने पर भी वह न मानी। हम 9।। पर स्टेशन पहुँच गये। शायद उस गाड़ी के लिए पहुँचनेवालों में हमीं सबसे पहले होंगे। अपनी हिन्दुस्तान की आदत। वहाँ तो गाड़ी छूटने के दो मिनट पहले लोग पहुँचते हैं; बाक़ी वक़्त स्टेशन सूना। पोर्टर ने सामान ले लिया। यहाँ सिर पर बोझा उठाने का क़ायदा नहीं। छोटे-छोटे ठेले हैं जो सब जगह प्लेटफ़ार्म पर आ-जा सकते हैं। हर पोर्टर के पास अपना ठेला होता है। सिर पर तो कोई पशु भी बोझ नहीं उठाता -- एक इन्सानरूपी पशु को छोड़कर। यह सिर की इज़्ज़त है। बक्सों पर केम्ब्रिज का लेबिल लगा दिया गया और वे ब्रेक में रख दिये गये; केवल एक चमड़े का और एक कपड़े का थैला मैंने अपने हाथ में रक्खा। मेरे मना करने पर भी मार्जरी लौटानी-टिकट लेकर गाड़ी में आ बैठी। बोली, शायद तुम्हें तकलीफ़ हो, मैं तुम्हें केम्ब्रिज छोड़कर दूसरी गाड़ी से वापस चली आऊँगी। हमने तीसरे दर्जे में सफ़र किया; सुविधा सब दूसरे दर्जे की। भीड़ ट्रेन में नहीं थी। केम्ब्रिज का डिब्बा ही अलग था। उसमें 6-7 मुसाफ़िर बैठे थे। बैठने की जगह सभी को मिल गयी थी। सफ़र सिर्फ़ डेढ़ घण्टे का था। इंग्लैण्ड के गाँवों की भी एक झलक ट्रेन से मिली। उसके गाँव भी कितने स्वच्छ-सुन्दर हैं!

सफ़र में मार्जरी केम्ब्रिज की बहुत-सी बातें बता गयी। केम्ब्रिज की आबादी लगभग अस्सी हज़ार है। करीब बीस हज़ार मकान हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह अच्छी जगह है। कैम नदी के किनारे बसा है। नगर में बहुत-से खुले पार्क हैं। बस्ती कहीं बहुत घनी नहीं है। कहते हैं, अगर इसका धरातल थोड़ा ऊँचा होता तो इंग्लैण्ड में वायु-परिवर्तन के लिए यह आदर्श जगह होती। फ़ैक्टरियाँ और मिलें यहाँ नहीं हैं, जो प्राय: योरोप के नगरों की हवा गन्दी करती हैं। यह विशुद्ध विद्या का केन्द्र है। ऑक्सफ़र्ड पर मिलों ने धावा बोल दिया है।

केम्ब्रिज पहुँचकर हमने टैक्सी ली और 7, जीज़स लेन, मिसेज़ मलेटका के एपार्टमेण्ट में पहुँचे। रास्ते से जो देखा उससे केम्ब्रिज सुन्दर नगर लगा, छोटा-सा, जगह-जगह पुरानी इमारतें-गिरजे। मील-दो मील में सब कुछ है। सामान रखकर हम कुछ देर केम्ब्रिज में पैदल घूमना चाहते थे। कमरा मेरा छोटा-सा, तीसरी मंज़िल पर था। मिसेज़ मलेटका को इण्डिया हाउस से मेरे पहुँचने का तार मिल चुका था। वे मेरे इन्तज़ार में थीं। मेरा कमरा ठीक था। कमरे में एक पलँग, एक सिंगार मेज़, एक काम करने की मेज़-कुर्सी, दो आराम कुर्सियाँ, एक कपड़े टाँगने की आलमारी और दो छोटी-छोटी टेबिलें थीं। दीवार से लगी किताबें रखने के लिए एक और आलमारी थी। मिसेज़ मलेटका अंग्रेज़ लेडी हैं जिन्होंने एक पोलिश रिफ़्यूज़ी से शादी कर ली है। पति-पत्नी मिलकर 'डिग' चलाते हैं। 'डिग' विद्यार्थियों के रहने की जगह को कहते हैं। इनकी 'डिग' को युनिवर्सिटी से मान्यता मिली हुई है। सामने एक बिल्डिंग दिखायी दी। मिस्टर मलेटका ने बताया कि यह सिडनी ससेक्स कालेज है। ओलिवर क्रामवेल यहाँ का विद्यार्थी था, सम्भव है उसका कमरा मेरे कमरे से दिखायी पड़ता हो; मुझे पता नहीं लग सका कि वह ख़ास किस कमरे में रहता था। कालेज यहाँ होस्टल को कहते हैं। लेक्चर-रूम्स युनिवर्सिटी के साथ हैं। खिड़की से बायें को आल सेण्ट्स कैथीड्रल दिखायी

देता है। इस मकान के ठीक बायीं ओर इसी से लगा हुआ पिट्स क्लब है। सिडनी कालेज के लान वग़ैरह जो खिड़की से दिखायी दिये, मुझे बहुत अच्छे लगे। ज़्यादा देखने-सुनने का समय नहीं मिला।

सामान रखकर मैं नीचे आया। मार्जरी मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। साढ़े बारह का समय हो रहा था। बाहर निकलते ही 'कोहनूर' रेस्ट्राँ दिखा। हमने यहाँ आकर लंच लिया। हिन्दुस्तानी खाना मिला। मार्जरी ने बहुत खुश होकर खाया। आम उसे पसन्द थे। यहाँ भी माँगने पर आम मिल गये। दोनों के खाने के 12 शिलिंग लगे। दूसरी टेबिल पर एक हिन्दुस्तानी विद्यार्थी दिखायी पड़े। मैंने उनसे परिचय किया और मिलन कुमार का पता पूछा। मिलन बनर्जी हमारी युनिवर्सिटी के वाइस-चांसलर का छोटा लड़का है। केम्ब्रिज में 'इण्टरनेशनल ला' कर रहा है। मि. बनर्जी भी केम्ब्रिज में थे। लड़का क्लेयर कालेज में है। इलाहाबाद से चलते समय मिसेज़ बनर्जी ने मिलन के लिए बंगाली मिठाई का एक डिब्बा दिया था। वह मैं बहुत सँभालकर लाया था और जल्दी-से-जल्दी मिलन को दे देना चाहता था—4 रोज़ तो इंग्लैण्ड आये हो चुके थे, और छह दिन मैं बम्बई था। मिठाइयों का क्या हाल हुआ होगा, नहीं कह सकता। मेरा तो ख़्याल है, वे अवश्य ही सड़ गयी होंगी। वह विद्यार्थी मिलन कुमार को जानता था। उसने कहा कि वह उन्हें सूचित कर देगा और मेरा पता बता देगा। खाना खाने के बाद हम कालेज और चर्चों को देखते हुए क़रीब ढाई घण्टे घूमते रहे। मार्जरी कालेजों की हिस्ट्री बताती जाती थी। यहाँ तो हर कालेज 6-7 सौ बरस पुराना है। अगर हमारी नालन्दा-तक्षशिला आदि की परम्परा चलती रहती तो निश्चय ही हमारे विश्वविद्यालय इनके कालेजों से कहीं पुराने होते। सेण्ट जोन्स कालेज में वर्ड्सवर्थ रहा करते थे। कहते हैं, उनका कमरा अब रसोईघर का भाग बन गया है। इसे हमने सबसे पहले देखा। इसके आगे ट्रिनिटी कालेज है। इसका चैपेल बहुत सुन्दर है—Magnificient is the word for it. इसमें सर्विस भी होती है। कभी यहाँ की सर्विस भी देखूँगा। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ट्रिनिटी कालेज में ही थे। ओल्ड ट्रिनिटी कोर्ट या ह्यूल कोर्ट में उनका कमरा था। कभी उसे जाकर देखूँगा। उसके आगे किंग्स कालेज है। हमारे देश के दो रत्न यहाँ भी थे—श्री अरविन्द घोष और लाला लाजपत राय। उसके आगे सेण्ट कैथरीन्स कालेज है। यहाँ सुभाष बोस थे। मिस्टर हेन जो डब्ल्यू. बी. ईट्स की कविता के विशेषज्ञ हैं, और जिनकी देख-रेख में मैं काम करूँगा, वे सेण्ट कैथरीन्स कालेज में ही हैं। इक़बाल फ़िट्ज़विलियम हाउस में थे। केम्ब्रिज ने हमारे देश के इतने सपूतों को क्या कुछ दिया! देखो, मैं यहाँ से क्या लेकर जाता हूँ। काश कि मैं यहाँ बीस वर्ष की उम्र में आया होता। तब शायद मैं भी यहाँ से बहुत कुछ सीख सकता था। पर अब?... क्या मैं भी अपने देश, अपनी भाषा के लिए कुछ ऐसा कर सकूँगा कि भविष्य में आनेवाला कोई युवक इन बड़े नामों के बाद यह कह सकेगा—और हिन्दी का एक कवि बच्चन भी यहाँ आया था...

समय कम था। मार्जरी की गाड़ी 3-15 पर छूटती थी। वह मुझे युनिवर्सिटी लाइब्रेरी दिखाने को बहुत उत्सुक थी। एक पुल पार कर हम लाइब्रेरी गये। कालेजों के पीछे कैम नदी है—नहर-सी। किनारे बैठे लोग कहीं किताबें पढ़ रहे थे, कहीं धूप ले रहे थे। नदी में छोटी-छोटी नावों में दो-दो, तीन-तीन लोग बैठे खुद ही खेकर इधर-उधर ले जा रहे थे। नावों में बैठे लड़कियाँ-लड़के कहीं किताबें पढ़ रहे हैं, कहीं बिसकिट-केक खा रहे हैं, कहीं कोई यों ही लेटा है, कोई हवाइयन

गिटार बजा रहा है। कुछ छोटे लड़के, अमित-अजित की उम्र के, छोटी-छोटी खिलौनों-सी डाँडों से नाव को खे रहे हैं। सब साफ़, सुघर, सुन्दर। ग़रीबी कहीं दिखायी नहीं देती। क्या किया है इन्होंने अपने देश को। शोर-गुल बिल्कुल नहीं। कोई किसी को नहीं देखता। जान-पहचानी आपस में मिलते, सिर हिलाते, मुसकुराते और अपनी धुन में चले जाते हैं। एक स्वप्नों का-सा देश है।

लाइब्रेरी भी मैंने बाहर से देखी। मेम्बरशिप का फ़ार्म लिया। जल्दी-जल्दी सड़क पर आकर हम स्टेशन जानेवाली बस में बैठ गये। मशीन से मैंने प्लेटफ़ार्म का टिकट लिया। गाड़ी खड़ी थी। मार्जरी गाड़ी में बैठ गयी। मैंने उसे बहुत धन्यवाद दिया—तुमने अपना कितना समय, कितना पैसा मेरे लिये बर्बाद किया! मैं इस कृपा के लिए आभार प्रकट करने को शब्द नहीं पा रहा।—उसने जवाब दिया, You can do the same for me when I come to India. मैंने कहा, I will try to do more. गाड़ी ने सीटी दी, मैंने कहा, 'Ma'm, I am going to be all by myself now.' चलती गाड़ी से मार्जरी ने कहा, 'Be a good boy, Cambridge has many temptations.' जब से मैंने इंग्लैण्ड में पाँव रक्खा था हर समय कोई-न-कोई मेरे साथ था, पर अब मैं अकेला रह गया। स्टेशन पर किताबों की एक दूकान थी। वहीं से मैंने एक केम्ब्रिज गाइड ली, एक बस गाइड। केम्ब्रिज का एक नक्शा मार्जरी ने पहले ही लेकर मेरी जेब में डाल दिया था। कहा था, इसे साथ रखना और भूलने-भटकने पर किसी से पूछ लेना कि इस समय मैं कहाँ हूँ और वहाँ से नक्शे के अनुसार जीज़स लेन चले आना।

स्टेशन से मैं पैदल चला। एक जगह पुलिसमैन से रास्ता पूछना पड़ा। उसने सटीक बताया—पहले मोड़ को छोड़कर दूसरे पर चले जाओ। मैंने पीछे मुड़कर देखा। वह देख रहा था कि मैं ठीक जा रहा हूँ कि नहीं। अपनी सड़क मैंने पहचान ली। ऊपर आया। थका था। जूता पहने ही पलँग पर लेट गया। 5 बजे होंगे। सोचा था उठकर अभी कपड़े वग़ैरह ठीक करूँगा। नींद खुली तो रात के नौ हो चुके थे। भूख भी लग रही थी। खाने के कमरे में गया। यहाँ तो सब बन्द है। मिसेज़ मलेटका का दरवाज़ा खटखटाया। वह निकलीं। मैंने कहा, खाना। बोलीं, खाना तो साढ़े छः बजे यहाँ होता है। अब तो खाने को कुछ भी नहीं है।—फिर? मैं तो सो गया था। और मैं नवागन्तुक हूँ; मुझे तो मालूम भी नहीं था। क्या आप मुझे कुछ भी खाने को दे सकती हैं? उन्होंने देखकर बताने को कहा। आकर बोलीं, आप अपने कमरे में जायें, मैं कुछ भेज रही हूँ। मिस्टर मलेटका एक बोतल दूध, बिस्किट, चीज़, टोस्ट और एक प्लेट में चावल और करी लेकर ऊपर आये। मैंने कहा, मेरी ज़रूरत से यह बहुत ज़्यादा है। मैंने चावल खाया और दूध पिया। टोस्ट, चीज़, बिस्किट, मक्खन मैंने रख दिया।

सो चुका था। नींद अब कहाँ आने को थी। मैं बैठकर केम्ब्रिज गाइड पढ़ने लगा। थोड़ी देर में मिलन कुमार बनर्जी आ गये, गाउन और वाटरप्रूफ़ लिये। यहाँ गाउन विद्यार्थियों को हर समय साथ रखना पड़ता है। बरसाती भी हर समय ज़रूरी होती है। न जाने कब बारिश हो जाये। उनसे थोड़ी देर तक बातचीत होती रही। मैंने उन्हें मिठाई का डिब्बा दिया। माँ की भेजी वस्तु पाकर उन्हें सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई। काफ़ी देर वे इलाहाबाद वालों का समाचार पूछते रहे। उन्हीं से पता चला कि आजकल इक़बाल का लड़का जावेद यहीं पढ़ता है। कभी मिलन ने केम्ब्रिज मजलिस में मेरा कविता-पाठ कराने को कहा है। मैं तो हर नवयुवक से ईर्ष्या करने लगा हूँ। मिलन को देखते-देखते बस यही विचार बार-

बार मन में आता रहा कि एक बार मैं फिर नवयुवक हो जाता और ऐसे ही आकर केम्ब्रिज में पढ़ता रहता और यहाँ के वातावरण से जो कुछ भी श्रेष्ठ और सुन्दर होता अपने देश के लिए ले जाता। यहाँ की सुन्दरता को, यहाँ के जीवन को देखते-देखते कभी सहसा जी करता है कि मैं व्यर्थ यहाँ अपने ऊपर पैसा खर्च कर रहा हूँ। यहाँ से बस सस्ते-से मार्ग से अपने देश लौट जाऊँ। खूब काम करूँ, पैसा कमाऊँ और अपने अमित और अजित को ऑक्सफ़र्ड और केम्ब्रिज भेजूं। अब तो उन्हीं के रूपों में मैं यहाँ आकर यहाँ से कुछ लेने योग्य ले जा सकूँगा। कभी बैठे-बैठे स्कीम बनाने लगता हूँ—अमित को आक्सफ़र्ड भेजूंगा, अजित को केम्ब्रिज और प्रभात को लन्दन। प्रभात को अपने पिता की तरह बैंकिंग, इकोनामिक्स में अधिक रुचि होगी। पर यह मेरा सपना है। कल क्या होगा। बच्चे कैसे निकलेंगे। तब तक दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँचेगी। अपना देश ही किधर से किधर को जायेगा। पर अगर 10-12 वर्ष बाद मैं अपने बच्चों को इस योग्य बना सका कि वे यहाँ आकर शिक्षा ले सकें, और मेरे पास इतना पैसा हुआ कि मैं उन्हें यहाँ भेज सकूँ तो मेरे मन को बड़ा सन्तोष होगा।

मिलन चला गया। पता दे गया है। उससे कभी जाकर मिलूँगा। 11 बजने को आये। मैं अपने सपनों में इतना डूबा हुआ था कि गाइड में मन न लगा। कपड़े बदलकर मैं बिस्तर में जाकर लेट गया।—15 वर्ष बीत गये हैं। मैं बुड्ढा हो गया हूँ—तेजी और मैं दोनों प्रयाग में हैं। बच्चे कोई ऑक्सफ़र्ड में, कोई केम्ब्रिज में, कोई लन्दन में। चिट्ठियाँ आती हैं और हम दोनों को पढ़कर हर्ष होता है, जो हम अपने यौवन में नहीं कर सके, वह हमारे बच्चे कर रहे हैं, जो अवसर हमें नहीं मिला वह हमारे बच्चों को मिल रहा है। फिर एक दिन बच्चे अपने देश को वापस आ रहे हैं अपने माता-पिता का नाम उजागर करते। प्रभात को देखकर मुझे विशेष सुख है। मातृ-पितृ-हीन बच्चे को मैं कुछ बना सका।

यही सोचते-विचारते नींद आ गयी।

17 अप्रैल, '52

रात को कई बार नींद खुली। मुझे रात को दो-एक बार उठकर पेशाब करने की आदत है। नीचे जाना होता है, यह बड़ा पाप है। पर मजबूरी। उठा तो सामने सिडनी ससेक्स कालेज की तीसरी मंज़िल पर बीच की खिड़कियों से रोशनी छन-छनकर कुहरे को चीरती हुई फैल रही थी। बाक़ी सब जगह की रोशनी बुझी थी। शायद प्रति निशा में केवल यही रोशनी रात-भर जलती रहती है। इसी की कुछ रोशनी मेरे कमरे में भी आती है और थोड़ा-थोड़ा उजाला रहता है। रात को यहाँ कई तरह के घण्टे सुनायी देते हैं। स्टीवेन्सन ने लिखा था कि घड़ियाँ जैसे एक-दूसरे की प्रतियोगिता-सी करती रहती हैं। पर मुझे इसका ध्यान नहीं आता। इन घण्टों की आवाज़ बड़ी मधुर होती है। कुछ घड़ियाँ हर पन्द्रह मिनट पर चार घण्टे बजाती हैं और चारों आवाज़ें बिलकुल अलग-अलग होती हैं, जैसे अपने इलाहाबाद युनिवर्सिटी की घड़ी की आवाज़ होती है। पर कर्कशता कहीं भी नहीं इन आवाज़ों में। मुझे तो एक बड़ी पवित्रता इनमें लगती है। प्राय: ये चर्चों में लगी घड़ियाँ हैं। पहले कोई तेज़ आवाज़, फिर कोई धीमी, फिर कोई अपना व्यक्तित्व अलग लिये हुए, पर सबसे मैत्री रक्खे। क्या किसी कलाकार ने केम्ब्रिज भर की घड़ियों की आवाज़ों को ऐसे ढंग से अरेंज किया है कि कानों पर उनका मधुर प्रभाव पड़े। जब मोटर और बसों की आवाज़ न होती होगी तो दिन में भी

इन घड़ियों का मधुर-मन्द स्वर सुन पड़ता होगा। दिन में शायद ही कोई समय ऐसा हो जब मोटर या बसों की आवाज़ न सुनायी पड़ती हो। मेरा ध्यान है कि यदि केम्ब्रिज में मोटर और बसें 'बैन' कर दी जातीं तो इसके वातावरण में जो गम्भीरता और शान्ति आ जाती वह केम्ब्रिज के अधिक अनुरूप होती।

सुबह उठकर तैयार हुआ। नहाया नहीं। आज सोचा था, बाल कटवाऊँगा। बाल बड़े हो गये थे। प्रयाग में समय न मिला, बम्बई में बीमार रहा, लन्दन में बहुत व्यस्त। ब्रेकफ़ास्ट करके बाल काटने की दूकान की खोज में चला। जीज़स लेन म ही युनिवर्सिटी हेयर ड्रेसर की दूकान है। बाल काटने के उसने दो शिलिंग लिये। बाल कटाकर वापस आया तो पत्र लिखने बैठ गया। एक पत्र तेजी को लिखा। लन्दन से दो तस्वीरी कार्ड लाया था। उन पर भी अमित और अजित के लिए पत्र लिखे। सामान अभी तक सन्दूक़ों में ही पड़ा था। सबको निकालकर आलमारी में रक्खा। कमरे में फ़र्नीचर को दूसरी तरह लगाया। कुछ कुशादगी मालूम हुई। इस काम में काफ़ी वक़्त लग गया। लंच के लिए जाऊँ तो फिर से सूट पहनूँ। रात के बिस्कुट और थोड़ी-सी चीज़ रक्खी थी। उसी को खाकर फिर कमरे को ठीक करने में लगा रहा। ब्रेकफ़ास्ट पर किसी ने चर्चा की थी कि यहाँ आजकल इंग्लैण्ड की एक प्रसिद्ध कम्पनी आयी है जो शेक्सपियर के 'किंग लियर' का अभिनय आर्ट थियेटर में कर रही है, पर उसके टिकट पहले से बिक चुके हैं, शनिवार को आख़िरी शो है, शायद कोशिश करने से उसके लिए टिकट मिल जाये। शाम को घर से निकला। पूछते-पूछते आर्ट थियेटर पहुँचा। शनिवार को 2-30 शो के लिए एक टिकट मिल गया। तीन शिलिंग लगे। यही सबसे कम का टिकट था। चिट्ठियाँ पोस्ट कीं और थोड़ा घूमने के लिए स्टेशन की तरफ़ चला गया। रास्ते में अख़बार लिया, 'केम्ब्रिज न्यूज़'। खाना साढ़े छः बजे था। जल्दी-जल्दी आ रहा था। यहाँ तो सभी जल्दी-जल्दी चलते हैं। मुझे भी कुछ इन्हीं की आदत लगती जा रही है। विद्यार्थियों का एक गुट खड़ा था। इसमें कुछ हिन्दुस्तानी विद्यार्थी भी दिखायी पड़े। एक की शक्ल कुछ पहचानी-सी लगी। मैंने उन्हें देखा; उन्होंने भी मुझे देखा। उन्होंने ही पहले कहा, बच्चनजी, आप आ गये? आपके आने का समाचार हमें मिला था। पहले हमारी ही लैण्डलेडी के पास आपको ठहराने का इन्तज़ाम इण्डिया हाउस कर रहा था, पर उसके यहाँ जगह ख़ाली नहीं थी। तभी हमें पता लगा था, आप आनेवाले हैं। मैं शक्ल तो पहचान गया था, पर कहाँ देखा था इन्हें, यह नहीं कह सकता था। इनका नाम विश्वनाथ दत्त है। अमृतसर के रहनेवाले हैं। रघुवंश किशोर कपूर के विद्यार्थी थे और उन्हीं के यहाँ इनसे मुलाक़ात हुई थी। ये लखनऊ युनिवर्सिटी से एम. ए. करने के बाद यहाँ पी-एच.डी. करने आये हुए हैं। इनकी पत्नी भी साथ आयी हैं। वे ग्रेजुएट हैं और एडूकेशन में डिप्लोमा के लिए पढ़ रही हैं। दत्त मेरे निवास-स्थान तक आये। कहने लगे, जगह आपकी महँगी है, मैं सप्ताह के 3 पौण्ड 1 शिलिंग देता हूँ—दोनों के लिए 6 पौण्ड 2 शिलिंग, और बिजली और गैस के लिए कुछ नहीं लगता। कपड़े हम ख़ुद धोते हैं और बिजली के लोहे से इस्त्री करते हैं। कभी-कभी लंच भी पकाते हैं।—पर शायद दो के साथ रहने से यह सब सुविधाएँ उन्हें हैं। लैण्डलेडी से उनकी मैत्री भी हो गयी है। लगभग डेढ़ वर्ष से वहीं हैं। मैं जल्दी-जल्दी जगह बदलना पसन्द नहीं करता। कल उन्होंने लाइब्रेरी ले चलने का वादा किया। सुबह आने को कहकर चले गये।

मैंने खाना खाया। खाने में सूप, तरकारियाँ, पुडिंग और कुछ नमकीन बिस्कुट

मिले। पर्याप्त तो हो जाता है, पर भोजन में स्वाद नहीं आता। दूध की एक बोतल लेता हूँ जो मैं रात को पी लेता हूँ। गरम कराकर पीने की प्रथा यहाँ नहीं। बोतल से पीना ही अधिक स्वास्थ्यदायक समझा जाता है। स्वादिष्ट, बोतल का दूध भी होता है। दस-बारह बरस पहले जब मैं हालैण्ड हाल में रहता था तब इसी प्रकार दूध पिया करता था। इस कारण पुरानी आदत भी है। अब मुझे माफ़िक आयेगा या नहीं, कह नहीं सकता। इन्फ़्लूएंज़ा का प्रभाव अभी तक नहीं गया है। कमज़ोरी अब भी है। भूख नहीं लगती और कभी-कभी सिर भारी रहता है। मैंने सुबह कुछ आसन करना भी शुरू कर दिया है और घूमना तो काफ़ी हो जाता है। आशा है कुछ दिनों में खाना अच्छा लगने लगेगा। मैं तो किसी आदत का गुलाम नहीं, और जिसे Adaptability कहते हैं, वह मैं समझता हूँ, मुझमें बहुत है। सुना था, इंग्लैण्ड में सिगरेट बहुत महँगी हैं। देवलाली में आख़िरी बार सिगरेट पी थी। बम्बई में बीमारी की वजह से नहीं पी। इंग्लैण्ड में आकर एक भी सिगरेट मुँह से नहीं लगायी। पहले ख़याल था, यहाँ आकर बराबर सिगरेट पीना पड़ेगा, पर यहाँ काफ़ी लोग ऐसे हैं जो सिगरेट नहीं पीते। ट्यूब रेलों में Non-Smokers के लिए डिब्बे के डिब्बे अलग हैं। वैसे ही शराब पीना भी ज़रूरी नहीं। अब तक मैं बहुत-से अंग्रेज़ों से मिल चुका हूँ जो बिलकुल शराब नहीं पीते। हाँ, 'बियर' को ये शराब नहीं समझते। उसे appetiser समझते हैं। उससे तो शायद ही किसी अंग्रेज़ को इन्कार हो। Vegetarian यहाँ बहुत-से लोग हैं। आशा है, मांस न खाने, शराब न छूने और सिगरेट न पीने का प्रण मेरा यहाँ भी निभ जायेगा। खाना खाने के बाद कुछ देर पड़ोस के कमरे में बैठकर रेडियो सुनता रहा। इसमें इण्डो-चाइना के एक सज्जन रहते हैं। मिस्टर लीथान इनका नाम है। बाल बनवाया था दिन को, पर नहाने की सुविधा नहीं मिली थी। क़रीब 10 बजे रात को गरम पानी से स्नान किया और आकर सो गया। नहाने के बाद जी बहुत प्रसन्न हुआ। नींद भी बहुत अच्छी आयी। खिड़कियाँ खुली छोड़ दी थीं। ताज़ी हवा का तो मुझे वहम है—जैसा तेजी कहती हैं। धीरे-धीरे हवा के झोंके कमरे में आ रहे थे। ओढ़ने को काफ़ी था और थोड़ी ठण्डक के बावजूद भी मुझे बहुत अच्छा लग रहा था।

18 अप्रैल, '52

सुबह उठने में कुछ देर हो गयी। नीचे गया तो 'बाथ' और 'ट्वायलेट' दोनों बन्द थे। काफ़ी देर इन्तज़ार करना पड़ा। जल्दी उठने का नियम बनाना पड़ेगा, तभी यहाँ गुज़ारा हो सकेगा। मुझे ग़ुसलख़ाने में यों भी देर लगती है। मुझे तो कमरे के साथ का ग़ुसलख़ाना ही अच्छा और सुविधाजनक पड़ता, पर परिस्थितियों को न बदल सको तो अपने को बदलो।

ब्रेकफ़ास्ट पर मैं मिस्टर और मिसेज़ विली जूनियर और मिसेज़ विली सीनियर के साथ बैठा। ये लोग दक्षिण इंग्लैण्ड के हैं। शादी के बाद हनीमून के लिए स्वीडन चले गये थे। माँ अब भी दक्षिण इंग्लैण्ड में रहती है। मिस्टर विली जूनियर को केम्ब्रिज में काम मिल गया है। माँ उनके लिए मकान लेकर घर-गिरिस्ती ठीक करने आयी है। उन्हें कहीं फ़्लैट मिल गया है। दो-तीन दिन बाद वे वहीं चले जायेंगे। कहते थे, फ्लैट बहुत गन्दा था, फ़र्नीचर वग़ैरह भी ख़राब था। रोज़ जाकर तीनों वहाँ काम करते हैं। कहते हैं, घर को रहने के क़ाबिल बना लिया है। माँ बड़ी बातूनी है। पहले तो हिन्दुस्तान के मौसम के बारे में बातें होती रहीं। फिर राजनीति पर; सहसा बुढ़िया ने एक प्रश्न किया कि मैं आश्चर्य और लज्जा में डूब

गया, 'But tell me, why did you shoot Gandhi ?' ऐसा लगा जैसे मैं व्यक्तिगत रूप से गांधी की हत्या के लिए उत्तरदायी समझा जा रहा हूँ। जब मैं एक तरह से अपने देश के प्रतिनिधि के रूप में विदेश में हूँ तो मुझे यह दायित्व भी अपने ऊपर लेना ही पड़ेगा। हाँ, हमने एक गांधी उत्पन्न किया और हमने ही उस गांधी का अन्त कर दिया। हमें मानना होगा कि हममें वह तत्त्व भी था जिसने गांधी को देवता समझा और वह तत्त्व भी, जिसने उन्हें दानव समझा—चाहे क्षण-भर के लिए ही। पर वह क्षण हमारे इतिहास पर कितना अमिट बनकर छा गया है। मिसेज़ विली का समाधान करने को पूरा एक व्याख्यान देना पड़ा। पर ब्रेकफ़ास्ट-टेबिल से उठा तो इस विचार से मन भारी था कि We are the people who shoot Gandhi. गांधीजी ने राजनीति के पंकिल जीवन में धँसे रहकर भी अपने व्यक्तित्व को इतना शुद्ध और निर्मल रक्खा था कि विदेशी सरकार भी उन्हें छूने का साहस नहीं कर सकी थी। उनकी नीति की कड़ी से कड़ी आलोचना करनेवाले भी उनके व्यक्तित्व के प्रति नत-मस्तक थे। संसार के और शहीदों की समता पर केवल यह कहना पर्याप्त न होगा कि लोगों ने अपनी जहालत और अज्ञानतावश उनका वध कर दिया। गांधी का बलिदान एक ऐसे युग ने किया जो जागरूक था, चेतन था, और जो उनकी पवित्रता से परिचित था। He was not killed because he was thought to be an evil force. He was killed because he was unbearably good, because he was too good for a bad world.

विश्वनाथ दत्त सवा नौ बजे आ गये। वे लाइब्रेरी जा रहे थे, मैं भी उनके साथ हो लिया। सेण्ट जोन्स और ट्रिनिटी कालेज के सामने से होते हुए ट्रिनिटी लेन से हम लोग गैरेट होस्टल ब्रिज पहुँचे और क्वीन्स रोड पार कर बरेल्स वाक की तरफ़ से युनिवर्सिटी लाइब्रेरी में गये। यहाँ मार्जरी के साथ भी आया था, पर भीतर न जा सका था। श्री विश्वनाथ दत्त यहाँ के सम्मानित सदस्य हैं और अपने किसी मेहमान को भीतर ले जा सकते हैं। नीचे, बैग वग़ैरह छोड़ दिया जाता है और उसके लिए टिकट मिल जाता है। लौटते समय टिकट देने पर छोड़ा हुआ सामान ज्यों का त्यों वापस मिल जाता है। इमारत बहुत बड़ी है। न जाने किन-किन रास्तों से वे मुझे ले गये। अकेले तो मैं यहाँ भूल-भुलैया में पड़ जाता। एक पूरा हाल कैटलाग रूम है। उन्होंने मुझे ले जाकर बताया कि किताबें यहाँ किस प्रकार निकाली जाती हैं। मैं प्रो. हेन की लिखी 'द लोनली टावर' नामक पुस्तक देखना चाहता था, जो डब्ल्यू. बी. ईट्स पर है। उन्होंने Y का कैटलाग उठाकर Yeats निकाला; उसमें Yeats की किताबों के साथ Yeats पर लिखित किताबें भी दर्ज थीं। एक कागज़ पर उन्होंने इसका नम्बर लिखा। फिर एक नक़्शे के पास आये। उससे पता चला कि इस नम्बर की किताब चौथी मंज़िल पर मिलेगी। फिर हम एक लिफ़्ट के पास आये, चौथी मंज़िल पर पहुँचे—खुद ही लिफ्ट चलाकर। वहाँ आलमारियों पर संकेत बने थे। हमें किताब निकालने में पाँच मिनट का समय मुश्किल से लगा होगा।

यहीं पर लार्ड एक्टन की व्यक्तिगत लाइब्रेरी भी है। उसे भी देखने हम गये। कहते हैं कि लार्ड एक्टन ने 'The History of Liberty' नाम की एक पुस्तक लिखनी आरम्भ की थी। 6000 पेज उसके लिखे भी जा चुके थे, परन्तु उसका पता अभी तक नहीं चल सका कि वह कहाँ है। लार्ड एक्टन के बराबर पढ़नेवाला शायद योरोप ने उत्पन्न नहीं किया। उनकी तस्वीर भी देखी। ऋषि-सा चेहरा

मुझे उनका लगा—दाढ़ी-मूँछों में ज्ञान की चमकती हुई आँखें।

विश्वनाथ दत्त पीरियाडिकल रूम में बैठकर अध्ययन करते हैं। मैं भी अपनी पुस्तक लेकर उन्हीं की मेज़ पर बैठ गया। सारी लाइब्रेरी को सेण्ट्रली हीटेड रखने का प्रबन्ध है। जाड़े में सिकुड़ता रहेगा तो आदमी पढ़ेगा क्या। अपने विद्वानों और विद्यार्थियों के लिए यहाँ सारी सुविधाएँ जुटा दी गयी हैं। जगह-जगह पर मेज़-कुर्सियाँ लगी हैं। रोशनी का पूरा प्रबन्ध है। स्विच दबाते ही जिस आलमारी के सामने चाहो दिन की-सी रोशनी हो जाती है। पढ़ने के कमरों में जो मेज़ और कुर्सियाँ रक्खी हैं बहुत आरामदेह हैं। दिन-भर भी बैठे रहे तो मजाल क्या कि पीठ में दर्द हो या थकान मालूम हो। कभी अपना देश सम्पन्न हुआ तो वहाँ ऐसा प्रबन्ध करना पड़ेगा कि मई और जून के महीने में सुविधापूर्वक दिन-भर काम किया जा सके। सारे पुस्तकालय को एअर-कण्डीशण्ड कराना होगा। ऐसा समय कभी न कभी आयगा अवश्य। जो राष्ट्र अपने विद्यार्थियों और विद्वानों को कार्य करने की सुविधा देता है वह अपना बौद्धिक धरातल ऊँचा करने में सहायक होता है। मुझे विश्वनाथ दत्त ने बताया कि इस पुस्तकालय में 15,000 पुस्तकें प्रतिवर्ष बढ़ती हैं और ऐसा अनुमान किया जाता है कि अगले पचास वर्षों तक इसे बढ़ाने की आवश्यकता न पड़ेगी। परन्तु जाँच के लिए जो कमीशन बैठा था उसने यह अवधि केवल 25 वर्ष की रक्खी है। उसने एक नयी इमारत की सिफ़ारिश की है जिसमें अगली दो शताब्दियों का साहित्य सहज ही संगृहीत किया जा सकेगा। अंग्रेज अपने अतीत में जो कुछ भी सुन्दर और श्रेष्ठ है उसकी रक्षा करते हैं, भविष्य के स्वप्न देखते हैं और वर्तमान को ऐसा बनाना चाहते हैं कि भविष्य उस पर गर्व करे। सचमुच अंग्रेज़ एक बड़ी क़ौम है। हमारी जाति बहुत प्राचीन है, और अपने कुछ गुणों के कारण वह अपने को सजीव और सशक्त रख सकी है, पर नवयुग में अंग्रेज़ों ने कैसे अपने को ढाला है, इससे हमें बहुत कुछ सीखना है। बड़प्पन की नकल नहीं हो सकती। हमें भी अपने राष्ट्र की आत्मा पहचाननी होगी और उसी के अनुरूप कुछ करना होगा, पर विज्ञान के युग की अवहेलना नहीं हो सकेगी। विज्ञान को मानवता की सेवा में लगाना होगा। पश्चिम ने इसे मानवता की सेवा में तो लगाया है, पर बहुत स्थानों पर यह विज्ञान की सेवा भी करने लगा है—उसका दास भी हो गया है। यह तो समझना होगा कि विज्ञान मानवता के ऊपर सवार होगा तो दैत्य होगा, मानव विज्ञान पर सवार होगा तो देवता। संघर्ष में पैठना होगा। पर कायर के समान यदि हम कहें कि हम इस पचड़े से अलग ही रहेंगे तो हम बुद्धू और बौड़म रह जायेंगे।

मैं मिस्टर हेन की पुस्तक पढ़ने लगा। पुस्तक अच्छी है; मैं कुछ नोट्स भी लेना चाहता था, पर काग़ज़ वग़ैरह साथ न लाया था। एक विशेष विषय पर चिन्तन करने लगा।

ईट्स को अपनी शारीरिक वासना के विरुद्ध काफ़ी युद्ध करना पड़ा था, फिर भी उसे वे बुरा नहीं समझते थे। इस मामले में वे अपनी तुलना दान्ते से करते थे। दान्ते की समस्या भी यही थी। मिस्टर हेन ने दान्ते के सम्बन्ध में बोकाचियो का एक वाक्य उद्धृत किया है, 'Both in his youth and in his maturity he found room among his virtues for lechery (सम्भोग)' शरीर की माँग के साथ लड़ने में मनुष्य की शक्ति का जितना अपव्यय होता है उतना उसे पूरा करने में नहीं। कबीर का भी यही अनुभव था—

कबिरा छुधा है कूकरी, करत भजन में भंग,
वाको टुकरा डारि के भजन करो निःसंक।

कबीर ने नारी के लिए शायद एक भी प्रशंसात्मक शब्द नहीं कहा, फिर भी उन्होंने स्वयं विवाह किया था। वे नारी को 'टुकरे' से शान्त होनेवाली 'कूकरी' भर समझते थे। दान्ते और ईट्स समस्या को इतनी आसान न कर सके थे। उनके लिए नारी एक ओर तो 'एंजिल' थी, देवी थी, दूसरी ओर 'टेम्प्ट्रेस'--माया और छलना। तुलसी के सामने भी नारी का कोई सम्यक् रूप नहीं था। नारी से उन्हें निराशा हुई थी। एक ओर तो, इसके परिणामस्वरूप, उन्होंने आदर्श नारी की कल्पना की, और दूसरी ओर जहाँ-जहाँ भी नारी का नाम आया उसे कोसते, गाली देते और नीचे गिराते रहे। ईसाई मस्तिष्क नारी को Virgin Mary और Eve के बीच खोजता रहा है - Virgin Mary जिसने महाप्रभु ईसा को जन्म दिया, जो सम्पूर्ण पवित्रता की प्रतिमा है, और Eve जिसने पुरुष के मार्ग में प्रलोभन डाला और उसके पतन का कारण बनी। कबीर की दृष्टि सीता पर नहीं गयी; आस्थावान हिन्दू की भावना से उन्होंने सीता को कभी नहीं देखा था। मैं 'करम गति टारे नाहिं टरी' वाला गीत सोच रहा हूँ। सीता को उन्होंने नियति का शिकार बनी बन-बन भटकते भर देखा। पुरुष नारी की कल्पना माँ के रूप के आधार पर करता है, और माँ कहाँ निराश करती है?—क्वचिदपि कुमाता न भवति। हाँ, एक बात और याद आयी —कबीर ने माँ का रूप नहीं जाना था, इसलिए स्त्री के लिए आदर का भाव उनके मन में आता भी कैसे। लड़कपन में मैंने एक कहानी सुनी थी। एक बार तुलसीदास-कबीरदास दोनों साथ-साथ कहीं जा रहे थे। दोनों को भूख लगी थी। तुलसीदास ने कहा कि कबीर भाई, मैं बहुत थका हूँ, तुम जाकर कहीं से भिक्षा माँग लाओ तो भूख शान्त हो। कबीर ने कहा, भाई, मुझे कौन भीख देगा, तुम्हीं जाओ, तुम इस कला में चतुर हो। तुलसी न माने। कबीर बोले, अच्छा नहीं मानते तो जा रहा हूँ। एक घर के सामने एक स्त्री अन्न पछोर रही थी। कबीर उसके पास पहुँचे और बोले, 'हे हमरे बाप की मेहर, थोड़ा अन्न हमहूँ का देतिउ'। औरत लगी गाली देने। कबीर भाग आये, बोले, भाई, मुझे तो गाली मिलती है। जगह मैं दिखलाता हूँ। तुम जाकर माँग लाओ। तुलसी पहुँचे और उन्होंने कहा, 'हे माता, भूख लगी है, थोड़ा अन्न दे दो।' औरत ने भीख दे दी। तब कबीर पहुँचे, बोले, 'अरी बावरी, बाप की मेहर कहने पर सुलग उठी, माता भई तो बाप की मेहर न भई?'—कहने का तरीक़ा है। अपने देश में ऐसी कहानी बनाकर गूढ़ बातें सरल की जाती हैं। कहनेवाला बतलाना चाहता था कि कबीर ने माँ को माँ के रूप में नहीं देखा था; देखा था 'बाप की मेहर' के रूप में।

हाँ, पुरुष नारी की कल्पना माँ के रूप को लेकर करता है और खोजता है पत्नी को, पत्नी माँ नहीं होती। माँ से बिलकुल विपरीत होती है। तन के सम्बन्ध से लेकर (एक के तन से वह निकलता है और दूसरे के तन में प्रविष्ट होता है) मन के सम्बन्ध तक वह माँ से बिलकुल उलटी होती है। माँ बिना किसी प्रतिदान की आशा किये अपना सारा स्नेह उँड़ेल देती है, पत्नी प्रतिदान में पुरुष का सारा स्नेह चाहती है। Virgin Mary माँ की प्रतीक है, Christ's mother—Man's mother, Eve पत्नी का प्रतीक है, Adam's wife —Man's wife.

आदर्श पत्नी पति की माँ को आत्मसात् कर लेती है, जिससे पति पत्नी में माँ को भी पा सके। इसी कारण भारत में पत्नी को सास का सत्कार करना सिखाया जाता है। बहू को चाहिए कि अपनी सास का उत्तमांश अपने में समाहित कर ले।

हम जिसकी पूजा करते हैं, जिसका सत्कार करते हैं उसके गुण ले लेते हैं। सच तो यह है कि हम जिसकी पूजा करते हैं वही हो जाते हैं। यह केवल मध्यकालीन मान्यता नहीं। मनोवैज्ञानिक तथ्य इसकी पुष्टि करते हैं,

यहि तें अधिक धरम नहिं दूजा,
सादर सास - ससुर पद पूजा।

शेली भी इसी पत्नी-माँ की खोज करता रहा,

Mother, Spouse···

और पन्त ने इसी को हिन्दी में प्रतिध्वनित किया,

···माँ सहचरि···

पश्चिम में पत्नी आते ही माँ को अलग कर देती है। पुरुष माँ की कल्पना से पत्नी का सत्य देखता है और निराश होता है। उसकी निराशा का और कारण भी हो सकता है, पर आंशिक सत्य यह भी है।

पुस्तक में एक और वाक्य ने मुझे विशेष आकर्षित किया। ईट्स ने अपने एक मित्र, जान स्पैरो, को एक पत्र में लिखा था, 'The tragedy of sexual intercourse lies in the perpetual virginity of the soul'. बात तो ठीक है। समस्या का हल एक है —जिससे आत्मा एक न हुई हो उससे शरीर एक न करो। पर आत्मा कहाँ एक होती है, और शरीर कब एक होने के प्रयत्न से रुकता है। ईट्स ने जीवन का एक कटु सत्य लिख दिया है। मेरे एक मित्र, जिनकी शादी हुए दस वर्ष हो चुके थे, जब एक ऐसी लड़की से मिले जिससे उनका प्रेम हो गया तो उससे कहा करते थे कि My soul is still a virgin ! अन्त में उस लड़की ने उनसे शादी कर ली। क्या आत्मा को आत्मा का साथ सचमुच मिलता है ? Is not my friend's soul still a virgin ? I think all souls are virgin, remain virgin, till they meet their one master—God. आत्माओं को गोपी और परमात्मा को कृष्ण मानकर भारतीय कवियों और सन्तों ने आत्मा-परमात्मा के मिलन की बड़ी मर्म-भरी गाथा गायी है। कृष्ण का गोपियों की चोली फाड़ना, परमात्मा का शरीर (चोला) के आवरण को अलग कर आत्मा के साथ विहार करना है। विद्यापति लिखते हैं, 'चिर सँभारल जिय भेल अन्त'—उन्होंने मेरे वस्त्रों को उतारा कि मेरे प्राण ही जैसे निकल गये। शरीर का वस्त्र आत्मा पर से हट जायेगा तो प्राणान्त तो हो ही जायेगा। वह नायक तो नग्न करके ही मिलेगा, और मिलन की उस लज्जा, सुख और उन्माद की बेला में प्राणों की चेतना कहाँ रह जायेगी। विद्यापति ने मरण और मिलन दोनों का एक साथ ही वर्णन कर दिया है। मरण के बिना उस महापुरुष से मिलन कहाँ होगा। मरण ही तो उस सारे आवरण को अलग करेगा जो आत्मा की एकता में बाधा बनता है। वह तो नग्नालिंगन करेगा। He preserves the virginity of the soul for Himself. He has not desired that the soul should lose its virginity in the world. The soul should not look for its Master in this life—It is beyond life. There is a purpose that the soul remains perpetually virgin. We should not say, alas ! it remains a virgin, we should rather say, thanks, it remains a virgin. At least there is something with which the soul shall venture to greet its Great Master when it meets Him. So, we come with polluted bodies, but not with polluted souls···

कबिरा छुधा है कूकरी, करत भजन में भंग,
वाको टुकरा डारि के भजन करो निःसंक।

कबीर ने नारी के लिए शायद एक भी प्रशंसात्मक शब्द नहीं कहा, फिर भी उन्होंने स्वयं विवाह किया था। वे नारी को 'टुकरे' से शान्त होनेवाली 'कूकरी' भर समझते थे। दान्ते और ईट्स समस्या को इतनी आसान न कर सके थे। उनके लिए नारी एक ओर तो 'एंजिल' थी, देवी थी, दूसरी ओर 'टेम्प्ट्रेस'—माया और छलना। तुलसी के सामने भी नारी का कोई सम्यक् रूप नहीं था। नारी से उन्हें निराशा हुई थी। एक ओर तो, इसके परिणामस्वरूप, उन्होंने आदर्श नारी की कल्पना की, और दूसरी ओर जहाँ-जहाँ भी नारी का नाम आया उसे कोसते, गाली देते और नीचे गिराते रहे। ईसाई मस्तिष्क नारी को Virgin Mary और Eve के बीच खोजता रहा है - Virgin Mary जिसने महाप्रभु ईसा को जन्म दिया, जो सम्पूर्ण पवित्रता की प्रतिमा है, और Eve जिसने पुरुष के मार्ग में प्रलोभन डाला और उसके पतन का कारण बनी। कबीर की दृष्टि सीता पर नहीं गयी; आस्थावान हिन्दू की भावना से उन्होंने सीता को कभी नहीं देखा था। मैं 'करम गति टारे नाहिं टरी' वाला गीत सोच रहा हूँ। सीता को उन्होंने नियति का शिकार बनी बन-बन भटकते भर देखा। पुरुष नारी की कल्पना माँ के रूप के आधार पर करता है, और माँ कहाँ निराश करती है?—क्वचिदपि कुमाता न भवति। हाँ, एक बात और याद आयी—कबीर ने माँ का रूप नहीं जाना था, इसलिए स्त्री के लिए आदर का भाव उनके मन में आता भी कैसे। लड़कपन में मैंने एक कहानी सुनी थी। एक बार तुलसीदास-कबीरदास दोनों साथ-साथ कहीं जा रहे थे। दोनों को भूख लगी थी। तुलसीदास ने कहा कि कबीर भाई, मैं बहुत थका हूँ, तुम जाकर कहीं से भिक्षा माँग लाओ तो भूख शान्त हो। कबीर ने कहा, भाई, मुझे कौन भीख देगा, तुम्हीं जाओ, तुम इस कला में चतुर हो। तुलसी न माने। कबीर बोले, अच्छा नहीं मानते तो जा रहा हूँ। एक घर के सामने एक स्त्री अन्न पछोर रही थी। कबीर उसके पास पहुँचे और बोले, 'हे हमरे बाप की मेहर, थोड़ा अन्न हमहूँ का देतिउ'। औरत लगी गाली देने। कबीर भाग आये, बोले, भाई, मुझे तो गाली मिलती है। जगह मैं दिखलाता हूँ। तुम जाकर माँग लाओ। तुलसी पहुँचे और उन्होंने कहा, 'हे माता, भूख लगी है, थोड़ा अन्न दे दो।' औरत ने भीख दे दी। तब कबीर पहुँचे, बोले, 'अरी बावरी, बाप की मेहर कहने पर सुलग उठी, माता भई तो बाप की मेहर न भई?'—कहने का तरीक़ा है। अपने देश में ऐसी कहानी बनाकर गूढ़ बातें सरल की जाती हैं। कहनेवाला बतलाना चाहता था कि कबीर ने माँ को माँ के रूप में नहीं देखा था; देखा था 'बाप की मेहर' के रूप में।

हाँ, पुरुष नारी की कल्पना माँ के रूप को लेकर करता है और खोजता है पत्नी को, पत्नी माँ नहीं होती। माँ से बिलकुल विपरीत होती है। तन के सम्बन्ध से लेकर (एक के तन से वह निकलता है और दूसरे के तन में प्रविष्ट होता है) मन के सम्बन्ध तक वह माँ से बिलकुल उलटी होती है। माँ बिना किसी प्रतिदान की आशा किये अपना सारा स्नेह उँड़ेल देती है, पत्नी प्रतिदान में पुरुष का सारा स्नेह चाहती है। Virgin Mary माँ की प्रतीक है, Christ's mother—Man's mother, Eve पत्नी का प्रतीक है, Adam's wife —Man's wife.

आदर्श पत्नी पति की माँ को आत्मसात् कर लेती है, जिससे पति पत्नी में माँ को भी पा सके। इसी कारण भारत में पत्नी को सास का सत्कार करना सिखाया जाता है। बहू को चाहिए कि अपनी सास का उत्तमांश अपने में समाहित कर ले।

हम जिसकी पूजा करते हैं, जिसका सत्कार करते हैं उसके गुण ले लेते हैं। सच तो यह है कि हम जिसकी पूजा करते हैं वही हो जाते हैं। यह केवल मध्यकालीन मान्यता नहीं। मनोवैज्ञानिक तथ्य इसकी पुष्टि करते हैं,

यहि तें अधिक धरम नहिं दूजा,
सादर सास - ससुर पद पूजा।

शेली भी इसी पत्नी-माँ की खोज करता रहा,

Mother, Spouse···

और पन्त ने इसी को हिन्दी में प्रतिध्वनित किया,

···माँ सहचरि···

पश्चिम में पत्नी आते ही माँ को अलग कर देती है। पुरुष माँ की कल्पना से पत्नी का सत्य देखता है और निराश होता है। उसकी निराशा का और कारण भी हो सकता है, पर आंशिक सत्य यह भी है।

पुस्तक में एक और वाक्य ने मुझे विशेष आकर्षित किया। ईट्स ने अपने एक मित्र, जान स्पैरो, को एक पत्र में लिखा था, 'The tragedy of sexual intercourse lies in the perpetual virginity of the soul'. बात तो ठीक है। समस्या का हल एक है —जिससे आत्मा एक न हुई हो उससे शरीर एक न करो। पर आत्मा कहाँ एक होती है, और शरीर कब एक होने के प्रयत्न से रुकता है। ईट्स ने जीवन का एक कटु सत्य लिख दिया है। मेरे एक मित्र, जिनकी शादी हुए दस वर्ष हो चुके थे, जब एक ऐसी लड़की से मिले जिससे उनका प्रेम हो गया तो उससे कहा करते थे कि My soul is still a virgin ! अन्त में उस लड़की ने उनसे शादी कर ली। क्या आत्मा को आत्मा का साथ सचमुच मिलता है ? Is not my friend's soul still a virgin ? I think all souls are virgin, remain virgin, till they meet their one master—God. आत्माओं को गोपी और परमात्मा को कृष्ण मानकर भारतीय कवियों और सन्तों ने आत्मा-परमात्मा के मिलन की बड़ी मर्म-भरी गाथा गायी है। कृष्ण का गोपियों की चोली फाड़ना, परमात्मा का शरीर (चोला) के आवरण को अलग कर आत्मा के साथ विहार करना है। विद्यापति लिखते हैं, 'चिर सँभारल जिय भेल अन्त'—उन्होंने मेरे वस्त्रों को उतारा कि मेरे प्राण ही जैसे निकल गये। शरीर का वस्त्र आत्मा पर से हट जायेगा तो प्राणान्त तो हो ही जायेगा। वह नायक तो नग्न करके ही मिलेगा, और मिलन की उस लज्जा, सुख और उन्माद की बेला में प्राणों की चेतना कहाँ रह जायेगी। विद्यापति ने मरण और मिलन दोनों का एक साथ ही वर्णन कर दिया है। मरण के बिना उस महापुरुष से मिलन कहाँ होगा। मरण ही तो उस सारे आवरण को अलग करेगा जो आत्मा की एकता में बाधा बनता है। वह तो नग्नालिंगन करेगा। He preserves the virginity of the soul for Himself. He has not desired that the soul should lose its virginity in the world. The soul should not look for its Master in this life—It is beyond life. There is a purpose that the soul remains perpetually virgin. We should not say, alas ! it remains a virgin, we should rather say, thanks, it remains a virgin. At least there is something with which the soul shall venture to greet its Great Master when it meets Him. So, we come with polluted bodies, but not with polluted souls···

थोड़ी देर बाद मिसेज़ दत्त भी लाइब्रेरी में आ गयीं। हम लोगों ने लाइब्रेरी में ही लंच लिया। यहाँ फ़र्श की मंज़िल पर बड़ा सस्ता, स्वच्छ लंच मिलता है। लाइब्रेरी के मेम्बर ही ले सकते हैं। Vegetarian माँगने पर मछली-मांस के टुकड़े हटा लिये गये और हरी सब्ज़ियाँ ज़्यादा कर दी गयीं। लंच यहाँ का हल्का खाना होता है जिससे इसके बाद काम किया जा सके। हिन्दुस्तानी खाना तो बहुत भारी होता है और खाते ही नींद आने लगती है। मुझे अंग्रेज़ों का हल्का किन्तु स्वास्थ्य-प्रद भोजन बहुत पसन्द है। मिर्च-मसाले का नाम नहीं। ऐसे खाने का स्वाद लेना हो तो ज़बान साफ़ होनी चाहिए। मैंने तो हिन्दुस्तानी खाने का स्वाद ही भुला सा दिया है। मार्जरी के साथ ज़रूर हिन्दोस्तानी रेस्ट्राँ में जाता था, पर अकेले में अंग्रेज़ी खाना ही पसन्द करता हूँ—हरी उबली सब्जियाँ, चीज़, टोस्ट, मक्खन, आइसक्रीम, कॉफ़ी या चाय; और क्या चाहिए। लंच लेकर हम लोग कुछ देर धूप में बैठे और फिर ऊपर काम करने चले गये। मैंने पुस्तक के सौ से ऊपर पृष्ठ पढ़ डाले।

लाइब्रेरी से लौटते हुए ब्रिज पर से हमने देखा कि नीचे लोग नावों में बैठे कैम पर घूम रहे हैं। कमलाजी भी बोट की सैर करना चाहती थीं। हम लोगों ने तीन शिलिंग देकर घण्टे-भर के लिए बोट ली। एक पाउण्ड सेक्योरिटी के जमा करने होते हैं। विश्वनाथजी ने लग्गी सँभाली; मैंने डाँड हाथ में ली, कमलाजी लेटी रहीं। हम लोग न्यूटन ब्रिज तक जाकर वापस आये। न्यूटन ब्रिज लकड़ी का बना हुआ है। ब्रिज के निकट ही एक पेड़ है। कहते हैं न्यूटन आकर इसी पेड़ के पास बैठा करता था। इतना बड़ा विद्वान् किन्तु कितना विनम्र! न्यूटन का नाम आते ही मुझे तो उसका यह वाक्य याद आ जाता है—मैं ज्ञान के सागर के किनारे बैठा सीपी और घोंघे ही इकट्ठा करता रह गया। न्यूटन ने यही किया तो हमने क्या किया…। लौटकर हम ब्रिज आफ़ साईज़ तक गये। यह पक्का ब्रिज है, ऊपर से भी ढका। कहते हैं कालेज की ओर से दूसरी खिड़की पर वर्ड्सवर्थ आकर खड़ा होता था और घण्टों कैम नदी और उसमें झलकते विलो के वृक्षों और इमारतों को देखा करता था। मन में कल्पना करने लगा कि जैसे वर्ड्सवर्थ अब भी वहाँ खड़ा है। क्या सपने उसकी आँखों में हैं? उसने अपने साहित्य के लिए जो किया उसका बीज-वपन (Fair Seed Time) क्या यहीं नहीं हुआ होगा? क्या यहाँ के सौन्दर्य का कुछ अंश मेरी आत्मा में पैठ सकेगा कि मैं भी कुछ अपनी भाषा में गा सकूँ। एक नज़र वृक्ष, बेलि, पौधों, फूलों और सदियों पुरानी इमारतों पर डाली—क्या तुमने जो वर्ड्सवर्थ को दिया था मुझे भी दे सकोगे? प्रकृति तो सदा उदार है, बहुत कुछ देने को तैयार है, लेने का अधिकारी चाहिए। वर्ड्सवर्थ अपने जीवन के बड़े Receptive समय में यहाँ आया था। मेरी तो झोली पहले से भरी है। अब स्थान कहाँ है जो यहाँ से ले सकूँ। मैं तो अपनी Receptivity खो चुका हूँ। जब मेरे हृदय में सागर की प्यास थी, ओह, उस समय यहाँ आता तो यहाँ का सारा सौन्दर्य पी लेता। आज मैं बहुत कुछ देखता हुआ भी नहीं देखता। आँखों पर पर्दे पर पर्दे पड़ चुके हैं। फिर भी अपने को भाग्यवान समझता हूँ कि देर से ही सही, इसे देखने को यहाँ पहुँच सका हूँ। इन क्षणों को औरों के लिए सजीव न भी कर सका तो अपनी स्मृति को तो धनी और सम्पन्न बना ही लूँगा।

लौटकर खाना खाया। कुछ देर डायरी लिखने में लगे। दत्त ने मि. हेन की किताब मेरे लिये अपने नाम ईशू करा ली थी। कुछ देर किताब पढ़ता रहा।

19 अप्रैल, '52

सुवह उठकर तैयार हुआ। आधा घण्टा आसन करने का नियम आज से आरम्भ किया। इंजेक्शन की जगहों पर अब भी दर्द महसूस होता है, पर वैसे तबीयत अच्छी है। ब्रेकफ़ास्ट के लिए मि. ब्रीडेन के पास बैठा। ये स्कूल सर्टीफ़िकेट पास करने के बाद फ़ौजी शिक्षा के लिए चले गये थे। दो वर्ष पूरे कर चुके हैं। अब केम्ब्रिज की पुस्तकों की एक दूकान—हिफ़र्स—में काम करेंगे। इंग्लैण्ड में प्रत्येक विद्यार्थी को शिक्षा पूरी करने के पश्चात् दो वर्ष तक सैन्य शिक्षा लेनी पड़ती है। विद्यार्थियों को खाना-कपड़ा सरकार की तरफ़ से मिलता है, कुछ पॉकेट-मनी भी दिया जाता है। कुछ परीक्षाएँ हैं जिनको पास करने पर पॉकेट-मनी की रक़म बढ़ा दी जाती है। जो लोग अच्छा काम करते हैं उनको यहीं से फ़ौज के लिए चुन लिया जाता है। बहुत-से लोग इस अनिवार्य फ़ौजी शिक्षा से प्रसन्न नहीं हैं। दो वर्ष का समय बहुत होता है। वे छह महीना काफ़ी समझते हैं। पर इंग्लैण्ड को क्या, सारे योरोप को युद्ध का ख़तरा लगा रहता है और उसे हमेशा तैयार रहना चाहिए। किसी भी समय लड़ाई छिड़ने पर इन युवकों को बुलाया और इनसे काम लिया जा सकता है। सरकार अपनी आवश्यकता के अनुसार विद्यार्थियों को फ़ौज के विभिन्न विभागों में रखती है और उन्हें प्रशिक्षित करती है। मिस्टर ब्रीडेन R. A. O. C. में थे जो Royal Army Ordnance Corps है। योरोप को तो, ख़ैर युद्ध का ख़तरा बना रहता है, पर वैसे भी फ़ौज की शिक्षा युवकों के चरित्र-निर्माण में बहुत सहायक होती है। मुझे भी थोड़े दिन U. O. T. C. में रहना पड़ा, और उससे मैंने बहुत कुछ सीखा। काम को समय और लगन से करना, किसी भी परिस्थिति के सामने न झुकना और जो भी तकलीफ़-आराम सिर पर पड़े उसे चेहरे पर मुसकान लेकर झेलना—यह सब फ़ौज की शिक्षा है। काम करते तो मैंने बहुत लोगों को, कई जाति के लोगों को देखा है, पर सीटी बजाते काम केवल अंग्रेज़ करता है। उसका सीटी बजाना इस बात का द्योतक है कि वह अपने काम से प्रसन्न है। सैन्य शिक्षा युद्ध के लिए ही नहीं, शान्ति के लिए भी आवश्यक है। अपने देश में भी अनिवार्य सैन्य शिक्षा होनी चाहिए। हमारे युवक बहुत ढीले-ढाले होते हैं। सैन्य शिक्षा उन्हें चुस्त बनायेगी। हमें अपने देश में चुस्त युवकों की आवश्यकता है। केम्ब्रिज से थोड़ी दूर पर, कोई 16 मील पर, ईली नाम की एक जगह है। वहाँ बड़ा ही सुन्दर और पुराना गिरजाघर है। ब्रीडेन विशेषकर उसे देखने को इधर आया है। कभी मैं भी जाकर उस गिरजे को देखूँगा।

ब्रेकफ़ास्ट करने के बाद मैं घूमने-फिरने को निकल गया। धूप निकली थी, समय सुहाना था। आज बाज़ार और दूकानें देखना चाहता था, कभी किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो कहाँ से ख़रीदना चाहिए। चीज़ें यहाँ बहुत महँगी हैं। भारत से आनेवाले को तो सब ज़रूरी चीज़ें वहीं से लानी चाहिए। यहाँ से कुछ लेना हो तो जाते समय लें, क्योंकि अगर चीज़ों को इंग्लैण्ड में इस्तेमाल न करें तो उन पर परचेज़ टैक्स नहीं लगता—परचेज़ टैक्स लगभग 40 प्रतिशत होता है। चीज़ें दूकानदार बन्दरगाह पर पहुँचा देता है। चीज़ों का यहाँ क्या कहना। कौन-सी चीज़ है जो नहीं मिलती। मनुष्य के पास पैसा होना चाहिए। लंच के समय घूम-घामकर वापस आया। चीज़, बिस्कुट, दूध लिया; कुछ फल भी शामिल करना चाहता हूँ। लाइब्रेरी जाना शुरू करूँगा तो वहीं लंच लूँगा, क्योंकि वहाँ से फिर कौन वापस आयेगा और फिर जायेगा। पानी बरसना शुरू हुआ तो आने-जाने की असुविधा

और बढ़ जायेगी।

मार्जरी बोल्टन ने किताबों का एक बड़ा पार्सल भेज दिया है। इसमें ज़्यादातर आधुनिक कविता की पुस्तकें और मैगज़ीन्स हैं। मेरी पुस्तकों के यहाँ आने में तो अभी कई सप्ताह लगेंगे। कमरे में पुस्तकों को देखकर प्रसन्नता हुई। कहाँ अपनी स्टडी में हज़ार-दो हज़ार पुस्तकों के बीच बैठता था, कहाँ यहाँ एक भी पुस्तक नहीं थी। पुस्तक के नाम से लन्दन और केम्ब्रिज की गाइड और नक़्शे भर थे। आज पुस्तकों के कारण कमरे में एक रोशनी-सी आ गयी। Books are the best companions particularly at a place where there are no friends. पार्सल खोलकर कुछ देर अंग्रेज़ी पत्रिकाएँ पढ़ता रहा। थोड़ी देर में आर्ट्स थियेटर जाने का समय हो गया। 'लियर' का नाटक 8-30 पर आरम्भ होने को था। टिकट जिस दिन खरीदने गया था, जगह देख आया था, पर जाते समय दो-तीन जगह पूछने पर ही वहाँ पहुँच सका। रोड-सेन्स मुझे नहीं। तेजी को खूब है। कभी मज़ाक में उनसे कहता हूँ, तुम्हें सिर्फ़ रोड-सेन्स है! थियेटर-हाल छोटा है। सबसे पीछे की जगह से भी सब कुछ दिखायी-सुनायी पड़ता था। मेरी सीट तो क़रीब-क़रीब सबसे पीछे की लाइन में थी। मैंने सबसे कम दाम का टिकट ख़रीदा था, पर मेरी पंक्ति में बैठनेवाले कम नहीं थे। अभिनय करनेवाली 'ओल्ड विक' कम्पनी थी जो शेक्सपियर के नाटकों का अभिनय करनेवाली कम्पनियों में बहुत उत्तम समझी जाती है। अभी-अभी यह योरोप का भ्रमण करके लौटी है। वैज्ञानिक तरीक़ों का स्टेज पर पूरा उपयोग किया गया। भारत में देखे मारशल और एरिक ईलियट की कम्पनियों में प्रदर्शन शेक्सपियर के युग के स्टेज के अधिक निकट थे, पर अभिनय में यह नाटक वहाँ देखे नाटक से बहुत ऊँचा था। एरिक ईलियट का तो इसकी तुलना में बड़ा poor show था। यहाँ तो किसी ने एरिक ईलियट का नाम भी नहीं सुना। जनता बड़ी शान्ति से खेल देखती रही। बीच में एकाध बार हँसने के स्थान को छोड़कर जनता मूर्तिवत् मौन थी। इण्टरवल में लोग ताली पीटते हैं। परदे के आगे एक सेफ्टी करटेन भी गिराया जाता है। अगर कभी स्टेज पर आग लग जाये तो इस पर्दे को गिरा देने से वह दर्शक-भवन में नहीं फैल सकती, या अगर दर्शक-भवन में आग लग जाये तो स्टेज पर नहीं फैल सकेगी। खेल खत्म होने पर जनता बहुत देर तक ताली पीटती रही और दो-तीन बार पर्दा उठा और अभिनेताओं को दर्शन देना पड़ा -- एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए, पीछे से आगे को आकर, झुक-झुककर।

शेक्सपियर के दुःखान्त नाटकों में नायक प्रायः एक ही व्यक्ति होता है, और वह सारे समय रंगमंच को घेर रखता है—उस पर छाया रहता है। उसका अभिनय अच्छा हो तो पूरा नाटक सफल हो जाता है। लियर का आर्ट बहुत अच्छा किया गया था। सुना कोई नवयुवक है जो वृद्ध राजा का पार्ट करता है। कृत्रिम तरीकों से हवा, तूफ़ान, बादल की गरज और बरफ़ गिरना दिखाकर उसके अभिनय को बहुत सहायता पहुँचायी गयी थी। Lear stood like a challenge to the elements of nature. विदूषक (fool) का अभिनय मेरी समझ में अच्छा नहीं था। पढ़ने में उसके व्यंग्य अधिक तीखे लगते हैं। ऐसा मैंने प्रत्येक नाटक में देख है। जो अंश पढ़ने में प्रभावोत्पादक होता है वह स्टेज पर प्रायः सिलपट हो जाता है। जो पढ़ने में साधारण मालूम होता है स्टेज पर बड़ा प्रभावोत्पादक लगता है। मैकबेथ का 'Knocking Scene' पढ़ने में बहुत साधारण है, यहाँ तक कि कुछ आलोचकों का कहना है कि यह शेक्सपियर का लिखा है ही नहीं; इसे किसी ने

बाद को जोड़ दिया है। परन्तु स्टेज पर जब Knocking सुनायी देती है तब उसका अर्थ बड़ा गम्भीर हो जाता है। बार-बार Knocking में ऐसा लगता है कि जैसे The world insists on knowing what has been secretly done. Sword fighting के दृश्य भी साधारण थे। ऐसा लगता था जैसे रस्मअदाई या ख़ानापूरी की जा रही है। कभी-कभी सिनेमा में sword fighting का दृश्य बहुत अच्छा मैंने देखा है। Don Juan के कई दृश्य सदा स्मरण रहेंगे। लियर के बाद एडगर का पार्ट भी प्रभावोत्पादक था। कार्डीलिया और लियर के मिलन का अन्तिम दृश्य बहुत मर्मस्पर्शी था।

शाम को खाना खाने के बाद मि. लीथान के साथ घूमने चला गया। मि. लीथान रोमन कैथलिक हैं। रास्ते में पूछते रहे, हिन्दुत्व क्या है? मुझे तो गांधीजी की परिभाषा ही याद थी, Hinduism is the search of Truth through non-violence. एक बार डॉ. गंगानाथ झा ने कहा था, 'Everybody who has no objection to being called a Hindu is a Hindu.' लीथान जानना चाहते थे कि बौद्ध धर्म हिन्दुस्तान से क्यों ग़ायब हो गया। मेरी समझ में शायद इस कारण कि हिन्दुओं ने बौद्धों के सारे अच्छे सिद्धान्तों को मान लिया; बुद्ध को अपने दस अवतारों में स्थान दिया। हिन्दुत्व सब धर्मों के अच्छे सिद्धान्तों को अपना लेता है। गांधीजी ने कहीं और भी कहा है कि दुनिया के अन्य धर्मों में जो कुछ सर्वश्रेष्ठ है वह सब हिन्दुत्व में मौजूद है; और जो उसमें नहीं है उसकी अधिक महत्ता नहीं है। मि. लीथान की बातों से आश्चर्य हुआ कि कितनी बे-ज़रूरी, ऊपरी और महत्त्वहीन चीज़ों को दूसरे लोग हमारे धर्म का अनिवार्य अंग समझने लगते हैं। वे कोई पुस्तक जानना चाहते थे जिससे हिन्दुत्व के सिद्धान्तों का उन्हें पता चल सके। यों तो गांधीजी के हिन्दुत्व सम्बन्धी लेखों का एक संग्रह छप चुका है, फिर भी मैंने उनको गीता और रामायण का नाम बताया। गीता के कई अंग्रेज़ी अनुवाद हैं—सबसे नया तो श्री राधाकृष्णन् का है जो सम्भवत: भारत के उप-प्रधान चुने जानेवाले हैं। रामायण के अनुवाद अवश्य ही सहज प्राप्य नहीं, और इतने सुन्दर भी नहीं। एक बार मेरे मित्र श्री रघुवंश किशोर कपूर ने रामायण का अंग्रेज़ी अनुवाद करने की प्रबल लालसा व्यक्त की थी। पर वे सोचते बहुत हैं, करते कम। बातें करते-करते उनका सारा इरादा क़ाफ़ूर हो जाता है। काश, जितना वे कहते हैं उसका शतांश भी कर पाते।

रात को लौटकर अंग्रेज़ी मैगज़ीनें देखीं। Allan Ross की किताब भी शुरू कर दी है। मार्जरी इसे जल्दी वापस चाहती है।

20 अप्रैल, '52

सुबह तैयार होकर ब्रेकफ़ास्ट किया। आज से इंग्लैण्ड का गर्मी का समय आरम्भ हो गया है। सब घड़ियाँ एक घण्टा आगे कर दी गयी हैं। आज इतवार है और गिरजाघरों से अलग-अलग ध्वनि-लय में घण्टे बज रहे हैं। काशी, मथुरा और वृन्दावन में आरती के समय घण्टे, घड़ियाल, शंख आदि का स्वर सुना था। उसी की कुछ याद-सी आ रही है। ध्वनि में तो विशेष अन्तर नहीं, पर लय हमारे मन्दिरों के घण्टों की अलग होती है। याद आया, मिसेज़ वाल्टर दत्त ने एक बार मन्दिर और गिरजों के घण्टों की ध्वनियों को लेकर पियानो पर एक संगीत तैयार किया था। मुझे उसे सुनने का सौभाग्य मिला था। वाल्टर दत्त की मोटर-दुर्घटना से मृत्यु हो गयी। पता नहीं मिसेज़ दत्त कहाँ हैं। पता नहीं पियानो पर फिर कभी

उनसे वह संगीत सुन पाऊँगा कि नहीं, पर केम्ब्रिज के इन घण्टों के साथ वह संगीत बराबर कानों में गूँज रहा है। लगता है जैसे काशी और वृन्दावन में भी इसी समय घण्टे बज रहे हैं और दोनों ध्वनियाँ मिलकर एक मधुर-मनोरम लय में परिवर्तित हो गयी हैं। पूर्व, पश्चिम मिलकर आवश्यक नहीं कि झगड़ें—प्रेम से भी मिल सकते हैं। मिलना चाहिए, और मिलना मनोमय होगा—यही मिसेज़ दत्त के संगीत का सन्देश था। पूर्व और पश्चिम के मिलन पर लिखा बहुतों ने, पर संगीत के द्वारा मिसेज़ दत्त ने ही उसे व्यक्त किया था। कम से कम मैंने और कहीं नहीं सुना। प्रचार तो बहुत-से साधनों से किया जाता है, पर कला के द्वारा जो प्रचार होता है वह स्थायी होता है। वह नसों में रक्त बनकर पैठ जाता है। आत्मा से सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। मुझे नहीं मालूम कि मिसेज़ दत्त ने अपने उस संगीत का शीर्षक क्या दिया है। वे अपने संगीत की एक पुस्तक प्रकाशित कराना चाहती थीं। यदि मुझसे सलाह लेतीं तो उस संगीत को मैं—'पूर्व और पश्चिम का आलिंगन' कहता। मन्दिर और गिरजे के घण्टों की ध्वनियाँ तो प्रतीक मात्र हैं। गिरजे के घण्टों से पश्चिम बोलता है तो मन्दिर के घण्टों से पूर्व। गिरजे के घण्टों के पीछे मशीन है, (प्रायः अब ये घण्टे मशीन के ज़रिये बजाये जाते हैं) मन्दिर के पीछे मनुष्य का हाथ है—मनुष्य की आत्मा। संसार, मानवता और सभ्यता का भविष्य मनुष्य और मशीन के सम्बन्धों पर निर्भर है; पूर्व और पश्चिम के सम्बन्धों पर आश्रित है। आज न जाने क्यों मिसेज़ दत्त के उस संगीत को सुनने के लिए व्यग्र हो उठा हूँ। शायद उसे फिर सुन सकता तो उसमें कुछ और ही अर्थ पढ़ पाता। कला-कृतियों का सम्पूर्ण अर्थ एक बार में प्रकट नहीं होता। कला नारी के समान है—कला शब्द ही स्त्री लिंग है। उसका रहस्य धीरे-धीरे खुलता है। और क्या उसका सम्पूर्ण रहस्य कभी खुल पाता है? अन्त तक वह खड़ी हुई मुसकराती है—बस जान चुके मुझे?—भोले, मैं अब भी उतनी ही बड़ी रहस्य हूँ जितनी आरम्भ में थी। सच्ची कला की कितनी भी व्याख्या की जाये, उसका कुछ न कुछ अंश सदा के लिए रहस्य बना रहता है।

ब्रेकफ़ास्ट लेकर मैं तो अख़बार पढ़ने लगा, मि. लीथान गिरजे चले गये। लौटकर आये तो कहने लगे, मौसम बड़ा अच्छा है, धूप खिली है, चलिए, आपको कुछ कालेजों को भीतर से दिखला लाऊँ। अभी तक मैंने कालेज और चैपेलों (कालेज के गिरजों) को सिर्फ़ बाहर से देखा था।

पहले हम लोग सेण्ट जोन्स कालेज गये। इसकी स्थापना, 12वीं सदी में, कहते हैं, अस्पताल के रूप में हुई थी। महाविद्यालय का रूप इसे 16वीं शताब्दी में दिया गया। इसके तीन कोर्ट (आँगन और उसके चारों ओर रहने की इमारतें), गिरजा-घर और पुस्तकालय कैम नदी के इस ओर पूर्व में हैं—नदी दक्षिण-उत्तर बहती है—और नया कोर्ट नदी के उस पार पच्छिम में है। इमारतों पर प्रायः भीतर की ओर, यानी आँगन की तरफ़ बेलें चढ़ी हैं और उन्होंने प्रायः समूची दीवारों को घेर लिया है। न्यू कोर्ट की तो बाहरी दीवारों पर भी लताएँ फैली हुई हैं। इमारतें एक तो वैसे ही पुरानी हैं, फिर उन पर फैली ये लताएँ ऐसी लगती हैं जैसे किसी वृद्ध के शरीर पर नसें उभरी हुई हों। यह लता भी बड़ी अनोखी है। पत्थरों की इमारत को न जाने कैसे पकड़कर खिड़की-दरवाज़ों के चारों ओर फैलती ऊपर से ऊपर की चोटी तक चली गयी है। कुछ में घनी पत्तियाँ भी देखीं; कुछ केवल डण्ठल-डण्ठल फैली हैं। पता नहीं किस ऋतु में इनमें पत्तियाँ आती हैं। नये कोर्ट और पुराने कोर्टों को जोड़ने के लिए एक पुल है। इसे 'ब्रिज आफ़ साईज़'—'The Bridge of

Sighs', कहते हैं। मुझे किसी ने नहीं बताया कि इसे आहों का पुल क्यों कहते हैं। किसकी आहों से यह पुल बन गया या किसने इस पुल पर खड़े होकर आहें भरीं कि इसका यह नाम पड़ा। इसके नीचे से होकर एक बार गुज़र चुका था। कहते हैं इसकी दूसरी खिड़की के पास (पुराने कोर्ट की तरफ से) वड्सवर्थ आकर खड़ा हुआ करता था। आज तो मैं भी वहीं खड़ा था। काश कि यहाँ से जो उस महाकवि ने देखा वह मैं भी देख सकता! दृश्य वही हैं, पर द्रष्टा की आँखों से कितना अन्तर उनमें आ जाता है। वड्सवर्थ की कितनी ही पंक्तियाँ कानों में गूँजने और विलीन होने लगी हैं—घास के मैदानों, चेस्टनट और चेरी के वृक्षों, विलो की पानी की ओर झुकी कोमल शाखाओं, कैम के नीले जल में प्रतिबिम्बित पुलों, इमारतों और लहराती परछाइयों, इधर से उधर आती-जाती नावों, और उनके साथ तैरती रंग-बिरंगी बत्तखों और हिम-श्वेत हंसों को कोई देख भी ले, उनको देखते हुए प्रकृति-सौन्दर्यानुरागी वड्सवर्थ के भाव-विभोर हृदय में क्या विचार-धाराएँ प्रवाहित हुई थीं, क्या तरंगें उठी थीं, जग-जीवन-काल के कौन-से रहस्य आँखों में उतरे थे, इन्हें कौन जान सकेगा! —

देख पर पाया न कोई
स्वप्न के सुकुमार, सुन्दर
जो पलक पर कर निछावर
थी गयी मधुयामिनी वह।

हम वड्सवर्थ का कमरा देखने को विशेष उत्सुक थे। मुझसे किसी ने कहा था कि उसका कमरा तोड़कर रसोईघर के साथ मिलाया जा रहा है। पता नहीं वड्सवर्थ के कमरे को ही तोड़ने की क्या आवश्यकता पड़ गयी। क्या यह अधिक उचित न होता कि उसके कमरे को मरम्मत करके ज्यों का त्यों रक्खा जाता। क्या वड्सवर्थ के अपने ही कालेज में उसका सम्मान नहीं। अंग्रेज़ तो अपने कवियों-लेखकों का बड़ा आदर करते हैं। कुछ समझ में नहीं आया। मैं क्यों भूलूँ कि मैं एक ऐसी दुनिया में हूँ जहाँ कवि और कवि की स्मृति से रसोईघर और रोटियाँ अधिक आवश्यक वस्तुएँ हैं। खाना पकाने की जगह न हो और कवि की यादगार जगाने को एक कमरा ख़ाली पड़ा रहे—यह बात अंग्रेज़ की समझ में आने की नहीं। बर्क ने कहा था कि The English man wants food that sticks in the ribs—solid food indeed! इसका यहाँ एक सबूत मिला। शायद इस कमरे को वे वड्सवर्थ-किचेन कहेंगे। कहाँ वड्सवर्थ की रहस्यवादी दृष्टि और कहाँ सूप, करी, कटलेट का रसोईघर! The English people really have a sense of humour—अंग्रेज़ उपहास और व्यंग्य करना ख़ूब जानते हैं।

पूछते-पाछते एक लकड़ी के ज़ीने से होकर हम लोग वड्सवर्थ के कमरे में पहुँच गये। इसी के लिए उसने Prelude में लिखा है,

The Evangelist St. john my patron was;
Three Gothic courts are his, and in the first
Was my abiding place, a nook obscure.

और इस nook obscure—'अनजाने कोने' की प्रसिद्धि आज सभ्य संसार के हर कोने में पहुँच गयी है, और दूर-दूर के देशों के लोग आकर इसे देखना चाहते हैं।

कैमरा तोड़कर बड़ा कर दिया गया है। आजकल भी उसमें काम हो रहा है। परन्तु, वर्ड्सवर्थ के समय की एक खिड़की को ज्यों का त्यों छोड़ दिया गया है। इसे वर्ड्सवर्थ विण्डो कहते हैं। यह गली की ओर खुलती है, और गली के पार ट्रिनिटी कालेज का चैपेल इससे दिखलायी देता है। इसी खिड़की का संकेत करते हुए वर्ड्सवर्थ ने 'प्रिल्यूड' में लिखा है,

> 'And from my pillow, looking forth by light
> Of moon or favouring stars, I could behold
> The antechapel where the statue stood
> Of Newton with the prism and silent face,
> The marble index of a mind for ever
> Voyaging through strange seas of thought, alone.'

जब मैंने पहले-पहल 'प्रिल्यूड' पढ़ा था तो कल्पना की थी कि सम्भवतः न्यूटन की मूर्ति वर्ड्सवर्थ के कमरे से दिखायी देती होगी। कमरे से केवल चैपेल दिखलायी देता है जिसमें न्यूटन की मूर्ति है। वर्ड्सवर्थ ने कितने दिन और कितनी रातों को लेटे-लेटे इस चैपेल को देख न्यूटन की उस मूर्ति की कल्पना की होगी जो चैपेल के भीतर प्रिज़्म हाथ में लेकर खड़ी है; और उसके साथ ही वर्ड्सवर्थ ने भी कितनी वार अद्भुत और अगाध विचारों के पारावार में डुबकियाँ लगायी होंगी !

हम लोग सेण्ट जोन्स कालेज का चैपेल भी देखना चाहते थे, पर सर्विस थोड़ी देर पहले ख़त्म हो चुकी थी; विद्यार्थी और अध्यापक निकलकर बाहर खड़े थे। एक पादरी महोदय ने कहा कि अब चैपेल बन्द हो रहा है, तीन बजे फिर खुलेगा। यहाँ का संगीत प्रसिद्ध है।

इसके पश्चात् हम लोग ट्रिनिटी कालेज देखने चले गये। इसकी स्थापना 16वीं शताब्दी में हुई थी। अन्दर जाने का जो फाटक है उसे 'किंग्स गेट वे' कहते हैं। फाटक से घुसते ही हम 'ग्रेट कोर्ट' में खड़े हो जाते हैं। इसे 'ओल्ड कोर्ट' भी कहते हैं। इसके पीछे पच्छिम की ओर एक नया कोर्ट भी है, जिसे Nevile's Court या Cloisters' Court कहते हैं। इसके पच्छिमी भाग में कालेज का पुस्तकालय है जिसके सामने से कैम नदी बहती है। पुस्तकालय के दक्षिणी भाग से एक चौड़ा रास्ता पुल को जाता है। इसे ट्रिनिटी ब्रिज कहते हैं। ट्रिनिटी का 'ग्रेट कोर्ट' केम्ब्रिज के कालेजों में सम्भवतः सबसे बड़ा है। 'किंग्स गेट वे' से घुसकर दाहिनी ओर को चलें तो एक ज़ीना मिलता है जिसे 'Newton's Staircase' कहते हैं। ऊपर चढ़ जायें तो न्यूटन के कमरे के सामने खड़े हो जाते हैं। यह स्थायी रूप से बन्द रहता है। इसी कमरे में न्यूटन ने अपनी गणित सम्बन्धी खोजें की थीं जिनको इस युग में केवल आइन्स्टीन चुनौती दे सके। मैंने अपने कालेज के दिनों में सुना था कि इलाहाबाद में एक जस्टिस सुलेमान थे, जो अच्छे गणितज्ञ थे और जिनका कहना था कि न्यूटन के सिद्धान्त आइन्स्टीन के सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक ठीक हैं। वे कचहरी में ब्रिटिश क़ानूनों के बल पर सही-ग़लत फ़ैसले दे स्वर्ग सिधारे। अपनी प्रतिभा का ठीक उपयोग किया होता तो सम्भवतः गणितज्ञों की दुनिया में कोई नाम छोड़ गये होते। हमारे देश में प्रतिभा की कमी नहीं, पर उसका दुरुपयोग बहुत होता है। सुना है केम्ब्रिज में कोई सज्जन श्री राजन थे। उन्होंने साहित्य के आलोचक के रूप में यहाँ अच्छा नाम कमाया था। टी. एस. ईलियट पर उनकी एक पुस्तक भी प्रकाशित हो चुकी थी। ईट्स पर भी कुछ काम किया था, पर अब

भारत सरकार की 'फ़ारेन सर्विस' में चले गये हैं। वहाँ इतना काम है कि शायद ही कुछ और कर सकें। ऐसी नौकरियों में जाकर आदमी glorified clerk बन-कर समाप्त हो जाता है।

न्यूटन के कमरे के नीचेवाला कमरा, जो अब पोर्टर को दे दिया गया है, थैकरे का कमरा था। उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासकारों में डिकेन्स और थैकरे बहुत प्रसिद्ध हैं। थैकरे की शिक्षा युनिवर्सिटी में हुई थी, डिकेन्स की सड़कों पर। थैकरे ने उच्च वर्ग का चित्र खींचा और डिकेन्स ने निम्न वर्ग का। आज डिकेन्स ही अधिक लोकप्रिय हैं। थैकरे के एक उपन्यास की पाण्डुलिपि यहाँ के पुस्तकालय में सुरक्षित है। कभी जाकर उसे देखूँगा। आगे बढ़कर चैपेल के पास का नीचे का कमरा मैकाले का था। भारत की शिक्षा-पद्धति को जो रूप मैकाले ने दिया था उसके गुण-दोष आज तक हमारे यहाँ वर्तमान हैं। उसने भारतीय शिक्षा-पद्धति को योरोपियन शिक्षा-पद्धति का समकालीन और समवर्ती अवश्य बनाया, पर हमारी बहुत-सी पुरानी जड़ें भी काट दीं। हमारी शिक्षा पर विदेशीपन की गहरी छाप आज भी पड़ी हुई है। स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद जिनके हाथों में शिक्षा की बागडोर आयी उनमें सृजनशील कल्पना की बहुत कमी है। मौलाना आज़ाद, जो हमारे शिक्षा-मन्त्री हैं, मुस्लिम काल के उस पार देख ही नहीं पाते। आधुनिक युग और उसकी माँगों को समझने में भी वे असमर्थ हैं। मध्यकालीन युग ही उनका आदर्श है—हमारे गौरवमय अतीत से कटा और आधुनिक संसार की प्रखर ज्ञान-राशि से अछूता। डॉ. राधाकृष्णन को शिक्षा-संयोजन का काम सौंपा जाता तो सम्भवत: अधिक सफलता की आशा की जा सकती थी, यद्यपि युनिवर्सिटी कमीशन रिपोर्ट में मौलिक अन्तर्दृष्टि का सर्वथा अभाव है। मानसिक दासता की शृंखलाएँ जल्दी नहीं तोड़ी जा सकतीं। हमारे हाथ भी अभी मज़बूत नहीं हुए। अभी तो अंग्रेज़ों ने हमें जो कुछ दिया है उसी में हम हेरा-फेरी कर रहे हैं। और प्राय: इतना भी करके हम देखते हैं कि जो वे कर गये थे उसमें फेर-बदल करना असम्भव ही है। भारतीय रेलों में चार दर्जे थे—फ़र्स्ट, सेकेण्ड, इण्टर, थर्ड। प्रयत्न किया गया कि इण्टर को उड़ा दिया जाये। करोड़ों रुपये इस पर ख़र्च किये गये, और तीन महीनों के अनुभव ने यह बताया कि चार दर्जे ही ठीक थे। फिर चार दर्जे कर दिये गये। हम जहाँ के तहाँ।

हम उस ऐण्टी-चैपेल को देखने को व्यग्र हो रहे थे जिसके अन्दर न्यूटन की मूर्ति है। चैपेल खुला था, हम लोग भीतर गये। बायें को सबसे पहली मूर्ति न्यूटन की है। यह रूबिलियक की बनायी हुई है और न्यूटन की मृत्यु के बीस वर्ष बाद उसकी स्थापना हुई थी। कहते हैं, केम्ब्रिज की मूर्तियों में यह सर्वश्रेष्ठ है। फ्रांसिस बेकन की मूर्ति से ऐसा लगता है जैसे वह सो रहा है। टेनिसन की मूर्ति उसकी वृद्धावस्था की है। मेकाले का सिर छोटा पर शरीर भारी है। मेकाले उन लोगों का प्रतिरूप है जो द्वितीय श्रेणी की प्रतिभा को परिश्रम के बल पर प्रथम श्रेणी की आभा देते हैं। मूर्तियों के नीचे और फ़र्श पर जो कुछ भी लिखा है वह लैटिन में। ऐसे और बहुत-से कार्यों के लिए यहाँ अभी लैटिन का ही प्रयोग चलता है। न्यूटन की मूर्ति के पीछे पच्छिम की दीवार पर गत युद्ध में मारे गये 400 ट्रिनिटी के विद्यार्थियों के नाम खुदे हैं; आगे उन 600 विद्यार्थियों के नाम, जो प्रथम महा-युद्ध में मारे गये थे।

अंग्रेज़ अपने शहीदों की इज़्ज़त करना जानते हैं। आज़ाद ऐल्फ्रेड पार्क में नाटबावर की गोलियों के शिकार हुए थे। उनके रक्त से सिंची ज़मीन पर अभी

कुश-काँटे ही उग रहे हैं और हमें आज़ाद हुए पाँच वर्ष हो गये हैं।

ऐण्टी-चैपेल के टावर पर जो घड़ी है वह हर घण्टे को दो बार बजाती है। वर्ड्सवर्थ की कल्पना में 'नर और मादा की आवाज़ में'। बारह बजे रात और दिन को इसे 24 घण्टे बजाने पड़ते हैं। प्राय: अण्डर ग्रेडुएट घण्टे बजने के समय के अन्दर दौड़कर ग्रेट कोर्ट की परिक्रमा करने की होड़ लगाते हैं। कहते हैं, जिस टावर पर यह घड़ी लगी है वह चालीस फ़ीट आगे था। नेवील ने इस टावर को चालीस फ़ीट पीछे किया कि यह चैपेल के साथ आ जाये और ग्रेट कोर्ट में जगह ज़्यादा हो जाये। इसे गिराते समय एक-एक पत्थर पर उसके स्थान का संकेत कर दिया गया था और दूसरी जगह टावर खड़ा किया गया तो प्रत्येक पत्थर अपने स्थान पर था।

ग्रेट कोर्ट के बीच में फ़ौआरा है जिसे नेवील ने बनवाया था और जो तीन सौ वर्षों से अधिक पुराना है और अब भी चलता है। दक्षिण-पूर्व के कोने में एक स्थान 'मटन होल' के नाम से पुकारा जाता है। कहते हैं कि बाइरन जब ट्रिनिटी में थे, उन्होंने एक भालू पाल रक्खा था जो इसी 'मटन होल' में रहता था। बाइरन ने अपने एक मित्र को लिखा था, "I have got a new friend the finest in the world, a tame bear. When I brought him here they asked me what I meant to do with him, and my reply was, 'He should sit for a fellowship'. This answer delighted them not."

19वीं शताब्दी में शायद यहाँ कड़े नियम नहीं थे। अब पालना तो दूर, कोई यहाँ कुत्ता लेकर भी नहीं आ सकता।

दक्षिण की तरफ़ का फाटक 'क्वीन्स गेट' कहलाता है जिस पर क्वीन एलिज़ाबेथ की प्रतिमा लगी हुई है।

फिर हम लोग नेवील कोर्ट की तरफ़ चले। पच्छिम की तरफ़ से रास्ता है। दाहिनी ओर को खाने का कमरा है। वहाँ बहुत-से महान व्यक्तियों की तस्वीरें लगी हैं। केवल हेनरी आठवें और फ्रांसिस बेकन की तस्वीरें ही हम पहचान सके।

पच्छिम की ओर पुस्तकालय है। कहते हैं, भीतर और बाहर से यह केम्ब्रिज की सबसे सुन्दर इमारत है। इसे न्यूटन के अध्यापक आइज़क बैरो ने बनवाया था। इसका नक़्शा सर क्रिस्टोफ़र रेन ने तैयार किया था। पुस्तकालय हम केवल बाहर से देख सके। इतवार के दिन यह नहीं खुलता। सप्ताह के बाक़ी दिनों में 1 से 4 बजे तक इसे भीतर से देखा जा सकता है। मि. लीथान ने बताया कि पुस्तकालय के अन्दर बाइरन की एक मूर्ति है जो पहले वेस्ट मिन्स्टर एबी को भेजी गयी थी, परन्तु वहाँ के डीन ने यह कहकर उसे लौटा दिया कि बाइरन जैसे दुराचारी की प्रतिमा एबी में नहीं लगायी जा सकती। पुस्तकालय को भीतर से देखने के लिए फिर कभी आना होगा।

नेवील कोर्ट के दक्षिण में न्यू कोर्ट है जहाँ पर आर्थर हैलम रहता था जिसे टेनिसन बहुत प्यार करता था। हैलम बहुत सुन्दर और प्रतिभावान था। टेनिसन अपनी बहन की शादी उससे करना चाहता था। हैलम की मृत्यु युवावस्था में ही हो गयी। टेनिसन ने इसी की यादगार में 'In Memoriam' लिखा। टेनिसन अक्सर आर्थर हैलम के कमरे में आया करता था। निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह किस कमरे में रहता था।

सड़क के पार ह्यूल कोर्ट है जो ट्रिनिटी कालेज से ही सम्बद्ध है। पण्डित

जवाहरलाल नेहरू ह्यूल कोर्ट में रहा करते थे। हमारी इच्छा उसे भी देखने की थी, परन्तु लंच का समय हो गया था। इसलिए आज इतना देखकर लौटने का निश्चय हुआ। हम बाहर ही बाहर सेण्ट कैथरीन्स, पेम्ब्रोक, डाउनिंग, इमैनुएल और क्राइस्ट कालेज देखते हुए वापस आये। केवल क्राइस्ट में कालेज के डाइनिंग हाल में जाकर मिल्टन, डारविन और स्मट्स की तस्वीरें देखीं। मिल्टन लड़कपन में बड़े सुन्दर थे। उन्हें उनके साथी 'Lady of the Christ' कहकर चिढ़ाते थे। चित्र उनके छुटपन का ही है। बाग़ में एक मलब्रे का पेड़ है, जिसके नीचे, ऐसी किंवदन्ती है, बैठकर मिल्टन कविता लिखा करते थे। बाग़ आज बन्द था; उसे हम न देख सके।

लंच लेकर मैंने चिट्ठियाँ लिखीं। 2॥ से 3॥ तक रेडियो पर मैंने गाल्ज़वर्दी का 'पिजन' सुना। फिर कुछ भारतीय विद्यार्थी मिलने आ गये। उनके जाने के बाद मैं कुछ देर बाज़ार में घूमता रहा। खाने के समय वापस आया। आते-आते बादल घिरने और गरजने लगे। जब से यहाँ आया धूप थी। आज एकाएक ऐसी गरज-तरज है जैसी जुलाई-अगस्त में अपने देश में होती है। खाना खाकर कमरे में आ गया। रात कुछ देर पढ़ता-लिखता रहा। अब सोने जा रहा हूँ।

मिस्टर हेन से मिलने का समय माँगा था; अभी तक कोई उत्तर नहीं आया। आशा है कल तक उनका पत्र आयेगा।

सोमवार, 21 अप्रैल, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ। ग़ुसलख़ाना घिरा रहता है। नहाने की सुविधा नहीं लगी। उधर जल्दी उठने से दूसरों के सोने में ख़लल पड़ता है। उठो-चलो तो कुछ खट-खुट होती ही है। गरम पानी भी सात बजे से पहले आना नहीं आरम्भ होता। लन्दन में हर समय मिल जाता था। यह लैण्डलेडी कंजूस मालूम होती है। दिन या शाम को नहाने का इन्तज़ाम करना होगा। यहाँ तो रोज़ नहाने का नियम नहीं मालूम होता। लोग कई-कई दिन पर नहाते हैं, पर अपना जी नहीं मानता। अपने देश में तो गर्मी में लोग 2-3 बार नहाते हैं। जाड़े में भी एक बार नहाना अनिवार्य समझा जाता है।

ब्रेकफ़ास्ट पर मि. हेन की चिट्ठी मिली। उन्होंने रात को मुझे खाने पर बुलाया था। स्वीकृति की सूचना भी चाही थी। सोचा, स्वयं जाकर पत्र दे आऊँगा, उनका कमरा भी देख आऊँगा, जिसमें शाम को खोजने की दिक्कत न रहे।

अपना राशन-कार्ड बनवाने के लिए आज मुझे फ़ूड-आफ़िस भी जाना था। ब्रेकफ़ास्ट ख़त्म करके फ़ूड-आफ़िस गया। पासपोर्ट दिखलाने पर मुझे कुछ कार्ड भरने पड़े, फिर दो पुस्तिकाएँ-सी मिल गयीं। इन्हें मुझे अपनी लैण्डलेडी को दे देना है। वही मेरा राशन प्रति सप्ताह ले लिया करेगी। यदि मैं स्थान बदलूँ तो यही राशन-कार्ड दूसरी जगह चला जायेगा। छह महीने के लिए राशन-कार्ड बन गया है और फिर मुझे नहीं आना पड़ेगा, क्योंकि केम्ब्रिज में मुझे केवल छह महीने रहना है।

फ़ूड-आफ़िस से मैं डॉक्टर के यहाँ गया। यहाँ डॉक्टर के पास अपने को रजिस्टर कराना होता है। यदि कभी मैं बीमार पड़ूँ तो वह मुझे बग़ैर फ़ीस के देखेगा, और बग़ैर दाम के दवा भी दिलवायेगा। घर पर आने की भी फ़ीस नहीं लेगा। उसने कालरा और चेचक के टीके का सर्टिफ़िकेट देखा, पूछा, कोई तकलीफ़ तो नहीं। मैंने कहा सिर्फ़ ज़ुकाम और खाँसी है। बोला, यह बीमारी यहाँ सबको

रहा करती है, जब तक साथ में बुखार न हो फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं। उसने एक कार्ड भरकर मुझे दे दिया, एक अपने पास रख लिया। कार्ड पर उसका फ़ोन नं. भी है। बीमारी में फ़ोन के ज़रिये मैं उसे सूचित कर सकता हूँ।

डिग में आकर मैंने राशन-कार्ड मिसेज़ मलेटका को दे दिया और सेण्ट कैथरीन्स कालेज की ओर चला गया। रास्ते में पानी बरसने लगा। मेरे पास न बरसाती है न छाता। ओवरकोट मैंने पहन लिया था, पर वह भीग रहा था। रास्ते में मैंने एक छाता ख़रीदा, दो पौण्ड साढ़े सात शिलिंग का मिला, यानी 32-34 रुपये का। अपने देश में महँगे से महँगा छाता 15 रु. में मिल जाता। मैंने बड़ी ग़लती की। एक छाता तो अपने साथ ला ही सकता था। हाथ में रक्खे छड़ी-छाते का कोई वज़न भी हवाई-जहाज़ वाले नहीं करते, परन्तु मैं तो ऐसी बीमारी में पड़ गया कि किसी चीज़ की सुध-बुध ही न रही। 34 रु. छाते के देना खल गया, पर भीगने से तो बचना ही था। वैसे सुना है कि इंग्लैण्ड-भर में केम्ब्रिज में बारिश सबसे कम होती है।

सेण्ट कैथरीन्स के पोर्टर को चिट्ठी दी और वापस आया। दिन-भर मि. हेन की लिखी 'द लोनली टावर' पढ़ता रहा। पुस्तक समाप्त नहीं हो सकी, पर ईट्स के विषय में उनके विचारों का मुझे खासा ज्ञान हो गया। सोचा, यदि शाम को कुछ बात चली तो मैं इस पर अपनी राय दे सकूँगा।

कमीज़ नयी निकाली पर उसका गला बड़ा निकला, कुछ का छोटा। पता नहीं तेजी ने कैसी कमीज़ें ली हैं। बाहें सबकी छोटी, काज ऐसे कि उसमें बटन ही नहीं जाते। पर किसी न किसी तरह काम तो चलाना ही था। बारिश नहीं हो रही थी; केवल सूट पहनकर चला गया। छाता ले गया था। हेन ने 7.20 पर बुलाया था। कपड़ों से झगड़ने में कुछ ज्यादा वक़्त लग गया। शायद तीन मिनट की देरी हो गयी। कमरा देखा था; सीढ़ियों से ऊपर चला गया। कमरे में मि. हेन बैठे थे, मैं दरवाज़ा खटखटाकर भीतर गया। कोई और विद्यार्थी उनके पास था। उनके पास दो कमरे हैं—आगे बैठने का, पीछे काम करने का। मैं बैठने के कमरे में आया ही था कि मिस्टर हेन अपनी 'स्टडी' से बाहर निकले, बोले, मैं तो फ़ोन करने जा रहा था कि कहीं आप खो तो नहीं गये हैं। मैंने उन्हें श्री सिद्धान्त और मि. नैस्टर का परिचय-पत्र दिया। पत्रों को उन्होंने बिना देखे जेब में रख लिया, बोले, 'It was not necessary, but how is Siddhant?' उन्हें यह नहीं मालूम था कि सिद्धान्त साहब का लड़का यहीं पर्स स्कूल में पढ़ता है। शायद यह भी वे भूल गये थे कि सिद्धान्त लखनऊ युनिवर्सिटी से पब्लिक सर्विस कमीशन में चले गये हैं। यह समाचार उनके लिए सुखद नहीं था कि अध्यापन का कार्य छोड़कर वे प्रशासन की नौकरी में चले गये। उन्होंने हिन्दुस्तानी में बोलना शुरू किया। मुझे आश्चर्य हुआ। कहने लगे, मैं दो बरस हिन्दुस्तान में रह आया हूँ।—मेरे पूछने पर कि आप क्या करते थे, बोले, तेल बेचता था—बरमा शेल में था।—अंग्रेज़ भी किस पेशे से किस पेशे में चला जाता है, और जहाँ जाता है वहीं अच्छा काम करता है। मि. हेन कई वर्ष तक लड़ाई के ज़माने में फ़ौज में भी रह चुके हैं। मैं उनको पत्र में लिखना भूल गया था कि मैं शाकाहारी हूँ। दिन को मुझे याद आया था। मैंने बहुत माफ़ी माँगते हुए कहा कि पहले मैंने सूचित नहीं किया परन्तु मैं मांस नहीं खाता। उन्होंने आश्वस्त किया, कोई फ़िक्र नहीं, प्रबन्ध हो जायेगा। मि. हेन मुझे कालेज के डाइनिंग हाल की तरफ़ ले गये। अध्यापकों के बैठने का अलग कमरा है। मुझसे पूछने लगे, आप पियेंगे क्या? मैंने

कहा, 'मैं तो शराब नहीं पीता'। और लोग वहाँ व्हिस्की या ब्राण्डी ले रहे थे। दस मिनट वहाँ बैठने के बाद हम लोग डाइनिंग हाल में आये। यहाँ और विद्यार्थी भी थे। दो लम्बी मेज़ें विद्यार्थियों के लिए और एक लम्बी मेज़ अध्यापकों के लिए लगी थी। अध्यापकों की टेबिल कुछ ऊँची जगह पर होती है और उसे 'हाई टेबिल' कहते हैं। खाने के समय भी सबको गाउन पहनकर आना पड़ता है। 'डिनर जैकेट' पहने मैंने किसी को नहीं देखा। मामूली सूट अध्यापक लोग भी पहने थे। इतना ज़रूर था कि सबके सूट काले या गहरे नीले रंग के थे। विद्यार्थी तो सभी प्रकार के कोट-पैण्टों में थे—बस काले गाउन से सबमें एकता आ जाती है। विद्यार्थियों के लिए रात को गाउन ऊपर डालकर आना तो बहुत आवश्यक होता है। यदि युनिवर्सिटी का कोई प्राक्टर किसी विद्यार्थी को बग़ैर गाउन के देख ले तो उसके ऊपर 10 शिलिंग का जुर्माना होता है। प्राक्टर इस बात की जाँच करने के लिए अक्सर रात को घूमते हैं। उनकी आँखों से कोई विद्यार्थी शायद ही बच पाता हो। खाने की मेज़ों पर चाँदी का बहुत-सा सामान था। सबके ऊपर कालेज का ख़ास चिह्न (एमब्लेम) बना था। प्लेटों पर भी कालेज का चिह्न अंकित था। हर कालेज का अपना-अपना चिह्न होता है। यहाँ चीनी बर्तनों की दूकान पर हर कालेज के छाप की चीज़ें अलग-अलग सेटों में मिलती हैं। विद्यार्थी अपने निजी जीवन में भी अपने कालेज की छाप की क्रोकेरी इस्तेमाल करना गौरव की बात समझते हैं।

मि. हेन सीनियर ट्यूटर हैं। वे टेबिल के 'हेड' पर बैठे। उनके मेहमान होने के नाते मैं चीफ़ गेस्ट था, और मैं उनके दाहिनी ओर पहली सीट पर बैठा। मैंने सूप, सब्ज़ी, अण्डे, पुडिंग और 'सेवरी' ली। वेटर को सूचना दे दी गयी थी और उसने मेरे सामने वही चीज़ें रक्खीं जो मैं खा सकता था।

खाना शुरू करने के पहले एक घण्टा बजाया गया। सब लोग खड़े हो गये। फिर प्रार्थना की गयी। शायद कालेज-चैपेल के पादरी ने की।

विद्यार्थी खाना खाकर जल्दी चले गये। अध्यापक लोग ज़्यादा देर तक बैठे रहे। खाना समाप्त होने के पूर्व मि. हेन ने मुझसे कह दिया था कि वे चम्मच से मेज़ को बजायेंगे, उस समय सबको खड़ा हो जाना चाहिए। उसके बाद प्रभु को धन्यवाद दिया जायेगा। वे पहले जायेंगे और मुझे उनके पीछे-पीछे जाना चाहिए। फिर बाक़ी लोग गोल कमरे में आयेंगे। मैंने ऐसा ही किया।

गोल कमरे में पहुँचकर मि. हेन ने मेरा परिचय सबसे कराया। कमरा बहुत बड़ा नहीं था। दीवारों पर कुछ तस्वीरें लगी थीं—तैल-चित्र। उन पर प्रकाश पड़ रहा था, बिजली की छायादार रोशनियों से। कमरे में मोमबत्ती की रोशनी थी, चाँदी के कैण्डिलस्टैण्डों पर। फिर शराब का दौर चला—पोर्ट या मेडीरा। मैंने माफ़ी चाही। लोग आपस में बातें करने लगे। मेरे पास एक गणित के प्रोफ़ेसर बैठे थे। भारत के विषय में बहुत-सी बातें हुईं। उन्होंने कालेज की बहुत-सी बातें मुझे बतायीं। थोड़ी देर बाद सीनियर ट्यूटर से आज्ञा ले-लेकर लोग जाने लगे। बाद को केवल हम दोनों ही रह गये। मि. हेन ने उठकर मोमबत्तियों को बुझाना शुरू किया। बतलाते जाते थे कि यहाँ की यह रस्म है, सदा से चली आयी है, अंग्रेज़ लोग पुराने रस्म-रिवाजों को बहुत मानते हैं। यही क़ायदा रहा है कि सीनियर ट्यूटर सबसे बाद को जाये और जाने के पहले सब मोमबत्तियों को बुझाये। बत्तियाँ बुझाकर उन्होंने बिजली की रोशनी कर दी और मुझे अपने कमरे में ले गये। आते हुए उन्होंने अपने कालेज के चैपेल को भी दिखलाया, और उसका

इतिहास बताया। इमारतों का भी कुछ इतिहास बताते वे मुझे अपने कमरे में ले गये। हम लोग उनकी स्टडी में बैठे। थोड़ी देर में आयरलैण्ड का निवासी एक और ट्यूटर भी आ गया। पहले तो मि. हेन ने ईट्स पर जो सामग्री उनके पास थी, मुझे दिखलायी। मुझसे पूछा, आप ईट्स के किस पक्ष पर काम करना चाहेंगे? मैंने कहा, ईट्स भारतीय दर्शन से प्रभावित थे; यदि आप राय दें तो मैं Influence of Indian philosophy and myth on Yeats पर काम करूँ। बोले, 'In my opinion there is not much of it unless you make much of it.' उन्होंने कहा, इसका एक नकारात्मक परिणाम भी निकल सकता है और ईट्स के साहित्य के अध्ययन में उससे कुछ गुत्थी सुलझेगी। एक और विषय उनके मन में था 'ईट्स का गद्य' लेकिन, उन्होंने कहा, इसके लिए कम-से-कम 6-7 वर्ष का अध्ययन चाहिए, और इसे वे स्वयं करना चाहेंगे। उन्होंने राय दी कि अगर आप अपने विषय पर काम करना ही चाहते हैं तो आपको डबलिन, मिसेज़ ईट्स के पास जाना चाहिए। उनके पास टैगोर, सरोजिनी नायडू, पुरोहित स्वामी, मोहिनी चटर्जी तथा अन्य भारतीयों के पत्र होंगे। भारत में यदि कुछ लोगों के पास ईट्स के पत्र हों तो उनसे पता लगेगा कि ईट्स कहाँ तक भारतीय विचारधारा से परिचित एवं प्रभावित थे। उन्होंने यह भी बताया कि ईट्स Encyclopaedia of Religion and Ethics पढ़ा करते थे और हिन्दू फ़िलासफ़ी और मिथ का उनका बहुत-सा ज्ञान वहीं से आया था। उसे भी मुझे देखना चाहिए। हेन साहब की राय थी कि ईट्स के नाटकों का भी अभी तक समुचित अध्ययन नहीं हुआ। डॉक्टरेट के लिए नाटकों का भी एक विषय हो सकता है। परन्तु सबके पहले उनकी राय यह थी कि मैं युनिवर्सिटी लाइब्रेरी और उनके निजी पुस्तकालय से ईट्स का और उससे सम्बद्ध वह सब साहित्य पढ़ डालूँ जो मेरे लिए नया हो।

मैं लगभग 11 बजे तक उनके पास बैठा रहा। ईट्स पर उन्होंने बहुत-सी किताबें, लेख आदि दिखलाये। उनका कहना है कि ईट्स के पत्रों का ही एक बड़ा संग्रह होगा; उसे प्रकाशित होना चाहिए। ईट्स का सम्पूर्ण गद्य भी अभी तक प्रकाश में नहीं आया। ईट्स की रचनाओं का एक वेरियोरम एडीशन निकालने की उनकी योजना है। उन्हें स्वयं नहीं मालूम कि वह कब तक पूरी होगी। नये प्रयोगवादियों से लोगों की निराशा शुरू हो गयी है और वे ईट्स से फिर प्रेरणा प्राप्त करना चाहते हैं—ऐसी उनकी धारणा है। वस्तुत: केम्ब्रिज में कविता और समालोचना के दो स्कूल हैं। डॉ. लीविस नये स्कूल के प्रतिनिधि हैं; हापकिन्स उनका खुदा और टी. एस. ईलियट उनका मुहम्मद है। मि. हेन परम्परावादी हैं। डॉ. लीविस के नाम से भी उनको चिढ़ है। मुझसे नैस्टर ने लन्दन में कहा था कि अगर अपना भला चाहते हो तो हेन से भूलकर भी न कहना कि तुम डॉ. लीविस से मिलते या उनके व्याख्यानों में जाते हो। तब तो वे कहेंगे कि फिर उन्हीं के पास जाओ; मुझसे सहायता न मिल सकेगी। परन्तु लीविस इतने अनुदार नहीं। प्रो. विली दोनों के बीच सन्तुलन स्थापित करते हैं। उनसे दोनों स्कूल के लोग सन्तुष्ट हैं और मिलते-जुलते हैं। वैसे वे अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर भी हैं। प्रोफ़ेसर किसी विभाग में केवल एक ही होता है। अपने देश में तो इण्टर कालेज का अध्यापक भी अपने को प्रोफ़ेसर कहलाना चाहता है। मैंने हेन से बातचीत करने में इस बात का ध्यान रक्खा कि डॉ. लीविस का नाम न आने पाये। उन्होंने भी लीविस का नाम एक बार भी न लिया। उन्होंने कहा, आप दो से पाँच बजे तक मेरे निजी पुस्तकालय में आकर जो पुस्तक चाहें पढ़ सकते हैं। ले जाना चाहें तो ले भी जायें। ठण्डक हो

तो आग जला लें। यहाँ शान्ति रहेगी। फिर उन्होंने चाभी रखने की जगह बतायी। कहा, मैं न रहूँ तो इस जगह से चाभी लेकर दरवाज़ा खोल लेना। मुझे पहुँचाने को नीचे तक आये। बीच में और भी इमारतों का इतिहास बताते रहे। सेण्ट कैथरीन्स की पुरानी इमारतें प्रायः टूट चुकी हैं, पर 17वीं सदी के मकान का एक भाग ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रक्खा गया है—उसकी प्राचीनता की याद दिलाने को। पोर्टर के कमरे के पास से मैं बाहर आया। हेन के सौजन्य से अभिभूत हूँ। इस देश के लोग दूसरों का कितना विश्वास, कितनी जल्दी कर लेते हैं! चलते समय मि. हेन ने कहा, कभी शाम को अपने घर ले चलूँगा और अपनी पत्नी से मिलाऊँगा। भारत के लोगों से मिलकर वे बहुत प्रसन्न होती हैं।

मुझे युनिवर्सिटी की विज़िटिंग फ़ेलोशिप मिल जायेगी। उससे मैं युनिवर्सिटी लाइब्रेरी से पुस्तकें ले सकूँगा, जिन प्रोफ़ेसरों के व्याख्यान सुनना चाहूँगा, सुन सकूँगा, और जिन उत्सवों में भाग लेना चाहूँ ले सकूँगा। यहाँ उत्सवों के प्रायः टिकट होते हैं, कभी तो बहुत ज़्यादा। किसी कालेज में वार्षिक नृत्य—Annual Ball Dance के लिए 5 गिनी (क़रीब 75 रुपये) का टिकट विज्ञापित किया गया था। ऐसे उत्सवों में कभी-कदा केवल यह जानने को जाना चाहता हूँ कि आख़िर ये अपना उत्सव कैसे मनाते हैं—ज़्यादा जाना तो अपने सामर्थ्य के बाहर होगा।

कैथरीन्स कालेज से निकला तो सड़कों पर मोटर और बसें तो नहीं चल रही थीं पर प्रेमी-प्रेमिकाओं के कई जोड़े आ-जा रहे थे। एक लड़की शायद ज़्यादा पी गयी थी और अपने प्रेमी के साथ उल्टे पाँव जा रही थी। उसका साथी कह रहा था, 'Beware, I won't tell you what are you coming, or should I say, going against.'

केम्ब्रिज की रात्रि-लीला देखता जीज़स लेन पहुँचा। दरवाज़ा सौभाग्य से खुला था, क्योंकि चाभी बाहर की अभी मेरे पास नहीं है।

10 रोज़ बम्बई छोड़े हो गये हैं, अभी तक तेजी और बच्चों का कोई समाचार नहीं। अवश्य तेजी ने इण्डिया-हाउस के पते पर चिट्ठी भेजी होगी, पर उन्होंने रि-डाइरेक्ट क्यों नहीं की?

मंगलवार, 22 अप्रैल, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ। बाथरूम ख़ाली मिला और गरम पानी चल रहा था। स्नान भी हो गया। ब्रेकफ़ास्ट करके ऊपर आया। बादल घिरे हुए थे और धीरे-धीरे बूँदें पड़ रही थीं। कहीं जाना असम्भव। दोपहर तक पढ़ता रहा। लंच में दूध, बिस्कुट और चीज़ ली।

शाम को बारिश रुकी। के. एन. सपरू और एम. वाई. घोरपदे मिलने आये। घोरपदे केम्ब्रिज मजलिस के सभापति हैं, सपरू मन्त्री। सुनकर प्रसन्नता हुई कि भारत, पाकिस्तान, बरमा, सीलोन – सबकी एक ही मजलिस चली आ रही है, जैसे पहले थी। घोरपदे मुझे निमन्त्रित करने आये थे कि मैं मजलिस में कविता-पाठ करूँ। मैंने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। वे चाहते थे कि मैं मजलिस का आजीवन सदस्य भी बन जाऊँ। मैंने मज़ाक किया, आप बाद को निकाल तो नहीं देते? इलाहाबाद युनिवर्सिटी यूनियन ने मिसेज़ पण्डित की आजीवन सदस्यता ख़त्म कर दी थी। इस पर पण्डित नेहरू ने इस्तीफ़ा दे दिया।—आजीवन सदस्यता की फ़ीस शायद दो पाउण्ड है, मैंने साधारण सदस्य होना स्वीकार कर लिया है।

सपरू स्वर्गीय तेजबहादुर सपरू के पोते हैं, टी. एन. सपरू के लड़के—टी. एन. हमारी युनिवर्सिटी के क़ानून विभाग में लेक्चरर हैं। लड़का यहाँ इंजीनियरिंग का कोर्स कर रहा है।

शाम को खाने के बाद मैंने डॉ लीविस और प्रो. विली को पत्र लिखे। मिलने का समय माँगा था।

विश्वनाथ दत्त कई बार मेरे स्थान पर आ चुके थे, एक दिन उनकी पत्नी भी आयी थीं। शाम को अपने घर बुलाया था। पता पूछता उनके यहाँ पहुँचा—18, न्यू मार्केट रोड। मकान की घण्टी ठीक नहीं थी। बड़ी देर में कमलाजी को मेरे आने की ख़बर लगी। विश्वनाथजी लन्दन से नहीं लौटे थे—आजकल प्रतिदिन ब्रिटिश म्यूज़ियम में काम करने जाते हैं। कमलाजी के साथ बैठा बातें करता रहा। दत्त नौ बजे लौटे। उन्होंने खाना खाया; मैंने कॉफ़ी पी। वे अपने काम और अपने प्रोफ़ेसर की बातें बताते रहे। कमलाजी मेरी कविता सुनने को उत्सुक थीं—मैंने कई सुनायीं। 11 बजे वहाँ से चला। घर भीतर से बन्द था। घण्टी देने पर मिसेज़ मलेटका ने खिड़की से झाँका; मि. मलेटका ने नीचे आकर दरवाज़ा खोला। मैंने कहा, बहुत अफ़सोस है कि आपको बे-वक़्त जगाया। उन्होंने कहा, क़सूर मेरा है, मैंने अभी तक आपको बाहर की चाभी नहीं दी। ख़ैर, दोनों ओर से क्षमा-प्रार्थना और धन्यवाद-प्रकाशन के बाद मैं कमरे में आया और कपड़े बदलकर बिस्तर में घुस गया। इस समय किसी घड़ी ने बारह की घण्टियाँ दीं। सामने सिडनी कालेज के कमरे में एक लड़का अभी तक काम कर रहा था।

यह कहावत कि Early to bed and early to rise, makes a man healthy,wealthy and wise इसी देश से हमारे यहाँ पहुँची, पर इसका यहाँ शायद ही कोई पालन करता हो। यहाँ प्राय. लोग 7-8 बजे सोकर उठते हैं। जल्दी तैयार होकर ब्रेकफ़ास्ट करते और काम पर भागते हैं। 9 बजे से सब जगह काम शुरू हो जाता है। तैयार होने का अर्थ यहाँ होता है हजामत बनाना और मुँह धोना। ब्रश यहाँ लोग सोते समय करते हैं। 1।। और 2 के बीच लोग लंच लेते हैं—लंच हल्का। 5।। तक फिर काम होता है। सब दफ़्तर-दूकानें प्राय: 5।। बजे बन्द हो जाती हैं। तब लोग चाय पीते और नहाते हैं, काम के कपड़े बदलकर शाम के कपड़े पहनते हैं, 6।। बजे खाना खाते हैं। खाना लम्बा चलता है—7।। तक। सिनेमा यहाँ 8 बजे रात से शुरू होता है। पढ़ने-लिखनेवाले 12-1 बजे तक पढ़ते रहते हैं। बहुत-से लोग सोने के पहले नहाते हैं, रात से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, पानी जो गरम हर समय मिल सकता है। मिसेज़ मलेटका से तो नहाने के पहले प्रार्थना करनी पड़ती है, तब वे गैस खोलती हैं। एक बार गरम पानी से नहाने के लिए 1 शिलिंग देना पड़ता है। सुना है, फ्रान्स में नहाने के लिए एक टब गरम पानी का 5 शिलिंग लगता है।

बुधवार, 23 अप्रैल, '52

तैयार होकर ब्रेकफ़ास्ट लिया। मि. लीथान के साथ सेण्ट्रल लाइब्रेरी चला गया। अख़बार पढ़ने का कमरा अलग है। ऊँचे स्टैण्डों पर अख़बार लगे थे, लोग खड़े होकर पढ़ते हैं। कुछ देर अख़बार देखता रहा; फिर रेफ़रेन्स रूम में आया। केम्ब्रिज पर यहाँ बहुत-सी किताबें हैं। सेण्ट कैथरीन्स कालेज के इतिहास पर भी एक मोटी किताब देखी। ईट्स की सम्पूर्ण कविता का मैकमिलन संस्करण मिल गया। हेन की पुस्तक के सन्दर्भ में मुझे कुछ कविताएँ देखनी थीं। फिर डिक्शनरी

ऑफ़ नेशनल बायोग्रैफ़ी से न्यूटन के ऊपर एक लेख पढ़ा। ट्रिनिटी चैपेल में उसकी मूर्ति देखी थी। उसके बारे में कुछ और जानना चाहता था। अपने अग्रजों के प्रति वह कितना ऋणी अनुभव करता था, और कितनी कवित्वपूर्ण भाषा में उसने इसे अभिव्यक्त किया है! क्या है अगर वह गणितज्ञ और वैज्ञानिक था। कविता गहन भाव-विचारों की, या इससे अच्छा होगा यह कहना कि गहन क्षणों की सहज वाणी है या अगम अनुभूतियों की सुगम अभिव्यक्ति, 'If I have seen further, it is by standing on the shoulders of giants.'

और मरते समय जो उसने कहा वह तो काव्य भी है, दर्शन भी, और दोनों से बढ़कर जीवन, जब कोई उसे उसकी विराटता में देखे, 'I do not know what I may appear to the world', were his words shortly before his death, 'to myself I seem to have been only like a boy playing on the sea-shore, and diverting myself in now and then fending a smoother pebble or a prettier shell than ordinary, whilst the great ocean of truth lay all undiscovered before me!'

जिसे अपनी उपलब्धि पर दम्भ हो उसे न्यूटन का यह वाक्य पढ़ना चाहिए और मन में कहीं हया हो तो डूब मरना चाहिए। मैं तो कैम किनारे कुछ सिकता-कण या तृण-खण्ड ही जुटा रहा हूँ!—बहुत छोटों को बहुत विनम्र न 'बनना' चाहिए; विनम्रता का भी एक दम्भ हो सकता है।

लंच के समय डिग लौटा। बादल घिर आये थे और धीरे-धीरे वर्षा हो रही थी। मैं मार्जरी की भेजी कविता-पुस्तकें देखता रहा।

शाम को खाने की मेज़ पर मादमोज़ेल वोआज़ेन से भेंट हुई—हमारी डिग की नवागन्तुका, सुन्दर, हँसमुख, मिलनसार। फ्रेंच कुमारी हैं। अंग्रेज़ी की शिक्षक हैं, पेरिस में। केम्ब्रिज घूमने और साहित्य में कोई डिप्लोमा लेने आयी हैं। यहाँ कई तरह के कोर्स चलते रहते हैं। जो थोड़ी-बहुत फ्रेंच हम लोगों ने सीखी थी, मि. लीथान से, वह बोलकर हमने उन्हें चकित कर दिया। परिचय कराने पर सीने पर हाथ रखकर जो मैंने कहा कि 'आँ शान्ते दा वूआ, मादमोज़ेल' तो बहुत प्रसन्न हुईं। फ्रेंच जब दूसरे देश वालों को अपनी भाषा बोलते पाते हैं तो विशेष कृतज्ञता और प्रसन्नता व्यक्त करते हैं। वोआज़ेन ने कहा कि वे हम लोगों को फ्रेंच बोलना सिखा देंगी।

खाना खाने के बाद घूमने चला गया। जीज़स लेन से बायें मुड़कर विक्टोरिया एवेन्यू पहुँचा और विक्टोरिया ब्रिज से नीचे को उतरकर कैम नदी के दाहिने किनारे पर घूमता प्रायरी रोड के और आगे तक निकल गया। रास्ते में पुल के नीचे एक ऐसा दृश्य देखा जो इसी देश में देखा जा सकता है। एक नवयुवक प्रेमी युगल प्रणय-क्रिया में व्यस्त था। दिलचस्प बात ये थी कि लड़की उस क्रिया में भाग लेने के साथ-साथ एक हाथ से सेब भी खा रही थी।

मौसम साफ़ हो गया था। नदी तो प्राकृतिक है, पर उसके किनारों को कैसा कृत्रिम और सुन्दर बना दिया गया है। लगता है, बाढ़ वग़ैरह इन नदियों में नहीं आती। नदी क्या, नहर-सी मालूम होती है। जहाँ-तहाँ हंस तैर रहे थे। नदी के किनारे की सड़क प्राय: सूनी थी। क्या लोग इधर घूमने नहीं आते। लौटते-लौटते कुछ अँधेरा होने लगा था। ऊपर कमरे में आया। थक बहुत गया था, कुछ खाँसी भी आ रही थी। कुर्सी पर बैठकर अख़बार पढ़ते ही पढ़ते नींद आ गयी।

10 बजे नींद खुली तो कपड़े बदल बिस्तर में घुसा। आज सर्दी और दिनों से ज्यादा थी। खिड़कियाँ फिर भी मैंने थोड़ी-थोड़ी खुली रक्खीं।

गुरुवार, 24 अप्रैल, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर मादमोज़ेल वोआज़ेन से बातें हुईं। वे आज केम्ब्रिज के कालेजों को देखने के लिए जाना चाहती थीं। मौसम आज अच्छा था, आसमान साफ़, धूप निकली। मैंने भी सुबह कुछ देर कालेजों में घूमने और 'बैक्स' पर कुछ समय बिताने का निश्चय किया। इन इमारतों और इनके पीछे के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखते मन नहीं भरता। डैफ़ोडिल और नारसिसस के खेत के खेत खड़े हैं। वर्ड्सवर्थ ने कभी इन्हीं फूलों को देख अपनी प्रसिद्ध कविता लिखी होगी, जिसे मैंने लड़कपन में पढ़ा था। उसने Golden Daffodils का जिक्र किया है, पर यहाँ के Daffodils प्रायः सफ़ेद हैं। पीले रंग का भी डैफ़ोडिल होता है।

I wandered lonely as a cloud
That floats on high over vales and hills,
When all at once I saw a crowd,
A host of golden daffodils,
Beside the lake, beneath the trees
Fluttering an dancing in the breeze.
A poet could not but be gay
In such a jocund company.

मैं भी उन्हें देखकर विभोर था। चेरी वृक्ष भी आजकल फूले हैं। चेरी का वृक्ष ऊँचा होता है और उसका फूल सफ़ेद। एक और प्रकार का पेड़ है, नीबू के बराबर होता है, इस पर आजकल लाल फूल लगे हैं। युनिवर्सिटी लाइब्रेरी जाते समय पूरी क़तार इन पेड़ों की मिलती है। हरी पत्तियाँ एक भी नहीं दिखतीं। पूरे पेड़ में बस लाल ही लाल फूल-कलियाँ हैं। मा. वोआज़ेन फ्रांस के कई युनिवर्सिटी-नगरों को देख चुकी हैं। इसके जोड़ का कोई स्थान उन्होंने नहीं देखा। प्राकृतिक सौन्दर्य में अवश्य, उनका कहना है, दक्षिणी फ्रान्स अद्वितीय है।

लौटकर लंच लिया। इतनी देर में विश्वनाथ दत्त अपनी पत्नी, अपने साले और उनकी पत्नी को साथ लेकर आ गये। उनके साले ब्रिस्टल में डॉक्टर हैं और बारह बरस से रह रहे हैं—यहीं बस-से गये हैं। तीन अपने मकान हैं। लड़का 15 बरस का है और किसी अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़ता है। सम्बन्धी भारत में हैं; दो-चार साल बाद ये लोग देश जाते हैं। डॉक्टर की पत्नी मेरी कविता की शौक़ीन हैं। वे लोग घूमने-घामने केम्ब्रिज आये थे, केवल एक दिन के लिए। मुझसे कहने लगे, आप भी हमारे साथ चलें। मैं तो अभी बाहर होकर लौटा था, मगर उन्होंने इतनी ज़िद की कि टालते न बना। उनके साथ फिर घूमने चल पड़ा। आज हम सेण्ट जोन्स कालेज में ब्रिज स्ट्रीट की तरफ़ से घुसे। फाटक के दोनों खम्भों पर पत्थर के बाज़ पंजों में किताब दबाये बैठे हैं। बाज़ सेण्ट जोन्स का प्रिय पक्षी था। यहाँ जगह-जगह पर बना हुआ है। सेण्ट जोन्स स्ट्रीटवाले फाटक पर इधर-उधर भेड़े बने थे। इस फाटक पर बाज़ों के पंजों में जो किताबें हैं उनमें से एक पर लिखा है ERAT PRIN CIPIO VER BUM, दूसरी पर VER BUM CARO FAC BUM TUM EST, लैटिन में मालूम होता है। कभी किसी से इसका

अर्थ पूछूँगा। सेण्ट जोन्स स्ट्रीटवाले फाटक पर एक दूसरा मोटो है जिसका अर्थ किसी ने मुझे बताया था, 'Often I think what I am !'

इधर के फाटक पर लाल फूल के पेड़ लगे हैं, मदिरा के प्याले के आकार के वृक्ष। डालें ऊपर को उठी हैं, फूलों से लदी। भगवान ने इस ज़मीन को कैसे-कैसे फूल दिये हैं।

इस फाटक से होकर हम चैपेल कोर्ट में आये, और फिर दूसरे, और फिर तीसरे कोर्ट में। इसी में वड्र्सवर्थ का कमरा F स्टेयरकेस के ऊपर है। सेण्ट जोन्स स्ट्रीट से अब यह पहला कोर्ट माना जाता है। 'प्रिल्यूड' में वड्र्सवर्थ ने इसी को थर्ड कोर्ट लिखा है। आज सब लोगों के साथ फिर वड्र्सवर्थ के कमरे में गया। फिर उसी खिड़की के पास खड़े हो ट्रिनिटी कालेज का ऐण्टी-चैपेल देखा, और वड्र्सवर्थ की फिर उससे सम्बद्ध पंक्तियाँ कानों में गूँज गयीं। यहाँ आकर जल्दी जाने को जी नहीं करता। बस यही मन होता है कि चुपचाप खड़े रहें और उन दिनों की कल्पना करें जब वड्र्सवर्थ इस कमरे में रहता था। अतीत में बड़ा सम्मोहन होता है।

'Here pause ! the poet claims at least this praise.'

आज यहाँ किसी अधिकारी से मुलाक़ात हो गयी। उसने बताया कि यह कमरा 'किचन' नहीं बल्कि डाइनिंग हाल बनाया जा रहा है। एक कारीगर ने छत की एक कड़ी दिखलाकर बताया कि उस पर 1754 सन् खुदा है। उसे अब दीवार में ले लिया गया है। उसके ऊपर लकड़ी लगेगा और भीतर इसे ज्यों का त्यों छोड़ दिया जायेगा। यह छत वड्र्सवर्थ के जन्म से 16 वर्ष पहले की है। उसका जन्म 1770 में हुआ था। कमरे में उतरकर हमने 'किचन' भी देखा जिसका ज़िक्र वड्र्सवर्थ ने अपने 'प्रिल्यूड' में किया है। अपने 'नुक आब्सक्योर' का ज़िक्र करते हुए वह लिखता है,

Right underneath the college Kitchen made
A humming sound, less tenable than bees,
But hardly less industrious; with shrill notes
Of sharp command and scolding intermixed

जिस अधिकारी ने आज हमें यह सब दिखलाया उसे वड्र्सवर्थ की यह पंक्तियाँ याद थीं। उसने बताया, यहाँ हज़ार 'मील' (हज़ार आदमियों के लिए खाना) प्रतिदिन तैयार किया जाता है। पकाने का सब काम बिजली और गैस के चूल्हों पर होता है।

किचन के सामने ही डाइनिंग हाल है। तीन लम्बी मेज़ें विद्यार्थियों के लिए नीचे और दो कम लम्बी अध्यापकों के लिए ऊपर लगी हैं। विद्यार्थी बेंच पर बैठकर खाना खाते हैं; अध्यापकों के लिए कुर्सियाँ लगी हैं। प्रमुख चित्र यहाँ हेनरी सातवें की माता मारगेरेट का है जिसने इस कालेज की स्थापना की थी। खिड़कियों के रंगीन शीशों पर 'शील्ड' के नमूने बने हैं अथवा प्रसिद्ध विद्वानों या कालेज की सहायता करनेवालों के नाम लिखे हैं। ऐसे नामों के साथ 'बेनीफ़ैक्टर' शब्द जुड़ा है। हाई टेबिल के पास दो मूर्तियाँ भी हैं जिनका नाम नहीं दिया हुआ है। यहाँ एक दरवाज़े पर लाल कमल का डिज़ाइन भी मैंने देखा। यह 'रेड रोज़' भी हो सकता है। उन दिनों इस प्रतीक का यहाँ बहुत प्रचार था। 'वार आफ़ रोज़ेज़' प्रसिद्ध है। हाल के दो चित्रों की ओर मैं विशेष आकर्षित हुआ। एक मैडिथ प्रायर का है—सत्रहवीं-अट्ठारहवीं सदी का कवि। पता नहीं इस कालेज से उसका क्या

सम्बन्ध था। दूसरा वड्सवर्थ का है जिसमें वह लाल किनारे का गाउन पहने बैठा है। उसके बायें हाथ में क़लम है और वह काग़ज़ों की एक तह के ऊपर अपना हाथ रक्खे हुए है। इस चित्र की प्रतिलिपि किसी पुस्तक में देखी थी, पर चित्र बहुत प्रभावपूर्ण है। यह डब्ल्यू. पिकर्सगिल का बनाया हुआ है। चित्र रीडल माउण्ट पर ख़ासतौर से सेण्ट जोन्स कालेज के लिए तैयार किया गया था। इस पर वड्सवर्थ ने एक सुन्दर कविता भी लिखी थी,

> Go, faithful portrait! and where long hath knelt
> Margaret, the saintly Foundress, take thy place;
> And, if time spare the colours for the grace
> Which to the work surpassing skill hath dealt,
> Thou, on thy rock reclined, though kingdoms melt
> And states be torn up by the roots, will seem
> To breath in rural place, to hear the stream,
> And think and feel as once the poet felt.

स्वयं 'faithful portrait' कहकर वड्सवर्थ ने इसे मानो अपनी सच्ची तस्वीर होने की सनद दे दी है। क्या विचार और भावना में डूबे वड्सवर्थ की मुद्रा ऐसी ही रहती होगी! चित्र से आँखें हटाने को जी ही नहीं करता था। घूम-फिरकर आँखें उस पर जा टिकती थीं। दरवाज़े से निकला तो आँखों ने एक बार फिर वड्सवर्थ को श्रद्धांजलि दी। निकलकर हम तीसरे कोर्ट में आये—पहला भी कह सकते हैं। उसी में एक ओर चैपेल है। बाहर कोर्ट में 14वीं सदी के चैपेल की नींवों के निशान अभी तक बने हैं। नया चैपेल 18वीं सदी में उससे हटकर बनाया गया था। आज हमें चैपेल-क्लार्क मिल गये थे। उन्होंने हमें अन्दर ले जाकर सब बातें विस्तार से बतायीं। ऐण्टी-चैपेल के फाटक पर दो मूर्तियाँ हैं—दाहिनी ओर की मारगेरेट की है जो अपने हाथों में सेण्ट जोन्स कालेज के प्रमुख द्वार का नमूना लिये है। वह एक दाढ़ीवाले व्यक्ति की पीठ पर खड़ी है। पता नहीं उसका क्या अर्थ है। बायीं ओर ह्यू ऐशटन की मूर्ति है। वह रानी मारगेरेट का हाउसकीपर था। उसने कालेज की स्थापना में बड़ी सहायता दी थी। उसके हाथ में बाइबिल की पुस्तक है। वह दो पशुओं पर पाँव रखकर खड़ा है। पशुता को पाँवों से कुचलने का अर्थ स्पष्ट है। प्रवेश करने पर ऐण्टी-चैपेल की बायीं ओर तीन संगमरमर के मेहराब हैं। ये पुराने चर्च से मिले थे और इन्हें ज्यों का त्यों नये चर्च में लगा दिया गया है। प्रमुख मूर्ति मारगेरेट की है; और भी मूर्तियाँ हैं। ह्यू ऐशटन की मूर्ति लेटी हुई मुद्रा में है—skeleton effigy—उसके ऊपर रँगी हुई एक दूसरी मूर्ति है, पादरी के कपड़ों में। यह भी पुराने चर्च में थी और नये चर्च में रख दी गयी। मूर्तियाँ एक लोहे के कटघरे में हैं जिसके अन्दर कोई नहीं जा सकता। ऐण्टी-चैपेल की छत केम्ब्रिज के सब चैपेलों की छतों से ऊँची है। 22 मई को यहाँ के विद्यार्थी इस पर चढ़कर एक विशेष प्रकार का धार्मिक गीत गाते हैं। पुराने चर्च के मेहराबों के अन्दर युद्ध में मारे गये सेण्ट जोन्स कालेज के विद्यार्थियों के नाम लिखे हैं। बायीं ओर प्रभु ईसा के बलिदान के पश्चात् का एक बड़ा तैल-चित्र है। उन्हें क्रास पर से उतारा जा रहा है। इसे किसी इटैलियन चित्रकार ने बनाया है। यों तो रंगीन शीशे सब जगह लगे हैं; पर चैपेल टावर की सबसे ऊँची खिड़कियों पर जो शीशे लगे हैं, वे पुराने चर्च से मिले थे। नये शीशों में लाल-नीला रंग प्रधान मालूम होता है। पुराने शीशों में हरा और पीला। रंगीन शीशों में प्राय: बाइबिल के दृश्य अंकित हैं। बायीं

और एक रंगीन शीशा मुझे बहुत पसन्द आया। यहाँ एक फ़रिश्ता हाथ में तराज़ू लिये खड़ा है। अनुमान है, यह पाप और पुण्य को तोलने की तराज़ू है। सम्भवत: न्याय का भी चित्र हो सकता है। तराज़ू ऐसी बराबर बनी है कि ज़रा भी ग़लती होने की सम्भावना नहीं। फ़रिश्ता उसे बड़ी निष्पक्षता से उठाये हुए है। उसकी मुद्रा से यह प्रकट होता है कि यह बिलकुल बेलाग है — न किसी का रत्ती-भर लिहाज़ और न किसी के साथ रत्ती-भर ज़्यादती। नरकाग्नि और उसमें भूने जाते हुए पापियों के भी चित्र हैं। किसी समय उन्हें देख लोग काँप उठते होंगे। इसी प्रकार चारों ओर रंगीन शीशों में बाइबिल की गाथाओं पर आधारित चित्र हैं।

वेदी के बायें को एक कुर्सी रक्खी है जो हेनरी सातवें की कही जाती है। सम्भवत: जब कभी वह चर्च में आता होगा, इसी पर बैठता होगा। अब इस पर बाइबिल की एक पुरानी पोथी रक्खी रहती है।

पुराने चर्च में 'मिज़ेरी सीट'—कष्टकर कुर्सी — हुआ करती थी। बैठने की जगह को बहुत आरामदेह नहीं बनाया जाता था, क्योंकि प्रवचन सुनते-सुनते प्राय: लोगों के सो जाने का अन्देशा रहता था। 'मिज़ेरी सीट' इतनी छोटी है कि यदि बैठनेवाला इस पर ऊँघने लगे तो नीचे गिर पड़े। इसका केवल एक नमूना पुराने चर्च से यहाँ लाकर रक्खा गया है। आजकल तो चर्च की कुर्सियाँ काफ़ी आरामदेह रक्खी जाती हैं। वेदी या 'आल्टर' के सामने जो टाइलें हैं उन पर भी 'डिज़ाइन' बने हैं, बाइबिल के दृश्यों के या सन्तों के जीवन से लिये गये। ये टाइल इटली से आये थे। चलते समय एप्रिल की 'सर्विस' का कार्यक्रम चैपेल-क्लार्क ने हमें दिया और हम उसे धन्यवाद देकर 'ब्रिज आफ़ साईज़' की ओर चले।

पुल में प्रवेश करते समय दीवारों पर नज़र गयी। लोगों ने अपने नाम खोद दिये हैं या पेंसिल या चाकू से लिख दिये हैं। क्या यह रोग संसार-भर में फैला है। भारतवर्ष में भी पुरानी इमारतों पर कितने नाम खुदे मिलते हैं! अमर होने की अभिलाषा मनुष्य में कितनी प्रबल है! और कितनी आसानी से लोग अमर होना चाहते हैं! राजा-महाराजा बड़ी-बड़ी इमारतें बनवाते, उन पर तख़्तियाँ लगवाते हैं; छोटे लोग उनके पत्थरों पर अपने नाम लिख देते हैं। एक जगह एक नग्न लड़की का चित्र भी पेंसिल से बना हुआ था। हम अपने विद्यार्थियों को दोष देते नहीं थकते। युवक हर जगह युवक होते हैं—किसी समय यौन-भावना ऐसे चित्रों को खींच-देखकर ही सन्तोष प्राप्त करने का प्रयत्न करती है।

'ब्रिज आफ़ साईज़'—आहों के पुल—का अब और ही रहस्य खुला है। इस नाम का एक पुल वेनिस में है। वह Doges' Palace को जेलख़ाने से जोड़ता है। महल से जिनको सज़ा मिलती थी वे उसी पुल पर से जेलख़ाने भेजे जाते थे। स्वाभाविक है वहाँ उनकी आहें निकल जाती थीं—पुल पार करते ही जेल में दाख़िल होना है। इन दोनों पुलों में बहुत समता है। वह भी ऊपर से ढका है। इसका नक़्शा सम्भवत: वहीं से लिया गया होगा। इसी से इस पुल का भी यही नाम पड़ा। इसके नीचे का धरातल धनुषाकार है। अगल-बगल पाँच खिड़कियाँ हैं। दूसरी खिड़की पर वर्ड्सवर्थ के खड़े होने की कथा कपोल-कल्पित मालूम होती है क्योंकि यह 1826 में बना था। 56 वर्ष की अवस्था में वर्ड्सवर्थ केम्ब्रिज का विद्यार्थी नहीं रह सकता था! अवश्य ही यह पुराने कोर्टों को नये कोर्ट से जोड़ने के लिए बनाया गया होगा, जो 1831 में बनकर तैयार हुआ था। हो सकता है उसके पूर्व यहाँ कोई और पुल रहा हो जिसे तोड़कर यह बनाया गया है। जहाँ तक मुझे स्मरण है वर्ड्सवर्थ ने 'प्रिल्यूड' में किसी ऐसे पुल का ज़िक्र नहीं किया जिस पर

वह खड़ा हुआ करता था। हाँ, केम्ब्रिज आते समय वड्र्सवर्थ एक ब्रिज से अवश्य आया होगा और इसका ज़िक्र 'प्रिल्यूड' में है,

> Onward we drove beneath the castle; caught,
> While crossing Magdalene Bridge, a glimpse of Cam.

'Castle' यहाँ Magdalene कालेज के लिए लिखा गया है। मुमकिन है विक्टोरियन युग में जिस पुराने पुल को तोड़कर नया ब्रिज बनाया गया था—द ग्रेट ब्रिज—उसे पहले Magdalene Bridge कहते हों। ब्रिज स्ट्रीट के आगे पुल की सड़क अब भी Magdalene Street कहलाती है। जब हम लोग न्यू कोर्ट होकर सेण्ट जोन्स ब्रिज से फिर ट्रिनिटी की ओर आये तो उस पर खड़ा एक बूढ़ा अंग्रेज़ चित्रकार Bridge of Sighs को पानी के रंगों से चित्रित कर रहा था। चित्र में इमारतों, पुल, कैम नदी और उसमें उनकी परछाइयों का दृश्य और भी सुन्दर लग रहा था।

इस समय 3।। बज चुके थे। हमने निश्चय किया कि ट्रिनिटी का पुस्तकालय देख लें। बाहर के दर्शकों के लिए पुस्तकालय 1 से 4 बजे तक खुला रहता है। कैम की ओर पुस्तकालय के सामने की ज़मीन दिखलाकर विश्वनाथ दत्त ने बताया कि मैकाले यहाँ सुबह 7 से 9 तक पुस्तक हाथ में लेकर घूमा करता था।

पुस्तकालय ऊपर की मंज़िल पर है। दरवाज़े से घुसते ही बायीं ओर की कुछ मूर्तियाँ, पुराने शिलालेख और कुछ दुष्प्राप्य पुस्तकें रक्खी हैं जिन्हें केवल दूर से देखा जा सकता है। बायीं ओर की दीवार पर एक विशाल तैल-चित्र है। एक फ़रिश्ता एक लेटे मनुष्य के ऊपर खड़ा है; हाथ ऊपर उठाकर आसमान की ओर संकेत कर रहा है। पुस्तकालय के द्वार पर लोहे की पट्टियों से बना एक पुराना सन्दूक़ रक्खा है। प्राचीन काल में अमूल्य पुस्तकों को ऐसे ही सन्दूक़ों में रक्खा जाता था। बीच से रास्ता बना है। इधर-उधर आलमारियाँ और उनमें पुस्तकें हैं। दर्शक केवल बीच के रास्ते में ही आ-जा सकते हैं। कोने में ट्रिनिटी की गाइड मिलती है जिसे ट्रेविलियन ने लिखा है। यहाँ मिल्टन की छोटी कविताओं की एक पाण्डुलिपि सुरक्षित है, जिसकी छपित प्रतिलिपि 21 शिलिंग में मिलती है। अपनी युनिवर्सिटी के लिए इसे ले जाऊँगा। दाहिनी ओर ऊँची आलमारियों पर अंग्रेज़ी साहित्यकारों एवं विचारकों की मूर्तियाँ हैं—सबसे अन्त में न्यूटन की। पास ही न्यूटन के समय की एक दूरबीन रक्खी है और उसी के समीप न्यूटन का निजी पुस्तकालय सुरक्षित है—कितने बड़े आदमी का कितना छोटा पुस्तकालय! —अंग्रेज़ी कहावत है, Beware of the man, of few books. सामने की बड़ी खिड़की पर रंगीन शीशे का एक भव्य चित्र है—सिंहासन पर जार्ज तृतीय बैठे हैं; कीर्ति की देवी नीला गाउन पहने खड़े न्यूटन को जार्ज तृतीय के सम्मुख प्रस्तुत कर रही है। दाहिनी ओर को बैठे फ्रांसिस बेकन कार्यवाही लिख रहे हैं। बेकन और न्यूटन सम्भवत: दो सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं जिन्हें ट्रिनिटी ने शिक्षित, सुसंस्कृत किया। चित्र के नीचे बाइरन की प्रतिमा है। इसे थारवाल्डसेन ने बनाया था। मूर्ति एक ऊँचे चबूतरे पर है; बाइरन एक टूटे यूनानी खम्भे पर पाँव रखकर बैठे हैं; उनके हाथ में एक पुस्तक है —'Child Harold'; बैठने के पत्थर पर एक ओर एक उल्लू और मुर्दे की खोपड़ी बनी है, दूसरी ओर किसी कल्पित पशु का सिर और वीणा। वीणा कछुए की पीठ और सींग की बनी है। यूनानी दन्त-कथाओं के अनुसार पहली वीणा उन्हीं उपकरणों से बनी थी।

एक ओर ऊँची आलमारियों पर अंग्रेज़ी साहित्यकारों, विचारकों की मूर्तियाँ

थीं, दूसरी ओर रोमन और यूनानी प्राचीन साहित्यकारों, दार्शनिकों की। दोनों ओर नीची आलमारियों पर भी मूर्तियाँ हैं। टेनीसन और हैलम की मूर्तियाँ साथ रक्खी हैं। बाइरन यूनानी और रोमन प्रतिभावानों की ओर दृष्टि किये हैं।

एक स्थान पर ट्रिनिटी के रजिस्टर के वे पृष्ठ रक्खे हैं जिन पर एडवर्ड सातवें और जार्ज छठे के हस्ताक्षर हैं—दोनों ट्रिनिटी के पूर्व-छात्र थे।

आलमारियों और दीवारों पर लकड़ी की नक़्क़ाशी भी बहुत कलापूर्ण है।

पुरानी पाण्डुलिपियाँ, सिक्के, चित्र ट्रिनिटी में बहुत हैं; बारी-बारी से उन्हें प्रदर्शनार्थ शीशे की आलमारियों में रक्खा जाता है। इनका अध्ययन करने के लिए विशेष आज्ञा की आवश्यकता होती है। आजकल शीशे की एक आलमारी में क़ुरान की एक प्रति रक्खी है जो टीपू सुल्तान के वध के पश्चात् उसके खेमे में मिली थी। क़ुरान की आयतें एक नीले फूल के चित्र के बीच में लिखी हैं। फूल में सुनहरा काम भी है। एक दूसरी आलमारी में Euclid का अरबी अनुवाद भी मैंने देखा। चार बज गये; पुस्तकालय बन्द होने का समय आया। निकलते-निकलते हमने फिर इस भव्य पुस्तकालय पर एक दृष्टि डाली और वहाँ से विदा हुए। हमारा भी वही अनुभव हुआ जो रोजर नार्थ ने इस पुस्तकालय के विषय में लिखा था—The beautifully Proportioned room touches the very soul of any one who first sees it ! मैं तो यही सोचता हुआ बाहर निकला कि हे भगवान्, कभी क्या ऐसा भी सम्भव होगा कि हमारे देश में भी इस प्रकार के पुस्तकालय बनें ! यहाँ लोगों ने काम किया है, यह मानना होगा। पर काम करने के लिए कितनी सामग्री, कितनी सुविधा यहाँ लाकर जुटा दी गयी है, इसको भी कम महत्ता नहीं दी जानी चाहिए।

साथ की महिलाएँ थम गयी थीं। युनिवर्सिटी लाइब्रेरी में जाकर हमने चाय पी और फिर सब लोग विश्वनाथ दत्त के घर चले गये। उनके साले और उनकी पत्नी मेरी कुछ कविताएँ सुनने को उत्सुक थीं। कुछ देर कविता-पाठ हुआ। उन्होंने मुझे ब्रिस्टल बुलाया है। कहते हैं वहाँ भी देखने की बहुत-सी जगहें हैं।

घर आकर मैंने खाना खाया। कुछ देर समाचार-पत्र पढ़ता रहा। फिर ब्रिटिश कौंसिल चला गया। वहाँ आज टैगोर सोसाइटी की ओर से मिस्र के एक सूफ़ी कवि इब्न-अल-फ़र्ग पर केम्ब्रिज युनिवर्सिटी के अरबी और फ़ारसी के प्रोफ़ेसर मि. आरबेरी का व्याख्यान था।

व्याख्यान 9 बजे रात से आरम्भ हुआ। मेरे लिए रोचक से अधिक सूचना-परक था। अरबी सूफ़ियों के विषय में मैं कुछ भी तो नहीं जानता। व्याख्यान के अन्त में मि. आरबेरी ने मुझसे कुछ भारतीय सूफ़ियों के विषय में सुनना चाहा। मैंने कहा कि हमारे यहाँ तीन प्रकार के सूफ़ी हैं—कुछ विशुद्ध भारतीय, कुछ जिन पर इस्लाम का प्रभाव पड़ा और कुछ विशुद्ध इस्लामी। मादन भाव से ईश्वर की आराधना को अगर हम सूफ़ीवाद का मूल सिद्धान्त मान लें तो हम अपने भक्ति-काल के कवियों को विशुद्ध भारतीय सूफ़ी कह सकते हैं। जिन्होंने भारतीय विचार-धारा और इस्लामी सूफ़ी सिद्धान्तों को मिलाने का प्रयत्न किया, या जो दोनों से प्रभावित हुए उनमें कबीर, नानक, सरमद, मलिक मुहम्मद जायसी आयेंगे। विशुद्ध इस्लामी सूफ़ियों में चिश्ती और निजामुद्दीन औलिया की गिनती होगी। आधुनिक समय में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने विशुद्ध भारतीय परम्परा तथा इस्लाम से प्रभावित सूफ़ियों की विचारधारा का समन्वय कर एक नये प्रकार का सूफ़ीवाद चलाया। कबीर उनके प्रिय कवि थे। उन्होंने कबीर की कविताओं का अंग्रेज़ी अनुवाद भी

किया। रवीन्द्रनाथ महान कवि थे और उन्होंने समस्त देश की विचारधारा एवं साहित्यिक प्रवृत्ति को प्रभावित किया। बीसवीं शताब्दी के तीन दशकों तक हिन्दी कविता में एक विशेष वाद चलता रहा जिसे छायावाद कहते हैं—और जिसे सूफ़ीवाद का हिन्दी नाम कहना चाहिए। जहाँ तक सूफ़ीवाद का सम्बन्ध है, रवीन्द्रनाथ ने उसे धार्मिकता की संकुचित सीमा से निकालकर कला और कविता के विस्तृत क्षेत्र में स्थापित किया। हमारी कला और साहित्य से सूफ़ीवादी भावना मिट चुकी है, ऐसा मैं नहीं कह सकता। कभी पूर्णतया मिट जायेगी, इसकी कल्पना मैं नहीं करना चाहूँगा। आधुनिक जीवन के कटु और कठिन सत्यों का प्रहार हमारे ऊपर दिन-प्रतिदिन प्रबल होता जाता है। अगर सूफ़ीवादी भावना को मरना नहीं है तो उसे अपना ऐकान्तिक और सक्रिय रूप छोड़कर सामाजिक और क्रियाशील रूप धारण करना पड़ेगा। भारत ऐसे धर्मप्राण और धर्म-विभिन्न देश की कुशलता इसी में है कि वहाँ सूफ़ी-भावना का प्रचार बढ़े, एक अलग धर्म के रूप में नहीं बल्कि एक ऐसी उदारता, सहिष्णुता, प्रेम के रूप में जो समस्त विभिन्नताओं को एकसूत्रता से जोड़ सके।

कुछ देर प्रो. आरबेरी से मेरी बातचीत होती रही। उन्होंने उमर ख़ैयाम पर एक नयी पुस्तक लिखी है। पुस्तक में उन्होंने उमर ख़ैयाम सम्बन्धी विचारों को नयी खोजों के आधार पर नयी दिशा दी है। कभी इसे देखना चाहता हूँ। मैंने टैगोर सोसाइटी के सेक्रेटरी मि. पीटर और उनकी पत्नी ब्रैण्डा से परिचय प्राप्त किया। महाकवि इक़बाल का पुत्र जावेद इक़बाल भी मिला। मैंने उससे कहा, 'You are the son of a great man, be a greater man.' जावेद यहाँ पी-एच. डी. के लिए इस्लाम से सम्बद्ध किसी विषय पर शोध कर रहा है। नवयुवक है—हँसमुख, अगम्भीर, खुला।

रात क़रीब 11 बजे घर पहुँचा।

शुक्रवार, 25 अप्रैल, '52

सुबह दो पत्र मिले। एक प्रो. विली का था—उन्होंने मुझे 28 ता. को पेम्ब्रोक कालेज में डिनर के लिए बुलाया है। दूसरा मि. नैस्टर का था—इण्डिया हाउस के पते पर मेरा कोई पत्र नहीं आया, तेजी ने क्यों नहीं लिखा, घर का कुछ समाचार पाने को बेचैन हूँ, नैस्टर टर्म का अन्त होते-होते केम्ब्रिज आयेंगे और मुझसे मिलेंगे, घर की चिन्ता में मन उदास हो गया।

दो-तीन चिट्ठियाँ लिखीं। छोड़ने को बाहर निकला। लेटर-बक्स के ठीक सामने ह्यूल कोर्ट का फाटक है—सिडनी स्ट्रीट पर। सुना था उसी में पण्डित नेहरू रहते थे। इसे देखने को उत्सुक था, पर अपनी डिग के सबसे निकट होते हुए भी इसे देख न सका था, दूर-दूर की चीज़ें देख आया था। सोचता था, इसे तो कभी आते-जाते देख लूँगा। चिराग़ तले अँधेरा होता है। आज चला गया। ह्यूल कोर्ट में वस्तुतः तीन कोर्ट हैं—आगे का कुछ बड़ा; इसमें हरी घास का लान है। बीच में एक पत्थर के चबूतरे पर बैठी मुद्रा में एक यूनानी युवक की नग्न कांस्य-प्रतिमा है। नवयुवक दूर तक देखता किसी विचार में डूबा है। दूसरे और तीसरे कोर्ट में कोई ख़ास बात नहीं। तीसरे कोर्ट का दरवाज़ा ट्रिनिटी कालेज के फाटक के सामने खुलता है। सड़क पार करो और ट्रिनिटी में प्रवेश करो। मैं जानने को उत्सुक था कि पण्डित नेहरू किस कमरे में रहा करते थे। एक हिन्दुस्तानी विद्यार्थी ने बतलाया। पहले कोर्ट में मूर्ति के सामने खड़े हो पहली मंज़िल पर

उसने एक खिड़की दिखलायी---वह पण्डित नेहरू के कमरे की थी। सोचने लगा, पण्डित नेहरूअपनी खिड़की से अक्सर इस विचारमग्न नवयुवक की मूर्ति को देखते होंगे। मूर्ति सुडौल तो है, पर उसे बहुत सुन्दर नहीं कह सकते। बराबर पानी पड़ने से उस पर काई भी लग चुकी है और प्राय: काली और जगह-जगह नीली दिखायी पड़ती है। पण्डित नेहरू के कई चित्र आँखों के सामने से गुज़र गये। क्या इस कलाकृति का पण्डितजी के जीवन पर कुछ प्रभाव नहीं है? Is he not meditative and reflective ? Is not his canvas very large indeed when he thinks ? Is he not extremely human and natural like this nude Greek youth when the duties of the state and office are not overwhelming him ? कला अपने प्रेमी की आत्मा में चुपचाप, अनजाने प्रवेश कर जाती है और उसकी कुरूपता का अपहरण कर, अपनी सुरूपता से उसे सजा, फिर विस्मृति के अन्धकार में विलीन हो जाती है। कला जीवन और आत्मा का परिष्कार-संस्कार करने के लिए है। कला की मूर्तिपूजा करना उसके ध्येय को भूलना है। मूर्तिपूजा भी भगवान का साक्षात्कार करने की दृष्टि से की जानी चाहिए, कला-पूजा जीवन को परिष्कृत-सुसंस्कृत बनाने की दृष्टि से। इस नग्न मूर्ति ने यहाँ के कितने रहनेवालों के जीवन पर अपनी छाप छोड़ी होगी—अगर उन्होंने इसे प्रेम से देखा होगा। प्रभाव प्रभावित होने पर भी निर्भर करता है। इसीलिए कला-कृतियाँ विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करती हैं। जिसे वे अछूता छोड़ दें उसे अपने को बड़ा भाग्यहीन समझना चाहिए।

इन्हीं विचारों में मग्न कमरे में आया। कुछ देर पढ़ता रहा। लंच लिया। मि. हेन के कमरे में पढ़ने चला गया। वे उपस्थित नहीं थे। मैंने होन लिखित ईट्स का जीवन-चरित पढ़ना आरम्भ किया है। मि. हेन ने उसकी प्रशंसा की थी। पाँच बजे तक वहाँ पढ़ता रहा। लौटकर थोड़ा आराम कर खाना खाने को तैयार हुआ। खाने की मेज़ पर मा. वोआज़ेन फ़्रेंच के दो-चार वाक्य सिखाती हैं। बड़ा विनोद रहता है। मैंने उन्हें 'नमस्ते, अच्छे तो हैं?' कहना सिखा दिया है। खाना ख़त्म हुआ था कि दत्त आ गये। उनके साथ कुछ देर को कैम के उस पार घूमने चला गया। साढ़े आठ से केम्ब्रिज मजलिस में मि. आबेल स्मिथ का व्याख्यान था—Impressions of India, Pakistan and Ceylon. आबेल स्मिथ केम्ब्रिज की ओर से उस डिबेटिंग पार्टी के सदस्य होकर गये थे जिसे ब्रिटिश कौंसिल ने पूर्व एशिया के देशों में भेजा था। हम लोग भी व्याख्यान सुनने आये। कोहनूर होटल के ऊपर का कमरा केम्ब्रिज मजलिस ने अपनी सभाओं के लिए ले लिया है। कमरे में कोई 25 आदमियों के बैठने की जगह थी। व्याख्यानदाता के अतिरिक्त एक अंग्रेज़ दम्पती और वहाँ थे, शेष भारतीय, पाकिस्तानी, बरमी और सीलोनीज़। पाकिस्तान से बहुत-से विद्यार्थी केम्ब्रिज आते हैं। प्रवेश देने में, मैंने ऐसा सुना है, उन्हें प्राथमिकता दी जाती है।

मि. आबेल स्मिथ अच्छे वक्ता हैं। हास और व्यंग्य के पुट उनके व्याख्यान में अधिक थे। उन्हें हिन्दुस्तान की धूप पसन्द थी, महिलाओं की सारियाँ, पर पाकिस्तानी बुर्क़े की उन्होंने व्यंग्यात्मक प्रशंसा की—It can hide any amount of ugliness and give every woman the benefit of doubt. उनकी राय में भारतीय विद्यार्थी का बौद्धिक धरातल योरोप के विद्यार्थियों के बौद्धिक धरातल से नीचा था। कम से कम उनके ज्ञान और चिन्तन की परिधि बहुत संकुचित थी। शायद जो वे जानते थे उसके वे विशेषज्ञ थे, पर जो वे नहीं

जानते थे वह बहुत था। भारतीय विद्यार्थियों ने संसार, समाज और जीवन के विस्तृत क्षेत्र से परिचय प्राप्त करना अभी नहीं सीखा।

पूर्व में उन्होंने समाज के ऊँचे तबके में पच्छिम की भद्दी नक़ल भी देखी। पूर्व और पच्छिम का समन्वय अभी तक नहीं हो पाया है। बहुत बड़ा भाग पच्छिम से बिलकुल अनभिज्ञ है। बहुत छोटा किन्तु प्रभावशाली भाग पूर्व को बिलकुल भूल पच्छिम का अनुकरण करना चाहता है। समाज के हर क्षेत्र में यह विपर्यय देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए उन्होंने 'आवारा' फ़िल्म को लिया। उनकी राय में यह पूर्व-पच्छिम के भद्दे मिलन का नमूना है।

हिन्दी कविता से वे परिचित नहीं। हिन्दी कविता के क्षेत्र मे भी एक दल टी. एस. ईलियट, ऑडेन, स्पेण्डर, मैकनीस को या लुई अरागाँ, पाबलो नेरूदा या अन्य रूसी लेखकों को भारतीय भाषा—कृत्रिम भाषा—का लिबास पहनाकर खड़ा करना चाहता है। विषय, ध्वनि, छन्द, लय, रूपक, परिणाम, लक्ष्य और प्रभाव में भारतीय परम्परा से उसका कोई भी सम्बन्ध नहीं। कितनी ऐसी निष्प्राण रचनाएँ दैनिक, साप्ताहिक, मासिकों में छपकर, अपनी विचित्रता के कारण क्षण-भर किसी को आकर्षित कर सदा के लिए विस्मृति के गर्त मे समा जाती हैं। इस प्रवृत्ति का भी अर्थ है—प्राचीन से असन्तोष। परन्तु नये की स्थापना बाहर के अनुकरण पर नहीं होगी। नये की स्थापना के लिए अपने पुरातन को फिर से समझना होगा। किसी भूली-बिसरी शाखा को, जड़ को फिर से खोजना होगा। उसे नया पानी, नयी खाद देनी होगी, नये प्रकार से उसकी देख-रेख करनी होगी, पर जड़ें अपने में ही खोजनी होंगी। जातियों के विकास के मूल उसके अतीत में छिपे रहते हैं। पश्छिम के जीवन को दूर रख उसके साहित्य की नक़ल बेमानी होगी, और पच्छिम केवल नेकटाई, कालर, सिगरेट, शराब नहीं है। पच्छिम के जीवन को पूर्व पर लादने का अर्थ होगा पूर्व की मृत्यु। सेमेटिक और आर्यन, मुस्लिम और हिन्दू सभ्यता का समन्वय अभी हो नहीं चुका था कि पच्छिम की सभ्यता हमारे देश में आ गयी —ईसाई सभ्यता। और अब ईसाई सभ्यता स्वयं वैज्ञानिक सभ्यता से अपना समन्वय नहीं कर पा रही है। हमें इन चारों का समन्वय एक साथ करना है। हमारा काम बहुत कठिन है। बहुत समय लगना है। भारत क्रियाशील है। असफल प्रयोगों का भी कुछ महत्व है। शायद अभी हमारे प्रयोग उन नकारात्मक परिणामों की ओर ही संकेत कर रहे हैं जिनके अलग होने से—जैसे कुश-काँटों के साफ़ हो जाने से—रास्ते की रूप-रेखा दिखायी पड़ने लगती है।

काश्मीर की समस्या पर मि. स्मिथ का रुख़ पाकिस्तान के पक्ष में अधिक था। इस पर कुछ वाद-विवाद भी हुआ। अप्रियता नहीं आने पायी फिर भी।

किसी ने इलाहाबाद युनिवर्सिटी यूनियन में मिसेज़ रूज़वेल्ट सम्बन्धी घटना पर भी प्रश्न पूछा। मि. स्मिथ ने कहा—I am with the students. सचमुच क्या बात हुई थी, यह जानने को लोगों ने मुझसे भी बोलने को कहा। मैंने सारी परिस्थिति सामने रक्खी। परिणाम मेरा यह था कि सच्चे नेतृत्व का तकाज़ा यह था कि अगर विद्यार्थी बिगड़ ही गये थे तो उनको सँभाल लिया जाता। मुझे खेद के साथ कहना पड़ा इस अवसर पर मिसेज़ रूज़वेल्ट ने अपने को मिसेज़ पण्डित से अधिक बड़ा जन-नेता सिद्ध किया। मिसेज़ पण्डित आधे घण्टे में विद्यार्थियों को उनकी ग़लती नहीं महसूस करा सकीं। मिसेज़ रूज़वेल्ट ने पाँच मिनट में परिस्थिति को समझा और सँभाल लिया। साथ ही मैंने अपने विद्यार्थियों की एक ग़लत मनोवृत्ति की भी भर्त्सना की। हमारे विद्यार्थी कुछ इस प्रकार समझने लगे हैं कि प्रदर्शन

(demonstration) के बल पर हम जो चाहें करा सकते हैं—अधिकारी जहाँ जाने को मना करें वहाँ जा सकते हैं, न्यायत: मिले दण्ड का निराकरण करा सकते हैं, युनिवर्सिटी बन्द करा सकते हैं, फ़ीस माफ़ करा सकते हैं, सिनेमा-शो में रियायत ले सकते हैं, किसी कर्मचारी को किसी जगह पर नियुक्त करा, अथवा किसी पद से हटवा सकते हैं, इम्तहान के पर्चों को सरल करा सकते हैं—यानी हम जो भी चाहें, करा सकते हैं। पिछले कुछ वर्षों में मैंने इन सब कामों के लिए विद्यार्थियों के प्रदर्शन देखे हैं। अगर हमारे विद्यार्थी समझते हैं कि यह उनके संगठन का नमूना है तो मैं कहूँगा, यह बुरे क़िस्म का संगठन है। संगठन करना आसान है, उससे ठीक काम लेना मुश्किल। संगठन प्राय: विवेक को विदा दे देता है। उसे परिचालित करने के लिए कुछ ऊँचे क़िस्म के दिमाग़ों को तटस्थ होकर उचित-अनुचित पर ग़ौर करना चाहिए। संगठन करके एक बार प्रयाग विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने एक दूकान लूट ली। हमें हुड़दंगई (Mobocracy) और प्रजातन्त्र (Democracy) का अन्तर समझना होगा।

सभा समाप्त होने पर मैं दत्त को छोड़ने के लिए उनके निवास तक गया। रात देर से केम्ब्रिज की सड़कों पर अकेले घूमना भी एक विचित्र अनुभव है—लगता है आदमी एक चलता-फिरता विचार है!

शनिवार, 26 अप्रैल,' 52

ब्रेकफ़ास्ट पर एक मि. लेयर से बातचीत हुई। रगवी से आये हैं। केम्ब्रिज केवल एक दिन ठहरकर चले जायेंगे। जन-संख्या उनका विशेष विषय है। इंग्लैण्ड और भारत की जन-संख्या के सम्बन्ध में उन्होंने मुझे कुछ नयी बातें बतायीं।

10 बजे तक पढ़ता रहा। नीचे गया तो तीन पत्र मिले—एक तेजी का, दूसरा महाराजकृष्ण रसगोत्रा का, तीसरा डॉ. लीविस का। लीविस ने 11 बजे मिलने को बुलाया था, और पत्र मिला 12 बजे। उन्हें लिखा कि मुझे पत्र देर से मिला, फिर कोई समय दें। लीविस की हस्तलिपि बहुत बुरी है। पढ़ने में काफ़ी दिक़्क़त हुई। मुझे केम्ब्रिज के तीन प्रोफ़ेसरों के पत्र मिले। तीनों से तीन तरह का व्यक्तित्व प्रकट होता है। मि. हेन ने टाइप किया हुआ ख़त भेजा, खाने पर बुलाया और स्वीकृति की सूचना चाही। प्रो. विली ने हस्तलिखित पत्र भेजा, खाने पर बुलाया, सूचना देने को समय दिया, हेन से सम्पर्क कर यह भी पता लगा लिया कि मैं शाकाहारी हूँ। डॉ. लीविस ने शुक्रवार को पत्र लिखा, शनिवार की सुबह को बुलाने के लिए। ज़रा-सी देर से पत्र पाने पर मिलना असम्भव। सुना है, बहुत unconventional हैं; जहाँ बैठते हैं, पुस्तकें इधर-उधर फैली रहती हैं; कपड़े का भी ध्यान नहीं रखते; टाई नहीं लगाते, कमीज के बटन भी खुले रखते हैं जिससे उनकी छाती के बाल तक दिखायी देते हैं। वे नयी कविता के हामी हैं। डी. एच. लारेंस को इस युग का सबसे महान लेखक मानते हैं। केम्ब्रिज में उनका स्कूल अलग है और न कोई उनकी बात मानता है और न वे किसी और की बात मानते हैं। महाराजकृष्ण ने यह पत्र लन्दन छोड़ने के पहले ही इण्डिया हाउस के पते पर लिखा था, मैं 15 को इण्डिया हाउस गया, पर मेरा यह पत्र मुझे नहीं दिया गया। यह पत्र 30 मार्च का है और मुझे मिल रहा है 26 अप्रैल को! यदि मैं मि. नैस्टर को पत्र न लिखता कि मेरे पत्र 7, जीज़स लेन पर भेज दिये जायें तो शायद यह और तेजी का पत्र भी वहीं पड़ा रहता। उन्हें मालूम था कि मैं उन्हीं के तै किये हुए पते पर ठहरा हूँ। इंग्लैण्ड में रहे, ख़ास लन्दन में रहे, हिन्दुस्तानियत की छाप नहीं जाती। तेजी के पत्र से मन को विशेष शान्ति मिली। ख़ुशी हुई कि वे 13 की

रात को इलाहाबाद पहुँच गयी थीं। उनके पहुँचने के एक घण्टे बाद मेरा केबिल उन्हें मिल गया था। मैंने केबिल उन्हें हिन्दुस्तानी समय से 3।। बजे शाम को दिया था —इंग्लैण्ड में उस समय सुबह के 10 बजे थे; और केबिल उन्हें 10 बजे रात यानी 7 घण्टे में मिल गया। मैंने साधारण केबिल दिया था। अगर एक्सप्रेस दिया होता तो शायद और जल्दी पहुँच जाता। उन्हें कम-से-कम समय में मेरे यहाँ सकुशल पहुँचने का समाचार मिल गया। तेजी और महाराजकृष्ण को कल, इतवार को, पत्र लिखूँगा।

लंच लेकर मि. हेन के कमरे में पढ़ने चला गया। वहाँ 6 बजे तक रहा। लौटकर खाना खाया। मादमोज़ेल वोआज़ेन खाने के बाद घूमने जाना चाहती थी। हम दोनों नदी की ओर चले गये—सड़क सूनी, आसमान साफ़। सूर्यास्त बहुत सुहाना लग रहा था, जैसे अपने यहाँ बरसात में होता है। नदी का किनारा शान्त था। वोआज़ेन बड़ी सीधी और भोली लड़की है। इसने आज तक शराब छुई नहीं, और प्रसिद्ध यह है कि फ़्रेंच बच्चों को घुट्टी के साथ ही शराब पिला दी जाती है। सामाजिक चहल-पहल से इसे नफ़रत है। नाचना भी इसने कभी नही सीखा। कहती है कि लड़कियाँ कैसे किसी अजनबी के साथ खड़ी हो नाचने लगती हैं। जब हम लौट रहे थे नवीन चन्द्र उदय हो रहा था। न जाने क्यों मेरे मुँह से निकला कि The moon looks like the thin lips of a Chinese girl. वोआज़ेन कहने लगी, मालूम होता है, नये चाँद ने आपको प्रेरित कर दिया है; इस पर एक कविता लिखिए, मगर अंग्रेज़ी में लिखियेगा जिससे मैं भी समझ सकूँ। यहाँ मोलियर का 'तारतूफ़े' सिनेमा में दिखानेवाले हैं—उसके अंग्रेज़ी रूप में। मैं जाना चाहता था, मैंने उससे पूछा, आप भी चलना चाहेंगी। बोली, मैं मोलियर की मूल फ़्रेंच पर इतनी मुग्ध हूँ कि उसे अंग्रेज़ी अनुवाद में देखना सहन न कर सकूँगी। उसे गुड-नाइट कर मैं अपने कमरे में चला आया। बी. बी. सी. से His Excellency नाम का नाटक प्रसारित हो रहा था। मि. लीथान सुन रहे थे। वे ब्राडकास्ट सुनकर अपनी अंग्रेज़ी सुधारना चाहते हैं। इस कारण जब कमरे में रहते हैं किसी विषय पर अंग्रेज़ी में वार्ता-व्याख्यान हो तो ध्यानपूर्वक सुनते हैं। मुझे नाटक में मज़ा नहीं आ रहा था। कमरे में आकर कुछ देर कविता पर वह पुस्तक पढ़ता रहा जिसे मार्जरी को लौटाना है—30 के पहले। सड़कों से शराब में मस्त लड़कों के गाने, शोर मचाने की आवाज़ आ रही है। डांसिंग क्लबों से इस समय निकल-निकलकर लोग आ रहे हैं। आज शनिवार है। आज की शाम खाने-पीने, नाचने-गाने और मदहोश होकर घूमने-फिरने के लिए रिज़र्व रहती है। इतवार को खुमारी और ख़ुदा का नाम। सोमवार से काम। अभी कुछ देर पढ़ूँगा। फिर सो जाऊँगा। 12 बजे तक काम करने का इरादा है।

तेजी के पत्र ने मेरे ऊपर बड़ा भारी दायित्व रख दिया है। यदि मैं यहाँ एक मिनट भी अपना बेकार करूँ तो उनकी प्रत्याशा को कितना बड़ा धक्का लगेगा। मेरे प्रवास का कुछ ऐसा उपयोग हो सके कि मैं अपने देशवासियों की न सही, अपने मित्रों की—और उनकी भी न सही—अपनी पत्नी और अपने बच्चों की दृष्टि में कुछ ऊँचा उठ सकूँ !

रविवार, 27 अप्रैल, '52

कल रात को देर तक जगा था। सोने का भी एक समय होता है। यह टल जाये तो फिर नींद नहीं आती। साढ़े बारह बजे के क़रीब बिस्तर में गया था। बड़ी देर तक

नींद नहीं आयी। तेजी के पत्र ने मन में काफ़ी हलचल पैदा कर दी थी। किस तरह अपने समय का उपयोग करूँ कि लौटकर जाने पर औरों को नहीं तो कम-से-कम मुझे तो यह विश्वास हो सके कि कुछ नया बनकर, अपने को पहले से अधिक परिष्कृत, परिमार्जित, और संस्कृत करके लौटा हूँ। कम-से-कम तेजी को मुझसे निराशा न हो तो मैं समझूँगा मेरा यहाँ आना निष्फल नहीं रहा। इन्हीं विचारों में पड़े कभी नींद आ गयी।

सुबह देर से उठा। कुछ इसका भी भरोसा था कि ब्रेकफ़ास्ट आज 9॥ बजे तक भी मिल सकता है। धूप निकली हुई थी। सोचा, किंग्स कालेज के चैपेल में आज सुबह की सर्विस देख आऊँ। सर्विस साढ़े दस बजे शुरू होने को थी। मैं 10 के क़रीब-क़रीब पहुँच गया। लोग आने लगे थे। फाटक अभी नहीं खुला था। कैम की तरफ घूमने चला गया। हवा चल रही थी और डैफ़ोडिल और नरगिस के खेत लहरा रहे थे। वड्र्सवर्थ की पंक्तियों की सचमुच व्याख्या कर रहे थे।

Continuous as the stars that shine
And twinkle on the milky way,
They stretched in never ending line
Along the margin of a bay:
Ten thousand saw I at a glance,
Tossing their heads in sprightly dance.
The waves beside them danced; but they
Outdid the sparkling waves in glee...

इस मनोरम दृश्य को वड्र्सवर्थ की आँखों से देखते हुए मैं तो भूल ही गया कि चैपेल जाना है। कवि की महत्ता ही इसमें है कि उसके द्वारा हम जग और जीवन को उनकी उस परिपूर्णता में देखते हैं जिसमें स्वयं उसने उन्हें देखा है। और इस प्रकार हम अपने जीवन के क्षणों को अधिक सम्पन्न, भरा-पूरा और सजीव बनाते हैं—अमर भी बनाते हैं: डैफ़ोडिल तो पहले भी लोगों ने देखा होगा, बाद को भी लोग देख ही रहे हैं, पर वड्र्सवर्थ ने अपने हृदय की वह आभा बिखेरकर 'that was never on sea or land' उन्हें जैसा देखा, वैसा पहले उन्हें न देखा गया था, और बाद को केवल उसके शब्दों की सहायता से देखा जा सकता है।

'गिरजा से घण्टे की टन-टन'। मैं चैपेल की ओर बढ़ा। उसके भीतर पहुँचते ही उसकी छत की ऊँचाई से आँखें अभिभूत हो जाती हैं। ऐण्टी-चैपेल और चैपेल के बीच का विभाजन उसकी लम्बाई का पूर्ण प्रभाव नहीं प्रकट होने देता। इसके बड़े-बड़े मेहराबों में रंगीन शीशे लगे हैं जिनमें बाइबिल की कथाएँ प्रदर्शित की गयी हैं। सुना है, इसकी 'गाइड बुक' है, पर उस समय वहाँ प्राप्य न थी। सर्विस में पूरे समय और पूरी तरह भाग लेनेवाले चैपेल में बैठते हैं, केवल दर्शक ऐण्टी-चैपेल में। मैं ऐण्टी-चैपेल में बैठा। Choir में भाग लेनेवाले लड़के लाल लम्बे कोट के ऊपर सफ़ेद गाउन पहनते हैं, अण्डर-ग्रेजुएट काले सूट के ऊपर सफ़ेद गाउन। ऐण्टी-चैपेल के एक किनारे से Choir boys चैपेल की ओर जाते हैं, दूसरे किनारे से Choir में भाग लेनेवाले अण्डर-ग्रेजुएट; उनके पीछे पादरी लोग आते हैं। जब वे चैपेल में प्रवेश करते हैं, सब लोग अपनी-अपनी जगह पर खड़े हो जाते हैं। पहले प्रार्थना होती है, फिर भजन। साथ में चैपेल का आरगन बजता है। यह काम शुरू होने के पहले चैपेल और ऐण्टी चैपेल के बीच का फाटक बन्द कर दिया जाता है। फाटक में जालियाँ हैं; बस उन्हीं में से वेदी दिखायी देती है। गाना तो पूरी तरह ऐण्टी-

चैपेल में भी सुनायी पड़ता है। एक भजन के पश्चात् मैं उठ आया। और लोग भी उठकर जा रहे थे। धार्मिक कर्मकाण्ड पर भी फ़ौजी क़वायद की-सी पाबन्दी मुझे दिखायी दी। भीतर की श्रद्धा का हाल तो भगवान ही जानें! क्या भीतर कुछ इतना खोखला है कि उसे सन्तुलित करने को बाहर इतना आडम्बर किया जाता है। बाहर-बाहर का इतना ध्यान रखने के कारण भीतर देखने को समय और शक्ति रह भी जाती है? फिर भी व्यवस्था का एक अपना महत्त्व है। पर पश्चिम ईसाई धर्म पर चल कितना रहा है? सच तो यह है कि पश्चिम ने अपनी जड़वादी प्रवृत्ति से ईसाइयत को एक नया ही जामा पहना दिया है जिसमें ऊपरी तमाशा तो बहुत है, पर भीतरी तत्त्व यदि मिटे नहीं तो दब ज़रूर गये हैं। इस खोखलेपन को स्वयं पश्चिम के अनेक मनीषियों ने देखा और उस पर व्यंग्य किया है। तमाशे का शौक़ यहाँ रोग की सीमा पर पहुँच गया है। वही सिनेमा के सामने क्यू लगवाता है, राजगद्दी देखने को भीड़ इकट्ठी करता है, जुलूस देखने को उकसाता है, जुलूस चाहे शव-यात्रा का हो, चाहे फ़ौजी मार्च का। पश्चिम उसी की ओर आकर्षित हो सकता है जिसको तमाशा बनाकर उपस्थित किया जा सके। दूकानों में सामान सजा है। गिरजों में ईसा और मसीही सन्तों की तस्वीरें सजी हैं, क्वायर ब्वायज़ सजे हैं, पादरी सजे हैं, भक्त सजे हैं, भगवान सजे हैं—सलीब को कितना सजाकर रक्खा जाता है! कोई अंग्रेज़ खुले मैदान में खड़े होकर एक मिनट प्रार्थना शायद ही कर सके। गिरजे में दो घण्टे बैठा रहेगा, वहाँ तमाशा जो है। एक प्रकार से यह प्रार्थना-सभा थी। एक बार गांधीजी की प्रार्थना-सभा में बैठने का अवसर मिला था। वह सभा आँखों के सामने नाचने लगी। वह पूर्व था—यह पश्चिम है।

चैपेल से बाहर आया ही था कि चार बममार हवाई जहाज़ आसमान को चीरते हुए गिरजे के ठीक ऊपर से निकल गये। छत के नीचे पादरी कह रहा था कि अगर कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर तमाचा मारे तो तुम्हें चाहिए कि अपना बायाँ गाल भी उसके आगे कर दो। छत के ऊपर बममार कहता हुआ जा रहा था, जो हमारे ऊपर एक बम गिरायेगा उस पर हम बीस बम गिरायेंगे। और छत ने पादरी को भी 'आमीन' कहा, बममार को भी।

कमरे में आकर मैंने तेजी, महाराजकृष्ण और नैस्टर को चिट्ठियाँ लिखीं। नैस्टर से बी. राजन का (जिन्होंने टी. एस. ईलियट पर एक पुस्तक सम्पादित की थी) पता पूछा। उन्होंने ईट्स पर कुछ उसी प्रकार का काम करना शुरू किया था, जो मैं करना चाहता हूँ। मि. हेन चाहते थे कि उनसे सम्पर्क स्थापित करूँ, सम्भव है वे किसी प्रकार मेरे कार्य में सहायक हो सकें। फिर नहाने गया। आकर बैठा ही था कि विश्वनाथ दत्त आ गये। उनकी पत्नी और उनके मित्र डोनल्ड भी उनके साथ थे। हम लोग नौका-विहार के लिए गये। लौटकर हमने डोनल्ड के कमरे में चाय पी। भोजन का समय समीप आते देख कमरे में आया! आज सब खाना ठण्डा मिलता है। इतवार की शाम को यहाँ गरम खाना नहीं बनता—गोश्त खानेवालों को Cold meat, शाकाहारियों को हरी सब्ज़ियाँ, पुडिंग की जगह केक, चाकलेट, मिठाइयाँ; केवल चाय गरम थी।

खाना खाकर घूमने चला गया। जीज़स लेन, शार्ट स्ट्रीट, ईमैनुएल रोड, ड्रूमर स्ट्रीट, मिल्टन वाक (क्या यह वही सड़क है जिस पर मिल्टन घूमने जाता था?—सम्भवतः नाम ऐसा दे दिया गया है) किंग स्ट्रीट होते मैनर स्ट्रीट से वापस। ईमैनुएल रोड पर कुछ देर एक पार्क में भी घूमा। तीन लड़कियों को लगभग एक दर्जन आदमी बुरी तरह छेड़ रहे थे—लड़कियाँ उनके छेड़ने से प्रसन्न ही थीं। यहाँ

पार्कों में इस तरह की लड़कियाँ बराबर घूमती मिलती हैं···ग्राहकों की तलाश में···ग्राहक इनकी तलाश में···हाइड पार्क मूल केन्द्र !

कमरे में आकर फ़रनीचरों की जगह-बदल की। सोचता हूँ कमरे में कुछ और जगह हो गयी है—'दिल के बहलाने को ग़ालिब यह ख़याल अच्छा है'। डायरी लिख चुका हूँ। सोने जा रहा हूँ। आज मैंने भी इतवार मनाया। पढ़ा कुछ भी नहीं, देश की हवा लग रही है।

सोमवार, 28 अप्रैल, '52

ब्रेकफ़ास्ट के बाद सेण्ट्रल लाइब्रेरी चला गया। वहाँ अख़बार पढ़े। 'Poetry Review', 'Times', 'Literary Supplement', 'Statesman and Nation', 'Listener', 'Punch' देखे। जो पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ना चाहता हूँ, यहाँ सब आती हैं। प्रतिदिन थोड़ा समय देना होगा।

लगभग 12॥ के कमरे लौटा। तीन पत्र मिले, एक तेजी और अमित का 22 का लिखा हुआ। कैरो और लन्दन से लिखे पत्रों का कुछ हवाला ही नहीं। अमित का पत्र पाकर बहुत ख़ुशी हुई। सब लोग अच्छी तरह हैं। दूसरा पत्र मार्जरी का था। उसने एक पुस्तक भेजी है, साथ बम्बई-हलवा—कहाँ से उसे मिल गया यहाँ। तीसरा पत्र डॉ. लीविस का है; उन्होंने मंगल को 12 बजे बुलाया है। शाम तक एलेन रॉस की पुस्तक पढ़ता रहा।

7 बजे तैयार होकर प्रो. बी. विली के कमरे—पेम्ब्रोक कालेज गया। वे कमरे में नहीं थे, मैं सीढ़ियों से उतर रहा था कि वे मुझे मिल गये—लम्बे, दुबले, वृद्ध पर फुर्तीले। मुझे देखते ही पहचान-से गये— I am sure you are Mr. Bachchan; I am Willy. मुझे अपने कमरे ले गये, गैस की अँगीठी जलायी। कहने लगे, जब तक कमरा गरम होता है, आइए, आपको अपना कालेज दिखा लाऊँ। पहले मुझे ले जाकर उन्होंने वे कमरे दिखलाये जिनमें अंग्रेज़ी का प्रसिद्ध कवि टामस ग्रे रहा करता था, उन्हीं में पिट भी रहा था। फिर उन्होंने बताया कि एडमण्ड स्पेन्सर भी पेम्ब्रोक के छात्र थे। जुलाई में उनकी चौथी जन्मशती मनायी जायेगी। प्रोफ़ेसर विली का कहना था कि ग्रे ने अपनी प्रसिद्ध 'एलीजी' यहीं लिखी थी। फिर उन्होंने मुझे कालेज का बाग़ दिखलाया—किंग कप्स, फ़ारगेट-मी-नाट पहचनवाये; ट्यूलिप मैं जानता था। जो प्रोफ़ेसर रास्ते में मिलते थे उनसे मेरा परिचय भी कराते जाते थे। फिर मुझे पुराना चैपेल दिखलाया जो अब पुस्तकालय है—इसमें लैटिन की पुरानी धार्मिक पुस्तकें रक्खी हैं। अब यह कमरा व्याख्यान आदि के लिए काम में लाया जाता है। लाइब्रेरी—नयी —बाहर से ही दिखलायी। इस समय बन्द थी। नये चैपेल में सर्विस हो रही थी, बोले, फिर कभी आकर देखियेगा।

इतने में मि. हफ़ आ गये—क्राइस्ट कालेज में अंग्रेज़ी के अध्यापक हैं, 'Last Romantics' नाम की पुस्तक लिखी है। इसमें एक लेख ईट्स पर भी है जिसकी मि. हेन ने बड़ी प्रशंसा की है। इन्हें भी प्रो. विली ने खाने पर बुलाया था। हम लोग कमरे में पहुँचे। वही प्रश्न यहाँ भी—पियेंगे क्या ? मैंने कहा, क्षमा करें, मैं तो शराब नहीं पीता। मि. विली और हफ़ ने शेरी की एक-एक प्याली ली। खाने का समय हो रहा था। मैंने डॉ. दस्तूर और नैस्टर के परिचय-पत्र दिये। उन्होंने जल्दी से पढ़ा। मेरी पुस्तक 'The House of Wine' देखने की इच्छा प्रकट की है। मुझे कुछ प्रतियाँ मार्जरी से मँगानी हैं। यहाँ के परिचित प्रोफ़ेसरों को भेंट करना चाहता हूँ। हम लोग अध्यापकों के गोल कमरे में गये। प्रो. विली ने मेरा

परिचय अन्य अध्यापकों से कराया। कहने लगे, परिचय तो आपका सबसे करा दूँगा, पर सबका नाम आपको कैसे याद रहेगा ? मास्टर आफ़ पेम्ब्रोक मिस्टर किंग सबसे लम्बे व्यक्ति हैं। उनका नाम आप नहीं भूलेंगे। उनका नाम किंग है, और वे यहाँ के किंग हैं, क़द में भी सबसे ऊपर। वे टेबिल के हेड पर बैठेंगे और आप उनके दाहिनी ओर चीफ़ गेस्ट के रूप में। जब वे खाने के कमरे में प्रवेश करें आप उनके पीछे जाइयेगा, और जब वे उठें तो उनके पीछे-पीछे आप चले आइयेगा।

मैं मि. किंग के साथ डाइनिंग हाल में गया। बैठने के पूर्व लैटिन में उन्होंने कुछ कहा। अध्यापकों के प्रवेश करते ही लड़के अपनी-अपनी जगह पर खड़े हो गये। खाने के बाद भी उन्होंने खड़े होकर लैटिन में कुछ कहा। मेरे लिए शाकाहारी भोजन आया था। मि. किंग ने बताया कि इंग्लैण्ड में बहुत-से लोग शाकाहारी हैं, उनका एक पत्र भी निकलता है—'The Vegetarian' खाने के समय भारत की भाषा-समस्या पर बराबर बात होती रही। डब्ल्यू. बी. ईट्स, भारत और योरोपियन सभ्यता, पाकिस्तान-हिन्दुस्तान आदि विषयों पर भी बातें हुईं। मेरे बग़ल में मि. हफ़ बैठे थे। मि. किंग के ठीक पीछे टामस ग्रे की तस्वीर लगी थी।

खाना ख़त्म होने पर हम लोग गोल कमरे में आये। यहाँ फिर शेरी और पोर्ट पी गयी। मोमबत्तियाँ यहाँ भी जल रही थीं। कमरे में अँगीठी दहक रही थी। मैंने कॉफ़ी पी। मि. किंग मेरे पास बैठे और बातों का सिलसिला जारी रहा। प्रो. विली मेरे पास आये। उन्होंने कहा कि लेक्चर की लिस्ट आप किसी बुकसेलर के यहाँ से ले लें, और जिस लेक्चर में भी आप जाना चाहें जायें। पहले तो कोई पूछेगा नहीं; अगर कहीं कोई पूछे तो मेरा नाम लें कि प्रो. विली ने इजाज़त दे दी है। फिर उन्होंने बताया कि यहाँ नियम यह है कि लेक्चर के बाद प्रोफ़ेसर को अपना परिचय दे दें, लेक्चर पर कुछ कहना चाहें तो कहें और इस तरह उसका परिचय प्राप्त करें। लेक्चर की तारीफ़ करने और उसके लिए धन्यवाद देने की प्रथा है। युनिवर्सिटी लाइब्रेरी की मेम्बरशिप के लिए उन्होंने मेरी सिफ़ारिश कर दी है। रहने की जगह की सुविधा, खाना, बीवी-बच्चों सबके विषय में उन्होंने पूछा। फिर अपना बताया—4 लड़के-लड़कियाँ हैं; दो की शादियाँ हो चुकी हैं। एक लड़का पेम्ब्रोक में पढ़ता है, एक लड़की भी पढ़ती है। बताया, मेरी बड़ी लड़की के बच्चा होनेवाला है, और शीघ्र ही मैं दादा हो जाऊँगा। प्रो. विली के स्वभाव में बड़ी सरलता है। नैस्टर ने ठीक ही कहा था कि He is the most charming man in Cambridge. गोल कमरे से सब लोग विदा हुए तो वे हमें अपने कमरे में ले गये। यहाँ हम कुछ देर और बैठे। मि. हफ़ ने कहा, मैं क्राइस्ट कालेज में हूँ—मिल्टन का कालेज—कभी वहाँ भी आइए, पहले फ़ोन कर लीजियेगा। मैंने प्रो. विली को धन्यवाद दिया और विदा ली। 'This is the first of our meetings in Cambridge. I should expect there will be many more.' चलते समय उन्होंने कहा। कमरे से बाहर ठण्डक थी। प्रो. विली, मि. किंग, मि. हफ़ सभी के व्यवहार से मुझे प्रसन्नता हुई। एक क्षण को भी उन्होंने यह अनुभव न होने दिया कि मैं उनके बीच अजनबी हूँ। शिष्टता का अर्थ उन्होंने खूब समझा है। 'विद्या ददाति विनयं'। मैंने तो बड़े की परिभाषा ही यह बना रक्खी है कि जिसके सामने जाकर आप छोटे न मालूम हों। जो सचमुच बड़े होते हैं वे छोटे को भी अपने धरातल पर उठा लेते हैं। केवल नीच को ही उसमें सुख हो सकता है कि लोग उससे कितने नीचे हैं। हेन, विली, आरबेरी, किंग, हफ़, पीटर आल्ट सबमें जो एक बात मैंने पायी वह यह थी कि किसी में, किसी क्षण अपनी विद्वत्ता, प्रतिष्ठा या पद का

अभिमान नहीं था। उनका गाउन उन्हें हर समय उनके प्रोफ़ेसर होने की याद दिलाता है, फिर भी वे नहीं भूलते कि वे इन्सान पहले हैं और इन्सान प्रोफ़ेसर से बड़ा होता है, सबसे बड़ा होता है—उसके ऊपर केवल भगवान होता है।

सड़क से आ रहा था। तृतीया या चतुर्थी का चाँद किंग्स कालेज के चैपेल के ऊपर दिखा और फिर और कालेजों की छत पर होता काफ़ी देर साथ रहा। आसमान साफ़ था। ऊपर दृष्टि की—सप्त ऋषि एकदम सिर के ऊपर थे—भारत में गर्मियों में सामने दिखायी देते हैं। ध्रुव भी काफ़ी ऊपर था। कभी भूगोल में पढ़ा था कि उत्तरी ध्रुव पर जाओ तो ध्रुव तारा सिर के ऊपर दिखायी देगा।

कमरे में आया तो 10॥ से ऊपर थे। मार्जरी की पुस्तक आज भी ख़त्म नहीं हो सकी। पर अब तो थक गया हूँ। प्रयत्न करूँगा कि कल डॉ. लीविस के पास जाने के पूर्व उसे समाप्त कर सकूँ। उसने 30 को वापस माँगा था। कल 29 होगी।

मंगलवार, 29 अप्रैल, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर तेजी की एक और चिट्ठी मिली। यह उन्होंने लन्दन से मेरी चिट्ठी मिलने पर लिखी थी। इण्डिया हाउस से रिडाइरेक्ट करके यहाँ भेजी गयी थी। यह भी 22 की ही थी। शायद पहले वाली चिट्ठी पोस्ट कर दी थी; जब मेरी लन्दन-वाली चिट्ठी मिली तो उसी दिन उन्होंने दूसरी चिट्ठी भी लिख दी।

साढ़े ग्यारह बजे तक कमरे में ही पढ़ता रहा। आज गैबरडीन का सूट पहले-पहल पहना। इतना बुरा नहीं सिला है जितना मैंने समझा था। 12 बजे डाउनिंग कालेज पहुँच गया। डॉ. लीविस अपने कमरे में नहीं थे। मैं बाहर निकलकर उनके बारे में पूछ-ताछ कर ही रहा था कि किसी ने बताया कि इधर ही आ रहे हैं। कागज़ों का एक पुलिंदा लिये डॉ. लीविस अपने कमरे की तरफ़ आ रहे थे। मैंने उनके विषय में जैसा सुन रक्खा था उनको वैसा ही पाया—क़द के नाटे, सिर गंजा, पीछे के बालों पर कुछ-कुछ सफ़ेदी, हजामत बनी पर ऐसी कि कहीं-कहीं बाल छूट गये हों। उम्र उनकी 50 के क़रीब होगी। आज तो धूप और कुछ गर्मी थी। वे कमीज़ का कालर कोट के कालर पर चढ़ाये थे—कोट पुराना, रफ़ ट्वीड का, आगे बाहों पर और नीचे किनारों पर चमड़े की गोट, कुहनियों पर भी चमड़े के पैबन्द; पतलून खाक़ी, क्रीज़ का कहीं पता नहीं; मोज़ा मोटा, घर का बुना; जूते जिन पर महीनों से पालिश नहीं हुई। मैंने अपना परिचय दिया, नैस्टर का पत्र भी दिया। कहने लगे, आज बहुत अच्छी धूप है, ऐसा दिन फिर शायद ही इंग्लैण्ड में मिले; आइए, बाहर बैठें। हम लोग लान के सामने सीढ़ियों पर बैठ गये। डॉ. लीविस ने झुककर कुछ पत्थर की कंकड़ियाँ उठा लीं और उनको उछालते हुए मुझसे बातें करने लगे। उनके हाथ ऐसे, जैसे खेतिहरों के हों—मैले भी, नाखून भी बढ़े हुए। प्रो. विली का हाथ तो मक्खन-जैसा मुलायम था। कहने लगे, आप विशेषकर ईट्स पर काम करने आये हैं—उसके लिए मि. हेन बहुत उपयुक्त व्यक्ति हैं। आप, सुना, ऑक्सफ़र्ड भी जा रहे हैं; वहाँ मि. बावरा इस विषय पर आपको अच्छी सलाह दे सकेंगे।—मैंने उनसे कहा कि मैं आधुनिक अंग्रेज़ी कविता का भी विशेष अध्ययन करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि मेरी सम्मति में पिछले 25 वर्षों में अंग्रेज़ी काव्य ने कोई विशेष प्रगति नहीं की। ऑडेन में प्रारम्भ में ऐसी प्रतिभा थी कि वे अपना अलग स्थान बना लें, पर वे अमरीका चले गये हैं और अंग्रेज़ी के मूल केन्द्र से दूर हो गये हैं। स्पेण्डर ने मुझे कभी प्रभावित नहीं किया। और किसी का नाम भी जल्दी याद नहीं आता। एडिथ सिटवेल, डॉ. लीविस, मैकनीस ने अपनी-अपनी

दिशा में काम बहुत किया है, पर कोई बड़े कवि के क़द को नहीं पा सका। आज भी जिसे हम बड़ा कवि मान सकते हैं वह टी. एस. ईलियट है, और सच पूछो तो डी. एच. लारेंस के बाद उस पाये की कोई साहित्यिक प्रतिभा अंग्रेज़ी में आयी ही नहीं।

वे कहते गये, मेरी सम्मतियाँ केम्ब्रिज में मान्य नहीं, परन्तु बीस बरस के पश्चात् शायद लोग समझेंगे कि मैं ही ठीक था। मेरे प्रकाशक ने मुझसे 'New Bearings in English Poetry' के नये संस्करण में उसे नवीनतम प्रवृत्तियों तक लाने को कहा था, परन्तु मैंने उसे जवाब दिया कि मुझे सिर्फ़ एक अध्याय इस विषय पर जोड़ना है कि पिछले 25 वर्षों में क्या ऐसे सामाजिक कारण उपस्थित हुए कि उच्चकोटि की कविता नहीं लिखी गयी।

टी. एस. ईलियट की चर्चा चलने पर उन्होंने कहा कि अब मैं ऐसा समझने लगा हूँ कि उनमें कवि से अधिक गद्य-लेखक और समालोचक की प्रतिभा थी। कवि अब वे सम्मानित संस्थाओं के रह गये हैं—कैथलिक धर्म के, अंग्रेज़ी बादशाहत के, ईसाई नैतिकता के। उन्होंने 'Waste Land' के साथ कविता की नयी दिशा दिखायी थी। उनमें कुछ विकृति (distortion) भी थी जिसने उन्हें एक प्रकार की वैयक्तिकता दी; इसके लिए कुछ अंशों में एज़रा पाउण्ड भी उत्तरदायी थे। मेरा विचार है कि ईलियट की इस विकृति का सम्बन्ध उनके व्यक्तिगत जीवन से है। उन्होंने अपनी नाभी के नीचे हाथ धरकर कहा, 'There is something wrong there'. ईलियट की विकृति समय की विकृति नहीं, उनके निजी जीवन की विकृति है। ईलियट का व्यक्तित्व इतना अलग और भिन्न है कि वे अपने सिवा किसी और की बात नहीं समझते। ईलियट को सम्मान पर्याप्त मिला है, और उनके प्रति मुझे धृष्टता नहीं दिखानी चाहिए, पर मुझे दिन-दिन आभासित हो रहा है कि Eliot is a hater of life—इसे कहीं कहने की आवश्यकता नहीं। इसे सिद्ध करने के लिए अभी बहुत-सा मसाला इकट्ठा करना पड़ेगा। काव्य में वचन-प्रवीणता (technical skill) पर अत्यधिक ज़ोर देना, पाण्डित्य का असंयत प्रदर्शन करना, और अब ईसाइयत के उन ऊँचे आदर्शों को सामने रखना जिन पर, दो हज़ार वर्ष के मानवता के प्रयोग, प्रयास और अनुभव ने सिद्ध कर दिया है, नहीं चला जा सकता, जीवन की वास्तविकता के प्रति घृणा प्रकट करना तो है ही। 'We need a poet' कहते-कहते सचमुच ही नीचे खुदी क्यारी से उन्होंने एक मुट्ठी मिट्टी उठा ली, और कहते गये, 'Who takes up the muck and dirt of life and elevates it into a flower or star. Only D. H. Lawrence was capable of it'.

उन्होंने मुझे 'Scrutiny' की फ़ाइलों को पढ़ने का आदेश किया। कहने लगे कि मेरी राय में पिछले बीस वर्षों में सबसे अधिक समझदारी की बातें जो साहित्य के विषय में कही गयी हैं, 'Scrutiny' के पृष्ठों में हैं।—'Poetry Review', भी देखते रहने की राय दी। सृजनात्मक साहित्य युनिवर्सिटी लाइब्रेरी में बहुत है। उसे भी देखना चाहिए।

लगभग 45 मिनट बात करते हो गये थे। उन्हें लंच के लिए जाना था। चलते-चलते उन्होंने कहा, केम्ब्रिज का साहित्यिक और सांस्कृतिक जीवन अनेकानेक दिशाओं में फैला है। जब तक यहाँ मनुष्य निश्चित दिशा की ओर नहीं जाता तब तक वह भटका-भटका फिरता है। ज़िन्दगी छोटी-सी है, प्रतिभा परिमित, समय दौड़ता-भागता। कभी-कभी तो मुझे आश्चर्य होता है कि थोड़े समय और

सीमित साधनों से भी लोग क्या-क्या कर जाते हैं। मुझे आशा है आप अपने केम्ब्रिज-निवास का पूरा लाभ उठायेंगे। व्याख्यानों की सूची देख मेरे कुछ व्याख्यान भी सुनें। मेरे ऊपर बहुत काम हैं, फिर भी जब आप मिलना चाहेंगे, आपके लिए समय निकालूँगा।—मैंने धन्यवाद देकर उनसे विदा ली।

लंच के बाद बाज़ार जाकर लेक्चर-लिस्ट ली; सी. एम. बावरा की एक पुस्तक भी खरीदी 'Inspiration and Poetry', फिर लाइब्रेरी गया। टिकट मिल गया है। कल से लाइब्रेरी में पढ़ने की सुविधा रहेगी, लंच की भी। शाम तक मि. हेन के कमरे में काम करता रहा। लौटकर खाना खाया। मादमोज़ेल वोआज़ेन को लेकर घूमने चला गया—बैक्स पर—डैफ़ोडिल अब मुझनि लगे हैं, नरगिसों में अभी ताज़गी है। अभी दो घण्टे और पढ़ सकता हूँ। अब तो 12 से पहले नींद भी नहीं आती।

बुधवार, 30 अप्रैल, '52

ब्रेकफ़ास्ट करके पढ़ने बैठ गया। आज भी मौसम अच्छा था, धूप निकली थी। सोचा 9 बजे तक मार्जरी की पुस्तक ख़त्म कर लूँगा और दस बजे तक उसे पोस्ट करके 11 से 12 तक मि. हफ़ का व्याख्यान 'The Last Romantics' पर, और 12 से 1 तक डॉ. लीविस का 'Critical Approach to Fiction' पर सुनूँगा। पुस्तक 10॥ पर खत्म हुई। मि. हफ़ का व्याख्यान आर्ट स्कूल में होने को था। ठीक समय पर पहुँच गया, पर किसी कारण वे नहीं आये थे। पुस्तक का पार्सल बना, पोस्ट कर डॉ. लीविस का व्याख्यान सुनने के लिए मिल लेन को चल पड़ा। उनका व्याख्यान 9 नं. के कमरे में होने को था जो उपरली मंज़िल पर है। कमरे में कोई 300 विद्यार्थियों के बैठने की जगह थी। सीटें ऐसी बनायी गयी हैं कि उठ जाती हैं; इससे सफ़ाई करने में आसानी होती होगी। व्याख्यान-दाता के लिए ऊँचे पर खड़े होने की सुविधा है; सामने और बग़ल में मेज़ है जिस पर वह अपनी किताबें रख, खड़े होकर व्याख्यान दे सकता है। रोशनी का भी प्रबन्ध है, अगर आवश्यकता हो तो बटन दबाकर वह अपने काग़ज़ों पर रोशनी कर सकता है। बैठकर व्याख्यान देने की प्रथा यहाँ नहीं मालूम होती है। व्याख्यानदाता के पीछे श्यामपट है जो नीचे-ऊपर किया जा सकता है। एक ओर सफ़ेद फलक भी है जिस पर, आवश्यकता हो तो, मैजिक लैंटर्न से तस्वीरें दिखायी जा सकती हैं। बोर्ड के दूसरी ओर नक्शा वग़ैरह टाँगने का प्रबन्ध है; एक लम्बा प्वाइन्टर भी पास रक्खा है। कमरे में घड़ी लगी है। यहाँ पढ़ाने के घण्टे 45-50 मिनट के नहीं, पूरे साठ मिनट के होते हैं। डॉ. लीविस 12-10 पर आये। विद्यार्थी पहले से आकर बैठे थे; आधी के क़रीब लड़कियाँ थीं। मुझे आश्चर्य हुआ कि उनके क्लास में आने पर कोई खड़ा नहीं हुआ। डॉ. लीविस डायस पर चले गये और उन्होंने अपना व्याख्यान आरम्भ किया। व्याख्यान आरम्भ होने के पश्चात् भी कई लड़के आये और वे चुपचाप बैठ गये। विद्यार्थी अपने मन-मानी जहाँ-तहाँ बैठे थे। एक लड़का बेंच पर दोनों पाँव फैलाये लेटा-सा था, पर डॉ. लीविस ने न उसकी ओर देखा, न उससे कुछ कहा। व्याख्यान उनका लिखित था, प्राय: वे उसे पढ़ रहे थे; बीच-बीच में पुस्तकों से उद्धरण भी पढ़-पढ़कर सुनाते जाते थे। उपन्यास के विषय में मुझे विशेष रुचि नहीं, फिर भी डॉ. लीविस के व्याख्यान की विधि जानने की उत्सुकता थी। व्याख्यान को रोचक मैं नहीं कहूँगा। परीक्षा समीप है, इस कारण सम्भवत: अब वही बातें कहने का समय है जो

परीक्षोपयोगी हों। डॉ. लीविस की दृष्टि बराबर अपने परचे पर थी। जब एक बजने को 15 मिनट रह गये तब एलार्म जैसी घण्टी बजी; शायद यह संकेत इसलिए किया जाता है कि व्याख्याता यह समझ ले कि अब उसे अपनी बात जल्द खत्म कर देनी चाहिए। दस मिनट बाद फिर घण्टी बजी। डॉ. लीविस जल्दी से परिणाम पर पहुँचे और उन्होंने अपना व्याख्यान समाप्त कर दिया। पहले वे बाहर निकले, बाद को और विद्यार्थी। उनके जाते समय भी कोई खड़ा नहीं हुआ।

मेरी नज़र मेज़ों पर गयी। विद्यार्थियों ने कहीं अपना नाम, कहीं किसी और का, कहीं कोई शक्ल खींच रक्खी थी। विद्यार्थी सब जगह ऐसा करते हैं। कोई मनोवैज्ञानिक कारण होगा।

व्याख्यान से उठकर पोस्ट आफ़िस गया। मार्जरी को किताब भेजी। लंच के बाद मि. हेन के कमरे में पढ़ने चला गया। वहाँ छः बजे तक रहा। बीच में मि. हेन आये और उन्होंने पूछा, मेरा काम कैसा चल रहा है। जिन-जिन पुस्तकों से ईट्स पर भारतीय प्रभाव के संकेत मिल सकते हैं उनकी सूची बना रहा हूँ। मि. हेन का कहना है कि ये किताबें युनिवर्सिटी लाइब्रेरी में मिल जायेंगी। जिस विषय पर काम कर रहा हूँ उस पर सामग्री तीन-चार स्थानों पर मिलनी चाहिए—डबलिन में मिसेज़ ईट्स के पास, थियोसोफ़िकल सोसाइटी, अडयार, मद्रास में, शान्ति निकेतन में, यदि टैगोर ने ईट्स के पत्रों को सुरक्षित रक्खा हो ओर थियोसोफ़िकल सोसाइटी, लन्दन, में। मुझे पता नहीं कि लन्दन में अब भी यह सोसाइटी चल रही है या नहीं। लन्दन की थियोसोफ़िकल सोसाइटी का इतिहास बिना जाने ईट्स पर भारतीय दर्शन के प्रभाव का अध्ययन करना कठिन होगा। मद्रास को पत्र लिखने की सलाह मि. हेन ने दी है। वहीं सोसाइटी का हेडक्वार्टर है; वहीं से लन्दन की सोसाइटी का भी पता लगेगा।

आज मि. नैस्टर का पत्र मिला। उन्होंने बी. राजन का पता भेज दिया है। उनको कल पत्र लिखूँगा। ईट्स पर नैस्टर ने एक छोटी लेकिन महत्त्वपूर्ण पुस्तक भी भेजी है। उनके एहसानों से तो दबा जा रहा हूँ। अपनी सहृदयता छोड़ और क्या है जिसके कारण वे मेरा इतना ध्यान रखते हैं। दो-तीन दिन पहले ईट्स के विषय में टाइम्स के लिटरेरी सप्लीमेंट की एक कटिंग उन्होंने भेजी थी। उन्हें 'The House of Wine' की एक प्रति भेजनी है।

8-15 से 'Impression of American Science' पर केम्ब्रिज के तीन प्रोफ़ेसरों का व्याख्यान था। केम्ब्रिज के प्रोफ़ेसरों की राय थी कि अमरीका में किसी प्रकार का अध्ययन उस विषय की महत्ता को स्वीकार करके नहीं किया जाता। Knowledge for the sake of knowledge अमरीका नहीं समझता। यही कारण है कि उनकी युनिवर्सिटी में Hotel Management भी एक विषय है। वहाँ ऐसे बहुत-से विषय हैं जिनका अध्ययन करने का विचार योरोप या इंग्लैण्ड की युनिवर्सिटियों में उपहासास्पद समझा जायेगा। योरोपियन युनिवर्सिटियों का उद्देश्य मानव को सुसंस्कृत बनाना रहा है, मानव को जीवन के व्यवसायों में सफल बनाने का नहीं। सुसंस्कृत व्यक्ति व्यवसाय में भी सफल होता है, यह और बात है। दूसरी ओर अमरीका सफल व्यवसायी तो बना देता है—समाज में जो काम आप करेंगे वह मशीन की परिपूर्णता से करेंगे—पर इस सफलता के कारण आप अच्छे इन्सान भी होंगे यह निश्चित नहीं; इसकी प्रत्याशा की भी नहीं जाती; इसकी जरूरत भी नहीं समझी जाती। इंग्लैण्डवाले अमरीका को जड़वादी कहते हैं। भारतीयों की दृष्टि में इंग्लैण्ड वाले भी कम जड़वादी नहीं हैं। परन्तु योरोप को

ग्रीस और रोम के ज्ञान और ईसाइयत की शिक्षा-दीक्षा तथा परम्परा ने जड़-वादिता में पूरी तरह पगने से बचा लिया है। अमरीका के पास कोई ऐसी परम्परा नहीं। अमरीका को ऊँचे अर्थों में जीने के लिए योरोप से अपनी सांस्कृतिक शृंखला जुड़ी रखनी चाहिए।

व्याख्यान हो ही रहा था कि गर्जन-तर्जन के साथ वर्षा होने लगी। चला था तो मौसम साफ़ था, पर इंग्लैण्ड में मौसम का क्या भरोसा। जल्दी-जल्दी भागकर कमरे पहुँचा। खिड़की खुली छोड़ गया था। मेज़ पर सारे काग़ज़ भीगे थे। कापियाँ और किताबें भी गीली हो चुकी थीं।

यह बात मुझसे डॉ. लीविस ने भी कही थी कि इंग्लैण्ड का बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन केम्ब्रिज और ऑक्सफ़र्ड में केन्द्रित है। अमरीका में हज़ार युनिवर्सिटियाँ हैं—इनमें अधिकतर व्यापारियों द्वारा निजी मान्यताओं और आवश्यकताओं के आधार पर चलायी जाती हैं। सरकार की ओर से इन पर कोई नियन्त्रण नहीं है। इंग्लैण्ड में कोई किसी कालेज या युनिवर्सिटी को कितना भी धन दे दे, वह उसकी शिक्षा-नीति में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। शिक्षा की नीति एक ऐसे केन्द्र से परिचालित होती है जो मानवता के उच्च मूल्यों को सदा सामने रखता है। केम्ब्रिज या ऑक्सफ़र्ड ऐसी कोई चीज़ अमरीका में नहीं है।

मज़ाक-मज़ाक में एक प्रोफ़ेसर ने यह कहा, 'America will be a nice place to live if there was paper-shortage and less of electricity.' कोई भी बात वहाँ फ़ौरन अख़बार में छप जाती है। वे लोग किसी चीज़ को निजी (private) मानने को तैयार नहीं। मियाँ-बीवी के घरेलू झगड़े से लेकर ट्रूमन के सार्वजनिक भाषण तक सब उनके अख़बारों में स्थान पा जाते हैं। उसी प्रोफ़ेसर ने बताया कि इतवार के दिन जब वह अखबार लेकर घर आया तो उसकी बीवी ने कहा, 'Oh, you have purchased all the papers of America it seems.' 'No, my dear, it is only one paper !' उसने उत्तर दिया। बिजली कम होती तो वे ब्राडकास्ट भी कम करते। अमरीका में सैकड़ों ब्राडकास्टिंग स्टेशन हैं। The superlative degree is the most sought thing and most easily found. The first, the biggest, the highest, you meet everywhere in conversation and print.' उसने कुछ गम्भीर होकर कहा कि इसका परिणाम अच्छा भी हुआ है। उनके पास बहुत-सी संस्थाएँ ऐसी हैं जो परिपूर्णता की सीमा पर पहुँच गयी हैं और संसार में अद्वितीय हैं! मैं यही चाहता था कि अमरीकी थोड़ा कम self-conscious होते और जो वे स्वयं अपने विषय में कहते हैं उसे दूसरों को कहने का मौक़ा देते।

गुरुवार, 1 मई, '52

सुबह सेण्ट्रल लाइब्रेरी चला गया। वहाँ दो बजे तक पत्र-पत्रिकाएँ देखता रहा।

लंच के बाद सेण्ट कैथरीन्स कालेज गया। वहाँ 6 बजे तक पढ़ता रहा। जिस विषय को मैंने लिया है उस पर रोज़-रोज़ इतनी पुस्तकों और संस्थाओं का पता लगता है कि समझ में नहीं आता कि इतने कम समय में उनको पढ़ या उनसे परिचय प्राप्त कर सकूँगा या नहीं। लन्दन की थियोसोफ़िकल सोसाइटी का पता लगाना होगा, डबलिन की भी। योरोप के जादू-टोने के इतिहास पर भी पुस्तकें खोजनी होंगी। भारतीय दर्शन सम्बन्धी किन पुस्तकों का ईट्स पर प्रभाव पड़ा, इस तक अभी नहीं पहुँचा हूँ। एक बार पुस्तकों का पता लग जाये तो यहाँ के पुस्तकालयों में

उन्हें पाना कठिन न होगा। जिन पुस्तकों को भारत में भी देखा या पढ़ा जा सकेगा उन पर यहाँ समय लगाना व्यर्थ होगा।

छः बजे वापस आया। खाना खाया। थका था, ऊपर कमरे में जाकर बैठा तो बच्चों की बहुत याद आने लगी। पता नहीं सब कैसे हैं। पिछली चिट्ठी 22 अप्रैल की थी। अजित को ट्रिनिटी कालेज की तस्वीर का कार्ड भेजा। छोटी-सी चिट्ठी उस पर लिखी। पढ़ तो वह नहीं सकेगा और न मेरे भाव को ही समझेगा, पर मेरा समाचार घर पहुँच जायेगा। तस्वीर तो सभी लोग देखेंगे।

आज आर्ट सिनेमा में 'ऑरफ़ी' नाम की एक तस्वीर थी। टिकट पहले से ले रक्खा था। यहाँ सिनेमा 81 से शुरू होता है। रास्ते में चिट्ठी पोस्ट करता सिनेमा चला गया। पहले 'बैले' नृत्य पर एक फ़िल्म दिखायी गयी फिर 'ऑरफ़ी'; यह फ़िल्म यूनान की दन्तकथा ऑरफ़ियस और युरिडिस के आधार पर तैयार की गयी है—उसका आधुनिक रूप ! होमर ने लिखा है कि ट्राय की दीवारें ऑरफ़ियस के संगीत से उठ खड़ी हुई थीं। उसकी पत्नी युरिडिसी मर गयी तो अपने संगीत के बल पर उसने यमराज को भी प्रसन्न कर लिया और उसने यमलोक से युरिडिसी को लौटा देने की बात मान ली। शर्त यह थी कि ऑरफ़ियस रास्ते में उसे न देखेगा; देखते ही वह फिर मर जायेगी। परन्तु यमलोक के द्वार पर ऑरफ़ियस ने सोचा कि कितने श्रम से तो मैं यहाँ आया, अब यहाँ से बाहर जा रहा हूँ, पता नहीं युरिडिसी पीछे आ भी रही है कि नहीं, एक बार ज़रा-सा मुड़कर झाँक तो लूँ। ऑरफ़ियस की दृष्टि घूमते ही युरिडिसी जो पीछे-पीछे आ रही थी पुनः मृत होकर गिर पड़ी। कहते हैं इस पर ऑरफ़ियस को बड़ा दुःख हुआ। उसने जंगल में बैठकर एक ऐसा भयंकर राग छेड़ा कि जंगल के दरिन्दों ने निकलकर उसे चीर-फाड़ डाला। तस्वीर का कथोपकथन फ्रेंच में था, इस कारण बहुत-सा समझ में नहीं आया। सारांश की बातें कभी-कभी नीचे अंग्रेज़ी में लिखी होती थीं, पर उन्हें पढ़ने लगो तो तस्वीर का मज़ा चला जाता था। थोड़ी देर बाद मैंने अंग्रेज़ी पढ़ना बन्द कर दिया और इस प्रकार देखने लगा जैसे यह कोई मौन-पट (मूवी) हो। Extraordinary picture.

लौटकर आया हूँ। 11 बज चुके हैं।

पत्रिकाओं में 'Poetry Review' का आज मैंने विशेष अध्ययन किया, लीविस ने सुझाया था। पाण्डित्य-प्रदर्शन की कविता का युग अब अंग्रेज़ी में खत्म-सा हो रहा है। या उसके अनुयायी अब कुछ ही लोग रह गये हैं। इसे विशेषतया टी. एस. ईलियट ने आरम्भ किया था— प्रेरक शायद एज़रा पाउण्ड थे। मुझे इस अंक में कई ऐसी कविताएँ मिलीं जो सरल, बोधगम्य और सरस थीं, पर गुट्ठल-सी, यानी तेज़ी की उनमें कमी थी। एक आलोचना में जे. सी. हाल की पंक्तियों से बहुत प्रभावित हुआ। उनका काव्य-संग्रह 'The Summer Dance' देखना चाहूँगा। 'Poems of 1951' (Penguin Series) भी ख़रीदना चाहूँगा। उससे अंग्रेज़ी काव्य के नवीनतम स्वरों का पता चलेगा।

शुक्रवार, 2 मई, '52

सुबह मार्जरी, नैस्टर और मि. एस. सी. देब को पत्र लिखे। फिर सेण्ट्रल लाइब्रेरी गया। वहाँ दो बजे तक पत्र-पत्रिकाएँ देखता रहा।

शायद 'The World Review' में भारत के विषय में एक लेख पढ़ा। कांग्रेस को अन्त में कम्यूनिस्ट पार्टी का सामना करना पड़ेगा। कांग्रेस की कुछ ग़लतियों का ब्योरा इस प्रकार था—1. कांग्रेस ने, जैसा कि उसने वादा किया था, भाषा के

आधार पर प्रान्तों का निर्माण नहीं किया । 2. बिना लोकमत तैयार हुए हिन्दी देश-भर की राष्ट्रभाषा बना दी । 3. दक्षिण की दरिद्रता दूर करने का कोई उपाय नहीं किया । 4. दक्षिण में ब्राह्मण-अब्राह्मण समस्या का कोई हल नहीं निकाला । 5. मद्रास में एक ऐसे दल को मन्त्रिमण्डल बनाने का कार्य सौंपा जिसमें जनता का विश्वास नहीं था । 6. कांग्रेस ने अंग्रेज़ों के समय से चली आती नौकरशाही पर पूरा भरोसा कर लिया । इनमें से चार तो केवल दक्षिण से सम्बन्ध रखती थीं । सारांश कि कांग्रेस की नीति से दक्षिण में असन्तोष है; इसी कारण उसकी बड़ी हारें दक्षिण में हुई हैं । लेख के विचारों से पूरी तरह सहमत नहीं हूँ । इनके अतिरिक्त भी कांग्रेस की बहुत-सी जानी-अनजानी भूलें हैं । कांग्रेस वस्तुतः सफलता के दम्भ से पीड़ित है । उसकी दवा चुनाव के हार में थी । पर वह जीत गयी, यह उसके लिए बुरा हुआ । फिर उसने अपने आदर्शों को खो दिया है । उसके आदर्शों ने सरकारी नीति से समझौता कर लिया है । कांग्रेस को सरकारी नीति की आलोचक, निर्णायक और विधायक होना चाहिए था । वह उसकी हाँ में हाँ मिलानेवाली हो गयी है । जो कांग्रेस का प्रेसीडेण्ट है वही सरकार का प्रधान मन्त्री । आश्चर्य तो यह है कि विश्व-मान्य नेहरू भी इस विपर्यय को नहीं देख रहे हैं । नेहरूजी ने अपने जीवन में बड़े-बड़े काम किये हैं । यदि वे इस समय की पतनशील कांग्रेस को ऊपर उठा सकेंगे तो यह उनके जीवन की सबसे बड़ी सफलता मानी जायेगी । कांग्रेस नेहरू केवल और प्रभाव को एक चुनौती है ।

भारत की भुखमरी पर एक और लेख कहीं पढ़ा । अपने देश का समाचार पढ़कर सिर नीचा हो जाता है । अभी किसानों की ग़रीबी दूर करने के लिए कितना काम होना है ! सबसे बड़ा काम उन्हें नयी मान्यताएँ देना है । यह काम शिक्षकों, लेखकों, कवियों, नाट्यकारों का है । इसके लिए बिजली, ट्रैक्टर, पम्प से पहले हमें नये स्वप्नों, नयी आशाओं, नयी सम्भावनाओं में विश्वास जगाना है । शिक्षा तो जल्दी नहीं फैलेगी—ऐसी शिक्षा जिससे वे नये विचार ग्रहण कर सकें । फ़िल्म और नाटकों के द्वारा उनकी आँखों के सामने नये संसार, नये जीवन, नये भविष्य का चित्र खींचना चाहिए—परन्तु उन्हें परियों की कहानी बनाकर नहीं, मनुष्य के लिए सम्भव बनाकर । हमें कवि चाहिए जो छाया-प्रकाश में बोल सकें । हमें कवि चाहिए जिनके भाव रूप धारण कर आँखों में समा सकें, हृदय में बैठ सकें । हमें चाहिए चित्रपट के कवि, रंगमंच के गायक । भारत में कल के पहले कला को अपना काम करना है । भारत ने बाहर को बदलने के लिए सदा भीतर से कार्यारम्भ किया है । हमें अपने देश की परम्परा समझनी होगी । अन्तर सुधारने पर ही बाहर सुधार हो सकेगा । भारत में अन्तर में कहीं कुछ ग़लत है, उसे ठीक करना होगा, बदलना होगा, सबसे पहले ।

'Listener' भी देखा । पिछले नम्बर में लियोनार्डो डा. विंची पर एक सुन्दर लेख था । किसी दिन उसे निकलवाकर पढ़ूँगा । आजकल उसकी 5वीं जन्मशती मनायी जा रही है । लन्दन में उसके चित्रों की एक बड़ी प्रदर्शनी हो रही है । यदि इस तरफ़ जाना हुआ तो उसे देखूँगा । उसकी बहुमुखी प्रतिभा ने मुझे हमेशा आकर्षित किया है । आधुनिक फ्रेंच दर्शन—Existentialism—पर भी एक लेख बहुत अच्छा था ।

लाइब्रेरी से लौटकर लंच लिया । मार्जरी द्वारा भेजा गया किताबों का एक बड़ा पार्सल मेरी प्रतीक्षा कर रहा था । मार्जरी ने 8-10 नयी किताबें भेज दी हैं—आधुनिक कविता और समालोचना की ।

3 बजे के क़रीब सेण्ट कैथरीन्स कालेज गया—मि. हेन के कमरे में। रास्ते में एक दूकान से अजित के लिए एक पुस्तक भेजी—Visit to a Zoo—जन्मदिन की भेंट। 18 को है। ठीक समय से मिल जायेगी।

मि. हेन के लिए 'Literary Supplement' से ईट्स की bibliography के रिव्यू की कटिंग ले गया था। उन्हें दी। मि. पीटर आल्ट भी थोड़ी देर को आ गये थे। पूछ रहे थे, आयरलैण्ड कब जा रहे हैं?—जाने पर उन्होंने कई परिचय-पत्र देने को कहा है। जुलाई के पश्चात् शायद वे स्वयं भी जायें। उन्होंने बताया कि लन्दन की तो नहीं कह सकते, पर डबलिन की थियोसोफ़िकल सोसाइटी के कुछ बूढ़े लोग अब भी मौजूद हैं जो उस संस्था से ईट्स के सम्बन्ध को अच्छी तरह जानते थे। पर इन सबके विषय में मिसेज़ ईट्स सबसे अधिक ज्ञान रखती हैं।

छह बजे 'डिग' लौटा। खाना खाया। मौसम सुहाना था। मादमोज़ेल वोआज़ेन के साथ घूमने चला गया। एक घण्टे में वापस आया। अभी दो घण्टे पढ़ूँगा।

शनिवार, 3 मई, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ। तेजी के पत्र की प्रतीक्षा थी। आज पत्र नहीं मिला तो कल इतवार है, डाक नहीं आयेगी। मैं तो इस प्रकार पत्र लिख रहा हूँ कि उन्हें हर तीसरे दिन यहाँ का कोई न कोई समाचार मिल जाये। राजन और सुशील को जो पत्र मिले हैं, वे भी उन्हें देखने को मिल गये होंगे। सप्ताह के बीच में बच्चों के लिए तस्वीरी कार्ड भी भेज देता हूँ। तेजी की ओर से पत्रों में अनियमितता होगी, यह मुझे मालूम है। नियमित रूप से पत्र लिखना क्या, कोई काम करना उनके लिए मुश्किल है। मुझे अपना नियम निभाना चाहिए। कम-से-कम मेरी चिन्ता तो उन्हें न होगी, उनकी चिन्ता मुझे भले ही रहे।

आज सुबह से बादल घिरे हैं; धीरे-धीरे वर्षा भी हो रही है। ज़ोर की बारिश अभी तक तो यहाँ देखी नहीं। गरज-तरज ज़्यादा होती है, पर पानी के नाम बूँदा-बाँदी। जो गरजते हैं वे बरसते नहीं—यहीं के लिए लागू है। अपने देश में तो गरजते भी हैं बादल और बरसते भी। ऊपरी तड़क-भड़क ज़्यादा—पर भीतरी तत्त्व कम—पश्चिम की सभ्यता ने इन बादलों से सीखा है, या इन बादलों ने पश्चिमी सभ्यता से। बाहर का दिखावा अच्छा तो लगता है, कुछ देर के लिए आँख और मन को खींच लेता है, पर थोड़ी देर बाद भीतर कुछ खोखला होने की आशंका होने लगती है। फिर भी यह आवश्यक है कि जो मैं यहाँ देखूँ उसे खुले हृदय से, सहानुभूति के साथ। पश्चिम वाले अगर यह सहानुभूति छोड़ दें, जैसा कि उन्होंने कभी-कभी किया है, तो हमारे देश में सिवा ऊपरी कूड़ा-करकट के और क्या, उन्हें देखने को मिलेगा। मिस मेयो ने क्या किया था? आलोचनात्मक दृष्टि तो रखनी चाहिए, पर सहानुभूति के साथ। अन्धविश्वासी और अतिसन्देही, दोनों सच्चाई को देखने में असमर्थ रहते हैं। अन्धविश्वासी सब अच्छा ही अच्छा देखता है, अति-सन्देही सब बुरा ही बुरा; और कहीं भी न सब अच्छा है न सब बुरा। दोनों के बीच कहीं सन्तुलन है—देखने को समदृष्टि चाहिए। समदृष्टिवाला ही जग और जीवन के सत्य को देखता है।

पुस्तकालय चला गया। दैनिक पत्रों को देखने के पश्चात् ईट्स की कविताएँ पढ़ता रहा। नियमित रूप से 25-30 पृष्ठ रोज़ पढ़कर कई पारायण करना चाहता हूँ। अच्छी कविता अपना अर्थ धीरे-धीरे खोलती है। नाटकों को फिर से पढ़ना चाहता हूँ। नाटकों का संग्रह तो निकल गया है। ईट्स के गद्य का कोई

सम्पूर्ण संग्रह अभी तक नहीं निकला। कई पुस्तकों से उसे देखना होगा। जितना ही ईट्स की कविताएँ पढ़ता हूँ उतना ही मुझे लगता है कि Yeats is so un-English, उधर ईलियट की रचनाओं में अपनी इतनी विशेषता है कि वह सम्पूर्ण अंग्रेज़ी काव्य से उन्हें अलग कर देती है। Eliot is also much un-English. अंग्रेज़ी काव्य ने पिछले 50 वर्षों में जिन दो महाकवियों को जन्म दिया, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि उनमें से कोई विशुद्ध अंग्रेज़ नहीं। ईट्स आइरिश थे और अंग्रेज़ उनको विदेशी समझते थे। ईलियट अमरीकन हैं; कैथलिक चर्च से अपने को एक करके उन्होंने साधारण अंग्रेज़ की सहानुभूति से अपने को वंचित कर लिया है। फिर उनमें सदा से रहा है, और अब तो उसे यहाँ के समालोचक भी देख रहे हैं—An American sense of superiority ईट्स की महानता को स्वीकार करते हुए भी अंग्रेज़ ने उनके प्रभाव को कभी नहीं माना। उनके सम्बन्ध में प्राय: यह लिखा गया है कि उनका अनुयायी कोई नहीं हुआ। और अंग्रेज़ी साहित्य के इतिहास में महत्ता सदा उसको दी गयी है जिसने साहित्य की प्रवृत्तियों पर अपनी कोई छाप छोड़ी है। ईलियट का अनुकरण बहुत किया गया, पर ईलियट का स्वागत अंग्रेज़ जनता ने कभी खुले हृदय से नहीं किया। उनके अनुयायी भी शायद इसी कारण जनता की सहानुभूति खोते रहे। और अब तो ईलियट के विरुद्ध स्पष्ट आवाज़ें उठने लगी हैं। मेरी राय में इस समय अंग्रेज़ी साहित्य एक ऐसे कवि की प्रतीक्षा में है जो विशुद्ध अंग्रेज़ हो, अंग्रेज़ी परम्परा से सम्बद्ध हो, जिसे अंग्रेज़ियत का अभिमान हो, और जो इंग्लैण्ड की आशाकांक्षाओं, स्वप्नों, आदर्शों और आशंकाओं को वाणी दे सके। इंग्लैण्ड का बौद्धिक वर्ग गम्भीरतापूर्वक यह सोच रहा है कि रूस और अमरीका उसकी समस्याओं का हल नहीं पा सकेंगे। इंग्लैण्ड को अपनी परम्परा, अपने इतिहास और अपने स्वाभाविक और सांस्कृतिक झुकावों के अनुकूल ही कोई मार्ग निकालना होगा, जो अपने में अद्वितीय होकर भी उसे भविष्य में उन्नति की ओर ले जा सके। अंग्रेज़ का धर्म, कर्म, अर्थ है—'स्व-देशियत'। उसे पहचानने को अंग्रेज़ के पास एक मर्मेन्द्रिय (6th sense) है। जो उसका अपना नहीं, उसे तुम स्वीकार नहीं करा सकते। सारी दुनिया के दार्शनिकों का तर्क उसके सामने रख दो। वह उसकी ओर फूटी आँखों भी नहीं देखेगा। अपने रक्त को वह पहचानता है। उसके सामने इसकी प्रतिक्रिया चुम्बक के समान होती है। Modern English poetry left the Englishman cold. It was enough to prove that it lacked the essential English element. डॉ. लीविस के यही शब्द थे कि पिछले पच्चीस वर्षों में अंग्रेज़ी काव्य में There has been written nothing which the Englishman would like to treasure. और ऐसा क्यों हुआ? आलोचकों के सामने यह सबसे बड़ा प्रश्न है।

पिछले 'लिसनर' में लियोनार्डो डा विंची पर लेख भी देखा। लियोनार्डो अपनी अथक जिज्ञासा के फलस्वरूप दो परिणामों पर पहुँचा—प्रकृति शक्तिमयी है और रहस्यमयी। कलाकारी प्रवृत्ति होने के कारण इन दोनों के लिए उसने दो रूपक खोजे—रहस्य के लिए मुसकान, शक्ति के लिए जलप्लावन। अपने सर्वप्रसिद्ध चित्र 'मोनालीसा' में उसने प्रकृति के इस रहस्य को नारी की मायावी मुसकान में मूर्त किया। 'मोनालीसा' इस प्रकार मुसकरा रही है जैसे उसे उस सब रहस्य का पता है जो हमें व्यग्र और विचलित किये हुए है। हिन्दी में किसी ने 'मोनालीसा' पर एक कविता लिखी थी। उस लेखक अथवा लेखिका ने भी सर्वप्रथम 'मोनालीसा' की

मायावी मुसकान की ओर संकेत किया था। जैसे वह कहती है, जो तुम्हारे लिए प्रश्न है वह मेरे लिए उत्तर है; जो तुम्हारे लिए समस्या है वह मेरे लिये हल है। मैं जानती हूँ, पर बताऊँगी नहीं!—वह कितनी शान्त है, पर कितनी नटखट! रहस्य का उद्‌घाटन उसके अधरों पर है; वह मुँह खोल दे तो एक पर्दा-सा उठ जाये और सारे भेद एकदम से खुल जायें। वह मुँह खोलने ही वाली है। इतनी सरल-कोमल हमारी बेचैनी कैसे देखती रहेगी। पर उसका मुँह नहीं खुलता, उसकी जीभ नहीं डोलती—उसका भेद नहीं मिलता। थोड़ी देर तक ग़ौर से देखो तो लगता है कि इस सहज-मौन मुसकान के पीछे वह कैसे कठिन पाषाण का हृदय लिये बैठी है। कितनी क्रूर है। उसके इस कठोरता और निर्ममता के तत्त्व से लियोनार्डो अपरिचित नहीं था। मोनालीसा मांसल है, ठस है, छूने से चिकनी, पर अगर दबाना चाहो तो संगमरमर-सी कठोर। वह दुबली-पतली, दीपक की लौ-सी नहीं—किसी हिन्दी कवि की पंक्ति याद आ रही है—नरेन्द्र की तो नहीं है। वह मृदूनि कुसुमादपि है, वज्रादपि कठोराणि भी। और उसके वस्त्रों को गहरा रंग देकर—जो काले से मिलता-जुलता है—जैसे लियोनार्डो ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह बहकावे-भुलावे में आनेवाली नहीं। उसने जो निर्णय कर लिया है, कर लिया है,

सूरदास की कारी कामरि पै
चढ़त न दूजौ रंग···

और चित्र भर में मुसकान ही केन्द्रस्थल है। घूम-फिरकर दृष्टि उसके अधर कोरों पर ही पहुँच जाती है। लियोनार्डो ने चित्र को इतना साधारण बनाया है कि और कहीं किसी तरह की बारीकी देखने-पहचानने को है ही नहीं। वह अपनी मुख-मुद्रा से सैकड़ों प्रश्नों को आमन्त्रित करती है। उत्तर उसके पास एक है—मुसकान,

एक उत्तर सर्व प्रश्नों का!—महा सन्ताप!

यह तो छेड़नेवाली मुसकान है—'That teases us out of eternity', कीट्स की पंक्ति है Grecian Urn की।

पर एक मुसकान की मुझे और याद है—शान्तिदायिनी! पिछली दिसम्बर में दिल्ली गया था। राष्ट्रपति भवन के राष्ट्रीय संग्रहालय में हंगेरियन चित्रकार सास ब्रूनर के तैलचित्रों की प्रदर्शनी थी। उसकी लड़की एलिज़ाबेथ ब्रूनर मेरे साथ थी। चित्रों को देख हम लोग बुद्ध की खड़ी प्रतिमा के सामने आये। ऊपर से प्रकाश पड़ने का प्रबन्ध कर दिया गया था। उस प्रतिमा के अधरों पर भी एक मुसकान है। पर वह छेड़नेवाली नहीं है—शान्तिदायिनी है। एली तो मूर्ति देखते ही देखते ध्यान-मग्न हो गयी। मैं भी मूर्तिवत् खड़ा रहा। थोड़ी देर में मैंने पूछा, 'Eli, where are you?' 'I am drinking peace which I need so much.' उसने उत्तर दिया। कुछ मास पूर्व ही एली की माता का स्वर्गवास हो चुका था। बुद्ध की प्रतिमा कहती है, 'मानवो, मैंने रहस्य पा लिया है, पाना कठिन था, पर मैंने उसे सबके लिए सहज कर दिया है, आओ, मैं तुम्हें समझाता हूँ, धैर्य न छोड़ो, मैं तुम्हें सब बन्धनों से मुक्त कर दूँगा।' बुद्ध की प्रतिमा से इतनी शान्ति बरसती है कि थोड़ी देर के बाद ऐसी अनुभूति होती है कि क्या मैं जितने का अधिकारी हूँ उससे अधिक तो नहीं ले रहा हूँ? मैं शर्त लगाता हूँ कि यदि आप सहृदय हैं तो अधिक समय तक आप बुद्ध के अधरों पर अपनी दृष्टि नहीं रख सकेंगे। या तो आपकी आँखें मुँद जायेंगी या श्रद्धा से झुकती वे बुद्ध के चरणों में आ टिकेंगी। मोनालीसा तो नज़रों को हटने ही नहीं देती। उसे दर्शक की परेशानी में जैसे मज़ा आता है। मोनालीसा की मुसकान पच्छिम की मुसकान है, बुद्ध की मुसकान पूरब

की। मुझे कभी मोनालीसा और बुद्ध की प्रतिमा के चित्र मिल गये तो अपनी स्टडी में उन्हें टाँग दूँगा। एक के नीचे लिख दूँगा पूर्व, दूसरे के नीचे, पश्चिम।

शक्ति के लिए जो रूपक लियोनार्डो ने खोजा वह था—जलप्लावन, बहता पानी, ऊँचाई से गिरता हुआ झरना, चट्टानों पर टकराती हुई तरंगें। कितने वेग, कितने आवेश, कितनी शक्ति से निर्झर से पानी गिरता है; तरंगें अगणित बार आकर चट्टानों पर अपना ज़ोर आज़माती हैं, और वह शक्ति जो उनके पीछे है कभी क्षीण होती नहीं दिखती। लियोनार्डो बराबर ऐसी तरंगों और झरनों के जीवन्त, आकर्षक और भयावने चित्र खींचता रहता था। लियोनार्डो को शायद पता नहीं लग सका कि इस शक्ति का उद्‌गम कहाँ है। किसे पता है?

आधुनिक काव्य में गतिरोध पर भी एक लेख देखा। डॉ. लीविस ने अपनी 45 मिनट की बातचीत में जो कुछ बतलाया था उससे अधिक उसमें नहीं था। हमारे यहाँ श्री उदयशंकर भट्ट ने भी कुछ ऐसी चर्चा चलायी थी। यह गतिरोध, मेरा ख्याल है, सब जगह है। संसार की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं ने मनुष्य का इतना ध्यान खींच रक्खा है कि साहित्य की ओर देखने की उसे फुर्सत ही नहीं। पिछले युगों में साहित्य—उच्चकोटि का साहित्य—विशुद्ध साहित्य ही माना जाता था जो सब समय सामान्य मूल्य रख सके। इस प्रकार का साहित्य स्वभावतया जीवन के समकालीन क्रिया-क्षेत्रों से दूर जा पड़ता है। साहित्य को जनता के सजीव सम्पर्क में लाने के लिए उन विषयों से सम्बन्ध स्थापित करना पड़ेगा जो जनता के समीप हैं। अंग्रेज़ी में एक कहावत है कि अगर पहाड़ मुहम्मद के पास नहीं आता तो मुहम्मद को पहाड़ के पास जाना चाहिए। पहाड़ की जगह खाई रखना चाहूँगा। साहित्य को नई खाइयों में झाँकना-झूकना है जिनमें मानवता अपने जीवन की समस्याओं का हल खोजती हुई भटक रही है। परम्पराएँ साथ नहीं दे रही हैं। साहित्य के लिए यह नया काम है। वह बहुत समय तक आकाशगामी रहा है। कभी संसार के पास समय था कि वह आकाश में उसकी गति का अनुसरण करे। अब नहीं है। साहित्य को नीचे झुकना है, पर झुककर गिरना नहीं है। झुककर गिरने की सम्भावना हो, गिरना ही निश्चय हो, तो मैं उसको ऊपर की ओर ही बढ़ने की सलाह दूँगा। कोई आदर्श तो रहेगा जिसकी ओर मानवता शायद कभी देखे, उठे। साहित्य को जीवन की खाइयों में झुककर फिर ऊपर ही उठना है। यह नीचे बहनेवाला पानी नहीं। यह भाप है—इसे कलाकार के जीवन का ताप मिलता है, यह स्थूल को सूक्ष्म बनाता है—गति स्थूल से सूक्ष्म की ओर होती है। यह उठता है, उठाता है। आधुनिक जीवन साहित्य को चुनौती है—साहित्य की शक्ति को। यह है जीवन, यह है उसकी समस्या; बोलो, इसको हल करने में तुम हाथ बँटा सकोगे? जो शाश्वत के गीत गा सकता है, वह समय के गीत नहीं गा सकता; जो मन-भर उठा सकता है वह छटाँक-भर नहीं उठा सकता! इससे अधिक निरर्थक बात भी कही जा सकती है? साहित्य को अपनी व्यापकता सिद्ध करने का आज अवसर है। वह चूकेगा नहीं। अगर चूकेगा तो साहित्य अलग जायेगा, समाज अलग। साहित्य समाज की धड़कनों को खोकर निर्जीव, निष्प्राण, नकली हो जायेगा और समाज साहित्य की प्रेरणाओं से वंचित होकर निरात्म, निरुद्देश्य, जड़ीभूत। कहते हैं, दुनिया आज दो हिस्सों में बँटी है। पता नहीं इसमें कितना सत्य है। साहित्य आज ज़रूर दो हिस्सों में बँटा है—एक, जो समाज को उपेक्षा की दृष्टि से देख ऐसे ताने-बाने बुन रहा है जो केवल देवताओं का परिधान बन सकेगा, दूसरा, जो समाज को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से लोहे के ऐसे कवच तैयार

कर रहा है जिसके अन्दर घुट-घुटकर उसकी आत्मा अपना अन्त कर लेगी।

किसी ओर से समन्वय और समत्व का स्वर ज़ोर से उठने को है।

लंच के बाद मि. हेन के कमरे जाकर छह बजे तक पढ़ता रहा। खाने के बाद दत्त के यहाँ गया। वे आज डोरोथी क्लब में डांस के लिए जा रहे थे। मुझे भी लिवा ले गये। टिकट के छह शि. और कोट-छाता रखने के 1 शि. दिये। मैं तो दर्शक-रूप ही था। दत्त का आग्रह है कि मैं नाचना सीख लूँ—'आखिरी वक्त में क्या ख़ाक मुसल्माँ होंगे।'

रविवार, 4 मई, '52

डेढ़ बजे तक कमरे में ही लिखता-पढ़ता रहा। विश्वनाथ दत्त और घोरपदे आ गये। भारतीय क्रिकेट टीम को केम्ब्रिज मजलिस भोज दे रही है। घोरपदे चाहते थे कि एक टिकट मैं भी ले लूँ। दत्त मुझे रहने के लिए दूसरा कमरा दिखाने ले गये—चेस्टरटन रोड पर—कालेज, लाइब्रेरी दोनों से दूर, साइकिल मेरे पास नहीं, न लेनी है। मैंने अभी 7, जीज़स लेन में ही रहने का निश्चय किया है।

शाम को मि. राय के यहाँ गया। चाय थी। चार-पाँच भारतीय भाई वहाँ और थे, एक फ्रेंच महिला। लैण्डलेडी मिस फ़्यू। राय को बहुत अच्छी जगह रहने को मिली है। बहुत सस्ती। मिस फ़्यू हिन्दुस्तान में मिशनरी रह चुकी हैं। राय को पुत्रवत् मानती हैं। उनके गोल कमरे में हिन्दुस्तान की बहुत-सी चीज़ें सजी मिलीं—पीतल के बर्तन, लकड़ी के खिलौने। मेरी कविता भी हुई।

वहाँ 6 बजे तक रहा। लौटकर खाना खाया। आज तो सब कुछ ठण्डा खाने का दिन था। मुझे आने में देर हो गयी थी; इसलिए आज तो चाय भी ठण्डी थी।

8.15 से मि. आर. सी. वुड का ट्रिनिटी डबल-रूम में 'The Impact of Psychology on Modern Drama' पर व्याख्यान था। हमारी डिग से मि. लीथान और मादमोज़ेल वोआज़ेन जाने को थीं। मादमोज़ेल की एक फ्रेंच सहेली आ गयी, सफ़ेद टोपी, फ़र कोट में हंसिनी जैसी—हँसमुख (हँसमुखी), मिठबोली। हम चारों ही व्याख्यान सुनने गये।

व्याख्यान रोचक और विद्वत्तापूर्ण था। मि. वुड बहुत अधीत व्यक्ति हैं। व्याख्यान के पश्चात् प्रश्न भी काफ़ी हुए और जिस किसी भी नाटक का नाम लिया गया, जर्मन, फ्रेंच अथवा इंग्लिश सबसे उन्होंने अपना पूर्ण परिचय प्रदर्शित किया। व्याख्यान के पश्चात् देर तक ताली बजी; देर तक ताली बजाना यहाँ की प्रथा मालूम होती है—नाटक हो, व्याख्यान हो, संगीत हो।

मि. वुड ने अपना व्याख्यान मनोविज्ञान और नाटक की परिभाषा से आरम्भ किया। एलारडिस निकल के अनुसार नाटक एक कहानी है जो कतिपय पात्रों के द्वारा रंगमंच पर कही जाती है। मनोविज्ञान के द्वारा मनुष्य के सूक्ष्म भाव और विचारों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। आधुनिक मनोविज्ञान ने मनुष्य के भाव और विचारों को उनकी गहराई में जाकर देखा है और उसके चरित्र और व्यवहार में उनके स्थान और शक्ति का विश्लेषण किया है। नाटक की प्रगति, सामान्य रूप से, बाहरी कार्य-कलापों से भीतरी भावनाओं और विचारों की ओर हुई है। ग्रीस के नाटकों में यूरिपिडीज़ तक पहुँचते-पहुँचते बाहरी कामों का महत्त्व कम और भीतरी मानस-मन्थन का अधिक हो जाता है। इसी प्रकार एलिज़ाबीथी युग में किड की 'स्पेनिश ट्रेजेडी' से लेकर, जिसे हत्या और रक्तपात की ट्रेजेडी कह सकते हैं, शेक्सपियर के 'हैमलेट' और 'लियर' तक आते-आते ट्रेजेडी अन्तर्मुखी हो जाती है।

हैमलेट और लियर की मृत्यु उतनी बड़ी ट्रेजेडी नहीं, जितनी उनकी मानसिक वेदना और विकल्पना। स्वाभाविक रूप से नाटक की प्रगति क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म की ओर हो रही थी। आधुनिक मनोविज्ञान ने नाटककारों को अतिरिक्त सहायता दी। फ्रायड ने मनुष्य की चेतना के दो स्तरों का पता लगाया—ज्ञात चेतना (conscious) और अज्ञात चेतना (sub-conscious) का। ज्ञात चेतना का सम्बन्ध बाहरी दुनिया से है। वह उसके नियम, परिपाटी, मूल्य—सबकुछ जानती है। मनुष्य उस पर अधिकार भी पा सकता है, उसे शिक्षित, परिष्कृत, सुसंस्कृत करके। परन्तु अज्ञात चेतना का सम्बन्ध बाहरी दुनिया से नहीं है। उसके क्षेत्र में अच्छे-बुरे का भेद नहीं, पाप-पुण्य में अन्तर नहीं। वह शक्तिमय है, पर अन्धी है। फ़ायड ने सिद्ध किया कि मनुष्य के व्यवहार में ज्ञात चेतना से अधिक अज्ञात चेतना का स्थान है। वह परिचालित अथवा शासित नहीं की जा सकती। वह इतने अधिक, इतने प्रबल, इतने रहस्यमय तत्त्वों का संघटन है कि उसके सामने मनुष्य उतना ही अशक्त और असमर्थ है जितना प्राचीन नाटकों में भाग्य, भावी अथवा नियति के सामने, जो किसी भी प्रकार मेटी या बदली नहीं जा सकती। मनुष्य का सच्चा चरित्र उसके अवचेतन द्वारा ही निर्णीत होता है। चेतन द्वारा किया कार्य तो बाहर का छिलका है—मनुष्य का मूल तत्त्व उसके उपचेतन में सन्निहित है।

मनोवैज्ञानिक खोजों ने नाटक को कई प्रकार से प्रभावित किया। फ्रांस ने Realist (यथार्थवादी) आन्दोलन को जन्म दिया, जर्मनी ने Naturalist (प्रकृतिवादी) आन्दोलन को। कुछ दिनों बाद जर्मनी में एक Expressionist (अभिव्यक्तिवादी) आन्दोलन चला। इन लोगों ने नाटक के पात्रों को व्यक्तित्व से ही वंचित कर दिया। बजाय अमुक अध्यापक, अमुक डॉक्टर के एक अध्यापक, एक डॉक्टर—ऐसे पात्रों को जन्म दिया गया। नाटक के बाहरी रूप में भी परिवर्तन लाये गये—अंकों के बजाय नाटक दृश्यों में विभक्त किये गये—यह दिखाने के लिए कि मानसिक चेतना का प्रवाह अटूट है। फिर प्रतीकवाद आया—(Symbolist movement). भाव और विचारों के प्रतीक रंगमंच पर प्रस्तुत किये गये, अथवा प्रतीकों के द्वारा भाव और विचारों का संकेत किया गया। आजकल फ्रांस में प्राचीन कथाओं के आधार पर नाटक लिखने की प्रथा चली है। इनमें प्राचीन दन्त-कथाओं का मनोवैज्ञानिक आधार खोजने अथवा उन पर मनोवैज्ञानिक आधार आरोपित करने का प्रयत्न किया जाता है। यहाँ काकतों के 'आरफ़ी' का भी ज़िक्र आया। इसे सुर-रियलिस्ट (Sur-rialist) फ़िल्म कहा गया है। Sur-realism, Symbolism का विकास है। Sur-realism की सफलता रंगमंच से अधिक चित्रपट पर सम्भव है। कैमरे के विचित्र उपयोगों ने यह सम्भव कर दिया है कि मस्तिष्क के उस सब रहस्यमय ताने-बाने को आँखों के सामने उपस्थित कर दिया जाये जो रंगमंच पर नहीं दिखाया जा सकता। कभी-कभी रंगमंच और चित्रपट को मिलाने के भी विचित्र प्रयोग किये गये। Sur-realism का मूल सिद्धान्त ही यह था, only the surprising and marvellous is beautiful अर्थात् विचित्रता और चमत्कारिता ही सुन्दरता है। जब कलाकारों ने मानव-मस्तिष्क में घुसना आरम्भ किया तो साधारण से साधारण बात के मूल में भी विचित्रता दिखलायी पड़ने लगी। इस विचित्रता के प्रदर्शन ने बहुत-से नाटकों को साधारण जनता के लिए निरर्थक भी कर दिया। प्राचीन दन्त-कथाओं को आधुनिक जीवन के सन्दर्भ में उतारकर कुछ उसी प्रकार का काम चित्रपट पर किया जा रहा है जो

टी. एस. ईलियट ने काव्य में किया। उनकी कला की मूल टेकनीक है विरोधाभास (juxtaposition) देना। जीवन की भद्दी, नीरस, कुरूप सच्चाई के विरोध में साहित्य और इतिहास की स्वप्निल, काल्पनिक, आदर्श स्थितियों की ओर संकेत कर देना। सुर-रियलिस्ट चित्रपटों में यथार्थ के विरोध में चमत्कार और चमत्कार के विरोध में यथार्थ एक-दूसरे को अधिक सारगर्भित, सुस्पष्ट करते चलते हैं। काकतों ने अपने-आपको 'सिनेमा का कवि' कहा है। आधुनिक कवि अपनी अभिव्यक्ति के लिए रूपकों (imagery) का जिस प्रकार उपयोग करते हैं काकतों उसी प्रकार चित्रों का करना चाहते हैं।

मनोविज्ञान की खोज ने साधारण को असाधारण कर दिया है। इससे एक ख़तरा भी पैदा हुआ है। नाटक जो जन-साधारण के मनोविनोद का साधन था अब वह बौद्धिक विनोद की श्रेणी में जा रहा है। पर कोई ऐसा प्रतिभावान नाटककार आ सकता है जो मस्तिष्क की परतों में घुसा हुआ भी ऐसे साधनों का उपयोग करे जो साधारण जनता का मनोविनोद करते हुए भी उसे मनोवैज्ञानिक सच्चाइयों से दूर न ले जायें। जब शेक्सपियर ने हैमलेट लिखा तो उसने इसी प्रकार का काम किया। साधारण जनता को साथ रक्खा, पर हैमलेट के मस्तिष्क के साथ कहीं अन्याय नहीं किया। साथ ही जनसाधारण के उत्तरोत्तर उठते बौद्धिक स्तर का भी नाटककार लाभ उठा सकता है।

व्याख्यान के पश्चात् कुछ प्रश्नोत्तर भी हुए। शॉ के विषय में मि. वुड की राय थी कि उन्होंने एक भी सजीव पात्र की रचना नहीं की। जब उनके पात्रों में अपना मस्तिष्क ही नहीं है (शॉ ने सबके खोपड़े में अपना ही मस्तिष्क ठूस दिया है) तो उसके अन्दर घुसने की बात भी कैसे सोची जा सकती है। नाटक को मनोविज्ञान की ओर ले जाने में शॉ ने कुछ भी योग नहीं दिया। गाल्सवर्दी ने सामाजिक और पारिवारिक समस्याओं को सुलझाया। मनोवैज्ञानिक नाटक प्रायः वैयक्तिक (individualistic) और आन्तरिक (subjective) होता है। लेखक को स्वयं अपने मस्तिष्क में प्रवेश करना पड़ता है। जिसको अपना विश्लेषण करने, अपने मस्तिष्क को चीरने-फाड़ने का साहस न हो उसे मनोवैज्ञानिक नाट्यकार बनने का प्रयत्न न करना चाहिए। टी. एस. ईलियट के विषय में उन्होंने कहा कि वे धार्मिक (theological) नाट्यकार हैं। उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक का नहीं है। वे तो मनुष्य के मस्तिष्क का कल्याण निश्चित दिशाओं की ओर जाने में देखते हैं। विज्ञान सत्य की खोज करता है; उसके परिणामों को नहीं देखता। विश्वास, जो उसके अन्दर काम करता है, वह यह है कि सच्चाई से कोई हानि अन्त में नहीं हो सकती; लाभ, केवल सच्चाई से हो सकता है। और यह मानना पड़ेगा कि यह कोई हीन विश्वास नहीं है।

व्याख्यान जब ख़त्म हुआ, पानी बरसने लगा था। डिग लौटा तो मादमोज़ेल ने अपने कमरे में गरमागरम कॉफ़ी बनाकर पिलायी।

मि. रामनाथ आज केम्ब्रिज से विदा हो रहे हैं। 10 ता. को लिवरपूल से हिन्दुस्तान के लिए जहाज़ लेंगे। बहुत प्रसन्न थे। हैज़लिट ने कहीं लिखा है, The best part of a journey is the return, मेरे कमरे में मिलने आये थे। केम्ब्रिज अच्छा है, इंग्लैण्ड अच्छा है, पर अपने देश से अच्छा कुछ भी नहीं। मिट्टी मिट्टी को पुकारती है तो सोने-हीरे की आवाज़ भी नहीं सुनायी पड़ती।···एक कल्पना कौंध गयी—एक दिन मैं भी इतना ही प्रसन्न अपने देश घर लौट सकूँगा। एक दिन जीवन-यात्रा से भी वापस···

Home is traveller, home from hill.—Stevenson

सोमवार, 5 मई, '52

तैयार होकर ब्रेकफ़ास्ट लिया। रात को, शायद ठंडक की वजह से, नींद ठीक नहीं आयी थी। सुबह से ही कुछ थकावट लग रही थी, सिर में हल्का-सा दर्द था, आँखें भी भारी-भारी लग रही थीं। जी चाह रहा था कि सो जाऊँ, पर फिर न जाने क्यों ध्यान आया कि सो जाऊँगा तो बुखार आ जायेगा। युनिवर्सिटी लाइब्रेरी चला गया। ईट्स की 'आटोबायोग्रैफ़ी' निकलवाकर पढ़ना आरम्भ किया। पौने बारह तक पढ़ता रहा। 12 बजे से मिल लेन में डॉ. टिलयार्ड का अंग्रेज़ी समालोचना के इतिहास पर व्याख्यान था। किसी कारण वे न आये। उसी समय डॉ. रेडपाथ का डन के सानेट और गीतों पर व्याख्यान था। वहाँ चला गया। टेक्स्ट पढ़ाने की केम्ब्रिज की विधि देखी। पहले कविता उन्होंने पढ़ी। फिर टेक्स्ट के सम्बन्ध में विवादास्पद स्थलों पर विभिन्न सम्पादकों की राय बतायी। इसके बाद विचारों और भावनाओं की आलोचना की। Meaning and explanation ऐसी किसी बात पर नहीं गये। यहाँ वालों के लिए इसकी आवश्यकता भी क्या हो सकती है। परन्तु जिनकी मातृभाषा अंग्रेज़ी नहीं उन्हें पढ़ाने का ढंग ज़रूर इससे जुदा रखना होगा। अन्त में फिर उन्होंने कविता को नाटकीय ढंग से पढ़ा और उसका अर्थ अपने-आप स्पष्ट हो गया। व्याख्यान लिखित था। टेक्स्ट पढ़ाने के लिए भी व्याख्यानों को यहाँ लिखकर ही देने की प्रथा है। व्याख्यान के पश्चात् मैंने उनको अपना परिचय दिया। यह जानकर कि मैं डॉ. लीविस की देखरेख में टी. एस. ईलियट और आधुनिक कविता, तथा मि. हेन के निर्देशन में ईट्स का अध्ययन कर रहा हूँ, उन्होंने कहा कि डन के गीतों का प्रभाव ईट्स और ईलियट दोनों पर पड़ा था। डन के प्रति श्रद्धा जागरित करने का बहुत कुछ श्रेय ईलियट को है।—प्रयाग विश्वविद्यालय में metaphysical poets कभी नहीं पढ़ाये गये। डन को तो हम छूते भी नहीं। यहाँ, और मैंने सुना है, आक्सफ़र्ड में भी, डन की कविताओं को बहुत महत्ता दी जाने लगी है। डॉ. रेडपाथ ने डन की केवल तीन कविताएँ पढ़ाई, 'The Rising Sun,' 'Prohibition' और एक कोई विदा-गीत। पर उनके व्याख्यान से मेरी उत्सुकता जगी कि उनकी और रचनाओं को देखूँ। पढ़ाने की सफ़लता इसी में है कि विद्यार्थी की जिज्ञासा जगे। सोच नहीं पाता कि यह हमारा दोष है या हमारे विद्यार्थियों का कि हम उनमें साहित्य अथवा काव्य के प्रति जिज्ञासा नहीं जगा पाते। हमारे विद्यार्थी तो कोर्स में लगी रचनाओं को पढ़ अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। हमने वार्षिक परीक्षाओं पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर तो नहीं दिया? तब तो स्वाभाविक है कि विद्यार्थी की दृष्टि सदा परीक्षा में पूछी जानेवाली चीज़ों पर रहे। हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली, परीक्षा-विधि, शिक्षा का आदर्श—सबको सिर से परखना चाहिए। सबमें भारी परिवर्तनों की आवश्यकता है। अंग्रेज़ी पढ़ाने के तरीक़े में तो आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। शुरू में अंग्रेज़ी पढ़नेवाले विद्यार्थी अब हमें नहीं मिलेंगे। बहुत-सी बातें जो पहले विद्यार्थी करते थे, अब अध्यापकों को करनी होंगी। विद्यार्थी कम मेहनत करेंगे तो अध्यापकों को ज्यादा मेहनत करनी पड़ेगी। दोनों मेहनत से मुँह मोड़ेंगे तो शिक्षा का भाग्य फूट चुका। दुख तो इसी बात का है कि विद्यार्थी के साथ-साथ अध्यापक ने भी मेहनत करना बन्द कर दिया है। हमारे भी व्याख्यानों को लिखित होना चाहिए; सम्भव हो तो नोट्स की टाइप प्रतियाँ सुलभ होनी चाहिएँ। इसके दुहरे लाभ होंगे—अध्यापक को ठीक पता होगा वह क्या पढ़ा रहा है; विद्यार्थी बाद को भी नोट्स के सहारे सम्बद्ध विषय पर चिन्तन-मनन कर सकेगा। हमारे व्याख्यान extempore

टी. एस. ईलियट ने काव्य में किया। उनकी कला की मूल टेकनीक है विरोधाभास (juxtaposition) देना। जीवन की भद्दी, नीरस, कुरूप सच्चाई के विरोध में साहित्य और इतिहास की स्वप्निल, काल्पनिक, आदर्श स्थितियों की ओर संकेत कर देना। सुर-रियलिस्ट चित्रपटों में यथार्थ के विरोध में चमत्कार और चमत्कार के विरोध में यथार्थ एक-दूसरे को अधिक सारगर्भित, सुस्पष्ट करते चलते हैं। काकतों ने अपने-आपको 'सिनेमा का कवि' कहा है। आधुनिक कवि अपनी अभिव्यक्ति के लिए रूपकों (imagery) का जिस प्रकार उपयोग करते हैं काकतों उसी प्रकार चित्रों का करना चाहते हैं।

मनोविज्ञान की खोज ने साधारण को असाधारण कर दिया है। इससे एक ख़तरा भी पैदा हुआ है। नाटक जो जन-साधारण के मनोविनोद का साधन था अब वह बौद्धिक विनोद की श्रेणी में जा रहा है। पर कोई ऐसा प्रतिभावान नाटककार आ सकता है जो मस्तिष्क की परतों में घुसा हुआ भी ऐसे साधनों का उपयोग करे जो साधारण जनता का मनोविनोद करते हुए भी उसे मनोवैज्ञानिक सच्चाइयों से दूर न ले जायें। जब शेक्सपियर ने हैमलेट लिखा तो उसने इसी प्रकार का काम किया। साधारण जनता को साथ रक्खा, पर हैमलेट के मस्तिष्क के साथ कहीं अन्याय नहीं किया। साथ ही जनसाधारण के उत्तरोत्तर उठते बौद्धिक स्तर का भी नाटककार लाभ उठा सकता है।

व्याख्यान के पश्चात् कुछ प्रश्नोत्तर भी हुए। शॉ के विषय में मि. वुड की राय थी कि उन्होंने एक भी सजीव पात्र की रचना नहीं की। जब उनके पात्रों में अपना मस्तिष्क ही नहीं है (शॉ ने सबके खोपड़े में अपना ही मस्तिष्क ठूस दिया है) तो उसके अन्दर घुसने की बात भी कैसे सोची जा सकती है। नाटक को मनोविज्ञान की ओर ले जाने में शॉ ने कुछ भी योग नहीं दिया। गाल्सवर्दी ने सामाजिक और पारिवारिक समस्याओं को सुलझाया। मनोवैज्ञानिक नाटक प्रायः वैयक्तिक (individualistic) और आन्तरिक (subjective) होता है। लेखक को स्वयं अपने मस्तिष्क में प्रवेश करना पड़ता है। जिसको अपना विश्लेषण करने, अपने मस्तिष्क को चीरने-फाड़ने का साहस न हो उसे मनोवैज्ञानिक नाट्यकार बनने का प्रयत्न न करना चाहिए। टी. एस. ईलियट के विषय में उन्होंने कहा कि वे धार्मिक (theological) नाट्यकार हैं। उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक का नहीं है। वे तो मनुष्य के मस्तिष्क का कल्याण निश्चित दिशाओं की ओर जाने में देखते हैं। विज्ञान सत्य की खोज करता है; उसके परिणामों को नहीं देखता। विश्वास, जो उसके अन्दर काम करता है, वह यह है कि सच्चाई से कोई हानि अन्त में नहीं हो सकती; लाभ, केवल सच्चाई से हो सकता है। और यह मानना पड़ेगा कि यह कोई हीन विश्वास नहीं है।

व्याख्यान जब ख़त्म हुआ, पानी बरसने लगा था। डिग लौटा तो मादमोज़ेल ने अपने कमरे में गरमागरम कॉफ़ी बनाकर पिलायी।

मि. रामनाथ आज केम्ब्रिज से विदा हो रहे हैं। 10 ता. को लिवरपूल से हिन्दुस्तान के लिए जहाज़ लेंगे। बहुत प्रसन्न थे। हैज़लिट ने कहीं लिखा है, The best part of a journey is the return, मेरे कमरे में मिलने आये थे। केम्ब्रिज अच्छा है, इंग्लैण्ड अच्छा है, पर अपने देश से अच्छा कुछ भी नहीं। मिट्टी मिट्टी को पुकारती है तो सोने-हीरे की आवाज़ भी नहीं सुनायी पड़ती।···एक कल्पना कौंध गयी—एक दिन मैं भी इतना ही प्रसन्न अपने देश घर लौट सकूँगा। एक दिन जीवन-यात्रा से भी वापस···

Home is traveller, home from hill.—Stevenson

सोमवार, 5 मई, '52

तैयार होकर ब्रेकफ़ास्ट लिया। रात को, शायद ठंडक की वजह से, नींद ठीक नहीं आयी थी। सुबह से ही कुछ थकावट लग रही थी, सिर में हल्का-सा दर्द था, आँखें भी भारी-भारी लग रही थीं। जी चाह रहा था कि सो जाऊँ, पर फिर न जाने क्यों ध्यान आया कि सो जाऊँगा तो बुखार आ जायेगा। युनिवर्सिटी लाइब्रेरी चला गया। ईट्स की 'आटोबायोग्रैफ़ी' निकलवाकर पढ़ना आरम्भ किया। पौने बारह तक पढ़ता रहा। 12 बजे से मिल लेन में डॉ. टिलयार्ड का अंग्रेज़ी समालोचना के इतिहास पर व्याख्यान था। किसी कारण वे न आये। उसी समय डॉ. रेडपाथ का डन के सानेट और गीतों पर व्याख्यान था। वहाँ चला गया। टेक्स्ट पढ़ाने की केम्ब्रिज की विधि देखी। पहले कविता उन्होंने पढ़ी। फिर टेक्स्ट के सम्बन्ध में विवादास्पद स्थलों पर विभिन्न सम्पादकों की राय बतायी। इसके बाद विचारों और भावनाओं की आलोचना की। Meaning and explanation ऐसी किसी बात पर नहीं गये। यहाँ वालों के लिए इसकी आवश्यकता भी क्या हो सकती है। परन्तु जिनकी मातृभाषा अंग्रेज़ी नहीं उन्हें पढ़ाने का ढंग ज़रूर इससे जुदा रखना होगा। अन्त में फिर उन्होंने कविता को नाटकीय ढंग से पढ़ा और उसका अर्थ अपने-आप स्पष्ट हो गया। व्याख्यान लिखित था। टेक्स्ट पढ़ाने के लिए भी व्याख्यानों को यहाँ लिखकर ही देने की प्रथा है। व्याख्यान के पश्चात् मैंने उनको अपना परिचय दिया। यह जानकर कि मैं डॉ. लीविस की देखरेख में टी. एस. ईलियट और आधुनिक कविता, तथा मि. हेन के निर्देशन में ईट्स का अध्ययन कर रहा हूँ, उन्होंने कहा कि डन के गीतों का प्रभाव ईट्स और ईलियट दोनों पर पड़ा था। डन के प्रति श्रद्धा जागरित करने का बहुत कुछ श्रेय ईलियट को है।—प्रयाग विश्वविद्यालय में metaphysical poets कभी नहीं पढ़ाये गये। डन को तो हम छूते भी नहीं। यहाँ, और मैंने सुना है, आक्सफ़र्ड में भी, डन की कविताओं को बहुत महत्ता दी जाने लगी है। डॉ. रेडपाथ ने डन की केवल तीन कविताएँ पढ़ाईं, 'The Rising Sun,' 'Prohibition' और एक कोई विदा-गीत। पर उनके व्याख्यान से मेरी उत्सुकता जगी कि उनकी और रचनाओं को देखूँ। पढ़ाने की सफ़लता इसी में है कि विद्यार्थी की जिज्ञासा जगे। सोच नहीं पाता कि यह हमारा दोष है या हमारे विद्यार्थियों का कि हम उनमें साहित्य अथवा काव्य के प्रति जिज्ञासा नहीं जगा पाते। हमारे विद्यार्थी तो कोर्स में लगी रचनाओं को पढ़ अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। हमने वार्षिक परीक्षाओं पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर तो नहीं दिया ? तब तो स्वाभाविक है कि विद्यार्थी की दृष्टि सदा परीक्षा में पूछी जानेवाली चीज़ों पर रहे। हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली, परीक्षा-विधि, शिक्षा का आदर्श—सबको सिर से परखना चाहिए। सबमें भारी परिवर्तनों की आवश्यकता है। अंग्रेज़ी पढ़ाने के तरीक़े में तो आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। शुरू में अंग्रेज़ी पढ़नेवाले विद्यार्थी अब हमें नहीं मिलेंगे। बहुत-सी बातें जो पहले विद्यार्थी करते थे, अब अध्यापकों को करनी होंगी। विद्यार्थी कम मेहनत करेंगे तो अध्यापकों को ज्यादा मेहनत करनी पड़ेगी। दोनों मेहनत से मुँह मोड़ेंगे तो शिक्षा का भाग्य फूट चुका। दुख तो इसी बात का है कि विद्यार्थी के साथ-साथ अध्यापक ने भी मेहनत करना बन्द कर दिया है। हमारे भी व्याख्यानों को लिखित होना चाहिए; सम्भव हो तो नोट्स की टाइप प्रतियाँ सुलभ होनी चाहिएँ। इसके दुहरे लाभ होंगे—अध्यापक को ठीक पता होगा वह क्या पढ़ा रहा है; विद्यार्थी बाद को भी नोट्स के सहारे सम्बद्ध विषय पर चिन्तन-मनन कर सकेगा। हमारे व्याख्यान extempore

होते हैं। क्लास में जाने के पूर्व न अध्यापक को पता रहता है कि वह क्या कहेगा, न विद्यार्थी को कि वह क्या सुनेगा। अगर विद्यार्थी ने सही-ग़लत नोट नहीं लिया तो व्याख्यान का महत्त्व इतना ही कि वह एक कान से पैठा, दूसरे कान से निकला। हमारे यहाँ कोई लिखकर व्याख्यान दे तो प्रायः यह समझा जायेगा कि उसमें आत्म-विश्वास (या जिह्वा-विश्वास) की कमी है। हम अपने विद्यार्थियों की कितनी हानि कर रहे हैं—हम अपने आपको कितना धोखा दे रहे हैं। हम अपने खोखलेपन को छिपाने, अपनी कामचोरी पर परदा डालने के लिए कितने दिखाऊ और नक़ली साधनों का उपयोग कर रहे हैं। मैं तो यहाँ से जाकर विभाग के अध्यक्ष से इस बात की अपील करूँगा कि वे लिखित व्याख्यानों की परम्परा डालें। बहुतों के भेद खुलेंगे।

दूसरी बात जो यहाँ मैंने देखी वह यह है कि बैठने के स्थान पर आगे की पंक्ति में कुर्सियाँ पड़ी हैं। इन पर जो अध्यापक चाहें आकर बैठ जाते हैं और व्याख्यान सुनते हैं। इससे व्याख्याता के ऊपर एक और उत्तरदायित्व आ जाता है। उसके आलोचक कच्चे विद्यार्थी ही नहीं, पक्की राय रखनेवाले अध्यापक भी हैं। वह वेपर की उड़ाता नहीं चला जा सकता। अध्यापकों को लाभ यह होता है कि वे अपने ख़ास विषय के अतिरिक्त अपने सहयोगियों के व्याख्यान सुनकर अन्य विषयों का भी ज्ञान प्राप्त करते हैं।

हमारे यहाँ का लेक्चरर पीर-बबर्ची-भिश्ती-खर सब होता है—शेक्सपियर भी पढ़ायेगा, रोमाण्टिक कवियों पर भी व्याख्यान देगा, उपन्यास पर भी बोलेगा, निबन्धों-नाटकों पर भी। यहाँ एक अध्यापक को एक विषय दे दिया जाता है—उसमें वह विशेष योग्यता प्राप्त करता है। उस विषय पर नवीनतम पुस्तकों, शोधों से परिचित रहता है। यही कारण है कि 10-5 वर्ष एक ही विषय को पढ़ाने से वह उस पर कुछ नया कह सकता है, कोई नयी पुस्तक तैयार कर देता है। हमारे अध्यापक चार-पाँच विषय पढ़ाते-पढ़ाते अपनी उमर बिता देते हैं और एक पंक्ति मौलिक नहीं लिख पाते। एक बात और भी देखी। डिग्री लिये हुए विद्यार्थी, अन्य विषयों के भी, आकर व्याख्यान में बैठ जाते हैं। उन्हें इसकी स्वतन्त्रता है, यदि वे अपना सामान्य ज्ञान किसी विषय में बढ़ाना चाहते हैं। व्याख्याता को ध्यान रहता है कि उसके श्रोता केवल उसके विद्यार्थी ही नहीं, अन्य विषयों के ग्रेजुएट भी हैं, सहयोगी अध्यापक भी हैं; और इसका परिणाम यह होता है कि वह अपने व्याख्यान को अधिक परिपूर्ण और सारगर्भित बनाने का प्रयत्न करता है।

व्याख्यानों में सन्देह-निवारण अथवा प्रश्न करने की सुविधा नहीं होती। इस कारण कभी-कभी Discussion Class भी होते हैं। आज ही डॉ. रेडपाथ ने अगला क्लास Discussion Class रखने को कहा है।

पाठ्यक्रमेतर व्याख्यानों के पश्चात् हमेशा प्रश्नोत्तर होते हैं। लोगों के प्रश्न बुद्धिमत्तापूर्ण होते हैं। इसके मतलब हैं कि लोग व्याख्यानों को ध्यानपूर्वक सुनते और अपनी राय बनाते हैं।

इन दो प्रकार के क्लासों के अतिरिक्त 'सेमिनार' भी होते हैं। हमारे यहाँ सेमिनार में 15-20 विद्यार्थी रक्खे जाते हैं, कभी इनसे भी अधिक। मैं मि. हेन के कमरे में पढ़ने जाता हूँ। साथ के कमरे में वे सेमिनार लेते हैं। दो या तीन से अधिक विद्यार्थियों को एक साथ आते मैंने नहीं देखा। सेमिनार का अर्थ है कि अध्यापक विद्यार्थी की ओर खास ध्यान दे सके—जान सके उसकी क्षमता क्या है, उसमें कमी क्या है, और कैसे उसका उचित विकास किया जा सकता है। यह तभी

सम्भव है जब विद्यार्थी कम हों। 15-20 लड़कों में तो फिर वही बात आ जाती है जो लेक्चर-क्लास में, यानी व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव। व्याख्यान में, आपके पास बैठाने की जगह हो तो, 500 लड़कों को एकसाथ कर दीजिए, पर सेमिनार दो-तीन लड़कों से अधिक का नहीं होना चाहिए।

लंच के बाद कुछ पत्रादि देखे।

3॥ बजे निकला डोरोथी डांस हाल खोजते। विश्वनाथ दत्त ने वहाँ मिलने को कहा था। आज वे अपने नाच का सबक़ लेने को थे। ट्रेनर एक सबक़ का 5 शिलिंग लेता है। आठ सबक़ में इस योग्य कर देता है कि आदमी अपनी सहेली को ले नाच के फ़र्श पर उतर जाये।

मैंने 18 को, अजित के जन्म-दिन पर, अपने प्रोफ़ेसरों को खाने पर बुलाने की सलाह दत्त से की। उन्हें और उनकी पत्नी को भी बुलाऊँगा; डोनल्ड डन को भी। मुझे वह अच्छा लड़का लगा था; अपने यहाँ चाय पर भी उसने बुलाया था। इस प्रकार उस दिन 8 व्यक्ति होंगे—प्रो. और मिसेज़ विली, मिस्टर और मिसेज़ हेन, मिस्टर और मिसेज़ दत्त, डोनल्ड और मैं। सलाह यह हुई कि Blue Bore में खाना दिया जाये।

विश्वनाथ पीछे ही पड़ गये हैं; कहते हैं, बिना नाच जाने अंग्रेज़ी समाज में घुसना असम्भव है, मुझे ज़रूर सीखना है, साल से ऊपर विलायत में रहना है, पढ़कर समय नहीं कट सकेगा, शहरियों का यहाँ प्रमुख विनोद यही है।—मैंने कहा 18 के बाद सोचूँगा; तब तक मुझे बहुत-से कामों में व्यस्त रहना है।

मंगलवार, 6 मई, '52

मौसम आज साफ़ था, धूप निकली हुई थी। सेण्ट्रल लाइब्रेरी गया। वहाँ 'टाइम्स' और 'मैनचेस्टर गार्डियन' देखता रहा। भारत में बहुत सुना करते थे कि इंग्लैण्ड में चोरबाज़ारी नहीं है। आज पत्र में था कि अण्डे चोरबाज़ार में बिक रहे हैं। केम्ब्रिज न्यूज़ में था कि कोई क़साई राशन के अतिरिक्त भी सुअर का मांस बेचता पाया गया और उस पर जुर्माना हुआ। इतना मान सकते हैं कि यहाँ यह चीज़ें कम हैं और पता लग जाने पर सज़ा से बचना कठिन है। भारत में सरकार को छोड़ चोर-बाज़ारी का पता सबको है। जानने पर भी वहाँ साबित करना मुश्किल है; और सज़ा से छूटना तो साधारण बात है। काश्मीर पर 'मैनचेस्टर गार्डियन' के जो सम्पादकीय निकल रहे हैं उनसे पता चलता है कि काश्मीर के भीतर कुछ भारी गड़बड़ होनेवाली है। यदि काश्मीर पाकिस्तान से मिलता है, या भारत से सर्वथा स्वतन्त्र हो जाता है तो उसका प्रभाव भारत की राजनीति पर पड़े बग़ैर नहीं रह सकता। काश्मीर भी टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा।

10 बजे मि. एफ़. एल. लूकस के लेक्चर में गया। उनकी दो पुस्तकें मैंने भारत में ही देख रक्खी थीं—'Decline and Fall of Romanticism' और 'Tragedy'। उनके चिन्तन की सुस्पष्टता और अभिव्यक्ति की सुबोधता से प्रभावित हुआ। उनका व्याख्यान 'समालोचना में शैली' पर था। मि. लूकस परम्परावादी हैं जैसे डॉ. लीविस आधुनिक प्रयोगों के समर्थक। केम्ब्रिज में आलोचना के जो दो स्कूल हैं उनमें लूकस पुराने विचारों और लीविस नये विचारों के प्रतिपादक हैं। दोनों में, सुना, काफ़ी तनातनी रहती है। साहित्यिक विचारों को यहाँ जीवन की गम्भीरता के साथ जोड़ा जाता है। युनिवर्सिटी दोनों प्रकार के विचारों को विकसित होने का अवसर देती है। व्याख्यान के पश्चात् मैं उनसे मिला भी। मैं किसी एक के साथ

अपने को सम्पृक्त नहीं कर सकता; समझना दोनों को चाहता हूँ।

प्रायः यह कहा जाता है कि उच्चकोटि की कला में कुछ ऐसा रहस्य होता है जिसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता। समालोचना का काम ही गुणों का विश्लेषण है, अवगुणों का भी; गो यह कहना ग़लत न होगा कि उच्चकोटि की कला के गुणों को आसानी से नहीं गिनाया अथवा बताया जा सकता। यह भी माना जा सकता है कि जिस कला या कृति के सब गुण उँगलियों पर गिना दिये जायें वह उच्चकोटि की कला नहीं है।

आधुनिक मनोविज्ञान ने मनुष्य के चरित्र और व्यवहार के पीछे दो शक्तियों का पता लगाया है। एक की सत्ता तो पहले से प्रकट थी—चेतन की। उपचेतन, चेतन से भी अधिक प्रबल माना गया है। जो जीवन में है वह कला में भी आये—पहली दृष्टि में यह माँग बड़ी स्वाभाविक लगती है; पर इसकी सम्भावना और औचित्य दोनों पर प्रश्नवाचक चिह्न लगाया जा सकता है। फिर भी इस माँग ने एक विशेष प्रकार की रचना को जन्म दिया है जो समालोचना के लिए एक बड़ी चुनौती है।

परम्परागत सिद्धान्त यह है कि कला सचेतन क्रिया है। कला को जन्म देते समय कलाकार चेतन से परिचालित होता है। चेतन परिष्कृत, संस्कृत किया जा सकता है और कलाकार इस शिक्षित-दीक्षित चेतन से अपनी कला को वांछित रूप देता है। चेतन निर्बल सही, पर चेतना को सिखाया, राह पर लगाया जा सकता है। इस कारण अचेतन से कमज़ोर होकर भी यह उससे कहीं बढ़कर उपयोगी है। उपचेतन में शक्ति बहुत है पर वह शिक्षित-दीक्षित नहीं किया जा सकता। वह एक अन्ध शक्ति है। शायद उसी के दबाव में आधुनिक कलाकार कहता है कि वह जीवन को निश्चित करती है तो कला को भी क्यों न निश्चित करे।—लेकिन कला और जीवन का सम्बन्ध यही नहीं है कि जो जीवन है वही कला है। कला जीवन की प्रतिनिधि है, उसकी व्याख्या करती है, उसकी आलोचना भी करती है। कला केवल जीवन का अनुकरण नहीं करती। आधुनिक कलाकारों ने कला और जीवन के अन्तर को भुला दिया है। प्रायः यह समझा जाने लगा है कि जो जीवन है वही कला है—जो ग़लत है। अगर यही धारणा बना ली जाय (कि जो जीवन है वही कला है) तो कलाकार अधिकाधिक उपचेतन पर निर्भर होता जायेगा। जो शक्ति उसे दबा रही है, उसके नीचे दबने को वह अधिकाधिक झुकता जायेगा। सभ्यता और संस्कृति का विकास अन्ध शक्तियों के साथ सचेतन के संघर्ष का इतिहास है। कला सचेतन की क्रिया होने के कारण उस सभ्यता और संस्कृति के इतिहास में एक माध्यम बनती है। कला सचेतन क्रिया है तो समालोचना उससे अधिक सचेतन क्रिया है। समालोचना केवल सचेतन के सिद्धान्तों को खोजने का दम भर सकती है, उपचेतन का नहीं। वहाँ तो कोई नियम ही नहीं। जहाँ कला में केवल उपचेतन का प्राबल्य है वहाँ समालोचना अपनी हार स्वीकार करती है। यहाँ तो कलाकार स्वयं चाहे तो अपनी आलोचना कर सकता है—दूसरा नहीं। कभी सोचना चाहिए कि आधुनिक कलाकार प्रायः अपना आलोचक भी क्यों हो जाता है। इसलिए कि अगर उपचेतन को जानने का कोई दावा कर सकता है तो केवल वह। वह अपना नियम स्वयं बन जाता है। इस प्रकार हर कलाकृति और हर समालोचना का अपना, सबसे अलग, एक स्थान बन जाता है जिसका सम्बन्ध न तो परम्परा से आयी हुई कला से रह जाता है न समालोचना से। पर विकास की श्रृंखला को न जीवन छोड़-तोड़ सकता है, न कला और न समालोचना ही। सम्यक् समालोचना सचेतन शासित कलाकृतियों की ही हो सकती है। सचेतन में केवल व्यक्ति, केवल कलाकार की चेतना ही नहीं सन्निहित है—

उसे परम्परागत समस्त ज्ञान से सम्पन्न कराया जा सकता है। इस प्रकार सृजन में जिन तत्त्वों से काम लिया गया है, मूल्यांकन में भी उन्हीं तत्त्वों से काम लिया जा सकता है। उपचेतन से शासित, शासित नहीं पराजित, कलाकृति ऐसी सामग्री उपस्थित करती है जिसको तोलने के बटखरे नहीं मिलते, जब तक कि कलाकार उन्हें स्वयं न बना दे। फिर भी एक कलाकार के बनाए हुए बटखरे से दूसरे कलाकार की चीज़ें नहीं तोली जा सकेंगी। आधुनिक (मनोवैज्ञानिक) समालोचना का एक स्वर यह भी है कि प्रत्येक कलाकार को अपनी मान्यताएँ निर्धारित करने का अधिकार है यानी हम यह जानें, अगर जान भी सकें तो कि कलाकार की मंशा क्या थी। इसकी चरम सीमा पर प्रत्येक कलाकार अपनी कला का अपने-आप ही प्रेमी, अपने-आप ही आलोचक होगा। Every poet his own reader, his own critic, और कम-से-कम काव्य में ऐसी ही परिस्थिति देखने में आती जा रही है!

चेतन केवल इसी कारण उपेक्षित और नगण्य नहीं हो जाता कि उसका सम्बन्ध बाहरी दुनिया से है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार भी बाहरी दुनिया का रूप भीतर के उपचेतन द्वारा ही निर्धारित हुआ है। जब हम कला और जीवन में अन्तर, कला और चेतन के सम्बन्ध, और समालोचना में चेतन की अनिवार्यता पर विचार करेंगे तब हम जान सकेंगे कि आधुनिक युग में उपचेतन को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देकर एक बड़ी भूल की जा रही है। इससे जीवन, कला, समालोचना—सब विकृत हो रही हैं, समाज में व्यक्ति ज़रूरत से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है, कला विचित्रता और असाधारणता की पर्याय हो गयी है, समालोचना निजी सूझों और झुकावों की तालिका बन गयी है। समय आ गया है कि हम अपने मस्तिष्क में चेतन का मूल्यांकन फिर से करें और उसकी समुचित महत्ता को समझें।

यह परम्परावादी स्वर है और इसका भी अपना सत्य है।

तेजी की चिट्ठी। सप्ताह भर से उनको मेरा समाचार नहीं मिला था। अब नियम यह—इतवार और बुध को उन्हें पत्र, शनिवार को बच्चों के लिए तस्वीरी कार्ड। इस प्रकार सप्ताह में तीन बार उनको मेरे समाचार मिलेंगे। देखूँ वे मुझे कितनी बार लिखती हैं।

लंच के बाद शाम तक युनिवर्सिटी लाइब्रेरी में रहा। ईट्स की 'आटोबायोग्रैफी' चल रही है। मज़ा आ रहा है। ईट्स का गद्य कितना मोहक है!

रात को श्री शिवकुमार मिलने आये—Stream of Consciousness in Modern Novel पर शोध कर रहे हैं। जब मैं एडेल्फ़ी में था तब अपनी पत्नी के साथ कुछ दिन वहाँ रहे थे। बी. बी. सी. में काम करने को लन्दन आये। वहाँ से केम्ब्रिज़ आ गये। यहाँ से अमरीका जाने का स्वप्न देख रहे हैं। चलते-पुर्ज़े; बात सरपट करते हैं, अपनी ही, दूसरों की बिना सुने। यहाँ देखने की कई जगहें बता गये, कुछ नयी अच्छी किताबों के नाम भी; ग्रैनचेस्टर और ईली की बड़ी तारीफ़ कर गये हैं। बाइरन और रूपर्ट ब्रुक ग्रैनचेस्टर के बड़े प्रेमी थे। अपने कुछ प्रोफ़ेसरों से मुझे मिलायेंगे।

बुधवार, 7 मई, '52

सुबह सेण्ट्रल लाइब्रेरी में अख़बार देखे। प्रसन्नता हुई कि डॉ. राजेन्द्र प्रसाद फिर से राष्ट्रपति पद के लिए चुन लिये गये हैं। भारत की स्थिति अभी इसी प्रकार की है कि राज का ढाँचा जैसा है वैसा ही चला जाये। राधाकृष्णन का उपराष्ट्रपति

चुना जाना भी राजनीतिक दृष्टि से बहुत अच्छा हुआ है। इससे उत्तर-दक्षिण के तनाव में कमी आने की सम्भावना है।

पौने बारह तक यु. ला. में रहा। 12 से डॉ. लीविस का लेक्चर था मिल लेन में—विषय Critical Approach to Fiction. आधुनिक काल के योरोप-भर के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन-सा डॉ. लीविस ने प्रस्तुत किया। एक तो यहाँ अध्यापक लोग भाषा कई जानते हैं, दूसरे, सब अच्छी पुस्तकों का अनुवाद अंग्रेज़ी में हो जाता है—कभी तो मूल अंग्रेज़ी भाषा और अंग्रेज़ी अनुवाद का प्रकाशन साथ-साथ होता है। इस प्रकार यहाँ के अध्यापकों की दृष्टि बड़ी व्यापक हो जाती है। इनका ध्यान बराबर इस बात पर रहता है कि अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन अथवा इटैलियन की प्रवृत्तियों के भीतर एक योरोपियन प्रवृत्ति भी काम करती है, और बिना उसको समझे न तो किसी एक भाषा के साहित्य का अध्ययन सम्यक् रीति से किया जा सकता है और न उसकी आलोचना ही हो सकती है। हम एक देश के वासी होते हुए भी अपनी भाषा के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं की कृतियों से अपरिचित रह जाते हैं। हिन्दीवाला नहीं जानता कि बंगला में क्या लिखा जा रहा है, बंगलावाला नहीं जानता कि मराठी में क्या हो रहा है; उत्तरवाला दक्षिण के लेखन से अनभिज्ञ रहता है, और दक्षिणवाला उत्तर के। देश की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक दशा एक होते हुए भी हमारे अन्दर जो साहित्यिक साम्य है उससे हम अपरिचित रहते हैं। युनिवर्सिटी के अध्यापकों से यह प्रत्याशा की जानी चाहिए कि वे एक से अधिक भारतीय भाषा इतनी अच्छी तरह जानेंगे कि उनके साहित्य का भली भाँति अध्ययन कर सकेंगे और अपनी भाषा के साहित्य से उनका तारतम्य बिठला सकेंगे। हिन्दीवालों के ऊपर विशेष दायित्व है। उनकी भाषा को राष्ट्रभाषा का पद दिया गया है। उनको चाहिए कि वे भारत की अन्य भाषाओं के साहित्य-रत्नों को अपनी भाषा में रूपान्तरित करें। उसके अध्यापकों को चाहिए कि वे उनका अध्ययन कर अपने दृष्टिकोण को व्यापक बनायें। ऐसा अध्ययन किया जाये तो सहज ही देखा जा सकेगा कि एक युग में एक ही प्रकार की भाव-विचारधाराओं से देश का विभिन्न साहित्य आन्दोलित और अनुप्राणित रहा है—प्रादेशिक सतही विविधता के बावजूद।

आज के व्याख्यान में डॉ. लीविस ने विशेषकर डी. एच. लारेंस और फ्लाबेग़ की तुलना की। उनकी दृष्टि में लारेंस अधिक बड़े उपन्यासकार थे। फ्लाबेग़ कला के उपासक थे; लारेंस कला से जीवन का पथ प्रशस्त करना चाहते थे। लारेंस ने जीवन के ऐसे क्षेत्रों को खोजा जो बहुत दिनों से बन्द थे, वर्जित थे, या अब तक अनखुले थे। उनको उन्होंने नये दृष्टिकोण से देखा, उपन्यास-कला के क्षेत्र को विस्तृत किया। इतना ही नहीं, उन उपेक्षित-गर्हित क्षेत्रों को उन्होंने मानवता के मूलभूत तत्त्वों से जोड़ा। बीसवीं सदी के मस्तिष्क के बहुत-से बन्धनों को तोड़ने का श्रेय लारेंस को है। आजकल लारेंस की महत्ता पर डॉ. लीविस बहुत ज़ोर देते हैं। जहाँ कहीं बात चलती है, लारेंस का ज़िक्र ज़रूर आ जाता है।

दिन में लाइब्रेरी में रहा।

शाम को टैगोर समिति की मीटिंग थी—माडलिन हाल में। आज टैगोर का जन्म-दिन था। 20-25 व्यक्ति थे—आधे के क़रीब अंग्रेज़, कुछ महिलाएँ थीं। डॉ. राय ने टैगोर पर भाषण दिया। उनकी कविताएँ पढ़ी गयीं। उनके दर्शन पर कुछ गद्य-उद्धरण सुनाये गये। बाद को उनके गीतों के कुछ रिकार्ड बजाये गये।

मैंने टैगोर को सदा गांधी और अरविन्द के साथ ही देखा है। इन तीनों में

भारत की मनीषा एक साथ प्रकट हुई। गांधी उसकी कर्मठता के प्रतीक थे, अरविन्द उसकी ज्ञान-राशि के, और टैगोर उसकी भाव-सम्पदा के—भारत के जैसे hand, head and heart, भारत की खोज सदा अमर ज्योति और अमर सत्य के लिए रही है; और भारत ने यह विश्वास किया है कि उसकी प्राप्ति इन तीनों में से किसी के द्वारा हो सकती है—हाथ से कर्म-मार्ग के द्वारा, मस्तिष्क से ज्ञान-मार्ग के द्वारा और हृदय से भक्ति-मार्ग के द्वारा। हम चाहें तो यों भी कह सकते हैं कि प्रमुख रूप से गांधी कर्ममार्गी थे (उनको कर्मयोगी अक्सर कहा भी गया है), अरविन्द ज्ञानमार्गी और टैगोर भक्तिमार्गी। भारत के लम्बे इतिहास में कर्मठों की श्रेणी में बड़े-बड़े योद्धा, सत्य के लिए लड़नेवाले हुए, ज्ञानियों की श्रेणी में बड़े-बड़े दार्शनिक आये और भक्तों की श्रेणी में भगवत्प्रेमी से कवि तक। हमारे ज्ञात इतिहास में एक-दूसरे के पश्चात् कर्म, ज्ञान, भक्ति से प्रेरित विभूतियाँ बराबर आती रही हैं। पहले परशुराम, राम, कृष्ण—परशुराम कर्मठता के प्रतीक, राम ज्ञान के, सन्तुलन के, और कृष्ण रसमय भावनाओं के। कृष्ण को पूर्णावतार कहते हैं—जैसे उनमें कर्म, ज्ञान, भक्ति—सब एकरूप हुए। कर्मठों में उनसे पराक्रमी कौन था ? ज्ञान की गीता ही उनकी है, और उनकी मुरली का स्वर सबको युग-युग के लिए रस में भिगो गया है। जीवन की यह पूर्णता फिर हमारे इतिहास ने नहीं दुहराई। कृष्ण पूर्ण पुरुष थे—हाथ, हृदय, मस्तिष्क सबकी शक्तियों से समन्वित। दूसरे चक्र में हम विक्रम, कालिदास और शंकराचार्य को रख सकते हैं। विक्रम में भारत ने अपनी भुजाओं का ऐश्वर्य देखा, कालिदास में उसका हृदय स्पन्दित हुआ, और शंकर ने उसकी ज्ञान गरिमा को चोटी पर पहुँचाया। तीसरे चक्र में हमें राणा प्रताप, शिवाजी; तुलसी, सूर, मीरा; दयानन्द, राममोहनराय आदि मिले। चौथे चक्र में हमने गांधी, टैगोर और अरविन्द को पाया। शायद भारत के इतिहास में उसकी तीनों शक्तियों के प्रतीक एक साथ कभी वर्तमान नहीं थे। यह तो सौभाग्य की बात थी कि भारत के पुनरुत्थान के युगारम्भ में ये तीनों शक्तियाँ देश के तीन कोनों पर बैठी हुई अपनी साधना, भावना और श्रम-सेवा से देश में नयी चेतना, नयी स्फूर्ति और नयी जागृति भर रही थीं—गांधी गुजरात के साबरमती आश्रम में, अरविन्द मद्रास के पांडीचेरी-साधना-शिविर में और टैगोर बंगाल के शान्ति-निकेतन में। भविष्य जब इन तीनों विभूतियों को समझेगा तो इस युग को बड़ी ईर्ष्या से देखेगा।

खाना खाने के बाद वोआज़ेन के साथ घूमने चला गया। लौटकर आर्ट स्कूल। आज वहाँ आर्चबिशप आफ़ कैण्टरबरी का The Crisis of Faith in India पर भाषण था। हाल बिलकुल भरा था, हम लोग सबसे पीछे बैठे सके। भीड़ देखकर कुछ आश्चर्य ही था। Crisis of Faith in india में केम्ब्रिज में इतने लोग रुचि रखते हैं या आर्चबिशप आफ़ कैण्टरबरी में इतना आकर्षण है कि उनका व्याख्यान सुनने और उनकी सूरत देखने को लोग जमा हो गये हैं। आर्चबिशप के हाल में प्रवेश करते ही सब लोग खड़े हो गये और उनके बैठने के बाद ही बैठे। मंच पर चार महानुभाव बैठे थे—आर्चबिशप आफ़ कैण्टरबरी, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी के वाइस चैंसलर सर लियोनेल ह्विटबी, प्रोफ़ेसर राबिन्सन, हेड आफ द डिपार्टमेण्ट आफ़ इकोनोमिक्स और बिशप आफ़ लखनऊ के भाई, और फ़ादर अर्नेस्ट जोन्स (हिन्दुस्तानी ईसाई जयपुर के)। आर्चबिशप ने पहले तो केम्ब्रिज का मज़ाक बनाया, 'मैं आक्स-फ़र्ड का हूँ, हिन्दुस्तान के मिशन के उत्सव में भाषण देने को निमन्त्रित किया गया हूँ और मैं हिन्दुस्तान कभी गया भी नहीं, पर चूँकि पिछले पचास बरसों से केम्ब्रिज

ने आर्चबिशप नहीं उत्पन्न किये, इसलिए इस अवसर पर आक्सफ़र्ड से उधार लेना ही ठीक था।' आगे उन्होंने कहा कि आज के संसार में जड़वाद (Materialism) ने बहुत ज़ोर पकड़ रखा है—पूर्वी किस्म का जड़वाद जिसे हम 'साम्यवाद' कहते हैं और पश्चिमी क़िस्म का जड़वाद जिसे हम 'व्यावहारिक बुद्धि' कहते हैं (Materialism of the eastern variety which we call communism and materialism of the western variety which we call common sense)। प्रश्न यह है कि जड़वाद ने जिन समस्याओं को हमारे सामने उठाया है उनका हल हमें ईसाइयत के अध्यात्मवाद से मिल सकता है या नहीं? क्या ईसाइयत का सत्य पतनशील प्रजातंत्र को फिर से उठाकर खड़ा कर सकता है? अगर ईसाइयत ने यह काम न किया तो कम्यूनिज़म इसे करेगी। पर ईसाइयत में बड़ी शक्ति है; इसने कई बार इतिहास को पलटा दिया है। भारत अब स्वतन्त्र हो गया है, वह किस मार्ग से आगे बढ़ेगा? हिन्दुत्व पुराना हो गया है और उसने अपनी गतिमयता खो दी है (The old Hinduism has lost its dynamism)। मानवी आदर्शवाद (Humanistic Idealism) जब पश्चिम में ही असफल हो रहा है तो पूर्व में उसे क्या सफलता मिल सकेगी। आशा केवल ईसाइयत से की जा सकती है।—आर्चबिशप के इस कथन से कि हिन्दुत्व ने अपनी गतिमयता खो दी है, हम भारतीयों को बहुत क्षोभ हुआ। आगे उन्होंने कई बातें इस प्रकार की कहीं। कहा, भारत के गत चुनाव में साम्यवाद ने उसे चुनौती दे दी है। भारत यदि ईसाइयत की ओर नहीं जायेगा तो उसे साम्यवाद की ओर जाना होगा। आज भारत में बहुत-से हिन्दू ऐसे हैं जो ईसा की ओर जीवन की गतिमयता के लिए आँखें लगाये बैठे हैं; तब हम ईसाई लोग ऐसा मानते हैं तो क्या ग़लती करते हैं।

व्याख्यान आरम्भ में रोचक लगा था। बाद को उसमें प्रचारपंथी पादरियों के प्रलाप की बू आने लगी। मैं तो दंग रह गया। चुनाव में, दक्षिण में, साम्यवादियों को सफलता किस कारण मिली, इस पर बग़ैर सोचे-समझे इसने कह दिया कि साम्यवाद इसलिए आ रहा है कि ईसाइयत नहीं आने दी गयी। 'सूझ-जुआरिहिं आपन दाऊँ।' और अन्त में हिन्दुओं की उदारता, सहिष्णुता और विशालहृदयता को—जो संसार के सब धर्मों को आदर की दृष्टि से देखना सिखाती है, ईसा को भी सम्मान देने को कहती है, मुहम्मद को भी, जैसे राम-कृष्ण को—इसने केवल यह समझा कि चूँकि हिन्दुओं में आदर्शों की कमी है इसी कारण वे ईसा और दूसरे पैगम्बरों की ओर झुकते हैं। और अन्त में यह स्वप्न देख रहा है कि सारा भारत ईसाई धर्म स्वीकार करके साम्यवाद से बच गया है!

ईसाइयत को राजधर्म का प्रभुत्व देकर, अमरीका और इंग्लैण्ड के धन के बल पर प्रचारकों का जाल फैलाकर, और अनन्त काल तक नरकाग्नि में जलने का भय दिखलाने से लेकर सांसारिक समस्त प्रलोभनों को मार्ग में बिछाकर दो सौ बरसों में केवल दो प्रतिशत लोगों को ईसाई बनाया जा सका है। और अब सारे हिन्दुस्तान को ईसाई बनाने का सपना देखा जा रहा है। 'मुनिहिं हरिअर्राहि सूझ।' आर्चबिशप ने अंग्रेज़ों को उपदेश दिया कि उन्हें भारत जाकर ईसाइयत के ऊँचे आदर्शों को भारतीयों के सामने रखना चाहिए। शॉ ने कहीं लिखा है कि अंग्रेज़ पहले अपना पादरी भेजता है, देसी लोग पादरी को कुछ नुकसान पहुँचाते हैं, बदला लेने को गोरी सेना पहुंचकर उन्हें पराजित करती है, दास बनाती है, और उन्हें 'सभ्य' बनाने का काम शुरू कर देती है। यह अठारहवीं सदी का हथकण्डा बीसवीं में कारगर नहीं हो सकता—इसे अंग्रेज़ बखूबी जानता है! पर आज भी इन

विदेशी मिशनों के पीछे कोई धर्मेतर लक्ष्य नहीं, इसे मैं जल्दी स्वीकार नहीं करूँगा। आदर्शवादियों का भारत ने सदा आदर किया है। उसे कपट-मुनियों से होशियार रहना भी सीखना चाहिए। गांधीजी कहते थे—और वे हिन्दुत्व की सच्ची आवाज़ थे—कि सब धर्मों से जो अच्छा हो ले लेना चाहिए, सब धर्म-संस्थापकों, सन्तों, नबियों का संस्कार करना चाहिए। पर पच्छिमी मार्के की, अर्थात् अमरीकी और अंग्रेज़ी मार्के की जो ईसाइयत है उससे भारत का कल्याण नहीं हो सकता। और सच बात तो यह है कि संसार की समस्या आज धर्म की समस्या नहीं, अर्थ की समस्या है। इसको भुलाकर, इस पर पर्दा डालकर, धर्म की बात करना अपने को धोखा देना है। चमगादड़ों से किसी ने पूछा कि तुम उल्टे क्यों लटके हुए हो—चमगादड़ डालों से अपने पंजे फँसा मुँह नीचा कर टँगा रहता है। उन्होंने उत्तर दिया, देखते नहीं, सारे आसमान को हमीं तो सँभाले हैं, नहीं, यह नीचे न आ जाय। मुझे ये पादरी आज उन्हीं चमगादड़ों की तरह लगे—उनके काले-काले गाउन मुझे सचमुच चमगादड़ों की याद दिला रहे थे। ठीक है दोस्तो, अपनी खोपड़ी को औंधी कर लटके रहो। आसमान-जहान एक तुम्हीं पर टिका है। मि. राबिन्सन ने आर्चबिशप के स्वर में स्वर मिलाया। और फ़ादर अर्नेस्ट जोन्स ने तो हद ही कर दी। उन्होंने कहा, 'भारत ने प्रजातन्त्र को अपना आदर्श माना है, पर यदि यह प्रजातन्त्र ईसाइयत के आधार पर नहीं बनेगा जो बहुत जल्द बिखर जायेगा।' उधर भारत ने अपने को Secular Democracy घोषित किया है, इधर अर्नेस्ट जोन्स नबी की जिह्वा से बोल रहे हैं कि जब तक वहाँ Christian Democracy न होगी तब तक प्रजातन्त्र सफल नहीं हो सकता। Christian Democracies तो अपने को Secular Democracy के स्तर पर लाने का अभिमान कर रही हैं और जो आरम्भ से ही secular है उसे ये sectarian बनाने की फ़िक्र में हैं, और ऐसे sectarian लोग जो देश की दाल में नमक के बराबर भी नहीं हैं। कहते हैं अमीरी की बू 12 वर्ष तक नहीं जाती। संख्या में कम हैं तो क्या हुआ, हुकूमत तो कर चुके हैं; अब भी पुराने हाकिमों के साथ बैठ कभी-कभी पिछली बातों को सोचेंगे और पिछली यादों को चभुलायेंगे। रस्सी जल जाने पर भी ऐंठन बाक़ी रहती है। भारत के ईसाइयों को समझना चाहिए कि उनकी समस्या का हल अमरीका और इंग्लैण्ड के ईसाइयों के पास नहीं है। उनकी अपनी समस्याएँ कम नहीं हैं। भारत के ईसाइयों का साथ भारत के हिन्दू-मुसलमान ही देंगे। उनमें उदारता थी, अब भी है। ईसाई अपने देश की मिट्टी, उसकी परम्परा पहचानें; उन्हें तो, कहने की धृष्टता क्षमा हो, ईसाइयत भी पश्चिम के विकृत रूप में मिली है। वे जब ईसा और बाइबिल को पहचानेंगे तो पश्चिम की ईसाइयत उन्हें खोखली मालूम होगी—यहाँ ईसाइयत सिर्फ़ तमाशा है—ईसा के बाद सबसे बड़ा ईसाई तो हिन्दुत्व ने ही पैदा किया—उसका नाम था मोहनदास कर्मचन्द गांधी। पश्चिम का धर्म है आज मेटीरियलिज़्म और ईसाइयत वह बुर्क़ा है जिससे उसको छिपाया जा रहा है। जो आज ईसाइयत के नाम पर किया जा रहा है वह तो प्रजातंत्र की माँग है। प्रजातंत्र के विकास में ईसाइयत का बड़ा हाथ है, पर दूसरी शक्तियों का उतना ही बड़ा हाथ है जो ईसाइयत के बिलकुल विपरीत हैं। और योरोप की आधुनिक सभ्यता ईसाई सभ्यता नहीं है—उसे यूनान के उदार ज्ञान ने बनाया है और आधुनिक विज्ञान ने। जब ये दोनों शक्तियाँ काम नहीं कर रही थीं उस समय की ईसाइयत का इतिहास अज्ञान का इतिहास है, क्रूरता का, पापों का, और उसे पढ़ते समय कोई ऐसा सभ्य व्यक्ति नहीं जो लज्जा

से सिर नीचा न कर ले। भारत को दूसरा योरोप नहीं बनाया जा सकेगा। योरोप में आकर्षण है, उसका बहुत कुछ अनुकरणीय है पर भूल से कहीं आप उसके आकर्षण का ग़लत कारण न समझ बैठें। ईसाइयत को लें। लें क्यों, ईसाइयत को भारतीय रूप दें। विज्ञान को लें। उसकी कोई सीमा-रेखा नहीं—पूरबी या पश्चिमी। और एक बात जान लें, यूनान के उदार ज्ञान का अगर कहीं दूसरा भण्डार है तो वह हिन्दुओं के ही पास है। आप बहुत जल्द देखेंगे कि दोनों में बहुत निकट की समता है। सत्य की शोध और प्राप्ति के लिए भारत ने सदा प्रयत्न किया है। सत्य का उसने सदा आदर किया है, और किसी भी पूर्वनिर्धारित विश्वास-सिद्धान्त अथवा मान्यता को उसके मार्ग में नहीं आने दिया है। रूढ़ियाँ बनती हैं—और कहाँ नहीं बनतीं?—पर उन्हें तोड़ने की जितनी स्वतन्त्रता हिन्दुत्व देता है उतनी कोई और धर्म या समाज नहीं।

व्याख्यान समाप्त हुआ तो हिन्दू विद्यार्थी बहुत बिगड़े हुए थे। आर्चबिशप को तो और लोगों ने घेर रखा था, कुछ ने मि. राबिन्सन को घेरा, कुछ ने अर्नेस्ट जोन्स को। कुछ ने मुझसे पूछा तो मैंने कहा, केम्ब्रिज ऐसे विद्या बुद्धि के केन्द्र में ऐसी एकांगी और संकीर्ण बातें सुनने की प्रत्याशा मैं नहीं करता था।

गुरुवार, 8 मई, '52

10 बजे से मि. एफ. एल. लूकस का व्याख्यान था। 'समालोचना में शैली' पर ही चल रहा है। एक वाक्य उनका बहुत अच्छा लगा—'My idea of good writing is extreme vitality and extreme control blended into a unity of being; poetry is the highest type of writing because it combines the vitality of vision and imagination with the control of prosody—vitality and control as embodied in a disciplined soldier. मुझे वड्र्सवर्थ के Law और impulse की भी याद आ रही थी।

दिन में यु. ला. में ईट्स का आत्मचरित पड़ता रहा। Unity of being पर जो बात मि. लूकस ने कही थी उसकी प्रतिध्वनि ईट्स में भी मिली। उन्होंने एक जगह लिखा था, "···There could be no aim for poet and artist except expression of a 'unity of being' like that of a perfectly proportioned human body."

कवि और कलाकार को अपने सृजन को व्यक्तित्व की एकता तो देनी ही चाहिए; इसके लिए उसे अपने में व्यक्तित्व की एकता प्राप्त भी करनी होगी।

5 बजे से मिल लेन में प्रसिद्ध इतिहासकार जी. एम. ट्रिविलियन के सभापतित्व में मि. लिपमैन का 'अमरीका की विदेश नीति' पर व्याख्यान था। भाषण बहुत ही स्पष्ट, सरल, सुलझा था। आज केवल प्रथम भाग हुआ। कल पूरा होगा।

रात को आधुनिक कवि प्लोमर की कविताएँ पढ़ीं।

अमरीका की विदेश नीति का इतना प्रचार है फिर भी वह आवश्यक समझता है कि उसके विद्वान अन्य देशों में जाकर उसकी नीति को समझायें। आक्सफ़र्ड और केम्ब्रिज में इंग्लैण्ड के सबसे अधिक बुद्धिमान नवयुवक मौजूद हैं। इनमें से ही आगे चलकर कितने ऊँचे-ऊँचे राज्य-पदों के अधिकारी होंगे। उनके बीच प्रचार राजनैतिक दूरन्देशी है। जो आज केम्ब्रिज की राय है वह कल इंग्लैण्ड की राय होगी। भारत की विदेश नीति के सम्बन्ध में यहाँ भारी भ्रम है। भारत सरकार कुछ इसी प्रकार का काम नहीं कर सकती? दूतावासों का कार्य सरकारी क्षेत्रों

तक सीमित रहता है। जन-सम्पर्क स्थापित करने के लिए दूसरे तरह के लोगों को आना चाहिए। अकेले पण्डित नेहरू के वक्तव्यों से यह काम नहीं होगा।

आधुनिकता का कोई भी रूप हमारे मन में हो, यह तो मानना पड़ेगा कि आधुनिकता की दौड़ में योरोप आज आगे है। एक तरह से योरोप हमारे लिए आधुनिकता का पर्याय हो गया है। आधुनिकता का एक वाह्य रूप है तो उसकी एक भीतरी मनोवृत्ति भी है। आधुनिक बनने के प्रयत्न में सम्भव है हम योरोप के वाह्य रूप के निकट आ जायें। हमारी भीतरी मनोवृत्ति न योरोपीय हो सकेगी, न होनी चाहिए, और न होने में हमारा कल्याण है। पर योरोप की इकाई के प्रति अत्यधिक सचेत होने के कारण कहीं हम उसे रूढ़ न बना दें। उसे आधुनिकता के सन्दर्भ में उत्तरोत्तर विकसित, परिष्कृत, उदात्त और व्यापक भी होना चाहिए। आधुनिकता की दौड़ में हमें एक आँख योरोप पर रखनी होगी—उसके वाह्य पर—केवल एक; दूसरी—भीतर को देखनेवाली—अपने देश की मनो-भूमि पर। हमारी मनोवृत्ति की विशिष्टता विश्व की प्रगति में अपना विशिष्ट योगदान दे सकती है।

शुक्रवार, 9 मई, '52

सुबह सेण्ट्रल लाइब्रेरी गया। पत्रिकाओं में दो लेख बहुत अच्छे पढ़ने को मिले। एक 'यूनान के बुद्धिवाद का पतन क्यों हुआ,' दूसरा Existentialism पर। Existentialism युद्धोत्तर बुद्धिवादियों का विशिष्ट दर्शन है।

दिन में युनिवर्सिटी लाइब्रेरी में रहा। ईट्स की आत्मकथा समाप्तप्राय है। पौने पाँच बजे लिपमैन के व्याख्यान का दूसरा भाग सुनने के लिए गया।

मि. लिपमैन ने कल अमरीका की पुरानी नीति से लेकर विल्सन की आदर्शवादी नीति तक का विकास बताया था। आज उन्होंने युद्ध के पश्चात् अमरीकी वाह्य नीति पर प्रकाश डाला। 19वीं शताब्दी में अमरीका ने अलग रहने की नीति बरती थी—isolationist. वह पच्छिम की ओर फैल रहा था और फ़िलिपाइन पर जाकर यह क्रम समाप्त हुआ। उन्होंने यह स्वीकार किया कि फ़िलिपाइन तक जाना सीमा के बाहर जाना ज़रूर था, पर अमरीका ने जिसे भी अपनाया, समानता का पद दिया, उसके प्रतिनिधि अमरीका की कांग्रेस में बैठे। फ़िलिपाइन से अमरीका ने पाया कम, उसे दिया ज्यादा। ख़ैर।

अमरीका का विकास और फैलाव इसी कारण सम्भव हो सका कि योरोप में शान्ति थी, शक्तियों का सन्तुलन था, और ब्रिटिश साम्राज्य का इतना प्रभुत्व था कि कोई उस सन्तुलन को भंग करने का साहस नहीं कर सकता था। बीसवीं शताब्दी में जर्मनी ने सिर उठाया। पुराना सन्तुलन बिगड़ा और युद्ध का अन्त होते-होते अमरीका को उसमें भाग लेना पड़ा। अमरीका ने अनुभव किया कि योरोप में शान्ति स्थापित हुए बिना अमरीका में शान्ति नहीं रह सकती। युद्ध की समाप्ति पर प्रेसीडेण्ट विल्सन ने उन्हीं आदर्शों से प्रेरित होकर 'लीग आफ़ नेशन्स' की स्थापना की जिनसे अमरीका की विभिन्न रियासतें एक हुई थीं। उनकी कल्पना थी कि जिस प्रकार Federation of American States है, उसी प्रकार Federation of the World भी बनाया जा सकता है। पर उनको ठीक नहीं समझा गया। मित्र-शक्तियों और जर्मनी, दोनों ने उनको बीच-बचाव करनेवाला भर माना।

दूसरे विश्वयुद्ध में अमरीका की स्थिति बिलकुल बदल गयी। सहायक शक्ति के स्थान पर वह स्वयं एक बड़ी शक्ति बन गया था। यह उसने जापान से युद्ध

करते समय अनुभव किया जो उसे लगभग अकेले लड़ना पड़ा। युद्धोपरान्त अमरीका ने अनुभव किया कि उसका उत्तरदायित्व योरोपीय शान्ति भी है। उसकी शक्ति उसी दिन मान ली गयी थी जब पूर्वी और पच्छिमी कमाण्ड दोनों उसके हाथों में सौंप दिये गये थे। किसी शक्ति द्वारा योरोप की शान्ति भंग करने पर समस्या अब यह नहीं थी कि अमरीका मित्र राष्ट्रों का साथ दे, बल्कि यह कि मित्र राष्ट्र अमरीका के साथ मोर्चे पर खड़े हों। कुछ लोगों का कहना है कि बीसवीं सदी में अमरीका को वही काम करना चाहिए जो इंग्लैण्ड ने 19वीं सदी में किया, पर यह कोई नहीं सोचता कि यदि अमरीका पराजित हुआ तो उसका काम कौन करेगा। अपने मिशन में सफल होने के लिए अमरीका को योरोपीय देशों की शुभ-कामना और सहयोग चाहिए।

पिछले युद्ध में ऐटलाण्टिक देशों ने रूस और चीन से सन्धि की। यह सन्धि किसी एकता, सद्भावना अथवा स्थायी आदर्शों पर नहीं हुई थी। दोनों पक्षों में जो अन्तर है वह हमें तब भी स्पष्ट था, अब भी है। मित्र राष्ट्रों की ग़लती यह हुई कि युद्ध की गर्मी में उन्होंने यह नहीं सोचा कि युद्धोपरान्त हमारे आपसी सम्बन्ध क्या होंगे, पराजितों के साथ कैसा व्यवहार किया जायेगा। इस ग़लती का परि-णाम हम भोग रहे हैं। जब यू. एन. ओ. की स्थापना हुई तब मित्र राष्ट्रों का ध्येय था कि सब राष्ट्र स्वतन्त्र और समान इकाई के रूप में उसमें सम्मिलित हों। रूस ने अपने अधिकार में आये देशों की इकाई तो रक्खी, पर उनकी सरकारों को मास्को की कठपुतली बना दिया।

बहरहाल अब अमरीका ने ऐटलाण्टिक देशों को संगठित करने का भार अपने ऊपर लिया है। जो योरोप की शान्ति भंग करेगा उसे अमरीका की शान्ति भंग करनेवाला समझा जायेगा। जो योरोप के विरुद्ध युद्ध छेड़ेगा वह अमरीका को चुनौती देगा। अमरीकी युद्ध-विशारदों ने हिसाब लगाया कि आकस्मिक आक्रमण की हालत में ऐटलाण्टिक शक्तियाँ तब तक उसका सामना करने के लिए सक्षम न हो सकेंगी जब तक जर्मनी का योगदान भी उन्हें न मिले। इस दृष्टि से पश्चिमी जर्मनी को सशस्त्र करने का विचार उठा। इसके साथ ही जर्मनी की एकता का प्रश्न जुड़ा है। मित्र राष्ट्र जर्मनी की स्वतन्त्रता और एकता दोनों के लिए प्रतिबद्ध हैं और उसका अनिवार्य स्थान ऐटलाण्टिक शक्तियों में मानते हैं; रूस पूर्वी जर्मनी पर अपना प्रभुत्व बनाये रखना चाहता है भले ही जर्मनी सदा के लिए विभक्त रहे। इस प्रकार जर्मनी की स्वतन्त्रता और एकता रूस के साथ समझौते के बिना असम्भव है। अगर जर्मनी के सम्बन्ध में रूस और मित्र राष्ट्रों में समझौता न हुआ तो आगामी युद्ध के बीज भी जर्मनी की धरती में बोये हुए हैं।

राजनीति के दाँव-पेच में मेरी पैठ नहीं। मुझे व्याख्यानदाता के विचार सुलझे हुए लगे। समस्या को उन्होंने स्पष्ट किया। उसी समस्या को देखने का एक रूसी दृष्टिकोण भी है। उसके पक्ष में भी सच्चाई हो सकती है। मैं तो केवल यह देख रहा हूँ कि एक युद्ध किस प्रकार युद्ध की समाप्ति के लिए लड़ा जाता है और जब युद्ध समाप्त होता है तो वही दूसरे युद्ध का बीज बन जाता है। दूसरे महायुद्ध के बीज पहले युद्ध की सन्धि की शर्तों में थे और दूसरे महायुद्ध की सन्धियाँ तीसरे महायुद्ध के बीजों को छिपाये बैठी हैं।

रात को किंग्स कालेज गया। वहाँ आज केम्ब्रिज की कम्यूनिस्ट सोसाइटी की ओर से लीड्स युनिवर्सिटी के प्रो. कीटल का 'मार्क्सिज्म और साहित्य' पर व्याख्यान था। उपस्थिति साधारण थी। कोई विशेष उत्साह श्रोताओं में नहीं था। व्याख्यान

के पश्चात् जो प्रश्न किये गये उनसे पता लगा कि आलोचना की दृष्टि से ही लोग इस व्याख्यान को सुन रहे थे। दलीलें अपने देश में भी बहुत सुन चुका हूँ—उसी का पिष्टपेषण था। साहित्य सामाजिक प्रेरणा से अनुप्राणित होना चाहिए, साहित्य को जन-शक्ति को प्रोत्साहन देना चाहिए, साहित्य को सध्येय होना चाहिए। एक बात उनकी अच्छी लगी। उन्होंने कहा कि चूँकि मार्क्स ने कहा कि सब साहित्य प्रोपेगेण्डा होता है, प्रायः मार्क्सवादी अपने जोश में सारे प्रोपेगेण्डा को साहित्य समझने की भूल करते हैं। (Because all literature is propaganda, it does not follow that all propaganda is literature.) साहित्य को और कुछ होने के पहले साहित्य होना चाहिए। प्रगतिशील साहित्य प्रगतिशील समाज को अपने साथ लेकर चलता है। पतनशील समाज का साहित्य भी पतनशील होता है। दो प्रश्नोत्तर इस प्रकार थे :

प्र.—लेखक को किसके विषय में लिखना चाहिए ?

उ.—उसको लिखना चाहिए और वह लिखेगा भी उसी विषय पर जिसे वह जानता है; पर उसे यह भी जानना चाहिए कि उसके चारों ओर जानने योग्य है क्या। सब बड़े लेखक अपने युग, देश, समाज की समस्याओं के प्रति भली भाँति सचेत होते हैं।

प्र.—क्या समाज में एक ही समय पर कई तरह की प्रवृत्तियाँ नहीं काम करती रहतीं, कभी-कभी तो एक-दूसरे की विरोधी भी ?

उ.—सभी सप्राण और स्वस्थ समाजों में एक स्वस्थ प्रवृत्ति होती है। कलाकार को इससे एकात्म होना चाहिए। मार्क्सिज़्म निश्चित रूप से यह चाहता है कि कोई कलाकार अपने में ही सिमटकर न रह जाये। अपने में ही सिमटकर कोई लेखक कभी बड़ा नहीं हुआ। लेखक जितना ही बड़ा होता है उतना ही वह समाज के सबसे सजग अंग से प्रतिबद्ध होता है।

शनिवार, 10 मई, '52

आजकल सुबह आसन करता हूँ। इतने नियम से देश में भी शायद ही कभी किये हों। परिणाम भी दिखायी दे रहा है। मेरी तबियत बहुत ठीक है। खाँसी-ज़ुकाम जाता रहा है। काम भी मैं ख़ूब कर लेता हूँ और रात को नींद भी अच्छी आती है। आज से मैंने थोड़े व्यायाम का क्रम भी चलाया है। 15 मिनट आसन, 15 मिनट व्यायाम। चलना दिन-भर में कई मील हो जाता होगा।

तेजी का पत्र मिला। कुछ चित्र भी साथ आये जो मेरे प्रयाग से चलते समय स्टेशन पर लिये गये थे। वे चाहती हैं कि सप्ताह में तीन पत्र उन्हें लिखा करूँ। मेरा पत्र नहीं मिलता तो, लिखा था, उनका दिमाग़ ख़राब हो जाता है, और परिणाम बच्चों को भोगना पड़ता है, यानी उनको बात-बात पर सज़ा मिलती है। इससे मुझे बहुत दुःख हुआ। उत्तर मैंने तुरन्त लिख दिया। पत्र में इसी बात पर ज़ोर दिया कि उनकी और बच्चों की याद में और पत्रों की संख्या में कोई अनुपात नहीं हो सकता; हो तो मैं दिन-भर पत्र ही लिखूँ तो भी कम होगा। फिर बच्चों को पीटना तो भारी भूल है। अपनी कमज़ोरी भी है। मैंने तो जब-जब बच्चों को सज़ा दी है, सचमुच वह मेरी ही मानसिक सज़ा हो गयी है। मैंने अनुभव किया है कि मेरी ही ग़लती थी, मुझमें कमी थी। हमारे बच्चे सचमुच हमारी ग़लतियों से कितना कष्ट पाते हैं, और वे उदार-अबोध कितनी जल्दी हमारे अपराधों को क्षमा कर देते हैं, भुला देते हैं। तेजी को घर-भर की चिन्ता है, और ऐसे समय दिमाग़

का चिड़चिड़ा होना स्वाभाविक है। अगर पत्रों से ही उनको कुछ शान्ति-सान्त्वना मिलती है तो मैं हर दूसरे दिन पत्र लिख दिया करूँगा। आशा है, उनको अब शिकायत का मौक़ा न रहेगा।

प्रो. विली ने 18 ता. का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया है। 16 को अपने यहाँ शेरी-पार्टी पर बुलाया है। जानते हैं मैं तो पीता नहीं। लिखा है मेरे लिए कुछ non-alchoholic drink का भी प्रबन्ध रहेगा।

1 बजे तक यु. ला. में रहा। ईट्स की 'आटोबायोग्रैफ़ी' समाप्त कर ली। ईट्स पर मैंने जितना इतने दिनों में पढ़ा है उससे अब मैं भी देखता हूँ कि उन पर भारतीय प्रभाव इतना नहीं कि उसे लेकर डी. लिट्. तो दूर, डी. फ़िल. की थीसिस भी लिखी जा सके। हेन ने पहले ही आगाह किया था। हाँ, इस पर दो-एक लेख लिखे जा सकते हैं।

एक दूसरा विषय कई दिनों से मेरे मन में उठ रहा था, Image, Magic and Myth in W. B. Yeats. इस पर कुछ ज़्यादा मसाला मिल सकता है। परन्तु अगर image से कविता में प्रयुक्त imagery का भी अर्थ लिया गया तो यह बहुत विस्तृत विषय हो जायेगा, और ऐसा भी नहीं जिस पर पहले काम न हो चुका हो। हेन ने ही उनके रूपकों-प्रतीकों पर बहुत कुछ लिखा है।

एक और विषय मेरे दिमाग़ में है, जिस पर खोज की जा सकती है—The Irrational in W. B. Yeats. इस विषय पर किसी ने अभी तक नहीं लिखा; साथ ही उसमें ऊपर के दोनों विषय सम्मिलित किये जा सकते हैं। इस पर इतनी बड़ी थीसिस हो सकती है जो डी. लिट्. के लिए प्रस्तुत की जा सके। दस बरस यूनिवर्सिटी में काम कर, कई विद्यार्थियों की थीसिस सही और सुधार कर, एक विद्यार्थी को अपने निर्देशन में डी. फ़िल. दिलाकर मैं केम्ब्रिज-आक्सफ़र्ड केवल डी. फ़िल. करने के लिए नहीं आया हूँ। अगर यहाँ से सामग्री एकत्र कर मुझे भारत में थीसिस प्रस्तुत करनी है तो डी. लिट्. के लिए होनी चाहिए। अपनी युनी. से बहुत सहयोग की आशा तो नहीं, पर प्रयत्न करना तो काम है। शायद इसके लिए लड़ना भी पड़े।

यह विषय मनोविज्ञान और दर्शन से सम्बन्ध रखता है, और इनमें भी मेरी रुचि रही है। डी. लिट्. की थीसिस का कोई दार्शनिक आधार होना भी चाहिए। मि. हेन से अगली मुलाक़ात में यह बात उनके सामने रक्खूँगा। यदि उन्होंने अपनी सहमति दे दी तो सी. एम. बावरा को पत्र लिखकर उन्हें भी आक्सफ़र्ड में अपने कार्य की पूर्व रेखा दे सकूँगा। यदि मि. हेन ने विषय पसन्द कर लिया तो बावरा भी इसे मान लेंगे, ऐसी आशा है। मुझे अपने काम की निश्चित दिशा बनानी है। मूल काम मेरा यही होगा। वैसे डॉ. लीविस की देख-रेख में मैं आधुनिक कविता और समालोचना का अध्ययन भी करता रहूँगा। भारत लौटकर यदि डाक्टरेट कर सका तो यहाँ आने का कुछ स्थूल परिणाम दुनिया को दिखा सकूँगा। केम्ब्रिज और आक्सफ़र्ड जो छाप मेरे मन पर छोड़ेंगे उनका प्रभाव तो बड़ी सूक्ष्म रीति से मेरे जीवन और मेरी रचना पर पड़ेगा।

लाइब्रेरी से लौटते समय मन में बड़ी प्रसन्नता थी—जैसे मुझे मंज़िल दिख गयी हो, चलना भर बाक़ी हो। यात्री को इतने से भी कम तसल्ली नहीं मिलती। The Irrational in Yeats—मुझे अपने समय का अधिक भाग इसी को देना चाहिए; गौण रीति से आधुनिक कविता का भी अध्ययन चलता रहे। आधुनिक कविता में भी ईलियट को केन्द्र बनाना होगा। उनके पश्चात् तो सचमुच कोई

खास काम नहीं हुआ। बाद के नये कवियों की रचनाएँ पढ़ता हूँ तो उन पर ईलियट की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। कहीं कुछ मौलिकता होती भी है तो उसमें शक्ति नहीं होती। प्रायः वह कवि की दुर्बलता होती है। किसी बहुत बड़े कवि का साहित्य में आ जाना ख़तरे से ख़ाली नहीं होता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कई पीढ़ी के बंगाली कवियों को पंगु बना दिया। ईलियट ने भी कुछ ऐसा ही किया है। अब तो समय आ गया है, ईलियट के प्रभाव से लोग निकलें। बहरहाल नवागन्तुकों में कोई सशक्त स्वर अभी तो अंग्रेज़ी के काव्य-क्षेत्र में सुनाई नहीं पड़ता। ईलियट पर कम साहित्य नहीं है। मेरे पास जितना समय है वह तो एक के लिए भी अपर्याप्त है।

लंच के बाद सेण्ट्रल लाइब्रेरी में पत्र-पत्रिकाएँ देखता रहा। खाना खाने के बाद दत्त के यहाँ चला गया। उनके दो-एक मित्र और आ गये थे। उन्होंने मेरी कोई कविता सुनने की इच्छा प्रकट की। 'तन के सौ सुख···' सुनाई। फिर हम दोनों घूमने निकल पड़े। आसमान में बादल थे, पर बहुत घने नहीं। हम लोग कैम के पुल पर चले गये। दत्त शाम को लन्दन से थके लौटे थे, न जाने क्यों इस सोच में थे कि जीवन कहाँ जाकर लगेगा; लोग ध्येय बनाते हैं, पर जब आदमी ध्येय तक पहुँचता है तो उसका आकर्षण ख़त्म हो जाता है; ध्येय बदल जाता है, मनुष्य फिर संघर्ष में पड़ जाता है; क्या जीवन यही है—A tale told by an idiot full of sound and fury signifying nothing.

मैं उन्हें समझता रहा कि यह मैकबेथ का परिणाम है जिसने जीवन में न कुछ अच्छा देखा न किया। ऐसे आदमी को जीवन व्यर्थ प्रतीत हो तो आश्चर्य क्या है। ऐसी आशंका और निराशा के मूड में भाव-प्रवण व्यक्ति अक्सर पड़ जाते हैं। एक बार ईट्स भी पड़े थे। Reveries के अन्त में उन्होंने लिखा था, "When I think of all the books I have read, and of the wise words I have spoken, and the anxiety I have given to parents and grand-parents and of the hopes that I have had, all life weighed in the scales of my own life seems to me a preparation for something that never happens."

मंज़िल, मुमकिन है, धोखा दे, पर यात्रा कभी धोखा नहीं देती। समझदारी हर क़दम को मंज़िल समझने में है। हर means को end भी समझो। दत्त ने कहा कि एक बार उन्होंने डी. पी. मुकर्जी से पूछा था कि What is the goal of life? उन्होंने उत्तर दिया कि The goal of life is the pursuit of life. मैंने कहा कि जो मुकर्जी ने कहा वही मेरा भी मतलब है। जीवन का अन्त मंज़िल नहीं, जीवन का अन्त यात्रा है—ऐ मुसाफ़िर! यात्रा का रस लेना सीखो, मंज़िल कहाँ है, है भी कि नहीं, कौन बताये; पहुँचते-पहुँचते तुम क्या से क्या हो जाओगे, तुम्हारी आँखें बदल जायेंगी, दिल बदल जायेगा, दिमाग़ बदल जायेगा, और मंज़िल तक तुम पहुँच भी जाओगे तो वह शायद तुम्हें निराश करेगी, श्रम-साधना के अयोग्य लगेगी; पर यात्रा के हर क़दम अपने हैं; हर क़दम रखने का आनन्द लो।

जब मनुष्य का दिमाग़ परेशान हो तो उसे दलील से कुछ समझाना मुश्किल होता है। मेरी बात दत्त को जँच नहीं रही थी। ऐसे समय केवल एक प्रकार की भाषा है जो समझ में आती है—कविता की भाषा। जब मनुष्य को कोई चीज़ अपील न करे तो कला को उसके ऊपर अपना जादू आज़माना चाहिए। मैंने कहा, तुमको अपनी एक कविता सुनाऊँ? और मैंने उन्हें सुनाया, 'जीवन की आपाधापी

में कब वक़्त मिला'···शब्दों ने अपना काम किया। दत्त मेरे भाव-संसार में उठ गये थे। कविता समाप्त होने के बाद मेरी पंक्ति दोहराते रहे, 'मैं कितना ही भूलूँ, भटकूँ या भरमाऊँ; है एक कहीं मंज़िल जो मुझे बुलाती है।' जैसे उनके सब सन्देहों का क्षण-भर के लिए हल मिल गया था। बादल हट रहे थे, चाँद की रोशनी फैलने लगी थी। कैम के पानी में तटवर्ती पेड़ों और इमारतों की छायाएँ कुछ स्पष्ट होने लगीं। कुछ प्रेमी-प्रेमिकाओं के जोड़े जल्दी-जल्दी उधर से इधर, इधर से उधर निकल गये। पुल के नीचे पानी धीरे-धीरे बहता चला जा रहा था, जैसे कहता हुआ, 'है एक कहीं मंज़िल जो मुझे बुलाती है'। दत्त को सहसा याद आया—कमला अकेली है। मैंने कहा, मंज़िल बुला रही है—अब मत कहना मंज़िल कहीं नहीं। हर क्षण यात्रा और हर क्षण मंज़िल है।

रविवार, 11 मई, '52

सुबह पीठ में कुछ दर्द था। या तो रात को सर्दी लगी, या कल के व्यायाम के कारण। शरीर, कोई परिवर्तन हो, फ़ौरन पहचान जाता है। आसनों से कुछ भी कष्ट नहीं होता था। व्यायाम में शायद उतनी ही मेहनत पड़ी, पर आज दर्द का अनुभव हुआ। व्यायाम मैंने पूरा किया। तीन-चार रोज़ में शरीर अभ्यस्त हो जायेगा।

बम्बई से चलते समय ज़रूरी काग़ज़ों को छाँटा था, पर सब ऊपर-नीचे फ़ाइल में रख लिये थे। आज सवेरे बैठकर सबको तरतीब दी। कुछ पत्रादि लिखे।

सबसे ज़रूरी पत्र लिखना था श्री बी. एन. कौल को—नेहरूजी के निजी सचिव। अगर प्रधानमन्त्री की स्वीकृति मिल गयी तो मुझे सम्भवत: 5000) की छात्रवृत्ति और मिल जायेगी। 8000) जो पहले उन्होंने दिलवाये थे उससे 6 महीने के केम्ब्रिज और 9 महीने आक्सफ़र्ड रहने का खर्च पूरा हो जायेगा। लौटने के लिए रुपये घर में मँगाने पड़ेंगे। यहाँ से कुछ खरीदना चाहूँ तो उसके लिए और अधिक रुपयों की आवश्यकता होगी। कुछ पुस्तकें तो यहाँ से ख़रीदनी पड़ेंगी। कुछ कपड़े भी लेना चाहता हूँ। एक कैमरा और एक टाइपराइटर यहाँ से ले जाने का मेरा बहुत मन है। 'सोपान' अगर लीडर प्रेस ले लेता है तो सम्भव है, इसके लिए 5000) अग्रिम मिल जायें। बसन्तकुमारजी को पत्र लिखना है। इससे तेजी के घर के ख़र्च के विषय में निश्चिन्त हो सकूँगा। सेण्ट्रल बुक डिपो से एडवान्स की आशा नहीं। बहुत किफ़ायत से रहने पर भी मेरा ख़र्च 1 पौं. प्रतिदिन आ रहा है। जब तक छात्रवृत्ति का निश्चय नहीं होता तब तक मुझे बहुत सँभलकर खर्च करना चाहिए।

शाम को दत्त के घर गया। उन्होंने अपने एक मित्र मि. मैकफ़र्सन को चाय पर बुलाया था। मुझे उससे मिलाना चाहते थे। मैक डाक्टरेट के लिए यहाँ शोध कर रहा है। उसका विषय है—British Investment in India in the 19th Century, अर्थशास्त्र का विद्यार्थी है। हाईलैण्ड का रहनेवाला है और अपने को अंग्रेज़ कहलाने से स्काच कहलाना ज़्यादा पसन्द करता है। सेना में रह चुका है, भारत में रहा है। थोड़ी-बहुत हिन्दुस्तानी बोल लेता है। स्काटलैण्ड की समस्या पर उससे बातचीत हुई। 15 रोज़ हुए कुछ स्काच नेताओं के वक्तव्य 'स्कोन' के बारे में पढ़े थे। 'स्कोन' वह पत्थर है जो वेस्टमिन्स्टर में उस कुर्सी के नीचे रक्खा है जिस पर राजगद्दी के समय इंग्लैण्ड का राजा बैठता है। कहते हैं यह जेम्स

प्रथम के समय में स्काटलैण्ड से लाया गया था। कुछ दिन हुए कुछ स्काच नवयुवकों ने इसको चुरा लिया था; बड़ी सनसनी फैली; बाद को पत्थर का पता लगा और वह फिर लाकर वेस्टमिन्स्टर एबी में रक्खा गया। स्काटलैण्ड वाले चाहते हैं कि वह पत्थर उन्हें लौटा दिया जाये, पर चर्चिल ने कह दिया है कि पत्थर वापस नहीं किया जायेगा। इसी पर कई स्काच नेताओं ने आवेशपूर्ण घोषणाएँ की थीं। इन्हीं दिनों ईट्स का आत्मचरित पढ़ते हुए भी एक स्थान पर देखा कि एक बार ईट्स माडगान के साथ वेस्टमिन्स्टर में थे, और स्कोन को देखकर उनको भी अभिलाषा हुई थी कि उसको आयरलैण्ड उठा ले जायें। आइरिश कहते हैं कि पत्थर मूलतः उनका ही है। पत्थर तो कोई चीज़ नहीं, पर उसके साथ बहुत-सी भावनाएँ जुड़ गयी हैं; इस कारण अब वह पत्थर ही नहीं रह गया; अब वह राष्ट्र की अनेक भावनाओं का प्रतीक है। स्काच चाहते हैं कि उनकी भी अपनी पालियामेण्ट हो जैसे आयरलैण्ड में अल्सटर की है। वे एडिनबरा को अपनी राजधानी बनाना चाहते हैं। पर मैक ने बताया कि उनका राष्ट्रीय आन्दोलन बहुत प्रबल नहीं। हाईलैण्ड और लो लैण्ड में काफ़ी अन्तर आ गया है। लो लैण्डवाले ज्यादातर इंग्लैण्ड के साथ हैं। हाईलैण्ड वाले प्रेसविटेरियन चर्च को मानते हैं, लो लैण्डवाले प्रायः ऐंग्लिकन चर्च को। धर्म की यह विभिन्नता आयरलैण्ड में भी है। आयरलैण्ड के निवासी रोमन कैथलिक हैं, अल्सटर के ऐंग्लिकन। आयरलैण्ड का कहना है कि जब तक अल्सटर उसमें सम्मिलित नहीं होता तब तक उसकी एकता अपूर्ण है। हाईलैण्ड के स्काच अपने को उसी केल्टिक रेस का मानते हैं जिसके कि आइरिश लोग, आइरिश केल्टिक लोगों ने तो अपना स्वतन्त्र राज स्थापित कर लिया लेकिन स्काटलैण्ड के केल्ट अभी तक अंग्रेज़ों की प्रभुता के ही अंग हैं। मैकफ़र्सन का स्वप्न था कि कुछ दिनों में स्काटलैण्ड की अपनी पार्लियामेण्ट होगी। अंग्रेज़ लोग पहले आयरलैण्ड की माँग पर भी हँसते थे, परन्तु आयरलैण्ड ऐसा स्वतन्त्र हुआ कि उसने कामनवेल्थ में रहना भी अस्वीकार कर दिया। अगर स्काच लोगों की माँग भी समय रहते स्वीकार न हुई तो सम्भव है आयरलैण्ड के इतिहास की पुनरावृत्ति हो। मैक ने बताया कि राष्ट्रीय अलगाव की भावना वेल्श लोगों में नहीं है, पर अपनी संस्कृति को क़ायम रखने के वे आग्रही हैं। वे वेल्श बोलते हैं, और उसमें आजकल भी उच्चकोटि की कविता लिखी जाती है। आयरलैण्ड के बहुत प्रयत्न करने पर भी गेलिक भाषा का पुनरुद्धार नहीं हो सका। कल उन्होंने अपने एक ऐसे मित्र से परिचय कराने को कहा है जो डबलिन का निवासी है और यहाँ आयरलैण्ड के इतिहास पर काम कर रहा है। यदि मुझे डबलिन जाना हुआ तो वह मेरे लिए बहुत सहायक सिद्ध होगा। भारत की राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर भी मैक से मेरी बातें हुई।

दत्त के यहाँ से लौटकर खाना खाया—आज तो ठण्डे खाने का दिन था—गोभी के कच्चे पत्ते, कच्चा टमाटर, चीज़, उबला अण्डा; कुछ केक-पेस्ट्री भी।

खाने के बाद घूमने निकला। डोनल्ड के कमरे गया। उसे 18 मई का निमन्त्रण देना था। वह पट्ठा कमरे में रहता ही नहीं। उसका कमरा केम्ब्रिज के विद्यार्थी का नमूने का कमरा—बढ़िया पुस्तकें, बियर और शरबत की बोतलें, सुन्दर फूलों से सजा हुआ गुलदान, एक टोकरी में सजे फल, मेज़ पर कुछ चाकलेट-बिस्कुट, एक कोने में ग्रामोफ़ोन और रेकार्ड्स, छोटा-सा रेडियो-सेट, बिजली का हीटर, कमरे की दीवारों पर उच्चकोटि के कलाकारों के चित्रों की प्रतिकृतियाँ, टेबिल पर एक पोर्टेबिल टाइपराइटर, बन्द अलार्म घड़ी और कुछ माशूकाओं की तस्वीरें···कमरा खला!

लौटते समय सपरू मिल गया। 15 को केम्ब्रिज मजलिस इण्डियन क्रिकेट टीम को भोज दे रही है। 12 शि. का टिकट मैंने भी ले लिया।

सोमवार, 12 मई, '52

आज 12 मई है। आज से ठीक एक महीना पहले मैं बम्बई से रवाना हुआ था, 13 को इंग्लैण्ड पहुँच गया था। 30 दिन बीत गये। इन तीस दिनों में जीवन के जितने नये अनुभव हुए उतने इतने कम समय में कभी नहीं हुए। 12 अप्रैल का सारा दृश्य फिर आँखों के सामने है···तेजी कितनी घबरायी थीं, चलते समय उन्होंने कहा था, खूब पढ़ना, खुश रहना, तन्दुरुस्ती ठीक रखना···हम लोगों को न भूलना, तुम कितनी ही दूर रहो, हमारे आधार तुम्हीं हो···। इसके बाद वे कुछ न कह सकी थीं। दूर-दूर से आँसू ही देख सका था। उनका गाल लाल था। उन्होंने सपना देखा था कि अगली अप्रैल में बच्चों का कुछ प्रबन्ध करके वे भी एक-दो महीनों को इग्लैण्ड आ जायेंगी और हम साथ ही लौटेंगे। शायद ही सम्भव हो।

सेण्ट्रल लाइब्रेरी गया, जल्दी-जल्दी अखबार देखे। राजाजी ने जिन शब्दों में अपने को कम्यूनिस्टों का या कम्यूनिस्टों को अपना दुश्मन घोषित किया था वे कुछ शिष्ट नहीं लगे।

कुछ पत्र लिखे। मार्जरी और एलेन को 18 के लिए निमन्त्रित किया है। अगर आ जायें तो मुझे बड़ी खुशी हो।

लंच के बाद यु. ला. गया। ईट्स की आत्मकथा पर कुछ नोट्स ले रहा हूँ, दो-तीन रोज़ लगेंगे।

शाम को बाहर निकला तो पीटर आल्ट मिल गये। कुछ देर उनसे ईट्स के सम्बन्ध में बातें होती रहीं। उन्होंने मेरे नये विषय को पसन्द किया है—The Irrational in Yeats; पर उन्होंने कहा कि मैं मि. हेन से इस पर परामर्श कर लूँ। उनसे विदा होकर आगे बढ़ा तो किताबों की एक दूकान पर शो केस में लगा केम्ब्रिज का नक़्शा देखने लगा। इतने में पीटर आल्ट भी आ गये और उसी नक़्शे को देखने लगे। मैंने उनसे कहा, इतने छोटे-से नक़्शे में कितनी चीज़ें दिखा दी गयी हैं! पीटर आल्ट बोले, अंग्रेज़ों का देश तो बहुत छोटा है पर उन्होंने उसे बहुत अच्छी तरह पैक कर रक्खा है—They are the people with intense potentiality and it is bubbling out of their country. Once upon a time it spread all over the globe. मि. पीटर आल्ट आइरिश हैं और अंग्रेज़ों के विषय में ज़रा व्यंग्य से बातें करते हैं।

खाना खाकर बाहर निकला था कि दत्त मिल गये। हम लोग कुछ देर ट्रिनिटी स्ट्रीट में घूमते रहे। खुले, नीले आसमान के बैक-ग्राउण्ड में कालेजों की इमारतें बड़ी भव्य लग रही थीं। हम लोग फ़िट्ज़विलियम हाउस तक गये। फिर डोनल्ड के कमरे आये। हस्ब-दस्तूर वह कमरे में नहीं था। वहाँ से दत्त अपने 'डिग'—'डिग' नहीं घर—चले गये, घरनी जो साथ है। 'डिग' में तो मैं रहता हूँ। 15 को मिलेंगे। उस रात को केम्ब्रिज मजलिस का भोज है—इण्डियन क्रिकेट टीम के स्वागत में।

दो रोज़ से रात को सर्दी ज़्यादा लग रही थी; लैण्डलेडी से मैंने कहा तो वह कुछ मुसकरायी—मई में इतनी सर्दी लगती है तो दिसम्बर-जनवरी में क्या लगेगा!—भूत। सुनता हूँ बर्फ़ पड़ती है तो सबकुछ पर सफ़ेदी छा जाती है। बिस्तर में एक और कम्बल लगा दिया है। एक फ़र का तकिया भी और रख गयी है—शायद छाती से लगाकर सोने को। जब खुश रहती है तब जो काम कहो कर

देती है; जब मिज़ाज ठीक नहीं रहता तो बात-बात पर तुनक उठती है। रहती है अपने कमरे में, पर हर कमरे का हाल उसे मालूम रहता है, आप किसके कमरे में गये, कौन आपके कमरे में आया, किस वक़्त बाहर से लौटे, कितनी रात तक रोशनी जलाये रहे, किस रात ज़ीने की बत्ती जलती छोड़ दी, किस रात कमरे की। पूरी जासूस है; सुनता हूँ यहाँ की लैण्डलेडीज़ विद्यार्थियों की confidential report भी प्राक्टर के पास भेजती हैं, खासकर विद्यार्थियों के रात को कमरे में न सोने की। केम्ब्रिज की हाज़िरी तो रात केम्ब्रिज में सोने की ही मानी जाती है !

सोने जा रहा हूँ। बिस्तर देखकर तो आशा है कि शायद ज़्यादा अच्छी नींद आयेगी। आज बार-बार यही ख़याल आ रहा है कि यहाँ आये एक महीना बीत गया। इस मास का कैसा उपयोग कर सका हूँ ? जितना काम मैं कर सकता था उतना मैंने किया है, बल्कि कभी-कभी उससे ज़्यादा भी। यदि एक वर्ष इसी प्रकार काम करता रहा तो निश्चय मैं यहाँ से कुछ लेकर जाऊँगा। मुझे अपने से असन्तोष नहीं है। समय और श्रम को अभी तक मैंने ठीक दिशा में लगाया है। मैंने तो अपने आपको फिर से विद्यार्थी समझ लिया है। और जिस संयम-नियम से मैंने यहाँ एक मास काम किया है उससे शायद अपने जीवन में पहले मैंने कभी नहीं किया। श्रम व्यर्थ नहीं जाता। फल की बात मैं भविष्य में नहीं सोचता। तप और श्रम में ही जिस समय आनन्द आने लगे उसी समय तप-श्रम को सफल समझ लेना चाहिए—I am enjoying my work and that is enough. Whatever reward of my labour may be later, the greatest will be in my estimate always the joy that I have and I am deriving out of my work. The ink is over and so is the day.

मंगलवार, 13 मई, '52

सुबह आज की लेक्चर लिस्ट देखी। 10 से 11 तक लूकस का लेक्चर था, 11 से 12 तक हेन का, 12 से 1 तक रीलैण्ड का। तीनों ही लेक्चर सुनने का मैंने निश्चय किया। लेक्चरों के लिए जाने से पहले अमित को भेजने के लिए Children's Map of London का पार्सल बनाया, उसी में इंग्लैण्ड के 'ट्वाय क्वायन' भी रख दिये जो मार्जेरी ने भेजे थे।

शैली पर ही मि. लूकस का व्याख्यान अभी चल रहा था। Style is the man तो बहुत पुरानी कहावत है। उसी की व्याख्या कर रहे थे। उन्होंने उसके उल्टे को भी ठीक बताया—A man is his style. अगर लेखक, लेखक माने या कहे जाने योग्य है तो वह अपना असली रूप अपनी शैली में प्रकट कर देता है; और जो अपनी शैली से भी अपने को छिपा ले वह इस योग्य होता भी नहीं कि उसे देखा या जाना जाये। क़लम अपने से बेईमानी करनेवाले को क्षमा नहीं करती, यानी उसके लेखन को उपेक्षणीय बना देती है। शैली की पहली आवश्यकता है कि लेखक उसमें मौजूद हो। शैली के विविध रूप आकर्षक हैं, बशर्ते कि वे जीवन्त हों और लेखक की ईमानदारी के प्रमाण।

गद्य और कविता की तुलना करते हुए उन्होंने कहा कि Poetry is creation and prose is construction. कविता सृष्टि है; गद्य गढ़न्त है। कविता जन्म है—प्राकट्य है—अपने सम्पूर्ण, सम्यक् रूप में—उसके समस्त अंग मिलकर, इकाई बनकर जन्म लेते हैं। कविता के साथ यह नहीं किया जा सकता कि उसके विचारों या भावों को पहले लिख लिया जाये, फिर उपयुक्त अलंकारों को ढूंढा जाये, फिर

पद्य-रचना के नियमों का पालन करते हुए भाषा में उनको अभिव्यक्त किया जाये। ऐसी कविता सृष्टि नहीं है, जन्म नहीं है, creation नहीं है। ऐसी कविता को अधिक से अधिक पद्य (Verse) की संज्ञा दी जा सकती है। गद्य के तत्त्वों का अलग-अलग निरूपण हो सकता है, उनका विश्लेषण हो सकता है, उनको रखने-जोड़ने का सिलसिला आदि भी सोचा-विचारा जा सकता है। इसलिए गद्य को गढ़न्त कहा गया है। परन्तु गद्य की रेंज बहुत फैली है—एक ओर बेन्थम का गद्य है—गद्यात्मक गद्य, दूसरी ओर ब्राउन अथवा शेली का गद्य है—काव्यात्मक गद्य। गद्य एक ओर कविता की सीमा छूता है दूसरी ओर विज्ञान अथवा दर्शन की—जहाँ कवित्व वर्ज्य है। दोनों के बीच कुछ गद्य ऐसा भी है जो भावों की गहनता को विचारों की सुस्पष्टता से व्यक्त करता है।

अन्त में लूकस ने गद्य की विभिन्न शैलियों के उद्धरण सुनाये। उनके पढ़ने का तरीक़ा बहुत प्रभावकारी था। हर शैली के गुण जैसे उनके पढ़ने से ही व्यक्त हो जाते थे—कौन शैली चित्रमय है, कौन भावनामय, कौन कवित्वपूर्ण, कौन विचारप्रधान, कौन नीरस, कौन अत्यन्त शुष्क और कौन गद्य के सर्वश्रेष्ठ गुणों को लिये हुए भी काव्य के ओज से आलोकित।

मि. हेन का व्याख्यान था,—'शेक्सपियर के मूलपाठ पर आलोचनात्मक टिप्पणी'। उन्होंने नाटकों से कुछ ऐसे उद्धरण लिये थे जिन पर परीक्षाओं में अक्सर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखने के लिए कहा जाता है। उद्धरण एक अलग पर्चे पर छपे थे जो व्याख्यान के पूर्व विद्यार्थियों में बाँट दिये गये। उद्धरण प्रायः मेरे पढ़े हुए थे और उनका सतही अर्थ भी मैं जानता था पर मि. हेन ने रूपक, भाषा, छन्द-लय योजना, भावना-घटना-पात्र से उसके अनिवार्य सम्बन्ध पर इतनी मौलिक बातें बतायीं कि मुझे लगा कि जैसे इतनी गहराई में पहली बार उतर रहा हूँ। व्याख्यान इतना अच्छा था कि ख़त्म होने पर लड़कों ने देर तक ताली बजायी।

मि. रीलैण्ड का लेक्चर 'Form and Diction in Modern Poetry' पर था। उनके कहने का तात्पर्य यह था कि आधुनिक प्रयोगों की भी एक परम्परा है। यह सब प्रयोग किसी-न-किसी रूप में पहले भी हो चुके हैं, परन्तु वे सामयिक धारा से अलग थे इसलिए उन पर उस समय ध्यान नहीं दिया गया। कुछ नये प्रयोगों के उद्धरण देखकर उन्होंने पुराने प्रयोगों से उनकी तुलना की। रीलैण्ड कविता का पाठ बड़ा ही सुन्दर करते हैं।

आज लूकस और रीलैण्ड के मुख से इसका नमूना मिला कि गद्य और पद्य कैसा पढ़ा जाना चाहिए। रीलैण्ड ने जो कविताएँ पढ़ीं वे सब उन्हें ज़बानी याद थीं; परचा नाम-मात्र को उनके सामने था पर वे तो उनकी आत्मा में प्रविष्ट होकर ध्वनि-संकेत से उनका अर्थ स्पष्ट करते थे। उनके पढ़ने से ऐसा लग रहा था जैसे कविता का मूल अर्थ उसके 'फ़ार्म' में ही छिपा है। कवि फ़ार्म को यों ही नहीं चुनता। जैसे उसके भाव और विचार उसी 'फ़ार्म' में व्यक्त हो सकते थे, दूसरे में नहीं। पर 'चुनना' कहना तो लूकस के शब्दों में भूल होगी। कविता तो कण्टेण्ट और 'फ़ार्म' को एक साथ लेकर जन्मती है। उनका विश्लेषण तो बाद को समालोचक करते हैं। कवि का काम कविता के समस्त अंगों को 'व्यक्तित्व की इकाई' में ढालना है। इसलिए कविता जन्म है, गढ़न्त नहीं। गढ़ना धीरे-धीरे सोच-सोचकर होता है, जन्म एक साथ, एकबारगी, एक इकाई के रूप में। लूकस जिस समय गद्य के अंश पढ़ रहे थे, मैं सोच रहा था कि यदि वे अभिनेता होते तो कितने सफल अभिनेता होते। अभिनेता का काम कोई सरल तो नहीं। उसे शब्दों का उच्चारण

इस प्रकार करना होता है, उन्हें भीतर ले जाकर उनसे इस प्रकार प्रभावित होना पड़ता है कि उसके रोम-रोम उसके अर्थ को व्यक्त करने लगें। शब्दों के द्वारा उसे भाव और विचारों की मूर्ति बनना पड़ता है। नाटक में दर्शक भाषा सम्बन्धी कठिनाई क्यों नहीं अनुभव करते? इसलिए कि आधे से अधिक अर्थ अभिनेता का अभिनय बता देता है। लूकस सचमुच गद्यांशों में व्यक्त विचारों की मूर्ति-से बने रहे थे। आश्चर्य तो यह था कि एक के बाद दूसरे गद्यांश वे पढ़ रहे थे और हर एक में ध्वनि-मुद्रा में कुछ ऐसा परिवर्तन कर देते थे कि दो अंशों को एक ही तरह पढ़ना असम्भव प्रतीत होता था। हर तरह के गद्य को पढ़ने का तरीक़ा अलग है, हर तरह की कविता को भी। रीलैण्ड ने यह सिद्ध किया। व्याख्यान के पश्चात् मैंने रीलैण्ड से परिचय किया।

लंच के बाद लाइब्रेरी जाने का समय नहीं था। पौने चार बजे नैस्टर आने को थे। डॉ. बाबूराम सक्सेना को अपनी तनख्वाह के बारे में पत्र लिखा। कायस्थ पाठशालावालों ने तेजी को मेरी तनख्वाह देने से इन्कार कर दिया है। Letter of Authority चाहते हैं। युनिवर्सिटी की मार्फ़त दे देना चाहिए था, आखिर मेरी युनि. की तनख्वाह तो बैंक भेजी ही जाती है। दूसरों की सुविधा का ध्यान रखना तो हमारे देशवासियों ने सीखा ही नहीं।

नैस्टर समय से आये। चाय के समय बातचीत के दौरान नैस्टर ने एक बड़ी अनोखी बात कही। बताया कि अभी तीन मास पूर्व उन्हें टी. एस. ईलियट के साथ खाना खाने का मौक़ा मिला था। उन्होंने कहा कि इसमें सच्चाई हो कि न हो Eliot is a hater of life, जैसा कि डॉ. लीविस कहते हैं, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि ईलियट के मन में नारी के प्रति कोई श्रद्धा नहीं है, वह Woman-hater ज़रूर हैं। He is a homosexualist. उन्होंने शादी नहीं की; औरत को अपने पास देखना पसन्द नहीं करते।

योरोप में homosexuality अब किसी प्रकार की दुर्बलता के रूप में नहीं, एक विशेष विचारधारा बनकर आ रही है। कुछ दिन हुए मैंने किसी मि. बरकेट का लेख इस विषय पर पढ़ा था। योरोप और अमरीका में नारी पुरुष के समस्त क्षेत्रों में आकर उसकी सहयोगिनी बनने के बजाय उसकी प्रतियोगिनी, यदि प्रतिद्वन्द्विनी भी नहीं, होती जा रही है। पुरुष को नारी से भय होता जा रहा है। भय से घृणा दूसरा क़दम है। पर मन की भावुक प्रवृत्तियाँ मार्ग तो खोजती ही हैं। तब पुरुष, पुरुष में fellow-victim पाकर उसकी ओर झुकता है। यही homosexuality का आरम्भ है। इधर के किसी नोबेल प्राइज़ विजेता के विषय में खुले आम कहा गया था कि वे homosexualist हैं। इस शब्द का इधर व्यापक अर्थ लिया जाता है। इसके सीमित अर्थ में तो पुरुष-पुरुष के बीच यौन-सम्बन्ध माना जाता है, पर व्यापक अर्थों में यौन-सम्बन्ध गौण हो जाता है, यद्यपि बिलकुल नकार नहीं दिया जाता। व्यापक अर्थों में इससे मतलब है पुरुष का पुरुष के प्रति आकर्षण, पुरुष में विश्वास, नारी के प्रति उपेक्षा और घृणा का भाव, उसकी ओर हीन-भावना की दृष्टि, उसे निम्न बौद्धिक वर्ग का प्राणी समझना।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि योरोप की स्त्रियों ने समानता और आत्मविकास के समस्त अवसरों के होते हुए भी अपना बौद्धिक अथवा आत्मिक स्तर ऊँचा नहीं किया। योरोप ने great men तो बहुत पैदा किये, पर great women? उँगलियों पर गिनने योग्य भी नहीं। ऐसे तमाम पुरुष जिनका बौद्धिक स्तर बहुत ऊँचा हो जाता है नारी को बहुत नीचे पाते हैं। पुरुष अब शारीरिक स्तर पर ही नहीं, बौद्धिक

स्तर पर भी साथी खोजता है। फिर, कुछ ऐसी ऊँचाई है जिस पर पहुँचकर पुरुष, उससे नीचे नहीं गिर सकता। नारी के नीचे न गिरने की कोई ऊँचाई नहीं। वह स्वर्ग की सबसे ऊँची मंज़िल पर पहुँचकर नरक की सबसे नीची सतह पर गिर सकती है। योरोपियन साहित्य की नारी ऐसी ही है। तब पुरुष को उससे अश्रद्धा क्यों नहो। उच्च आध्यात्मिक और बौद्धिक स्तरों पर स्थित पुरुष प्रायः यहाँ woman-hater है अथवा homosexualist है। ईसाई संस्कृति ने भी आदि नारी को पुरुष के पतन का कारण माना है। यह पुरुष संस्कारों में इतना भिन गया है—सचेतन और अचेतन दोनों में—कि नारी के प्रति श्रद्धा के भाव यहाँ पुरुष में नहीं जागते। प्रजातन्त्र ने समानता के जो अवसर दिये हैं उनसे नारी ने वे सब अधिकार ले लिये हैं जो उसकी योग्यता के भीतर, और बाहर भी थे। नारी अपनी अयोग्यता, हीनता, निम्नता के बावजूद भी पुरुष से सम्मान-सत्कार की अभिलाषिणी है। पुरुष बाहर से तो नारी का सम्मान करता है पर भीतर से जानता है कि वह सम्मान की पात्री नहीं। योरोप के intellectuals जो आज homosexual हो रहे हैं उसका कारण इन्हीं बातों में कहीं छिपा है। समाज तो hypocrite की तरह बर्ताव कर सकता है, पर बुद्धिजीवी इसे कठिन पाता है, वह अभिनय नहीं कर पाता। नारी के प्रति उसका दृष्टिकोण प्रकट हो जाता है। योरोप का average पुरुष भी नारी को जो देता है वह उसके गुणों के कारण नहीं, अपनी दुर्बलता के कारण। सच्चे अर्थों में नारी का सम्मान योरोप में नहीं। उसको समान अधिकार मिल गये हैं, उसकी चापलूसी की जाती है, पर उसे बेवकूफ़ भी समझा जाता है। जिसने कहा था कि Fools and women are always to be flattered, उसने भेद खोल दिया था। योरोप का बुद्धिप्राण पुरुष नारी को बेवकूफ़ समझता है, बेवकूफ़ बनाता है और वह बेवकूफ़ बनकर ख़ुश होती है। इससे बढ़कर और बेवकूफ़ी क्या होगी कि वह पुरुष के बेवकूफ़ बनाने को अपने प्रति सम्मान समझती है। ऐसी परिस्थितियों में यदि ऊँचे पाये के बौद्धिक प्राणी homosexual हो जायें तो आश्चर्य की बात नहीं। ईलियट के साहित्य को एक बार फिर इस दृष्टि से पढ़ूँगा। 'वेस्ट लैण्ड' में कई प्रकार की नारियों और कई प्रकार के sexual relations का ज़िक्र है, पर ईलियट को सन्तोष किसी प्रकार की नारी से नहीं, इस ओर मेरा ध्यान पहले भी गया था। नैस्टर ने जो बात कही यदि वह ठीक है तो वह ईलियट की कृतियों से सिद्ध हो सकेगी।

रात को खाना खाने के बाद प्रो. आरबेरी की 'उमर ख़ैयाम' उठा ली—युनिवर्सिटी लाइब्रेरी से किसी दिन निकलवाकर लाया था। उमर ख़ैयाम की सबसे प्राचीन प्रति में पायी गयी रुबाइयों का यह अनुवाद है। जी तो चाहता है कि मैं भी इस पाण्डुलिपि से किसी फ़ारसीदाँ की मदद लेकर हिन्दी में इसका अनुवाद कर दूँ। पढ़ते-पढ़ते अंग्रेज़ी से ही तीन रुबाइयों के अनुवाद कर डाले; पर केम्ब्रिज में रहकर अंग्रेज़ी से क्या अनुवाद करना? लाइब्रेरी में यह पाण्डुलिपि रक्खी है और देखने को मिल सकती है। तीन रुबाइयों के जो अनुवाद किये वे इस प्रकार हैं—मात्रा की बन्दिश को छोड़कर प्रवाह लाने का प्रयत्न किया गया है। अनुवाद को बहुत अच्छा नहीं कह सकता—फ़ारसी मूल लिपि और अंग्रेज़ी अनुवाद दोनों की सहायता ली जाये तो हिन्दी रूपान्तर अधिक सन्तोषजनक हो सकता है। अवसर यह बहुत अच्छा है। कौन हिन्दी का कवि केम्ब्रिज आकर इस पाण्डुलिपि से अनुवाद करेगा। पर यह भी सोचता हूँ कि इसमें बहुत समय लग जायेगा और जिस खास काम को लक्ष्य में रखकर यहाँ आया हूँ वह न हो सकेगा।

All they who threaded meaning's gem
Upon the cord of philosoply
Spake much upon the Deity;
But little knowledge was in them.
Unravelling those secrets skein
None ever found its origin,
But having each his tale to spin
Each fell at last asleep again.

जिन लोगों ने भेद की गुरिया छेद के पोही दर्शन-डोर,
बहुत, खुदा पर बोले लेकिन मतलब कम था, बहुत था शोर,
सुलझा-सुलझाकर बहुतेरे उसको हारे, थके, मरे,
ऐसा था वह उलझा फन्दा कोई न पाया उसका छोर।

And these the choicest & the best
Of lowly Earth's ingenious breed,
Mounted on speculation's Steed
Still strive to scale Heaven's highest crest.
But thou sublime, upon thy throne,
Beholdest with indifferent eyes
Their reason reeling like the skies
Defeated by the great unknown.

देखने को मिट्टी के पुतले, इनकी हिम्मत पर बलिहार,
चढ़के कल्पना के घोड़े पर नापते जन्नत की दीवार,
अपने सिंहासन पर बैठा महिमामय तू मुसकाता
देख अक़्ल की गर्दिश इनकी, देख बदी जो इनकी हार।

Those who in ancient ages came
And those that lived in later days
Depart on their successive ways:
For all the journey is the same.
This kingdom of the earth and sky
Remains eternally for none:
We too must go as they have gone,
And others follow by-and-by.

गये समय के आनेवाले, नये समय के राही अनेक,
राह लगे सब अपनी-अपनी क्योंकि सफ़र है सबका एक,
आसमान-धरती की दुनिया रही सदा को किसकी ? बोल,
जैसे गये वे हमको भी जाना, पीछे हमारे औरों का ग़ोल।

बुधवार, 14 मई, '52

रात को एक विचित्र स्वप्न देखा। देखा, शालिग्राम, मेरा स्वर्गीय भाई, जैसे बीमारी से अच्छा हो गया है और उसका विवाह शकुन्तला से हो रहा है। विवाह के पश्चात् उसे मैंने नया सूट पहने देखा। शकुन्तला भी खुश थी। मैंने शकुन्तला से कहा, "देखो, मैंने कहा था न कि सबकुछ ठीक हो जायेगा।" वह एकदम से बोली,

"देखिए, पुरानी बातों को न छेड़िए।"

साढ़े चार बजे रात को नींद खुल गयी। खिड़की से हवा आ रही थी। चिड़ियों का स्वर भी सुनायी पड़ रहा था। सोने की फिर कोशिश की; नींद नहीं आयी।

सुबह कमरे में ही पढ़ता रहा। 12 से लीविस का लेक्चर था। आज उन्होंने डी. एच. लारेन्स के तीन उपन्यासों—Sons and Lovers, 'Rainbow' और 'Women in Love' में प्रेम-तत्त्व का विवेचन किया। उन्होंने बताया कि विक्टोरियन युग में उपन्यास क्या, साहित्य के सम्पूर्ण क्षेत्र से personal note ग़ायब हो गया था। इन उपन्यासों में लारेन्स ने फिर से personal note डाला। युग के सामान्य स्वर के ऊपर व्यक्ति का स्वर इनमें साफ़ सुनायी पड़ता है। जब युग में hypocrisy छा जाती है तब वैयक्तिक स्वर उठाने के लिए बड़ा साहस जुटाना पड़ता है। डी. एच. लारेन्स का स्वर व्यक्ति का स्वर-मात्र होता तो बहुत बड़ी चीज़ न होता। वह युग का क्रान्तिकारी स्वर भी है, यद्यपि आज भी हमें उसे अपनाने में लज्जा आती है, डर लगता है, संकोच होता है।

व्याख्यान के पश्चात् यु. ला. चला गया। वहाँ 6-30 तक रहा। ईट्स के आत्मचरित पर नोट्स ले रहा हूँ, कल तक यह काम समाप्त हो जाना चाहिए।

लौटा तो तेजी और मार्जरी के पत्र मिले। मार्जरी 18 को नहीं आ सकेंगी। तेजी के पत्र ने मन को उदास कर दिया। उनका कहना है कि मेरे पत्रों से ऐसा नहीं मालूम होता कि मुझे उनसे और बच्चों से अलग होकर दुःख है। मैं इंग्लैण्ड के जीवन की जगमगाहट में परिवारवालों को भूल गया हूँ। खाना खाना मुश्किल हो गया। किसी से बात भी नहीं की। ऊपर चला आया। उन्हें और बच्चों को मैंने एक क्षण के लिए भी नहीं भुलाया। फिर भी उन्हें सन्तोष नहीं। पहले भी उन्होंने कई बार ऐसा कहा है। मैं तो चुप रह जाता हूँ। बाद को स्वयं पछताती हैं। शब्दों से प्रेम नहीं साबित हो सकता। मैंने तो उन्हें लिखा कि उनका दिल यही कहता है तो फिर यही ठीक है, और अगर कोई मन की बहक है तो आगे कभी न कभी वह ठीक जगह पर लौटेगा। जब सप्ताह में तीन बार पत्र जाना है तो उसमें सिवा दिनानुदिन के समाचार के और क्या हो सकता है। हर पत्र को रूमानी कविता नहीं बनाया जा सकता। मुझे शेक्सपियर की यह पंक्तियाँ याद आती रहीं :

> When love begins to sicken and decay
> It useth an enforced ceremoney.
> There are no tricks in plain & simple faith,
> But hollow men like horses hot at hand
> Make gallant show and promise of their mettle,
> But when they should endure the bloody spur
> They fall their crests like deceitful jades.

उसी समय पत्र का उत्तर देता तो न जाने क्या-क्या लिख जाता। घूमने चला गया, पर मन शान्त नहीं हुआ। वहाँ तो सिवा मेरी याद करने के उनके पास कुछ काम नहीं। घर-नौकर-चाकर-मोटर-फ्रिजिडेयर-रेडियो और बेकारी। सोचो, मन के घोड़े दौड़ाओ, अच्छी बातें सोचो, बुरी बातें सोचो। आलसियों का दिमाग़ शैतान का कारख़ाना होता है। यहाँ सुबह से लेकर शाम तक—नहीं, 12 बजे रात तक घड़ी की सुई की नोक पर सारा काम। घर से अलग होने का जो दुःख है वह तो बताने से कम नहीं होगा—उसे भीतर लेकर बाहर काम भी करना है। यहाँ दिन-

रात बैठे-बैठे घर की याद करने तो नहीं आया हूँ। काम भी ज़्यादा इसीलिए करता हूँ कि घर की याद ज़्यादा न सताये। उन लोगों की यहाँ से कुछ मदद भी नहीं कर सकता। पता नहीं मुझसे यह कहकर वे मुझे क्या सन्तोष देना चाहती हैं कि मेरी याद में वह खुद रोयीं और बच्चों को भी रुलाया। कभी सोचता हूँ कि मैं बेकार ही यहाँ आया। अच्छा होता अपने घर पर पड़ा रहता। क्या यहाँ से ले जाना है। डाक्टरेट ही मिल गयी तो क्या। बाहर के दृश्यों पर मेरी भावना कभी नहीं चली। मुझे तो अन्दर की अनुभूतियों से लेना है। वे तो जैसी यहाँ वैसी भारत में। परन्तु भाग्य ने कुछ ज़बरदस्ती मुझे यहाँ भेज दिया। अब लौटना भी जल्दी नहीं हो सकता। उधर तेजी और बच्चे मेरे बग़ैर रह भी नहीं सकते। तेजी ने मुझे यहाँ भेजने की पूरी कोशिश की। मेरे वहाँ से हटने का अर्थ क्या होगा, उन्हें समझना चाहिए था। और तब नहीं समझा तो अब परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढालना था। अभी से यह हाल है तो आगे क्या होगा। शिक्षा-मन्त्रालय से मैंने 5000) की सहायता और चाही थी। अगर वह नहीं देता तो मैं 6 महीने केम्ब्रिज रहकर लौट जाऊँगा। तेजी मेरे प्रवास को बहुत सुखमय, चिन्ताहीन बना सकती थीं, पर उन्हें यह कला नहीं मालूम। वहाँ का थोड़ा-सा दुख, थोड़ी-सी चिन्ता, थोड़ी-सी परेशानी यहाँ कितनी बड़ी लगती है इसका उन्हें कुछ ध्यान नहीं। मैंने अपनी परेशानी यहाँ से नहीं लिखी; उन्हें इसकी शिकायत है, मैं तो इंग्लैण्ड में ऐसा रम गया हूँ कि घरवालों के दुख-दर्द का कोई ख़्याल नहीं। घूमते समय न जाने कैसी-कैसी बातें दिमाग़ में आती रहीं। लौटकर उन्हें चिट्ठी लिखी। बहुत संयत पत्र लिखना चाहता था, पर क़लम चली तो रुकी नहीं। उन्हें भी मेरे पत्र से दुख होगा। सारी सुविधाएँ उनके लिए वहाँ जुटा आया हूँ। अपने लिए स्वयं संघर्ष करना पड़ता तो क्या होता। अब भी उनको चाहिए कि किसी काम में अपने को व्यस्त रक्खें, बच्चों को पढ़ाएँ, हिम्मत से काम लें और अगर इससे कोई शक्ति प्राप्त हो सके तो इसका विश्वास रक्खें कि भूलना तो दूर मैं अपनी हर साँस के साथ उन्हें याद करता हूँ। पर ऐसी याद जो रोग बन जाये, और जो और कोई काम न करने दे उसे मैं अस्वस्थ समझता हूँ। ऐसी याद न मैं उनकी करना चाहता हूँ और न चाहता हूँ कि वे मेरी करें। I am afraid my sojourn abroad is not taken in the spirit it had to be taken. The children are made to develop a morbid sentimentalism which is positively unhealthy and harmful.

जिस चीज़ ने मुझे सबसे अधिक दुखी किया वह थी मेरे प्रति अविश्वास की भावना। यदि मेरे प्रति कहीं भी सन्देह था तो मुझे विदेश आने ही नहीं देना था। हालाँकि आँखों के नीचे रखकर भी किसी के मन पर पहरा नहीं दिया जा सकता। जब मनुष्य दूसरे में विश्वास खोता है, उसके पहले अपने में विश्वास गँवा देता है। बाहर से तेजी बहुत उदार बनने का प्रयत्न करती हैं, पर भीतर उनके चोर बैठा रहता है। जैसे कोई अपने बन्दी को आज़ादी तो दे दे, पर बीच-बीच में देख भी ले कि वह उसका दुरुपयोग तो नहीं कर रहा है; साथ ही किसी सूक्ष्म बन्धन से उस पर नियन्त्रण भी रखने का प्रयत्न करे।

नारी क्यों उदार-हृदय नहीं हो पाती? पश्चिम का पुरुष नारी की अनुदारता, ओछेपन, निम्नवृत्ति—something mean and base about her—से इतना घबरा गया है कि वह उससे अलग रहकर पुरुष को अपना संगी, साथी, मित्र, सहचर बनाने को उद्यत है। नारी उसके लिए असह्य होती जा रही है। Europe's

higher intellect is becoming homosexual. नारी को, विशेषकर योरोप की नारी को इस समस्या पर गम्भीरता से विचार करना है। मैं पुरुष-स्त्री के शारीरिक सम्बन्ध को बिलकुल ध्यान में नहीं रख रहा हूँ। योरोप में इस समय नारियों की संख्या पुरुषों की संख्या से कहीं अधिक है और पुरुष के लिए नारी आज जितनी सुलभ है उतनी कभी नहीं रही। ऐसे समय homosexuality का विकसित होना कुछ और बातें सिद्ध करता है। जब नारी के लिए पुरुष प्रतिद्वन्द्विता करता है तो वह ऊपर उठता है। शिवलरी के युग का इतिहास इसका साक्षी है। जब पुरुष के लिए स्त्री प्रतिद्वन्द्वी बनती है तो नीचे गिरती है। स्त्री की ईर्ष्या, स्वार्थ, संकुचित मनोवृत्ति, अनुदारता, स्वाधिकार की भावना आज जितनी बुरी तरह व्यक्त हो रही है, उतनी शायद किसी युग में नहीं हुई। It is a glaring fact of modern European life that woman is going down in the estimate of man. And if it is not checked by some great imaginative effort a dangerous perversity is going to overtake the whole of European civilization. The Indian woman untainted by European civilization is a different species. The ideals of womanhood in the East are any day higher than those in the West. What West has given to her outwardly, in return, has deprived her of something precious inwardly. As a result the Western woman is the hollow woman. I can't say for the Western man, but the Western woman, as well as the Westernised woman has to learn a great deal from the Eastern woman. (Marjorie looks for her ideal in Kamala Nehru. Severel times she has asked me to get a photograph of her from India.)

सभ्यताएँ पुरुष और स्त्री के सन्तुलित सम्बन्धों पर स्थिर रहती हैं। यूनान की सभ्यता के नष्ट होने के बहुत-से कारण बताये जाते हैं—मलेरिया से लेकर अतिशय बौद्धिकता तक। लेकिन मेरी समझ में उनकी सभ्यता के विनाश का एक कारण यह भी था कि उन्होंने नारी को हेय दृष्टि से देखना आरम्भ कर दिया था। योरोप की सभ्यता के विनाश का भय कम नहीं। यदि ऐसा हुआ तो नारी इस विनाश में कम उत्तरदायी नहीं होगी। She is not rising to man's stature, largeness dignity and vision, alas, with all opportunities.

क्या तुलसी के 'सहज अपावन नारि' में मध्यकालीन सत्य के अतिरिक्त कुछ शाश्वत सत्य भी है?

ईलियट की एक प्रसिद्ध कविता है Hollow Men (शीर्षक शेक्सपियर की शब्दावली है) यदि मुझे अंग्रेजी में कविता लिखने पर अधिकार होता तो मैं hollow women पर एक कविता लिखता। Hollow Men एक बार फिर पढ़ने की इच्छा है। मन में मौज आयी तो अपने सन्तोष के लिए ही अंग्रेजी में एक कविता लिखूंगा।

गुरुवार, 15 मई, '52

रात को साढ़े बारह बजे सोने गया था; मन दुखी था। बहुत रात तक नींद नहीं आयी। साढ़े पाँच बजे आँख खुल गयी। कोशिश करने पर भी फिर सो न सका।

सुबह कुछ देर कमरे में पढ़ता रहा। कुछ देर सेन्ट्रल लाइब्रेरी में अख़बार वग़ैरह देखे।

10 बजे से मि. लूकस का व्याख्यान था। 'शैली' पर ही चल रहा था, आज अन्तिम था।

वे गद्य में रूपक (imagery) के प्रयोग पर बतलाते रहे। रूपक यदि उपयुक्त हो तो अभिव्यक्ति में बिजली-सी दौड़ जाती है; हम अपने तरीक़े से कहेंगे कि जान आ जाती है या जादू का-सा असर होता है। रूपक का अत्यधिक प्रयोग भी गद्य में बुरा है। इससे गति रुकती है। रूपक अनुपयुक्त हो तो इच्छित प्रभाव नहीं उत्पन्न करता। रूपकों की अतिशयता और उनके ग़लत प्रयोग के कई उदाहरण उन्होंने दिये। रूपक जिस शैली में न हो वह बहुत ऊँचे दर्जे का गद्य नहीं हो सकता। स्विफ़्ट का गद्य रूपकों का बहुत कम उपयोग करता है, इससे उसमें स्पष्टता तो है पर दिव्यता नहीं है; स्विफ़्ट का गद्य इस दृष्टि से बहुत ऊपर नहीं उठता। उन्होंने अपने पहले व्याख्यानवाली बात फिर दुहरायी कि जिस गद्य में कवित्व के भी कुछ गुणों का समावेश न हो वह बहुत उच्चकोटि का गद्य नहीं हो सकता। यहाँ तक कि उसमें लय की भी आवश्यकता है, परन्तु उसे प्रच्छन्न होना चाहिए। बाइबिल, रस्किन, टामस ब्राउन, डी क्विन्सी से कई उद्धरण पढ़कर उन्होंने लयपूर्ण गद्य के उदाहरण दिये। लय यदि बहुत ऊपर उतराने लगे तो उसे गद्य का दोष समझना चाहिए। उच्चकोटि के गद्य में इतनी लय होनी चाहिए कि साधारण बातचीत से उसे अलग कर दे, पर इतनी न होनी चाहिए कि पद्य का धोखा हो। असफल गद्य-लेखक या तो एक ओर को झुक जाते हैं, या दूसरी ओर को। लूकस ने रस्किन से कई उदाहरण दिये जहाँ पंक्ति की पंक्ति ब्लैंक वर्स में बाँधी जा सकती है। कतिपय ऐसे भी उदाहरण दिये जहाँ गद्य-लेखक ने लय ही रखने का नहीं, बीच-बीच में तुक मिलाने का भी प्रयत्न किया था। गद्य में ध्वनि-साम्य अथवा सम-लय आदि अपने-आप में कोई महत्व नहीं रखते। किसी अर्थ को अधिक स्पष्ट करने अथवा किसी भाव-विचार पर अधिक बल देने के लिए उनका प्रयोग किया जा सकता है। गद्य में वे सदा अलग रहेंगे जबकि पद्य में वे भाव-विचारों के साथ मिल जाते हैं। पद्य में हम उनकी प्रत्याशा करते हैं, इस कारण यदि उन्हें अपने-आप में कुछ महत्ता दे दी जाये तो हम क्षम्य समझते हैं, शायद पसन्द भी करते हैं। कविता हमारे जिन तत्त्वों को प्रभावित-प्रेरित करती है उनके लिए इन साधनों की शायद आवश्यकता भी है। गद्य मस्तिष्क की जिन शिराओं को सम्बोधित करता है वे अधिक ध्वनि-लय-राग से तुनक जाती हैं (get irritated)।

लिखना कैसे चाहिए? इस विषय में प्रसिद्ध लेखकों के विभिन्न और परस्पर-विरोधी अभ्यास और प्रयोग हैं। बाल्ज़ाक क़लम हाथ में लेते ही लिखना आरम्भ कर देते थे। नतीजा यह होता था कि जब वे प्रूफ़ देखते थे तब उन्हें अपने लेख में बहुत-सी त्रुटियाँ दिखायी देती थीं। वे उसमें बहुत-से संशोधन कर देते थे। फिर प्रूफ़ आता था और फिर उनको सन्तोष नहीं होता था। वे कुछ और घटा-बढ़ा देते थे। कभी-कभी उन्हें अपनी रचनाओं का प्रूफ़ 27 बार तक देखना पड़ता था। दूसरी ओर फ्लाबेग़ का उदाहरण है। जब तक एक वाक्य को माँजते-माँजते वे परिष्कार की सीमा तक न पहुँचा देते थे तब तक वे उसे लेखनीबद्ध ही न करते थे। 'मादाम बोवारी' लिखने में उन्होंने कितना परिश्रम किया होगा, इसका अनुमान सहज किया जा सकता है। उनके प्रत्येक वाक्य के पीछे श्रम और माथा-पच्ची का आभास आपको मिलेगा। गिबन एक पैराग्राफ़ के विचारों को लेकर घण्टों टहला

करते थे और जब तक उनको सिलसिलेवार लगाकर अन्तिम रूप न दे लेते थे तब तक उन्हें न लिखते थे। उनकी स्मरण-शक्ति ग़ज़ब की रही होगी। किसी और लेखक की राय बतायी, सम्भवतः मोलियर की, कि दो पेज लिखने के पश्चात् मनुष्य को साल-भर आराम करना चाहिए—सम्भवतः पेज की कल्पना उनकी बहुत लम्बी-चौड़ी होगी। कुछ लेखकों का यह मत है कि जब तक प्रेरणा न मिले तब तक लिखने के लिए न बैठो; कुछ की राय यह है कि क़लम-कागज लेकर बैठना ही सच्ची प्रेरणा है। बूफ़ों की राय यह थी कि प्रतिभा की परिभाषा है—धीरज। जो धीरज से बराबर काम करता जायेगा वह अवश्य कुछ न कुछ होके रहेगा। लूकस ने कितने ही लेखकों के उदाहरण दिये जिन्होंने प्रकाशन से पूर्व अपनी मोटी-मोटी रचनाओं को 10-10, 15-15 बार लिखा। टाल्स्टाय के 'War and Peace' में दो लाख से अधिक शब्द हैं और उन्होंने इसको सात बार लिखा! लेखक के धीरज की यह सीमा नहीं तो क्या है। लेखकों ने अपनी रचनाओं को निर्दोष बनाने के लिए कैसा-कैसा श्रम उठाया है। फिर भी ऐसी प्रतिभाएँ भी आती हैं जो लेखनी से खेल करके अमर साहित्य की रचना कर जाती हैं। शेक्सपियर ने, ऐसा प्रसिद्ध है, अपनी एक पंक्ति भी नहीं दुहराई या संशोधित की।

किसी भी लेखन की इससे अधिक प्रशंसा नहीं की जा सकती कि वह स्वाभाविक है—(spontaneous)। पर सब लेखक जानते हैं कि लिखना स्वाभाविक नहीं होता, सनिश्चय और सयत्न होता है—(deliberate)। सच तो यह है कि रचना के पीछे इतना अधिक श्रम-यत्न होना चाहिए कि वह स्वाभाविक, स्वतः प्रवाहित मालूम हो। अपनी शैली बनाने में लेखक को इतनी मिहनत करनी चाहिए कि उस पर अधिकार प्राप्त हो जाने पर वह क्षिप्र गति से अपने भाव-विचारों को व्यक्त कर सके। कुछ लोग इसके विपरीत भी बतलाते हैं। क्विण्टिलियन का कहना था कि Write well in order to write quick.—शैली के साथ श्रम करो तभी अच्छा और जल्दी लिख सकोगे। डॉ. जानसन की राय इसके बिलकुल खिलाफ़ थी—Write quick in order to write well. अगर थम-थमकर लिखोगे तो उस पर श्रम और यत्न की छाप लगती जायेगी। जल्दी लिखने से लिखने की क्रिया अधिक स्वाभाविक होगी। सत्य कहीं दोनों के बीच है। शैली के विकास में लेखक को श्रम अवश्य करना पड़ेगा। जैसे स्वाभाविक ढंग से वह बोलता है वैसे स्वाभाविक ढंग से वह लिख नहीं सकता। लिखना कला है और उसके नियम हैं। पर लेखक को चाहिए कि उन नियमों को वह इतना आत्मसात कर ले कि लिखते समय उन पर उसका ध्यान ही न जाये। उसके यत्न और श्रम को स्वाभाविकता में बदल जाना चाहिए। उसके लेखन पर श्रम और यत्न की छाप न मालूम होनी चाहिए। सुनने में इसमें विरोधाभास है पर इसके अन्दर एक बड़ा रहस्य छिपा है—Art should be artless or the greatest art is to conceal art—'artless' not inartistic—you have to make effort to be spontaneous. By being natural you can't be artistic; by being natural you can be a fool. कला की एक परिभाषा ही यह हो सकती है—'विनिर्मित स्वाभाविकता'। निर्मिति में कला का अंश है। कला एक यात्रा है, स्वाभाविकता से चलकर फिर स्वाभाविकता पर आ जाना। परन्तु यात्रा में बहुत कुछ बदल जाता है। किसी ने कहा है जो यात्री प्रस्थान करता है वह कभी लौटता ही नहीं, यात्रा उसमें इतना परिवर्तन कर देती है। यह भी ठीक है कि उसी स्थान को वह नहीं लौटता। 'मैं जहाँ खड़ा था कल उस थल पर आज नहीं।' स्थान भी

बदल जाता है। कलाकार की स्वाभाविकता प्रकृति की स्वाभाविकता से भिन्न होती है। उसमें उसकी वह जीवन-यात्रा भी सम्मिलित हो जाती है जिसके पश्चात् वह वहाँ पहुँचता है। एक शब्द में इसे कलाकार का व्यक्तित्व कह सकते हैं। कला की स्वाभाविकता कलाकार के व्यक्तित्व से अनुप्राणित होती है, और इस प्रकार प्रकृति की स्वाभाविकता से भिन्न होती है। कला की महत्ता तो सचमुच कलाकार की जीवन-यात्रा से सम्बद्ध है। उसकी जीवन-यात्रा का अर्थ बहुत व्यापक है। कला ने कितने रूप लिये हैं! जीवन कितनी विभिन्न गतियों से चलता है! न कला अपने को दुहराती है, न जीवन अपने को दुहराता है।

लूकस के व्याख्यान के बाद कमरे आया। रात को नींद न आने के कारण सिर में दर्द था। थकावट भी लग रही थी। सोचा थोड़ी देर को सो जाऊँ—रात को केम्ब्रिज मजलिस में हिन्दुस्तानी क्रिकेट टीम का सहभोज है, न जाने कितनी देर वहाँ लगे। सोने की कोशिश करो तो नींद नहीं आती। 12 बजे तक बिस्तर में करवट बदलकर अन्त में यही निश्चय किया कि यु. ला. चला जाऊँ। नोट्स ही ज़्यादा लेता रहा। खाना आज 'डिग' में नहीं खाना था, इस कारण 'बैंक्स' पर पड़ी बेंच पर जाकर बैठ गया और बड़ी देर तक कैम नदी के मन्द प्रवाह में अपने मन को धोता रहा। दत्त ने 8! बजे आकर केम्ब्रिज मजलिस की दावत में ले जाने को कहा था। कैम, उसके पुलों, तटवर्ती इमारतों, उसके किनारे की हरी घास और 'विलो' वृक्षों, उसकी धारा में मन्द गति से जाती छोटी-छोटी नावों और उनसे होड़-सी करती, तिरती चली जातीं रंग-बिरंगी बत्तकों को छोड़कर जाने को मन नहीं हो रहा था। यहाँ थोड़ी देर के लिए भी आने से ऐसा लगता है कि जैसे मैं स्वयं इस सारे दृश्य का एक भाग, एक अंग बन गया हूँ और इससे निकलना इसे भंग करना होगा—इस सपने को तोड़ना होगा। जैसे किनारों पर बैठे, नावों को खेते और लोग इस सारे सौन्दर्य के भाग बन गये हैं, उसी तरह मैं भी हूँगा···कोई शायद मुझे भी देखता होगा···और उधर एक हिन्दुस्तानी, काले, घुंघराले, बिखरे बालोंवाला, किसी ध्यान में मग्न, अकेला!···और लो वह उठकर चला गया!···

कमरे आकर तैयार हुआ। पहली बार यहाँ चूड़ीदार पाजामा और शेरवानी पहनी। कमला और दत्त आ गये, हम लोग समय से विक्टोरिया क्लब पहुँचे। भोज की समाप्ति पर मजलिस के सभापति, टीम के कप्तान हज़ारे, और टीम के संचालक मि. गुप्त ने भाषण दिये। केम्ब्रिज की टीम भी आमन्त्रित थी। उसके कप्तान भी बोले। खेल की दुनिया में रंजीतसिंह और दिलीपसिंह का नाम (क्रिकेट के क्षेत्र में) यहाँ अब तक प्रसिद्ध है। जिन्होंने उन्हें नहीं देखा उन्होंने अपने बुज़ुर्गों से उनके करिश्मों की कहानियाँ सुनी हैं:

चलते समय मैंने हज़ारे के हस्ताक्षर लिये; अमित को भेज दूँगा। वह बहुत खुश होगा।

मजलिस में फ़िट्ज़विलियम हाउस के सेंसर मि. चैथर से परिचय किया। वे चालीस वर्ष पूर्व भारत में रहे थे, सेन्ट जोन्स कालेज, आगरा से सम्बद्ध। कभी हट्टे-कट्टे, सुन्दर जवान होंगे—अब वृद्धावस्था ने कुरूप कर दिया है—चेहरे पर फ़ालिज गिरा है शायद।

शुक्रवार, 16 मई, '52

लो, आज केम्ब्रिज आये भी एक महीना हो गया। मैं यहाँ 16 अप्रैल को मार्जरी के साथ आया था। यहाँ के नियमित जीवन और काम-काज-पढ़ाई में एक महीना

जाते कुछ भी नहीं लगा, पर वहाँ के लम्बे दिन, गर्मी और बग़ैर नियमित काम के तेजी को वक़्त काटना मुश्किल होता होगा। फिर वे और बच्चे मेरी अनुपस्थिति से न जाने क्यों घबराये-से हैं। मुझे तो जब से उनका इस तरह का पत्र आया है, बराबर इसी की चिन्ता खाये जा रही है। कहीं भी आता-जाता रहूँ, किसी के पास बैठा रहूँ, सहसा घर का ख़्याल आते ही सोचने लगता हूँ कि लोग कैसे रहते होंगे। घर के प्रबन्ध सम्बन्धी कामों से घबराहट तेजी को नहीं होती होगी। यह काम तो घर पर रहकर भी मैं कभी नहीं करता था। वे ही सब काम करती थीं। यह भी जानती हैं कि मैं यहाँ आराम से हूँ, और मुझे कोई तकलीफ़ नहीं। फिर भी उन्हें घबराहट होती है। मेरे सदा घर पर रहने के तेजी और बच्चे इतने अभ्यस्त हो गये थे। किसी पर इतनी निर्भरता—मानसिक निर्भरता भी—अच्छी नहीं। फिर तेजी को मुझसे अलग होने का जो भी दुःख होता, बच्चों को ऐसा अनुभव होने ही नहीं देना था। वे भाव-भीरु (sentimental) बनना सीख रहे हैं जो उनके लिए हितकर नहीं। पढ़ाई-लिखाई के सिलसिले में, आगे नौकरी-चाकरी में, उन्हें कहाँ-कहाँ जाना पड़े। उन्हें तो हर परिस्थिति में हँसना-खेलना चाहिए। मैं दूर हूँ तो क्या, हर दूसरे दिन पत्र जाता है। कोई ऐसी ही आवश्यकता पड़ जाये तो एक-दो दिन में यहाँ से हवाई जहाज़ से घर पहुँच सकता हूँ। ऐसा समझ उन्हें खुश रहना चाहिए। इसी से मैं भी यहाँ खुश रह सकता हूँ; निश्चिन्त होकर काम कर सकता हूँ। हर समय मुझे उनकी चिन्ता ही लगी रहे तो किसी प्रकार का काम करना मेरे लिए असम्भव होगा। आशा करता हूँ थोड़े दिनों में सब ठीक हो जायेगा। बच्चों को छोड़कर तेजी आ नहीं सकेंगी, यह मैं पहले से जानता था। मैंने तो कहा है, बच्चों को लेकर चली आयें, बाद को यहाँ से लौटकर काम-धाम में जुटकर जो कुछ ख़र्च होगा उसको पूरा करूँगा। पता नहीं उनका क्या निर्णय होता है।

लाइब्रेरी जाने के पहले 'ब्ल्यू बोर' जाकर 18 की रात के लिए छह आदमियों की एक टेबिल रिज़र्व कराई।

लाइब्रेरी में दिन-भर ईट्स की पुस्तक पर काम करता रहा। कुछ पृष्ठ रह ही गये। कल एलेन आ रहा है, उसके साथ दिन जायेगा। परसों इतवार है। दिन को बच्चों के लिए पत्र लिखना चाहता हूँ, कुछ स्टैम्प वग़ैरह भी इकट्ठा कर भेजना है। शाम को खाना है। अब सोमवार को ही पुस्तक समाप्त हो सकेगी। नोट्स ही लेने हैं। नक़ल करते-करते जी ऊब जाता है।

शाम को प्रो. विली के यहाँ शेरी-पार्टी थी।

प्रो. विली ने निमन्त्रण-पत्र में अपने घर का पूरा पता लिख दिया था—एडम्स रोड पर चलकर दाहिने हाथ को एल्म के पेड़ के बग़ल से घर को रास्ता जाता है। पर 'एल्म' के पेड़ का जब इल्म हो तब तो पता लगे। रास्ता खोज ही रहा था कि मिस्टर और मिसेज़ स्प्रैंग आते हुए दिखाई दिये। वे भी प्रो. विली का बँगला ढूँढ रहे थे। पेम्ब्रोक कालेज में जिस दिन खाने पर गया था उस दिन मि. स्प्रैंग भी वहाँ मौजूद थे। वे अमरीका से शेक्सपियर के टेक्स्ट, अभिनय और रंगमंच पर व्याख्यान देने के लिए केम्ब्रिज आये हैं। उन्होंने कहा था, किसी दिन मेरे व्याख्यान में आइयेगा, पर नहीं जा सका। फिर मैं शेक्सपियर में इस समय रुचि भी नहीं ले रहा हूँ। डॉ. लीविस ने मुझसे कहा था कि केम्ब्रिज के जीवन से अधिक से अधिक प्राप्त करने के लिए अपने ध्येय को सीमित और सुनिश्चित रखना चाहिए। मैंने उनकी सलाह गाँठ बाँध ली थी। मिसेज़ विली हमें बाहर ही मिलीं, फिर प्रो. विली मिले। और लोग क़रीब-क़रीब पहुँच चुके थे। दस-बारह प्रोफ़ेसर और उनकी

पत्नियाँ थीं। प्रो. विली का लड़का भी मिला जो पेम्ब्रोक में पढ़ता है। मिसेज़ विली घर-गिरिस्ती में रुचि लेनेवाली महिला लगीं—परिवार, पत्नी, बच्चे, सबके बारे में मुझसे पूछती रहीं। 18 के निमन्त्रण के लिए उन्होंने धन्यवाद दिया। मैंने कहा, धन्यवाद मुझे देना चाहिए कि आपने मेरा निमन्त्रण स्वीकार किया, उस दिन मेरे छोटे बेटे का जन्म-दिन है।—मिसेज़ स्प्रैग फिलासफ़ी में एम. ए. हैं; उन्होंने डाक्टरेट के लिए थीसिस लिखी है। अमरीका में प्रस्तुत करेंगी। मि. स्प्रैग ने ईट्स के बारे में एक बड़ी मनोरंजक बात बतायी। स्वयं उनसे तो उन्होंने नहीं सुनी थी, पर एक ऐसे विश्वासी मित्र से, जिसे ईट्स के मुख से सुनने का सुअवसर मिला था। ईट्स कह रहे थे, किसी व्यक्ति के विषय में, कि मैं उसे बहुत पसन्द करता था, लेकिन एक दिन मैंने देखा कि एक छोटा हरे रंग का हाथी उसके पीछे-पीछे जा रहा है; तब से मुझे उससे घृणा हो गयी।—उनके मित्र ने बताया था कि ईट्स को इस प्रकार के visions दिखायी देते थे, और वे उनका अर्थ भी लगाया करते थे। किंग्स कालेज के एक और प्रोफ़ेसर से मेरा परिचय प्रो. विली ने कराया। शायद उनका नाम मि. अनियन है। उनसे पता लगा कि ईट्स पर अमरीका में बहुत-सी किताबें लिखी जा रही हैं। अमरीकन आजकल उनमें बहुत दिलचस्पी ले रहे हैं। उनका कहना था कि रिसर्च का काम जिस तत्परता और परिपूर्णता से अमरीकन लोग करते हैं उससे इंग्लैण्ड में लोग नहीं करते। जिस विषय पर काम करते हैं उस पर कुछ छोड़ते नहीं; उनके हवाले (references) इतने अधिक, पूरे, पक्के और विस्तृत होते हैं कि उनमें कुछ जोड़ना सम्भव नहीं होता, मगर···।—अंग्रेज़ जो एक हाथ से देता है, दूसरे हाथ से ले लेता है। प्रोफ़ेसर महोदय कहते गये, 'मगर उनके परिणामों से प्रायः सहमत होना मुश्किल होता है। उनके निर्णय में अपरिपक्वता रहती है; निश्चित निर्णय वे प्रायः देते भी नहीं। सामग्री सब जुटा देते हैं, राय आप अपनी बना लीजिए। सामग्री कहीं छूटने नहीं पाती, यह भी एक बड़ी भारी बात है। रिसर्च की उनकी पत्रिकाओं और पुस्तकों को देखने से उनके क्रम (method) और श्रम दोनों के आगे सिर झुकाना पड़ता है। साहित्यिक शोध को वैज्ञानिक शोध के स्तर पर लाने का श्रेय अमरीकनों को देना होगा।'—

जान-पहचान के एक दूसरे प्रोफ़ेसर वहाँ डॉ. रेडपाथ थे। इन पर उनका व्याख्यान मैंने सुना था। भारत में अंग्रेज़ी के भविष्य पर डॉ. रेडपाथ से बातें हुईं। मैंने कहा, भविष्य में अंग्रेज़ी अन्य विदेशी भाषाओं के समान एक भाषा रहेगी। विशिष्टता उसे कुछ दिनों के लिए इस कारण मिलेगी कि पिछली दो सदियों की अंग्रेज़ी शिक्षा की परम्परा बनी हुई है। फिर बाहरी संसार में अंग्रेज़ी की महत्ता स्वीकृत है। उससे सम्बन्ध रखने के लिए भारतवासियों को अंग्रेज़ी जाननी होगी। लेकिन, भाषा की प्रमुखता उसे आगे चलकर नहीं मिलेगी। यह स्थान धीरे-धीरे राष्ट्रभाषा लेगी। आज हिन्दी के लेखक-कवि-साहित्यकार-पत्रकार-शिक्षाविद् इस बात का अनुभव कर रहे हैं कि पिछली शताब्दी में उन्होंने इतनी तत्परता से काम नहीं किया जितनी उन्हें दिखानी चाहिए थी। यह तो निश्चय था कि अंग्रेज़ी इस देश से एक दिन जायेगी औ' जायेगी। हिन्दी में क्षमता होनी चाहिए थी कि अगर आज अंग्रेज़ी हटती तो कल वह उसका स्थान ले सकती। ऐसा नहीं हो सका। राष्ट्र के संविधान को भी अंग्रेज़ी को 15 वर्ष बनाये रखने की आवश्यकता प्रतीत हुई। और 15 वर्ष बाद भी हिन्दी उन सब कामों के योग्य होगी जो अंग्रेज़ी करती रही है, इसमें भारी सन्देह है। हिन्दुस्तान को एक सूत्र में बाँधने का श्रेय अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ी राज दोनों को था। उस एकता को अंग्रेज़ों ने जाने के पूर्व भंग भी कर दिया।

देश टुकड़े-टुकड़े हो गया। उन्होंने तो रियासतों को भी अलग सत्ता देकर देश को और भी विशृंखल करना चाहा था, पर पटेल ने अपनी शक्ति और कूटनीति से देश को इस ख़तरे से बचा लिया। देश की एकता के लिए निश्चय ही एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है। यदि हिन्दी में क्षमता होती तो प्रान्तीयता की भावना उभरने पर भी हिन्दी अंग्रेज़ी का स्थान ले लेती। परन्तु हिन्दी में क्षमता ही नहीं है। संसार बलवान के सामने झुकता है, निर्बल के सामने नहीं। हम दूसरों की दया, कृपा, उदारता के भरोसे हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाना चाहते हैं। यह सम्भव नहीं हो सकेगा। हम जो शक्ति दूसरों के दरवाज़ों पर व्यय कर रहे हैं उसे हमें हिन्दी के उत्थान में लगाना चाहिए। हम यह मानते हैं कि हम प्रतिभावों को जन्म नहीं दे सकते—जब हम चाहें। पर बहुत-सा काम श्रम, संगठन, संयोजन से हो सकता है। उसे हम अमरीकनों की तरह परिपूर्णता पर पहुँचा दें। तब हम हिन्दी में वह शक्ति पैदा कर सकेंगे कि लोग अपने-आप उसकी ओर खिचें, लोग अपने-आप देखें कि उसी के द्वारा देश को एकता मिल सकती है, उसी के द्वारा देश का मन, मस्तिष्क, उसकी आत्मा मुखरित हो सकती है, उसी के द्वारा जो कुछ भारतीय है उसकी सुरक्षा, संवृद्धि की जा सकती है।

हिन्दी की इस समय की निर्धनता एक प्रकार से उसका सौभाग्य भी है। इसी के कारण उसमें वह निरभिमान और विनम्रता है जो सब जगह से लेने और सीखने को हर समय उद्यत है। प्रान्तीय भाषाएँ अपने दम्भ में संकुचित दायरों में घुसती चली जा रही हैं। एक तुम्हारा दरवाज़ा खटखटा रहा है, एक तुम हो कि तुमने भीतर से साँकल दे रक्खी है। दोनों परिस्थितियाँ एक नहीं हैं। जो तुम्हारे दरवाज़े पर दस्तक दे रहा है उसने अपने दरवाज़े खुले छोड़ दिये हैं—'स्वागत सबके लिए यहाँ पर।' तुम अपने घर का दरवाज़ा खोल दो उसके घर में फैल जाओ। घर दोनों का एक ही है। दरवाज़े बन्द करना शुरू करोगे तो यह महाप्रासाद कोठरियों में बँट जायेगा। दरवाज़े खोल दोगे तो एक पूरा महल दिखाई देगा। भारतवासियों को सोचना है कि वे क्या करना चाहते हैं।

विली के यहाँ से लौटकर खाना खाया। मौसम खुला था। घूमने चला गया। मादमोज़ेल वोआज़ेन साथ थीं। हमने सोचा आज जीज़स कालेज देखें। यह कालेज हमारी ही लेन में है। हम लोग पुराने फाटक से घुसे और उसके आँगन, चर्च, बाग़ में होते हुए नये फाटक से निकले। इसकी स्थापना सन् 1496 में ईली के बिशप जॉन एलकॉक ने की थी। इसमें लगभग साढ़े तीन सौ विद्यार्थी रहते हैं। जितनी खुली ज़मीन, लान, खेलने के मैदान, बाग़ हमने इस कालेज में देखे, उतने अब तक किसी कालेज में नहीं देखे थे। कालेज का चैपेल देखने की विशेष उत्सुकता थी। इसकी छत की चित्रकारी प्री-राफ़ेलाइट कवि विलियम मॉरिस ने की थी। इस समय अँधेरा हो चला था, इस कारण चित्रों को विशेष न देख सके। रंगीन शीशों पर बाइबिल के चित्र बाहर प्रकाश पड़ने से बहुत अच्छे लग रहे थे। छत की चित्रकारी दिखलाने को फ्लैश लाइट का प्रबन्ध होना चाहिए। खाने का कमरा भी हम न देख सके, क्योंकि इस समय विद्यार्थी खाना खा रहे थे। अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध समालोचक क्वीलर कूच इसी कालेज में थे। तीस वर्षों तक साहित्य की फ़ैकल्टी के प्रधान रहकर यहीं मरे। थे तो वे आक्सफ़र्ड के, पर पहले-पहल उन्हीं को पूर्व परम्परा के विरुद्ध केम्ब्रिज में प्रोफ़ेसर होने का गौरव मिला। उनके पश्चात् प्रो. बेसिल विली को यह पद दिया गया। क्वीलर कूच पूर्ण स्वाध्यायी और नारी से घृणा करनेवाले थे। उन्होंने विवाह नहीं किया था। उनके बारे में ऐसा प्रसिद्ध है

कि एक बार वे लेक्चर देने गये। ऐसा हुआ कि उस दिन क्लास में सब लड़कियाँ ही लड़कियाँ थीं; वे बग़ैर व्याख्यान दिये लौट आये।

डिग लौटा तो 9 बजे थे, पर बाहर शाम का-सा उजाला था। 9। से रेडियो पर बर्ट्रेण्ड रसेल की एक वार्ता सुनी। रसेल इतवार को अपने जीवन के अस्सी वर्ष पूरे कर रहे हैं। 'आधुनिक सभ्यता पर विज्ञान का प्रभाव' नाम से उन्होंने इस अवसर पर एक पुस्तक प्रकाशित कराई है। वार्ता में रसेल ने कहा, मैंने अपने जीवन में जागरूक होने पर दो बातें सोची थीं—मुझे क्या जानना है; मुझे क्या करना है। मेरे जीवन का पूर्वांश जानने में व्यतीत हुआ। जो कुछ मेरे मस्तिष्क ने स्वीकार नहीं किया उसे मैंने नहीं माना। मुझे मनुष्य के मस्तिष्क में प्रबल विश्वास है, मनुष्य की शक्ति में भी। काम जो मुझे करना था वह यह था कि मनुष्य को, या जिन मनुष्यों को मैं प्रभावित कर सकूँ उनको, मनुष्य के मस्तिष्क की महत्ता और मनुष्य की शक्ति का विश्वास दिलाऊँ। आज संसार में दुख-दरिद्रता है, मनुष्य का जीवन ख़तरों से घिरा है—यह इसी कारण है कि मनुष्य ने अपनी बुद्धि और शक्ति का समुचित उपयोग नहीं किया। मैं निराशावादी नहीं, आशावादी हूँ, मुझे विश्वास है कि मनुष्य एक-न-एक दिन प्राकृतिक और बौद्धिक शक्तियों का अधिपति बनकर संसार को अपने सपनों के अनुसार सुख-सुविधामय बना सकेगा।

रसेल ईश्वर में विश्वास नहीं करते, पर मनुष्य में पूर्ण विश्वास रखते हैं। विश्वास की तीव्रतम स्थिति का नाम ही ईश्वर है। नास्तिक ईश्वर में विश्वास नहीं करता; नहीं, नहीं; वह किसी चीज़ में विश्वास नहीं करता, मनुष्य में भी नहीं, अपने में भी नहीं। साथ ही विश्वास बौद्धिक विकास का मौर-मुकुट भी है। ऐसा ही विश्वास विश्वास है, बाक़ी अन्धविश्वास है। जिसे संसार और संसार के प्राणियों के सुनहरे भविष्य में विश्वास है, जिसे इतना विश्वास है कि वह भविष्य मनुष्य स्वयं अपने कर्मों से विनिर्मित कर सकता है, जो स्वयं उस कर्म में योग देता रहा है और औरों को भी योग देने के लिए प्रेरित करता रहा है उसे मैं कोरा नास्तिक नहीं कह सकता। रसेल का नास्तिकवाद वास्तव में मनुष्य की ढुलमुल यक़ीनी, सहज अन्धविश्वास, आलसी प्रवृत्ति और भाग्यवाद के विरुद्ध एक ज़ोरदार आवाज़ है। वह हमसे कहती है कि बिना किसी अतिमानवी (superhuman) शक्ति की दया, कृपा, सहयोग, सहायता के, यदि मनुष्य चाहे, और प्रयत्न करे, तो अपनी कल्पना का स्वर्ग बना सकता है। रसेल जड़वादी हैं, इसी कारण उनकी सहानुभूति बहुत दिनों तक साम्यवाद के साथ भी थी। परन्तु व्यक्ति की सत्ता और महत्ता के विरुद्ध साम्यवाद का जिहाद देखकर उन्होंने उससे आशा छोड़ दी है। उनके पूर्व विचारों से असन्तुष्ट होकर केम्ब्रिज युनिवर्सिटी ने अपनी दी फ़ेलोशिप उनसे छीन ली थी। उनके विचारों का परिवर्तन देख वह फ़ेलोशिप उन्हें फिर दे दी गयी है।

बहुत दिन हुए शिक्षा और नारी-समस्या पर मैंने रसेल की पुस्तकें पढ़ी थीं। फिर उनका एक छोटा-सा पैम्फ़लेट मैंने देखा था, 'मैं ईसाई क्यों नहीं हूँ' जो शायद अब भी मेरे पास है। पश्चिमी दर्शन के इतिहास पर भी उनकी एक पुस्तक मैंने ख़रीदी थी। पिछले बड़े दिन की छुट्टियों में, दिल्ली में, महाराजकृष्ण रसगोत्र के यहाँ मैंने उनकी एक नयी किताब आधुनिक संसार की समस्याओं पर देखी थी। विज्ञान पर जो उनकी नयी किताब निकली है उसे देखने की उत्सुकता है।

शनिवार, 17 मई, '52

सुबह कमरे की सफ़ाई की, किताब काग़ज़ों को ठीक किया, कपड़ों की आलमारी में तरतीब दी, कमरा साफ़-सुथरा लगा।

एलेन 12 बजे आया, शरीर से भारी, कद में थोड़ा ठिगना है। मिलते ही ऐसा लगा जैसे एक-दूसरे को बहुत दिनों से जानते हैं—मार्जरी ने मेरे बारे में उसे सब कुछ बता रक्खा था। उम्र 24-25 के लगभग। इसी साल डाक्टरी का इम्तहान पास किया है। केम्ब्रिज पहले आ चुका था, पर नगर देखने का मौक़ा न मिला था। कुछ देर परिचयात्मक बातें हुईं फिर निश्चय हुआ कहीं घूमने चला जाये। मैं उसे सेन्ट जोन्स कालेज दिखाते वर्ड्सवर्थ के कमरे में ले गया; फिर 'ब्रिज आफ़ साईज़' से निकल न्यू कोर्ट आया। ट्रिनिटी कालेज की लाइब्रेरी अभी बन्द थी। किंग्स कालेज और वहाँ का चैपेल दिखलाया। आज वहाँ खिड़कियों पर लगे रंग-चित्र शीशों की तस्वीरें बिकने को रक्खी थीं—एलेन ने कुछ ख़रीदीं—केम्ब्रिज-यात्रा की यादगार। युनिवर्सिटी लाइब्रेरी ले गया। एक बजने को था, शनिवार था, बाहर निकलने की घण्टी बज रही थी। बाहर से ही दिखलाया। फिर ट्रिनिटी लाइब्रेरी लाया—वहाँ क़रीब आधा घण्टा लग गया। घूमते-घूमते भूख लग गयी थी—ताज-महल रेस्ट्राँ में हमने लंच लिया—एलेन ने हिन्दुस्तानी खाना खाने की ही इच्छा प्रकट की। फिर हम कैम किनारे आये। मौसम अच्छा होने के कारण बहुत-से लोग नौका-विहार के लिए निकले थे। हम लोगों ने अपने-अपने कोट बिछाये और घास पर लेट गये—नीचे से ठण्डी घास का स्पर्श, ऊपर से सुहाती-सी धूप—एक-एक झपकी ले ली। शायद जब से केम्ब्रिज आया आज पहली बार दिन को सोया—हिन्दुस्तानी खाने की तासीर—मगर बड़ी प्यारी नींद आयी। मैंने एलेन से कहा, चलो थोड़ा 'पंण्टिंग' करें, हिन्दुस्तानी खाना यों ही नहीं हज़म होगा। वह तैयार हो गया, पर नाव नहीं मिल सकी, बहुत-सी नावें आज ग्रैंचेस्टर चली गयी थीं और शाम के पहले लौटनेवाली न थीं। सोचा खुला हो तो फ़िट्ज़विलियम म्यूज़ियम देख लें। सेन्ट कैथरीन्स और पेम्ब्रोक देखते हम म्यूज़ियम आये। 3॥ बजा था, 5 बजे म्यूज़ियम बन्द हो जाता है। यहाँ इतनी चीज़ें देखने की हैं, और समय इतना कम था कि हमने समझ लिया था कि हम उनके प्रति न्याय न कर सकेंगे—कहना चाहिए अपने प्रति। जिन कृतियों को रचने में कलाकारों ने अपना जीवन समर्पित कर दिया उनको उड़ती निगाह से देख आगे बढ़ जाना कला का अपमान करना तो है ही, हालाँकि कला इससे क्या अपमानित होती है; हम ख़ुद अपना अप-मान करते हैं। मैंने तो निश्चय किया है कि कभी आकर 'गाइड बुक' की सहायता से एक-एक चीज़ देखूँगा।—फिर भी कुछ कृतियाँ दिमाग़ में गड़ गयीं। एक है आइन्सटीन का काँसे का बना सिर। इसमें काँसे की कला का नवीन प्रयोग हुआ है। खुरदुरी काँसे की पत्तियों से आइन्सटीन के मुख पर उनके समस्त विचार-संसार को मूर्तिमान-साक्षात करने का प्रयत्न किया गया है। आइन्सटीन का यह चेहरा मुझे कभी नहीं भूल सकेगा। चित्रों में 'सेन्ट सिबैस्टियन का बलिदान' भी मुझे बहुत पसन्द आया। सिबैस्टियन को खम्भे से बाँध दिया गया है। हाथ उनके पीछे हैं, दिखायी नहीं देते। आँखों से उन्होंने अपने को भगवान को समर्पित कर दिया है—जैसे शरीर की ओर से निर्लिप्त हो गये हैं। उनके दोनों ओर से दो तीरन्दाज़ उन पर तीर चला रहे हैं—ऐसी निर्ममता है उनमें जैसे वे किसी निर्जीव वस्तु पर अपने बाण छोड़ रहे हों। ऊपर दो फ़रिश्ते हैं। एक दया से अभिभूत है,

दूसरा उन्हें पहनाने के लिए फूलों का गजरा ला रहा है। यह चित्र 'बैरोक' शैली का कहा जाता है। इस शैली का विकास स्पेन में हुआ था। इसमें कई प्रकार के भावों को एक दूसरे के विरोध में रखा जाता है—जड़ स्तम्भ के साथ बँधा सजीव शरीर; सजीव शरीर और उससे पूर्ण अनासक्ति; सेन्ट सिबैस्टियन का शरीर ज़मीन पर है, उनकी आत्मा आसमान में उठ गयी है; तीरन्दाज़ों की निर्ममता और फ़रिश्तों की करुणा; वे तीर चला रहे हैं उन्हें मारने को और वे अमरता के सिंहासन के अधिकारी हुए जा रहे हैं। यह है 'बैरोक' शैली। यह बहुत पुरानी हो गयी थी और इसकी केवल ऐतिहासिक महत्ता रह गयी थी परन्तु इधर योरोप के जीवन में जो विरोधाभास आया है उसे व्यक्त करने के लिए फिर इस शैली को याद किया गया है। कविता में टी. एस. ईलियट ने अपने शिल्प में जिस प्रवृत्ति को प्रधानता दी वह juxtaposition की शैली कहलाती है। इसे विरोधाभास भी कह सकते हैं। इसमें यथार्थ के विरोध में आदर्श अथवा कल्पना, साहित्य-कला-इतिहास से लाकर रख दी जाती है। वास्तविकता इससे अधिक स्पष्ट भी होती है, लज्जित भी। आधुनिक काव्य शैली को कुछ समालोचकों ने चित्रकला में 'बैरोक' शैली का प्रतिरूप कहा है। कुछ ने आधुनिक काव्य को इसी दिशा में विकसित करने की सलाह दी है। आज योरोप का जीवन आशा-निराशा, युद्ध-शान्ति, भय-विश्वास, विश्व के नव-निर्माण और सम्पूर्ण संहार जैसी विरोधी भावनाओं-कल्पनाओं के बीच चल रहा है। ऐसा समय 'बैरोक' शैली के लिए उपयुक्त है। विरोधी भावनाओं को सामने रखते हुए भी कला की एकता उसी प्रकार लायी जा सकती है जिस प्रकार सेण्ट सिबैस्टियन के बलिदानवाले चित्र में। चित्र में एक भाव है, एक स्थल है जो सबको दबाये हुए है—सेण्ट सिबैस्टियन की आँखों में आत्म-समर्पण का भाव—उनकी आँखें न तो तीरन्दाज़ों के बाणों की ओर देख रही हैं, न फ़रिश्तों के वरदानों की ओर। क्या आज का कलाकार जीवन की समस्त परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियों के प्रति जागरूक रहता हुआ भी किसी ऐसी एकता को जन्म दे सकता है जिसके बिना कला सार्थक नहीं बनती। कलाकार का काम ही है कि विरोधों के बीच में एकता के सूत्र को पहचाने—diversity के बीच में unity को देखे। वैविध्य और विरोध का काल कलाकार के लिए सचमुच एक बड़ा अवसर है—एक चुनौती भी। कोई प्रतिभावान कलाकार आ जाये तो ऐसे ही युग को महान कला के लिए सबसे अधिक उर्वर सिद्ध कर सकता है। बैरोक शैली को आधुनिक कला के लिए—काव्य और साहित्य के लिए—आदर्श बनाने की बात बहुत सटीक है। इस कारण मैंने उस चित्र को बहुत ध्यान से देखा। मैं 'बैरोक' शैली के और चित्रों को देखने के लिए उत्सुक हो उठा हूँ। बैरोक शैली के सम्बन्ध में सिद्धान्त तो बहुत पढ़े थे, पर जो बात चित्र देखने से स्पष्ट हुई वह पहले नहीं हुई थी।

सभी कमरों में घूमा। स्वीकार करूंगा ही, कलाकृतियों के प्रति न्याय न करते हुए, यानी अपने प्रति।

अजायबघर हुए, पुस्तकालय हुए, इनसे निकलकर एक बड़ी अकिंचनता की भावना मेरे मन को दबा लेती है। संसार में कवियों, लेखकों, विद्वानों ने क्या-क्या लिखा है; क्या-क्या चीज़ें हमारे लिए वे छोड़ गये हैं। कलाकारों ने कैसी-कैसी कल्पना की है, और उस कल्पना को रूप देने के लिए कितना परिश्रम किया है, कैसी साधना की है। हम क्या हैं, हमने क्या किया है, हम क्या कर सकेंगे! ऐसी संस्थाओं से हम कुछ भी न सीखें, कुछ भी प्रेरणा ग्रहण न करें, तो भी इनके द्वारा इतना ही क्या कम होता है कि ये मनुष्य को उसकी अल्पता, लघुता के प्रति अचेत

नहीं होने देतीं, उसके दम्भ को दबाये रहती हैं। मन्दिर में मैं सिर न झुकाऊँ, मस्जिद को अपनी श्रद्धा न दूँ, गिरजे का आदर न करूँ पर इन कलाकारों की कुटिया में मेरा सिर सौ-सौ बार झुकता है, मेरी श्रद्धा पग-पग पर बिछती है और मेरा मन बारम्बार समर्पित होता है।

रास्ते में चाय पीकर हम कमरे आये। खाने में अभी देर थी। मैं एलेन से बातें करता रहा।

एलेन सचमुच शुद्ध अंग्रेज़ नहीं है। उसकी माता पोलिश माता-पिता से थीं पर उनका जन्म इंग्लैण्ड में हुआ था। उसके पिता रूसी हैं, क्रिश्चियन नहीं, यहूदी हैं। उसने बताया कि इंग्लैण्ड में कोई तीस हज़ार यहूदी हैं, उनकी पूजा के स्थान अलग हैं, उनकी पूजा हीब्रू में होती है, उनका धार्मिक ग्रन्थ अलग है, वे बाइबिल और ईसा को नहीं मानते, उनके पादरी रबाई कहलाते हैं, उनके पूजा-घरों को सिनेगोग कहते हैं, यहूदी बहुत-से कर्मकाण्डों को मानते हैं, ग़ैर-यहूदी से विवाह-सम्बन्ध नहीं करते, जो ऐसा कर लेता है उसे सदा के लिए बहिष्कृत कर दिया जाता है।

मार्जरी एलेन से प्रेम करती है, एलेन भी उसे करता है। एलेन अपने माता-पिता की एकमात्र सन्तान है। मार्जरी ईसाई है। क्या कभी सम्भव होगा कि उनका आपस में विवाह हो जाये। हुआ भी तो एलेन को अपने माता-पिता से अलग होना पड़ेगा। पुत्र का सुख माता-पिता के लिए बड़े विषाद का अवसर होगा। पर जीवन तो आज विरोधी पथों पर जा ही रहा है। हमारे छोटे-बड़े काम सब उसी के अंग बन-कर बड़े-बड़े विरोधों को जन्म देते हैं, जिससे जीवन का एक भाग दूसरे को खा जाने को उतारू हो जाता है। मैंने किसी सर्प के विषय में सुना है कि वह भूखा होने पर अपनी पूँछ को खाना शुरू करता है, और अपना पेट भरते-भरते अपने को काल के गाल में डाल देता है। जीवन अपनी रक्षा के लिए आज अपने को खा रहा है। यही विरोध हमारे छोटे-छोटे कामों में उतर आया है और जीवन की एकता खो गयी है।

6।। बजे हमने खाना खाया। फिर जीज़स कालेज देखते हम कैम किनारे पहुँच गये। आज गर्मी थी तो केम्ब्रिज के नर-नारी-बच्चे तालाब में नहाने को निकल पड़े थे। नक़ली तालाब बना है, नदी में कोई नहीं नहाता! मर्द-औरतें प्रवेश तो दूसरी-दूसरी ओर से करते हैं, पानी में एक हो जाते हैं। कुछ देर हम लोग यह भी तमाशा देखते रहे।

एलेन को गाड़ी पर बिठलाकर डिग लौटा। आज शनिवार था—पीने, पागल होने की शाम और दुन्द मचाने की रात। बार-सैलून-पब से गाने और चिल्लाने की आवाज़ें आ रही थीं।

आज का पूरा दिन एलेन खा गया।

डायरी लिखकर ईट्स की कुछ कविताएँ पढ़ लीं—नागा नहीं होना चाहिए।

इस समय 12 से ऊपर हो चुके हैं। भारत में सुबह हो रही होगी। तेजी, अमित, अजित जाग गये होंगे। बंटी को सबने जन्म-दिन की बधाई दी होगी, प्यार किया होगा और सबों ने मेरी कितनी याद की होगी! इस समय भी कर ही रहे होंगे। मैं भी यहीं से कहता हूँ, बंटी बेटा, डैडी का प्यार लो, बहुत दिन जियो, बहुत पढ़ो-लिखो, बहुत बड़े-बड़े आदमी बनो, दोनों बेटे अमित और अजित। उम्मीद है मेरा बधाई का कार्ड आज तक मिल गया होगा—Long live Bunty! Long live Amit! Long live my tender and brave Teji!

रविवार, 18 मई, '52

रात को सोने गया तो घर का ख़्याल छोड़ ही नहीं रहा था। घण्टे सुनता रहा। शायद दो बजे तक मैंने कई घण्टे सुने। फिर किसी समय नींद आ गयी।

सुबह उठकर तैयार हुआ। ब्रेकफ़ास्ट से ऊपर आने लगा तो फूल (लैण्डलेडी ने मँगा दिये थे) और फूलदान कमरे में लाया। उसी के नीचे चार तस्वीरें सजा दीं—एक जी की अकेली, एक तेजी की और मेरी, एक तेजी, अमित, बंटी की और मेरी—घर पर ली, एक स्टेशन पर ली। दोनों तस्वीरों में बंटी हँस रहा है। बार-बार ध्यान तस्वीरों पर जाता रहा और सबकी याद आती रही। आशा है बंटी का जन्म-दिन वहाँ अच्छी तरह मनाया गया होगा। तेजी मुझे लिखेंगी अवश्य कि उन लोगों ने उस दिन क्या-क्या किया। अमित-अजित को एक लम्बा पत्र लिखा।

मैंने आज का समय कविता पढ़कर बिताने का निश्चय किया। मेरी हिन्दी पुस्तकें अभी तक नहीं आ सकी हैं, नहीं तो तुलसी, सूर, कबीर, मीरा के साथ कुछ समय बिताता। मार्जरी ने अंग्रेज़ी के कुछ और आधुनिक कवियों की रचनाएँ भेज दी थीं। मैंने उन्हीं को पढ़ने का इरादा किया। प्लोमर की रचना पहले भी इधर-उधर देखी थी और पसन्द भी की थी। आज मैंने उनका पूरा संकलन पढ़ डाला। प्लोमर युद्ध के सिलसिले में अफ्रीका, ग्रीस, जापान में रहे थे और हर जगह से उन्होंने कविताएँ प्रकाशित करायी थीं। उनकी जो-जो कविताएँ मुझे बहुत पसन्द आयीं उनको मैंने लिख लिया है। प्लोमर अभिव्यक्ति पर अधिकार रखते हैं और विषय के अनुसार अपनी भाषा को ढाल सकते हैं। व्यंग्य से लेकर गम्भीर भावनाओं तक सबको उनकी भाषा समान कौशल से निभा ले जाती है। फिर भी आन्तरिक प्रेरणाओं के लिए अभी प्लोमर मुँहताज हैं। लिखने के लिए उन्हें नित्य जीवन की नयी परिस्थितियाँ चाहिएँ। ऐसी ही परिस्थितियों में उनकी कविता का जन्म हुआ था और ऐसी ही परिस्थितियों में उसका विकास भी सम्भव होगा।

फिर टी. टिलर की रचना 'The Inward Animal' उठा ली। टिलर मुझे प्लोमर जितने नहीं जँचे। वे युद्ध के समय कई वर्ष मिस्र में रहे हैं। उनकी रचनाओं से भी मैंने कुछ उद्धरण लिये। टिलर में कल्पना की कमी है; जिसे उन्होंने निकट से देखा है उसका वर्णन ठीक और सटीक देंगे। 'मिस्री नर्तकी', 'स्फिक्स' आदि के उनके वर्णन बहुत सजीव लगे। परन्तु उनके शिल्प में एक ऐसी एकरूपता है जो सब जगह ऊपर-ऊपर छलकती, झलकती है। शिल्प जो इतना छिपकर रहे कि वह लापरवाही-सा मालूम हो, लिटर में नहीं। प्लोमर में बहुत जगह इसका आभास होता है कि शिल्प लापरवाही की सीमा पर पहुँच गया है। परन्तु शिल्प की लापरवाही लापरवाही से नहीं आती, बहुत मेहनत के पश्चात् आती है। कम मेहनत से मेहनत का पता चल जाता है। टिलर अपनी अभिव्यक्ति को विशिष्टता देने का प्रयत्न करते हैं। यह उसका संस्कार-परिष्कार भले ही हो, पर यह उसकी निर्बलता भी है। फिर भी उनकी अन्तिम रचना 'Birth of Christ' मुझे बहुत अच्छी लगी। It was not so much the birth of a child as the birth of a mother. ईसा तो भगवान के रूप हैं, उनका क्या जन्मना, पर उससे कुमारी को नव-जीवन मिला—वह मातृत्व का जन्म था।

'She had been born. The child was she.'

टिलर की रचना समाप्त हुई तो 6 बजे थे। अब भी मेरे पास एक घण्टे का समय था। Alex Comfort की 'Elegy' उठायी, पर न जाने क्यों लगा आज इसे

नहीं पढ़ना चाहिए। उलट-पुलट कर रख दी। सवा सात पर Blue Bore पहुँच गया। साढ़े सात मेरे मेहमान आ गये—डोनल्ड, मिस्टर-मिसेज़ दत्त, प्रोफ़ेसर-मिसेज़ विली। पीने के लिए अंग्रेज़ों ने शेरी ली, हिन्दुस्तानियों ने नारंगी का शरबत। प्रो. विली ने ग्लास उठाया, 'To the health of your son !'

खाने की टेबिल पर मिसेज़ विली चीफ़ गेस्ट की जगह पर बैठीं। खाते समय भारत की अनेक समस्याओं पर बातें हुईं। मिसेज़ विली ने कहा कि वे हिन्दुस्तान देखना चाहती हैं—जब प्रो. विली रिटायर होंगे तब वे हिन्दुस्तान, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड जायेंगे। मैंने कहा, अगर आप हिन्दुस्तान आयें और इलाहाबाद भी आपके प्रोग्राम में शामिल हो तो मेरा आतिथ्य स्वीकार करें। इलाहाबाद आप न भी आयें, तो हिन्दुस्तान में अपने आने की सूचना मुझे दें, मैं कहीं न कहीं आपको अवश्य मिलना चाहूँगा। हिन्दुस्तान में शिक्षा, खेती, जनसंख्या, पिछला चुनाव, पण्डित नेहरू, भारतीय साहित्य और कला—सबमें उन्होंने दिलचस्पी दिखलायी। भारत में बढ़ते साम्यवाद पर भी बात चली। मैंने कहा, साम्यवादी पार्टी की सबसे बड़ी कमी यह है कि उनके पास कोई प्रसिद्ध नेता नहीं है। हिन्दुस्तानी सूक्ष्म सिद्धान्तों को नहीं समझता। वह उन सिद्धान्तों की मूर्ति देखना चाहता है। गांधी-जी इस बात को समझते थे। वे अपने सिद्धान्तों की मूर्ति बन गये। देश बहुत-सी बातों में गांधीजी से सहमत नहीं था, पर अपने व्यक्तित्व के बल पर वे हमेशा लोगों को अपने साथ बहा ले जाते थे। जवाहरलाल में भी यही बात है। कांग्रेस की नीति से बहुतों को शायद विरोध है पर पण्डित नेहरू के साथ ही देश जाता है। यह बात प्राय: कही गयी है कि पिछले चुनाव में कांग्रेस की जीत नहीं हुई, पण्डित नेहरू की हुई है। यह बहुत अंशों में ठीक है। चर्चिल ने दूसरा महासमर जीता, आप लोगों ने उन्हें बड़ा सम्मान दिया, पर चुनाव में वे पराजित हुए। अगर चर्चिल भारत में होते तो यह सम्भव न होता। हर देश की जनता के काम करने का एक ढंग होता है, वह औरों की दृष्टि में ग़लत भी हो सकता है, पर उसके साथ तो उस देश की सारी परम्परा और परिस्थितियाँ जुड़ी हैं। उनसे उसे अलग भी कैसे किया जा सकता है। सफल नेता वही है जो अपनी जनता की प्रवृत्ति को समझे। भारतीय जनता को जितना गांधीजी ने समझा था उतना शायद और किसी नेता ने नहीं। वे जानते थे कि यह देश मूर्ति-पूजक है; पहले मूर्ति बनो, तभी इस देश का ध्यान अपनी ओर खींच सकोगे। पिछले चुनाव में कांग्रेस की सफलता पर किसी ने चाहे मजाक में ही कहा हो, पर बात बड़े पते की कही थी कि कांग्रेस की विजय उसी दिन निश्चित हो गयी जिस दिन उसने 'बैलों की जोड़ी' को अपना प्रतीक चुना। बैल भारतीय किसान के जीवन के लिए बड़े महत्त्व के हैं। बैल का चित्र देखते ही किसान परोक्ष-अपरोक्ष भावना से भर जाता है। कितने ही अपढ़, सीधे, भोले-भाले किसानों को इन बैलों के चित्र ने सहज ही अपनी ओर खींचा होगा। कांग्रेस को इतना credit तो दो कि उसमें जनता को प्रभावित करनेवाले प्रतीकों की पहचान है। आज भी भारतीय जनता की जितनी जानकारी कांग्रेस को है उतनी किसी अन्य पार्टी को नहीं। काश, कांग्रेस इस ज्ञान का पूरा लाभ उठा सकती !

खाने के पश्चात् हम लोग लाउंज में आये। वहीं कॉफ़ी आयी। प्रो. विली आजकल मैथ्यू आर्नल्ड के जर्नल का अध्ययन कर रहे हैं। उन्होंने बताया कि मैथ्यू आर्नल्ड के गद्य और पद्य में बड़ा अन्तर है। पद्य में अन्धकार, सन्देह, निराशा छायी है; गद्य में आर्नल्ड बड़े आत्म-विश्वास, बड़ी आस्था और आशा का परिचय देते हैं। एक ही व्यक्ति ने कैसे अपने को दो मनोवृत्तियों में विभाजित कर दिया था, यह

आज के आलोचकों के सामने बड़ी भारी समस्या है।

मैंने अपने शोध के सम्बन्ध में भी बात की। 'The Irrational in W. B. Yeats' विषय उन्होंने बहुत पसन्द किया। उनकी राय है कि इसको इच्छानुसार सीमित या विस्तृत किया जा सकता है। सलाह दी कि मि. हेन की सम्मति भी इस पर ले लूँ।

साढ़े नौ बजे सब लोग विदा हुए।

कमला और दत्त मेरे साथ मेरे कमरे में आये और बहुत देर तक बैठे रहे। प्रोफ़ेसर आरबेरी की नयी किताब—उमर ख़ैयाम—पर बातें होती रहीं। दत्त ने बी. ए. में फ़ारसी ली थी। मैंने उनसे कहा कि अगर तुम उमर ख़ैयाम की नयी पाण्डुलिपि की रुबाइयों का अर्थ सरल उर्दू में मुझे समझा दो तो मैं उसका पद्य-बद्ध अनुवाद कर डालूँ। हिन्दी के लिए यह बिलकुल नयी चीज़ होगी। अपनी थीसिस लिखने में वे बहुत व्यस्त हैं, फिर भी उन्होंने समय निकालकर मेरी मदद करने को कहा है। मैंने उन्हें बताया कि फ़िट्ज़जेरल्ड का अनुवाद मैंने एक सप्ताह में किया था। उमर ख़ैयाम की विचारधारा से मेरी इतनी सहानुभूति है कि मुझे इस अनुवाद में पन्द्रह दिन से अधिक नहीं लगेंगे। विचार उन्हें पसन्द आया। कमला-जी ने भी दत्त से कहा कि आप कुछ समय बच्चनजी को अवश्य दें। ऐसा अवसर फिर किसी को कहाँ मिलने लगा।—दत्त से मैंने कहा, तुम चाहो तो यह अनुवाद हम दोनों के नाम से प्रकाशित हो। फ़ारसी मुझे नहीं आती। परिवार में लोग पढ़े थे, पिताजी भी मेरे फारसी जानते थे। उस समय इसका रिवाज भी था। इस कारण कुछ संस्कारवश जब फ़ारसी मेरे सामने पढ़ी जाती है तो मैं आसानी से समझ लेता हूँ। कभी एम. ए. क्लास के किसी विद्यार्थी की सहायता से मैंने हाफ़िज़ का भी कुछ अध्ययन किया था। शेर की ध्वनि के लिए उसे नागरी अक्षरों में लिख लेता था, फिर उसका शब्दार्थ पूछ लेता था। इस प्रकार हाफ़िज़ के बहुत-से शेर मैंने याद भी किये और उनका अर्थ भी समझा। मुझे उमर ख़ैयाम को समझने में दिक़्क़त नहीं हो सकती। प्रो. आरबेरी का अंग्रेज़ी अनुवाद भी कहीं-कहीं सहायता देगा। मगर मैं चाहता हूँ कि अनुवाद हो तो मूल फ़ारसी पाण्डु-लिपि के आधार पर। मैंने सोचा है कि प्रो. आरबेरी को पत्र लिखकर उनसे मिलूँ और इस पाण्डुलिपि को देखने की आज्ञा माँगूँ।

कमला और दत्त को उनके घर छोड़कर वापस आया।

सोमवार, 19 मई, '52

सुबह सेन्ट्रल लाइब्रेरी जाकर पत्रादि देखे। 'लिसनर' में एक लेख लियोनार्डो डा विंची पर था; एक लेख काश्मीर पर। पाकिस्तान के स्वीकार कर लेने पर भी अब तक उसके पक्षपाती उसके हमले को क़बाइलियों का हमला कहकर ग़लत बातें फैला रहे हैं। फिर भी लेख में समस्या को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया था। इंग्लैण्ड के पत्रकार यह देखकर कि शेख़ अब्दुल्ला का झुकाव पाकिस्तान की तरफ़ बिलकुल नहीं, और अपनी सत्ता मिटाकर वह हिन्दुस्तान से भी नहीं मिलना चाहता, उसके सामने यह सुझाव रख रहे हैं कि वह काश्मीर को स्विट्ज़रलैण्ड के समान एकदम स्वतन्त्र देश बनाने का प्रयत्न करे। ऐसा सम्भव हो सकता है यदि उसके चारों ओर के देश चीन, रूस, अफ़ग़ानिस्तान, पाकिस्तान, भारत उसके सम्बन्ध में एक neutrality pact बनायें और प्रतिज्ञा करें कि कोई काश्मीर से किसी प्रकार की छेड़-छाड़ न करेगा। यदि ऐसा न हुआ, और भारत का नियन्त्रण

काश्मीर पर ढीला पड़ा तो लद्दाख के बौद्ध तिब्बत से मिलना चाहेंगे, जम्मू भारत से मिलना चाहेगा, और जो भाग पाकिस्तान के कब्ज़े में है उसे छुड़ा लेना मुश्किल होगा। तब काश्मीर, सिर्फ़ काश्मीर-घाटी का काश्मीर होगा, जिसमें 95 प्रतिशत मुसलमान होंगे। इतनी छोटी रियासत कहाँ तक अपने बल पर अपनी सत्ता बनाये रहेगी, यह विचारणीय प्रश्न है। मैं समझता हूँ, काश्मीर की समस्या किसी world crisis की प्रतीक्षा कर रही है। उसी के लपेट में यह हल होगी, पहले नहीं।

दिन में यु. ला. में काम करता रहा। ईट्स की 'आटो.' पर नोट्स लेने का कार्य समाप्त।

उमर ख़ैयाम की नवीन पाण्डुलिपि से अनुवाद करने की बात मेरे मन में जमी हुई थी। बैठे-बैठे ख़्याल आया कि देखूँ वह पाण्डुलिपि देखने को मिल सकती है या नहीं। फ़ारसी पाण्डुलिपियों का सूची-पत्र मँगवाया, पर उसमें वह दर्ज नहीं थी। मैंने एक कर्मचारी से ज़िक्र किया कि मैं उमर ख़ैयाम की रुबाइयों की वह पाण्डुलिपि देखना चाहता हूँ जिससे प्रो. आरबेरी ने अपना नया अनुवाद किया है। उसने मुझसे कहा कि लंच के बाद वह मुझे मिल सकेगी।

लंच के लिए 'डिग' लौटने पर तेजी का पत्र मिला। जो मैंने सोची थी वही बात उसमें थी। उन्होंने बड़ी-बड़ी माफ़ी माँगी थी—बस एक सनक में लिख दिया था कि तुम सबको भूल गये हो। बाद को अपनी ग़लती महसूस की। यह पहले भी होता रहा है। मुझे अधिक संयम से पत्र लिखना चाहिए था। मैंने उत्तर ज़रा गुस्से में लिख दिया था। गेटे ने कहीं लिखा है—Be tender to a woman; she is a broken rib.—हवाला हव्वा का है जिसको बाइबिल की कथा के अनुसार खुदा ने आदम की पसली की एक हड्डी से बनाया था। इस प्रकार बाइबिल पुरुष से स्त्री का जन्म मानती है। सास ब्रूनर का एक तैल-चित्र दिल्ली में देखा था जिसमें उन्होंने बाइबिल की कथा उलट दी थी, आदि-स्त्री से पुरुष का जन्म दिखाया था, जो अधिक युक्ति-संगत लगता है। प्राकृतिक सत्य तो यही है। पर दन्त-कथाओं के अपने दूसरे ही अर्थ-संकेत होते हैं। क्या बाइबिल समाज में स्त्री को प्रथम स्थान नहीं देना चाहती थी—She is an after-thought. पुरुष समस्त शरीर, स्त्री एक पसली मात्र। बाइबिल में कहीं है—नये अहदनामे में—स्त्री के लिए पुरुष ऐसा ही है जैसे पुरुष के लिए ईसा मसीह। स्त्री को जो दर्जा आज योरोप में मिला है उसके पीछे कोई धार्मिक संस्कार नहीं है। वह आधुनिक प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों से उसे मिला है, और प्रजातन्त्र ईसाइयत की देन न होकर यूनानी सभ्यता की देन है।

पत्र से पता लगा कि 'सोपान'—मेरा संकलन—लीडर प्रेस ने ले लिया है और उसके लिए 3000) रायल्टी के हिसाब में अग्रिम देने को तैयार हैं। मैंने 5000) माँगा था, पर शायद इतना कोई नहीं दे सकता था, चलो ठीक हुआ।

गया प्रसाद ने अपनी तस्वीर 'कौन' के लिए मेरे पाँच गीत चाहे हैं, पर 100) प्रति गीत देना चाहते हैं। यह तो कुछ भी नहीं, 500) प्रति गीत से कम पर राज़ी नहीं हो सकता। ठीक है, आप मेरे अध्यापक रहे हैं, मित्र हैं, पर आप तो व्यापार करने जा रहे हैं और व्यापार किसी का मित्र नहीं होता। मित्र हैं तो मित्र के नाते उन्हें मुझे और देना चाहिए था। पर यहाँ तो क़ायदा यह है, मित्र का गला काटो, क्योंकि उसी का काटना आसान होता है।

ख़ैर, पत्र पढ़कर खुशी हुई कि तेजी का मूड ठीक है, बच्चे अच्छी तरह हैं, जन्म-दिन बहुत हँसी-खुशी से मनाया होगा। ऐसे ही वे लोग वहाँ रहें तो यहाँ मैं

भी कुछ काम कर सकूँगा। मुझे सदा यही सोच लगा रहे कि मेरे बिना घर पर रोना-धोना मचा है, या तेजी सदा यही सोचा करें कि मैं उन्हें और बच्चों को भूल यहाँ नये बन्धनों में बँध गया हूँ तो न उन्हें शान्ति मिल सकेगी न मुझे। और यहाँ आकर्षण भी क्या है। जीवन की वास्तविकताएँ अब इतने नग्न रूप में मेरे सामने आती हैं कि मैं उनसे धोखा नहीं खा सकता, मेरी आत्मा अपने को नहीं खो सकती।

इस विश्वास और गर्व का धनी ही—जो मैं अपने को समझता हूँ—प्रलोभनों से खेल भी सकता है। कुशल तैराक जिसे डूबने का बिलकुल भय नहीं, लहरों के साथ बह जाने का ज़रा भी ख़तरा नहीं, बार-बार डुबकी ले किनारे पर आ जाता है—बार-बार अपनी विजय का अनुभव करने के लिए—पानी मुझे नहीं पकड़ सका, लहरें मुझे नहीं छू सकीं। अस्वस्थ, भीरु, निर्बल किनारे बैठा रहता है—साफ़-सुथरा—उसका मन जल के कीचड़-काँदों में सना-लिपटा; वह भीतर ही भीतर इतना हाथ-पाँव पटकता है कि साफ़ पानी को भी कीचड़ कर डालता है। पर जिसे अपने पर विश्वास है, जो स्वस्थ है वह पानी में कूद, पानी से निकल पानी से निर्लिप्त बाहर आ खड़ा होता है। जो पानी के भीतर हो आता है उसे पानी छूता भी नहीं, और जो पानी से दूर रहता है वह उसके कीचड़ में गन्दा बना रहता है। जीवन की सच्चाई बाहर तैरती नहीं दिखायी देती। आँखों का फ़ैसला अक्सर ग़लत होता है। दूर की कल्पना, आशंका, मृगतृष्णा! निर्णय जल्दी से न दे दो।

मैं नहीं हूँ देह-धर्मों से बँधा, जग, जान ले तू;
तन विकृत हो जाय लेकिन मन सदा अविकार मेरा।

अपने आत्मचरित में एक स्थान पर ईट्स ने लिखा है—"Was it only Villon, or did Dante also feel the fascination of evil, when shown in its horror, as it were, judged and lost; and what proud man does not feel temptation strengthened from the certainty that his intellect is not deceived?"

I have only this much to add that this is not his 'yielding to temptation' but 'playing with temptation'. When one yields to temptations one weakens oneself, but when one plays with them one gains in self-confidence. But whether he yields to or plays with them he is any day better than the coward who cherishes them but fears to come near them. He avoids their touch; actually he is sunk in them.

लंच के बाद लाइब्रेरी गया तो प्रो. आरबेरी की 'उमर ख़ैयाम' साथ लेता गया। पाण्डुलिपि मुझे अपने बैठने के स्थान पर मिली—मोटे गत्ते के बक्स पर कपड़ा चढ़ाकर उसे बहुत हिफ़ाज़त से रक्खा गया है। उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का भाग बीच में है—सम्भवतः 50 पृष्ठ से आरम्भ होता है। प्रो. आरबेरी ने उसके प्रथम पृष्ठ का फ़ोटो अपनी किताब में दिया था। उससे मिलाकर मुझे निश्चय हुआ कि यही पण्डुलिपि है। पढ़ तो सकता नहीं था, पर पता लग गया कि पाण्डुलिपि बिना किसी की ख़ास इजाज़त के मिल सकती है; अगर कोई चाहे तो उसकी प्रतिलिपि भी कर सकता है। पाण्डुलिपि के पास स्याही नहीं लानी चाहिए; पेंसिल से कोई उसकी नक़ल कर सकता है।

मैं आरबेरी की 'उमर ख़ैयाम' पढ़ने लगा। भूमिका बहुत विद्वत्तापूर्ण है। यह समस्या मेरे सामने भी आयी थी कि उमर ख़ैयाम की सूफ़ी-मत-पोषक अथवा

इस्लाम-समर्थक रुबाइयों को कैसे उनके सन्देहात्मक सुखवाद बोधक रुबाइयों के साथ रक्खा जाये। मैं जिन परिणामों पर पहुँचा था, प्रो. आरबेरी क़रीब-क़रीब उन्हीं परिणामों पर पहुँचे हैं। प्रो. आरबेरी का ख़्याल है कि केवल कट्टर मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने ऐसी रुबाइयाँ लिखी होंगी। मैंने इसके साथ ही एक और सम्भावना रक्खी है—उमर ख़ैयाम की विचारधारा में वृद्धावस्था के कारण वास्तविक परिवर्तन की गुंजाइश भी हम क्यों न मानें। मुझे ख़ुशी हुई कि प्रो. आरबेरी से 7-8 वर्ष पूर्व लिखते हुए भी मैं अपने अनुमान में ग़लत नहीं था और शायद उमर ख़ैयाम पर विचार करनेवालों में मेरा लेख पहला था जिसमें उनकी परस्पर-विरोधी रुबाइयों में भी एक सामंजस्य दिखाने का प्रयास किया गया था। पर मेरी चीज़ हिन्दी में थी और उसको किसी ने देखा भी नहीं, हिन्दी के विद्वानों ने भी नहीं, क्योंकि उन्होंने अपनी सीमा बना रक्खी है, उमर ख़ैयाम का हिन्दी से क्या सम्बन्ध ? यहाँ अंग्रेज़ी में उन पर पुस्तक पर पुस्तक लिखी जा रही है।

भूमिका पढ़ने के बाद मैं रुबाइयों का अनुवाद पढ़ने लगा। अनुवाद में फ़िट्ज़जेरल्ड के कवित्व की छटा तो नहीं, पर ख़ैयाम को एक नये दृष्टिकोण से अवश्य रक्खा गया है। अनुवाद को उन्होंने मूल के अधिक निकट रखने का प्रयत्न किया है। छन्द जो उन्होंने पसन्द किया है वह ख़ैयाम की मूल व्यंग्य-वक्रोक्ति को अधिक सफलता से उतार सकता है। फ़िट्ज़जेरल्ड के अनुवाद में ख़ैयाम अति-भावुकता के शिकार-से बन गये हैं—A victim of romantic melancholy. —प्रो. आरबेरी के अनुवाद में ख़ैयाम बुद्धि-प्राण, तीक्ष्ण-चक्षु, हास-व्यंग्यपूर्ण लगते हैं। फ़िट्ज़जेरल्ड से अनुवाद करने के कारण हिन्दीवालों ने भी उन्हें अंग्रेज़ी से मिलता-जुलता रूप दिया है—प्रेम-पीड़ित, जग-भीरु, निराशा-रुग्ण, छायावादी। इस दोष से मेरा अनुवाद भी मुक्त नहीं है। पर अगर इस पाण्डुलिपि से अनुवाद प्रस्तुत करने का अवसर मुझे मिल गया तो मैं ख़ैयाम का नया ही रूप हिन्दी संसार के सामने खड़ा कर सकूँगा। पढ़ते-पढ़ते सोच रहा था कि अगर विश्वनाथ दत्त सरल भाषा में फ़ारसी का अनुवाद मुझे न समझा सकें—शोध में बहुत व्यस्त हैं—तो कम से कम इतना कर दें कि उसकी प्रतिलिपि करके मुझे दे दें। मैं भारत जाकर किसी फ़ारसी दाँ से अर्थ करा इसका अनुवाद कर लूँगा। पाण्डुलिपि का फ़ोटो भी लिया जा सकता है, पर शायद उसमें ख़र्च ज़्यादा पड़ेगा। विश्वनाथ अगर कुछ भी सहयोग न दे सके तो शिक्षा-मन्त्रालय को लिखूँगा कि वह मुझे पाण्डु-लिपि का चित्र लाने के लिए कुछ आर्थिक सहायता दे।

खाना खाकर मादमोज़ेल वोआज़ेन और लीथान के साथ घूमने चला गया। लौटकर 'उमर ख़ैयाम' का शेष भाग पढ़ा। अंग्रेज़ी से अनुवाद करना चाहूँ तो 10-15 रोज़ लगेंगे। फ़ारसी मूल पाठ सुनने को मिल जाये तो उसके प्रचलित शब्दों और लयों से वातावरण की भी रक्षा की जा सकती है। प्रो. आरबेरी ने अनुवाद को कविता में बाँधने के लिए कुछ परिवर्तन तो किये ही होंगे। अनुवाद का अनुवाद, यह तो पुरानी बात फिर होगी। देखूँ मेरी आशा पूरी होती है कि नहीं।

मंगलवार, 20 मई, '52

आज इलाहाबाद युनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार की चिट्ठी मिली। मेरी छुट्टी 7 अप्रैल से 7 दिसम्बर तक, यानी 8 महीने के लिए पूरी तनख़्वाह पर, और 7 दिसम्बर

से गर्मी की छुट्टियों के लिए युनिवर्सिटी बन्द होने तक, यानी 5 महीने के लिए आधी तनख़्वाह पर मंज़ूर हुई है। ठीक हुआ। जुलाई '53 तक मुझे भारत लौट ही जाना है।

दिन-भर लाइब्रेरी में रहा। होन लिखित ईट्स का जीवन-चरित पढ़ रहा हूँ, साथ नोट्स भी लेता जाता हूँ।

ईट्स के बारे में आज एक मनोरंजक बात पढ़ी। अभी जब वे बहुत प्रसिद्ध नहीं हुए थे तो अपने नाटकों का अभिनय कराने एक बार वे केम्ब्रिज आये थे। मि. ईवलिन ह्वाइटहेड ने, जो उनके मेज़बान थे, एक दिन लंच पर उनसे मिलने को युनिवर्सिटी के कई प्रोफ़ेसरों को आमंत्रित किया था, पर उस दिन ईट्स समाधि में थे, न उन्होंने अपनी आँखें खोलीं न मुँह खोला। पर शाम को उन्हें एक व्याख्यान देना था; वहाँ जब वे बोले तो श्रोताओं को समाधिस्थ कर दिया। ईट्स बहुत अच्छे वक्ता थे। फ़िट्ज़विलियम हाउस के सेंसर मि. चैथर ने भी मुझे बताया था कि ईट्स जब पहली बार केम्ब्रिज में बोले थे तो श्रोताओं को उन्होंने मन्त्रमुग्ध कर दिया था।—अच्छा वक्ता बनने के लिए ईट्स ने काफ़ी परिश्रम और अभ्यास किया था। व्याख्यान देने के लिए जब वे पहली बार अमरीका गये थे तब अपना व्याख्यान लिखकर तीन-चार बार पढ़ते थे; इतना ही नहीं, सभा के समय के पूर्व सूने हाल में जाकर पूरा व्याख्यान खाली बेंचों को सुनाते भी थे। एक पत्र में लिखते हैं, I am now going to go through it all again, then I shall go down to the hall and speak the whole lecture in the empty place. This is necessary because I have found out that the larger the audience the more formal, rhythmical, oratorical must one's delivery be. My ordinary conversational happy go lucky inspiration of the moment kind of speaking gets all wrong when I get away from the small audiences I am accustomed to. मुझे डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा ने एक बार बताया था कि गोखले रात को अपने पूरे कपड़े पहन, छड़ी हाथ में ले, अपने भाषण का रिहर्सल करते थे। यह मानना पड़ेगा कि प्रतिभावान पुरुष अपनी प्रतिभा को प्रदीप्त करने के लिए काफ़ी साधना भी करते हैं, यहाँ तक कि बहुत-से लोगों का कहना है कि साधना ही प्रतिभा है। बहुत मेहनत करने से ख़च्चर घोड़ा नहीं बन जाता, मगर मेहनत न करने से घोड़ा भी ख़च्चर बन के रह जाता है। अपने लिखे को ईट्स बराबर दुहराया करते थे और उसे सुधारने के लिए सदा सचेत रहते थे। बाहरी बातों में वे लापरवाह थे। कपड़ों की लापरवाही के विषय में प्रो. विली ने बताया था कि जब ईट्स केम्ब्रिज में डाक्टरेट लेने आये थे तो बड़ी अजीब पोशाक में। उनकी सनक के लिए कुछ तो केम्ब्रिजवाले भी तैयार थे। नियम यह है कि ऐसे अवसरों पर लोग काला सूट पहनते हैं। ईट्स का जूता बादामी रंग का था, पैन्ट काला, कोट खाकी ट्वीड का, पर सबसे अजीब चीज़ थी उनकी टाई—हरी और बहुत चौड़ी। पर उनकी प्रतिभा उनके मुख और क़द से टपकती थी। जब वे बोले तो उन्होंने सबका मन मोह लिया। केम्ब्रिज में बहुत-से लोग हैं जिन्होंने ईट्स को देखा और उनका भाषण सुना था; और कोई भी ऐसा नहीं जो उस अवसर को एक निधि के समान अपनी स्मृति में न सँजोए हो।

'गीतांजलि' का अनुवाद सुधारने और उसे कलामय बनाने के लिए भी ईट्स ने बड़ा श्रम किया था। टैगोर ने एक पत्र में स्वीकार किया था कि अंग्रेज़ी पर जो

इस्लाम-समर्थक रुबाइयों को कैसे उनके सन्देहात्मक सुखवाद बोधक रुबाइयों के साथ रक्खा जाये। मैं जिन परिणामों पर पहुँचा था, प्रो. आरबेरी क़रीब-क़रीब उन्हीं परिणामों पर पहुँचे हैं। प्रो. आरबेरी का ख़्याल है कि केवल कट्टर मुसल्मानों को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने ऐसी रुबाइयाँ लिखी होंगी। मैंने इसके साथ ही एक और सम्भावना रक्खी है—उमर ख़ैयाम की विचारधारा में वृद्धावस्था के कारण वास्तविक परिवर्तन की गुंजाइश भी हम क्यों न मानें। मुझे खुशी हुई कि प्रो. आरबेरी से 7-8 वर्ष पूर्व लिखते हुए भी मैं अपने अनुमान में ग़लत नहीं था और शायद उमर ख़ैयाम पर विचार करनेवालों में मेरा लेख पहला था जिसमें उनकी परस्पर-विरोधी रुबाइयों में भी एक सामंजस्य दिखाने का प्रयास किया गया था। पर मेरी चीज़ हिन्दी में थी और उसको किसी ने देखा भी नहीं, हिन्दी के विद्वानों ने भी नहीं, क्योंकि उन्होंने अपनी सीमा बना रक्खी है, उमर ख़ैयाम का हिन्दी से क्या सम्बन्ध ? यहाँ अंग्रेज़ी में उन पर पुस्तक पर पुस्तक लिखी जा रही है।

भूमिका पढ़ने के बाद मैं रुबाइयों का अनुवाद पढ़ने लगा। अनुवाद में फ़िट्ज़जेरल्ड के कवित्व की छटा तो नहीं, पर ख़ैयाम को एक नये दृष्टिकोण से अवश्य रक्खा गया है। अनुवाद को उन्होंने मूल के अधिक निकट रखने का प्रयत्न किया है। छन्द जो उन्होंने पसन्द किया है वह ख़ैयाम की मूल व्यंग्य-वक्रोक्ति को अधिक सफलता से उतार सकता है। फ़िट्ज़जेरल्ड के अनुवाद में ख़ैयाम अति-भावुकता के शिकार-से बन गये हैं—A victim of romantic melancholy.—प्रो. आरबेरी के अनुवाद में ख़ैयाम बुद्धि-प्राण, तीक्ष्ण-चक्षु, हास-व्यंग्यपूर्ण लगते हैं। फ़िट्ज़जेरल्ड से अनुवाद करने के कारण हिन्दीवालों ने भी उन्हें अंग्रेज़ी से मिलता-जुलता रूप दिया है—प्रेम-पीड़ित, जग-भीरु, निराशा-रुग्ण, छायावादी। इस दोष से मेरा अनुवाद भी मुक्त नहीं है। पर अगर इस पाण्डुलिपि से अनुवाद प्रस्तुत करने का अवसर मुझे मिल गया तो मैं ख़ैयाम का नया ही रूप हिन्दी संसार के सामने खड़ा कर सकूँगा। पढ़ते-पढ़ते सोच रहा था कि अगर विश्वनाथ दत्त सरल भाषा में फ़ारसी का अनुवाद मुझे न समझा सकें—शोध में बहुत व्यस्त हैं—तो कम से कम इतना कर दें कि उसकी प्रतिलिपि करके मुझे दे दें। मैं भारत जाकर किसी फ़ारसी दाँ से अर्थ करा इसका अनुवाद कर लूँगा। पाण्डुलिपि का फ़ोटो भी लिया जा सकता है, पर शायद उसमें ख़र्च ज़्यादा पड़ेगा। विश्वनाथ अगर कुछ भी सहयोग न दे सके तो शिक्षा-मन्त्रालय को लिखूँगा कि वह मुझे पाण्डु-लिपि का चित्र लाने के लिए कुछ आर्थिक सहायता दे।

खाना खाकर मादमोज़ेल वोआज़ेन और लीथान के साथ घूमने चला गया। लौटकर 'उमर ख़ैयाम' का शेष भाग पढ़ा। अंग्रेजी से अनुवाद करना चाहूँ तो 10-15 रोज़ लगेंगे। फ़ारसी मूल पाठ सुनने को मिल जाये तो उसके प्रचलित शब्दों और लयों से वातावरण की भी रक्षा की जा सकती है। प्रो. आरबेरी ने अनुवाद को कविता में बाँधने के लिए कुछ परिवर्तन तो किये ही होंगे। अनुवाद का अनुवाद, यह तो पुरानी बात फिर होगी। देखूँ मेरी आशा पूरी होती है कि नहीं।

मंगलवार, 20 मई, '52

आज इलाहाबाद युनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार की चिट्ठी मिली। मेरी छुट्टी 7 अप्रैल से 7 दिसम्बर तक, यानी 8 महीने के लिए पूरी तनख़्वाह पर, और 7 दिसम्बर

से गर्मी की छुट्टियों के लिए युनिवर्सिटी बन्द होने तक, यानी 5 महीने के लिए आधी तनख़्वाह पर मंज़ूर हुई है। ठीक हुआ। जुलाई '53 तक मुझे भारत लौट ही जाना है।

दिन-भर लाइब्रेरी में रहा। होन लिखित ईट्स का जीवन-चरित पढ़ रहा हूँ, साथ नोट्स भी लेता जाता हूँ।

ईट्स के बारे में आज एक मनोरंजक बात पढ़ी। अभी जब वे बहुत प्रसिद्ध नहीं हुए थे तो अपने नाटकों का अभिनय कराने एक बार वे केम्ब्रिज आये थे। मि. ईवलिन ह्वाइटहेड ने, जो उनके मेज़बान थे, एक दिन लंच पर उनसे मिलने को युनिवर्सिटी के कई प्रोफ़ेसरों को आमंत्रित किया था, पर उस दिन ईट्स समाधि में थे, न उन्होंने अपनी आँखें खोलीं न मुँह खोला। पर शाम को उन्हें एक व्याख्यान देना था; वहाँ जब वे बोले तो श्रोताओं को समाधिस्थ कर दिया। ईट्स बहुत अच्छे वक्ता थे। फ़िट्ज़विलियम हाउस के सेंसर मि. चैथर ने भी मुझे बताया था कि ईट्स जब पहली बार केम्ब्रिज में बोले थे तो श्रोताओं को उन्होंने मन्त्रमुग्ध कर दिया था।—अच्छा वक्ता बनने के लिए ईट्स ने काफ़ी परिश्रम और अभ्यास किया था। व्याख्यान देने के लिए जब वे पहली बार अमरीका गये थे तब अपना व्याख्यान लिखकर तीन-चार बार पढ़ते थे; इतना ही नहीं, सभा के समय के पूर्व सूने हाल में जाकर पूरा व्याख्यान ख़ाली बेंचों को सुनाते भी थे। एक पत्र में लिखते हैं, I am now going to go through it all again, then I shall go down to the hall and speak the whole lecture in the empty place. This is necessary because I have found out that the larger the audience the more formal, rhythmical, oratorical must one's delivery be. My ordinary conversational happy go lucky inspiration of the moment kind of speaking gets all wrong when I get away from the small audiences I am accustomed to. मुझे डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा ने एक बार बताया था कि गोखले रात को अपने पूरे कपड़े पहन, छड़ी हाथ में ले, अपने भाषण का रिहर्सल करते थे। यह मानना पड़ेगा कि प्रतिभावान पुरुष अपनी प्रतिभा को प्रदीप्त करने के लिए काफ़ी साधना भी करते हैं, यहाँ तक कि बहुत-से लोगों का कहना है कि साधना ही प्रतिभा है। बहुत मेहनत करने से ख़च्चर घोड़ा नहीं बन जाता, मगर मेहनत न करने से घोड़ा भी ख़च्चर बन के रह जाता है। अपने लिखे को ईट्स बराबर दुहराया करते थे और उसे सुधारने के लिए सदा सचेत रहते थे। बाहरी बातों में वे लापरवाह थे। कपड़ों की लापरवाही के विषय में प्रो. विली ने बताया था कि जब ईट्स केम्ब्रिज में डाक्टरेट लेने आये थे तो बड़ी अजीब पोशाक में। उनकी सनक के लिए कुछ तो केम्ब्रिजवाले भी तैयार थे। नियम यह है कि ऐसे अवसरों पर लोग काला सूट पहनते हैं। ईट्स का जूता बादामी रंग का था, पैन्ट काला, कोट खाकी ट्वीड का, पर सबसे अजीब चीज़ थी उनकी टाई—हरी और बहुत चौड़ी। पर उनकी प्रतिभा उनके मुख और क़द से टपकती थी। जब वे बोले तो उन्होंने सबका मन मोह लिया। केम्ब्रिज में बहुत-से लोग हैं जिन्होंने ईट्स को देखा और उनका भाषण सुना था; और कोई भी ऐसा नहीं जो उस अवसर को एक निधि के समान अपनी स्मृति में न सँजोए हो।

'गीतांजलि' का अनुवाद सुधारने और उसे कलामय बनाने के लिए भी ईट्स ने बड़ा श्रम किया था। टैगोर ने एक पत्र में स्वीकार किया था कि अंग्रेजी पर जो

अधिकार उन्होंने प्राप्त किया उसका बहुत कुछ श्रेय ईट्स को था जो अपने यूस्टन रोड के छोटे-से कमरे में बैठकर टैगोर को उस भाषा की ख़ूबियों से परिचित कराया करते थे। सोमवार की शाम को ईट्स के कमरे में कवियों और लेखकों की एक गोष्ठी हुआ करती थी जिसमें टैगोर और सरोजिनी नायडू भी सम्मिलित हुआ करती थीं। ईट्स की इच्छा थी कि भारत में हर वर्ष एक ऐसा उत्सव हुआ करे जिसमें समस्त भारत के कवि एकत्र हों। भारत में इतनी भाषाएँ हैं, प्राय: एक-दूसरे से दूर, एक की गतिविधि का दूसरे को पता नहीं, फिर भी भारतीयता का एक सूत्र सबमें पिरोया है। किसी दिन एक राष्ट्रभाषा के ज्ञान से यह सूत्र अधिक स्पष्ट और अधिक दृढ़ होगा।

ईट्स टैगोर को आयरलैण्ड भी ले जाना चाहते थे, पर किसी कारण यह सम्भव न हुआ। अपने एब्री थियेटर में टैगोर के 'पोस्ट आफ़िस' का अभिनय उन्होंने कराया था। उस समय भारत में नव-जागरण की एक लहर आयी थी। पश्चिम ने आँख फाड़कर उसे देखा था, 'अरे, जिसे हम मुर्दा समझ चुके थे उसमें जान बाक़ी है; जान ही नहीं बाक़ी है, उससे क्षण-क्षण बल-तेज फूट रहा है!' उसी जागरण ने हमारे नेताओं में नया उत्साह, हमारे कवियों में नया स्वर, हमारे कलाकारों में नयी कल्पना भर दी थी। जो राष्ट्र सजग होता है, जिसकी सत्ता इतिहास के पृष्ठ बदलती है, जिसकी गति से संसार गतिमान होता है, संसार में हलचलें उठती हैं, वही उच्चकोटि की कला और साहित्य को जन्म देता है। क्योंकि वास्तव में इन्हीं हलचलों से नयी मानवता, नये व्यक्तित्व का जन्म होता है; नयी भावना, नये विचार और नयी कल्पना के द्वार खुलते हैं। यह किसने कहा कि शब्दों से कविता बनती है, रंगों से चित्र बनते हैं। जीवन की नयी हलचलें, इतिहास की नयी करवटें, विचारों की प्रबल चोटें मनुष्य को नया मार्ग, नया क्षेत्र, नया सन्तुलन खोजने को विवश करती हैं। कलाकार अपनी भाव-प्रवणता के कारण इस आवश्यकता को सबसे पहले अनुभव करता है; और वह अपनी सृजन-शक्ति के बल पर उपस्थित समस्याओं का जो हल खोजता है वह सबकी आवश्यकता की पूर्ति करता है। भारत से दूर बैठा यहाँ कभी-कभी सोचता हूँ—Does our literature matter in the present day world? और जब इसका उत्तर निराशाजनक मिलता है तो दूसरा प्रश्न पूछता हूँ—Do we matter in the present day world? The day we matter our literature and art will have a meaning, significance and importance. साहित्य और कला का इतिहास हमें बताता है कि इनकी महत्ता उसी दिन स्वीकृत हुई है जिस दिन इनके पीछे किसी ऐतिहासिक आन्दोलन का ज़ोर रहा है। ईट्स और टैगोर भी अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा के बल पर इतने ऊँचे नहीं उठ सकते थे जितना इन्हें इतिहास ने उठाया। ईट्स के पीछे आयरलैण्ड का राष्ट्रीय आन्दोलन था, टैगोर के पीछे भारत का पुनर्जागरण था। बंग-भंग आन्दोलन से आज़ादी के दिन तक हमने जो पूँजी कमाई थी उसे हम खा चुके हैं। आज संसार, देश, समाज के सामने जो समस्याएँ हैं उनका सामना करने को अगर हमने साहस के साथ कुछ न किया, करने को न सोचा, और इसी प्रतीक्षा में रहे कि समय का चक्र चलेगा और कुछ न कुछ हो रहेगा तो हमारे साहित्य में भी अकर्मण्यता, आलसीपन, गतिरोध आ जायेगा। If we do not matter our literature will not matter. जिस व्यक्ति ने लार्ड हार्डिंज पर बम फेंका था उसने हमारी साहित्यिक चेतना को अधिक जगाया था बनिस्बत उन सैकड़ों लेखकों के जिन्होंने उससे दस बरस पहले और दस बरस बाद तक क़लम घिसी थी।

आज की दुनिया में देश, राष्ट्र, जाति की हैसियत से हमारा कुछ मान-दान है? उसी अनुपात में हमारी कला और साहित्य का मान-दान होगा। जब हमने गुलामी की जंज़ीर तोड़ने को ख़म ठोंके थे तब संसार भर की आँखें हमारे टैगोर पर उठ गयी थीं। जब हम आज़ादी के पालने में पड़े झूल रहे हैं तब? तब?—We have to be great people to produce great literature. बड़े बनने के बड़े रास्ते हैं—एटम बम फेंकना और बड़े युद्ध छेड़ना ही बड़ा बनना नहीं है।

बुधवार, 21 मई, '52

सुबह तैयार होकर सेन्ट्रल लाइब्रेरी चला गया। समाचार-पत्र वग़ैरह देखे। लौटने लगा तो एक फ़ोटोग्राफर ने घेर लिया। धूप निकली थी, उसने स्नैप पहले ले लिया, ऑर्डर बाद को, दो तस्वीरों का दाम ले लिया है, तस्वीरें पते पर भेज देगा।

16 कपड़ों की धुलाई 9 शिलिंग! धुलाई यहाँ बहुत महँगी है। सिर्फ़ कमीज़ धुलाना चाहिए। बनियान, जाँघिया, रूमाल घर में धो लेना चाहिए।

दिन-भर लाइब्रेरी में रहा। 80 पेज पढ़ सका, सौ पृष्ठ प्रतिदिन करना चाहिए, नोट्स लेने में ज़्यादा समय लग जाता है। विस्तार से लिये नोट्स ही बाद को काम आयेंगे, शॉर्ट नोट्स बेकार होंगे।

खाना खाकर घूमने जाना चाहता था, पर मौसम ख़राब हो गया था, बादल छाये थे और बूँदा-बाँदी शुरू हो गयी थी। मादमोज़ेल ने सुझाव दिया कि आज हम लोग कमरे में एक घण्टे बैठें और जो भी बोलें फ्रेंच में। खाने की मेज़ पर वे दो-तीन फ्रेंच सेन्टेन्स रोज़ सिखा देती हैं। सौ वाक्य और ज़रूरी शब्दों को जान लूँ तो पेरिस जाने पर ज़्यादा तक़लीफ़ नहीं होगी—टूटी-फूटी फ्रेंच बोल काम चला लूँगा। कोई भाषा सीखने के लिए पहले बोलना सीखना चाहिए, फिर पढ़ना, फिर लिखना। अंग्रेज़ी के अलावा एक और योरोपियन भाषा सीखने की मेरी इच्छा थी। इंग्लैण्ड में तो प्रायः सब पढ़े-लिखे, विशेषकर युनिवर्सिटी से सम्बद्ध लोग, फ्रेंच का थोड़ा-बहुत ज्ञान रखते हैं। मैंने शायद ही कोई व्याख्यान यहाँ सुना हो जिसमें फ्रेंच पुस्तकों का हवाला न दिया गया हो। उच्च श्रेणी के हिन्दी अध्यापकों को एक और भाषा उत्तर भारत की, और एक दक्षिण की सीखनी चाहिए। उर्दू तो हिन्दी की पूरक भाषा के रूप में सीखी जानी चाहिए। उर्दू के अधिक से अधिक साहित्य को नागरी अक्षरों में लाना ज़रूरी है। साधारण नागरिक भी एक से अधिक भाषा को बोल-चाल के स्तर तक सीखने का प्रयत्न क्यों न करें? 'आओ बंगाली बोलें' या 'आओ गुजराती बोलें' ऐसी पुस्तकें निकलनी चाहिए। नागरी लिपि ध्वनियों को ज्यों का त्यों रखने में प्रायः समर्थ है। उसके द्वारा रोज़मर्रा के काम आनेवाले वाक्यों को हम सीख लें; लिपि बोध होने पर पुस्तकें पढ़ें और अन्त में लिखने का अभ्यास करें। तरीक़े से शिक्षा दी जाये तो छह महीने में केवल आधा घण्टा प्रतिदिन देकर कोई भी व्यक्ति भारत में बोली जानेवाली किसी भाषा को इतना सीख सकता है कि उसके क्षेत्र में जाकर वह अपनी बात समझा सके, दूसरों की समझ सके। एक से अधिक भाषा सीखो—इसका आन्दोलन चलना चाहिए—अधिक अन्न उपजाओ, अधिक पेड़ लगाओ के समान। भारत जैसे बहुभाषी देश में ऐसे आन्दोलन की उपयोगिता सहज-सिद्ध है।

हमारा फ्रेंच-कानवरसेशन-क्लास बड़ा मनोरंजक रहा। जब हमारे रटे-रटाये सवाल-जवाब ख़त्म हो गये तो हम सवाल दीगर, जवाब दीगर पर उतर आये और मादमोज़ेल का ख़ूब मनोविनोद हुआ। पर एक घण्टे तक, चाहे बीच-बीच में

हम चुप रहे हों, हम फ्रेंच छोड़ कोई दूसरी भाषा नहीं बोले।

रात को दत्त मिलने आये। उमर ख़ैयाम की रुबाइयों की बात चली। उनके पास इतना समय तो नहीं है कि वे हर रुबाई का अर्थ मुझे समझायें। इतना ज़रूर वे कर देंगे कि रुबाइयों की प्रतिलिपि तैयार कर दें। उस पर हो सकेगा तो कुछ काम भारत में होगा। यहाँ का समय मुझे ज़्यादा ज़रूरी काम पर लगाना चाहिए। ईट्स और आधुनिक काव्य पर जो पुस्तकें मैं यहाँ पढ़ पाऊँगा वे भारत में नहीं मिल सकेंगी। मैं जो ध्येय बनाकर चला था उसे मुझे अपनी किसी भावुकता में आकर भूल न जाना चाहिए। पाण्डुलिपि के चित्र के सम्बन्ध में उनकी राय थी कि इण्डिया हाउस के शिक्षा-विभाग से कोई आशा नहीं रखनी चाहिए—उसका काम क्लर्की के सिवा कुछ नहीं। यहाँ ब्रिस्टल के म्यूज़ियम में राजा राममोहनराय का एक तैल-चित्र है जो बर्बाद हो रहा है। दत्त ने हाई कमिश्नर से कहा कि वे उस चित्र को लेने का प्रयत्न करें। यहाँ उसकी क़द्र नहीं तो उसे भारत भेजें, उसे सुधरवायें, पर किसी ने उसके विषय में कुछ नहीं किया। राजा राममोहनराय का यह चित्र एक महिला ने उनके जीवन काल में बनवाया था। उसके जोड़ का दूसरा चित्र उनका नहीं। ब्रिस्टल में राजा राममोहनराय की समाधि भी है। कभी उसे देखने जाऊँगा। चित्र के विषय में मैं नेहरूजी को सीधे लिखूँगा। सम्भव है वे इसके लिए कुछ करायें।

गुरुवार, 22 मई, '52

आज साढ़े सात बजे तक गर्म पानी नहीं चला था। ठण्डे पानी से हजामत बनायी, बहुत गुस्सा आया; निश्चय कर चुका हूँ कि कहीं और जगह मिलते ही यह कमरा छोड़ दूँगा।

अमरीका से वंशो का पत्र मिला। 2 जून को लन्दन आ रहे हैं, फिर भारत जायेंगे। लिखा है लन्दन में उनसे मिलूँ। तीन वर्ष हुए जब अमरीका जाने के पहले वे प्रयाग गये थे तब कौन कल्पना कर सकता था कि हमारी अगली मुलाक़ात इंग्लैण्ड में होगी।

सेन्ट्रल लाइब्रेरी में 'टाइम्स' पढ़ते हुए ईट्स का एक फ़िक़रा उसके सम्बन्ध में याद आया, 'Whether one reads in London or Milan it is invariably successful in saying nothing in a thousand words !'—तलाक़ों की संख्या इतनी बढ़ गयी है कि आजकल एक कमीशन बैठा है इसकी जाँच करने को। यहाँ तो विवाह भी सरल है, तलाक़ भी सरल। पत्र में था कि पचास वर्ष पूर्व जब पुरुष-स्त्री एक-दूसरे की ओर आकर्षित होते थे तो उनका ध्येय विवाह करने का हुआ करता था। इसके पश्चात् अगर कोई कठिनाई आती थी तो दोनों मिलकर उसका सामना करते थे। अब जब पुरुष-स्त्री एक-दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं तो विवाह केवल एक-दूसरे को अधिक से अधिक भोग सकने के लिए अवसर पाने के ख़्याल से होता है। और चूँकि भोग-लिप्सा विविधता चाहती है इस कारण शीघ्र ही तलाक़ हो जाता है और फिर दूसरे किसी से यही क्रम चलता है। हिन्दुओं में तलाक़ की प्रथा नहीं और उनमें इसका प्रवेश कराने का प्रयत्न हो रहा है। वहाँ दूसरी तरह का रोना है। जब अलग होने के लिए उचित कारण हैं तब भी वहाँ पति-पत्नी अलग नहीं हो सकते। एक बीच के सन्तुलन की आवश्यकता है। पुरुष-स्त्री बहुत सोच-विचार के पश्चात् विवाह के बन्धन में बँधें, और विवाह हो जाने के पश्चात् जब तक अलग होना अनिवार्य ही न हो जाये तब तक अलग न हों। योरोप

में तलाक़ों के बढ़ने के अनेक कारण बताये जाते हैं, बार-बार के युद्ध, युद्धों के कारण नैतिक मूल्यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन, बेकारी, चर्च के प्रति अनास्था आदि। परन्तु मूल कारण है पुरुष का स्त्री के प्रति भाव। पश्चिम की परम्परा में स्त्री के प्रति कोई उदात्त भाव नहीं। पुरुष स्त्री को वासना-पूर्ति का साधन मात्र समझता है। और स्त्री भी इतनी ही समझी जाने से सन्तुष्ट है। वह पुरुष की दुर्बलता पर ही फूलती-फलती है। और कोई पुरुष सदा दुर्बल नहीं रहता, यहाँ तक कि उसे अपनी दुर्बलता की चेतना नारी से हर प्रसंग के बाद होती है। जब तक कोई महान कलाकार अपनी कल्पना के बल पर नारी को बहुत ऊँचा नहीं उठा देता तब तक मुझे तो नारी के प्रति दृष्टिकोण के परिवर्तन का कोई रास्ता नहीं दिखाई देता—दान्ते और गेटे के प्रयत्न क्या इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं थे ? रोमन कैथलिकों में कुमारी मरियम के आदर्श ने फिर भी बहुत कुछ सँभाला है। प्रोटेस्टेण्ट चर्च से वह भी ग़ायब हो गयी है।

दिन में यु. ला. में रहा। होन की पुस्तक चल रही है। कल ख़त्म करने की आशा है।

खाना खाने के बाद कविताएँ पढ़ता रहा।

आज तीन पुस्तकें ख़त्म कीं।

Comfort की 'Elegies'—युद्ध के कारण जो अन्धकार और विषाद इंग्लैण्ड के भाव-जगत पर छाया था उसे दर्शाने में Comfort को बहुत सफलता मिली है। कम्फ़र्ट में वह vision नहीं जो अन्धकार के बीच प्रकाश की रेखा भी देख सके। पर अन्धकार का जो चित्रण उसने किया है उससे वह घबराहट ज़रूर पैदा होती है जो उससे निकलने का मार्ग खोजे। कम्फ़र्ट की एलीजीज़ का कुछ ऐसा वातावरण-सा बना था कि दूसरी पुस्तक जो मैंने उठाई वह भी दुःखान्त कविताओं की थी।

'Home Town Elegies'—यह जी. एस. फ्रेज़र की कविताओं का संग्रह है। इनकी भी रचनाएँ प्रायः युद्ध के समय की हैं। कम्फ़र्ट में व्यक्ति का विषाद समय का अवसाद बन गया है। वातावरण भी जैसे बोझिल-सा हो गया है—धरती, आसमान पेड़-पौधे सब किसी उदासी में डूब गये हैं। फ्रेज़र प्रायः अपने अवसाद के अपने-आप ही नायक हैं, पर उनके व्यक्ति का दर्पण इतना साफ़ है कि दूसरा भी यदि चाहे तो अपनी छाया उसमें देख सकता है।

'The Edge of Being', by Stephen Spender—तीसरी पुस्तक थी। स्पेण्डर की रचनाओं ने सामाजिक धरातल छोड़ दिया है। यह उनका नवीनतम संग्रह है, और युद्ध के पश्चात् जो इस प्रकार सोचने की प्रवृत्ति फैल गयी है कि सांसारिक समस्याएँ इतनी बड़ी और पेचीदा हैं कि कवि उनको हल ही नहीं कर सकता, उसका यह नमूना है। ऐसे विचारकों की राय में कवि का काम है—अपनी अनुभूतियों को सूक्ष्मता से देखना और उसे कविता की मार्मिक भाषा में व्यक्त करना। Words are too weak to stop wars. It is enough if they reveal finely sensitive souls. इस पर फ्रांस के Existentialist movement का भी प्रभाव है, जिसका मूल सिद्धान्त संक्षेप में यह है कि What shall we do by gaining the whole world if we lose our own soul. और आधुनिक संसार और समाज व्यक्ति को कोई स्वतन्त्र स्थान देने को तैयार नहीं हैं। ऐसी अवस्था में व्यक्तित्व की रक्षा करना भी एक क्रान्तिकारी काम गिना जायेगा। व्यक्ति को अपने ही समाज से अपनी रक्षा करने की आवश्यकता पड़ गयी है। कवि अपने मन के कोने में छोटे, साधारण, नगण्य अनुभवों को वह महत्त्व देना

चाहता है जो इतिहासकार बड़ी-बड़ी लड़ाइयों और सन्धि-पत्रों को देते हैं। मनुष्य के मस्तिष्क की पेचीदगी का ठीक अनुमान किया जाये तो संसार की समस्याओं की पेचीदगी शायद खेल मालूम होगी। इस कारण आज का कवि अपने नितान्त व्यक्तिगत अनुभवों को काव्य की एकदम निजी भाषा में व्यक्त कर रहा है। यह इस प्रवृत्ति की व्याख्या है। वकालत नहीं है। यह स्वस्थ प्रवृत्ति है? इसका परिणाम क्या होगा? दूसरे प्रश्न हैं। साहित्य की कोई प्रवृत्ति स्थायी नहीं होती; विशुद्ध साहित्यिक भी नहीं। आज इसकी कल्पना की जा सकती है कि जीवन की कोई प्रबल धारा साहित्य को एक किनारे छोड़ दे। कभी साहित्य में यह भी शक्ति थी कि वह समाज को किसी दिशा में बहा ले जा सकता था। यह मानना पड़ेगा कि क़लम की वह शक्ति चली गयी है और निकट भविष्य में तो नहीं दिखाई पड़ता कि वह लौट सकेगी। लेखक और कवि प्रायः अपनी शक्ति से ज़्यादा अपने में विश्वास रखने लगते हैं। अपनी सीमा को जानने और उसके भीतर रहने को मैं बुरा नहीं कह सकता। बुद्धिमानी भी समझता हूँ। पर यदि वह विश्वास कवि को केवल दम्भी न बनाकर कुछ कर गुज़रने का प्रोत्साहन देता है तो मैं उसकी पीठ ठोंकूँगा।

शुक्रवार, 23 मई, '52

ब्रेकफ़ास्ट अब पहले-सा नहीं मिलता। पहले पारिज रहा करता था, अब कार्नफ़्लेक रहता है, कुछ तत्त्व नहीं इसमें, मक्खन का टुकड़ा भी कृष्ण पक्ष के चाँद के समान रोज़-रोज़ घटता जाता है, चीज़ की अमावस्या पहुँच चुकी है। मार्जरी ने पहले ही लिखा था कि केम्ब्रिज की लैण्डलेडियाँ बड़ी पैसा-बनाऊ हैं। यह देखकर कि दूसरी जगह नहीं मिल सकती, ये परेशान करना शुरू कर देती हैं। जब तक छुट्टियाँ नहीं होतीं और विद्यार्थी चले नहीं जाते तब तक दूसरी जगह मिलना सम्भव नहीं। पर मैं इस जगह से बिलकुल असन्तुष्ट हूँ।

सुबह सेन्ट्रल लाइब्रेरी गया। नया 'लिसनर' आया था। बर्ट्रेण्ड रसेल का लेख पढ़ा, पहले रेडियो पर सुन चुका था। Clean thinking का नमूना। अपने में विश्वास, अपने मिशन में विश्वास, संसार के भविष्य में विश्वास—परिपक्व मस्तिष्क का परिपक्व स्वर!

'मैनचेस्टर गार्डियन' में एक समाचार था कि विश्व-स्वास्थ्य-परिषद में सन्तान-निग्रह पर ज्यों ही प्रस्ताव लाया गया कैथलिक लोगों ने धमकी दी कि वे उठकर चले जायेंगे और प्रस्ताव हटा लिया गया। हम भारत में सुनते थे कि योरोपीय हर मसले को खुले दिमाग़ से देखते हैं, उस पर विचार करते हैं, उसका हल निकालते हैं, उसे कार्यरूप में परिणत करते हैं। यहाँ आने पर यह भ्रम मालूम होता है। यहाँ भी काफ़ी धर्मान्धता है। दुनिया की आधी से ज़्यादा मुसीबतें हल हो जायें अगर लोग यह समझना छोड़ दें कि इनका 'हल' पहले से मौजूद है। सन्तान-वृद्धि—जनसंख्या की वृद्धि—आधुनिक संसार की समस्या है। आख़िर, जिन्हें हम संसार में लाने के लिए उत्तरदायी हैं उन्हें खिलाने-पिलाने, उनके लिए वस्त्रादि का प्रबन्ध करने, उन्हें शिक्षा देने और योग्य नागरिक बनाने का उत्तरदायित्व भी तो हमारे ऊपर होना चाहिए। अर्द्ध-क्षुधित, अर्द्ध-नग्न, अर्द्ध-शिक्षित, कुशिक्षित, अशिक्षित नागरिकों की सेना बढ़ाकर क्या लाभ है। मनुष्य अपनी समस्या को मानवी तरीक़ों से नहीं हल करेगा तो प्रकृति अपने निर्मम-क्रूर तरीक़ों का प्रयोग करेगी—बीमारियाँ और अकाल आकर उसका सफ़ाया करेंगे। भारत

में सन्तान-निग्रह की बड़ी आवश्यकता है। हम अपनी वर्तमान जनसंख्या के लिए ही पर्याप्त अन्न नहीं पैदा कर पा रहे हैं। जिस गति से हमारी जनसंख्या बढ़ रही है, यदि वही 50 वर्ष जारी रही तो फिर यही होगा कि हम एक-दूसरे को खाना शुरू करें—अन्न तो हमारे पास नहीं होगा। अगर अन्न के लिए हम सदा दूसरों पर निर्भर रहे तो हमारी उन्नति के सभी द्वार बन्द हो जायेंगे। हम खाकर सोनेवाले पशु बन जायेंगे। जहाँ तक मुझे मालूम है कृत्रिम साधनों के विरुद्ध कोई धार्मिक आवाज़ हमारे देश में नहीं उठाई गयी। यह नयी चीज़ है और इसका कोई निषेध नहीं है। गांधीजी इसके विरुद्ध थे, जवाहरलाल नहीं हैं। ब्रह्मचर्य का पालन हर मनुष्य के लिए सरल नहीं हो सकता। कृत्रिम साधनों का प्रयोग भी संयम से होना चाहिए। दुरुपयोग अच्छी से अच्छी चीज़ का भी हो सकता है। फिर हम सन्तान निग्रह के साधनों को ही क्यों बुरा कहें। हमारे देश में शिक्षा की कमी है। हमारे स्वास्थ्य विभाग को सन्तान-निग्रह का एक उप-विभाग अलग बनाना चाहिए। इसके केन्द्र हर नगर और हर तहसील में हों। निग्रह के तरीक़ों पर छोटी-छोटी सरल पुस्तकें लिखी जायें। जो बिलकुल अपढ़ हैं उन्हें सरल व्याख्यानों से चीज़ें समझायी जायें। हमें अपने देश की गरीबी भी नहीं भूलनी चाहिए। निग्रह के साधन बहुत महँगे न हों। इसके लिए गवर्नमेन्ट को अपनी फ़ैक्टरियाँ खोलनी चाहिएँ और बिना लाभ के, लागत मूल्य पर, इन्हें लोगों तक पहुँचाना चाहिए। इसका भी प्रबन्ध हो सकता है कि अनधिकारियों के हाथों में ये चीज़ें न पहुँचें। आधुनिक सरकारें अगर चाहें तो क्या नहीं कर सकतीं। कुछ लोगों का वहम है कि ये तरीक़े स्वास्थ्य को खराब कर देते हैं। स्वास्थ्य ख़राब करने की हज़ार बातें आप करते हैं, मैं जानता हूँ। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, नयी चीज़ों का विरोध करता है—कारण नहीं भी होते तो बना लेता है। रेल का विरोध नहीं हुआ? तार का विरोध नहीं हुआ? बिजली का विरोध नहीं हुआ? सुना है कि लन्दन में जब ट्यूब-रेल बनने को हुई तो उसका बड़ा विरोध हुआ। मॉरिस ने कहा कि ट्यूब बनाकर उसका मुँह दोनों ओर से बन्द कर दो। मज़ाक में। दुनिया में आज तक कोई भी चीज़ नहीं बनी, परमात्मा ने भी नहीं बनायी, जिसका सदुपयोग के साथ दुरुपयोग भी न हो सके। सन्तान-निग्रह के तरीक़ों के जितने भी दुरुपयोग हो सकते हैं, सबको एक तरफ़ रख लो, जो सदुपयोग हो सकते हैं उनको दूसरी तरफ़। यह तो मनुष्य के हाथ में है कि दुरुपयोग की बनिस्बत सदुपयोग अधिक करे। अगर मनुष्य यह नहीं कर सकता तो वह मनुष्य किसलिए है। साधन मनुष्य के लिए हैं, मनुष्य साधनों के लिए नहीं हैं, विज्ञान के ऊपर विज्ञ है। मनुष्य को यह निर्णय करना होगा कि वह विज्ञान का शिकार बनेगा या विज्ञान को हथियार के समान इस्तेमाल करेगा। हर हथियार से हाथ अधिक सबल होता है। मैं हथियार लेकर हाथ नहीं कटा सकता। आज के संसार की सारी ग़लतियों की जड़ में मुझे तो एक चीज़ दिखायी देती है कि हाथ हथियार के वश में होता जा रहा है। स्वस्थ हाथ यह जानता है कि किस हथियार को कब, कितना, कैसे चलाना चाहिए। अस्वस्थ हाथ या तो उससे डरता है या उससे क्रूर बन जाता है। संक्षेप में पूछना चाहता हूँ कि हाथ हथियार को चलायेगा या हथियार हाथ को। फिर हथियार चाहे सन्तान-निग्रह का साधन हो, चाहे एटम बम। वैज्ञानिक प्रयोगशाला में व्यस्त हैं। कला-कारों को चाहिए कि वे मनुष्य के पास सीधे जायें, उसे उसकी सत्ता का भान करायें, उसकी शक्ति उसे बतायें, उसके विवेक को जगायें। आज का सबसे बड़ा रोना है कि अनेक सबल साधनों के बीच मनुष्य निर्बल है। मनुष्य को सबल रखने

चाहता है जो इतिहासकार बड़ी-बड़ी लड़ाइयों और सन्धि-पत्रों को देते हैं। मनुष्य के मस्तिष्क की पेचीदगी का ठीक अनुमान किया जाये तो संसार की समस्याओं की पेचीदगी शायद खेल मालूम होगी। इस कारण आज का कवि अपने नितान्त व्यक्तिगत अनुभवों को काव्य की एकदम निजी भाषा में व्यक्त कर रहा है। यह इस प्रवृत्ति की व्याख्या है। वकालत नहीं है। यह स्वस्थ प्रवृत्ति है? इसका परिणाम क्या होगा? दूसरे प्रश्न हैं। साहित्य की कोई प्रवृत्ति स्थायी नहीं होती; विशुद्ध साहित्यिक भी नहीं। आज इसकी कल्पना की जा सकती है कि जीवन की कोई प्रबल धारा साहित्य को एक किनारे छोड़ दे। कभी साहित्य में यह भी शक्ति थी कि वह समाज को किसी दिशा में बहा ले जा सकता था। यह मानना पड़ेगा कि क़लम की वह शक्ति चली गयी है और निकट भविष्य में तो नहीं दिखाई पड़ता कि वह लौट सकेगी। लेखक और कवि प्रायः अपनी शक्ति से ज़्यादा अपने में विश्वास रखने लगते हैं। अपनी सीमा को जानने और उसके भीतर रहने को मैं बुरा नहीं कह सकता। बुद्धिमानी भी समझता हूँ। पर यदि वह विश्वास कवि को केवल दम्भी न बनाकर कुछ कर गुज़रने का प्रोत्साहन देता है तो मैं उसकी पीठ ठोंकूँगा।

शुक्रवार, 23 मई, '52

ब्रेकफ़ास्ट अब पहले-सा नहीं मिलता। पहले पारिज रहा करता था, अब कार्नफ़्लेक रहता है, कुछ तत्त्व नहीं इसमें, मक्खन का टुकड़ा भी कृष्ण पक्ष के चाँद के समान रोज़-रोज़ घटता जाता है, चीज़ की अमावस्या पहुँच चुकी है। मार्जरी ने पहले ही लिखा था कि केम्ब्रिज की लैण्डलेडियाँ बड़ी पैसा-बनाऊ हैं। यह देखकर कि दूसरी जगह नहीं मिल सकती, ये परेशान करना शुरू कर देती हैं। जब तक छुट्टियाँ नहीं होतीं और विद्यार्थी चले नहीं जाते तब तक दूसरी जगह मिलना सम्भव नहीं। पर मैं इस जगह से बिलकुल असन्तुष्ट हूँ।

सुबह सेन्ट्रल लाइब्रेरी गया। नया 'लिसनर' आया था। बर्ट्रण्ड रसेल का लेख पढ़ा, पहले रेडियो पर सुन चुका था। Clean thinking का नमूना। अपने में विश्वास, अपने मिशन में विश्वास, संसार के भविष्य में विश्वास—परिपक्व मस्तिष्क का परिपक्व स्वर!

'मैनचेस्टर गार्डियन' में एक समाचार था कि विश्व-स्वास्थ्य-परिषद में सन्तान-निग्रह पर ज्यों ही प्रस्ताव लाया गया कैथलिक लोगों ने धमकी दी कि वे उठकर चले जायेंगे और प्रस्ताव हटा लिया गया। हम भारत में सुनते थे कि योरोपीय हर मसले को खुले दिमाग़ से देखते हैं, उस पर विचार करते हैं, उसका हल निकालते हैं, उसे कार्यरूप में परिणत करते हैं। यहाँ आने पर यह भ्रम मालूम होता है। यहाँ भी काफ़ी धर्मान्धता है। दुनिया की आधी से ज़्यादा मुसीबतें हल हो जायें अगर लोग यह समझना छोड़ दें कि इनका 'हल' पहले से मौजूद है। सन्तान-वृद्धि—जनसंख्या की वृद्धि—आधुनिक संसार की समस्या है। आख़िर, जिन्हें हम संसार में लाने के लिए उत्तरदायी हैं उन्हें खिलाने-पिलाने, उनके लिए वस्त्रादि का प्रबन्ध करने, उन्हें शिक्षा देने और योग्य नागरिक बनाने का उत्तर-दायित्व भी तो हमारे ऊपर होना चाहिए। अर्द्ध-क्षुधित, अर्द्ध-नग्न, अर्द्ध-शिक्षित, कुशिक्षित, अशिक्षित नागरिकों की सेना बढ़ाकर क्या लाभ है। मनुष्य अपनी समस्या को मानवी तरीक़ों से नहीं हल करेगा तो प्रकृति अपने निर्मम-क्रूर तरीक़ों का प्रयोग करेगी—बीमारियाँ और अकाल आकर उसका सफ़ाया करेंगे। भारत

में सन्तान-निग्रह की बड़ी आवश्यकता है। हम अपनी वर्तमान जनसंख्या के लिए ही पर्याप्त अन्न नहीं पैदा कर पा रहे हैं। जिस गति से हमारी जनसंख्या बढ़ रही है, यदि वही 50 वर्ष जारी रही तो फिर यही होगा कि हम एक-दूसरे को खाना शुरू करें—अन्न तो हमारे पास नहीं होगा। अगर अन्न के लिए हम सदा दूसरों पर निर्भर रहे तो हमारी उन्नति के सभी द्वार बन्द हो जायेंगे। हम खाकर सोनेवाले पशु बन जायेंगे। जहाँ तक मुझे मालूम है कृत्रिम साधनों के विरुद्ध कोई धार्मिक आवाज़ हमारे देश में नहीं उठाई गयी। यह नयी चीज़ है और इसका कोई निषेध नहीं है। गांधीजी इसके विरुद्ध थे, जवाहरलाल नहीं हैं। ब्रह्मचर्य का पालन हर मनुष्य के लिए सरल नहीं हो सकता। कृत्रिम साधनों का प्रयोग भी संयम से होना चाहिए। दुरुपयोग अच्छी से अच्छी चीज़ का भी हो सकता है। फिर हम सन्तान निग्रह के साधनों को ही क्यों बुरा कहें। हमारे देश में शिक्षा की कमी है। हमारे स्वास्थ्य विभाग को सन्तान-निग्रह का एक उप-विभाग अलग बनाना चाहिए। इसके केन्द्र हर नगर और हर तहसील में हों। निग्रह के तरीक़ों पर छोटी-छोटी सरल पुस्तकें लिखी जायें। जो बिलकुल अपढ़ हैं उन्हें सरल व्याख्यानों से चीज़ें समझायी जायें। हमें अपने देश की गरीबी भी नहीं भूलनी चाहिए। निग्रह के साधन बहुत महँगे न हों। इसके लिए गवर्नमेन्ट को अपनी फ़ैक्टरियाँ खोलनी चाहिएँ और बिना लाभ के, लागत मूल्य पर, इन्हें लोगों तक पहुँचाना चाहिए। इसका भी प्रबन्ध हो सकता है कि अनधिकारियों के हाथों में ये चीज़ें न पहुँचें। आधुनिक सरकारें अगर चाहें तो क्या नहीं कर सकतीं। कुछ लोगों का वहम है कि ये तरीक़े स्वास्थ्य को खराब कर देते हैं। स्वास्थ्य ख़राब करने की हज़ार बातें आप करते हैं, मैं जानता हूँ। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, नयी चीज़ों का विरोध करता है—कारण नहीं भी होते तो बना लेता है। रेल का विरोध नहीं हुआ? तार का विरोध नहीं हुआ? बिजली का विरोध नहीं हुआ? सुना है कि लन्दन में जब ट्यूब-रेल बनने को हुई तो उसका बड़ा विरोध हुआ। मॉरिस ने कहा कि ट्यूब बनाकर उसका मुँह दोनों ओर से बन्द कर दो। मज़ाक में। दुनिया में आज तक कोई भी चीज़ नहीं बनी, परमात्मा ने भी नहीं बनायी, जिसका सदुपयोग के साथ दुरुपयोग भी न हो सके। सन्तान-निग्रह के तरीक़ों के जितने भी दुरुपयोग हो सकते हैं, सबको एक तरफ़ रख लो, जो सदुपयोग हो सकते हैं उनको दूसरी तरफ़। यह तो मनुष्य के हाथ में है कि दुरुपयोग की बनिस्बत सदुपयोग अधिक करे। अगर मनुष्य यह नहीं कर सकता तो वह मनुष्य किसलिए है। साधन मनुष्य के लिए हैं, मनुष्य साधनों के लिए नहीं हैं, विज्ञान के ऊपर विज्ञ है। मनुष्य को यह निर्णय करना होगा कि वह विज्ञान का शिकार बनेगा या विज्ञान को हथियार के समान इस्तेमाल करेगा। हर हथियार से हाथ अधिक सबल होता है। मैं हथियार लेकर हाथ नहीं कटा सकता। आज के संसार की सारी ग़लतियों की जड़ में मुझे तो एक चीज़ दिखायी देती है कि हाथ हथियार के वश में होता जा रहा है। स्वस्थ हाथ यह जानता है कि किस हथियार को कब, कितना, कैसे चलाना चाहिए। अस्वस्थ हाथ या तो उससे डरता है या उससे क्रूर बन जाता है। संक्षेप में पूछना चाहता हूँ कि हाथ हथियार को चलायेगा या हथियार हाथ को। फिर हथियार चाहे सन्तान-निग्रह का साधन हो, चाहे एटम बम। वैज्ञानिक प्रयोगशाला में व्यस्त हैं। कलाकारों को चाहिए कि वे मनुष्य के पास सीधे जायें, उसे उसकी सत्ता का भान करायें, उसकी शक्ति उसे बतायें, उसके विवेक को जगायें। आज का सबसे बड़ा रोना है कि अनेक सबल साधनों के बीच मनुष्य निर्बल है। मनुष्य को सबल रखने

का काम कभी धर्म ने किया था। अब इसे साहित्य और कला को करना है।

दिन में यु. ला. में काम किया।

होन की पुस्तक में 25 पृष्ठ रह गये हैं।

खाना खाने के बाद मादमोज़ेल वोआज़ेन और लीथान के साथ घूमने गया। लौटकर Auden की 'For the Time Being' शुरू की। साढ़े बारह रात ख़त्म हुई।

शनिवार, 24 मई, '52

सुबह तीन चिट्ठियाँ मिलीं—रोज़ारियो, एलेन, महाराजकृष्ण की।

रोज़ारियो ने लिखा था, लन्दन के कोई मि. पिकर्ड हैं, भारत में बहुत रुचि रखते हैं, कई पुस्तकें भी भारत के विषय में लिख चुके हैं, मुझसे कुछ सहायता चाहते हैं, पता नहीं किस विषय में। अपने देश के विषय में मैं कितना कम जानता हूँ—दूसरों का देश जानने को आया हूँ। लौटकर मुझे पूरे भारत का भ्रमण करना चाहिए—उसके दर्शन, साहित्य, कला, इतिहास से परिचय—चंचु-प्रवेश ही—Indology तो महा-विषय है—सारी उम्र चाहिए इसका ज्ञान प्राप्त करने को।

एलेन ने अपनी समस्या लिखी थी—वह मार्जरी को प्यार करता है, उससे विवाह करना चाहता है, माता-पिता विरुद्ध हैं, वह असमंजस में है। एलेन को दो टूक निर्णय लेना चाहिए। अगर वह अपने माता-पिता को नाख़ुश नहीं कर सकता तो उसे मार्जरी से अपना सम्बन्ध तोड़ लेना चाहिए। अभी तोड़ना सरल होगा। मार्जरी बहुत भावुक लड़की है। पीछे उस पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा।

महाराजकृष्ण ने 'निशा-निमन्त्रण' की चार कविताओं का अनुवाद भेजा है। अंग्रेज़ी का छन्द-शास्त्र सदा मेरी समझ से बाहर रहा है, पर अर्थ का निर्वाह हुआ है। वंशो ने भी कुछ कविताओं का अनुवाद किया था—विक्टोरियन लहजे, मुहावरे, शैली से बोझिल—महाराजकृष्ण का, अंग्रेज़ी कविता की आधुनिकता लिये है। काश, वे 'निशा निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत' और 'आकुल अन्तर' से चुनकर सौ गीतों का अनुवाद कर डालें।

मैं अपनी कविताओं का अनुवाद खुद करूँ तो? प्रयत्न करूँ तो असफल नहीं हो सकता। सही-झेली अनुभूतियों को दूसरे माध्यम से फिर सहना-झेलना सम्भव होगा? निकट जाते भी घबराऊँगा। कविता सुनाने में भी पुराने भावों में डूब जाता हूँ। अभिनेता किसी ट्रैजिक पार्ट को फिर-फिर कैसे दुहराता है? एक बार हैमलेट और लियर के अनुभवों की क़ीमत मृत्यु। जो बार-बार हैमलेट-लियर के अनुभवों से गुज़रता है वह जीता कैसे है? आदर्श अभिनेता सम्भवतः अपने अहं को सर्वथा मिटा देता है, इसी कारण वह औरों की भावनाओं में सरलता से प्रवेश कर जाता है, साथ ही भावनाओं के बोझ से निर्लिप्त रहता है। अभिनेता की यह निर्लिप्तता, अनासक्ति अभी मैं नहीं पा सका। कभी लोग मुझे एक मूड की चीज़ें सुनाने के बाद दूसरे मूड की चीज़ें सुनाने को कहते हैं—'निशा निमन्त्रण' के बाद 'बंगाल का काल' जैसे—तो मुझे ऐसा लगता है वे मुझे मनुष्य नहीं ग्रामोफ़ोन समझ रहे हैं—अभी यह तवा लगा दिया, अभी वह तवा! —और उन्हें क्या कहूँ—वे तो मुझे उस कुत्ते की याद दिलाते हैं जो ग्रामोफ़ोन के पोंपे के सामने बैठा दिखाया जाता है—इससे भी अछूता, उससे भी अछूता। वक़्त काटने के शुग़ल को कुछ लोग कविता-प्रेम क्यों समझने लगते हैं?

युनिवर्सिटी लाइब्रेरी से एक बजे लौटा—शनिवार था न—दत्त पुरानी

किताबों की 'हाट' में मिले—केम्ब्रिज़ में हर शनिवार को लगती है—कभी-कभी सस्ती क़ीमत पर बढ़िया किताबें मिल जाती हैं। यहाँ न ख़रीदने को पैसे, न रखने को जगह। जिन लोगों ने यह शौक़ लगाया, बहुत पछताये—कहाँ-कहाँ लिये फिरो किताबों को—किताबों का बोझा सबसे भारी।

बाल कटाये—बहुत छोटे कटा दिये—यहाँ न लगाने को तेल, न उसकी प्रथा—क्रीम ख़र्चीली।

Auden की पुस्तक कल समाप्त की थी। जो चीज़ें पसन्द थीं उन्हें फिर देख गया। Auden में मुझे शुरू से रुचि थी। एक बार प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्त-कालय से उनके समस्त काव्य-संग्रहों और नाटकों को पढ़ा था। इस रुचि का एक कारण था। Auden ठीक मेरी उम्र के हैं। उनका जन्म भी 1907 में हुआ था, पर उनके विकास की भूमि इंग्लैण्ड और अमरीका रही, मेरी भारत। उन्हें अंग्रेज़ी की सुविख्यात और व्यापक परम्परा मिली, मुझे ग़रीब हिन्दी की। उसने हम दोनों में काफ़ी अन्तर डाल दिया है। फिर भी अगर एक ही उमर के आदमी पास बैठें तो अपने बीच बहुत से फ़र्कों के बावजूद कुछ समता का अनुभव तो करेंगे। मैं ऑडेन के साथ कुछ ऐसा ही अनुभव करता आया हूँ। आधुनिक कवियों में पहले मैं ऑडेन की ओर ही झुका। वे सुबोध थे। ईलियट गुत्थी-से लगे। बहुत दिनों तक उनकी पहली रचना पढ़ने के पश्चात् मैं उनके निकट नहीं गया। उनकी पुस्तकें सब मँगाता था, उनका गद्य पढ़ता था, कविताओं को नहीं छूता था। ऑडेन की कविता का जन्म शताब्दी के तीसरे दशक में हुआ जबकि योरोप में यह विचार ज़ोर पकड़ रहा था—नवयुवक बुद्धि-जीवियों में—कि संसार का उद्धार साम्यवाद के द्वारा ही हो सकेगा। ऑडेन-स्पेण्डर दोनों ही इसके प्रभाव में आये। शायद आज दोनों का स्वप्न भंग हो चुका है। 'The God that Failed' में स्पेण्डर ने साम्यवाद से अपनी निराशा स्पष्ट की है। प्रभाव में आने का एक लाभ दोनों को हुआ। उन्होंने कविता को सर्वसाधारण की वस्तु बनाने का प्रयत्न किया। ईलियट की कविता केवल विद्वानों के लिए थी। ऑडेन अपनी बात को प्रभावकारी बनाने के लिए काव्य-शिल्प का पूरा उपयोग करते थे, पर दुरूह कभी नहीं होते थे। भाषा पर, अभिव्यंजना पर, उनका अधिकार बराबर बढ़ता रहा है। अभिव्यक्ति को अत्यधिक परिष्कृत-परिमार्जित करने का दोषी भी उन्हें ठहराया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऑडेन ने अपनी शैली को जितना निखारा है उतना उनके समकालीनों में किसी ने नहीं। नये प्रयोग अवश्य वे नहीं कर रहे हैं—स्पेण्डर ने नये प्रयोग भी किये हैं। प्रस्तुत काव्य-संग्रह 1945 का है—युद्ध की समाप्ति पर। दो लम्बी कविताओं में 'टेम्पेस्ट' और 'बाइबिल' का आधार लिया गया है—झलकता है आधुनिक जीवन ही उनके भीतर से। तीसरे दशक में सन्देश-वाहक का जो बाना ऑडेन ने धारण किया था उसे उन्होंने उतार दिया है। अब समस्याओं की चेतना है, उनसे घबराहट भी है, पर कोई समाधान नहीं दिया जा रहा है। इससे मेरा ख़याल है कि वे जनता के अधिक निकट ही आये हैं। कवि कोई विशेषता लेकर सामने नहीं आता—उसके भय-स्वप्न-सन्देह संसार के ही भय-स्वप्न-सन्देह हैं। सबको साधारण बनना है। एक स्थान पर लोग परमात्मा से साधारण बनने को कहते हैं। कवि का व्यंग्य भी है। साधारण बनने की आतुरता में लोग बहुत-सी ऊँची चीज़ों को नीचे खींच लायेंगे? 'O God, put away justice and truth, for we cannot understand them, and do not want them. Eternity would bore us dreadfully.

Leave thy heavens and come down to earth of water clocks and hedges. Become our uncle, look after baby, amuse grandfather, escort madam to opera, help Willy with his home-work, introduce Muriel to a handsome naval officer. Be interesting and weak like us and we will love you as we love ourselves.' युद्ध के कारण जो अन्धकार छाया है, निराशा छायी है उसके बीच भी ऑडेन आस्थावान बने हैं। कल तक वे कह रहे थे कि अगर तुम ऐसा-ऐसा करो तो शीघ्र ही नवयुग उतर आयेगा, नयी ज़मीन होगी, नया आसमान होगा और इन दोनों के बीच मनुष्य देवता के समान विचरेगा। आशा की वह प्रगल्भता अब संयत और गम्भीर हो गयी है।

We know very well we are not unlucky but evil,
That the dream of a perfect State or no State at all
To which we fly for refuge, is a part of our punishment.
Let us therefore be contrite but without anxiety,
For Powers and Times are not gods but mortal gifts from God;
Let us acknowledge our defeat but withuot despair
For all societies and epochs are transient details,
Transmitting an everlasting opportunity
That the kingdom of Heaven may come, *not* in our *Present*
And not in our *Future*, but in the Fullness of Time,
Let us pray.

हम हार को निराश हुए बग़ैर स्वीकार करें। स्वर्ग पृथ्वी पर उतरेगा, आज या कल नहीं, समय के पकने पर! Auden is a sadder and wiser man now. His tone is mellow. His voice is certain. The gloom and despair are of his time not his. He is lovable.

खाने के बाद George Barker की 'News of the World' शुरू की। यह उनका तीसरा संग्रह है। पहला 'Eros in Dogma' 1944 में प्रकाशित हुआ था, उसके पहले एक और लम्बी कविता— 'Calamiterror.'

रविवार, 25 मई, '52

विश्वनाथ दत्त से हँसी-हँसी में मैंने एक दिन कह दिया था कि तुम्हारे जन्म-दिन पर तुम्हें एक कविता लिखकर भेंट करूँगा। आज उनका जन्म-दिन आ गया, कविता नहीं लिखी गयी, लिखूँ भी तो क्या। सोचता-सोचता फिर सो गया। आधा सोया, आधा सोचता। कविता का रूपक (imagery) धीरे-धीरे दिमाग़ में आया। फिर भावना-विचारों की तरतीब-सी लगनी शुरू हुई—कविता को कहाँ से आरम्भ करना है, कहाँ पर समाप्त। एक तरह से पूरी कविता दिमाग़ में ढल-सी गयी। उठकर तैयार हुआ, ब्रेकफ़ास्ट किया। दिमाग़ में कविता का ताना-बाना चल रहा था। टेबिल पर चुप रहा। लीथान ने पूछ ही दिया, आज आप इतने चुप क्यों हैं? ऊपर आकर कविता को लिख डालना चाहता था। लगभग एक घण्टा लिखने में लगा। कविता जैसे साँचे में ढली-सी निकली, पंक्तियाँ सब सिलसिलेवार, किसी को अपनी जगह से हटाना नहीं पड़ा। दुहराने में 5-6 शब्द बदले। एक साफ़ कापी

बनायी। दत्त को देने के लिए आरबेरी का 'उमर ख़ैयाम' पहले से ख़रीद रक्खा था। पुस्तक और कविता लेकर उनके घर गया। उन्हें बधाई दी, कविता सुनायी; पति-पत्नी बहुत प्रसन्न हुए।

दिन को कविता की एक कापी करके 'धर्मयुग' को भेज दी। बम्बई से चलते समय सत्यकाम जी ने बहुत आग्रह किया था कि 'धर्मयुग' के लिए यहाँ से कुछ-न-कुछ भेजता रहूँ। केम्ब्रिज आकर यह पहली कविता लिखी। कई बार पढ़ने पर भी कुछ अदलने-बदलने की ज़रूरत मैंने नहीं महसूस की। पता नहीं हिन्दी पाठकों को कैसी लगेगी।

शाम को दत्त के यहाँ चाय-पार्टी थी। स्वामीनाथन, राय, मिलन, समलोट, शिवकुमार, ब्रैण्डा, पीटर, डोनल्ड—सब थे। चाय हिन्दुस्तानी थी, यानी खाने की बहुत-सी चीज़ें थीं, पकौड़े भी। कमला ने बहुत काम किया था।

अन्तरराष्ट्रीय कानून और अन्तरराष्ट्रीय आचार पर बहस शुरू हुई और समाप्त हुई हिन्दुस्तान के आई. सी. एस. आफ़िसरों पर। कुछ लोगों की राय थी कि आई. सी. एसों. के कारण हिन्दुस्तान का राज्य-प्रबन्ध यथापूर्व चलता रहा और कोई गड़बड़ी नहीं हुई। कुछ का कहना था कि वे पुरानी ब्रिटिश नीति के पोषक थे और अब भी वे राष्ट्रीय सरकार को हेय दृष्टि से देखते हैं। कांग्रेस को चाहिए था कि स्वराज मिलने पर उन सारे अफ़सरों को निकाल देती जिन्होंने जनता के साथ ज़्यादतियाँ की थीं, या जिनमें राष्ट्रीयता की भावना का बिलकुल अभाव था। उनके अन्दर से पुरानी बू नहीं गयी। अब भी वे पहले की तरह दम्भी और स्वार्थी हैं, और ऊपर से जो लहरें चलती भी हैं उनके रास्ते में रोड़े अटकाते हैं, उनको अपने उत्साह से गति नहीं देते। कुछ लोगों ने यह बताया कि जब अंग्रेज़ों ने स्वराज दिया था उसी समय यह शर्त करा ली थी कि आज़ाद हिन्द फ़ौज का नाम कहीं न लिया जायेगा और पुराने आई. सी. एस. के अफ़सरों को नहीं छुआ जायेगा। यहाँ तक कि स्वतन्त्रता दिवस पर नेहरू ने जो भाषण दिया उसमें न तो आज़ाद हिन्द फ़ौज का कोई ज़िक्र था और न सुभाषचन्द्र बोस का, जबकि स्वराज मिलने के पूर्व वे देश भर में दोनों की दुहाई देते फिरते थे। किसी ने यह भी कहा कि नेहरू ने आई. सी. एस. वालों को इसलिए नहीं छुआ कि उनमें 75 प्रतिशत उनके रिश्तेदार थे—आई. सी. एस. में सब काश्मीरी ही तो भरे हैं।

पुराने आई. सी. एस. वालों का दल अब भी अपने पुराने रवैये को पकड़े हुए है, इसमें कोई सन्देह नहीं। अंग्रेज़ों से वह डरता था, क्योंकि वे शासन के शास्त्री थे। वह जानता है कि हिन्दुस्तानी अनुभवहीन हैं, उन्हें नाक पकड़कर जिधर चाहे उधर घुमाया जा सकता है। वह यह भी जानता है कि सरकार उसके ऊपर निर्भर है। उसके सहयोग के बिना सरकार एक दिन भी नहीं चल सकती। क्या हमारे प्रान्तों और केन्द्र के मन्त्री उससे डरते नहीं? यह परिस्थिति ख़तरे की है, देश को इससे हानि होने की सम्भावना है, हानि हो भी रही है। पर शायद उसको यह पता नहीं कि देश में ऐसे भी दल हैं जो शक्ति में आने पर उसे दूध की मक्खी के समान निकालकर फेंक देंगे, जो शासन में हर स्थान पर पार्टी का आदमी ही बिठाना चाहेंगे। चीन में यही हो रहा है, और नये आदमी यह सिद्ध कर रहे हैं कि वे शासन को पुरानों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह सँभाल सकते हैं। कांग्रेस की निर्बलता, अनुभवहीनता और उदारता का लाभ यदि ये अफ़सर उठाते हैं तो वे कांग्रेस को मिटा देंगे, और उस दल को भी मज़बूत करेंगे जो मौक़ा पाते ही उन्हें उखाड़ फेंकेगा। इनमें विरोध की शक्ति नहीं।

ये अपने अन्दर से बहादुर नहीं निकाल सकते, बदमाश पैदा कर सकते हैं—ऐसा भी बदमाश नहीं जो खुलेआम बदमाशी करे—खुलेआम बदमाशी करनेवाला गुण्डा होता है। गुण्डा भी किसी के बल पर गुण्डई दिखाता है। अंग्रेज़ों के बल पर इन्होंने भी दिखायी थी। ये छिपकर बदमाशी करनेवालों में हैं—चोट्टे और कायर। ये तो छूते ही मर जायेंगे। कांग्रेसी सरकार अगर इन्हें सीधा नहीं करती तो जनमत और पत्रों द्वारा इनकी हुलिया खोली जा सकती है। पर पत्र जब जनता के हों तब न? पत्र भी तो व्यक्तियों और दलों के हैं अपने देश में। वे जनता के हित में नहीं अपने स्वार्थ के लिए मुँह खोलते हैं। कोई भी शासन तभी सफल हो सकता है जब ऊपर से नीचे तक एक-सूत्रता हो। हम साम्यवादियों को दोष देते हैं, पर तर्क उनके पक्ष में है। सरकार चाहे कुछ, और कर्मचारी चाहें कुछ और, तो हो चुका शासन। कर्मचारी केवल हुक्म बजाने के लिए नहीं हैं। जहाँ हुक्म बजाना मात्र रह जाता है वहाँ शासन निर्जीव हो जाता है। हमारे देश का शासन इसी प्रकार का हो गया है—हुक्म भर बजाया जा रहा है—शायद उसका भी औपचारिक दिखावा भर है। शासन की सारी मशीन जब एक आदर्श से अनुप्राणित होती है तभी शासन की ख़ूबियाँ प्रकट होती हैं। शासन बदलो या आदर्श बदलो। सच तो यह है कि आज़ादी के दरवाज़े तक पहुँचते-पहुँचते हमारे आदर्श इतने लट गये थे कि हम शासन के चक्र में गति नहीं ला सके। हम नये आदर्शों के बल पर ही शासन की मशीन में नया जीवन, नयी शक्ति और नयी प्रगति ला सकेंगे।

लौटकर खाना खाया—ठण्डा।

टेबिल पर मादमोज़ेल और लीथान को अपनी नयी कविता सुनायी। थोड़ा-बहुत अंग्रेज़ी में समझाने की भी कोशिश की। परिणाम से मादमोज़ेल सहमत नहीं थीं। बड़प्पन से वे गम्भीरता को भले ही जोड़ लें, उदासी (melancholy) को नहीं जोड़ पातीं। मैंने कहा मेरा तात्पर्य गम्भीरता से ही है। मिल्टन के Il penseroso से शायद वे परिचित नहीं।

रात को मैंने ईट्स की 'The Winding Stair' समाप्त की।

सोमवार, 26 मई,' 52

तेजी के पत्र की प्रतीक्षा थी। न मिलने पर निराशा हुई। पिछला पत्र उनका 15 का मुझे 19 को मिला था। आज 26 तक उनका कोई पत्र नहीं मिला। इसका अर्थ है कि सात दिनों में उन्होंने एक भी पत्र नहीं लिखा। शुरू में सप्ताह में एक पत्र लिखता था। इस पर उन्होंने तूफ़ान मचा दिया। वे सप्ताह में एक बार भी पत्र नहीं लिखतीं, मैं चार पत्र भेजता हूँ। कौन शिकायत करे और किससे। क्या उनकी आदत मैं जानता नहीं। भगवान उन सबको सकुशल रक्खें! मुझे चिन्ता हो तो हो, उनको न हो। मुझमें चिन्ता का भार उठाने की ज़्यादा शक्ति है।

सेन्ट्रल लाइब्रेरी में अख़बार देखते ज़्यादा देर लग गयी।

यु. ला. के लिए भागता हुआ ह्यूल कोर्ट के अन्दर से निकल रहा था कि एक लड़के से टक्कर लग गयी और दोनों ओर से sorry, sorry की बौछार और सहृदयता में चोट भूल गयी। अपने देश में तो इतने पर झगड़ा हो जाता—अन्धा है, देखकर नहीं चलता। शिष्टाचार में इस देश को पाना कठिन है।

कैसानोवा की आत्मकथा में मैंने पढ़ा था कि एक बार जब वह इंग्लैण्ड जा रहा था तो उससे किसी ने कहा कि देखो वहाँ बात-बात पर 'सॉरी' कहने का चलन है। ज़रा-सी भी अपने से ग़लती हो जाये तो फ़ौरन 'सॉरी' कहना। कैसा-

नौवा ने बात गाँठ बाँध ली। जब वहाँ पहुँचा तो ऐसी ही किसी परिस्थिति में पड़ गया। उसने कहा, 'I am sorry,' दूसरे ने कहा, 'I should be sorry.' कैसानोवा ने कहा, 'मुझे ताना दे रहे हो, कसूर मेरा था, मुझे सॉरी कहना था।' दूसरा बोला, 'कसूर मेरा था, सॉरी तुमने क्यों कहा ?'—बस इसी पर झगड़ा होते-होते बचा।

लन्दन में जब पहले-पहल पहुँचा तो देखा कि सब जल्दी में ही हैं। चलता तो कोई है ही नहीं। सब दौड़ ही रहे हैं। कुछ समझ में नहीं आता था कि यहाँ इस क़दर भागा-भागी क्यों है। भाई, कहीं पहुँचना है तो कुछ पहले से चलो। तुम्हारे देश में वैसे ही यातायात बहुत है, तुम्हें तो धीमे चलना चाहिए। अब इनके बीच रहते हुए मैं भी इन्हीं दौड़नेवालों में शामिल हो गया हूँ। कहते हैं, ख़रबूज़ा ख़रबूज़े का रंग पकड़ता है। ख़रबूज़ा न भी पकड़े, इन्सान ज़रूर पकड़ता है। अब इनके भागने का एक रहस्य भी मुझे मिल गया है। इनका देश है ठण्डा। कमरों को ये बिजली या गैस से गरम रखते हैं। जब कमरों से निकलते हैं तब, ज़ाहिर है, बाहर की सर्दी इन्हें लगती है। थोड़ा दौड़ने-भागने से शरीर में गर्मी बनी रहती है। साथ ही समय की भी बचत होती है, और समय को यहाँ धन समझा जाता है—Time is moeny और ये समय के पीछे दौड़ते हुए सचमुच धन के ही पीछे दौड़ा करते हैं। धन के लिए दौड़ना क्या, ये कुछ भी कर सकते हैं। यह मुझे मालूम होता है इनके दौड़कर चलने का रहस्य। फिर हर आदमी को वक़्त-वक़्त से इतना काम करने को रहता है कि अगर एक जगह चूक हो जाये तो दिन बस चूक की शृंखला बन जाता है। इस कारण सारी भाग-दौड़ का प्रयत्न यह होता है कि चूक का आरम्भ होने ही न पाये। अंग्रेज़ मरपचकर यह कोशिश करता है कि जो काम जिस समय पर होना है वह ज़रूर हो जाये।

इनके समाज में दो शब्द बहुत प्रचलित हैं—एक sorry दूसरा thanks, और दोनों इनकी जाति का विशेष गुण बतलाते हैं। कोई व्यक्ति ज़रा भी यह दिखलाये कि वह दूसरे का ख्याल करता है तो दूसरा फ़ौरन उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। अक्सर मैंने देखा है, सड़क पर जाते समय कोई उधर से आ रहा है, और आप ज़रा-सा बग़ल हो जायें तो वह आपके पास से गुज़रते हुए बिना आपको धन्यवाद दिये आगे नहीं बढ़ता। इससे एक-दूसरे के प्रति सद्भावना फैलती है। धन्यवाद देना मनुष्य अपना कर्त्तव्य समझता है और धन्यवाद का पात्र बनने के लिए प्रयत्नशील रहता है। यहाँ तो धन्यवाद देने के लिए भी धन्यवाद दिया जाता है। कहीं-कहीं देखा है—दो-दो, तीन-तीन बार एक-दूसरे को thank you, thank you कहते चले जाते हैं। मैं अक्सर कहता हूँ, The English people are thanks giving nation. इसी प्रकार sorry का भी प्रयोग होता है। Sorry कहने का अर्थ है, अपनी ग़लती को मानना। सोचें तो बड़ी भारी बात है। अपनी ग़लती को मानने के लिए बड़े साहस की ज़रूरत होती है। जब एक ने 'सॉरी' कह दिया, अपनी ग़लती मान ली, तब दूसरे का कर्त्तव्य हो जाता है कि उसको क्षमा कर दे। सचमुच अपनी ग़लती को मानना क्षमा का अधिकारी बनना है। ईसाई धर्म के पाप स्वीकार में कुछ तथ्य तो है ही। मज़ाक उड़ाने को आप कह लें कि यह अच्छा है कि ज़िन्दगी-भर पाप किया और अन्त में पापों को स्वीकार कर लिया, क्षमा माँग ली। पर सचमुच अपने पाप पर दुःख प्रकट करनेवाला और क्षमा चाहनेवाला निष्पाप हो जाता है; इसलिए कि वह दूसरा व्यक्ति हो जाता है। वह तो अपने-आप पाप-मुक्त हो जाता है क्योंकि जो कर्म उससे लिपटे हुए थे उन्हें वह साँप की

केंचुल के समान छोड़ देता है। पाप स्वीकार और क्षमा-प्रार्थना के सच्चे अर्थ यही हैं। मेरा ख़्याल है कि sorry कहने की प्रथा के पीछे ईसाइयत का क्षमा का सिद्धान्त अवश्य है। Sorry कहने के पश्चात् शायद ही कोई अंग्रेज़ हो जो आपको क्षमा न कर दे। हाँ, मामला पुलिस तक चला जाये तो क़ानून के घेरे में आ जाता है। और वहाँ हर क़सूर की नियत सज़ा है। क़ानूनी कचहरियों को मस्तिष्क के विचार से क्या मतलब; वे तो स्थूल कामों को देखती हैं, यानी अधूरे कामों को देखती हैं। अधूरे पर फ़ैसला देती हैं। इसलिए ग़लत फ़ैसला देती हैं। कार्लाइल कहा करते थे कि बहुत-सी बातों की सच्चाई पर मैं इसलिए विश्वास करता हूँ कि उन्हें क़ानून की कचहरियों में साबित नहीं किया जा सकता। उनमें कुछ इतना ऊँचा या बारीक सत्य होता है कि कचहरियाँ उन्हें नहीं देख-छू पातीं। बहरहाल thanks और sorry ईसाइयत के मूल सिद्धान्तों से निकले बड़े काम-काजी (practical) शब्द हैं। ईसाई सिद्धान्तों के अनुसार मनुष्य मूल रूप से पापी है। वह कुछ भी दया-कृपा पाने का अधिकारी नहीं। इस कारण उसे जो भी मिलता है उसके लिए उसे कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए। मनुष्य को मनुष्य से भी किसी प्रकार की प्रत्याशा नहीं करनी चाहिए। जो वह कर दे, अपनी सद्भावना से करता है। और सद्भावना के लिए कृतज्ञ होना चाहिए, धन्यवाद देना चाहिए। थोड़ी-सी भी सद्भावना के लिए आभारी होना और थोड़ी-सी भी ग़लती के लिए खेद प्रकट करना—यह दो बातें अंग्रेज़ी समाज में मुझे बहुत अच्छी लगीं। इससे जीवन में—ऊपरी ही क्यों न हो—बड़ी स्निग्धता आ गयी है। कठोर शब्द कहीं सुनने को नहीं मिलते। मधुर शब्द, मधुर व्यवहार, मधुर आचार, इनकी कमी इस देश में कहीं नहीं। मानना पड़ेगा, हमारे जीवन में ये नहीं हैं—इनके लिए शब्द भी खोजें तो हमारी ज़बान पर भारी पड़ेंगे। कैसे हल्के से अंग्रेज़ 'थैंक्यू' कह देता है। 'शुक्रिया' तो ग़नीमत है, 'धन्यवाद' का तो उच्चारण करना भी कठिन है। दो-चार बार कहना हो तो ज़बान थक जाये। और sorry के जोड़ का शब्द ही हमारे पास नहीं; क्योंकि हम अपना क़सूर देखना ही नहीं जानते। हम तो किसी काम के लिए 'सॉरी' नहीं होते। क्या कहेंगे अफ़सोस है, खेद है, दुख है, क़सूर मेरा, माफ़ कीजिये, क्षमा कीजिये। 'धन्यवाद' शायद ही चल सके; 'शुक्रिया' छोटा-सा शब्द है, क्यों न इसे हम ले लें। 'मिलन यामिनी' के एक गीत में मैंने उसका प्रयोग किया है।

'निशा विनीत ने कहा कि शुक्रिया'

भाई, 'शुक्रिया' को अरबी-फ़ारसी समझते हो तो इसको थोड़ा बदल लो। इसे 'सुक्रिया' कर दो। सु = अच्छा, क्रिया = काम; यानी जो काम आपने किया वह अच्छा है, इसे मैं स्वीकार करता हूँ, हो गया धन्यवाद। 'सॉरी' की जगह 'क्षमा' कहो, पर उच्चारण करो 'छमा', लिखना हो तो 'क्षमा' ही लिखो। बंगाली लोगों ने लेखन और उच्चारण में ख़ूब समझौता कर लिया है—लिखेंगे 'शाहजहाँ', बोलेंगे 'शाजहाँ'; लिखेंगे 'लक्ष्मी', बोलेंगे 'लक्खी'।

हीन की पुस्तक समाप्त हो गयी। पुरोहित स्वामी की आत्मकथा आरम्भ कर दी। ईट्स ने ख़ामख़्वाह इसे बहुत महत्त्व दे दिया है।

खाना खाने के बाद मादमोज़ेल वोआज़ेन और लीथान के साथ घूमने गया। लीथान ने एक विचित्र बात बताई। दिन को उन्हें आज एक व्यक्ति मिला और कहने लगा, मेरे साथ चलो, ख़ुश होगे मेरे साथ चलकर। पूर्व-परिचय न होने से लीथान ने उसके साथ जाने से इन्कार कर दिया।

मंगलवार, 27 मई, '52

रात एक नया प्रयोग किया। चारपाई की स्प्रिंग शुरू से ढीली थी, सोने में तकलीफ़ होती थी। मैंने गद्दा फ़र्श पर लगाया और सो गया—अच्छी नींद आयी। रोज़ बिस्तर-भारी-लगाने-उठाने की कसरत गवारा—ढीली नींद नहीं।

डॉ. लूकस और तेजी के पत्र मिले। डॉ. लूकस ने दूसरी जून को कॉफ़ी के लिए बुलाया है। तेजी का गुस्सा समाप्त हो गया है, शिकायत भी ख़त्म हो गयी है। यही तो उनकी सबसे बड़ी अच्छाई है कि अपनी ग़लती बड़ी जल्दी देख लेती हैं, और किये पर पछताती हैं। मुझे तो उन पर तरस आने लगता है। ख़ामख्वाह को अपने को परेशान करती हैं; पर कुछ लोगों का स्वभाव हो जाता है अपने-आपको दुखी करने का। वे अपनी कल्पना से एक मुसीबत खड़ी करते हैं और फिर अपने को उसका शिकार समझने लगते हैं। थोड़े-थोड़े समय बाद तेजी को भी ऐसे 'फ़िट' आते हैं। ग़नीमत है कि यह वहम जल्दी दूर हो जाता है। मैं सफ़ाई कभी नहीं देता। ऐसी बातों को जितना ही सुलझाने का प्रयत्न किया जाये उतनी ही वे उलझती जाती हैं, उनके प्रति उदासीन रहा जाये तो वे स्वयं सुलझ जाती हैं। जब-जब उन्होंने मुझ पर किसी प्रकार का सन्देह किया, मैंने यही कहा कि जो तुम समझती हो वही ठीक है। और वह उन्हें इतना असह्य लगा कि उन्होंने फ़ौरन समझा कि सन्देह करने में उन्हीं की भूल थी।

मेरे लौटने के पहले बच्चों को वहाँ छोड़कर यहाँ आने और साथ लौटने का विचार उन्होंने छोड़ दिया है। कहाँ छोड़तीं बच्चों को? कौन है अपना ऐसा? ख़ैर, यह तो उन्होंने बुद्धिमानी का काम किया। यदि उनकी इच्छा हुई तो मैं देश लौटने के बाद उनको इंग्लैण्ड, अमरीका, जहाँ वे जाना चाहेंगी, भेज दूँगा। हालाँकि उन्हें अकेले घूमने में क्या आनन्द आयेगा। मैं तो फिर भी अपने को काम में लगाकर रखता हूँ। कुछ काम करने को न हो, कोई साथी न हो तो घूमते-घूमते भी तो आदमी ऊब जाये। अकेला कहाँ पागल की तरह घूमे।

दत्त ने कई बार मुझे सलाह दी थी कि बजाय 6 महीने केम्ब्रिज और 9 महीने आक्सफ़र्ड में रहने और यहाँ से सामग्री ले जाकर भारत में थीसिस सबमिट करने के दो वर्ष केम्ब्रिज में ही रहूँ और इसी युनिवर्सिटी से डाक्टरेट के लिए थीसिस दूँ। प्रस्ताव ने मुझे लुभाया था। यदि दो वर्ष केम्ब्रिज में रह सकूँ तो यहीं से पी-एच. डी. कर सकता हूँ। यहाँ भी रहा और आक्सफ़र्ड भी रहा और भारत जाकर थीसिस लिखी भी और वह स्वीकृत भी हुई तो डिग्री प्रयाग विश्व-विद्यालय की होगी—देसी—दालदा। पता नहीं वे लोग मुझे डी. लिट्. की आज्ञा भी देंगे या नहीं। सारी दुनिया घूमकर वहाँ से डि. फ़िल. लिया तो क्या। यह तो कितने लोग वहाँ ही बैठे-बैठे कर लेते हैं। सवाल ख़र्चे का भी था और तेजी की अनुमति का भी। खर्चे के सम्बन्ध में नेहरूजी के आश्वासन का मैं भरोसा कर सकता था। तेजी का मन टटोलने के लिए मैंने उन्हें लिखा था कि अगर मुझे 9-10 महीने और इंग्लैण्ड में रुकना पड़े तो क्या वे इसके लिए तैयार होंगी। आज के पत्र में उन्होंने लिखा था कि अगर अपने काम को पूरा करने के लिए मुझे कुछ और रुकना पड़े तो मैं ख़ुशी से रुक सकता हूँ। शाबाश! घर के प्रबन्ध के विषय में उन्होंने कुछ सोच ही लिया होगा। अब मैं जी-जान से मेहनत करके यहीं से डाक्टरेट लेने की योजना क्यों न बनाऊँ? फिर न आक्सफ़र्ड जाना है न अमरीका। छुट्टियों में इंग्लैण्ड घूम लूँगा। लौटते समय योरोप का थोड़ा-सा भ्रमण

कर लूँगा। थीसिस के लिए मसाला इकट्ठा करना है तो भी, और केम्ब्रिज में डाक्टरेट के लिए मेहनत करनी है तो भी, अमरीका का मोह छोड़ना पड़ेगा। फिर अगर तीन-चार सप्ताह को अमरीका जा भी सका तो वहाँ क्या देख लूँगा। निश्चित ध्येय रक्खे बग़ैर जीवन में कुछ प्राप्त नहीं किया जा सकता। तेजी मेरी सहायता करने का निर्णय कर लें तो निभा ले जाना उनके लिए कोई मुश्किल नहीं। मैं भी ईट्स का तो परिपूर्ण अध्ययन करूँ ही, आधुनिक कविता और समालोचना का भी सम्यक अध्ययन करूँ और बाहर आने का पूरा लाभ उठाकर लौटूं। यही सब सोचता सेन्ट्रल लाइब्रेरी चला गया।

'मैनचेस्टर गार्जियन' के सम्पादकीय में आज एक व्यंग्य-लेख इस पर था कि चीनी लोक-तन्त्र ने सामूहिक ढंग पर साहित्य-उत्पादन करने की एक योजना बनाई है। चीन के शिक्षा और संस्कृति विभाग ने एक केन्द्रीय साहित्य समिति खोली है जिसे मिस तिंग लिंग अनुशासित करेंगी। इसमें साठ सदस्यों को भरती किया गया है। प्रथम वर्ष में वे स्वाध्याय करेंगे। स्वाध्याय में लेनिन, स्टेलिन और माओत्से तुंग के लेखों और भाषणों का अध्ययन विशेष रीति से किया जायेगा। लेखकों को इस काल में आधा समय फ़ैक्ट्री और मिलों में काम करके मज़दूर-जीवन और उसकी समस्याओं का अनुभव भी प्राप्त करना पड़ेगा। लिखने का काम दूसरे वर्ष में आरम्भ होगा। प्रति वर्ष लगभग बीस लाख शब्द यह मण्डल प्रकाशित करेगा। जो लेखादि होंगे उन पर किसी एक व्यक्ति के हस्ताक्षर न होंगे। सारी रचनाओं के लिए समिति उत्तरदायी होगी, और उसी की वे समझी जायेंगी।

अभी तक कला और साहित्य व्यक्ति की तीव्र अनुभूतियों के परिणाम समझे जाते थे। अब सामूहिक अन्न-उत्पादन के समान साहित्य उत्पादन का भी प्रयत्न किया जाने वाला है। इसके अर्थ यह हुए कि साहित्य और गेहूँ एक ही श्रेणी में रखने की वस्तुएँ हैं। अगर गेहूँ सामूहिक तरीक़े से पैदा किया जा सकता है तो साहित्य क्यों नहीं पैदा किया जा सकता। भौतिकवादी दृष्टिकोण को लेकर चलने का तार्किक परिणाम यही है। जैसे राज्य की नीति निर्धारित है उसी प्रकार राज्य का दर्शन, राज्य का साहित्य, राज्य की कला, सभी को निर्धारित किया जा रहा है।

लेकिन साहित्य का काम है जीवन की आलोचना करना। यह काम, यह दायित्व, उसे अपनी स्वतन्त्रता से मिला है। जब साहित्य की स्वतन्त्रता छिन जायेगी तो वह जीवन की आलोचना करने के बजाय उसकी वकालत करने लगेगा। और बिना आलोचना के कोई समाज उन्नति नहीं करता। उन्नति कैसे करेगा; वह अपनी त्रुटियाँ, कमज़ोरियाँ, दाग़-दूषण कैसे देखेगा। अगर साहित्य-समिति साहित्यकार की स्वाधीनता छीनने के लिए बनी है तो यह दिन चीन के सांस्कृतिक इतिहास में बड़े दुर्भाग्य का है। आलोचना से ऊपर होने का दम्भ केवल पूर्णता-प्राप्त समाज कर सकता है। क्या साम्यवादी समाज अपने को ऐसा समझता है? यदि ऐसा समझता है तो उसकी अवनति इसी जगह से आरम्भ होती है। साहित्य का काम केवल ज़ाहिर, सतही, ऊपरी, स्थूल को व्यक्त करना नहीं है। वह तो सभी देखते-जानते हैं। साहित्यकार अपनी भाव-विचार-प्रवणता से अपनी प्रेरणा के क्षणों में कुछ ऐसे सत्यों की खोज करता है जो अव्यक्त हैं। जब सामूहिक दृष्टि से देखा जायेगा तब प्रस्तुत-व्यक्त-प्रकट (obvious) ही आँखों के सामने आयेगा। सूक्ष्म सत्यों का दर्शन और उनकी उद्बोधक अभिव्यक्ति व्यक्ति के एकान्त क्षणों का ही वरदान है। चीन ने जो प्रयोग आरम्भ किया है वह शायद रूस में भी नहीं हुआ। नया मुसल्मान प्याज़-प्याज़ चिल्लाता है। चीन कुछ ऐसा ही तो नहीं करने जा रहा है।

यह लेखक-मण्डल कविताएँ भी लिखेगा। आठ हज़ार पंक्तियाँ शायद लिखी भी जा चुकी हैं। कविता क्या, यह पद्य-रचना होगी, ठीक वैसी ही जैसी जफील के द्वारा चिड़ियों को बोलियाँ सिखलाई जाती हैं। जो जफील बोलता है चिड़ियाँ अपना स्वाभाविक स्वर भूल वही दुहराती हैं। कवि और कविता की इससे अधिक विडम्बना क्या हो सकती है। यह योजना साहित्य का निर्माण करने को नहीं साहित्य को निर्मूल करने को बनी है। वास्तव में सर्व-सत्तात्मक राज्य-व्यवस्थाओं को साहित्य की आवश्यकता नहीं रह जाती। साहित्य उन्हें हानि भी पहुँचाता है; इसलिए उनका प्रयत्न समस्त साहित्य को प्रोपेगेण्डा में परिवर्तित कर देने का होता है। साहित्य उनके लिए ख़तरे की वस्तु है। साहित्य जिन स्वतन्त्र प्रवृत्तियों का द्योतक है वे सर्व-सत्तात्मक राज्यों को चुनौतियाँ हैं। स्वाभाविक है कि ऐसी अवस्था अपने शत्रु को पनपने नहीं दे सकती। जहाँ साहित्य और साहित्यकार स्वतन्त्र होंगे वहाँ सर्व-सत्तात्मक सत्ताएँ जड़ नहीं जमा सकतीं। इसके विपरीत जहाँ सर्व-सत्तात्मक सत्ताएँ जड़ जमा लेती हैं वहाँ से साहित्य ग़ायब हो जाता है।

यु. ला. में 'An Indian Monk' पढ़ता रहा।

खाना खाकर घूमने गया। बोट क्लब के सामने मि. हेन मिल गये। उन्होंने कल दस बजे का समय दिया है। उनसे ईट्स पर अब तक किये गये स्वाध्याय पर बात करना चाहता हूँ। केम्ब्रिज से अगर डाक्टरेट लेने की मेरी सलाह बन गयी तो क्या करना होगा, इस पर भी मि. हेन से पूछना चाहता हूँ।

तेजी को पत्र लिखा। उनकी सलाह ज़रूरी है। उनके उत्तर पर मेरा आगे का कार्यक्रम निर्भर होगा।

बुधवार, 28 मई, '52

मुझे तो 'भूमि-शयन' में आनन्द आने लगा है।

मि. पिकार्ड की चिट्ठी मिली। भारतीय जीवन से सम्बद्ध कहानियाँ लिखते हैं। किसी भारतीय विद्यार्थी ने उन्हें मेरी कविताएँ सुनाई हैं, अंग्रेज़ी के माध्यम से आशय समझाने का भी प्रयत्न किया है।

10 बजे मि. हेन से मिला। मैंने उन्हें बताया कि ईट्स पर भारतीय प्रभाव थियोसोफ़िकल सोसाइटी, जार्ज रसेल, टैगोर, सरोजिनी नायडू, पुरोहित स्वामी, मोहिनी चटर्जी और कुछ विशेष पुस्तकों द्वारा अवश्य पड़ा, पर उस पर थीसिस नहीं बन सकती। मुझे एक ऐसा विषय सूझा है जिस पर थीसिस लिखी जा सकती है, जिसमें भारतीय प्रभाव का भी समावेश हो सकता है—'The Irrational in Yeats'—Irrational के प्रति ईट्स का आकर्षण था। उनका विचार था कि यही वह खान है जिसके अन्दर से वे सब पत्थर निकले हैं जिनको गढ़-छीलकर वे मूर्तियाँ बनाई गयी हैं जिनकी हम आज पूजा करते हैं। कई कारणों से वे irrational की ओर आकर्षित थे। आयरलैण्ड की नवोदित राष्ट्रीयता को इससे वे कुछ विशेषता देना चाहते थे। प्रोटेस्टैण्ट और कैथोलिकों के ऊपरी भेद को फाड़कर वे उस युग को दिखाना चाहते थे, उस सतह पर ले जाना चाहते थे, जहाँ पर दोनों में कोई अन्तर नहीं था। दूसरा कारण विज्ञान से उनका असन्तोष था। 19वीं शताब्दी में विज्ञान ने तोड़ने का काम ज्यादा किया था, बनाने का कम। इस संहार से वे घबरा गये थे और उसके विरोध में अवैज्ञानिक तत्त्वों की ओर झुक गये थे। 18वीं सदी के अंग्रेज़ी दार्शनिक लॉक आदि से भी वे असन्तुष्ट थे।

लॉक मस्तिष्क को साफ़ स्लेट मानते थे—Tabula Rasa—और सारे ज्ञान का स्रोत इन्द्रियों के अनुभवों को—sense perceptions को। ईट्स के जीवन के अनुभव कुछ ऐसे थे जिनकी व्याख्या लॉक के सिद्धान्तों से न हो सकती थी। एक चौथा कारण irrational के प्रति झुकने का शायद उनका कवित्व था। उनका विचार था कि कविता मस्तिष्क के तर्क-सम्मत विचारों से नहीं लिखी जा सकती। उसमें कुछ irrational तत्त्व अवश्य होना चाहिए जो बुद्धि का विरोधी न हो, बुद्धि के ऊपर हो। ऐसे परा-बौद्धिक तत्त्वों के कारण ही कविता, कविता बन सकती है।

मि. हेन को विषय पसन्द आया। उन्होंने कहा कि जहाँ तक उन्हें मालूम है ईट्स में irrational का विश्लेषण किसी ने नहीं किया। दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक कई दृष्टियों से इस पर विचार किया जा सकता है।

जब मैंने देखा कि मि. हेन इस विषय को पी-एच. डी. की थीसिस के योग्य समझते हैं तब मैंने दूसरी बात छेड़ी। इंग्लैण्ड 15-16 महीने रहने के विचार से आया था और केम्ब्रिज और आक्सफ़र्ड दोनों से लाभान्वित होना चाहता था। मैं देखता हूँ कि यदि आठ महीने यहाँ किसी तरह रहने का और प्रबन्ध कर लूं तो मैं यहीं से डाक्टरेट ले सकता हूँ। उन्होंने कहा कि रिसर्च के लिए प्रायः तीन वर्ष का समय माँगा जाता है, पर जो अध्यापक हैं या जिन्होंने निजी तरीक़े से कुछ काम किया है, उनको एक साल की छूट मिल जाती है। मेरे लिए वे यह करा सकते हैं कि जिस दिन मैं केम्ब्रिज आया उस दिन से रिसर्च के लिए मेरा नाम लिखा माना जाये। इस प्रकार मैं जल्दी से जल्दी अप्रैल-मई '54 तक अपनी थीसिस दे सकता हूँ। अगर किसी कारण मेरी थीसिस तैयार न हो सके तो मैं दो साल के पश्चात् भारत लौट सकता हूँ और वहाँ से साल बाद अपनी थीसिस प्रस्तुत कर सकता हूँ। काम को देखकर मौखिक परीक्षा (viva voce) से छूट भी मिल सकती है। उन्होंने मेरे सम्बन्ध में कुछ पूछ-ताछ की और कहा कि विधिवत् मेरे शोधार्थी बनने के विषय में वे प्रो. विली से बात करेंगे। एक समस्या और है कि मि. हेन 9 महीने के लिए बाहर जा रहे हैं, पर उन्होंने कहा कि केम्ब्रिज में ईट्स पर दो महिलाओं ने काम किया है, एक की पुस्तक भी प्रकाशित हो चुकी है। जाने के पूर्व वे उन्हें मुझे सलाह देते रहने को कह जायेंगे और स्वाध्याय की रूपरेखा बना देंगे। मैं उनकी अनुपस्थिति में उसी के अनुसार कार्य कर सकता हूँ। उन्होंने मुझे मॉड बॉडकिन का एक लेख दिया; कहा, इसे कल पढ़कर लाना। Irrational के विषय में आजकल जिज्ञासा बहुत है। यह लेख इसी विषय पर है। साथ ही मुझसे उन्होंने कहा कि 500 शब्दों में मैं यह स्पष्ट करूँ कि जो विषय मैं लेना चाहता हूँ उससे क्या सिद्ध करना चाहता हूँ, उसकी सीमा क्या होगी, उसको किस दृष्टिकोण से मैं देखूँगा, या उसके किन पहलुओं पर विचार करूँगा। यह लेख बोर्ड आफ़ रिसर्च स्टडी के सामने जायेगा। उसी से एक साल की छूट की भी अनुमति मिलेगी। Regular research scholar बनने के सम्बन्ध में मुझे इण्डिया हाउस को भी लिखना चाहिए। युनिवर्सिटी को आश्वस्त करना पड़ेगा कि आपको शोध-काल में समुचित आर्थिक सहायता मिलती रहेगी या आपके पास शोध पूरा करने के लिए पर्याप्त आर्थिक साधन हैं।

लेख लिखने के लिए उन्होंने तीन सप्ताह का समय दिया। इसके बाद ही रिसर्च-बोर्ड की बैठक होगी। एक साल की छूट के लिए प्रयाग विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विभाग के अध्यक्ष से यह सर्टिफ़िकेट मँगाना पड़ेगा कि मैंने वहाँ भी शोध

का काम किया था। तेजी के उत्तर की प्रतीक्षा करके यह बात चलाता तो बहुत देरी हो जाती। यदि उनकी सम्मति न हुई तो किसी भी समय अपने पुराने कार्यक्रम पर लौटा जा सकता है। यदि यहीं से डाक्टरेट करना है तो अर्ज़ी फ़ौरन जानी चाहिए। देर अभी भी हो चुकी है। समझ में नहीं आ रहा है कि मेरे लिए क्या ज्यादा अच्छा होगा। यहीं रहना है या आक्सफ़र्ड भी जाना है। डाक्टरेट यहाँ से मिलनी है या प्रयाग से या कहीं से भी नहीं। इस समय मन को यह अच्छा जरूर लगता है कि केम्ब्रिज में ही दो वर्ष रहकर रिसर्च करके यदि डाक्टरेट लेने का अवसर मिल जाये तो ज्यादा अच्छा होगा। दो बरस का समय कम नहीं होता, आगे क्या परिस्थितियाँ आती हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता। मन दुविधा में पड़ गया है।

दिन को यु. ला. में स्वाध्याय चला।

'An Indian Monk' समाप्त हो गयी। प्रिफ़ेस में ईट्स के विचारों के अतिरिक्त—सो भी बड़े असन्तुलित और अतिशयोक्तिपूर्ण—पुस्तक में कुछ भी नहीं। हीरे की खदान में हीरा पाने के लिए बहुत-सा मिट्टी-पत्थर भी खोदना-हटाना पड़ता है।

'The Ten Principal Upanishads', put into English by Shri Purohit Swami and W. B. Yeats, with a preface by W. B. Yeats शुरू कर दी।

उपनिषदों में भी कितना ज्ञान भरा है। इसे अपना दुर्भाग्य ही समझता हूँ कि उन्हें सीधे संस्कृत से नहीं समझ सकता। अंग्रेज़ी अनुवाद कठिन है, फिर भी उपनिषदों में इतना दिव्य ज्ञान है कि अंग्रेज़ी अनुवाद में भी वह झलक उठता है। हिन्दी में व्याख्याएँ तो बहुत हैं, पर कोई ऐसा अनुवाद नहीं जिसे आनन्दपूर्वक पढ़ा और समझा जा सके, बिना मूल की ओर गये;—ऐसा अनुवाद, जिसमें मूल की पूर्ण गम्भीरता भी हो, साथ ही जिससे ऐसा प्रतीत हो कि ऋषियों ने मूल रूप से हिन्दी में ही लिखा है। पुरोहित स्वामी और ईट्स ने अनुवाद में यही दृष्टि रक्खी है, जैसे उपनिषद् पहले-पहल सरल अंग्रेज़ी भाषा में ही लिखे गये हों। हिन्दी कवियों में केवल एक व्यक्ति है जो उपनिषदों का ऐसा अनुवाद कर सके, जिसमें मूल की गम्भीरता के साथ भाषा का सौन्दर्य भी हो, ऐसा कि जिसे पढ़ने में आनन्द आये। उपनिषदों में जो ज्ञान है सो तो है ही, उसमें शिल्पगत गुण कम नहीं है। वह अपनी शैली-वैशिष्ट्य से भी लोगों को प्रिय लगता है। मेरा ध्यान है कि यदि सुमित्रानन्दन पन्त यह काम करें तो हिन्दी का बड़ा उपकार हो। जिस दिन हिन्दी उपनिषदों का ऐसा अनुवाद कर सकेगी, जो अपने-आप में भी सुन्दर हो, उस दिन उसे अपनी क्षमता और सामर्थ्य का सर्टिफ़िकेट मिल जायेगा। अंग्रेज़ी का अनुवाद सुन्दर हुआ है। उपनिषदों के शिव-सत्य के साथ ही अंग्रेज़ी के कला-सौष्ठव से भी वह समन्वित है। पुरोहित स्वामी के अनुवाद को ईट्स ने शोधा है—उनका कोई साधारण हाथ तो नहीं। पन्त रेडियो के लिए रूपक लिखने में अपनी उम्र बरबाद कर रहे हैं। अधिकारियों के आदेश पर लिखना पड़ता है। बिना आन्तरिक प्रेरणा के उच्चकोटि की रचना हो सकती है? रेडियो के रूपक वे ऐसे लिखते हैं जो सुननेवालों के पल्ले नहीं पड़ते। रेडियो के लिए ऐसी शैली की आवश्यकता है जिसमें शब्द मुँह से निकलते ही समझ में आ जाये। रेडियो प्रायः वे लोग सुनते हैं जो किताबें नहीं पढ़ते। पन्त की शैली कभी ऐसी नहीं रही कि सुनते ही समझ ली जाये। उन्हें तो मनन का साहित्य लिखना चाहिए था। उपनिषदों को

लोग मनन के लिए पढ़ेंगे। यहाँ पन्त बहुत सफल होते। पर लिखते हैं वे काव्य-रूपक। पन्त की शैली का केवल एक उपयोग हो सकता है कि उसमें भारत के दार्शनिक एवं सूक्ष्म ज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों का अनुवाद किया जाये। और किसी काम के लिए वह दो कौड़ी की है। सृजनशील साहित्य के लिए तो वह बिलकुल बेकार है। हाँ, समालोचना के लिए शायद वह इतनी विफल नहीं साबित होगी। वह कविता के लिए नहीं, कहानी-उपन्यास के लिए और नहीं, नाटक के लिए कभी नहीं, रेडियो-रूपक के लिए, जहाँ शब्द ही—ध्वनि ही—केवल माध्यम है, पन्त की शैली हरगिज़ नहीं। काश, वे जान सकते कि रेडियो के द्वारा वे हिन्दी को कितना अप्रिय बना रहे हैं। बीस-त्रीस बरस के हिन्दी लेखक पन्त के रेडियो-रूपकों पर मुँह बा के रह जाते हैं। साधारण जनता या तो रेडियो बन्द कर देती है, जब उनका रूपक चलता है, या उन्हें जीभर कोसती है। पन्त जी, तलवार से तलवार का काम लीजिए। जहाँ सुई काम आनी चाहिए वहाँ आप तलवार चला रहे हैं। आप उपनिषदों को लेकर कौसानी चले जाइये और उनका सुन्दर अनुवाद कर डालिये। आपकी वाणी सार्थक हो जायेगी। आप अमर हो जायेंगे। आपका जीवन अब आन्तरिक प्रेरणाएँ खो चुका है। अब आपको कोई आधार चाहिए। ऋषियों का आधार लीजिए। अरविन्द की रचनाओं का आपका अनुवाद अच्छा था। 'सावित्री' का ही अनुवाद कर डालिए। अरविन्द का आधार मिलेगा। दिमाग़ के कल्पित पुतलों को कितने ही सुन्दर शब्दों का परिधान पहनाइए, उनमें जान नहीं आ सकती; वे हँस-बोल नहीं सकते। कविता के लिए दिमाग़ नहीं, हृदय का रक्त चाहिए, जो खेद है आपके अन्दर पहले भी बहुत कम था, और अब वह सूख चुका है। पर आपको ऋषियों का आधार बहुत ऊँचे ले जा सकता है। 'रजत शिखर' पर चढ़ने की कोशिश में आप अन्ध कूप में गिर रहे हैं। ऋषियों के चरणों को हाथ लगाइये; आप सचमुच रजत शिखर पर पहुँच जायेंगे।

उपनिषदों का अनुवाद पढ़कर बहुत आनन्द आया। कभी अवसर मिला तो इन्हें मूल से पढ़ूँगा और इनके रहस्य में पैठूँगा। यह पढ़ने की वस्तु नहीं, साधने की वस्तु है। फिर भी भारतीय जीवन पर दृष्टि डालता हूँ तो आभास होता है कि उपनिषद् के कितने सिद्धान्तों को व्यवहार में भिना दिया गया है, और कितने सूक्ष्म तरीक़ों से। कहीं पढ़ा था कि वेदों का सार उपनिषदों में है, उपनिषदों का गीता में, गीता का रामचरितमानस में और मानस का सार मीरा के भजनों में है—शब्दों में इतना नहीं जितना ध्वनियों में। अरविन्द के दर्शन के प्रति मेरी एक ही आलोचना थी। भारत में परम्परा यह रही है कि गूढ़-से-गूढ़ दर्शन को मूढ़-से-मूढ़ के लिए गम्य करा दिया जाये, किसी न किसी रूप में। अरविन्द का दर्शन लोक की सतह पर नहीं उतरा; शायद उनके अनुयायी कभी उतार सकें।

शाम को खाना खाने के बाद वोआज़ेन के साथ घूमने गया। मॉड बॉडकिन का लेख पढ़ा, दो बार, कल उस पर मि. हेन से बात करनी है, 10 बजे।

बृहस्पतिवार, 29 मई, '52

बी बी. सी. से चिट्ठी आयी; 11 जून को मेरा एक गीत प्रसारित होगा—'क्या भूलूँ क्या याद करूँ मैं'—पारिश्रमिक 1 पौं. 2 शि. 6 पें. मिलेगा। इसमें कुछ और जोड़कर तेजी के जन्मदिन के लिए कोई उपहार भेजूँगा।

मॉड बॉडकिन का लेख एक बार फिर पढ़ा। लेख human condition पर था। मनुष्य संसार में आकर दो प्रकार के जगत का ज्ञान प्राप्त करता है—भौतिक

जगत और मानसिक जगत का। मनुष्य के मरने पर भौतिक जगत ज्यों का त्यों बना रहता है; उसके मानसिक जगत का क्या होता है? क्या भौतिक जगत से परे कोई चेतना या केन्द्र है जिसमें वह लुप्त हो जाता है? इसका उत्तर विभिन्न धर्मों ने अपने-अपने तरीक़ों से दिया है। पर इन पर तर्क नहीं चल सकता और हमारी बुद्धि सहज ही इन्हें अस्वीकार करती है, और प्रश्न बना ही रहता है। इसे हल करने के लिए बॉडकिन ने जुंग, कीट्स, विलियम जेम्स की राय दी है। मृत्यु के पश्चात् मानसिक जगत का क्या होता है, इस प्रश्न को छोड़ भी दें फ़िलहाल, तो दूसरा प्रश्न उठता है। मानसिक जगत की चेतना आती कहाँ से है? यह चेतना हमारी अनुभूतियों की गहराई या छिछलापन बताती है, इस कारण हमारे जीवन से इसका घना सम्बन्ध है। जिसका मानसिक जगत जितना ही विकसित होता है वह जीवन के सुख, दुख, हर्ष, विषादों का उतना ही व्यापक अनुभव करता है। बॉडकिन ने इसके दो स्रोत बताये हैं। जुंग के अनुसार एक जाति-चेतना या race consciousness होती है जो हमें जन्म के समय बपौती के रूप में मिलती है, हम अपने मानसिक जगत का बहुत-सा ताना-बाना अपने साथ लेकर आते हैं। दूसरा स्रोत वह है जिसे कविगण अपने प्रेरणा के क्षणों में पाते हैं। और उसे अपनी वाणी के द्वारा दूसरों तक पहुँचाते हैं। बॉडकिन ने बाइबिल, शेक्सपियर, ब्लेक आदि से उदाहरण देकर यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि कविगण अपनी भावप्रवणता के कारण मनुष्य के मानसिक जगत के उद्बोधक (evocative) रूपकों को पहचान लेते हैं और उन्हीं के द्वारा नवीन परिस्थितियों में सजीवता और गहनता भरते हैं। इस कारण जो लोग मानसिक जगत के इन रूपकों से परिचित या उनके प्रति सचेत होते हैं वे साहित्य और कविता का अधिक आनन्द उठाते हैं, क्योंकि वे स्थिति विशेष को ही नहीं देखते, जाति की परम्परा में उस परिस्थिति का स्थान देखते हैं, परम्परा और जाति के इतिहास से उसका सम्बन्ध समझते हैं, और इस प्रकार उसके पूरे महत्त्व को हृदयंगम करत हैं। कहने का मतलब है कि व्यक्ति का मानसिक जगत दो तरह से बनता है—स्वतः प्राप्त जाति-चेतना से और कवि, कलाकार, द्रष्टाओं के कल्पना-प्रसूत रूपकों से। यानी मानसिक जगत की स्थिति से दो तरह के लोग होते हैं—एक जाति-चेतना तक सीमित, दूसरे सांस्कृतिक चेतना से समृद्ध। जाति का सामूहिक रूपवाला और व्यक्ति का विशिष्ट मानसिक जगत विश्लेषण का रोचक विषय हो सकता है।

मैं समूह में भी प्रत्येक व्यक्ति के मानसिक जगत को एक विशेषता देना चाहूँगा। इसके कारण प्रत्येक परिस्थिति में उसका जैसा अनुभव होता है, ठीक वैसा संसार में और किसी व्यक्ति का नहीं होता। वह अनुभव चाहे शेक्सपियर की किसी ट्रेजेडी के पाठ का हो, चाहे व्यक्तिगत जीवन की किसी घटना का।

दूसरी बात, यह विशेषाधिकार केवल कवि का क्यों माना जाये कि वह अपनी भाव-प्रवणता में जाति के मानसिक जगत के साथ अधिक गहरा सम्बन्ध बना सकता है। यह माना जा सकता है कि अपने सम्बन्ध को व्यक्त करने के साधन उसके पास हैं। पर ऐसे अन्य व्यक्ति भी हो सकते हैं जो कविता तो नहीं लिखते पर जिनकी अनुभूतियों की गहराइयाँ—वे किसी भी कारण से हों—कवि की अनुभूतियों की समानान्तर होती हैं, और इन्हीं लोगों में कवि अपने बड़े-बड़े प्रशंसक और प्रेमियों को पाता है। कवि को वे अपनी निजी अनुभूतियों को वाणी देनेवाला समझते हैं; पर यह दूसरा पहलू है। बहरहाल, अनुभूतियों की गहराई, वह जाति के मानसिक जगत से सम्बन्ध स्थापित करने के कारण हो, या अन्य किसी कारण से, कवि के

अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को भी लभ्य है।

10 बजे मि. हेन के कमरे पहुँचा। मॉड बॉडकिन के लेख पर उनसे मेरी कुछ बहस हुई। उन्होंने मेरे दृष्टिकोण को समझा। शायद माना भी। बात-बात में यह प्रश्न आ गया कि संसार के बड़े-बड़े कवि दुखी ही क्यों रहे हैं ?

मैंने कहा, मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ कि संसार के बड़े-बड़े कवि केवल दुखी ही रहे हैं, उन्होंने केवल दुख जाना है। यह तो मैं और मानने के लिए तैयार नहीं कि अपने दुख के कारण ही वे बड़े कवि बने। दुख जीवन का एक पक्ष है। जीवन का केवल एक पक्ष जाननेवाला महान कवि नहीं हो सकता। महान कवि से मैं यह प्रत्याशा करता हूँ कि वह जीवन को उसकी पूर्णता और सन्तुलन में जाने। ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने केवल जीवन का दुख देखा, जीवन का दुख ही व्यक्त किया। पर वे महान की श्रेणी में नहीं रक्खे जा सकते। मैं किसी अनादर की भावना से नहीं कह रहा हूँ, पर हाउसमैन और हार्डी को मैं महान कवियों की श्रेणी में नहीं रख सकता। महान कवि वह है जिसने दुख भी जाना है और सुख भी। और सच्चा सुख केवल सुख ही सुख नहीं। वह एक सिक्के के समान है जिसके दूसरी ओर दुख है। मैं यहाँ तक कहूँगा कि उसी ने सच्चा दुख भी देखा है जिसने सच्चा सुख भी जाना है। हाउसमैन और हार्डी के दुख में जीवन के दुख की प्रतिध्वनि नहीं, दर्शन के दुःख की आवाज़ है। वह दिमाग़ से आती है, किताब से आती है, स्याही और क़लम से आती है; धमनियों से नहीं आती, रक्त से नहीं आती।

होमर, दान्ते और शेक्सपियर को मैं केवल दुखी या केवल सुखी होने की कल्पना नहीं कर सकता। उन्होंने सुख की भी गहराई जानी थी, दुख की भी। सुख की गहराई जाननेवाला ही दुख की गहराई भी जान सकता है। होमर, दान्ते, शेक्सपियर के जीवन के विषय में हमें बहुत कम ज्ञान है। फिर बाहरी जीवन से आन्तरिक चेतना का पता लगाना भी कठिन है। उदाहरण के लिए, मीरा का जीवन लीजिए, आपने सुना होगा उसके विषय में। वह भारत की सैफ़ो है। बहुत-से लोग उसके जीवन को दुखी कहेंगे। पर यदि सुख का क्षण, सुख का उन्माद किसी ने जाना था तो मीरा ने जाना था, क्योंकि उसने दुख की पीड़ा भी जानी थी।

फिर संसार के महान कवियों ने अपनी कृतियों से कितने सुख को जन्म दिया है। मैं मान नहीं सकता कि यह सब सुख, दुख की उपज है। जो दुखी होकर भी सुख और आनन्द में विश्वास नहीं खोता उसे मैं दुखी मानने को तैयार नहीं हूँ। आनन्द से ही आनन्द की उत्पत्ति हो सकती है। कवि अपनी दुखी रचनाओं को भी एक आनन्द के कारण जन्म देता है। शायद इसी कारण दुखी रचनाओं को, दुःखान्त नाटकों को पढ़कर भी हम एक प्रकार के सुख का ही अनुभव करते हैं। सुख की रचना करनेवाला, सुख का विकास करनेवाला, सुख में विश्वास रखनेवाला, सुख का कारण बननेवाला, दुखी नहीं रह सकता। बाहरी दिखाऊ दुखों के बीच भी उसने कुछ ऐसा सुख जाना है, जो उसके भीतर समाने में समर्थ न होकर बाहर बिखर पड़ा है, चट्टान तोड़कर बाहर फूट पड़नेवाले निर्झर के समान, और सदियों तक, सहस्रों, लाखों मनुष्यों को उसमें बहाता, नहलाता, भिगाता, रसमय करता चला गया है। कवि-कलाकार दुखी नहीं हो सकता, क्योंकि वह सृजन सुख जानता है, जिससे बड़ा कोई दूसरा सुख नहीं। दुख-सुख मापने के जो हमारे साँचे हैं उनमें वह नहीं बैठता।—बात लम्बी हो गयी। मि. हेन मेरा मुँह देख रहे थे। (मुझसे सन्तुष्ट थे; शायद विषय-प्रतिपादन की मेरी शक्ति परखने को उन्होंने यह प्रश्न

उठा दिया था।) सहसा बोले, अपनी कोई कविता सुनाओ—किसी का अनुवाद, मैंने सुना है, अंग्रेज़ी में हुआ है।

मैंने उन्हें बताया कि मेरी 'मधुशाला' का अंग्रेज़ी में अनुवाद हुआ है। मौलिक रचना तो मेरी ज़बान पर है लेकिन अनुवाद की एक पंक्ति भी मुझे याद नहीं। मैं आपको अपना एक छोटा गीत सुना रहा हूँ—'निशा निमन्त्रण' से। इसके भाव को बाद में अंग्रेज़ी में समझा सकूँगा। उन्होंने कहा, थोड़ी हिन्दी मैं समझ लेता हूँ। मैंने, 'साथी, सो न, कर कुछ बात।' सुनाया। फिर उसका भाव अंग्रेज़ी में बताया।

मि. हेन बहुत खुश हुए। उन्होंने कहा, अभी तुमने सैफ़ो का नाम लिया था। उसकी कुछ पंक्तियों में बिलकुल इसी गीत के भाव हैं। उन्होंने पहले ग्रीक में उन पंक्तियों को सुनाया, फिर अंग्रेज़ी अनुवाद। सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने कहा, ग्रीक मैं नहीं जानता; सैफ़ो की कविताएँ अनुवाद में भी मैंने नहीं पढ़ीं। अपना गीत लिखते समय मुझे सैफ़ो का ध्यान भी नहीं था। पर जैसा मॉड बॉडकिन ने लिखा है, कवि, और मेरे अनुसार हर भाव-प्रवण व्यक्ति, अपने जीवन की तीव्रतम अनुभूतियों के क्षणों में, किसी अज्ञात संस्कार के द्वारा, जाति अथवा मानव-जाति के समानान्तर मानसिक जगत के साथ साम्य स्थापित कर लेता है, उसी का प्राणी बन जाता है; कभी यह साम्य विशिष्ट मानसिक जगत के साथ भी सम्भव हो सकता है। मैं अपने सृजन-क्षण में सैफ़ो के साथ हो गया हूँगा। मैंने मि. हेन से प्रार्थना की कि वे सैफ़ो की पंक्तियाँ एक बार फिर सुना दें, और आज की हमारी बातचीत सैफ़ो के शब्दों पर समाप्त हो।

चलते समय मि. हेन ने मुझे पढ़ने को एक पत्रिका दी जिसमें ईट्स पर लेख था।

ला. में पुरोहित स्वामी और ईट्स का उपनिषदों का अनुवाद समाप्त किया। पर उसने मुझे इतना मोहा कि जी चाहा एक बार उसे फिर पढ़ डालूँ—कुछ स्थलों से उद्धरण भी लिये। मूल से पढ़ने का अवसर तो अब इस जीवन में क्या मिलेगा। अंग्रेज़ी के द्वारा ही कुछ सीखूँ।

शुक्रवार, 30 मई, '52

उपनिषदों का अनुवाद समाप्त हो गया है। विषय प्रतिपादन की उपनिषदों की अपनी शैली है। प्रश्न-उत्तर की—प्लेटो के कथोपकथन के समान। किसी बात को कितने तरीक़ों से समझाया जाता है। श्वेतकेतु कितनी बार पूछता है और उद्दालक हर बार उसी बात को दूसरी-दूसरी तरह समझाते हैं। शिक्षक और पिता में कितना धीरज होना चाहिए, यह कोई उद्दालक से सीखे। शिष्य एक-दो बार समझाने से न समझे तो शिक्षक क्रुद्ध हो जाता है। उद्दालक क्रोध जानते ही नहीं। अध्यात्म-विद्या सरल नहीं। जब तक श्वेतकेतु पूरी तरह नहीं समझता वह फिर-फिर पूछता है, और उद्दालक हर बार बात को अधिक सरल और ग्राह्य बनाकर बताते हैं। मैत्रेयी के इस उत्तर में कि 'मैं उसे लेकर क्या करूँगी जो मुझे अमर न बना सके!'—भारत की आत्मा अपने सबसे ऊँचे स्तर से बोली है। हमारे सब कामों का यह परीक्षक-मापदण्ड है। जो हम कर रहे हैं, क्या वह हमें अमर बना सकेगा, अमरता की ओर ले जा सकेगा? अगर उत्तर नकारात्मक है तो वह करने योग्य काम नहीं है। हमारे करने योग्य काम केवल वह है जो हमें अमरता की ओर ले जा सके।

याज्ञवल्क्य ने गार्गी को जो उत्तर दिया उसे पढ़ते-पढ़ते मुझे वर्ड्सवर्थ के 'Ode

to Duty' की याद आ गयी।

'Gargie ! at the command of that Root, sun and moon do not clash; heaven and earth do not clash; moments, hours, days, nights, fortnights, months, seasons, years follow their course; rivers issuing from the snowy mountains follow their course to east or west or where you will. At the command of that Root people praise the generous, gods guard the sacrificer, fathers watch the sacrificial offerings !'

वड्र्सवर्थ अपनी 'Ode to Duty' में कहते हैं,

Stern Law giver ! yet dost thou wear
The Godhead's most benignant grace;
Nor know we anything so fair
As is the smile upon thy face :
Flowers laugh before thee in their beds,
And fragrance in the footing treads;
Thou dost preserve the stars from wrong;
And the most ancient heavens, through thee,
are fresh and strong.

दोनों की तुलना करें तो बड़ी समता मालूम होती है। कहाँ उपनिषद् का गायक, कहाँ वड्र्सवर्थ ! परन्तु मॉड वॉडकिन के विचार के अनुसार कविगण अपनी प्रेरणा के क्षण में सामूहिक चेतना, मानवीय चेतना एवं अपने भाव सम्बन्धी परम्परागत रूपकों को सहज ही पकड़ लेते हैं। यह कविता लिखते समय वड्र्सवर्थ की मानसिक अवस्था उपनिषद् के ऋषि की मानसिक अवस्था से एकात्मक हो गयी थी। दोनों के रूपकों में कितना साम्य है। सचमुच 'Ode to Duty' का यह पद लिखते समय वड्र्सवर्थ ने उपनिषदों की ऊँचाई छू ली थी। अंग्रेज़ी साहित्य पढ़ाते समय यदि हम अपने विद्यार्थियों को भारतीय साहित्य के समान स्थलों का संकेत करते चलें तो उनके लिए कितना उपयोगी हो। (हमारे अंग्रेज़ी के शिक्षक भारतीय साहित्य कितना जानते हैं ?) साहित्य की एकता का भी उन्हें आभास होगा। वे देखेंगे कि संसार के सब महान कवि समान भावात्मक स्थितियों में समान रूपकों और शैलियों का उपयोग करते हैं। 'साथी, मो न, कर कुछ बात' के विचार सैफ़ो की एक कविता से मिलते हैं। मेरे जैसे छोटे कवि, यहाँ तक कि साधारण लोग भी कभी-कभी ऊँची उड़ान ले सकते हैं।

उपनिषदों का अनुवाद समाप्त करके मैंने 'Aphorisms from Patanjali' उठाई। योग-सूत्र का अनुवाद है, पुरोहित स्वामी द्वारा; भूमिका ईट्स की है।

भूमिका से नोटस ले लिये।

खाना खाने के बाद मादमोज़ेल वोआज़ेन और मि. लीथान के साथ घूमने गया। लौटकर मैथ्यू काफ़े में मि. क्रिसमस हम्फ्रे का बौद्ध धर्म पर व्याख्यान सुना।

पेलिकन सिरीज़ में बौद्ध धर्म पर उनकी एक पुस्तक हाल ही निकली है। प्रयाग में खरीदी थी, पढ़ी नहीं। कमरे में जितनी जगह थी उससे कहीं ज़्यादा लोग थे। कुछ लोग पीछे खड़े थे। मुझे पता नहीं था कि बौद्ध धर्म में रुचि रखनेवाले केम्ब्रिज में इतने लोग हैं। हम्फ्रे औसत क़द के, बदन से भरे पर मोटे नहीं, पोशाक से टिप-टाप, भाषण प्रवाहपूर्ण, प्रतिपादन में सफ़ाई, आवाज़ में अक़ीदा और

ईमानदारी की ठनक। उनका व्याख्यान सुनकर खुशी हुई।

बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में जो कुछ उन्होंने बताया वह मैंने हिन्दू धर्म के संस्कारों से भी जाना था। कोई बात ऐसी नहीं थी जिसको मेरा मन अस्वीकार करता। भारत से बौद्ध धर्म के लुप्त हो जाने का मुख्य कारण शायद यह था कि बौद्ध धर्म के बहुत-से सिद्धान्त हिन्दू धर्म में मौजूद थे और उसके विशिष्ट सिद्धान्तों को हिन्दू धर्म ने आत्मसात कर लिया।

हम्फ्रे ने बताया : बौद्ध धर्म की दो शाखाएँ हैं—हीनयान और महायान। प्रेरणा दोनों बुद्ध के उपदेशों से लेती हैं। महायान चीन होते हुए जापान में जाकर ज़ेन बुद्धिज़्म में विकसित हुआ। उसका दर्शन उपनिषदों से भी सूक्ष्म है। इसने जापान की सारी संस्कृति को प्रभावित-परिमार्जित किया। उसने कुछ दोषों को भी जन्म दिया—उग्रता और उद्दण्डता को इससे बहुत प्रश्रय मिला। पिछले महासमर में यह दोष अपनी चरम सीमा पर पहुँचा। बौद्ध धर्म जीवन में व्यवहार करने का एक तरीक़ा है। मनुष्य के ऊपर अपने को बनाने और बिगाड़ने का सारा दायित्व है। कोई अन्य शक्ति नहीं जो उसे सहायता दे सके या उसके मार्ग में बाधा बन सके। वह संघर्ष, पौरुष, प्रयत्न का धर्म है; पलायन, पस्ती या नैराश्य का नहीं। जिस समय बुद्ध का जन्म हुआ, हिन्दुत्व पथभ्रष्ट हो चुका था। उसके सिद्धान्त, व्यवहार से कटकर, तर्कों तक सीमित हो गये थे। बुद्ध ने मार्ग दिखाया, चलने की एक विधि बतायी। बौद्ध धर्म में ईश्वर का कोई स्थान नहीं। बुद्ध की पूजा उन्हें ईश्वर मानकर नहीं की जाती। उन्हें केवल प्रबुद्ध माना जाता है। उनके उदाहरण से दूसरे आगे बढ़ना सीख सकते हैं। बुद्ध स्वयं किसी को हाथ पकड़कर ऊपर नहीं खींच सकते। मनुष्य को सब कुछ अपने ही आप करना है। इसी कारण बौद्ध धर्म पुरुषार्थियों, संघर्षशीलों और स्वावलम्बियों का धर्म है। किसी ने किसी प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु से पूछा, 'बौद्ध धर्म क्या है?' उसने कहा, 'Walk on'—चलते रहो। मुझे याद आया, किसी का बताया, किसी वैदिक ग्रन्थ में है—'चरैवेति'—चलते रहो।

मि. क्रिसमस हम्फ्रे ने बताया कि इंग्लैण्ड में बौद्धों की संख्या दिन पर दिन बढ़ रही है। जिन्हें अन्य धर्मों में शान्ति नहीं मिलती वे बौद्ध धर्म में आकर शान्ति पाते हैं। बौद्ध धर्म में सत्य को निर्ममता से कहा गया है—वैज्ञानिक की निर्ममता से। यही कारण है कि जिनका मस्तिष्क अधिक विकसित और जागरूक है वे झूठी आशा से धोखा न खाकर जो संघर्ष अपने सामने है उसे देखते हैं और अपना मार्ग बनाते हैं। मनुष्य जो है, जैसा है, कर्मों के अनुसार बना है; आगे जैसा बनेगा कर्मों के अनुसार बनेगा। जीवन में मनुष्य अपने मस्तिष्क को जिन अनेकानेक भाव-विचारों का क्रीड़ास्थल बनाता है, मृत्यु में वे एकाएक विलुप्त नहीं हो जाते। वे कहीं न कहीं, किसी न किसी निश्चित रूप में प्रतिफलित होते हैं। कर्म के सिद्धान्त को बौद्ध धर्म पूरी तरह मानता है। हिन्दू दर्शन में कर्मों के लुप्त होने की बात भी कही गयी है, कर्म करके भी उससे निर्लिप्त रहने की, एक के कर्म के दूसरे को भी लग सकने की। पर बौद्ध धर्म के अनुसार कर्मों से कहीं छुटकारा नहीं। कर्म और फल में कार्य-कारण का सम्बन्ध है। बौद्ध धर्म स्वतन्त्र, दायित्वपूर्ण, स्वाभिमानी और आत्मविश्वासी लोगों का धर्म है। उसमें किसी की प्रार्थना, पूजा, भक्ति से कुछ नहीं मिलता जब तक कि वह कर्मों में न परिणत हो जाये। बौद्ध भिक्षु पुरोहित नहीं, पादरी नहीं; वे अपने कर्मों को ठीक करने का व्रत लेते हैं। औरों को वे कोई सहायता नहीं पहुँचा सकते जब तक कि वे स्वयं अपनी सहायता करने को तैयार न

हों। बौद्ध धर्म का मुख्य ध्येय है, मनुष्य को उसकी शक्ति से परिचित कराना, उसकी सीमा बताना, उसको लक्ष्य या आदर्श दिखाना। आदर्श स्वयं बुद्ध हैं। प्रत्येक मनुष्य अपनी साधना से स्वयं बुद्ध बन सकता है। बुद्धत्व मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य है।

क्रिसमस हम्फ्रे का व्याख्यान assertive था, जैसे प्राय: सभी धर्म-प्रचारकों का होता है, पर उसमें असहिष्णुता की बू भी कहीं नहीं थी। कट्टरपन था, पर शायद उसे विश्वास की दृढ़ता कहना अधिक ठीक होगा। बाद को लोगों ने प्रश्न भी किये जिनके उन्होंने सन्तोषजनक उत्तर दिये।

शनिवार, 31 मई, '52

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का पत्र मिला। दूसरी बार राष्ट्रपति चुने जाने पर मैंने उन्हें बधाई का पत्र लिखा था।

दिन में यु. ला. में 'Aphorisms of Yoga' पढ़ता रहा। इसके पूर्व मैंने संस्कृत या भाषा के किसी अनुवाद द्वारा भी योग-सूत्र नहीं पढ़ा था। फिर भी मुझे लगा कि जो कुछ इसमें पढ़ रहा हूँ वह सब मैं पहले सुन चुका हूँ। जहाँ भी योग की कोई चर्चा हो पतंजलि के योग-सूत्र का आधार लिये बिना नहीं हो सकती। कानों में पड़ा-सा लगा, 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:' जब पढ़ा Yoga is controlling the activities of the mind. चित्त के तीन गुण सत, रज, तम का ज़िक्र भी भारतीय साहित्य-दर्शन में बार-बार आता है। फिर चित्त की क्रियाओं का वर्णन है। यहाँ तक योग की दृष्टि मनोवैज्ञानिक है। योरोप का मनोविज्ञान यहीं तक आकर रुक गया है। भारतीय मनोविज्ञान चित्त की क्रियाओं के विश्लेषण पर समाप्त नहीं होता। वह उन्हें अनुशासित, संयमित और वशीभूत करने की विधि भी खोजता है। उन्हें वश में करने के दो उपाय हैं—अभ्यास और अनासक्ति (detachment)। चित्तवृत्तियों पर अधिकार की भी कई श्रेणियाँ हैं—संप्रज्ञात समाधि (conscious), सुषुप्त समाधि (unconscious) और पूर्ण समाधि (above both)। चित्त का जो सम्बन्ध मस्तिष्क (brain) और मस्तिष्क का जो सम्बन्ध शरीर से है, उसे भी माना और जाना गया है। 'हठयोग' शरीर पर अधिकार करना सिखाता है और जब तक चित्त की सीमाएँ नहीं पहुँचतीं, वह अपना काम करता जाता है। चित्त के सूक्ष्म क्षेत्र में 'राजयोग' यह भार अपने ऊपर लेता है। राजयोग की समस्या यह है कि कैसे वह व्यक्ति के परिसीमित चित्त को उठाकर सर्वव्यापी के अनन्त चित्त में मिला दे। परिसीमित चित्त में अनन्त बनने की क्षमता है, यह पहले ही मान लिया गया है, वर्ना प्रयत्न का कोई अर्थ न होता। योग इसे मानकर चलता है कि कोई ऐसी वस्तु नहीं जिस पर चित्त हावी न हो जाये। चित्त को वश में करो तो सब कुछ तुम्हारे वश में हो सकता है। इस अवस्था को प्राप्त करने की आठ सीढ़ियाँ हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। पहली पाँच सीढ़ियाँ बाद की तीन सीढ़ियों की तैयारियाँ हैं। यम, नियम आदि से क्या तात्पर्य है इसे विस्तार से बताया गया है। 'धारणा' है किसी वस्तु पर चित्त को स्थिर करना। 'ध्यान' है चित्त और वस्तु का एक हो जाना; 'समाधि' है जहाँ चित्त और वस्तु के एक होने की चेतना भी न रहे—केवल आत्म-चेतना रह जाये।

जब योगी का चित्त इतना सध जाता है कि उसे किसी भी वस्तु पर स्थिर करना सरल हो जाये, अर्थात 'धारणा' की अवस्था से, तब उसमें शक्ति का आना

आरम्भ हो जाता है। और 'समाधि' की अवस्था तक पहुँचकर, जब वह अनन्त चित्त से अपने को एक कर देता है, वह सर्वशक्तिमान हो जाता है। धारणा-सिद्धि से वह भूत, भविष्य, वर्तमान को सामने फैले हुए नक़्शे की तरह देखता है, हवा में उड़ सकता है, देखते-देखते ग़ायब हो सकता है, अपने शरीर को छोड़ दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो सकता है, दूर से दूर की वस्तु ला सकता है, जो साधारण दृष्टि से अदृश्य हैं उनको देख सकता है; आग-पानी पर चलना तो उसके लिए मामूली बात है; कहने का तात्पर्य है, उसे आठों सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, और कोई ऐसा काम नहीं जो वह चाहे तो न कर सके। उसे उस पर अपने चित्त को स्थिर करने भर की देर होती है। ऐसी शक्तियों को प्राप्त कर उनका प्रदर्शन करनेवाला योगी पूर्ण समाधि के पहले ही रुक जाता है। इतना ही नहीं, यदि वह उनसे धन-कीर्ति कमाने अथवा उनका दुरुपयोग करने लगता है तो उसका पतन भी हो जाता है और उसकी शक्तियाँ समाप्त हो जाती हैं। सच्चा योगी इन प्रलोभनों पर रुकता नहीं, क्योंकि पूर्ण समाधि में आने का जो सुख और आनन्द है उसकी तुलना में ये प्रदर्शनकारी शक्तियाँ कुछ भी नहीं हैं। सच्चे योगी को जब ये शक्तियाँ प्राप्त होने लगती हैं तब वह उन पर रुके बग़ैर उस अन्तिम अवस्था को प्राप्त करने के लिए आतुर हो उठता है जिसके आगे कोई सुख एवं आनन्द नहीं है।

योगियों की ऐसी शक्तियों के क़िस्से मैंने लड़कपन से सुने हैं; अन्य धर्मों के नबी और फ़रिश्तों के ऐसे करिश्मों की कहानियाँ भी कम नहीं हैं। ईसा का मुर्दों को जिलाना, बीमारों को अच्छा करना, देखते-देखते ग़ायब होना—इनसे पच्छिमी संसार भी परिचित है। शक्तियों को खोने का उदाहरण सैमसन की कथा है। बालों का तो बहाना मात्र था। उन्हें पच्छिम में miracle या चमत्कार की संज्ञा दी गयी है। उन्हें सम्भव कर सकनेवाले, भगवान का कोई विशेष वरदान अथवा स्वर्ग का कोई ख़ास आशीर्वाद लेकर आये थे। अब वे नहीं आते। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लोग पिछले चमत्कारों को भी मानने के लिए तैयार नहीं। जिसने यह सब बातें लिखीं वह मस्तिष्क-विकार से पीड़ित था अथवा उसने झूठ लिखा।

ऐसी शक्तियों में सहसा विश्वास करने को मस्तिष्क तैयार नहीं होता। पर चित्त को एकाग्र और स्थिर करने से आज भी कुछ ऐसी बातें की जा सकती हैं जो साधारण मनुष्य के लिए असम्भव हैं। ईट्स ने अपने जीवन-चरित में लिखा है कि एक बार लन्दन में वे किसी सहभोज की मेज़ पर बैठे थे। एक आदमी उसी मेज़ पर बैठा हुआ कुछ बात कर रहा था। ईट्स ने एक परचे पर लिखा कि पाँच मिनट के बाद यह व्यक्ति आग लगने का ज़िक्र करेगा। उस परचे को उन्होंने पास में बैठे एक मित्र की प्लेट के नीचे खिसका दिया, आग का ध्यान करना शुरू किया और उसे उस व्यक्ति की वार्ता से मन में सम्बद्ध किया। पाँच मिनट के बाद वह व्यक्ति सचमुच आग पर बात करने लगा। चित्त की इस शक्ति को मान लेना या इसका प्रयोग करना कठिन नहीं है। अगर किसी का चित्त पर वश हो तो वह कुछ इसी प्रकार का काम करके देख सकता है। क्या पतंजलि ने इसी शक्ति के अन्तिम विकास अथवा चरम सीमा की कल्पना की है? यह तो निश्चित है कि पतंजलि ने चित्त की शक्तियों की सीमा नहीं मानी। क्या उनकी सीमा है? यदि नहीं है तो तर्क से जो परिणाम उन्होंने निकाले हैं वे ग़लत नहीं हैं। अगर सीमा है तो कहाँ, इसे अभी योरोप का मनोविज्ञान नहीं बता सका। उसके प्रयोगों ने सदा चित्त की अधिकाधिक शक्तियों का ही सबूत दिया है।

दूसरी बात। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण भौतिक जगत के साथ किसी अभौतिक

शक्ति की दस्तन्दाज़ी नहीं बर्दाश्त कर सकता। क्या ऐसा भी सम्भव नहीं कि योगी का यह सारा व्यापार केवल चित्त के जगत में ही सम्भव हो। उदाहरणार्थ योगी के हवा में उड़ने को ले लें। योगी को बिना सचमुच उड़े हुए भी ऐसा अनुभव हो सकता है कि वह हवा में उड़ रहा है। मैं कमरे में बैठे कल्पना कर सकता हूँ कि मैं केम्ब्रिज के ऊपर उड़ रहा हूँ और ऊपर से, जैसे हवाई जहाज़ से चीजें दिखायी देती हैं, देख भी रहा हूँ। मेरी कल्पना अधिक सशक्त हो तो शायद इस प्रकार के अनुभव का मुझे आनन्द भी आने लगे, पर सारे समय मेरा शरीर कुर्सी पर ही आसीन रहेगा। योगी का अनुभव इसी श्रेणी का, या इससे अधिक गहरा हो सकता है। वह दूसरों को ऐसा दिखला भी सकता है। 'मिस्मेरिज़्म' ने यह सिद्ध कर दिया है कि दूसरों के चित्त पर अंशतः अधिकार पाना सम्भव है। दूसरों की दृष्टि को इस प्रकार बाँधा जा सकता है कि वे देखें कि योगी हवा में उड़ रहा है जबकि सारे समय योगी ज़मीन पर ही बैठा हो। यदि केवल चित्त-जगत में इन शक्तियों का प्रदर्शन सीमित हो तो सम्भव है कि इन पर विश्वास करना मनोवैज्ञानिक के लिए भी कठिन न हो। 'दृष्टि बन्ध योग' के लिए 'डिठ-बँधी' शब्द अब भी भारत में प्रचलित है।

पर सबसे बड़ी बात जो 'पातंजल' में इन शक्तियों के बारे में कही गयी है वह यह है कि वे 'करिश्मा' नहीं है, 'चमत्कार' नहीं हैं, miracle नहीं हैं। वे स्वाभाविक शक्तियाँ हैं। उनके पीछे जादू नहीं है; फ़रिश्ते और देवता नहीं हैं; भगवान जिस अर्थ में उन्हें समझा जाता है, वे नहीं हैं। उनके पीछे है मनुष्य का निर्विकार चित्त, शुद्ध चित्त और शुद्ध चित्त को किसी भी वस्तु-विषय पर स्थिर एकाग्र करने की शक्ति। उनको आप असम्भव उपादान (premises) कह सकते हैं, पर यदि वे सम्भव हों तो परिणाम जो निकाला गया है वही निकल सकता है। योग-शास्त्र जादू की पुस्तक नहीं, गणित की पुस्तक है, विज्ञान की पुस्तक है। ऐसी शक्ति का प्रदर्शन देखकर किसी को आश्चर्य क्यों हो। हाँ, आश्चर्य इस पर हो सकता है कि मनुष्य अपने चित्त और उसे एकाग्र रखने की शक्ति पर कितना अधिकार पा गया है। शेष उसका तार्किक परिणाम है। जब तक मनोविज्ञान चित्त की सीमा निर्धारित नहीं करता तब तक उसकी असीम शक्ति में विश्वास करने का विरोध भी नहीं किया जा सकता। जब तक कोई चित्त की शुद्धता और एकाग्रता का दावा न कर ले, तब तक इन शक्तियों को सन्देह की दृष्टि से देखना अन्याय होगा। एक क्षण के लिए यह मान भी लें कि यह असम्भव है तो भी यह आदर्श अवस्था की कल्पना है; और इससे चित्त को शुद्धता और एकाग्रता की दिशा में बढ़ने की प्रेरणा मिलती है। आधुनिक जीवन की चहल-पहल के साथ इसे पाना असम्भव है। जब जीवन अपेक्षया शान्त था तब भी ऋषियों ने इस प्रकार की साधना के लिए हिमालय की कन्दराओं को खोजा था। कोई भी इन शक्तियों में विश्वास कर सकता है, क्योंकि इसके लिए किसी को अपने विज्ञान-संस्कृत-मस्तिष्क पर दबाव डालकर समझौता करने की ज़रूरत नहीं।

'पातंजल' का पढ़ना उपन्यास पढ़ना नहीं। शाम को दिमाग़ बिलकुल थक गया था। थोड़ी देर लेटा रहा पर मस्तिष्क उसी की समस्या में उलझा रहा। किसी गम्भीर अध्ययन के योग्य नहीं रह गया था। दत्त की एक पुस्तक पड़ी थी, 'The University Hand Book'—उसी को देखते-देखते झपकी आ गयी।

6½ बजे मादमोज़ेल खाने के लिए बुलाने आयीं। बाद को उनके साथ घूमने चला गया। 8½ बजे लौटा।

एक पत्र श्री लालबहादुर शास्त्री को लिखा। उन्होंने पालियामेण्ट में रेलवे-बजट पर हिन्दी में भाषण दिया था। उसका कुछ विरोध हुआ, पर 'टाइम्स' ने उस समाचार को आधे कालम में छापा और शीर्षक में हिन्दी भाषण का उल्लेख किया। शास्त्रीजी के साहसपूर्ण कार्य से मुझे प्रसन्नता हुई। उन्होंने सचमुच शासन में हिन्दी-प्रयोग को कुछ आगे बढ़ाया। अभी तो इस देश के बहुत-से लोग यह भी नहीं जानते कि भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी है, या हिन्दी भी कोई भाषा है। उन्हें मैंने बधाई भेजी। शास्त्रीजी को मैंने लिखा कि यदि हिन्दी को राष्ट्र-भाषा होने का उत्तरदायित्व निभाना है तो देश के उच्च मस्तिष्कों को उसे अपने भाव-विचारों का वाहन बनाना पड़ेगा। जब तक हम यह समझते रहेंगे कि हिन्दी में इन विचारों को प्रकट करने की क्षमता नहीं है, तब तक सचमुच उसमें क्षमता नहीं आ सकेगी। भाषा वह बैल है जिस पर जितना ही बोझा लादो उतना ही वह मज़बूत बनता है। भारतीय विद्वानों को चाहिए कि हिन्दी को जीवन और जगत के समस्त विषयों का वाहन बनाकर उसकी शक्ति बढ़ायें; उसे सर्व-समर्थ बनायें। रेलवे में हिन्दी के साथ बहुत अन्याय हुआ है। मैंने आशा प्रकट की कि शास्त्रीजी की देख-रेख में रेलवे में 'शुद्ध हिन्दी' का प्रयोग बढ़ेगा। लिखकर मैंने सोचा कि 'शुद्ध हिन्दी' से शास्त्री जी घबरायें न। मैंने लिखा कि शुद्ध हिन्दी से मेरा तात्पर्य यह नहीं कि तार घर को 'विद्युत सन्देश वितरण कार्यालय' कहा जाये; भोपाल के स्टेशन पर तार घर के लिए यही लम्बा-चौड़ा नाम लिखा हुआ है। हिन्दी को शुद्ध करने के प्रयत्न में कितनी जगह उसकी चिन्दी उड़ रही है। बाँदा के स्टेशन पर 'पेशाब गृह' लिखा है। तुलसीदास ने 'गिरिजा' के 'गृह' को भी 'घर' कहा है—'सर समीप गिरिजा घर सोहा'। 'गृह' का महत्त्व उन्होंने गुरु के घर को ही दिया—'गुरु गृह पढ़न गये रघुराई।' क्या बुरा था सहज, सुबोध, प्रचलित 'पेशाब घर' या 'पेशाब ख़ाना'—तुलसी ने 'बन्दीगृह' को 'बन्दी ख़ाना' भी लिखा है। मानिकपुर में थूकने के बर्तन पर लिखा था, 'थुकी पात्र'। पात्र के साथ तो मुझे 'पंचपात्र' याद आता है जो पूजा में रक्खा जाता है। 'थूक' के साथ 'पात्र' मेरे दिमाग़ में नहीं लगता। 'पीकदान' सारी दुनिया जानती है। उसके जोड़ के कितने शब्द प्रचलित हैं—पानदान, क़लमदान, हवादान, आगदान, और उसके स्त्रीलिंग रूप में चुनादानी, सुरमादानी आदि। शुद्ध हिन्दी की खोज में लोग 'पात्र' तक पहुँचे। इसे मैं अशुद्ध हिन्दी कहता हूँ। दूसरा नमूना अशुद्ध हिन्दी का वह है जो कचहरियों की नोटिसों में मिलता है—अव्वल दर्जे की फ़ारसी-अरबी, लिखी नागरी अक्षरों में।

रविवार, 1 जून, '52

सुबह देर से उठा। सुबह का आलसी मन अपने-आपको समझा-बुझा लेता है—आज इतवार है, ब्रेकफ़ास्ट साढ़े नौ तक भी मिल सकता है। रोज़-रोज़ तो हफड़ा-दफ़ड़ी रहती ही है, आज तो सब काम ज़रा साँस लेकर कर लो। पहले उठने में ही ज़रा आराम से उठो। कैसा अच्छा सपना आ रहा था !...ज़रा कम्बलों को ऊपर खींच लो और उसी को देखते रहो। बजने दो गिरजाघरों के घण्टों को, ईसाइयों को गिरजाघर बुला रहा है—उठो, तैयार हो, गिरजे आओ। 'पेगन' होने का कुछ फ़ायदा उठाऊँ !...लो घण्टे धीमे पड़ने लगे...नींद फिर आ गयी।

ब्रिस्टल के मिसेज़ एस. एल. मोहन को चिट्ठी लिखी। दत्त के जन्म-दिन पर लिखी कविता भेजी, माँगी थी।

कुछ दिन हुए दत्त ने एक किताब दी थी—'India, Pakistan and the West', by Percival Spear, Fellow, Selwyn College, Cambridge, दत्त के शोध-निरीक्षक। दत्त ने बताया था पाकिस्तान-परस्त हैं, मुसलमान और पाकिस्तान को ईसाइयत और योरोप के अधिक निकट समझते हैं; हिन्दू और हिन्दुस्तान के कटु आलोचक हैं। मैं विरोधी की सम्मति सदा जानना चाहता हूँ—निन्दक को बड़े रखकर भी उसकी उपेक्षा करता हूँ। क्यों? विरोधी विरोध करने के लिए ज़मीन खोजता है, उस पर खड़ा होता है। निन्दक अपनी ज़मीन अपनी मनोवृत्ति को बनाता है। आपका विरोधी आपको बतायेगा कि आप में विष कहाँ-कहाँ पर है; आपका निन्दक अपने अन्दर का ही विष उगलता जायेगा। स्पियर विद्वान हैं, उन्होंने अध्ययन किया है, खोज की है, विचार किया है, तब अपने परिणाम पर पहुँचे हैं। मैं उनकी विचार-शृंखला से परिचित होना चाहता था।

आसमान में छिटपुट बादल थे, सूरज कभी छिपता, कभी निकलता था। हवा बाहर तेज़ चल रही थी। मैं स्पियर की पुस्तक लेकर आरामकुर्सी पर बैठ गया। पुस्तक रोचक लगी।

लंच के बाद लेटकर पढ़ना चाहता था—सो गया।

खाने के बाद मादमोज़ेल के साथ घूमने गया। लूकस का मकान देख आया। कल दिन को उनके यहाँ जाना है।

रात दो बजे पुस्तक समाप्त हुई। उसमें बहुत कुछ वही था जो मैं जानता था; कुछ ऐसा भी था जिसने मुझे सोचने को बाध्य किया। सोचते-सोचते सो गया। जब भी देर से सोता हूँ घर का ख़्याल आ जाता है कि देश में इस समय सुबह हो गयी होगी, बच्चे जग गये होंगे, तेजी तख्त पर बैठी धीमे-धीमे चाय की चुस्कियाँ ले रही होंगी; आँख उनकी होगी सामने फूलों पर—आज फूलदानों को किस तरह सजाना है। फिर कैंची लेकर उठेंगी, फूल-पत्तियों को काटेंगी और फूलदानों को सजाकर कमरे-कमरे में रख देंगी। मेरी स्टडी में वे ज़रूर फूल रखती होंगी। जब-जब सपने में मैं अपने अध्ययन-कक्ष को देखता हूँ, मुझे फूलों का एक छोटा-सा गुलदान मेज़ पर और एक बड़ा-सा पंखे की स्विच के नीचे गोल मेज़ पर दिखायी देता है। मिट्टी सफल होती है जिस दिन वह फूल बनती है; फूल सफल होता है जब वह निर्माल्य बनता है—हाथों से गिरकर चरणों की ओर फिर मिट्टी की ओर—वही अपने घर लौटने का सुख। ध्वनि सफल होती है जिस दिन वह गीत बनती है, गीत सफल होता है जब वह तीर बनता है—'किधों सूर को सर लग्यो'—फूल नीचे गिरकर सफल होता है, गीत ऊपर उठकर—'राग सदा ऊपर को उठता।' तीर आकाश को भेदता है। जो ऊर्ध्वगामी है वही हृदय को बेधता है। जब ऊर्ध्वगामी हृदय को बेधता है तो वह हृदय को ऊपर उठा देता है। निम्नगामी बेधता है तो शरीर को नीचे गिरा देता है। बिना घायल हुए कोई ऊपर नहीं उठता। हृदय ऊर्ध्वगामी का शिकार होता है; शरीर निम्नगामी का। शिकार सबको होना पड़ता है। लाख शरीर का घाव झेलनेवालों में एक हृदय का घाव झेलता है।

घावों से भाले की ओर—spear की ओर।

मुसल्मान पाकिस्तान पाने के लिए जितने उत्सुक नहीं थे उससे अधिक अंग्रेज़ उसको देने के लिए उत्सुक थे। यही ज्ञान (या कोई गुप्त आश्वासन भी?) जिना का बल था।

सारा ब्रिटिश प्रेस जिना के साथ था—ब्रिटिश सरकार के किसी संकेत के

बिना ? विद्वानों और लेखकों को प्रोपेगेण्डा के लिए तैयार किया गया था—दो राष्ट्रों के सिद्धान्तों को तर्कसम्मत ठहरायें, पाकिस्तान की माँग को न्यायोचित। स्पियर की किताब उसी सूक्ष्म और चतुर प्रचार का एक अंग। अब उसका उपयोग ? पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के भेद को बढ़ाना, गहरा करना ताकि वे एक-दूसरे के दुश्मन बने रहें, आपस में लड़कर अपनी शक्तियाँ समाप्त करते रहें, पाकिस्तान छोटा होने से सन्तुलन रखने के लिए सदा ब्रिटेन की मैत्री चाहे, उस पर निर्भर रहे। पाकिस्तान हिन्दुस्तान की तुलना में वर्गमील, जनसंख्या, राष्ट्रीय सम्पत्ति, उद्योग-धन्धे, सैन्यबल, वैज्ञानिक प्रगति सब में कम है, पीछे है; परन्तु उसमें यह विश्वास पैदा किया जाये कि हिन्दुओं के मुक़ाबले मुसलमान आधुनिक संसार को समझने, उसमें सफलता प्राप्त करने, उसकी प्रगतिशील योरोपियन जातियों के साथ काँधा रगड़ने के अधिक योग्य और सक्षम हैं, क्योंकि हिन्दुओं के मान्य, मूल्य, आदर्श समय-जर्जर और अगतिशील हैं। यह पाकिस्तान की जड़ में पानी और हिन्दुस्तान की जड़ में मट्ठा डालने का प्रयत्न है।

अंग्रेज़ भारत आ गये; उन्होंने व्यापार किया; प्रतिद्वन्द्वी योरोपियनों को हराया, आन्तरिक राजनीति में दखल दिया, सेनाएँ रक्खीं, लड़ाइयाँ लड़ीं, राज्य स्थापित किया और एक दिन वे राज्य छोड़कर चले आये। वे अपने साथ पश्चिम का आदर्श, दृष्टिकोण और विचारधारा भी ले गये थे। इन्हें वे वापस नहीं लाये, ला भी नहीं सकते थे। ये आदर्श भारतीय आदर्शों से इतने भिन्न थे कि जब दोनों की मुठभेड़ हुई तो एक प्रकार का मानसिक तहलका मच गया, जो अभी तक शान्त नहीं हुआ, और कब तक चलेगा, अन्त में क्या रूप लेगा, इसे भी कोई नहीं बता सकता। सम्भावनाएँ तीन हैं—पहली, जैसा कि राजा राममोहन राय ने सोचा था कि भारत पच्छिम से नये आदर्शों को तो ले, परन्तु अपने पूर्वी ढाँचे में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन न करे; दूसरी, जैसे कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विचार था कि भारत पूर्व और पश्चिम, दोनों के मान्य, मूल्य आदर्शों का एक सन्तुलित एकीकरण करे जिसमें पूर्व में जो कुछ श्रेष्ठ है उसके प्रति श्रद्धा बनी रहे,-साथ ही पश्चिम में जो सर्वोत्तम है उसके लिए द्वार बन्द न हों। तीसरी, और जिसे सोचकर प्रत्येक योरोपियन मन ही मन प्रसन्न होता है और जो चोर की तरह कहीं न कहीं उसकी तमाम बातचीत में छिपी रहती है कि एक दिन पूर्व अपने समस्त आदर्शों को भूलकर, भुलाकर, मिटाकर पश्चिम के आदर्शों को स्वीकार कर लेगा। एक चौथी सम्भावना तो वह स्वप्न में भी नहीं सोचता कि कभी पूर्व सबल और सशक्त होकर पश्चिम को भी प्रभावित कर सकता है। या पूर्व में भी कुछ है जिसकी पश्चिम को आवश्यकता है और जिसके बिना पश्चिम उतना ही अपूर्ण है जितना पश्चिम के बिना पूर्व—निर्धन और निर्बल।

भारत के भूगोल का वर्णन करते हुए मि. स्पियर कहते हैं कि प्रकृति ने भारतवर्ष को समस्त संसार से अलग तो किया, परन्तु उसे भीतर से भी इतना विभाजित कर दिया कि तमाम देश की एक संस्कृति होते हुए भी वह कभी इतना सशक्त नहीं हुआ कि एक राष्ट्र को मूर्तिमान करे, साथ ही उसने देश को विभिन्न राष्ट्रों में बटने का भी अवसर नहीं दिया, जैसा योरोप ने किया। एकता प्राप्त करने का प्रयत्न सदा रहा है, पर सफलता प्राप्त करने का बल कभी नहीं रहा। जब अंग्रेज़ इस देश को एकता के सूत्र में बाँधने में सफल हुए तो उन्होंने बिलकुल विदेशी उपादानों का प्रयोग किया—विदेशी भाषा, विदेशी शिक्षा, विदेशी शासन और विदेशी कानून का।—

हिन्दुओं के ग्रन्थ और तीर्थ इसके साक्षी हैं कि उन्होंने भारतवर्ष को सदा एक राष्ट्र, एक देश माना है। सम्भवत: चीन को छोड़कर—चीन देश की नहीं चीनी साम्राज्य की सीमा किसी भी समय अधिक से अधिक क्या रही है, यह हमें ज्ञात हो जाये तो उसको भी लेकर—संसार-भर में किसी इतने बड़े भू-भाग को एक देश के नाम से पुकारने का साहस पहले-पहल भारतवर्ष ने ही किया था।

भारतवर्ष का परम्परा-सम्मानित सिद्धान्त यह रहा है कि विविधता में एकता पहचानी और सम्मानी जाये। भारत ने बाहर से ज़ोर-दबाव डालकर एकता स्थापित करने का प्रयत्न कभी नहीं किया। 'Definition towards a Culture' में T. S. Eliot ने भी यही प्रतिपादित किया है। कोई भी व्यापक संस्कृति छोटे-छोटे सांस्कृतिक दलों को एकत्र करके बनती है। दो ही तरीक़े हैं—या तो छोटे-छोटे दलों को एकदम मिटाकर बड़ी संस्कृति में मिला दिया जाये—या छोटे-छोटे दलों को इस प्रकार संगठित किया जाये कि वे अपने को बड़ी संस्कृति का अपरिहार्य और पूरक अंग समझें। रूपक तो शायद उन्होंने यह नहीं प्रयुक्त किया, पर मतलब उनका यही है कि भारत के विभिन्न दलों में व्याप्त भारतीय संस्कृति ऐसी ही है जैसे इन्द्रधनुष के सब रंग अलग होते हुए भी एक हों—एक ही के अविभाज्य, आवश्यक अंग। हर रंग ने औरों से प्रभाव ग्रहण किया है, औरों को प्रभावित किया है, अपनी सत्ता अलग रक्खी है और इन्द्रधनुष से मिला भी रहा है। पहला तरीक़ा अधिक सरल परन्तु दूसरा अधिक श्लाघ्य है। जो भारत की सहिष्णुता है उसे उसकी निर्बलता कहना कहाँ तक उचित है। भारत सम्पूर्ण भारत का एक-छत्र साम्राज्य बनाने में सफल होता तो शायद सारे एशिया के लिए ख़तरा बनता—यही करके अंग्रेज़ सारे संसार के लिए ख़तरा ही तो बन गये थे। एक-दूसरे से डरने और एक-दूसरे को डराने के फलस्वरूप योरोप के छोटे-छोटे हिस्से प्रभु-सत्तात्मक राज्य बन गये हैं। भारत के एक छोटा योरोप बनने को सारी स्थितियाँ, सारे कारण उपस्थित थे; नहीं बना तो इसके लिए किसी विशिष्ट कारण की खोज करनी पड़ेगी। शायद वह भारत की सहिष्णुता और मानवता में मिले, जिसकी अतीत में उसने भारी क़ीमत दी है। भारत के कुछ अपने विशिष्ट सिद्धान्तों ने उसे इतिहास के पृष्ठों पर सजीव रक्खा है। एक दिन की भूल राष्ट्रों को मिटा देती है। हम भूलों का गट्ठर नहीं, पहाड़ अपने सिर पर लादे जो हज़ारों बरसों से चले आ रहे हैं तो हम जाति या राष्ट्र या इन्सान नहीं, हम इतिहास के कोई हैरत-अंगेज़ करिश्मे हैं। हमारी 'भूलों' में हमारे अस्तित्व के कुछ गुर तो नहीं छिपे हैं?

हिन्दुओं के समस्त आचार-विचार-व्यवहार के मूल में स्पियर को चार सिद्धान्त मिले हैं—कर्म, धर्म, वर्ण, माया। कर्म और उसके दूरगामी फल में विश्वास के कारण हिन्दू पुनर्जन्म में विश्वास करता है—पूर्व जन्म के कर्म का फल इस जन्म में, इस जन्म का अगले जन्म में और इसी प्रकार आगे। इस कारण हिन्दू-मस्तिष्क को समय का बन्धन नहीं व्यापता, वह अनन्त में विचरण करता है—उसे जल्दी क्या है, अनन्त जन्म पड़े हैं; फलस्वरूप वह आलसी हो गया है और पश्चिम की भाग-दौड़ की दुनिया में रहने के अयोग्य। वर्ण का अर्थ है रंग, पर उसका विकास जाति-भेद में हुआ है; जाति जन्म पर निर्भर है; जाति से ही धर्म निश्चित है; धर्म का अर्थ कर्तव्य नहीं पेशा है, रहन-सहन का एक बँधा-बँधाया तरीक़ा। जाति और धर्म के बन्धनों को तोड़ने का साहस बहुत कम लोग करते हैं। जाति के निश्चित कामों ने व्यक्ति की क्षमता-अक्षमता के प्रश्न को सदा के लिए मिटा दिया है। पीढ़ी-दर-

पीढ़ी जाति के लिए निश्चित कर्मों को लोग करते चले आते हैं, चाहे उसके लिए वे सक्षम हों या न हों, चाहे उसमें उनकी रुचि हो या न हो। अन्त में आता है माया का सिद्धान्त। संसार सपना है; लक्ष्य है सपने से मुक्त होना; विधि है संसार के प्रति वैराग्य; ऐसा व्यक्ति भौतिक उन्नति प्रगति में मन से, लगन से रुचि नहीं ले सकता।

इन सब बातों को मेरा हिन्दू-मन जितनी गहराई से जानता है, स्पियर भी नहीं जानते होंगे। परिणाम सतही, संकीर्ण-दृष्टि, पक्षपातपूर्ण हैं। स्पियर को कम से कम दो बातें और जाननी चाहिए—हिन्दुत्व में इनके अतिरिक्त और बहुत है जो हिन्दू के जीवन को बनाता, सँवारता, प्रेरित करता है। और यह कि हिन्दुत्व कोई static चीज़ नहीं, गतिशील है और इतना बहुपक्षीय है कि बहुत कुछ परस्पर विरोधी को सहजता से लेकर चलता है। हिन्दू एक बहुत पुरानी जाति है। वह इतिहास की विभिन्न परिस्थितियों से गुज़र चुकी है। जीना और जीने के तरीक़े जानती होगी तभी तो जी रही है। कह सकते हैं बहादुरों की तरह नहीं। कौन जाति सदा से बहादुरों की तरह जीती आयी है? कल तक कहा जाता था ब्रिटिश साम्राज्य में सूर्य नहीं अस्त होता। आज कहा जा सकता है? ईसाइयत को दोष दें? छिछली बात होगी। आधुनिक युग में आधुनिक बनकर जीने की हिन्दुत्व में पूरी क्षमता है—सच्चाई तो समय ही सिद्ध करेगा। नहीं है तो दूसरों से सीखने, प्राप्त करने को उसे कौन रोकेगा? है कोई जाति जिसने दूसरों से नहीं सीखा, लिया, अपनाया, अपना बनाया? यों उसके भानमती के पिटारे में वह सब कुछ है जो उसके लिए ज़रूरी है। जिस समय वह जिस चीज़ की आवश्यकता समझेगा अपनी ही पिटारी से निकालकर दुनिया को चकित कर देगा। हिन्दुत्व की इस शक्ति का पता शायद पश्चिम को नहीं है।

दिन में वंशो का फ़ोन आया। वे केम्ब्रिज आ रहे हैं। दिन-समय बाद को बतायेंगे। भारत जा रहे हैं कुछ समय के लिए, पत्नी-बच्चों को अमरीका में छोड़कर।

सोमवार, 2 जून, '52

सुबह कुछ शापिंग करनी थी। मालूम हुआ आज Whit Monday है—बैंक की छुट्टी है, बाज़ार-दूकानें बन्द रहेंगी। शाम को युनिवर्सिटी के विद्यार्थी कैम के किनारे एक मेला लगायेंगे, सब इम्तहान वग़ैरह आज दिन को खत्म हो जायेंगे और कल जो टर्म ख़त्म हुआ है उसका एक नक़ली जनाज़ा निकलेगा। युनिवर्सिटी के विद्यार्थी गाते हुए निकलेंगे—उसके पीछे-पीछे।

मि. लूकस से मिलने के लिए डिग से पौने दो बजे रवाना हुआ। धूप निकली थी, सुबह से अजीब-सा मौसम था, कभी बादल घिर आते थे और पानी की बौछार पड़ जाती थी, और कभी सूरज निकल आता था। मैं उनके घर पहुँचा तो वे बाहर टहल रहे थे। मुझे देखकर बोले, 'मैं आपका ही इन्तज़ार कर रहा था, यह घर सड़क से अलग है, मैं सोच रहा था कि आपको मकान पाने में दिक़्क़त न हो।' मैंने उन्हें बताया तो बहुत हँसे कि मकान मैं पहले ही देख गया था। मुझे वे अपने गोल कमरे में ले गये। बीच में खाने की मेज़ लगी थी। एक ओर को अँगीठी थी, उसके सामने कुछ आरामकुर्सियाँ लगी थीं। दूसरी ओर को भी बैठने के लिए कुछ सोफ़े और आरामकुर्सियाँ लगी थीं। हम लोग अँगीठी के दूसरी ओर के सेट पर बैठे। बैठते ही मिसेज़ लूकस स्वयं कॉफ़ी की ट्रे लिये हुए कमरे में आयी।

डॉ. लूकस ने मेरा परिचय कराया। थोड़ी देर बैठकर वे चली गईं, माफ़ी माँगकर; उन्हें कुछ काम था। डॉ. लूकस की स्टडी कहीं दूसरी जगह थी, क्योंकि कई बार पुस्तकों को लाने के लिए वे बाहर को गये। पहले उन्होंने पूछा मैं इंग्लैण्ड कैसे आया, यहाँ कब तक रहूँगा और यहाँ क्या विशेष अध्ययन कर रहा हूँ। ईट्स पर मैंने अपने शोध के विषय की चर्चा की। विषय उन्होंने पसन्द किया। उन्होंने कहा कि ईट्स का परा-भौतिक (super-natural) में विश्वास था कि नहीं, कहना बहुत कठिन है। इसके कलात्मक प्रयोग और प्रभाव दोनों को वे जानते थे। उन्हें यह भी मालूम था कि लोग इसमें विश्वास करते हैं। वे स्वयं नाटक के अभिनेता के समान इस संसार में विचरण करते थे। कभी-कभी ऐसा होता है कि अभिनय करते-करते अभिनेता अपने को सचमुच वह पात्र समझ लेता है जिसका अभिनय वह कर रहा है। ईट्स भी ऐसी स्थिति में आ जाया करते थे। वज्ञानिक रूढ़ियों से उन्होंने अपने दिमाग़ को नहीं बाँधा था; वे उसे हर प्रकार के प्रभाव के लिए खुला रखते थे। उस स्वच्छन्दता या असंयम का प्रभाव लूकस की सम्मति में यह हुआ कि जब वृद्धावस्था में दिमाग़ अपने-आप ही कमज़ोर होने लगता है तब उस पर उनका सब अनुशासन छूट गया और वे बहुत-सी ऐसी बातें लिखने लगे जिनको समझना, समझाना, कम से कम योरोप की सन्देहवादी जनता को, असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया। इसका एक अच्छा परिणाम भी हुआ है, लूकस ने तनिक व्यंग्य से कहा, बहुत-से लोग उन गाँठों को सुलझाने में लग गये हैं जो ईट्स छोड़ गये हैं; पर पता नहीं लोग ईट्स की गाँठें सुलझा भी पाते हैं कि नहीं; शायद प्रायः लोग अपनी ही गाँठें सुलझा रहे हैं।—फिर उन्होंने जोड़ दिया, आप मुझे ग़लत न समझियेगा, आपकी जिज्ञासा के लिए मुझे आदर है। रिसर्च में प्रयत्न यह होना चाहिए कि किसी लेखक या कवि पर अपनी ओर से कुछ भी ऐसा आरोपित न किया जाये जिसे उसने सोचा या विचारा ही नहीं। आजकल की बहुत-सी रिसर्च में यही हो रहा है। ईट्स के बारे में मुझे भय है, काफ़ी खींचा-तानी होगी, पर इससे हम सत्य के निकट आयेंगे; कोई दूसरा उपाय भी नहीं है। योरोप में, ख़ासकर इंग्लैण्ड में सृजनशील साहित्य तो कम लिखा जा रहा है, पर साहित्य के बारे में साहित्य की, पैदावार, और उसके बारे में भी आलोचनात्मक साहित्य की उपज ज़्यादा हो रही है। (There is little creative literature but more literature about literature and still more the literature about literature about literature).

फिर मैंने उनसे बतलाया कि ईट्स के बारे में जो मैं अध्ययन कर रहा हूँ उसके अतिरिक्त आधुनिक अंग्रेज़ी कविता का भी अध्ययन करना चाहता हूँ। उस पर उन्होंने कहा कि वर्तमान काल अंग्रेज़ी कविता के लिए बड़े दुर्भाग्य का है। बाइबिल में आपने पढ़ा होगा कि इसराइल की औलाद चालीस बरसों तक रेगिस्तानों में खोई रही—(The children of Israil were lost in the wilderness for forty years.) अंग्रेज़ी कविता भी पिछले चालीस वर्षों से किसी बियाबान में खोई हुई है— मैं किसी मूसा की प्रतीक्षा कर रहा हूँ—(I am looking for some Moses.) अर्थशास्त्र के नियम साहित्य पर भी लागू होते हैं। लोग कविता नहीं पढ़ते तो कविगण लिखते भी नहीं। जो लोग लिखते हैं—अपनी किसी आन्तरिक प्रेरणा से—वे पहले से यह समझकर कि उन्हें कोई नहीं पढ़ेगा। इससे वे अधिकाधिक अपने आन्तरिक भाव-विचार-जीवन-समस्याओं को मुखरित करते हैं। जो पढ़ना भी चाहते हैं वे किसी लेखक में कुछ अपना नहीं

पाते। कवि अपना स्वर छोड़ किसी और का स्वर ही नहीं बन पाता। जनता कवियों से हटती जाती है और कवि जनता से हटते जाते हैं। ऐसी स्थिति में जैसी कविता लिखी जायेगी उसकी कल्पना आप कर सकते हैं। प्रकाशक कविता की पुस्तकें नहीं छापते, क्योंकि कवि अपनी कविता के लिए जनता में कोई रुचि ही नहीं पैदा कर पाता। किसी ने हिम्मत करके कोई पुस्तक छपा दी तो उसके पढ़नेवाले केवल थोड़े-से पेशेवर साहित्यिक और कवि के मित्रगण मिलते हैं। पुस्तक जितनी कम छपती है उसकी क़ीमत उतनी ही ज़्यादा होती है और जितनी ही क़ीमत ज़्यादा होती है उतना ही लोग उसे कम ख़रीदते हैं। एक अजीब-सा शैतानी-चक्कर (vicious circle) बन गया है और किसी तरफ़ से उसे क़ाबू में लाना असम्भव मालूम होता है। कवि और कविता के लिए इससे बढ़कर लज्जा की और क्या बात हो सकती है कि उसे रियायतन पढ़ा जायें। कविता को तो लोगों को अपनी तरफ़ खींचना चाहिए। आज खींचने और खिचनेवाले दोनों का अभाव है।—

बात करते-करते मि. लूकस उठे और अपने कमरे से एक काग़ज लाये। ब्रिटिश इन्सटीट्यूट आफ़ पब्लिक ओपीनियन ने कुछ दिन पहले यह जानना चाहा था कि अंग्रेज़ पढ़े-लिखे लोग किस तरह का साहित्य पढ़ना पसन्द करते हैं। इस काम के लिए समाज की हर श्रेणी और हर अवस्था के 2000 व्यक्तियों से उसने पूछा था कि आप किस प्रकार की पुस्तकें पढ़ते हैं। लोगों का अनुपात रखने में इस बात का ध्यान रक्खा गया था कि समाज में जो उनका अनुपात है। वही इन 2000 व्यक्तियों में भी हो, जिससे ये 2000 व्यक्ति समाज का एक छोटा-सा प्रतिरूप उपस्थित कर सकें। इन्सटीट्यूट ने यही नहीं पूछा था कि आपने क्या पढ़ा, बल्कि यह भी कि आप क्या पढ़ना चाहेंगे। उनके उत्तरों से वह जिस परिणाम पर पहुँचा वह इस प्रकार था। संख्याएँ प्रतिशत हैं—

तालिका

लोग	वर्तमान	भविष्य
कुछ न पढ़नेवाले	47	66
उपन्यास	35	23
जीवनचरित	3	2
युद्ध सम्बन्धी	3	1
यात्रा	2	1
शास्त्रीय विषय	3	1
राजनीति	4	4
धर्म	1	1
कविता	1	0
विभिन्न	1	1
	100	100

कविता अभी 1 प्रतिशत पढ़ते हैं। आगे उसे कोई नहीं पढ़ना चाहता। एक और शून्य का अन्तर, जरा सोचें तो, जितना अर्थ रखता है उतना पहले नहीं मालूम होता।

जिस समाज में कविता के पाठकों का यह हाल हो उसमें प्रकाशकों को क्या

दोष दिया जाये। मुझे तो आश्चर्य है कि ऐसी स्थिति में भी बहुत कुछ कविता प्रकाशित हो रही है। बहुत तरह के प्रयोग हो रहे हैं। बहुत बड़ा प्रयत्न किया जा रहा है कि साहित्य की यह धारा सूखने न पाये। मेकाले के शब्दों में क्या हम सभ्यता के उस विकास पर पहुँच गये हैं जहाँ कविता का ह्रास हो जाता है। कभी यह भी सोचता हूँ कि यदि हमारा विकास ऐसी दिशा में हो रहा है जहाँ आज कविता, कल कला और परसों जीवन की अन्य सुन्दर-सुकुमार वस्तुओं (finer things of life) से हमारा सम्बन्ध छूटता जायेगा तो क्या हमारा विकास ही कुछ ग़लत तरीक़े पर नहीं हो रहा है। शायद हमारा सबसे बड़ा दुर्भाग्य हमारी अति बौद्धिकता और अति वैज्ञानिकता है। कविता लिखने और उसका आनन्द लेने के लिए थोड़ी आदिम प्रवृत्तियों (primitiveness) को सुरक्षित रखने की ज़रूरत है। पूर्व में सौभाग्य से वह बाक़ी है। पश्चिम पूर्व से किसी प्रेरणा की आशा में है। एज़रा पाउण्ड के चाइनीज़ कैन्टोज़ क्या इसी ओर सकेत नहीं करते? ईट्स का पूर्व की ओर झुकाव, टैगोर का पश्चिम में सम्मान क्या इसी प्रवृत्ति के द्योतक नहीं हैं? टी. एस. ईलियट भी बहुत अर्थ-भरी दृष्टि से कभी-कभी पूरब की ओर देखते हैं।

एफ़. एल. लूकस ने बताया कि स्वयं उन्होंने कविताएँ लिखी हैं जो छपने पर 500 पृष्ठों में आयेंगी, पर इतनी बड़ी पुस्तक का दाम 20-25 शिलिंग होगा और इतना देकर कौन इसे ख़रीदेगा। उन्होंने कहा कि आपने राबिन्सन क्रूसो का हाल तो पढ़ा ही होगा। उसने निर्जन द्वीप में 10-12 वर्ष परिश्रम करके पेड़ों को काटकर एक बड़ी नाव बनाई, पर बनाने के बाद उसको अक़्ल आई कि इतनी बड़ी नाव को पानी तक ले जाना असम्भव है। (उसे चाहिए था तब नहर काटकर नाव तक पानी ले आये)। मेरी कविता का भी यही हाल है। राबिन्सन क्रूसो की नाव तो काटी नहीं जा सकती थी, पर मेरी कविता कई छोटे-छोटे भागों में प्रकाशित की जा सकती है। मैं पहले एक छोटा संकलन प्रकाशित करना चाहता हूँ, बाद को पूर्ण संग्रह। उन्होंने मुझे हाल ही प्रकाशित यूनानी कविताओं के अपने अनुवाद का संग्रह दिखाया। आक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस से यूनानी कविताओं का एक संकलन, मय अनुवाद के, प्रकाशित हुआ था पर उनके अनुवादक लगभग 100 विभिन्न व्यक्ति थे। डॉ. लूकस के संकलन में सब अनुवाद उन्हीं के हैं।

मैंने डॉ. लूकस से पूछा कि अंग्रेज़ी में गत्यवरोध होने के बावजूद भी जो कुछ हो रहा है उस पर आपकी प्रतिक्रिया क्या है। उन्होंने कहा कि मैं इन प्रयासों की दाद देता हूँ। मैंने कहा, तो क्या मैं समझूँ कि उनकी उपलब्धि के साथ आपकी कोई सहानुभूति नहीं। उन्होंने उत्तर दिया, मुलायम शब्दों में आप यही कह लीजिए। मैंने फिर पूछा कि क्या आप इस गत्यवरोध से बाहर निकलने का कोई उपाय बता सकते हैं। उन्होंने कहा, कविता का सम्बन्ध सक्रिय जीवन से है। उपन्यास, सिनेमा, टेलीविजन हमारी सक्रियता नष्ट कर रहे हैं। अपने जीवन को उपन्यास बनाने के बजाय हम दूसरों के जीवन की कथा पढ़कर सन्तुष्ट हो लेते हैं। सिनेमा में हम तो गद्दीदार सीट पर बैठे रहते हैं और हमारा मन जीवन की सारी हलचल और चहल-पहल में फ़र्ज़ी हिस्सा लिया करता है, और इस तरह स्वयं कुछ करने की प्रेरणा और उमंग खो देता है। रेडियो और टेलीविज़न के द्वारा बिना अपने कमरे से बाहर झाँके हम दूर-दराज़ के क्रिया-कलाप के द्रष्टा-श्रोता बन जाते हैं। इससे भी अधिक उपहासास्पद क्या होगा कि दो लाख आदमी बैठे-बैठे देखते हैं कि दो दर्जन आदमी एक गेंद को कैसे लात मारते हैं! खुद वे

लात मारते तो उसका कुछ अर्थ भी होता। यह निष्क्रियता शायद हमारी बढ़ी हुई आबादी की माँग है। केवल कुछ लोग सक्रिय हों, बाक़ी उनकी सक्रियता को देखें, स्वयं निष्क्रिय रहें। दुनिया की तमाम चहल-पहल के बावजूद आज जितनी passivity (अक्रियता) जीवन में है उतनी कभी नहीं रही—Formerly people became what they were by doing, today they are becoming what they are by watching and receiving. व्यक्तित्व सजीवता से उगने, उभरने के बजाय साँचे में ढल रहा है। इस प्रक्रिया से सर्जकों का जन्म नहीं होता। साँचे में फ़िट किया हुआ व्यक्ति कहीं भी स्वाभाविक विकास-विस्तार को appreciate नहीं कर पाता। दूसरों को मुखरित करने की बात तो दूर वह अपने को भी व्यक्त नहीं कर सकता। मान लीजिए, वह कर सकता है, पर करेगा तो वह साँचे की ही बात, जो साँचे से बाहरवालों के लिए निरर्थक होगी, साँचों में ढले लोगों के लिए भी। वे साँचों की बात नहीं सुनना चाहते, वे स्वयं उससे ऊबे हैं। युद्ध में बहुत-से सैनिकों ने कविताएँ लिखीं—सेना से दूर लोगों के लिए सेनाई अनुभव बाहरी, और सेना के अन्दर रहनेवालों के लिए इतने नज़दीकी कि वे उनको कल्पना में दुहराने से घबराएँ।

कवि अपने प्रयास से कुछ ऐसा लिखेगा जिसे सारी दुनिया सुनने लगेगी, ऐसा समझना भूल है। दुनिया को कवि को जन्म देना होगा। अन्त में कवि और कविता को दोष देने के बजाय उस समाज को दोष देना चाहिए जिसमें कवि का जन्मना, रह सकना नामुमकिन हो गया है। और तब हमें अपने को देखना पड़ेगा, क्योंकि हम में से हर एक समाज को बनाने के लिए उत्तरदायी है। प्लेटो की रिपब्लिक के समान क्या हम में से हर एक ने कवि को, कविता को अपने जीवन, अपने मनोजगत् से निर्वासित नहीं कर दिया है?

इसके पश्चात् हमारी निजी बातें हुईं। उन्होंने मेरे परिवार आदि के बारे में पूछा, मैंने उनके। उन्होंने बताया कि गर्मियों में वे अपनी कारवाँ-कार लेकर सपरिवार किसी पहाड़ या जंगल की तरफ़ निकल जायेंगे और वहाँ कैम्पों में रहेंगे; ऐसा वे प्राय: करते हैं और फ़ैशन और सभ्यता से दूर रहकर आदिम निवासियों की कुछ आदतों की नक़ल करते हैं।

मुझे छोड़ने के लिए वे दरवाज़े तक आए तो उन्होंने मानतेन का एक वाक्य उद्धृत किया, फिर अर्थ बताया, हमें सभ्य बने रहने के लिए कभी-कभी पशुओं के पास भी जाना चाहिए। मैंने बहुत धन्यवाद देकर उनसे विदा ली।

यु. ला. आकर 'गीतांजलि' में लिखी ईट्स की भूमिका देखी। उनके गीत पढ़े। उपनिषद् और योगशास्त्र से दिमाग़ पर जो ज़ोर पड़ा था कविता ने उसे दूर किया। उपनिषदों का दर्शन यहाँ कवि की भाषा में था। भगवान के संसार को प्रेम करके भी भगवान की भक्ति हो सकती है।

खाना खाने के बाद कैम किनारे विद्यार्थियों का मेला देखने गया—मादमोज़ेल को साथ ले गया।

एकाएक बारिश आई—मेले का रंग बिगड़ गया।

हम भीगते-भागते लौटे। मुझे अपनी एक पंक्ति याद आई 'सखि अखिल प्रकृति की प्यास कि हम-तुम भीगें।' मा. ने अर्थ पूछा। मैंने कहा, Nature wants that we get wet.' बार-बार आई टकार की ध्वनियों ने पंक्ति की सारी मधुरता हर ली। कमरे पहुँचकर मा. ने अँगीठी जलाई, हमने अपने-अपने

कपड़े सुखाए। मा. ने मज़ाक किया Nature wants that we get dried.' फिर कॉफ़ी बनाकर पिलाई।

मंगलवार, 3 जून, '52

सुबह सेन्ट्रल लाइब्रेरी में अखबार देखे।

लौटते समय बाज़ार में टर्म का 'जनाज़ा' भी देखा। परीक्षा-मुक्त विद्यार्थी खुश, हँसते, गाते, उछलते-कूदते! 'जनाज़े' के साथ बारात का वातावरण। भारत में जैसे बूढ़े का जनाज़ा।

दिन-भर यु. ला. में रहा। 'गीतांजलि' के कुछ गीत बाक़ी रह गये थे, उन्हें पढ़ा। फिर 'The Holy Mountain' (Being the story of the pilgrimage to Lake Manas and the initiation on Mount Kailash in Tibet by Bhagwan Shri Hansa, translated from the Marathi by Shri Purohit Swami with an introduction by W. B. Yeats) निकलवाई। कोई 80 पृष्ठ पढ़ सका।

खाना खाने के बाद घूमने के लिए दत्त के घर की ओर चला गया। वे अपने हिन्दुस्तानी पड़ोसी से परेशान थे। उन्हें काम करना होता है और वह खूब ऊँचा करके रेडियो बजाता है। अपने पड़ोसी का ख़्याल रखना अभी हिन्दुस्तानियों ने नहीं सीखा। सामूहिक जीवन के नियमों की महत्ता उन्होंने नहीं जानी। हिन्दुस्तानी सबसे अच्छा तब होता है जब अकेले रहता है—The Indian is at his best when alone. साथ रहना उसे नहीं आता। Love thy neighbour as thyself, यह ईसाइयत की शिक्षा है। योरोप ने इसका जीवन में व्यवहार करना भी सीखा है। मैं अपने पड़ोसी से भारत में कम परेशान नहीं रहा हूँ। पर यहाँ आकर तो लोगों को कुछ सीखना चाहिए। पुरानी आदतें जल्दी नहीं छूटतीं। भारतवासियों को सामूहिक जीवन में सफल होना है तो उसके कुछ नियमों को मानना पड़ेगा। इन नियमों पर योरोप बहुत दिन से चल रहा है और उन्हीं के कारण उनके समाज में सब जगह सुचारुता है। हम दूसरों का ख़्याल रखकर भी कितना अपने लिए कर लेते हैं!

दत्त के यहाँ से रसेल की 'History of Western Philosophy' लाया। ईट्स सम्बन्धी मेरी शोध के लिए भी पश्चिमी दर्शन का इतिहास जानना आवश्यक होगा। कुछ पत्रिकाएँ भी उनके यहाँ से लाया।

बुधवार, 4 जून, '52

ब्रेकफ़ास्ट से असन्तुष्ट (पॉरिज की जगह कार्नफ़्लेक)। कोई तत्त्व नहीं इसमें। लैण्डलेडी पकाने, शायद बर्तन धोने की ज़हमत नहीं उठाना चाहती। डिग छोड़ता नहीं। साथियों का मोह।

सेन्ट्रल लाइब्रेरी में अखबार देखे; दो पत्रिकाएँ भी। अच्छे लेख छपे थे उनमें।

'The World Review' में Princess Odescalchi-Chigi की क़ब्र का एक चित्र देखा। यह Santa Maria del Popolo, Rome में है। पत्थर के ऊपर काम बैरोक शैली में है। भास्कर शिल्प में भी उसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है जिसका चित्रकला में किया जाता है—परस्पर विरोधी तीव्रतम-भाव-रूपों को एक स्थान पर एकत्र कर देना। क़ब्र पर भी शेर, चट्टान, लतिका, धूपदान, वृद्ध-मुख, ओक वृक्ष, उस पर पड़ी अम्बारी, राजकुमारी की आकटि मूर्ति, चिरदिन

(डैनेवाले बच्चे), किताब, देवदूत आदि सब बने हुए थे। बैरोक शैली की ओर योरोप का ध्यान फिर जा रहा है। युग के अनेकानेक विरोधों को एक साथ व्यक्त करने के लिए बैरोक शैली बड़ी उपयुक्त है। बैरोक शैली केवल विरोधों की भीड़ लगा देने में नहीं है। कला का जन्म ही तब होता है जब बहुत-सी परस्पर विरोधी वस्तुओं के बीच कोई एकता का सूत्र स्थापित हो सके। जहाँ एकता नहीं वहाँ कला नहीं। एकता से मेरा तात्पर्य harmony से है—संगति से—चाहे यह एकता कलाकार द्वारा आरोपित ही क्यों न हो। बैरोक शैली को ग़लत समझना आसान है। उसमें सफलता पाना बड़े सशक्त और कुशल व्यक्ति का काम है। जिन चीज़ों की संगति सहज है उन्हें एकत्र कर उनमें एकता का सूत्र देख लेना कठिन नहीं; पर जो वस्तुएँ एक-दूसरे की विरोधी हैं उनमें भी एकता की स्थापना करना प्रतिभावान कलाकारों का ही काम है। बैरोक शैली कलाकार की कठिन परीक्षा है। पर आज कलाकार होना सहज कहाँ है। जीवन, संसार और समय को सम्यक ध्यानगत करना उनके सहस्रों विरोधों के प्रति सचेत होना है। ऐसी परिस्थिति में कलाकार घबराकर प्रायः यह कह उठता है कि कला इस युग के लिए असम्भव है। ऐसी आवाज़ें अक्सर कानों में आती हैं कि यह कविता का युग नहीं, कला का युग नहीं। महान प्रतिभावान बाहरी विरोधों में कोई भीतरी साम्य खोजता है। साम्य है—यह विश्वास रखना पड़ेगा। सारी सृष्टि क्षण-भर में बिखर जाएगी यदि सब कुछ किसी एक ध्येय की ओर नहीं जा रहा है। दार्शनिक के इस विश्वास को कला मूर्तिमान करती है। कला अगर यह नहीं करती तो उसका अस्तित्व किसलिए है?

'The Twentieth Century' में प्रोमीथियस पर अलबर्ट कामू का एक लेख भी अच्छा था। प्रोमीथियस ने मानवों को शारीरिक भोजन दिया, मानसिक स्वतन्त्रता भी दी; इसके लिए वह आज भी दण्ड भोग रहा है। कामू का कहना है कि इस दन्त-कथा का हमारे युग के लिए महत्त्व है। कुछ हमें शारीरिक भोजन तो देना चाहते हैं, पर आत्मिक स्वतन्त्रता छीन कर; कुछ हमें आत्मिक स्वतन्त्रता देते हैं, पर हमारे शरीर की कुछ भी परवाह नहीं करते। मनुष्य में शरीर और आत्मा को अलग नहीं किया जा सकता—अल्प काल के लिए भी नहीं। If we have to resign ourselves to living without beauty and freedom it implies, the myth of Prometheus is there to remind us that we can not serve man at all unless we serve him as a whole. If he is hungry for both bread and heather (symbol of beauty and freedom), and it is true that bread is the more necessary, let us learn to keep alive the memory of the heather.

आधुनिक कविता पर कुछ आलोचनाएँ भी अच्छी थीं। आज के नवयुवक कवियों में 19वीं सदी की सुरक्षा की संचेतना (sense of security) नहीं है; साथ ही उनमें यह भी दम्भ नहीं कि जो वे देख, सोच या विचार रहे हैं वही सब-कुछ और अन्तिम सत्य है। 19वीं सदी की ये दो ख़ास कमज़ोरियाँ थीं। सुरक्षा की संचेतना उनमें नहीं तो उन्हें पराजय के भावों से अभिभूत भी नहीं कह सकते। आधुनिक कवि अपनी सीमा जानता है, विनम्र भी है। वह न तो यही समझता है कि उसकी दृष्टि व्यापक है और वह सब कुछ देख रहा है और न यही कि जो वह देख रहा है उसी को देखना सम्भव है। आलोचक ने यह तो लिख दिया कि आज के कवि कविता को जीवन में उतार रहे हैं, पर जिन शब्दों में उसने यह बात कही है उनसे स्पष्ट है कि ऐसा करना कितना कठिन है, और जो कर सकता है वह

कितनी बड़ी बात कर रहा है। डॉ. लूकस के शब्दों में आधुनिक समाज कविता को जीवन में उतारने का अवसर कवि को नहीं देता। (Society does not allow the poet to live poetry). यह बात इस वाक्य से अधिक स्पष्ट हो जाएगी—"One has the feeling that there is some point in most of these poets going on not only *writing* poetry, but *living* (*if that is still possible*) as poets' which, if you *consider all the present day ircumstances*, is to say the least of it remarkable." ब्रैकेट के तथा इटालिक भागों से यह स्पष्ट है कि आलोचक जानता है कि आधुनिक परिस्थितियाँ कवि के कितनी प्रतिकूल हैं और इनमें कवि-का-जीवन व्यतीत करना किसी के लिए कितना कठिन है। असम्भव ही है।

Poetry and Poeticality पर आई. हैमिल्टन का लेख भी T. C. में देखा। यह लेख वास्तव में अंग्रेज़ी नाटकों पर था। लेखक का कहना है कि आज के अंग्रेज़ी नाटकों में कवित्व की कमी है। एक स्थान पर उसने कहा है कि The play is essentially a poetic form. भारतीय साहित्यशास्त्रियों ने भी नाटक को काव्य की श्रेणी में रक्खा था—काव्येषु नाटकं रम्यम् आदि। आज अंग्रेज़ी के नाट्यकार उसे यथार्थवादी उपन्यास (realistic novel) का निकट सम्बन्धी समझ रहे हैं। लेखक की सम्मति में इंग्लैण्ड का सर्वोत्तम नाटक अमरीका या फ्रांस के सर्वोत्तम नाटक से टक्कर नहीं ले सकता। नाटक के सन्दर्भ में कवित्व गुण क्या है और इसे कैसे लाया जाए इसे स्पष्ट करते हुए लेखक ने एक बड़ी अच्छी बात कही है—"In the diary which he kept while making his film La Belle et la Bete Jean Cocteau said this or something like it : *to achieve poetry, do not aim directly at it.* But something must be aimed at. Cocteau aimed at clarity, sharpness of contour...No poet, says T. S. Eliot in his 'Poetry and Drama' (Faber 1951) has begun to master dramatic verse until he can write lines, which like those in Hamlet are transparent." ईलियट की यह पुस्तक मैंने ख़रीदी, पढ़ी थी। तब भी इस ओर ध्यान गया था, transparent बहुअर्थी शब्द है।

कविता तीव्रतम स्थितियों की वाणी है। नाटक में स्थितियाँ उसकी परिधि में आकर तीव्रतम हो जाती हैं। जब 10-15 या 20-25 वर्ष में फैले हुए जीवन को 2-3 घण्टे के अन्दर कसना पड़ेगा तो स्वाभाविक है कि उस काल की तीव्रतम स्थितियों को ही ग्राफ़ पर बिन्दु के समान रखकर नाटक की रेखा खींची जा सकेगी। इससे तो साधारण जीवन भी कवित्व की तीव्रता या सघनता (intensity) पा जाएगा। फिर नाटकों के लिए ऐसे पात्रों और घटनाओं को चुनना पड़ता है जिनमें इतनी व्यापकता हो कि उनमें सब दर्शक अपने को या अपने पर घटित को देख या पा सकें। नाटक का सारा ढाँचा कविता का ही क्षेत्र है। बहुत सफल नाटक काव्य ही हैं। यथार्थवादी नाटक बहुत सफल नहीं हो सके। काव्य-नाटकों की ओर लेखकों का ध्यान फिर गया है। कविता ही नाटक की स्वाभाविक भाषा है, बल्कि कविता को वहाँ एक और कठिन परीक्षा से गुज़रना पड़ता है। कविता को कविता नहीं लगना चाहिए। यदि कविता अपने गुणों के कारण पाठक या दर्शक का ध्यान अपनी ओर खींच ले तो नाटक को असफल बना देगी। नाटक में कविता के दिखावटी और बाहरी गुणों की आवश्यकता नहीं। नाटकों में कविता का

आकर्षण उसकी नग्नता में है उसके वस्त्राभूषणों में नहीं। (मेरा 'नग्न' वही जो ईलियट का 'transparent')। सफल नाटक ही उसकी व्याख्या है। नाटक में कविता जीवन से मिलकर एकात्म हो जाती है। अगर पात्र और कथानक ही कवित्वपूर्ण नहीं तो शब्दों के सहारे उसे काव्यमय बनाना असम्भव हो जाता है। यह घटनावश ही नहीं है कि कालीदास और शेक्सपियर महान कवि और महान नाट्यकार हैं। शकुन्तला की कथा की कल्पना में ही कालीदास की 95 प्रतिशत प्रतिभा लगी है। भाषाबद्ध करने को केवल 5 प्रतिशत पर्याप्त थी। ऐसी बात शेक्सपियर के बारे में कहने में शायद कुछ हिचक हो। यह सर्वविदित है कि शेक्सपियर ने प्रायः कथानक नहीं रचे, जाने-माने, बने-बनाए कथानकों का ही उपयोग किया है। फिर भी मैं अपनी स्थापना दुहराने का साहस करूँगा। यह बड़ा रोचक अध्ययन होगा कि पुराने कथानकों को शेक्सपियर ने, थोड़ा-बहुत ही सही, कहाँ-कहाँ बदला। शेक्सपियर की काव्य-प्रतिभा के खरे सबूत शायद हमें वहीं मिलें। गणित से ऐसी बातों की व्याख्या नहीं हो सकती। पर संख्या से कुछ बातें अधिक स्थूल रूप में सामने आती हैं। संक्षेप में जब जीवन काव्य बनता है तब गीत का जन्म होता है और काव्य जब जीवन बनता है तब नाटक की उत्पत्ति होती है। हर यात्रा घर लौटने पर ही पूर्ण होती है—साधारण यात्रा हो, जीवन की यात्रा हो, कविता की यात्रा हो। कविता जीवन से निकलती है, जीवन में होकर चलती है और अपना वृत्त पूरा कर फिर जीवन को लौट जाती है। इसी लौटने की सन्धि पर नाटक का जन्म होता है।

अपने बारे में सोचता हूँ। अभी तक मेरी कविता गीतों की ही मंज़िल तक पहुँच सकी है। क्या अभी काव्य-यात्रा के केवल पहले पड़ाव तक पहुँच सका हूँ? ('पड़ाव'—क्या इसी से कि वहाँ पहुँचकर 'पड़' जाया जाता है?) क्या आगे प्रगति का मार्ग खुलेगा? या यहीं से मेरी वाणी प्रस्थान-स्थल की ओर लौट जाएगी? क्या मैं कविता का यात्रा-शिथिल किन्तु श्रम-गम्भीर, अनुभूति-प्रोज्ज्वल, समय-संस्कृत स्वरूप देख सकूँगा जब वह लौटकर फिर से जीवन का आलिंगन करेगी? तब समस्त जीवन एक महाकाव्य-सा लगेगा—समस्त विश्व ही—वैदिक ऋषियों की अनुभूति—'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' ('देवस्य' है या 'विश्वस्य'? —ठीक याद नहीं) अर्थ स्पष्ट है—भगवान का यह विश्वरूपी महा-काव्य देखो जो न जीर्ण होता है न मरता है।

डेढ़ बजे यु. ला. गया। 'The Holy Mountain' समाप्त हुई। पुस्तक कुछ ख़ास नहीं जंची। कैलाश-यात्रा का एक शुष्क, नीरस वर्णन है। सम्भवतः परा-भौतिक घटनाओं ने ईट्स को आकर्षित किया होगा। इसे पढ़ने के पश्चात् उन्होंने 'मेरु' नामक रचना की थी। Peter Ure की 'Towards a Mythology' (Studies in the poetry of W. B Yeats) और ईट्स की 'Per Amica Silentia Lune' निकलवाई। Ure की पुस्तक आरम्भ की। ईट्स का रचनात्मक और उन पर आलोचनात्मक साहित्य साथ-साथ अध्ययन करना चाहता हूँ। मि. हेन ने Per Amica पर विशेष ज़ोर दिया था, ईट्स के परा-भौतिक विचारों के सम्बन्ध में।

विश्वनाथ दत्त अपने एक मित्र मि. चेहर को ले आए। ईरानी हैं। विश्वनाथ ने 'उमर ख़ैयाम' की पाण्डुलिपि देखी। शिकस्ता का हाथ वे नहीं पढ़ सकेंगे। चेहर की सहायता लेंगे। चेहर ने एक और बात बताई—तीन गिनी में पाण्डुलिपि की फ़ोटो निगेटिव में मिल सकेगी। भारत में डेवलप करा छपा सकते हैं। चार्ज अधिक

नहीं। नक़ल में ग़लती भी रह सकती है, फ़ोटो में नामुमकिन। फ़ोटो लेने का ही तै किया। पर अब मेरे दिमाग़ में और चीज़ें हैं।

आज शाम कैम नदी दर मैड्रिगल गाने का मेला था। मादमोज़ेल और लीथान को मैं साथ ले गया। हम लोग किंग कालेज के सामने नदी के किनारे जाकर बैठे। दोनों किनारों और पुलों पर भीड़ थी। कोई चार-पाँच हज़ार औरत-मर्द होंगे। आश्चर्य यह था कि बच्चा एक भी नहीं था मेले में। ऐसे अवसरों पर जो तरह-तरह के रंगीन कपड़ों की बहार अपने देश में दिखाई देती है वह यहाँ कहाँ! शोर-गुल का तो नाम नहीं था, न धक्का-मुक्की का। जब नदी पर मैड्रिगल पार्टी ने गाना शुरू किया तब तो एकदम शान्ति छा गई, सब बुत की तरह, जो जहाँ खड़े सो खड़े, जो जहाँ बैठे सो बैठे। नदी बहुत कम चौड़ी है। इतनी नावें आकर जमा हो गईं कि एक किनारे से नाव-ही-नाव लाँग दूसरे किनारे तक आ-जा सकते थे। जो गीत गाए जाने को थे उन्हें एक पुस्तिका के रूप में छाप दिया गया था—दाम 1 शि.। दो गीत मुझे बहुत प्रिय लगे। एक में ग्रामीण सौन्दर्य, भोलेपन और सादे जीवन के प्रति आकर्षण दिखाया गया था। यह देखकर बहुत खुशी हुई कि मेक-अप, दिखाव-बनाव, धन-लिप्सा, कृत्रिमता और ऐशोइशरत की अनबुझ तृष्णा के बीच भी, स्वाभाविकता, सरलता, सुकुमारता और प्रकृति-प्रेम के लिए मानव-हृदय में कहीं स्थान बाक़ी है।

I care not for these ladies,
Who must be wooed & prayed;
Give me kind Amaryllis,
The wanton country maid.
Nature Art disdaineth;
Her beauty is her own,
Her when we court & kiss,
She cries : 'Forsooth, let go !'
But when we come where comfort is,
She never will say, 'No !'
If I love Amaryllis,
She gives me fruit and flowers;
But if lwe ove these ladies,
We must give golden showers.
Give them gold that sell love:
Give me the nut-brown lass, who when we court etc.
The ladies must have pillows
And beds by strangers wrought:
Give me a bower of willows,
Of moss & leaves unbought,
And fresh Amaryllis,
With milk and honey fed, who, when we court etc.

दूसरे गीत में युद्ध के प्रति घृणा दिखाई गई थी, जो प्रेमी और प्रेमिकाओं को अलग करता है और लाखों नवयुवकों को उनके प्रिय देश से दूर ले जाकर उसकी बलि चढ़ा देता है।

O Polly dear, O Polly, the rout has now begun,
And we must march away at the beating of the drum;
Go dress yourself all in your best, and come along with me,
I'll take you to the cruel wars in High Germany.

O Harry, O Harry, you mind what I do say,
My feet they are so tender I cannot march away,
And besides, my dearest Harry, though truly I love thee,
I am not fit for cruel wars in High Germany.

I'll buy for you a horse, my love, and on it you shall ride;
And all my heart's delight shall be in riding by your side;
We'll call at every ale-house, and drink when we are dry,
So quickly on the road, my love, we'll marry by and by.

O cursed were the cruel wars that ever they should rise
And out of merry England press many a lad likewise !
They pressed young Harry from me, likewise my brothers three,
And sent them to the cruel wars in High Germany.

अंग्रेज प्रायः अपने मनोभावों को व्यक्त नहीं होने देता। वह उन्हें भीतर ही भीतर पी जाता है। उस भीड़ में कितनी ही लड़कियाँ होंगी जिनके प्रेमी, पति, भाई युद्ध में गए और नहीं लौटे। इस गीत ने उनके हृदय को कितना कचोटा होगा। उनके छिपाने के प्रयासों के भीतर भी उनकी भावुकता की एक झलक मेरी आँखों ने पा ली। हर गीत के पश्चात् करतल-ध्वनि होती थी, जितनी देर तक इस गीत पर हुई उतनी और किसी पर नहीं।

मेरे विचार में ऐसे गीत से युद्ध के प्रति घृणा और शान्ति के प्रति प्रेम का जितना प्रचार होता है उतना बड़ी-बड़ी कान्फ्रेंसों और प्रस्तावों से नहीं। कला का प्रचार कितना शक्तिशाली होता है ! शायद इसी कारण कुछ लोगों ने प्रचार के लिए कला का आश्रय लिया है। जब प्रचार के लिए कला को पिछुआया जाता है तब वह दूर-दूर भागती है। मुझे विश्वास है कि ऊपर का गीत किसी शान्ति सम्मलन के प्रस्ताव को मुखरित करने के लिए नहीं लिखा गया। उसके पीछे कोई आन्तरिक प्रेरणा है, कोई वेदना है, कोई टीस है। युद्ध की विभीपिका ने सचमुच किसी का हृदय विदग्ध किया है और उसी ताप से यह गीत निकल पड़ा है। अब जो चाहे शान्ति के लिए इसका उपयोग कर ले। दुर्भाग्यवश आज शान्ति का गीत वह समझा जाता है जिसमें रूस की प्रशंसा और अमरीका को दो-चार गालियाँ हों। शान्ति लानी है तो शान्ति की स्थापना मानव हृदय में करनी होगी और उसे छूना विशुद्ध कला के द्वारा ही सम्भव है। प्रचार से मस्तिष्क छुआ जा सकता है, हृदय नहीं। मैं अपने कम्यूनिस्ट मित्रों से कहता हूँ कि आजकल मैं शान्ति के गीत लिख रहा हूँ तो उनकी बाँछें खिल जाती हैं। पर जब उनको मालूम होता है कि मैं अपने प्रेम के गीतों को शान्ति का गीत समझता हूँ तब वे निराश हो जाते हैं। वे समझते हैं कि शान्ति का प्रचार घृणा के गीतों द्वारा होगा, प्रेम के गीतों द्वारा नहीं। सच तो यह है कि युद्ध और शान्ति का निर्णय आज जिन शक्तियों को करना है वे

गीतों से बहुत दूर हैं। पर शान्ति यदि कोई अवस्था है जिसके लिए मानव प्रयत्न-शील है तो प्रेम के गीत उसे इस दिशा में कुछ बल अवश्य देंगे, कम से कम उसके विरुद्ध तो न खींचेंगे। ईट्स ने अपने एक जरनल में लिखा है, "All literature created out of a conscious political aim in the long run creates weakness by creating a habit of unthinking obedience. Literature created for its own sake, for some eternal spiritual need, can be used for politics. Dante is said to have unified Italy. The more unconscious the creation the more powerful.

अन्तिम गीत जब गाया जा रहा था तब नावें किंग कालेज ब्रिज से क्लेयर कालेज ब्रिज की ओर चलीं। उन्हें रंग-बिरंगी कन्दीलों से सजाया गया था जिनकी परछाइयाँ पानी में पड़कर बड़ा मनोरम दृश्य उपस्थित कर रही थीं। 10 बजने को थे, पर अभी तक शाम का-सा उजाला था। शामें बड़ी लम्बी होती हैं यहाँ गर्मियों में। मुझे एक बार प्रो. विली ने बताया था कि नारवे या स्वीडन में 12 बजे रात को बिना किसी रोशनी के आदमी पढ़-लिख सकता है—इतना उजाला रहता है गर्मियों में।

रात वंशो का फ़ोन आया। केम्ब्रिज नहीं आ सकेंगे। 7 को वे भारत के लिए रवाना हो रहे हैं। 5 को मुझे एक दिन के लिए लन्दन बुलाया है। 5 को बेनीपुरी के केम्ब्रिज आने का समाचार मिला था। लन्दन पहुँचकर उनका पता लगाऊँगा।

गुरुवार, 5 जून, '52

केम्ब्रिज से 1 बजे की गाड़ी से चलकर 2 बजे लन्दन पहुँचा (लिवरपूल स्ट्रीट)। वंशो प्लेटफ़ार्म पर मिले—तीन बरस बाद उन्हें देखा, अधिक परिवर्तन नहीं, स्वस्थ, सफ़ेद बाल काले। यह कैसे हुआ। वंशो ने बताया कि अमरीका ने एक बिजली की कंघी निकाली है जिससे सफ़ेद बाल काले हो जाते हैं।

वंशो से मिलने के लिए डॉ. रोज़ारियो ने अपने कमरे में एक चाय-पार्टी दी थी। वंशो मुझे भी लिवा ले गये। परस्पर परिचय, चाय, बात। चलने का समय आया तो मिसेज़ बोस ने मुझसे एक कविता की फ़रमाइश की। सुनायी—'साथी, सो न, कर कुछ बात'। और फ़रमाइश—। दूसरी कविता सुनायी—'तन के सौ सुख सौ सुविधा में मेरा मन बनवास दिया-सा'। बिलकुल न समझनेवाले, कम समझनेवाले, अच्छी तरह समझनेवाले—सभी तरह के लोग थे। कुछ लोगों ने प्रस्ताव रक्खा, इण्डिया हाउस में एक बड़े पैमाने पर मेरा काव्य-पाठ रक्खा जाए।

वंशो मेरे साथ रात को एक ड्रामा देखना चाहते थे—The Love of Four Colonels. मि. नाग देख आये थे, देखने को सिफ़ारिश की थी। विंढम थियेटर में था। पहले हमने जाकर टिकट लिये और सीट पक्की की। फिर Royal Academy of Arts Diploma Gallery आये।

वहाँ लियोनार्डो डा विंची की पाँचवीं जन्म-शताब्दी के उपलक्ष में उनके रेखा और रंग-चित्रों की प्रदर्शनी हो रही थी। ऐसा विज्ञापित किया गया था कि यह उनके चित्रों की सबसे बड़ी प्रदर्शनी है जैसी आज तक कहीं भी आयोजित नहीं की गयी। रंग-चित्रों में 'The Last Supper'—जिसमें ईसा मसीह अपने बारह शिष्यों के साथ भोजन की मेज़ पर बैठे हैं—सबसे बड़ा था; सबसे अधिक प्रसिद्ध भी है। मूल चित्र किसी गिरजाघर की दीवार पर है। यह उसकी प्रतिलिपि है। ईसा ने खाने की मेज़ पर यह कहा है, तुममें ही एक ऐसा है जो सुबह होने से पहले

मुझे धोखा देगा। इस पर बारहों शिष्यों की भाव-भंगिमा दिखलाई गयी है। ईसा प्रशान्त हैं। शेष विभिन्न मुद्राओं में हैं, भ्रम, भय, संशय, आशंका, शोक, अचरज, अविश्वास, जिज्ञासा आदि की। जूडस भी चित्र में है---उसके मन का चोर पकड़ गया है। वही धोखा देनेवाला था। यह एक चित्र साबित करने के लिए पर्याप्त है कि विंची की प्रतिभा महाकाव्यात्मक (epical) थी। चित्र क्या है, एक पूरा नाटक है—महाकाव्य है—भावों का आर्केस्ट्रा। उनके अन्य चित्र गीत के प्रतिरूप हैं—'मोना लीसा', 'लीडा और स्वान', 'सेंट सिबैस्टियन' आदि। मोना लीसा का मौलिक चित्र पेरिस में है—लूव्र में। सुना है उसके सामने हर समय 40-50 आदमियों की भीड़ लगी रहती है, और वह अपनी मुसकान में कोई ऐसा रहस्य छिपाए खड़ी है कि कोई उसे नहीं जान पाता, सब उससे पराजित लौट जाते हैं। सेंट सिबैस्टियन का केवल आकृति चित्र है। बैरोक शैली में उनके बलिदान का जो चित्र फ़िट्ज़ विलियम म्यूज़ियम, केम्ब्रिज, में है वह और ही चीज़ है। वह भी नाटक हो गया है। विंची के चित्र में केवल सेंट की दिव्यता का आभास होता है। 'लीडा और हंस' में, हंस में वासना और लीडा में लज्जालु समर्पण (hesitating surrender) का भाव है। लीडा हेलेन की जननी थी, हंस उसका जनक। हेलेन ने हंस से उसकी गर्दन का लोच पाया था। हमारे साहित्य में उसकी चाल का सौन्दर्य देखा गया है—'हंसगमनि तुम नहिं बन जोगू'। लीडा और हंस का एक प्रसिद्ध चित्र माइकेल ऐंजीलो का भी है। ऐंजीलो स्वच्छन्दतावादी थे, रोमाण्टिक; विंची संयम-नियमवादी, क्लासिसिस्ट। लीडा और हंस के चित्रों में दोनों ने अपनी-अपनी प्रवृत्ति का अनुसरण किया है। ऐंजीलो के चित्र में लीडा और हंस सम्भोग की अवस्था में हैं। विंची ने मर्यादा की रक्षा की है। लीडा नग्न है, लज्जा से उसकी आँखें झुकी हैं, हंस उसके समीप आ रहा है, उसका चुम्बन ले रहा है, लीडा ने हंस की गर्दन में हाथ डाल दिया है। नियन्त्रण-हीनता जो स्वतन्त्रता, स्वच्छन्दता, शक्तिमयता बन जाये उसका भी एक सौन्दर्य है--तूफ़ान का, बिजली का, जलप्रपात का। नियन्त्रण जो संयम, सन्तुलन, मर्यादा में परिवर्तित हो जाये वह कम शक्तिमयता का सबूत नहीं देता—ऋतुओं के परिवर्तन का, फूलों के विकास का, सितारों की चाल का—धीर, गम्भीर, नियमित। अनियन्त्रण जब नपुंसक और शक्तिहीन होता है तब वह उच्छृंखलता बन जाता है, नियन्त्रण जब नामर्द और निर्बल होता है तब दासत्व। कला में नियन्त्रण और अनियन्त्रण दोनों का स्थान है, केवल उस अवस्था में जबकि एक में गरिमा और दूसरे में उद्दामता हो। अशक्त अपने अनियन्त्रण अथवा नियन्त्रण से गुण्डपन अथवा गाँडूपन को जन्म दे सकता है, कला को नहीं। दोनों चित्रों को मैंने देखा है, दोनों पर मुग्ध हुआ हूँ। किसकी तारीफ़ करूँ—'सिवा कौ बखानौं कै बखानौं छत्रसाल कौं'।

विंची के रेखा-चित्रों में कुछ को छोड़कर प्रायः उनके प्रयोग और अभ्यास हैं। विंची संयमवादी थे, इस कारण हर चित्र के हर भाग और हर अंग को एक विशेष अनुपात में, एक विशेष नाप से, एक विशेष कोण पर बनाते थे। एक चित्र घोड़े की टाप का था, चारों ओर से रेखागणित की-सी रेखाओं से घिरा। मुझे हैरानी हुई देखकर कि लियोनार्डो डा विंची जैसी दानवी शक्ति और दैवी प्रतिभावाले व्यक्ति को भी सृजन करने के लिए कितने अभ्यास और श्रम की आवश्यकता होती है। मैंने अपने जीवन में क्या साधना की है। प्रतिभावान ही साधना भी कर सकते हैं। साधना प्रतिभा का विश्वास है। अप्रतिभावान को लगता है—मेरी साधना से भी कुछ बनने का नहीं; क्यों न जीवन के अवसरों का जो

थोड़ा-बहुत आरामदेह उपयोग हो सकता है, कर लें। कोई भी साधना जल्दी परिणाम नहीं दिखाती। साधना की पहली सीढ़ी है केवल साधना के लिए साधना करना। साधना सब्र माँगती है। मुझे याद आया किसी ने कहा था, सब्र ही प्रतिभा है। Patience is Genius.

विंची के अन्य चित्रों से उनकी बहुमुखी अभिरुचि और जिज्ञासा का पता लगा। उनके रेखा-चित्रों की एक चित्रावली ली—3 शि. 6 पे. में। 'Last Supper' को हमने एक बार फिर देखा और उसकी स्मृति सँजोए हुए लौटे। रास्ते में हमने एक जगह खाना खाया। 8.15 तक विंढम थियेटर पहुँच गए। जगह मंच के निकट थी। नाटक में अंग्रेज़, अमरीकन, फ्रेंच और रूसी चार कर्नलों का प्रेमादर्श दिखाया गया था। हास और व्यंग्य-प्रधान नाटक था—मनोवैज्ञानिकता को लिये हुए। रूसी कर्नल का काफ़ी मज़ाक बनाया गया था। जब वह बोलता था कुछ ऐसी बात करता था कि सारे दर्शक हँस पड़ते थे। ऐसा लगता था कि उसका मस्तिष्क एक ही दिशा में काम करता है, स्वतन्त्रता के साथ सोचने की उसमें शक्ति ही नहीं। क्या साम्यवाद मनुष्य को रूढ़ विचारों की ऐसी कठपुतली बना देता है? यह तो मानवता के प्रति बड़ा भारी अन्याय होगा, मानवता के विकास के विरुद्ध बड़ा भारी षड्यन्त्र। क्या खाना, कपड़ा और सिर पर छप्पर की क़ीमत में उसे आत्मिक स्वतन्त्रता गिरवी रखनी पड़ेगी? साथ ही जीवन की ये मूलभूत आवश्यकताएँ न पूरी हुईं तो आत्मिक स्वतन्त्रता का मूल्य भी क्या होगा?—आज मानवता के सामने ये दो गम्भीर प्रश्न हैं। दुनिया के दो बड़े दल हमें आधा-आधा हल दे रहे हैं। मनुष्यता पूरा हल माँगती है। इसके बिना वह बच नहीं सकती। नाटक बराबर रुचिकर रहा। सशक्त कला प्रश्न उठाती है। सोचने को विवश करती है। लगभग 11 बजे नाटक समाप्त हुआ।

हम लोग घूमते-घामते ट्राफ़ाल्गर स्क्वायर पहुँचे और एक बेंच पर बैठकर तीन बरस की आपबीती कहने लगे। स्तम्भ-आसीन नेलसन की मूर्ति पर प्रकाश पड़ रहा था। फ़ौआरे ज़ोरों पर चल रहे थे; मौसम अच्छा था। बड़ी देर तक हम लोग बैठे बातें करते रहे। वंशो ने भी यही राय दी कि मैं केम्ब्रिज में दो वर्ष रहकर यहीं से पी-एच. डी. के लिए थीसिस प्रस्तुत करूँ—देश में न सामग्री, न निर्देशन, न काम करने की सुविधा, न वातावरण। उनसे मैंने अपनी कविताओं के अनुवाद माँगे। मेरा तो ख़्याल था कि वह सब वंशो की लापरवाही से खो गया है। उन्होंने कहा, खोया नहीं, सब रक्खा है। वादा किया कि भेज देंगे, पर जब भेजें; वादा दस बार कर चुके हैं। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने मेरे बारे में कुछ ऐसी बातों का संकेत किया जो कई कानों-ज़बानों से होती बड़े विकृत रूप में उन तक पहुँची थीं। मैंने उनसे कहा, वंशो, इसे बिलकुल भूल जाओ, इसमें राई बराबर सच नहीं। पर मेरे मन को बड़ा धक्का लगा। सोचा, मनुष्य कितना छिछला होता है! प्राय: उसमें पानी होता ही नहीं—वह होता है बंजर, ऊसर, सूखा। जब उसे किसी दूसरे की बातें मिल जाती हैं तो वह उन्हें उछालता फिरता है। लोग दूसरों की ही बातें प्राय: करते हैं। ज़्यादातर लोगों के पास कहने को अपना कुछ होता ही नहीं, क्या करें। ओह, मनुष्य कितना कंगाल, निर्धन, नंगा होता है! मेरा मन उचट गया। मैंने कहा, वंशो, अब मैं अपने कमरे जाना चाहता हूँ, बहुत थक गया हूँ। उन्होंने इण्डियन स्टूडेन्ट्स होस्टल में एक रात के लिए एक कमरा मेरे लिए ठीक करा रक्खा था। ट्यूब-रेल से रसेल स्क्वायर आया; वंशो डा. रोज़ारियो के यहाँ चले गये। बिस्तर पर गया तो नींद ही नहीं आ रही थी। जी

चाहता था कि कुछ लिखकर अपने मन को हल्का करूँ, पर काग़ज़ की एक चिट भी अपने पास न थी।

शुक्रवार, 6 जून, '52

सुबह होस्टल में कई परिचित लोग मिले। बेनीपुरी का पता पूछा, वे पास के ही हैमिल्टन होटल में ठहरे हैं। उनके यहाँ पहुँचा। 10 नं. कमरे में थे। दरवाज़ा खटकाकर भीतर गया—'हो न दस नम्बरी, इसीलिए तुम्हें दस नम्बर का कमरा हर जगह मिलता है।' बेनीपुरी हजामत बना रहे थे। कहने लगे, कल मैं केम्ब्रिज गया था; तुम न मिले तो बड़ी निराशा हुई। मैंने कहा, तुम इतनी दूर से इंग्लैण्ड आ गए तो मैं केम्ब्रिज से लन्दन नहीं आ सकता।—बेनीपुरी सोशलिस्टों द्वारा संयोजित पेरिस में होनेवाले सांस्कृतिक स्वातन्त्र्य सम्मेलन में भाग लेने के लिए पार्टी की ओर से आए थे। सम्मेलन समाप्त होने पर लन्दन चले आए। 10 जून को वापस जाएँगे। आधे घण्टे उनसे बात कर मैं इण्डिया हाउस चला गया। वंशो से वहाँ मिलना था।

वंशो को भारत ले जाने के लिए कुछ सामान ख़रीदना था। हम एक दूकान से दूसरी दूकान घूमते रहे। पहली बार वे दानव-दूकानें देखीं जहाँ आप जो भी ख़रीदना चाहें ख़रीद सकते हैं। क्या आयोजना है क्या संगठन, क्या प्रबन्ध—मैं तो देखकर दंग रह गया।

केम्ब्रिज जाने के लिए मुझे साढ़े चार की गाड़ी पकड़नी थी। वंशो से विदा ले, बेनीपुरी से मिलता मैं स्टेशन पहुँचा, गाड़ी छूट गई थी। दूसरी गाड़ी से चलकर साढ़े सात बजे केम्ब्रिज पहुँचा। मि. मलेटका ने खाना दे दिया, गो डिग के शेष सदस्य खाना ख़त्म कर चुके थे।

रात एक कविता लिखने बैठ गया। विचार लन्दन में उठा था।

कोई दस पंक्तियाँ लिखी होंगी कि विश्वनाथ दत्त आ गए। अपनी एक समस्या लेकर आए थे। केम्ब्रिज मजलिस के चुनाव में सभापति पद के लिए खड़े होना चाहते थे, पर दो ही चार लोगों से मिलकर अनुभव कड़ुआ हुआ, कोई मुँह पर कुछ कहता है, पीछे कुछ और; कोई किसी और की पार्टी का है पर उनके साथ रहना चाहता है सिर्फ़ इस बात को देखने के लिए कि वे क्या कर रहे हैं; कोई एक साथ ही कई लोगों से वादा किए हुए है। अपनी पत्नी से जब उन्होंने सलाह ली तो उन्होंने कहा, चुनाव के दलदल में न पड़ो, इससे पढ़ने-लिखने में ख़लल पड़ेगा। —दत्त का विचार है कि मजलिस अनधिकारियों के हाथों में जा रही है जो इसका दुरुपयोग करेंगे।

मेरी सलाह लेना चाहते थे। मैंने कहा, चुनाव लड़ने के लिए एक ख़ास तरह की मनोवृत्ति चाहिए, जो अपना काम निकालने के लिए मौक़े-मौक़े पर झूठ-सच सब बोल सके, जिसका दिमाग़ शराबी का हो और जिसकी तबीयत जुआड़ी की, वही चुनाव सफलतापूर्वक लड़ सकता है। अपने को आप देखें, तौलें; अगर आप ऐसे हैं—मैं मज़ाक नहीं कर रहा हूँ—तो आप इसमें अपना पाँव डालें। वरना आप इससे अलग रहें। केम्ब्रिज मजलिस का क्या होगा, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी का क्या होगा, सिटी का क्या होगा ! आप कुछ कर सकते हैं तो करें। शहर के अन्देशे से क़ाजी का दुबला होना मेरी समझ में नहीं आता। या तो अन्देशे को चुनौती दें, या अन्देशे को मन से हटा दें।—दत्त अभी नवयुवक हैं। अपने जीवन के विषय में कोई ध्येय नहीं निश्चित कर सके हैं। कभी सोचते हैं कालेज में प्रोफ़ेसर बनेंगे, कभी

सरकारी नौकरी का सपना देखते हैं। कभी राजनीति में घुसना चाहते हैं। कैम्ब्रिज के चुनाव में वे पार्लियामेण्ट में अपने चुनाव का श्रीगणेश देख रहे हैं। जाते-जाते कहने लगे, कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि जीवन किधर जा रहा है। मैंने अपनी कविता की एक पंक्ति दुहराई—'है एक कहीं मंजिल जो मुझे बुलाती है'। एक बार इस कविता का असर उन पर देख चुका था। पर आज वे बहुत झुँझलाए हुए थे, बोले, एक मंजिल तो मौत ही है। मैंने कहा, अगर मौत भी हो तो उसके लिए जीवन-भर की तैयारी करनी पड़ती है। मौत सबकी एक तरह नहीं होती। चन्द बरदाई ने कहा है 'म्रत सुधरे सब सुद्धरै', अर्थात् अगर मौत सुधर गई तो सारा जीवन सुधरा हुआ समझो। क्या गांधीजी की मृत्यु एक घटना मात्र थी। उन्होंने तमाम जीवन इस प्रकार की मौत पाने की साधना की थी। सबको ऐसी मौत नहीं मिलती। मनुष्य जिस प्रकार मरता है वह उसके जीवन का एक नमूना होता है। मैंने सुना है, मैं जानता नहीं कि यह कहाँ तक ठीक है, कि जिना को मरते समय जीभ का कैंसर हो गया था। उन्होंने इस प्रकार की मौत के लिए अपने को तैयार किया था। कौन किस तरह मरता है ?—यह इससे निश्चित होता है कि कौन किस तरह जीता है। अगर मौत ही मुझे बुलाती है तो मैं चाहूँगा कि मेरी मौत सुन्दर हो, मधुर हो, कवित्वमय हो, गीतमय—सूरदास की मृत्यु के समान। सूरदास मृत्युशय्या पर पड़े हैं, गा रहे हैं, 'खंजन नैन सुरँग-रस माते···सूरदास अंजन गुन अटके नतरु कबै उड़ि जाते···और लो उनके प्राण-पखेरू उड़ चले। सूरदास की सारी साधना का फल था इस तरह मरना।

दत्त चलते-चलते बोले, मैं आया था तो आप कविता लिख रहे थे; आप अपने प्रेरणामय स्वरों में बोल रहे हैं। मैं जाता हूँ, मैं चाहता हूँ कि इन्हें आप अपनी कविता के लिए उपयोग करें।

मैंने सोचा, इस पर तो सचमुच एक कविता लिखी जा सकती है, पर अभी तो जो लिख रहा हूँ उसे पूरा करूँ।

मैं दो बजे रात तक अपनी कविता में व्यस्त रहा। समाप्त कैसे करूँ, समझ में नहीं आ रहा था। सोचा सो जाऊँ, रात में अक्सर समस्याओं का हल मिल जाता है।

शनिवार, 7 जून, '52

विश्वनाथ दत्त ने 9 बजे आने को कहा था। युनिवर्सिटी रजिस्ट्री उनके साथ जाना था। मैं उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। सामने मेरे कल की अपूर्ण कविता थी। अभी हाथ लगाने का समय नहीं था, पर उसके अन्त का आभास मुझे हो गया था।

विश्वनाथ के साथ मैं रजिस्ट्री पहुँचा। मि. हारवे ने 10.45 पर मिलने का समय दिया। दत्त यु. ला. चले गए। मैं किंग कालेज के सामने कैम किनारे एक बेंच पर जाकर बैठ गया। रजिस्ट्री से कुछ नियमादि मिले थे; उन्हीं को देखता रहा। समय पर मि. हारवे के पास गया। उन्होंने कहा, डाक्टरेट के लिए रिसर्च की अर्जी इण्डिया हाउस के द्वारा आनी चाहिए, फ़ार्म भी वहीं से मिल जाएगा। मिसेज़ मलेटका से एक सर्टिफ़िकेट लेना पड़ेगा कि मैं 16 अप्रैल से बराबर केम्ब्रिज में रहा। भारत के प्रोफ़ेसरों का सर्टिफ़िकेट इस सम्बन्ध में चाहिए कि ईट्स पर मैं पहले काम कर चुका हूँ। मि. हेन का सर्टिफ़िकेट चाहिए कि वे अप्रैल से मेरा पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। और मुझे 1000-2000 शब्दों में एक लेख लिखना पड़ेगा कि ईट्स के किस पक्ष का मैं अध्ययन करना चाहता हूँ और अन्त में क्या सिद्ध करने का मेरा लक्ष्य है। मेरी अर्जी पहले डिग्री कमेटी में जाएगी जो 20 जुलाई को होगी।

10 जुलाई तक मुझे सब कुछ तैयार करके रजिस्ट्री के दफ़्तर में दे देना चाहिए। रिसर्च बोर्ड की मीटिंग किसी समय अगस्त में होगी।

वहाँ से मैं यु. ला. गया। किताबें मेरी रक्खी थीं, पर अपूर्ण कविता काँटे की तरह चुभ रही थी, जब तक वह पूरी न हो जाए मैं कुछ भी कर सकने में असमर्थ था। बैठकर उसे पूर्ण करने लगा। पुस्तकालय एक बजे बन्द हो गया। कविता फिर भी पूर्ण नहीं हुई। विश्वनाथ बाहर मिल गए। उनके साथ शनिवार-पुस्तक-बाज़ार होते कमरे आया।

लंच के बाद कविता समाप्त करने बैठा। लगभग एक घण्टे में कविता पूरी हुई। मन शान्त हुआ। डेढ़ घण्टे को मैं सो गया। उठकर उसे साफ़ किया। कुछ संशोधन भी किए। 6.30 पर खाना खाया। कमरे में आया ही था कि घोरपदे आ गए, केम्ब्रिज मजलिस के प्रधान,—कहने के लिए कि आज 8.30 से मजलिस में मेरा कविता-पाठ है। काफ़ी समय था—तेजी को पत्र लिखा।

समय से मजलिस पहुँचा। मिस फ़्यू और एक अंग्रेज़ दम्पती के अतिरिक्त सब हिन्दुस्तानी थे। पाकिस्तानी कोई नहीं था। हिन्दी में कविता पढ़ी जाय तो मुसलमान उसे क्यों सुने, हिन्दी भी कोई भाषा है। हिन्दुस्तान की भी राष्ट्रभाषा उर्दू होनी चाहिए थी। इस प्रकार के विचार पाकिस्तानियों में हैं। यह असहिष्णुता कितनी अस्वस्थ है। पर जो हिन्दुस्तान-पाकिस्तान में हो रहा है उसकी बू-बास यहाँ भी आती है। पहले मैंने अपनी नई कविता सुनाई, फिर 'मधुशाला' फ़रमाइश पर, फिर 'मिलन यामिनी' से 'जीवन की आपा-धापी' और अन्त में 'तुम गा दो मेरा गान अमर हो जाए'।

साढ़े दस बजे वहाँ से लौटा। पढ़ने पर नई कविता में एक-दो और संशोधनों की ज़रूरत मालूम हुई। साढ़े बारह बजे तक कविता से ही उलझा रहा। अन्त में मुझे सन्तोष हो गया कि कविता को जो रूप लेना था अब वह ले चुकी। शीर्षक दिया 'कड़ुआ अनुभव'—वंशो की बात सुनने पर जो मेरा मूड बना था वह तो इसमें बिम्बित है ही, चुनाव के कड़ुए अनुभव से जो मनःस्थिति दत्त की बनी थी वह भी इसमें झलक उठी है। हर कविता की एक नियति होती है और उसे जैसा रूप लेना होता है उसके अनुरूप परिस्थितियाँ बन जाती हैं। एक बजे के क़रीब सोने गया।

रविवार, 8 जून, '52

देर से आँख खुली। इतवार समझकर घबराहट नहीं हुई। कविता की एक साफ़ कापी तैयार की। कविता कितना उलझा लेती है। मुझे इसके हमले से आगाह रहना चाहिए। ख़तरनाक चीज़ है। हर वक़्त अपने को याद दिलाते रहो, यहाँ किसलिए आए हो, किसलिए हो; कविता तो घर पर भी लिख सकते थे, शोध का काम यहीं कर सकते हो। तीन दिन से क्या किया है?

एक बार सिलसिला टूटता है तो फिर से शुरू करने में दिक़्क़त होती है। सिलसिला टूटने का भी एक सिलसिला चल पड़ता है।

लंच के बाद थोड़ी देर के लिए सो गया। जैसे आज दिन को सोने से पिछली कई रातों को देर से सोने या उखड़ी-उखड़ी नींद सोने की कमी पूरी कर लूँगा। बहुत अच्छी नींद आई। कविता समाप्त करने के बाद मुझे हमेशा गहरी नींद आती है, जैसे कोई सिर पर चढ़ा भारी कर्ज़ उतारकर सोये। 'एक दिन मैंने लिया था काल से कुछ श्वास का ऋण, आज भी उसको चुकाता ले रहा वह क्रूर गिन-गिन,

ब्याज में मुझसे उगाहा है हृदय का गान उसने···।' पर यह ब्याज कम होता नहीं जान पड़ता। 'दिन चलि गए ब्याज बहु वाढ़ा।' 'अनृण्ये' होकर क्या कभी चादर तानकर सो सकूँगा। ब्याज 'गान' के रूप में ही नहीं है मुझ पर। वह तो सुख से अदा किया जा सकता था। और भी कई रूपों में है—उसे अश्रु, स्वेद, रक्त से अदा करना होगा। पर रुको···तुम कविता की दुनिया में फिसलने को ही हो।

5 बजे नींद खुली। कुछ पत्रिकाएँ कई दिनों से पड़ी थीं देखता रहा। खाने की घण्टी के पाँच मिनट पहले मादमोज़ेल ने दरवाज़ा खटखटाया—आप तो ग़ायब ही हो गए। उन्हें पिछले दो-तीन दिनों का हिसाब दिया। कोई इतनी भी केयर करे तो मन को बड़ा अच्छा लगता है। यहाँ कोई किसी की परवाह नहीं करता। हर आदमी एक बड़े अजीब ढंग से अकेला है। पर अकेलेपन के खिलाफ़ किसी के मुँह पर शिकायत नहीं है। सबने उसे अनिवार्य तथ्य के रूप में स्वीकार कर लिया है और आत्म-निर्भर होने को तत्पर है।

खाने के बाद कहीं घूमने जाना चाहता था। आज दिन-भर कमरे से बाहर नहीं निकला था, पर वाहर पानी बरस रहा था, बादल घिरे थे। डिग में ही रहने का निश्चय किया।

थोड़ी देर बाद मि. बेग आ गये। हमारी युनिवर्सिटी के विद्यार्थी थे, अंग्रेज़ी और फ़ारसी में एम. ए. किया था, लॉ भी। विभाजन के बाद पकिस्तान चले गए। वहाँ सरकारी नौकरी में हैं। आजकल ईस्ट बंगाल में पोस्टेड हैं। कोलम्बो प्लान में केम्ब्रिज आए हैं। राज्य-प्रबन्ध का कोर्स कर रहे हैं। इलाहाबाद के पुराने परिचितों के बारे में पूछ-ताछ करते रहे। वे चाहते थे कि उनके साथ किसी बार या सैलून में चलकर कुछ पियूँ। मैंने अपनी मजबूरी बताकर उनसे माफ़ी चाही। पेरिस होकर आए थे। पेरिस की बहुत तारीफ़ कर रहे थे—वहाँ की इमारतों, मूर्तियों में जो उच्चकोटि की कला है वह लन्दन में नहीं। वहाँ की आर्ट गैलरी के आगे लन्दन की आर्ट गैलरी बहुत 'पुअर' है। जीवन का प्रवाह फ़्रांस में इंग्लैण्ड की तुलना में अधिक मुक्त है। वे क़रीब एक-डेढ़ घण्टे बैठे रहे।

गये तो मादमोज़ेल की विज़िट रिटर्न करने के लिए मैं उनके कमरे में गया। कुछ देर बैठा। कॉफ़ी पी। मैं ज़्यादा देर बैठना चाहता था। दिन को सोया था, जल्दी तो नींद आनेवाली नहीं थी, पर उनकी मेज़ पर कुछ काम फैला था। कमरे आकर मैंने 'कोलोनेड' से ईट्स पर एक लेख पढ़ा। नोट्स भी लिये।

सोमवार, 9 जून, '52

रायल इण्डिया सोसाइटी के सेक्रेटरी मि. रिश्टर का पत्र मिला। सोसाइटी की ओर से आक्सफ़र्ड में जून के अन्तिम सप्ताह में एक उत्सव होनेवाला है। उसमें मुझे निमन्त्रित किया गया था। मेरे वहाँ रहने और आने-जाने का खर्च सोसाइटी देगी। इसकी चर्चा इण्डिया हाउस में मि. नैस्टर ने की थी। शायद उन्हीं लोगों के कहने से यह निमन्त्रण आया है, क्योंकि मैं तो वहाँ किसी को जानता नहीं था। दूसरा पत्र तेजी का था। सन्तोष हुआ कि बच्चे स्वस्थ-प्रसन्न हैं, किसी ख़ास तरह की तकलीफ़ नहीं है। यहाँ रिसर्च करने के सम्बन्ध में जो पत्र मैंने लिखा था, शायद वह अभी नहीं पहुँचा। उसके उत्तर की प्रतीक्षा है। अगर तेजी मान जाती हैं कि दो वर्ष यहाँ ठहर जाऊँ तब तो यहीं से पी-एच. डी. लेकर जाऊँगा, वर्ना छः महीने यहाँ, 6-7 महीने आक्सफ़र्ड रहकर, 1 महीना योरोप में घूम भारत लौट जाऊँगा।

10 बजे मि. हेन से मिला। उन्होंने कहा, इण्डिया हाउस से फ़ार्म आने पर भरकर, ज़रूरी सर्टिफ़िकेट लगा, साथ में काम की आयोजना पर लेख लिखकर 10 जुलाई तक युनिवर्सिटी रजिस्ट्री को भेज देना चाहिए। अपना सर्टिफ़िकेट वे पोस्ट से भेज देंगे। परीक्षा के कारण आजकल बहुत व्यस्त हैं। मौलिक सर्टिफ़िकेट भारत से मँगाने को कहा, शायद उन्हें देखने पर यहाँ ज़ोर दिया जाए। फिर अध्ययन के बारे में पूछा कि कैसा चल रहा है। उन्होंने राय दी कि अंग्रेज़ी और आइरिश दन्त-कथाओं का परिचय भी मुझे होना चाहिए। ईट्स के लिए आयरलैण्ड की दन्त-कथाओं का कई प्रकार से महत्त्व था। उनके साहित्य को पढ़कर इसका विश्लेषण करना होगा। इंग्लैण्ड की दन्त-कथाओं की एक पुस्तक का नाम भी उन्होंने बताया।

यु. ला. गया। 'English Legends' by Henry Bett, published by Batsford निकलवाई; उसी को ढाई बजे तक पढ़ता रहा। मि. हेन किसी समय पुस्तकालय आए थे; उनसे भेंट हो गई, मैंने उनसे कहा, आपकी बताई पुस्तक मिल गयी है और मैं उसे पढ़ रहा हूँ। पुस्तक शाम को ख़त्म हुई।

इंग्लैण्ड की चप्पा-चप्पा ज़मीन कहानियों से सम्बद्ध है। कहानियाँ या तो ऐतिहासिक हैं या फिर दन्त-कथाएँ। इन्हीं कथाओं के द्वारा जातियों का सम्बन्ध अपनी मातृ-भूमि से जुड़ता है; इन्हीं के कारण मातृ-भूमि प्यारी बनती है; इन्हीं के कारण निर्जीव, निर्वाक धरती के साथ मनुष्य का रागात्मक सम्बन्ध बनता है। रस्किन ने इंग्लैण्ड का कोई ग्राम देखकर कहा था कि जैसे ही मैं यह सोचता हूँ कि यह भू-भाग नई दुनिया का कोई हिस्सा है वैसे ही इसका सारा 'चार्म' (जादुई आकर्षण) समाप्त हो जाता है। तब न उसके फूलों में परिचित सुगन्ध रहती है, न उसके नदी-नाले में बहुत बार सुनी कलकल ध्वनि, न उसकी हवा में पहचाना-सा परस। अपने सारे इतिहास को छोड़कर वह केवल जड़ ज़मीन का टुकड़ा मात्र रह जाता है। इंग्लैण्ड के नगर सिर्फ़ घरों के समूह नहीं हैं। हर नगर में कोई पुराना गिरजाघर है, जिसके बनने की कथा प्रसिद्ध है। कहीं कोई पुराना क़िला है जिसमें कोई लार्ड या बैरन रह चुका है और उसकी दया-कृपा अथवा उसकी निर्दयता की कहानियाँ मशहूर हैं; कहीं कोई फाटक बना है जिसके नीचे से क्रूसेडरों की सेना, या कोई राजा अथवा पादरियों का कोई दल कभी निकला था—और यह इतिहास समय-समय पर स्मरण किया जाता है। कितने स्थानों पर देवों और परियों की क्रीड़ाएँ हुई हैं, कितनी जगहों पर भूतों, प्रेतों, चुड़ैलों की अद्भुत लीलाएँ। इन सब कथाओं के कारण निवासी अपने ग्राम या नगर को एक व्यक्तित्व प्रदान करता है, उसे एक विशिष्टता देता है। इन्हीं की वजह से उसका सम्बन्ध अपने समय से ही नहीं उस सब समय और युग से हो जाता है जिससे होकर उसका ग्राम या नगर निकला है। इन दन्त-कथाओं को, चूँकि वह अपने बालपने से सुनता है, इसलिए वे उसके मनोजगत् अथवा भावजगत् की अटूट कड़ियाँ बन जाती हैं। उनके स्मरण से वह प्राचीन के वैचित्र्य-वैभव से भरे काल में विचरण कर प्रायः अपने संघर्ष के क्षणों में शान्ति पाता है। उनका केवल पलायनीय उपयोग नहीं है। कभी उस ग्राम-नगर पर कोई संकट आए, या आक्रमण हो या होने को हो तो वह कुछ ईंट-पत्थरों के लिए नहीं लड़ता, बल्कि उन तमाम सम्बन्धों के लिए लड़ता है जो किसी और जगह नहीं बनाए जा सकते। ईंट-पत्थर के घर तो कहीं खड़े किए जा सकते हैं, पर इतिहास, दन्त-कथाएँ इतनी जल्दी नहीं खड़ी की जा सकतीं। शरणार्थी या निष्कासित अपनी भूमि से हटाए जाने पर जिस चीज़ का

अभाव सबसे अधिक अनुभव करता है वह यही अमूर्त सम्बन्ध है जो वह नयी भूमि पर नहीं पाता। ऐसे सम्बन्धों से जुड़ा स्थान ही वास्तव में राष्ट्र-प्रेम की इकाई है। जब हम कहते हैं कि हमारा देश हमें प्यारा है तब देश का कोई भाग जिससे हमारा विशेष सम्बन्ध होता है हमारे मन में रहता है। विज्ञान के युग में इन दन्त-कथाओं पर प्रायः हँसा जाता है, पर इनकी महत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता। ये जाति के जीवन में कोई विशेष काम करती हैं, इस कारण इनकी रक्षा की जानी चाहिए।

भारत बड़ा लम्बा-चौड़ा देश है। इतिहास से हर भाग यहाँ सम्बद्ध नहीं, पर दन्त-कथाओं से पग-पग बँधा है। अंग्रेज़ तो अपनी दन्त-कथाओं को पुस्तकों में सुरक्षित कर रहे हैं और हम विज्ञान की रोशनी में बहुत कुछ भूल रहे हैं। धर्म से सम्बद्ध स्थलों को भूलना सरल न होगा, परन्तु ग्राम-ग्राम में प्रचलित देव, दानव, परी, प्रेतों, पीर, पहलवानों, सन्त, साधकों की कहानियों की रक्षा यदि समय से न की गई तो वे शीघ्र लुप्त हो जायेंगी। जब तक हम यह निधि खो न देंगे तब तक शायद इसकी महत्ता समझेंगे भी नहीं। पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी ने बुन्देलखण्ड की कुछ प्रचलित दन्त-कथाओं को लिखवाया था। पढ़ने में वे बड़ी रोचक थीं। हमारी उमर चाहे जितनी हो जाए, हममें कहीं दादी-की-कहानी सुननेवाला बालक छिपा रहता है। तर्क के युग में बे-तर्क की बातों का अपना आकर्षण रहेगा। देश की समस्त ऐसी कथाओं का संकलन होना चाहिए। देश के हृदय-मन-मस्तिष्क के इतिहास की यही सच्ची सामग्रियाँ हैं। कोई ऐसी प्रेरणा दे कि लोग जगह-जगह अपने चारों ओर बिखरी ऐसी कथाओं को संचित करने लगें। भारत की समस्त ऐसी कथाएँ लिख डाली जाएँ तो वे अलिफ़लैला की कहानियों से कहीं अधिक रोचक और विनोदपूर्ण होंगी और हमारी कल्पना-शक्ति को जगाने और उसे जीवित रखने में अभूतपूर्व योग देंगी। एक-दो आदमियों के बस का यह काम नहीं। इसके लिए तो लेखकों की एक सेना चाहिए। प्रायः लोग पूछते हैं, हम क्या लिखें। अब तो कोई नवयुवक मेरे पास आकर पूछेगा तो मैं उससे यही कहूँगा, कि अपनी कापी और कलम लेकर किसी गाँव में चले जाओ और वहाँ जो भी कहानियाँ किन्हीं खँडहर, खोह, पुराने पेड़ों, टीलों, कुओं आदि से सम्बद्ध हों उन्हें लिख डालो। हमारे गाँवों में ऐसी सब जगहों के साथ कोई न कोई कथा जुड़ी रहती है। कभी हमारे देश में भी उन्हें संकलित किया जाएगा। सहस्रों वर्षों से जिह्वा और कान के सहारे सुरक्षित इस निधि को मानवता यों ही न खो जाने देगी।

खाना खाकर घूमने गया।

तेजी और मार्जरी को पत्र लिखा।

मार्जरी ने नये काव्य-संग्रहों का एक पार्सल भेजा था।

मंगलवार, 10 जून, '52

सुबह तेजी का पत्र मिला। मि. हेन ने सर्टिफ़िकेट भेज दिया। सेन्ट्रल लाइब्रेरी में जाकर पत्र-पत्रिकाएँ देखीं।

'लिसनर' में 'कलाकार और समाज' पर टामस मन का एक अच्छा लेख था। कलाकार समाज का सुधार आचार के नियम बनाकर नहीं करता; वह मानव जीवन को अधिक प्राणमय और अर्थपूर्ण बनाकर करता है। जर्मन महाकवि गेटे ने कहा है, 'किसी कलाकृति का आचार पर प्रभाव हो यह और बात है, लेकिन कलाकार से यह माँग करना कि वह आचार को प्रभावित करनेवाली रचनाएँ करे,

उसके काम को बिगाड़ना है।···व्यवस्थित संस्थाओं के विरुद्ध आवाज़ उठाना कभी मेरा सिद्धान्त नहीं रहा। ऐसा करना मैं कलाकार का दम्भ समझता हूँ।' कलाकार को अपनी सीमा समझनी चाहिए और विनम्र होना चाहिए। कला मनुष्यों का भाग्य बदलने का सपना नहीं देख सकती। निम्न प्रवृत्तियों की निन्दा वह भले ही करे, वह निम्नता को कभी रोक नहीं सकी। 'She is not a force, she is only a comfort.' कला शक्ति नहीं, सुविधा है। अनुवाद से अर्थ नहीं उभरा। मैं ज़रा कवित्वमय भाषा में कहना चाहूँगा, कला कवच नहीं (जो घावों से बचा सके) मरहम है (जो घाव लगने पर उसे भर सके)। आधुनिक समय में जब मनुष्य का भाग्य निर्णय करनेवाली बड़ी-बड़ी शक्तियाँ हैं, टामस मन के कथन में बहुत सत्य है। जहाँ से कलाकार मानवता को प्रभावित कर सकता है, उसे चाहिए वहीं से काम करे। अपनी जगह पर डटे रहना भी कुछ कम नहीं है।

यु. ला. में 'Per Amica Silentia Lune' आरम्भ की।

Europe in Photographs with an Introduction by Stephen Spender तेजी को जन्म-दिन पर भेजने के लिए ली है। रात को स्पेण्डर की भूमिका पढ़ी। रसेल की 'The History of Western Philosophy' के 50 पेज पढ़े। मेरी पुस्तकें भारत से आ गई हैं। मिसेज़ मोहन का पत्र आया है, उन्होंने ब्रिस्टल आने का निमन्त्रण दिया है।

बुधवार, 11 जून, '52

सुबह किताबों का पार्सल खोला—परिचित पुस्तकें—तस्वीर आँखों के सामने आ गई, मेरी स्टडी में कौन-कहाँ रक्खी रहा करती थीं। लगा, अपनी स्टडी की कुर्सी पर बैठा हूँ और उन्हें जा-बजा आलमारियों में सजी, या मेज़ पर लगी देख रहा हूँ। किताबें क्या आई हैं मेरी स्टडी का ही एक हिस्सा इलाहाबाद से उठकर केम्ब्रिज आ गया है—मेरे घर का ही एक हिस्सा।

Europe in Photographs तेजी के लिए पोस्ट करा दी। दो महीने भी पहुँचने में लगेंगे तो 12 अगस्त, उनके जन्म-दिन पर, उन्हें मिल जाएगी।

यु. ला. में 'Per Amica Silentia Lune' पढ़ता रहा।

लंच पर रामनिवास ढँढारिया का तार जेनेवा से मिला—Failed to contact on phone, come immediately. तार पढ़ ही रहा था कि उनका फ़ोन आ गया। किसी व्यापार सम्बन्धी काम से जेनेवा आए हैं। चाहते थे कि मैं भी वहीं पहुँच जाऊँ तो मुझे साथ लेकर जर्मनी घूमें। ख़र्च के लिए बोले, कोई फ़िक्र नहीं। मालूम होता है किसी बिज़नेस में ख़ूब पैसे बनाये हैं। मैंने उन्हें अपनी कठिनता बताई; 10 जुलाई को मेरी अर्ज़ी रिसर्च के सम्बन्ध में जानी है। इसके पहले बहुत-से काम हैं। केम्ब्रिज में रात बिताना ही मेरी हाज़िरी है। थीसिस प्रस्तुत करने के पूर्व एक निश्चित प्रतिशत हाज़िरी ज़रूरी होगी। ख़ैर, वे मान गए। लन्दन भी उनके कार्यक्रम में है। मैंने कहा एक-दो दिन को केम्ब्रिज भी आएँ, न आ सकें तो मैं ही लन्दन जाकर उनसे मिलूँगा।

'Per Amica' समाप्तप्राय है, नोट्स ज़्यादा लेने पड़े। चार बजे दत्त चाय पीने को नीचे ले गए। उनके पास भी मिसेज़ मोहन का पत्र आया है। कहने लगे, जो कविता मैंने उन्हें भेजी है, उनको बहुत पसन्द आई है। मैंने कहा, पसन्द तो आई है लेकिन समझ में न आई होगी। उनके मुख पर कुछ आश्चर्य का भाव

देखकर मैंने कहा, वे तो दूर, अभी तो वह तुम्हारी समझ में भी न आई होगी। वे कुछ मुसकरा-से रहे थे कि मैंने कहा, बुरा मानने की बात नहीं है; अभी तो वह कविता मेरी भी समझ में नहीं आई। चूँकि मैंने उसे लिखा है, इस कारण ज़रूरी नहीं कि मैं उसे समझूँ भी। लिखने का कार्य प्रेरणात्मक और समझने का काम विश्लेषणात्मक होता है। सृजन के क्षणों में भी एक प्रकार की तर्क-बुद्धि काम करती रहती है, पर उस समय उसका काम नकारात्मक होता है—किसी ऐसे तत्त्व को न आने देना जो उस कविता के भाव, वातावरण, परिधि के बाहर की हो, विजातीय, और उसकी सम्पूर्णता के साथ 'फ़िट' न होती हो या ऐसी जो उसकी सम्यक इकाई के उभरने में बाधक हो। हर अच्छी कविता का एक अपना ही व्यक्तित्व होता है। तर्क बुद्धि का काम उस समय इतना ही होता है कि उसके विकास में बाधा देनेवाले elements का निवारण करती रहे। सहायता देनेवाले उपादानों को खोजने का कार्य वह नहीं करती। उन्हें तो अपने आप, अनजाने, अचानक आ जाना चाहिए, revelation—इलहाम की तरह, परिपूर्ण सृजन के क्षण में ऐसी बहुत-सी चीज़ें आती-उतरती हैं जिन्हें लाने, उतारने का सर्जक ने कभी प्रयत्न नहीं किया था, कभी सोचा भी नहीं था; उसका एक अलग ही सुख होता है सर्जक के लिए, अपनी ही मनस्-विभूति पर आश्चर्य का। मन के dominant mood में एक चुम्बकीय शक्ति होती है। उसी की प्रेरणा से उसकी अभिव्यक्ति के अनुरूप उपकरण उसकी ओर खिचते हैं। यदि मस्तिष्क उन्हें खींचने-खोजने में व्यस्त हो जाए तो प्रेरक शक्ति अपना काम समाप्त कर देती है। और ऐसे समय जो लिखा जाता है उसमें प्रेरणा का न तो आवेश रहता है और न उसकी अनिवार्यता—inevitability, बुद्धि का कौशल उसमें साफ़ दिखाई पड़ने लगता है—गो वह हमेशा बुरा ही नहीं होता। जब उपादनों का स्वतः प्रवाह, अवतार, आकर्षण रुक जाए तो उसके दो ही अर्थ होते हैं। या तो रचना का अन्त जहाँ होना चाहिए था, वह स्थल पहुँच गया है, या रचना बिना पर्याप्त प्रेरणा के (जिसमें किसी परिणाम पर पहुँचने तक सक्रिय रहने की शक्ति हो) आरम्भ की गई थी। ऐसी अवस्था में या तो क़लम रख देनी चाहिए, या काग़ज़ जिस पर कविता लिखी जा रही थी, फाड़कर फेंक देना चाहिए। चतुर कवि उस समय तक कविता लिखने नहीं बैठेगा जब तक वह यह न जान ले कि प्रेरणा सशक्त है और अन्त तक उसका साथ देगी। Wordsworth के emotions recollected in tranquillity का मैं यही अर्थ समझता हूँ। Emotions अपनी पूर्णता पर tranquillity देते हैं। अपूर्णता में वे mind को agitated रखते हैं। कविता agitated mood से नहीं लिखनी चाहिए। Tranquillity कविता लिखने की उपयुक्त मनःस्थिति है। बहुत-सी रचनाएँ—प्रायः नवसिखुओं द्वारा—प्रेरणा के संकेत मात्र पर उठा ली जाती हैं; परिणाम यह होता है कि कुछ दूर चलकर प्रेरणा का साथ छूट जाता है। लेखक या कवि अधूरी रचना को पूरी करने के मोह में बुद्धि का सहारा ले कुछ करता है, परन्तु कमजोरी प्रकट हो जाती है, कृत्रिमता बोलने लगती है, प्रयासपूर्ण खींच-तान छिपी नहीं रहती, सहज और सायास के बीच एक रेखा खिंच जाती है। कहीं-कहीं तो प्रथम पंक्ति के पश्चात् ही प्रेरणा किनाराकशी कर लेती है। और कवि को सारी कविता खींच-खाँच कर पूरी करनी पड़ती है। बहुत-सी कविताओं को पढ़ते समय ऐसा लगता है कि वे कुछ पहले ही समाप्त हो गई होतीं तो ज़्यादा अच्छा होता। कवि स्वयं नहीं समझ पाता कि उसे कहाँ समाप्त कर देना चाहिए था। अभ्यस्त कवि इसमें ज़्यादा धोखा खाता है, क्योंकि रचना-कौशल के बल का

उसे हमेशा भरोसा रहता है। उदीयमान प्रेरणा के साथ छोड़ने के बाद कुछ लिख ही नहीं पाता।—कहने का मतलब है कि लिखे हुए को जो बुद्धि समझती है वह और प्रकार की होती है—विश्लेषणात्मक। यदि सृजन के क्षणों में यह जाग जाए तो रचना से जादू निकल जाता है। फिर तो जो तर्कसम्मत और बोधगम्य होता है वही लिखा जाता है। 18वीं सदी के काव्य में यह बुरी तरह जाग्रत् है। जीवन के गहरे सत्य उन अनजान रूपकों से व्यक्त होते हैं जो पहले बुद्धि को चकित कर देते हैं। उनके लिए प्रायः सतही और सस्ती स्पष्टता को बलिदान करना पड़ता है।

रात को 'History of Western Philosophy' पढ़ी।

कुछ देर घर से आई किताबें उलटी-पलटीं। सूर के कई पद पढ़े।

गुरुवार, 12 जून, '52

सुबह दो चिट्ठियाँ मिलीं। एक बी. बी. सी की, दूसरी तेजी की।

बी. बी. सी. वालों ने लिखा है कि जब मैं लन्दन जाऊँ तो उनसे सम्पर्क स्थापित करूँ; मुझे कुछ प्रोग्राम देने के लिए बातचीत करना चाहते हैं। सुना है बी. बी. सी. से बहुत अच्छा पारिश्रमिक मिलता है। कुछ कमाने का डौल लग जाए तो अच्छा ही है। यहाँ ज़्यादा ठहरना हो गया तो पैसों की जरूरत मुझे होगी ही। पता नहीं कहीं से कुछ और का प्रबन्ध हो पाएगा कि नहीं।

तेजी का यह वही पत्र था जिसकी मैं बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा कर रहा था। जिसे मैं चाहता था कि जल्दी पहुँचे वही पत्र देर से पहुँचा। दो बार एक ही विषय पर मैंने पत्र लिखे थे और यही दोनों पत्र देर से उनके हाथ पहुँचे—आगे-पीछे के पत्र साथ। तेजी ने जो उत्तर दिया था उसे पढ़ते-पढ़ते मेरा दिल भर आया, आँखें भर आईं। उन्होंने मुझे दो वर्ष केम्ब्रिज में रहकर डाक्टरेट करने की अनुमति दे दी है। मैंने उन्हें लिखा था कि और लोगों से सलाह लेकर मुझे लिखें, पर उन्होंने किसी से नहीं पूछा। अपना निर्णय स्वयं लिया, इसकी मुझे और भी खुशी हुई। निर्णय उन्होंने बहुत ऊँचे उठकर लिया, बड़े भरे दिल से, कविता निकल रही थी उनकी लेखनी से। उन्होंने लिखा, 'तुमने मेरी सलाह माँगी है, एक बड़े मसले पर, और मुझे इस अवसर के अनुरूप ऊपर उठकर निर्णय लेना चाहिए। जब किसी यात्रा पर दो साथ हों तो वे एक-दूसरे की अच्छाई और बड़प्पन से प्रेरणा ग्रहण कर ऊपर उठते हैं। मैं किसी से क्यों सलाह लूँ? तुम्हारे सिवा मेरा कोई नहीं है। जब हमने शादी की थी तब हमने वादा किया था कि हम अपनी जीवन-नौका, बिना किसी और का सहारा लिये, स्वयं खेकर पार लगाएँगे। मुझे ईश्वर में विश्वास है और उसी के सहारे मैं आगे क़दम बढ़ाती हूँ। हमारे बच्चे बहुत छोटे हैं, और कोई राय दे सकने में असमर्थ। सम्बन्धी हमारे कोई नहीं हैं, मित्र, कहीं ही कोई; और मित्रों पर मैं कभी निर्भर नहीं रहूँगी। मुझे अपने पर अभिमान है, गर्व है; सहारा लेना, किसी का भी, मेरे आत्मविश्वास की शान के ख़िलाफ़ है। हम एक बड़ी ऊँची चट्टान पर खड़े हैं, फिर भी हमारे क़दम डिगेंगे नहीं कि हम नीचे गिरें। हमें सारी मुसीबतों को बहादुरी और हिम्मत से पार करना है। अपने सारे साहस और सारे बल, और तुम्हारे प्रति जो मेरे हृदय में प्रेम है, उन सबके साथ मैं यह कहती हूँ कि तुम पी-एच. डी. के लिए अध्ययन आरम्भ कर दो। मुझे कितनी ही मुसीबत और तकलीफ़ में क्यों न रहना पड़े मैं धीरज के साथ उनका मुक़ाबला करूँगी और एक दिन जब तुम सुयोग्य और बड़े बनकर लौटोगे तो गर्व के साथ मैं अपनी बाहों, अपने घर में, तुम्हारा स्वागत करूँगी। कृपा करके अपनी अर्जी फ़ौरन भेज दो।

(इसे उन्होंने रेखांकित कर दिया था) और लोग पी-एच. डी. तीन वर्ष में करते हैं, तुम्हें दो वर्ष में करने का अवसर मिल रहा है। इसका लाभ उठाओ। अपनी पूरी शक्ति और उत्साह से काम शुरू कर दो। ईश्वर मुझे वह शुभ दिन दिखाएँ जब तुम डिग्री लेकर घर लौटो। मैं यहाँ जितनी ज़रूरत होगी उससे एक पाई ज़्यादा न खर्च करूँगी। यह ज़रूर देखूँगी कि बच्चों को कष्ट न हो। तुम अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना। यह मेरे लिए भी कुछ सीखने का अवसर है। शायद मैं भी कुछ उन्नति कर सकूँ और बच्चों को तन-मन-बुद्धि से हृष्ट-पुष्ट बना सकूँ।···मैं अपने वियोग के दुख की बात न करूँगी, क्योंकि इससे तुम्हें कष्ट होगा। तुम्हारी जुदाई मेरे लिए दुखदाई है, पर उसके बारे में मैं तुम्हें न लिखूँगी। विश्वास करना मेरे ऊपर भगवान हैं, तुम दूर होकर भी मेरे पास हो, मेरे दोनों बच्चे मेरे दाहिने-बाएँ हाथ हैं, मैं संसार का सामना करने में समर्थ हूँ। हम लोगों की चिन्ता न करना। परमात्मा करे सब कुछ सकुशल समाप्त हो। मैं नहीं चाहती कि हम दुनिया के उपहास के पात्र बनें। दोष दिखलानेवाली उसकी उँगलियाँ उस दिन अपने-आप नीचे झुक जाएँगी जिस दिन वह तुम्हें जीवन-समर में परीक्षित धीर-वीर-योद्धा के समान देखेगी, और मुझे विनम्र, सीधी और सुघर तुम्हारे साथ, अपने सुपुत्रों को लिये, जिन पर उसे भी गर्व होगा। मेरी चिन्ता अब केवल एक है कि तुम इतनी मेहनत से काम करोगे और मैं तुम्हारे स्वास्थ्य की देख-रेख करने के लिए तुम्हारे पास न रहूँगी। हम लोगों की ख़ातिर अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना।'
तेजी को मेरे काम से इधर-उधर दौड़ते-धूपते देखकर एक दिन अमित ने कहा था, 'अम्मा, काश कि मैं बड़ा होता कि डैडी की अनुपस्थिति में आपको यह सब काम न करने देता। मैं जब बड़ा हो जाऊँगा तब आपकी मदद किया करूँगा और आपको कोई तकलीफ़ न होने दूँगा।' अमित भावुक है और उसे यह देखकर कष्ट होता है कि उसकी माँ को कितनी परेशानी उठानी पड़ती है। मगर वे उसे सान्त्वना देने के लिए कहती हैं—हँसकर—'मुझे अच्छा लगता है यह अनुभव करते कि हूँ तो मैं औरत, लेकिन मर्द का काम भी कर सकती हूँ।' उन्होंने आगे लिखा है, 'बच्चों के साथ मुझे कितनी तसल्ली है; कभी सोचती हूँ अगणित अजनबी चेहरों के बीच तुम कितने अकेले और खोए-खोए-से रहते होगे।'

यह पत्र पढ़कर तेजी मेरे लिए आसमान में उठ गईं! भगवान ने भारत की नारी को किस मिट्टी से गढ़ा है। तेजी ने अपनी दृढ़ता से मुझे ठीक वही आश्वासन दिया जिसकी मुझे आवश्यकता थी। उन्होंने जो लिखा उसका निर्णय उन्होंने चुटकियों में लिया, जैसे उसके लिए वे तैयार बैठी थीं। ऐसे ही अवसरों पर पता लगता है कि आदमी किस धातु का बना है।

कविता हमारी ईमानदारी की भाषा है। जब आदमी अपने दिल की बात सच्चाई के साथ ज़ाहिर करता है, जब उसका हृदय, बिना किसी छल-छद्र के, बिना किसी दुराव-छिपाव के, बोलता है तब कविता उसकी सहज वाणी होती है। मैं तेजी के कवित्व से बहुत प्रभादित-प्रेरित हुआ। उन्होंने सोचा न होगा इन रूपकों को। भावाकुल अवस्था में ये अपने-आप आते हैं। और जैसे ध्वनि की प्रतिध्वनि आती है वैसे ही मेरे हृदय में भी ऐसी भावना भर गई जो व्यक्त होने के लिए कविता का आधार माँगती है। जो जीवन की प्रेरणा थी वह कविता की प्रेरणा न बनती? दिन-भर मैंने युनिवर्सिटी लाइब्रेरी में काम किया, लेकिन रह-रहकर मुझे तेजी का पत्र याद आता रहा। प्रतिध्वनि गूँजकर मिट नहीं रही थी, रूप माँग रही थी। साढ़े छः पर लौटा, खाना खाया, घूमने चला गया, 9 पर लौटा। एक घण्टे के लिए

बिस्तर पर लेट गया, पर दिमाग़ में कुछ होता रहा। तेजी ने पर्वत-सागर के रूपक का प्रयोग किया था; प्रतिध्वनि इसकी रेगिस्तान के रूपक से आ रही थी—कविता मेरे मन में ढल रही थी। साढ़े दस बजे कुछ भूख मालूम हुई तो मैंने दूध पिया और लिखने की मेज़ पर बैठ गया। दो बजे कविता समाप्त हुई। कई बार पढ़कर कुछ संशोधन किए। अंग-अंग थककर चूर था, पर मन इतना शान्त जैसे किसी स्थिर सरोवर में खिला हुआ कमल जिसकी एक पंखुरी पर ओस की एक बूँद मोती की तरह चमक रही हो और उसे पता न हो कि उसमें एक आसमान प्रतिबिम्बित हो रहा है। क्या सद्यः समाप्त कविता ही ओस की बूँद थी—लेकिन उसमें आसमान कहाँ !—मेरा ही छोटा-सा जीवन प्रतिबिम्बित था। क्या मेरा जीवन उस समय समस्त मानव जीवन का—ऐसी परिस्थिति में—प्रतिरूप ही—प्रतीकात्मक—नहीं बन गया था? बस, समाप्त कर, तेरी लेखनी को अभिमान ने छू दिया है। कलाकार को नम्र होना चाहिए—नम्रतम। भूल गया उस दिन गेटे और टामस मन ने क्या कहा था? Modesty is the native trait of an artist. Art makes the artist feel small and insignificant.

शुक्रवार, 13 जून, '52

रात मुर्दे की तरह सोया—कोई स्वप्न भी नहीं—प्रसव के पश्चात् जैसे नारी सोए। सुबह देर से उठा। न शेव करने का समय था, न व्यायाम का, न मानस-पाठ का। कविता का नशा कोई अच्छा थोड़ा है। सब नियमों को यह तोड़ देती है। कहती है, सबको तजकर मुझे भजो। यह दिमाग़ में आती है तो किसी काम में मन नहीं लगता। कोई काम ज़रूरी नहीं मालूम होता। किसी की परवाह नहीं रहती, कोई प्रलोभन मन को नहीं खींच सकता। तुम मुझे ताज पहनाना चाहते हो, पर मुझे तो अभी कविता से फ़ुर्सत नहीं। शब्दों पर बादशाहत करने को मिले तो मिट्टी के पुतलों पर बादशाहत करना कौन चाहे। इसीलिए कवि अपने को राजाओं से बड़ा समझते थे। कम से कम सृजन के क्षण में तो कवि अपने को तख़्त ताऊस पर ही समझता है। 'सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्।' कविता में क्या है जो कवि को इतना वशीभूत कर लेती है। कीर्ति न मिले, धन तो शायद ही किसी कवि को मिलता हो कविता से, जो कविता करने की क्षमता रखता है वह कोई और काम करके कविता से प्राप्त धन से कहीं अधिक पा सकता है, कोई उस कविता को कभी न देखे, न पढ़े; स्वयं भी फिर न देखे, पर आदमी लिखने से बाज़ नहीं आता। यह लिखना अपने-आप में ही क्या बड़ा वरदान है?—कविता के द्वारा कवि सचमुच अपनी आत्मा को प्राप्त करता है। अंग्रेज़ी में एक कहावत है—अगर कोई अपनी आत्मा को ही खो दे तो सारे संसार को लेकर क्या करेगा। आत्मा के मूल्य के सामने संसार का क्या मूल्य। इसलिए संसार चाहे सौ बार खोना पड़े, आदमी अपनी आत्मा को न खोए; और जिसे अपनी आत्मा मिल गई उसे संसार की सबसे बड़ी निधि मिल गई। कविता आत्मा को पाने का एक साधन है। जब आदमी को इसके मिलने की आशा होती है, वह और कुछ नहीं लेना चाहता। मैं एम. ए. कर रहा था, उस परीक्षा के ऊपर मेरा सारा भविष्य निर्भर था। प्रीवियस करने के सात वर्ष बाद मैं फ़ाइनल करने चला था। काफ़ी अध्ययन की ज़रूरत थी, पर कविता ने मस्तिष्क को पकड़ लिया। एम. ए. की तैयारी छोड़कर मैं कविता लिख रहा था। क्या करूँगा मैं एम. ए. लेकर जब मेरी आत्मा ही मुझे न मिलेगी। परिणामस्वरूप मुझे द्वितीय श्रेणी मिली। आशा लगाए था प्रथम की, श्रम

उसी के लिए किया था। पास होने पर भी खुशी के बजाय निराशा हाथ लगी। कविता ने कानों में कहा, एम. ए. तो इस वर्ष बहुतों ने किया होगा; किसी ने 'निशा निमन्त्रण' न लिखा होगा साथ ही। दूसरे वर्ष ट्रेनिंग कर रहा था, बनारस से। वहाँ 'एकान्त संगीत' सिर पर सवार था। घण्टे-भर बार परचा मिलने को है, साथी अपने नोट्स दुहरा रहे हैं, किताब उलट-पलट रहे हैं। मेरी तैयारी बहुत नहीं है, साल-भर पढ़ाई की फ़र्ज़-अदाई भर की है, इसी समय कुछ पढ़-पढ़ा लूँ। मगर नहीं, भाड़ में जाए बी. टी.—परीक्षा, परचा, नतीजा। मेरे मन में दूसरी ही धुन है; जब तक उसे कविता का रूप नहीं दे सका हूँ, कुछ और नहीं कर सका हूँ। चलते-चलते पाँव में काँटा गड़ जाए तो यात्री का काम है कि बैठ जाए, काँटा निकाले, तब आगे बढ़े। कविता काँटे की तरह गड़ जाती है; उसे निकाले बिना आगे बढ़ना असम्भव।

प्रेरणा के ही क्षणों में आत्मा के ऊपर से पर्दे हटते हैं। अपनी सच्ची शक्ल देखो, अपने को पहचानो। जब इसका अवसर मिलता है आदमी क्यों चूके। कोई कहता है, और काम फिर किए जा सकते हैं, पर पर्दा हटने पर अगर आत्मा की झाँकी न ले ली तो पता नहीं पर्दा कब खुने, न खुले, कम से कम इस रूप पर तो शायद फिर कभी न खुले। प्रेरणा का अवसर खोने की वस्तु नहीं। कवि तो उसकी सतत प्रतीक्षा में रहता है और जब वह आता है, सारी दुनिया की तरफ़ पीठ करके वह अपने को देखता है। अपने को पाता है। अपने को बनाता है। दुनिया के सारे काम समय-समय से, नियमानुसार होते हैं; प्रेरणा के आने का समय नहीं, अवसर नहीं, पूर्व सूचना भी नहीं। कवि को समय से न बाँधो, नियमों में मत रक्खो। या नियम टूटेंगे या कवि टूटेगा। जहाँ सब काम टाइम-टेबिल से होते हैं वहाँ से कवि ग़ायब हो जाता है। योरोप का जीवन जितना ही मशीनी नियमबद्धता का शिकार होता जाता है उतना ही कवि को जन्म देने और उसे जीवित रख सकने के वह अयोग्य होता जाता है। बाइरन ने कहा था, कवियों को कोई काम करने को नहीं होना चाहिए। टी. एस. ईलियट का कहना है, कविता को पेशा नहीं बनाना चाहिए। कविता काम नहीं हो सकती। पर हर इन्सान को काम चाहिए। कवि को भी काम चाहिए। उसे ऐसा काम लेना चाहिए जिसमें इतनी आज़ादी हो कि जब उसे प्रेरणा का संकेत मिले वह अपने काम से अपने को खींच सके। बाइरन शाहाना दिमाग़ के थे और शाहों का ज़माना लद गया है। मैं ईलियट से सहमत हूँ। कवि जब केवल कविता करने लगता है तो जीवन से अलग हो जाता है। किसी प्रकार का सामाजिक काम उसे जीवन से सम्बद्ध रखता है। ऐसा भी अपना साक्षात्कर क्या जो जीवन से अलग की वस्तु हो। जो कविता का पीछा करते हैं उनसे वह भागती है। जो अपनी राह जाते हैं उन्हें वह संकेतों से अपने पास बुलाती है। जब वह बुलाए तभी उसके पास जाना ठीक है। उसकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए; उसके पीछे पागल भी नहीं बनना चाहिए। दोनों के बीच एक सन्तुलित अवस्था है। आदर्श कवि वहीं मिलता है। इस कहावत की समता पर—Eat to live, don't live to eat—कहा जा सकता है write poetry to live—to live fully, freely, fearlessly—perfect life—Don't live to write poetry. हिन्दी संसार पर ध्यान जाता है तो ऐसे कई दिखाई पड़ते हैं who just live to write poetry. वे जीवन से दूर, कविता से और दूर हैं। मुझे कविता की परिभाषा करनी हो तो कहूँगा, वह यात्री का गीत है—यात्रा जीवन का मार्ग तै करने के लिए है, गीत केवल गाए जाने के लिए नहीं हैं। गीत जीवन-यात्रा का साथी भी है।

'जीवन की यात्रा के सबसे सच्चे साथी गीत रहे हैं।' कभी बात कर लेने को, कभी मन बहलाने को। यात्रा में इसकी आवश्यकता को कम महत्त्व नहीं देना चाहिए। यात्रा के मधुरतम क्षण साथी से बात-बहलाव के ही होते हैं। टामस मन की परिभाषा याद आती है—Art is comfort लेकिन life is not comfort; life is work. मैं कवि से पूछूँगा कि तुमने जीवन में क्या किया, और अगर उसने मेरे सामने अपनी रचनाएँ ही रख दीं तो मैं उससे कहूँगा, तुमने कविता का अर्थ ठीक नहीं समझा; तुम्हारे गीत, गीत हैं, साफ़-सुथरे, शीशे के कमरे में बैठकर गाए हुए, पर सजीव और सप्राण और सशक्त गीत वे होते हैं जिनमें चलते हुए यात्री की साँस सुनाई दे, जिनमें प्रस्तान का नवोत्साह, राह की कर्त्तव्यमय थकान, मंज़िल पर पहुँचने का सन्तोष-आराम प्रतिबिम्बित हो, जिनमें प्रभात के मन्द-गन्ध समीर का स्पर्श, दिन की गर्द-गुबारी लू-लपट का झोंका और सन्ध्या की शिथिल, शीतल हवा का हिलकोरा अनुभव हो—संक्षेप में जिनमें हरकत हो, गति हो, जीवन हो। शब्द-जीवी के गीत बड़े नीरस होते हैं—मुझे कुम्हार का गीत दो, जुलाहे का, मल्लाह का, किसी जीवन-कर्मी का।

सुबह कविता की साफ़ कॉपी बनाई, शीर्षक दिया है—रेगिस्तान का सफ़र। दिन यु. ला. में बीता। खाना खाने के बाद घूमने गया—मादमोज़ेल और लीथान साथ थे। दिन को खूब बारिश हुई थी, शाम को आसमान साफ़ था। लौटते समय बादल फिर घिर आए। डिग पहुँचते-पहुँचते पानी बरसने लगा।

शनिवार, 14 जून, '52

इण्डिया हाउस से अर्ज़ी का फ़ार्म आया।

रिसर्च के नियमादि पढ़े, फ़ार्म भरा, सर्टिफ़िकेट जो मिल सके ढूँढकर लगाया, मिसेज़ मलेटका ने भी सर्टिफ़िकेट दे दिया। सोमवार को सब इण्डिया हाउस भेज दूँगा। लेख लिखना भर रह गया है, उसे दस जुलाई के पूर्व पूरा कर दूँगा और यहीं से दे दूँगा।

खाना खाने के बाद घूमने चला गया था। लौट रहा था कि डो. मिल गया। बोला, मैं पास हो गया हूँ, आओ मेरे साथ कुछ पियो, फिर नाच में शामिल हो। मैंने कहा कि पीता मैं नहीं हूँ, और नाचना जानता नहीं। फिर भी उसने साथ चलने की ज़िद की। मैंने कहा, तुम चलो मैं थोड़ी देर में आ जाऊँगा। उसने कहा, तुम टिकट मत लेना, मैं कह दूँगा, तुम्हारा टिकट मैं ले लूँगा, न आओगे तो बेकार जाएगा। नाचघर का पता दे वह चला गया। मैंने कमरे आकर नीला सूट पहना और उस ओर रवाना हुआ। नाचघर के ठीक सामने एक क्यूरियो की दूकान पर भगवान बुद्ध की एक प्रतिमा देखी। कहाँ बुद्ध, कहाँ सामने नाचघर का वातावरण! मन में एक उथल-पुथल मच गई। बुद्ध पर पढ़ा-सुना बहुत कुछ याद आया; क्रिसमस हम्फ्रे का लेक्चर। थोड़ी देर तमाशा मैं भी देखता रहा। डो. तो आज नशे में मस्त था। ज़िद करके उसने मुझे आरेंज स्क्वाश पिलाया। एक-डेढ़ घण्टे बाद मैं उससे विदा ले कमरे चला आया। कुछ लिखने को मन कर रहा था। सोचा, थोड़ी देर लेटकर मन स्वस्थ कर लूँ तब लिखने बैठूँ। कई दिनों से थका था। ऐसा सोया कि तीन बजे आँख खुली। तब कपड़े बदले और बिस्तर में ठीक से लेटा। मगर नींद पूरी हो चुकी थी। 'बुद्ध और नाचघर' पर विचारों की शृंखला मन में बँधने लगी। आधा-जागा, आधा-सोया-सा लेटा रहा। आज सुबह चिड़ियों का स्वर खूब सुनाई पड़ा। चिड़ियाँ शायद 5-6 के बीच में गाती हैं। 7 बजे उठने से तो बस मोटरों

की आवाज़ ही कानों में पड़ती है। सुबह को फिर एक घण्टे को नींद आ गई। इतवार की बेफ़िकरी थी।

दिन को तेजी का एक और पत्र मिल गया था जिसमें उन्होंने अपने निर्णय को दुहराया था।

दो ब्रस केम्ब्रिज में शोध करने की योजना बना रहा हूँ। पता नहीं, शोध पूरा करूँगा कि यहाँ से कुछ कविताएँ लेकर लौट जाऊँगा।

कविता का मूड बनता है तो कुछ पढ़ा-लिखा नहीं जाता। मैं नहीं चाहता कि कविताएँ लिखूँ, और कविताएँ ही लिखता जा रहा हूँ।

इतवार, 15 जून, '52

ब्रेकफ़ास्ट के बाद लिखने को बैठ गया था।

लंच के समय तक लिखता रहा।

लंच के बाद लिखता रहा।

साढे छः शाम कविता समाप्त हुई—209 पंक्तियाँ।

खाने के बाद घूमने चला गया। बादल घिरे थे, बारिश नहीं हुई।

लौटकर कविता दुहराई, फ़ेयर कॉपी बनाई, अन्तिम रूप इसे अभी नहीं दे पाया।

आज दिन को एक मिनट के लिए आराम नहीं किया। खूब थका हूँ। इस समय एक बज रहे हैं। कविता बहुत अच्छी लग रही है, पर मुझे तो लगनी ही चाहिए—'निज कवित्त केहि लाग न नीका' इतना तीखा व्यंग्य मेरी लेखनी से आज तक नहीं उतरा। मैं खुद नहीं समझ पा रहा हूँ कि यह व्यंग्य बुद्ध पर है कि मानवता पर। इस समय मेरे शरीर और दिमाग़ की सबसे बड़ी ज़रूरत है—आराम। मेरे mood की intensity ने जो लिखा दिया, सो लिखा दिया। उस पर विचार करने को बहुत समय रहेगा।

सोमवार, 16 जून, '52

केम्ब्रिज आए आज पूरे दो महीने हो गए।

क्या किया इन दो महीनों में?

(i) शोध की दिशा स्पष्ट हुई—अंग्रेज़ी साहित्य में ईट्स की रचनाएँ—छोटा-सा क्षेत्र लग सकता है। पैठने पर अनुभूति हुई यह भी एक बड़ा जंगल है। अब उसमें एक पगडण्डी दिखाई देने लगी है।

(ii) प्रायः निश्चित है कि अब केम्ब्रिज में ही दो वर्ष रहना है, और शोध पर थीसिस तैयार कर डाक्टरेट के लिए यहीं प्रस्तुत करना है। दो महीनों में जो स्वाध्याय-चिन्तन हुआ है उससे असन्तुष्ट होने का कोई कारण नहीं है।

(iii) आधुनिक अंग्रेज़ी कविता के मंच का कुछ-कुछ idea हुआ है; यहाँ के प्रोफ़ेसरों से मिलकर, मार्जरी द्वारा भेजे गए 25-30 काव्य-संग्रहों को पढ़कर। पर अब तो शोध के काम पर ही पूरा ध्यान देना चाहिए—एकै साधे सब सधै।

(iv) योरोपीय-अंग्रेज़ी जीवन को कुछ देखा समझा है। उसकी विशिष्टता, व्यवस्था (orderliness), सुन्दरता, शिष्टता (प्रायः औपचारिक) और उसकी सुविधाजनक नैतिकता से प्रभावित हुआ हूँ। Live in Rome as Romans live, जैसा देस वैसा भेस से अभ्यस्त होना कठिन नहीं है; न होना अपने ही लिए असुविधाएँ खड़ी कर लेना होगा।

(v) चार कविताएँ लिखी हैं। लिखना नहीं चाहता था, लिखना नहीं चाहता

हूँ। पर परिस्थितियों के कारण कुछ ऐसा बन गया कि लिखना ही पड़ा। इस mood के आगे yield करना ख़तरनाक साबित हो सकता है। अपने मन को जानता हूँ—totally resist इसे नहीं कर सकूँगा। कविताएँ काफ़ी पढ़नी चाहिएँ; दूसरों की पढ़ने से कहीं पर अपनी लिखने की आवश्यकता पूरी होती रहती है।

(vi) एक इंजीनियर ने बताया था जो बाँध थोड़ा-थोड़ा रिसते रहते हैं उनके टूटने की सम्भावना उनसे कहीं कम होती है जो बिल्कुल ठस-ठोस-पुख़्ता होते हैं। बहा नहीं हूँ, बहूँगा भी नहीं, रिसने का विरोध नहीं करूँगा।

रिसर्च का फ़ार्म इण्डिया हाउस को पोस्ट कर दिया है, वे लोग युनिवर्सिटी बोर्ड आफ़ रिसर्च को भेजेंगे। One thing positive has been done. यात्रा में पहला क़दम दृढ़ता और निश्चय से रख देना कम अर्थ नहीं रखता। दो महीने से जहाँ था, अब उससे एक क़दम आगे हूँ। ठहराव से यात्रा आरम्भ हो गई—'है एक कहीं मंज़िल जो मुझे बुलाती है'।

यु. ला. में Theosophist Literature के अध्ययन के सिलसिले में पहली किताब 'Incidents from Madame Blavatsky's Life' ख़त्म की—युवा ईट्स ब्लावाट्सकी के प्रभाव में आए थे।

'The Greeks & the Irrational' शुरू कर दी है। हेन ने recommend की थी—irrational की background समझने के लिए। शोध-सम्बन्धी प्रारम्भिक लेख के लिए सहायक होगी।

खाने के बाद घूमने नहीं गया। सपरू आ गए—मजलिस का चन्दा लेने—समय भी खा गए।

शाम को 'धर्मयुग' से एक कटिंग आई थी। 15 जून के अंक में मेरी कविता—'तुमको छोड़ . हीं जाने को आज हृदय स्वच्छन्द नहीं है'—बड़े ठाठ से छपी है—चित्र के साथ। पूरबी प्रदर्शनत्व।

रात को Edith Sitwell की 'Note Book of a Poet' पढ़ता रहा। जुलाई में मार्जरी की पुस्तकें वापस करनी हैं।

'बुद्ध और नाचघर' फिर पढ़ी और अब भी मैं निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि इसमें निहित व्यंग्य मानवता पर है कि बुद्ध पर—शायद दोनों पर। बुद्ध की विरागात्मक फ़िलासफ़ी से मुझे सहानुभूति नहीं है। साथ ही उनकी शिक्षा की, दुनिया इतनी अवहेलना करे—दुनिया सब अच्छी बातों की अवहेलना करती है—बुद्ध तो प्रतीक के रूप में हैं—यह भी मुझे सह्य नहीं। बुद्ध के लिए मेरे मन में आदर तो है ही। कविता के फ़र्स्ट ड्राफ़्ट के अन्त में कुछ पंक्तियाँ मैंने लिखी थीं। सम्भवत: बुद्ध के प्रति मेरी श्रद्धा के कारण ही वे मेरी लेखनी से सहज उतर गई थीं। बाद को फ़ेयर करते समय मैंने उन्हें छोड़ दिया। मुझे लगा वे पंक्तियाँ कविता की मुख्य ध्वनि के साथ नहीं मेल खातीं। अगर ये पंक्तियाँ रख दी जाएँ तोकम-से-कम बुद्ध पर किया गया व्यंग्य हल्का पड़ जाए। पर मैं ऐसा नहीं चाहता। कविता के बीच-बीच में संकेत हैं कि बुद्ध की विचारधारा से मेरी सहमति-सहानुभूति नहीं। मैं समझता हूँ, यह कविता दुधारी तलवार हो गई है—यह न बुद्ध को बख़्शती है न मानवता को।

दूसरे ड्राफ़्ट में छोड़ी हुई पंक्तियाँ···

'तुम्हारी तरफ़ जाती है आँख,
होता है विश्वास,

होते भी तुम जो सजीव
तो यह सब देख
बैठे रहते यों ही निर्विकार
दुनिया का यों ही चलता है कारोबार।'

मुझे आभास हुआ था कि मेरी कविता इसके पूर्व ही समाप्त हो गई है, पर मैं निर्णय नहीं कर सकता था। साढ़े छः बज चुके थे। नीचे से खाने की घण्टी बज रही थी। यह ख़्याल था कि जल्दी में प्रेरणा का कोई अंश मुझसे रहा तो नहीं जा रहा है। जल्दी में ये पंक्तियाँ लिख डालीं। शायद मेरे हृदय में बुद्ध के प्रति श्रद्धा ही इसके लिए उत्तरदायी थी। ये पंक्तियाँ वास्तव में कविता के लिए आवश्यक नहीं। इसी कारण मैंने इन्हें छोड़ दिया है। यदि किसी को बुद्ध पर किए गए व्यंग्य से चोट पहुँचे तो वह इन पंक्तियों को पढ़कर कुछ सान्त्वना पा सकता है। बहरहाल कला की दृष्टि से मैंने इन पंक्तियों को कविता के लिए अनावश्यक समझा। मुझे पता नहीं कि भारत का कोई पत्र 'बुद्ध और नाचघर' को प्रकाशित करने की हिम्मत करेगा या नहीं। ग़लतफ़हमी इससे काफ़ी फैल सकती है। ऐसी व्यंग्यपूर्ण कविता, कम से कम हिन्दी में, मैंने पहले नहीं देखी।

मंगलवार, 17 जून, '52

सुबह सेन्ट्रल लाइब्रेरी में समाचार-पत्रादि देखे।

'लिसनर' में ज्यूल्स सुपरवील का एक लेख छपा था 'समाज और कलाकार' पर। समाज में लोग निश्चित समय-घण्टों में काम करते हैं, पर कलाकार निरन्तर काम करता रहता है। वह तो सोते में भी बेकार नहीं रहता। उसके बहुत-से भाव-विचार स्वप्नावस्था में ही आकर उसे सचेत कर जाते हैं। कलाकार बालक के समान होता है। वह जो कुछ करता है स्वांतःसुखाय। स्वांतःसुखाय की हुई रचना ही उसकी सर्वोत्तम कृति होती है। जब वह दूसरों की आज्ञा, अनुरोध अथवा प्रार्थना पर कुछ लिखता है तो उसे ऐसे लोगों को प्रसन्न अथवा सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करना पड़ता है जिनमें कलात्मक अरुिभचि नहीं। राज्य चाहे तो कलाकार की कृति का उपयोग करे, पर उसे परिचालित करने का अधिकार उसे नहीं लेना चाहिए। ज्यूल्स सुपरवील की कविता से मैं मार्जरी के अनुवादों द्वारा परिचित हुआ था। फ्रेंच कवि हैं, बहुत वृद्ध। लेख में कोई विशेष बात नहीं कही गई है। कवि की स्वतन्त्रता का पक्ष लेनेवाले प्रायः यही बातें दुहराते हैं। योरोप में कलाकार की स्वतन्त्रता ख़तरे में है। उसको बचाने के प्रयत्नों में एक आवाज़ यह भी है।

बाहर की दासता तो बुरी है। उसे देख सकना, उससे लड़ना, और उससे मुक्त होना मुश्किल नहीं होता। प्रायः मनुष्य ऐसे सूक्ष्म बन्धनों का दास होता है जिन्हें वह देख नहीं पाता और अपने को आज़ाद समझता है। कलाकार को उन सूक्ष्म बन्धनों को देखना चाहिए। मनुष्य के विचार-आदर्श स्वयं बड़ी जल्दी रूढ़ होकर कलाकार के चारों ओर घेरा डाल देते हैं और उसके बाहर उसे नहीं देखने देते। यह भी एक प्रकार की दासता है। कलाकार को अपने बनाए हुए बन्धनों को भी देखते और तोड़ते रहना चाहिए।

पुस्तकालय से सेनेट हाल आया। आज यहाँ कान्वोकेशन होने को था। यहाँ परीक्षा, उसके बाद नतीजा, उसके बाद कान्वोकेशन—सब बड़ी जल्दी-जल्दी हो जाते हैं। मैं ऊपर गैलरी में चला गया। दर्शक दोनों ओर बैठे थे। सामने

के दरवाज़े से अलग-अलग कालेज के विद्यार्थी काले सूटों में कतार बाँधकर आते थे—काला गाउन और काली चौखुण्टी टोपी पहने। उनका मुख्याध्यापक उन्हें वाइस चान्सलर के सामने प्रस्तुत करता था। वाइस चान्सलर लाल गाउन में कुर्सी पर बैठे थे। एक ओर दो प्राक्टर खड़े थे। स्नातक आगे बढ़कर टोपी उतारकर बग़ल में रख देता था। घुटने टेककर हाथ जोड़कर वाइस चान्सलर के सामने बैठ जाता था—ठीक भारतीय शैली में हाथ जोड़कर। वाइस चान्सलर उसके हाथों को अपने हाथों में लेते थे, शायद कुछ कहते थे, लैटिन में, ऊपर नहीं सुनाई पड़ता था और विद्यार्थी खड़ा हो जाता था, उनके सामने सिर झुकाता था और दूसरे दरवाज़े से निकल जाता था। दरवाज़े पर एक महिला खड़ी थी जो हर स्नातक को उसकी डिग्री का काग़ज़ दे देती थी यह ढंग हमारे विश्वविद्यालयों के कान्वोकेशन से भिन्न था। सेनेट हाल के बाहर शोर-गुल, मुबारकबादी, फ़ोटोग्राफ़ी। मैंने सोचा था कि शायद कोई भाषण वग़ैरह भी होगा, पर वैसा कुछ न हुआ। जो लोग डिग्री लेकर हाल से निकल जाते थे उनके माता-पिता, हित-मित्र भी बाहर निकल जाते थे। किसी ने कहा यह क्रम 12-1 बजे तक चलेगा। यहाँ कान्वोकेशन बड़ा नीरस उत्सव होता है। थोड़ी देर बाद मैं यु. ला. चला गया। पुस्तकालय बदस्तूर खुला था। काम करनेवाले काम कर रहे थे। हमारे देश में छुट्टी का बहाना खोजा जाता है। ज़रा-सी कोई बात हुई कि युनिवर्सिटी बन्द। यहाँ मुझसे किसी ने बताया कि जार्ज छठे के मरने पर युनिवर्सिटी नहीं बन्द हुई थी। हिन्दुस्तान में सब स्कूल, कालेज, युनिवर्सिटियाँ बन्द हो गई थीं। जब रानी एलिज़ाबेथ के राज्यारोहण की घोषणा हुई थी केवल तब लोग चर्चों में एकत्र हुए थे।

मैं 'The Greeks & the Irrational' पढ़ता रहा। इण्डिया हाउस से 24 के लिए चाय का निमन्त्रण मिला—शायद कृष्णमेनन को विदा देने के लिए।

खाना खाने के बाद माडलिन रोड पर घूमने चला गया मादमोज़ेल और लीथान मेरे साथ गए। बहुत अच्छी और खुली सड़क है।

लन्दन के परिचितों को कई पत्र लिखे। पिछली बार गया था तो किसी को नहीं मिल सका था, इस बार सबको 24 को आने की सूचना दे दी है

रात को रसेल की 'The History of Western Philosophy' पढ़ी।

बुधवार, 18 जून, '52

सेन्ट्रल लाइब्रेरी होते हुए युनि. ला. पहुँचा।

रास्ते में एक क़तार में लड़कियाँ काले गाउन पहने सेनेट हाल की तरफ़ जा रही थीं। आज शायद उनका कान्वोकेशन होगा।

ला. में आज 'The Greeks & the Irrational' ख़त्म की।

तेजी का पत्र मिला। अमित को बुख़ार आ गया था। अब अच्छे हैं। मुझे नहीं लिखा था।—पर तेजी को कोई बात मुझसे छिपानी नहीं चाहिए। फिर तो मेरा मन सदा सन्देह करता रहेगा—कुशल समाचार के पीछे कोई अमंगल की बात छिपी तो नहीं है। आख़िर बच्चा तो नहीं जो छोटी-छोटी बातों पर घबराऊँगा। अमंगल में मेरी मंगल कामना का कुछ प्रभाव वहाँ भी पहुँचेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

खाना खाने के बाद घूमने गया। माडलिन कालेज जाकर पीटर को मिला। उसे हिस्ट्री ट्राइपास में प्रथम श्रेणी मिली है। उसकी पत्नी ब्रेण्डा भारत हो आई

हैं, गांधी-दर्शन से बहुत प्रभावित है। पीटर बी. सी. एस. में बैठना चाहता है। साहित्यिक प्रतिभा भी उसमें है। एक नाटक लिख रहा है। जिसको सिनेमा के लिए भी भेजना चाहता है।

रात को 'Poet's Notebook' पढ़ता रहा—थोड़ी-सी रह गई है। इस सप्ताह 'History of Western Philosophy' ख़त्म हो जाएगी। 27 को आक्सफ़र्ड जाने के पहले Registry को भेजे जानेवाले लेख का first draft तैयार हो जाना चाहिए। लौटकर दुहराना और भेज देना है।

गुरुवार, 19 जून, '52

सुबह उठा। सात बजे थे। रात को बहुत बुरा स्वप्न देखा। देखा कि जैसे मैं मर गया हूँ और तेजी रो रही हैं; मैं उनसे कह रहा हूँ कि मैं तो मर चुका हूँ, रोने-धोने से कोई फ़ायदा नहीं, अब मेरे दाह-कर्म की तैयारी करो।...

सपने में भी आदमी क्या-क्या देखता है!

कल शाम को पढ़ते-पढ़ते एक झपकी आ गई थी तो एक ऐसा ही दुःस्वप्न दिखा था। मेरी माँ और बहन दिखी थीं। दोनों स्वर्गवासी हो चुकी हैं।—माँ काम कर रही हैं—बहन उनका हाथ बँटा रही हैं। मेरे जीवन का वह समय है जब श्यामा की मृत्यु हो गई थी और मैं शादी नहीं कर रहा था। माँ कह रही थीं, मैं बहुत थकी हूँ, मेरा क्या ठीक, किसी दिन चल बसूँ, शादी कर लो, घर का काम-काज मेरे बाद कौन देखेगा, बेटी का क्या है, वह पराए घर की है।—शाम के सपने को भूल गया था। सुबह जब यह दुःस्वप्न देखा तो वह भी याद आ गया। क्या सम्बन्ध हो सकता है इन दोनों में?

सपने होई भिखारि नृप रंक नाकपति होय।
जागे हानि न लाभ कछु तिमि प्रपंच जिअ जोय॥

सेन्ट्रल लाइब्रेरी में अख़बार वग़ैरह देखकर यु. ला. चला गया।

पढ़ने के लिए रीडिंग रूम से आज मैं नार्थ विंग की पाँचवीं मंज़िल पर चला गया हूँ। रीडिंग-रूम चारों ओर से बन्द था। उसमें घबराहट होती थी, न आसमान दिखाई देता था, न पेड़-पालो, न धूप-छाया—बस आलमारी, किताब-किताब और ऊपर खिड़कियाँ जिनसे कुछ रोशनी आती थी, ज़्यादा रोशनी तो बिजली की रहती थी। अब जहाँ बैठने की जगह बनाई है वहाँ से हरे लान, पेड़, मकान, सड़क, सवारी, आदमी—सभी दिखाई देते हैं। कभी किताब से मन उचटा तो बाहर देख मन को बदल सकता हूँ। कम से कम आज तो यहाँ बैठना बहुत अच्छा लगा। Yeats के Essays written between 1931-36 पढ़ता रहा। ईट्स का गद्य भी अद्‌भुत है। उसके आकर्षण का रहस्य शायद यह है कि उसमें ईट्स का कवित्व भी झलक रहा है—व्यक्तित्व तो छलक ही रहा है। ईट्स पहली पंक्ति से कुछ विचित्र, असाधारण, अप्रत्याशित कहने, बताने, सुनाने की मुद्रा-सी बनाए रहते हैं और पाठक जिज्ञासा से भरा उनके पीछे-पीछे चला जाता है। पाठक को सम्मोहन से बाँधने में वे अपनी कविता में उतने ही सफल हैं जितने गद्य में। किन्हीं समालोचकों ने जादू में उनकी अभिरुचि पर व्यंग्य किया है। पता नहीं वे जादू की क्या करामातें दिखा सकते थे। पर सबसे बड़े जादूगर तो शायद वे क़लम के थे—चाहे वे कविता पर चलाएँ चाहे गद्य पर!

दिन में दत्त से थीसिस लिखने पर बात हुई। मैंने कहा परिणाम तो इलहाम की तरह आना चाहिए। थीसिस में उसी को साबित करना होता है। मुझे दो महीने

के स्वाध्याय से—निश्चय ही इसके पीछे ईट्स के साहित्य के प्रति मेरी दस बरस की अभिरुचि है—लगता है कि परिणाम पर मैं पहुँच गया हूँ—अब उसे साबित करने को मसाला इकट्ठा करना है। दत्त कहने लगे, इतिहास के साथ ऐसा नहीं हो सकता—मसाले से परिणाम निकालना होता है।

रात को 'A Poet's Notebook' पढ़ी। समाप्तप्राय है अब। शेक्सपियर पर एडिथ सिटवेल ने जो लिखा है बहुत सूझ के साथ लिखा है। कवि जब अपने-आपको जीवन के साथ एक कर देता है तब उसकी कविता में जो गुण आते हैं उनका विश्लेषण करना असम्भव हो जाता है। कविता तब जीवन बन जाती है, और जीवन ही के समान अनन्त रहस्यमय। शेक्सपियर की कला सचेतन (conscious) थी—इसे मैं नहीं मान सकता, जैसे मैं तुलसी की कला को सचेतन नहीं मानता ('कवि न होऊँ', 'सकल कला सब विद्या हीनू'—'कला' = कृत्रिमता; 'विद्या' = चतुराई—ठग विद्या)। शेक्सपियर ने अपने-आपको जीवन के साथ एकात्म कर दिया था—कविता उन्हें धोखा नहीं दे सकती थी। कला की सारी आवश्यकताएँ जीवन से खिंची चली आती थीं। शेक्सपियर तो भूल गए थे कि वे कविता कर रहे हैं। वे जीवन को मुखरित करते रहे और कविता प्रवाहित होती रही।

आज लाइब्रेरी जाते समय डैफ़ोडिल से भावनाओं, कल्पनाओं, विचारों की कुछ अजीब कड़ियाँ जुड़ीं। कुछ लिखूँ, पर वर्ड्सवर्थ की कविता का ध्यान करता हूँ तो डरता हूँ कि ऐसा क्या लिख सकूँगा जो उसके साथ स्मरण किया जा सके।

सपनों को नहीं भूल सका हूँ और इस समय मेरे दरवाज़े पर एक बिल्ली भी रो रही है—मलेटका की पालतू—पता नही क्यों इसी कमरे के आगे। मन में एक अजीब-सी आशंका है और इसे भुलाने का उपाय केवल एक ही है—कविता-सृजन। कुछ लिखने को बैठ जाऊँ और उसी में अपने को डुबा दूँ। पर अब तो सोने का समय है—सो न सकूँ तो लेटने का—थका हूँ।

शुक्रवार, 20 जून, '52

सेन्ट्रल लाइब्रेरी होता हुआ यु. ला. गया।

'Essays Between 1931-'36 समाप्त हो गई।

6.30 पर कमरे वापस आया। खाना खाया। मादमोज़ेल के साथ घूमने गया। रास्ते में पानी बरसने लगा, इससे जल्दी लौटना पड़ा।

रात को मैंने Edith Sitwell की 'Poet's Note Book' समाप्त कर दी। अन्त में उनकी दो कविताएँ भी देखीं। इसमें सन्देह नहीं कि वे कलाकार हैं. उनमें दृष्टिकोण की मौलिकता है; भावों की सुकुमारता भी इन दोनों कविताओं में है। एक का तो विषय ही ऐसा है कि स्त्री बिना पिघले हुए उस पर नहीं लिख सकती 'Mother to her dead child' यद्यपि कई कविताएँ इनकी व्यंग्यपूर्ण भी हैं। उन्होंने स्वयं अपनी श्रेष्ठ कविताओं का एक संकलन किया है। कभी उसे पढ़ना चाहता हूँ।

सोने जाने के पहले तेजी को पत्र लिखा।

थोड़ी देर 'History of Western Philosophy' पढ़ी।

डैफ़ोडिल पर कविता लिखनी ही पड़ेगी। बार-बार उसका ध्यान आता रहा। शनिवार की शाम को फ़ुरसत से यह काम उठाऊँगा कि इतवार को सुभीते से समाप्त किया जा सके। कविता एक प्रकार से मेरे दिमाग़ में आ चुकी है।

शनिवार, 21 जून, '52

यु. ला. में 'Some Chapters from an Autobiography by,' J. B. Yeats with an Introduction by W. B. Yeats आरम्भ की। यह ईट्स के पिता का आत्मचरित है। मि. ह्रोन ने उनके पत्रों का भी एक संकलन प्रकाशित किया है जिससे ईट्स के जीवन और साहित्य पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। यह पुस्तक मेरे पास है। आत्मचरित पढ़ने के बाद घर पर पत्रों का संग्रह आरम्भ करूँगा।

1.30 कमरे पहुँचा। खाना खाया। थोड़ी देर आराम किया। उठकर कमरे का arrangement बदला। यह आदत मैंने तेजी से सीखी है। पढ़ने की मेज़ खिड़की के सामने थी। जब गर्मी पड़ रही थी तब तो हवा अच्छी लगती थी, पर अब कई दिनों से पानी बरस रहा है तो हवा बुरी लगती है। मेज़ अब हटाकर दीवार की तरफ़ कर दी है। लैण्डलेडी ने एक टेबिल लैम्प दे दिया है। इससे मेज़ उधर करने में असुविधा नहीं होगी।

6.30 पर खाना खाया। मादमोज़ेल का नतीजा आ गया है। वे पास हो गई हैं। बहुत खुश थीं। दो-तीन रोज़ में मौखिक परीक्षा के लिए पेरिस जाएँगी। मैंने उनसे कहा, I will miss you. उन्होंने कहा, So will I. मुझे पेरिस आने का निमन्त्रण दिया है, मेरी गाइड बनकर मुझे पेरिस दिखाएँगी। उन्हें और लीथान को लेकर मैं घूमने चला गया। मादमोज़ेल के जाने के समाचार से लीथान भी उदास हो गया है। दो महीने में हम तीनों एक-दूसरे के बहुत निकट आ गए थे। जिससे मिलकर खुशी होगी उससे अलग होकर दुख होगा ही। शायद कभी पेरिस जाना सम्भव हो, शायद उनसे फिर मिलना···

लौटकर मैंने 'डैफ़ोडिल' पर कविता लिखनी आरम्भ की। कोई डेढ़ बजे समाप्त हुई। अब सोने चला···

रविवार, 22 जून, '52

सुबह उठने में देर हो गई, घड़ी ने भी धोखा दिया। आधा घण्टा से भी ज़्यादा सुस्त हो गई थी। तैयार होकर ब्रेकफ़ास्ट करने पहुँचा तो दस से ऊपर हो गए थे। लैण्डलेडी ने व्यंग्य किया, Too late for breakfast and too early for lunch; ख़ैर उसने breakfast दे दिया, चीज़ें सब गरम।

ऊपर आकर मैंने कविता का पहला fair draft तैयार किया। ज़्यादा बदलने की ज़रूरत नहीं पड़ी। दूसरे स्टैंज़ा में डैफ़ोडिल का वर्णन कुछ स्केची मालूम हुआ। उसमें थोड़ा रंग भरना पड़ा। 'आसमान से जैसे तारे पड़े हों उतर' पहले आ जाने से तीसरे स्टैंज़ा के 'जैसे स्वर्ग से मोती पड़े हों टपक' की तैयारी हो गई; दूसरे से तीसरे के रूपक और सम्बन्ध के लिए जैसे पुल-सा बन गया। पहले ड्राफ्ट में इसकी तैयारी की कमी लगती थी और काश्मीर की झील का ध्यान आना कुछ आकस्मिक लगता था। अब अनिवार्य मालूम होता है। पढ़ते समय ध्यान गया कि 'तक', 'ढक', 'झलक', 'टपक', 'झिझक', 'पक', 'तक', 'ढलक' में झील पर चलती हुई नाव को जो पानी की 'थपक' लगती है वह भी मुखरित हो गई है। ऐसा लगता है जैसे इस समय भी नाव पर बैठे झील पर चले जा रहे हैं। डल पर वह नाव-यात्रा इतनी सजीव थी, मेरी स्मृति में, कि उसके साथ पानी के इन थपेड़ों का प्रतिध्वनित होना स्वाभाविक ही था। कविता के अन्त में कैम नदी का वर्णन पहले केवल इस पंक्ति से था।

'जो बहती थी क्षीण-क्षीण'

वह वर्णन भी क्षीण हो गया था। अब उसमें रंग भर देने से वह अधिक उजागर हो गया है।

"और कैम की धारा
जो विलो की झुकी लता को छू-छू
बहती थी मन्द-मन्द,
क्षीण-क्षीण।"

'छू-छू', 'क्षीण-क्षीण' में कैम के बहने का स्वर भी मुखरित हो गया है। 'विलो की झुकी लता' उस ध्वनि का कारण भी बता देती है। जब लता को पानी की धारा छुएगी तो ऐसी ही आवाज़ होगी। कैम के किनारे की विलों की लताएँ ही तो उसकी खास पहचान हैं—उसकी सुन्दरता, गम्भीरता की जान हैं।

अमित और अजित के साथ मैं प्रभात को भी स्मरण करना चाहता था, पर परमात्मा ने उसे मुक्त हृदय से हँसने का अवसर ही कब दिया—पहले माँ गई, फिर पिता। मेरी कामना जैसे 'प्रभात की चिड़ियों' में सन्तुष्ट हुई।

कविता के नए रूप से पूर्ण सन्तुष्ट होकर मैंने उसे कापी में उतारा।

खाना खाने के बाद कुछ देर आराम किया।

कविता तेजी को भेज दी—जहाँ चाहें छपने को भेज दें।

खाना खाकर घूमने गया। लौटकर आया तो डा. तोषनीवाल और मि. कोठारी आए। तोषनीवाल केमिस्ट्री के लेक्चरर थे, प्रयाग विश्वविद्यालय में। सन् '47 में भारत सरकार की सेवा में चले गए। वहाँ से हटे तो व्यापार करने लगे। योरोप की 26 फ़र्मों की एजेन्सी है इनके पास, और ये भारत को साइण्टिफ़िक इन्स्ट्रूमेण्ट्स सप्लाई करते हैं। युनिवर्सिटी के अधिकारियों से बहुत असन्तुष्ट थे। अब प्रसन्न हैं। युनिवर्सिटी में रहते तो वही चार-पाँच सौ पर रुके रहते; अब लाखों की आमदनी-ख़र्च करते हैं, हर दूसरे-तीसरे महीने योरोप से भारत और भारत से योरोप आते-जाते हैं। क़रीब 11 बजे तक बैठे अपने जीवन के अनेक अनुभव बतलाते रहे। लन्दन का पता दे गए हैं; यदि सम्भव हुआ तो 24 को उनसे मिलूँगा।

सोने के पहले 'The History of Western Philosophy' पढ़ी। इस पर बहुत समय लग गया। जल्द ख़त्म करना चाहिए। काम के लिए विशेष उपयोग नहीं हो सकेगा इसका। ईट्स ने तर्क-सम्मत दर्शन से उलझने और अपने दिमाग़ को कार्य-कारण सम्बन्ध से यन्त्र-विजड़ित और व्यवस्थित बनाने का कभी प्रयत्न नहीं किया था। उनके दिमाग़ की दो-चार खिड़कियाँ उस दिशा की ओर सदा खुली रहा करती थीं जिधर से आती बयार ऐसा बहुत कुछ लाती है जो तर्क से सिद्ध नहीं किया जा सकता, बल्कि जो कुछ तर्क-व्यवस्थित वहाँ है भी, उसे झकझोर डालती या उखाड़-पछाड़ देती हैं। रसेल का दिमाग़ हर समय तर्क-सतर्क रहता है। ईट्स और रसेल को साथ रख दिया जाता तो दो ही चार दिन में वे झगड़कर एक-दूसरे से अलग हो जाते।

जब किसी देश से कविता ग़ायब हो जाए तब वहाँ के सब समालोचकों को पकड़कर फाँसी दे देनी चाहिए। कविता के पुनरुद्धार का दूसरा मार्ग नहीं। जब कविता समालोचकों के विवाद का विषय बनकर रह जाती है तो उसका ह्रास हो जाता है (और जब केवल पाठ्यक्रम, तब उसका पतन)। जब साधारण जनता कविता का आनन्द लेती है, तभी वह फलती-फूलती है। ओंकार को ख़त लिखते समय कुछ ऐसा ही ख़्याल आया।

सोमवार, 23 जून, '52

सेन्ट्रल लाइब्रेरी में अख़बार देखता हुआ युनिवर्सिटी लाइब्रेरी गया।

J. B. Yeats की आत्मकथा ख़त्म हो गई। 'The Bounty of Sweeden' निकलवा ली है। Peter Ure की आलोचनात्मक पुस्तक पढ़ने के बाद इसे देखूँगा। सोचा है Yeats के काव्य, नाटक, गद्य के 25-25 पृष्ठ का रोज़ गम्भीर अध्ययन करूँ। बाक़ी समय समालोचनात्मक तथा उन पुस्तकों को देखूँ जिनके साथ मेरे शोध-विषय का सम्बन्ध है। ईट्स जिस irrational के सम्पर्क में आए, जिससे प्रभावित हुए, जिसका उन्होंने अपनी रचना में उपयोग किया उसी को दिखाना और सिद्ध करना तो मेरे शोध-प्रबन्ध का लक्ष्य होगा।

घड़ी बन्द हो गई है। बनने को दी। घड़ी बिना यहाँ एक दिन भी काम नहीं चल सकता। एक एलार्म घड़ी ख़रीद ली है—कमरे में समय देगी—सुबह जगाएगी भी—बाहर तो हर जगह घड़ियाँ लगी हैं।

6½ बजे खाना खाया। घूमने गया—अकेले; मादमोज़ेल पेरिस जाने की तैयारी में व्यस्त। किसी ने कहा था कि आज से कैम के किनारे Mid-summer Fair होगा। सोचा उसी तरफ़ को चला जाऊँ, अंग्रेज़ों का मेला भी देख लूँ और घूमना भी हो जाए—घास के मैदान पर तम्बू-कनात, बिजली की रोशनी, झण्डे, बैलून, बाजा, शोर और मर्द, औरतों, बच्चों की भीड़। सोचा जो अमित, अजित साथ होते तो कितना खुश होते मेला देखकर। बच्चों के लिए तो मेले में स्वाभाविक आकर्षण होता है, बड़ों के लिए भी क्यों होता है। बड़े लोग मेले में जाकर, विशेषकर बच्चों के सान्निध्य में, अपने बीते बचपन को फिर जीते हैं। उस खोए सुखद को फिर जीने की लालसा अस्वाभाविक नहीं कही जा सकती। शायद कोई मनोवैज्ञानिक आवश्यकता हो।

पहले-पहल अंग्रेज़ जिप्सी देखे। जिप्सी घर नहीं बनाते, तम्बू लगाते घूमते-फिरते हैं। यहाँ के जिप्सी मोटर में घर-सा बना लेते हैं और उसी में एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं। जिप्सियों की बहुत-सी मोटरें खड़ी थीं—इनको कैरावान कहते हैं। उनके आगे उनकी औरतें—पोशाक रंगीन, चमकदार, गुरिया-गहने भी अनोखे, बाल काले, छल्लेदार। लोगों को भीतर कैरावान में बुला ले जाती थीं, हाथ देखती थीं, जन्म-पत्री बनाती थीं। कोई जिप्सी ली हो गई है जिसने शायद यह भविष्यवाणी की थी कि एडवर्ड आठवें राजा तो होंगे पर ताज नहीं पहनेंगे; और भी कई प्रसिद्ध लोगों को कुछ बातें बताई थीं जो सच निकली थीं। सब जिप्सी औरतें उसी के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ती थीं। उनके विज्ञापनों में यह लिखा था। एक ने अपने कैरावान पर लगे साइनबोर्ड पर लिखा रक्खा था—'The original daughter of Gipsy Lee'—'Original' का क्या मतलब! —एक के साइन-बोर्ड पर लिखा था Adviser to the Queen of Afghanistan—महज़ विज्ञापन—कौन विरोध करने जाता है। कुछ अंग्रेज़ औरतें कैरावान के अन्दर जाकर उन्हें अपना हाथ भी दिखा रही थीं। एक जिप्सी ने विज्ञापन कर रक्खा था—Come and see the photo of your would be husband and the child!! विवाहित होनेवाली और माता बननेवाली स्त्रियों के लिए कितना कौतूहल होता होगा इसको पढ़कर! अंग्रेज़ और पश्चिम के लोग ऐसी ही बातों पर पूर्ववालों को जंगली, मिथ्यान्धविश्वासी आदि कहते हैं। उनके यहाँ खुद यह सब होता है। हर सभ्यता, हर युग, हर देश-समाज में कुछ इस प्रकार के लोग होते

हैं। उन्हें ठगनेवाले उनका शोषण करनेवाले लोग भी निकल आते हैं। इनसे किसी जाति-समाज का व्यापक चरित्र निश्चय करना ग़लती है। कुछ लोग महज़ कौतूहल के लिए जाते होंगे—देखें जिप्सी क्या कहती है, कुछ ठीक कहती है या नहीं। जिप्सी बहुत चालाक होते हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं। चेहरा देखकर भाँपने का प्रयत्न करते हैं कि मन में क्या हो सकता है। सच तो यह है कि मन का सब कुछ चेहरे पर ही लिखा रहता है। जिप्सी अपनी आँख खुली और चौकन्नी रखते हैं और अपने ग्राहक की हर चीज, हर बात-मुद्रा से कुछ परिणाम निकाल लेते हैं—आप कपड़ा कैसा पहनते हैं, आपके साथ कौन है, आँख से चिन्ता, शोक, हर्ष क्या टपकता है, आपकी अवस्था में किस प्रकार की चिन्ता हो सकती है, आदि-आदि। जिप्सियों की भविष्यवाणी ऐसे दो-अर्थी और अस्पष्ट शब्दों में होती है कि आप उसमें अपने मन का अर्थ पढ़ने लगते हैं, उन्हें सही भी समझते लगते हैं। जिप्सियों के विज्ञापक भी होते हैं जो मेले में घूमते रहते हैं, आपसे आकर कहते हैं कि फ़लाँ-फ़लाँ ने मुझे ऐसी बात बताई थी, वह सच निकली। मैं इससे यह परिणाम नहीं निकालता कि इंग्लैण्ड में सब हाथ दिखाते हैं या जिप्सियों के कहने पर अपने भाग्य या भविष्य पर विश्वास करते हैं। भारत में भी ऐसों की संख्या बहुत कम होगी जो ऐसे भाग्य-विधाताओं पर बिलकुल निर्भर हों। ज़्यादातर लोग अपने साहस से अज्ञात का सामना करते हैं; अपने बल-संघर्ष से अपने भाग्य का निर्माण करते हैं। मूर्ख, कायर, कमज़ोर कहाँ नहीं होते।

पचास प्रतिशत दूकानें जुए के खेलों की थीं—जहाँ हार या जीत क़िस्मत अथवा कौशल पर निर्भर होती है। जुआ खेलाने की बहुत तरह की मशीनें भी थीं। पैसा डालो मशीन घुमाओ-फिराओ। हार-जीत का फ़ैसला मशीन करती थी—हारने के नम्बर पर पैसा गटक जाती थी, जीतनेवाले पर पैसा उगल देती थी।

मेरी-गो-राउण्ड—तरह-तरह के—बच्चों से लेकर बड़ों तक के लिए—उनमें बैठकर अपनी प्रेमिकाओं को चूमने, चाटने, चिपकाने का मौक़ा और आज़ादी। लड़कियाँ खूब चिल्लाती हैं, ई-ई करके। झूले और चक्करों के पास बीसों लड़कियाँ इस इन्तज़ार में खड़ी रहती हैं कि आप इन्हें संकेत करें और साथ लेकर—ज़ाहिर है उनका भी टिकट लेकर—कहीं बैठ जाएँ। I found that men and women are both fond of most violent movements and people have found out ways and means to provide them. बाक़ी दूकानें जादू, कसरत के खेल, बाक्सिंग, खिलौने और बिक्री के अन्य सामानों की; खाने-पीने की चीज़ों की दूकानें भी काफ़ी थीं।

क़रीब दो घण्टे मेले में घूमता रहा।

फिर मुझे सबके बीच अकेले होने की भावना ने घेर लिया और मैं डिग वापस आ गया। मादमोज़ेल के दरवाज़े पर 'नॉक' किया; वे कहीं बाहर चली गई थीं।

लन्दन जाने का सामान ठीक किया। कल सुबह ही जाना है। छः का एलार्म लगाकर सो गया।

मंगलवार, 24 जून, '52

ब्रेकफ़ास्ट जल्दी के लिए रात ही कह दिया था।

8.00 की गाड़ी से लन्दन के लिए रवाना हुआ।

10.45 पर पहुँच गया।

यह लन्दन में अकेले घूमने-फिरने का मेरा पहला मौक़ा था। पहली बार मार्जरी साथ थीं, दूसरी बार वंशो और एलेन।

पहले बी. बी. सी. गया। आक्सफ़र्ड सरकार ट्यूब स्टेशन के पास है।

मि. आलेहसन मौजूद थे। मेरा नाम सुन रक्खा था। लखनऊ बहुत दिन रह चुके हैं। थोड़ी देर बाद मि. हूजा, कुमार आदि, हिन्दी सेक्शन के कई कर्मचारी, आ गए। 11.30 से टेलीविज़न पर टेस्ट मैच हो रहा था। पहले मुझे उन्होंने ले जाकर दिखाया। टेलीविज़न देखने का यह मेरा पहला अनुभव था। माँकड ने कल के खेल में बड़ा नाम किया। इंग्लैण्ड में क्रिकेट के इतिहास में उनका नाम रंजीत और दिलीप के साथ लिया जाएगा। उन्होंने 180 रन बनाए, शायद रंजीत से भी ज़्यादा। इंग्लैण्ड में इन क्रिकेट के खिलाड़ियों के नाम हमारे बहुत-से नेताओं के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। माँकड की सब पत्रों में खुले दिल से प्रशंसा की गई थी। हालाँकि मैच में जीत इंग्लैण्ड की हुई, पर कमेण्टेटर ने माँकड की बहुत सराहना की। हज़ारे दब गए गो कि वे कैप्टेन हैं टीम के। इस 'टूर' में माँकड ने ही यश कमाया।

बी. बी. सी. वालों ने 'केम्ब्रिज जैसा मैंने देखा' पर मुझसे एक वार्ता माँगी है—पाँच मिनट की। मैंने 16 जुलाई को रेकार्ड कराने के लिए कहा है। बीच में मुझे रजिस्ट्री में देने के लिए लेख लिखना है जो 10 जुलाई तक पहुँच जाना चाहिए।

मुझे उन्होंने मेरे गीत 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ मैं' का एक रेकार्ड भी सुनवाया। उसे किसी मिस गौहर ने गाया है। वास्तव में उन्होंने मेरे गीत की हत्या की है। न उन्हें हिन्दी आती है और न कविता के भाव में उनकी पैठ है; संगीत का तो शायद उन्हें क-ख-ग भी नहीं आता। सुना कि मि. आलेहसन की सिफ़ारिश से यह रेकार्डिंग की गई थी। जैसी शीतला देवी वैसा ही उनका वाहन। मिस गौहर को कुछ पारिश्रमिक दिलाने के अलावा कोई और ध्येय मेरी कविता रेकार्ड कराने का नहीं मालूम होता। उच्चारण ग़लत, सुर-ताल का कहीं पता नहीं, गीत शुरू से आख़ीर तक पंचम पर। मैंने तो बीच में ही बन्द करा दिया। काश एच. एम. वी. द्वारा बनाए, नरेन भट्टाचार्य द्वारा गाए गए इस गीत के रेकार्ड को बी. बी. सी. वालों ने सुना होता। मैंने उनसे कहा कि अगर वे लोग मेरे कुछ गीतों को रेकार्ड करना चाहते हैं तो मेरे स्वर में यहाँ मेरी उपस्थिति में करा लें। या मेरे जो रेकार्ड आल इण्डिया रेडियो में मौजूद हैं—इनमें एच. एम. वी. का एक रेकार्ड भी सम्मिलित किया जा सकता है—उन्हें मँगाकर बी. बी. सी. से प्रसारित करें। मेरे गीतों को ख़राब करके प्रसारित करने का लाभ? मेरा तो नुक़सान भी है। भले ही मुझे कुछ पौण्ड-शिलिंग का घाटा उठाना पड़े, लेकिन अगर मिस गौहर और उनकी जैसी गायिकाओं से गवाकर मेरे गीत प्रसारित किए जाते हैं तो मैं उन्हें बन्द करा देना चाहूँगा। उनसे तो मेरी रचना को लोग नापसन्द करने लगेंगे। अगर मैं बच्चन न होकर कोई और श्रोता होता तो मिस गौहर द्वारा उनके गीत का परिचय पाकर मैं उनका कोई और गीत न सुनना चाहता, न पढ़ना।

दिन को मैं नेशनल गैलरी देखना चाहता था। 12.30 पर ट्राफ़ाल्गर स्क्वायर पहुँचा। धूप निकली हुई थी और कैमरा लिये हुए फ़ोटोग्राफ़र घूम रहे थे। एक ने मेरी तस्वीर खींची। उसने मेरे हाथ में थोड़ी-सी मटर रख दी और दो-तीन कबूतर मेरे हाथ पर आ बैठे। बस उसने तस्वीर खींच ली। सोचा ऐसी तस्वीर अमित-अजित को भेजूँगा तो वे देखकर खुश होंगे।

नेशनल गैलरी में आया। एक गाइड-बुक ख़रीद ली, और उसी के सहारे तस्वीरें देखने लगा। 4 बज गए, न खाने की सुध न पीने की। कहाँ-कहाँ से अंग्रेज़ों ने यह ख़ज़ाना इकट्ठा किया है। नेशनल गैलरी तो एक दिन में देखने की चीज़ नहीं। एक सप्ताह किसी के पास हो तो एक-एक तस्वीर को देखे, उसके सामने रुके और उसके सौन्दर्य से अपनी आँखें सेंके। एक-एक तस्वीर के पीछे कलाकारों की कितनी साधना है! जिन्होंने इन तस्वीरों को खोजा, पहचाना, प्राप्त किया, सुरक्षित रक्खा उनकी भी तारीफ़ है। कला की इन निधियों को देख मुझे बड़ी उदासी होती है। अपनी अल्पता खलने लगती है। क्या है जिसका मैं गर्व कर सकता हूँ! सम्भवत: कला का ध्येय है मनुष्य को विनम्र बनाना। पुस्तकालय के अन्दर भी यही भावना उठती है। कितना है ज्ञान का अगम-अपार भण्डार!—इस पारावार के तट पर कुछ सीपियाँ—कुछ चिकने पत्थरों को एकत्र करने के अतिरिक्त मनुष्य एक छोटे-से जीवन में कर ही क्या सकता है। न्यूटन का यह कथन मुझे सदा स्मरण हो आता है। मनुष्य की सामूहिक उपलब्धि भी क्या है! पर उसी में तृण-कण-वत् योगदान शायद कुछ सन्तोष दे सकता है।

गैलरी के कई कमरे जर्मनों की बमबारी से नष्ट हो गए थे। पता नहीं उनके चित्रों को बचाया जा सका या नहीं। कुछ कमरों की मरम्मत हो रही थी; कुछ बन्द थे। यदि युद्धों ने प्राचीन साहित्य और कला को नष्ट कर दिया तो सभ्यता की श्रृंखला टूट जाएगी। सन्तों, कवियों, विचारकों, कलाकारों ने किस-किस तपस्या-साधना से पशु को मानव बनाया है—गो पूर्ण नहीं—क्या वह पूर्ण मानव या मानव भी बनने से पूर्व फिर पशु की श्रेणी में जा गिरेगा। युद्ध, जो मनुष्य को कला के प्रति अन्धा बना दे, समाप्त होना ही चाहिए। उसकी भीषणता सिद्ध करने को इससे बड़ा क्या सबूत हो सकता है। आधुनिक युद्ध आधुनिक मनुष्य और उसके निर्माण को ही नष्ट नहीं कर सकता वह परम्परा से प्रेरणा देनेवाली कला, साधना, तपस्या को भी नष्ट कर सकता है। War will not only kill men but the finest of men that the world has ever produced. It will destroy the faith of man in finer things of life, for he will see the death of that which he considered immortal.

गैलरी से चलने के पूर्व London Museums की एक गाइड-बुक और ली—एक एलबम तेजी को भेजने के लिए खरीदा—Hundred Masterpieces from the National Gallery.

4.30 पर इण्डिया हाउस की चाय-पार्टी थी।

प्रयाग विश्वविद्यालय और भारत के कई परिचित लोग मिले। कृष्ण मेनन का भाषण साधारण था—विद्यार्थियों के काम का। विद्यार्थी यहाँ आकर अपने समय का अच्छा उपयोग करें और भारत जाकर अपने ज्ञान को देश की सेवा में लगाएँ—आदि-आदि—grandmotherly advice.

मिसेज़ मिर्ज़ा का पता लगाते बर्नहोल्ट रोड पहुँचा। मि. इक़बाल अहमद यहीं रहते थे। मिसेज़ मिर्ज़ा के लिए एक उपहार भेजा था।

फिर कुँवर की दोस्त मेडेम ओलाह के यहाँ गया। उसको भी कुँवर की भेजी एक भेंट मुझे देनी थी। कुँवर की याद से उसकी आँखें चमक उठीं।

10.5 की गाड़ी से चलकर 12 बजे रात केम्ब्रिज पहुँचा। बस बन्द, टैक्सी बहुत महँगी। पैदल डिग पहुँचा।

इण्डिया हाउस की पार्टी लन्दन जाने के लिए बहाना भर थी—बेकार की।

नेशनल गैलरी में बिताया समय ही सुफल समझा।
मादमोज़ेल का नोट मिला—Sad—वे दिन को पेरिस चली गईं।

बुधवार, 25 जून, '52

एलेन ने अमरीका के टिकटों का एक पूरा एलबम ही भेज दिया है। किसी समय उसे टिकटों को एकत्र करने का शौक़ था। अब नहीं रह गया। सब शौक़ किसी न किसी दिन ख़त्म हो जाता है। अलबम अमित को भेज दूँगा तो खुश होगा।

दिन भर लाइब्रेरी में काम करता रहा।

रायल इण्डिया सोसाइटी का पत्र मिल गया।

मुझे 27 को आक्सफ़र्ड जाना है। 1 जुलाई को वापस आऊँगा। वाधम कालेज में ठहरना है। संयोग ही है, सी. एम. बावरा इसके वार्डेन हैं, महाराज कृष्ण रसगोत्रा इसी कालेज में रहे थे।

खाना खाने के बाद मेला देखने चला गया। लीथान को साथ ले जाना चाहता था, पर वह आज खाने पर था ही नहीं, बाद को भी नहीं दिखा। मेले में अकेले होना भी एक अनुभव है। मैंने प्रायः ऐसा अनुभव किया है। अकेले में आदमी उदास हो सकता है, खुश नहीं हो सकता। अकेले में खुश हो सकना शायद बहुत बड़ी उपलब्धि है।

किसी मेले में जाकर मनुष्य अपने पूरे जीवन का पर्यवेक्षण करता है—बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक का—बच्चे से लेकर वृद्ध तक मेले के प्रति क्या-क्या भाव दिखाते हैं?—यह दुनिया भी एक मेला है—इसे बच्चा जिस दृष्टि से देखता है वृद्ध उस दृष्टि से नहीं देखता। वास्तव में हर अवस्था के लोग मेले को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखते हैं। बच्चा मेले में भिन जाता है, उसी का एक भाग—एक अंग—बन जाता है। उसकी उत्सुकता, उसका उत्साह, उसका आनन्द मेले को देखकर जहाँ बढ़ता है वहाँ वह मेले को भी कुछ उल्लास कुछ रंगीनी दे जाता है। वृद्ध मेले में आते हैं, पर वे मेले से बाहर रहते हैं; वे उसे देखते हैं, उससे कुछ पाने की ग़रज़ से नहीं; देखने में ही प्रसन्न हो जाते हैं—बच्चे, जवान आनन्द ले रहे हैं, उन्हें इसी की खुशी है—उन्हीं में शायद वे अपने विगत जीवन की विभिन्न श्रेणियों को स्मरण करते हैं। ऐसा स्मरण कुछ सुख-सन्तोष देता होगा तभी तो आते हैं, मेले में। पर मेले से कुछ लेने का समय अब बीत चुका है। शायद अकबर का शेर है—

दुनिया का हूँ, दुनिया का तलबगार नहीं हूँ;
बाजार से गुजरा हूँ, खरीदार नहीं हूँ।

गुरुवार, 26 जून, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर एक नई महिला दिखी। जर्मन डाक्टर है। वोआज़ेन वाले कमरे में टिकी है। लम्बी, स्फूर्तिमय; मुंह, नाक, आँखें बड़ी, बाल छोटे, उम्र चालीस-पैंतालीस के बीच होगी।

जर्मनी इस समय चार शक्तियों के नीचे दबा पड़ा है—ब्रिटेन, फ्रांस, अमरीका और रूस की। क्या वेदना बात करते-करते उस महिला की आँखों से टपकती है, पर उसे विश्वास है, जर्मनी फिर एक होगा। जर्मनी की आत्मा जानती है कि उसे दबाकर रखनेवाले आपस में दुश्मन हैं। वे किसी-न-किसी दिन लड़ेंगे ज़रूर और जर्मनी को आजाद होने का मौक़ा मिलेगा। यह महिला हाइडेलबर्ग की है जहाँ अमरीकियों का प्रभुत्व है। वहाँ उन्होंने अपनी अलग एक बस्ती ही बना ली है जिसे वे Little America कहते हैं।

'Bounty of Sweeden' खत्म हो गई।

ईट्स का प्रथम काव्य-संग्रह 'Crossway' और प्रथम नाटक 'Countess Cathleen' भी समाप्त किया।

पीटर ऊर की पुस्तक के भी कुछ भाग पढ़े।

खाना खाने के बाद घूमता स्टेशन गया—कल की गाड़ी वग़ैरह का पता लेने। 11.18 पर जो गाड़ी केम्ब्रिज से चलती है वह ढाई बजे ऑक्सफ़र्ड पहुँचा देगी। ब्लैच्ली पर गाड़ी बदलनी होगी। वापसी टिकट के 1 पौंड 3 शिलिंग लगेंगे।

रात कुछ देर 'History of Western Philosophy' पढ़ी।

सुबह जाने का सामान वग़ैरह पैक कर लिया है। 4-5 रोज़ बाहर रहना होगा। घर पर तो यह सब काम तेजी करती थीं। परिस्थितियाँ सब कुछ करना सिखा देती हैं।

शुक्रवार, 27 जून, '52

स्टेशन जाने ही वाला था कि रामनिवास का फ़ोन आ गया। वे लन्दन पहुँच गए हैं। कहा है आक्सफ़र्ड से लौटूँ तो सीधे लन्दन जाऊँ। वे लिवरपूल स्टेशन के पास ग्रेट ईस्टर्न होटल में ठहरे हैं।

सामान मेरा तैयार था—एक छोटा बकस, एक चमड़े का थैला—दोनों हाथों में लेकर आसानी से चला जा सके।

ईट्स का काव्य-संग्रह मैंने थैले में रख लिया था। ट्रेन में पढ़ता रहा। अच्छी कविताएँ विभिन्न मनःस्थितियों में विभिन्न प्रभाव डालती हैं—विभिन्न परिस्थितियों में भी। यात्रा की परिस्थिति न जाने क्यों कविता पढ़ने के लिए मैंने बहुत अनुकूल पाई है। शायद मन अधिक एकाग्र होता है। सीट पर बैठे हैं—जब तक स्टेशन न आ जाए कुछ और करना नहीं और यात्रा पूरी करने को जो करना है वह रेल कर रही है। साथी मुसाफ़िर भी आपको छूते-छेड़ते नहीं, न आपका परिचय पूछने हैं, न अपना देते हैं—अजनबियों से बतरस करने या ग्रप लड़ाने का यहाँ वालों को मर्ज़ नहीं। उन्होंने पुस्तक, पत्रिका या समाचार-पत्र पर अपनी आँखें गड़ा दी हैं, न वे चाहते हैं कि वे किसी से बोलें न यह कि कोई उनसे बोले। अंग्रेज़ी रेलों का डिब्बा एक चलता-फिरता रीडिंग-रूम होता है।

ब्लैच्ली पर एक 'बन' और एक चाय की प्याली मिल गई थी—यही लंच।

आक्सफ़र्ड स्टेशन से टैक्सी लेकर वाधम कालेज पहुँचा। पोर्टर के पास मेरे नाम और मेरे लिए रिज़र्व्ड कमरे की सूची थी। मुझे ऊपर का कमरा मिला है—वस्तुतः इसमें दो कमरे हैं—एक छोटा सोने का, जहाँ एक बिस्तर लगा है—आगे को मुँह-हाथ धोने की जगह है—वाश बेसिन लगा है, पर टैप नहीं, पानी 'जग' में रक्खा रहता है। साथ लगा कमरा कुछ बड़ा है पढ़ने-लिखने के लिए—मेज़, कुर्सी, आलमारी, आराम कुर्सी। आलमारी किताबों से भरी है—शायद ये उस विद्यार्थी की हैं जो छुट्टियों के लिए बाहर गया है—उसे विश्वास है कि जब वह लौटेगा अपनी पुस्तकों को ज्यों-की-त्यों पाएगा। विश्वास और ईमानदारी का यह वातावरण बहुत अच्छा लगता है। हर आदमी से एक decent behaviour की प्रत्याशा की जाती है और वह उसे पूरी करता है। और अपने देश में ?···सामाजिक नैतिकता यहाँ बहुत ऊँची है।

मुँह-हाथ धोया था कि दरवाज़े पर दस्तक हुई—एक लड़का बाक़ायदा कपड़ों में चाय रख गया।

ब्लैकवेल ने रायल इण्डिया सोसाइटी के मेहमानों के लिए एक-एक लिफ़ाफ़ा भेज दिया था जिसमें उसकी दूकान का विज्ञापन था, कुछ नई प्रकाशित पुस्तकों की सूचना थी और दूकान पर पधारने का निमन्त्रण था। ब्लैकवेल किताबों की दूकान न होकर पुस्तकालय है। वहाँ लोग नई-नई पुस्तकों को देखने जाते हैं और पढ़ना शुरू कर देते हैं। कोई किताब पढ़ो, कितनी ही देर पढ़ो,—हाँ, उन्हें गन्दी न करो—एक पेंस की चीज़ न ख़रीदो, वे बुरा नहीं मानते। वे विज्ञापित करते हैं कि आक्सफ़र्ड के विद्यार्थी, सबसे अधिक कालेज़ों में नहीं, युनिवर्सिटी पुस्तकालयों में नहीं, ब्लैकवेल की दूकान पर पढ़ते हैं। ऐसी सुविधा देकर वे पुस्तक पढ़ने की आदत लगाते हैं—अच्छी आदत है—आक्सफ़र्ड से बाहर जाकर भी लोग पढ़ना चाहते हैं—किताबें ख़रीदते हैं—वे ब्लैकवेल से ख़रीदने को बाध्य नहीं, पर ब्लैकवेल का नाम आर्डर देते वक़्त कैसे भूल सकते हैं—अच्छा आदमी अपने प्रति किया एहसान नहीं भूलता। किताब का शौकीन ही जानता है कि जिसे पुस्तक ख़रीदने का सामर्थ्य नहीं उसे पुस्तक पढ़ने की सुविधा देना कितना बड़ा उपकार करना है, उसके प्रति। अच्छा आदमी उपकार का बदला चुकाना भी चाहता है। ब्लैकवेल एक व्यापक दृष्टि से अपना विज्ञापन ही करते हैं। संकीर्णता से हम प्रायः अपने व्यापक लाभ से अपने को वंचित करते हैं।

ब्लैकवेल की दूकान पर पहुँचा। अपनी आँखों से देखा, दर्जनों लोग आलमारियों के पास खड़े पुस्तकें पढ़ रहे हैं, कोई-कोई नोट भी ले रहे हैं, किताबों को बड़ी सँभाल से उठाते, पकड़ते, खोलते, कि उनके नयेपन में ज़रा भी फ़र्क़ न आए। आक्सफ़र्ड के विषय में कुछ पुस्तकें देखता रहा, जो एक ख़ास मेज़ पर लगाई गई थीं—यह कल्पना कर कि नवागन्तुक आक्सफ़र्ड के विषय में कुछ जानना चाहेंगे। यह business sense है जो अंग्रेज़ों में खूब है। मैंने एक पुस्तक अमित के लिए ली। आक्सफ़र्ड-केम्ब्रिज के प्रति एक जिज्ञासा का बीज अभी से उनके मन में बोना चाहता हूँ। शायद कभी वे यहाँ आने का स्वप्न देखें और योग्य-अधिकारी बनने का प्रयत्न करें। 5½ बजे दूकान बन्द हो गई। लौटकर वाधम कालेज का चैपेल, बाग़ और डाइनिंग हाल देखा। चैपेल इस समय बन्द था। बाहर से उसकी सादगी और ठोसपन का ही आभास मिला, प्राचीनता का भी। अंग्रेज़ अपनी इमारतों की सफ़ाई तो करते हैं पर समय की मैल, पुरातनता का चिह्न हटाने का प्रयत्न नहीं करते। पुरातनता से उन्हें प्रेम है, वे उसकी रक्षा करते हैं, उस पर अभिमान भी, उसका सत्कार भी। बहुत-सा अभिमान अतार्किक, अद्भुत और मोहग्रस्त भी लग सकता है दूसरों को। जहाँ अपने जातिगत संस्कारों और प्रवृत्तियों की बात आती है, वे दूसरों की राय की परवाह नहीं करते।—हम ऐसा करते हैं, करते आए हैं, करते जाएँगे; आप मत करिए, पर हमें मत रोकिए, ऐसे विषयों पर हमसे तर्क भी मत कीजिए।

बाग़ के नाम पर लम्बा-चौड़ा, खूब हरा, घनी दूब का लॉन है—कुछ पुराने पेड़—नाम नहीं मालूम।

डाइनिंग हाल के फाटक पर तीन मूर्तियाँ हैं। सबसे ऊपर किंग जेम्स प्रथम की और इधर-उधर निकोलस और डोरोथी वाधम की, जिन्होंने इस कालेज की स्थापना की थी। हाल के अन्दर वाधम कालेज से सम्बद्ध अनेक महापुरुषों के चित्र टँगे हैं। रायल इण्डिया सोसाइटी का पहला उत्सव—सहभोज 7 बजे होने को था। अभी कुछ समय था। ब्लैकवेल से आक्सफ़र्ड पर जो किताब लाया था उसे पढ़ता रहा।

पौने सात पर नीचे उतरा। बी. बी. सी. के मि. लिटन और ब्रिटिश कौंसिल के मि. एलटन से मेरा परिचय हुआ। मैं उन्हीं के साथ खाने की मेज़ पर बैठा। मैंने आते ही अपने शाकाहारी होने की सूचना दे दी थी, मेरे लिए वैसा ही प्रबन्ध था।

भोज समाप्त होने पर सोसाइटी के वाइस चेयरमैन सर विलियम बारटन ने भाषण दिया। यह एक प्रकार से उद्‌घाटन भाषण था। विलियम बारटन ने बताया कि सोसाइटी का ध्येय इंग्लैण्ड को पूर्वी देशों की संस्कृति और सभ्यता का परिचय देना है। पूर्व ने पश्चिम को बहुत कुछ जाना, समझा और अपनाया है; क्या हमने उसका आधा, एक तिहाई या एक चौथाई भी पूर्व को समझने का प्रयत्न किया है? हमें पूर्व को जानने का ही नहीं, उससे कुछ सीखने, और उसे अपनी संस्कृति में सम्मिलित करने का भी प्रयत्न करना चाहिए।

उनके पश्चात् आक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी के वाइस चांसलर और वाधम कालेज के वार्डन सर सी. मारिस बावरा ने भाषण दिया। उन्होंने कहा कि पूर्व से हमारे मिलने के क्षेत्र विज्ञान और अर्थशास्त्र में नहीं हैं—वे कविता और दर्शन में हैं। कविता का मैं व्यापक अर्थ ले रहा हूँ—कविता से मेरा तात्पर्य उन सब वस्तुओं से है जिन्हें जीवन की सुन्दरता कह सकते हैं। दर्शन का प्रयोग भी मैं व्यापक अर्थों में कर रहा हूँ—दर्शन से मेरा तात्पर्य उस सच्चाई की खोज से है जो जाति अथवा राष्ट्र की सीमाएँ नहीं मानती। उन्होंने कहा कि पूर्व के प्रति मेरे मन में बड़ा आकर्षण रहा है, अब भी है। मुझे विश्वास है कि पश्चिम के घावों को भरने का काम पूर्व ही कर सकता है। इस विषय में गम्भीरता से सोचने की ज़रूरत है कि पूर्व को हम क्या दें और पूर्व से हम क्या लें। यह मैं स्वीकार करना चाहूँगा कि पूर्व की तुलना में पश्चिम बहुत-सी बातों में अभी up start है जैसे पश्चिम के मुक़ाबले में पूर्व बहुत-सी बातों में नौसिखुआ है। पूर्व में ग्राहकता अधिक है। इसे उनकी हीन भावना समझना भूल होगी। यह उनकी उदारता नहीं तो व्यावहारिकता है, और ये दोनों बातें परिपक्वता से आती हैं। वे जानते हैं कि उन्हें हमसे क्या लेना है। हम दम्भी हैं, हम समझते हैं, हमें देना ही देना है, लेना कुछ नहीं है। पूर्व का काव्य और दर्शन हमें बहुत कुछ दे सकता है। हमारे विज्ञान और अर्थशास्त्र का वे पूरा उपयोग कर रहे हैं। पूर्व-पश्चिम-मिलन का कार्य पूर्व अधिक कर रहा है। पूर्व और पश्चिम का synthesis मानव सभ्यता के भविष्य का कार्यक्रम होना चाहिए। पूर्व इस ओर क़दम बढ़ा चुका है। हम देर करेंगे तो हम असन्तुलित रह जाएँगे, सभ्यता की दौड़ में पीछे भी।

बावरा देखने से प्रतिभा के ठोस भण्डार लगे—क़द छोटा, शरीर भारी, पर ढीला नहीं, अंगों में चुस्ती, आँखों में चमक। उनके व्याख्यान की स्पष्टवादिता, उदारता और दूरदर्शिता से मैं बहुत प्रभावित हुआ। व्याख्यान के अन्त में मैंने उन्हें अपना परिचय दिया और बधाई दी। पत्र-व्यवहार उनका-मेरा हो चुका था। उन्होंने मुझसे पूछा, 'अक्तूबर में आक्सफ़र्ड आ रहे हो न?' मैंने कहा, 'आशा तो करता हूँ—' मन में सोच रहा था कि अगर केम्ब्रिज में दो वर्ष रिसर्च करने की अनुमति मिल गई तो कैसे आक्सफ़र्ड आकर यहाँ नौ मास रह सकूँगा। मेरा विचार है परिस्थिति को समझकर मि. बावरा बुरा नहीं मानेंगे; फिर भी मि. हेन से सलाह करके मैं कुछ समय को आक्सफ़र्ड आ सकता हूँ। मुझे अलग ले जाकर उन्होंने पूछा, किस विषय पर काम कर रहे हो? मेरे बताने पर कि the element of irrational in W. B. Yeats वे एक मिनट चुप रहे, फिर बोले, विषय बहुत

अच्छा है। ठीक विषय चुनना और उसकी सीमाएँ समझ लेना—विस्तार भी—शोध की आधी समस्या को हल कर लेना है। 'A Vision' और 'Per Amica Silentia Lune' को अच्छी तरह पढ़ने की उन्होंने सलाह दी—We still need somebody to say something satisfactory about these two books. उन्होंने कहा कि मि. हेन Yeats पर बहुत बड़ी authority हैं और उनका प्रारम्भिक पथ-प्रदर्शन तुम्हें ठीक रास्ते पर लगा देगा। साहित्यिक शोध के विषय में confused हो जाना बहुत मामूली बात है। फिर तुम्हारा तो विषय ही confusing है और उस पर बहुत confused thinking भी हो चुकी है। जब अक्तूबर में आओगे तब ईट्स पर मैं और बातें करूँगा। तुम्हारे मित्र रसगोत्रा यहाँ रह चुके हैं; आशा है तुम 3-4 रोज़ वाधम कालेज में रहकर प्रसन्न होगे। सम्भव हुआ तो जाने के पूर्व मुझसे मिलना।

भोज के पश्चात् हम लोग (उत्सव में भाग लेने को कोई 100 स्त्री-पुरुष आये हैं) इम्पीरियल फ़ारेस्ट्री इन्स्टीट्यूट गये। वहाँ पर सर नारमन एजली का 'आक्सफ़र्ड के ऐतिहासिक भवनों' पर व्याख्यान हुआ। व्याख्यान को रोचक बनाने के लिए रंगीन स्लाइड्स की सहायता ली गई थी। मैं समझता हूँ व्याख्यान अपने उद्देश्य में सफल हुआ। बहुत-से लोग व्याख्यान-समाप्ति पर आक्सफ़र्ड की इमारतों को देखने के लिए निकल पड़े। अभी काफ़ी उजाला था बाहर। आक्सफ़र्ड शहर केम्ब्रिज से बड़ा मालूम होता है। इमारतें भी भव्य लगीं—गो ऐसा लगा बहुत-सी अच्छी इमारतें बहुत पास-पास बना दी गई हैं, जिससे अलग-अलग जो उनका प्रभाव मन पर पड़ना चाहिए नहीं पड़ता। दो घण्टे बाद कमरे लौटा। आक्सफ़र्ड का कुछ 'वेग'-सा आइडिया हो गया है; कल गाइड-बुक के सहारे कुछ अधिक देख सकूँगा।

कई कमरों के सामने लगा है—Keep silence : Genius at work.

शनिवार, 28 जून, '52

ब्रेकफ़ास्ट के बाद रीडिंग रूम में अख़बार वग़ैरह देखे।

10 बजे से इम्पीरियल फ़ारेस्ट्री इन्स्टीट्यूट में मि. जे. पी. मिल्स, सी. एस. आई., सी. आई. ई. का 'Life and Death in Tribal Assam' पर व्याख्यान था। व्याख्यान मेजिक लैण्टर्न की मदद से दिया गया था और रोचक था। बहुत-सी नई बातें आसामी जंगली जातियों के विषय में मालूम हुईं। पर समझ नहीं आया कि आसाम की जगली जातियाँ किस प्रकार भारत की कला, संस्कृति और सभ्यता की प्रतिनिधि हैं। यह मैं न कहूँगा कि भारत के विषय में ग़लत प्रचार करने के ध्येय से ऐसा व्याख्यान दिलवाया गया। शायद अंग्रेज ऐसी अजीब-ओ-ग़रीब चीज़ों के बारे में अपना ज्ञान बढ़ाने में रुचि रखता है। यदि सोसाइटी का ध्येय केवल कौतूहल शान्त करना और मनोविनोद उपस्थित करना नहीं है तो उसे भारतीय जीवन के गम्भीर पहलुओं को प्रस्तुत करना होगा। सी. एम. बावरा के शब्दों में उसकी कविता को, उसके दर्शन को। जंगली जातियों के विषय में बहुत-सी पुस्तकें हैं, उनके चित्र भी हैं। सोसाइटी उनकी नामावली प्रकाशित कर दे। जो उनके विषय में जानना चाहते हों किताबों से पढ़ लें। जब इतने लोग मिलें तो भारत अथवा पूर्व ने जो सर्वोत्तम सृजन अथवा निर्मित किया है उसकी चर्चा होनी चाहिए, उसे समझने, समझाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

11.15 पर हैलीफ़ैक्स हाउस में काफ़ी थी। जिस टेबिल पर मैं बैठा था

उसी पर एक अंग्रेज़ लड़की आकर बैठ गई। व्याख्यान के बारे में बात शुरू हुई और हमारा परस्पर परिचय हो गया। मिस पारटिंगटन सरल, सौम्य हैं और उनमें नवयुवती का आकर्षक सौन्दर्य है। बाल उनके सुनहरे-सीधे हैं—उन्होंने कर्ली नहीं कराए जैसे प्रायः यहां स्त्रियाँ करा लेती हैं। पाउडर, रूज, लिपस्टिक वे नहीं लगातीं, पर उनके चेहरे पर सद्यःस्नाता की ताज़ी है जो मुझे भागती है। लुभाती है, नहीं कहूँगा। कपड़े सादे पहनती हैं, पर सुरुचि का अभाव नहीं। मिलने-बोलने में उन्हें हिचक-झिझक नहीं; चंचलता से बहुत दूर हैं। भारतवर्ष जाना चाहती हैं और हिन्दी सीख रही हैं। शुरू किया है हिन्दुस्तानी व्याकरण से—भाषा सीखने का सबसे ग़लत तरीक़ा। भारत की कला, संस्कृति, साहित्य आदि के बारे में बहुत-सी सतही बातें जानती हैं। वे मुझे पीटर की पत्नी ब्रैण्डा से मिलती-जुलती लगीं। ब्रैण्डा भारत हो आई हैं और उन्हें देखकर कोई कह सकता है कि भारत का स्पर्श उनमें सहज दृष्टिगोचर होता है। मिस पारटिंगटन में भी भारतीय-तत्त्व कहीं छिपा है। मैंने बात-बात में उनसे कहा कि आपमें मुझे कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि आप भारत में जाकर सहज भाव से वहाँ के जीवन से घुल-मिल जाएँगी। सम्भवतः भारत के विषय में पढ़ते-पढ़ते, अथवा उसके बारे में जिज्ञासा रखते-रखते आप में भारत की एक छाया-सी मुझे दिखाई पड़ती है। उन्होंने बहुत पूछा कि वह कौन-सी बात है, पर मैं कुछ स्पष्ट न कर सका। उन्होंने बताया कि बचपन से उन्हें हिन्दुस्तान के प्रति आकर्षण है और उन्होंने भारत के विषय में काफ़ी पढ़ा है। फिर बहुत संकोच से, बहुत माफ़ी माँगते हुए उन्होंने कहा कि जिन भारतीयों से उनका सम्पर्क इंग्लैण्ड में हुआ है उनसे जो प्रत्याशा वे करती थीं वह पूरी नहीं हुई, एक तरह से वे उनसे निराश हुईं क्योंकि प्रायः वे योरोपियनों के विकृत अथवा नक़ली रूप निकले। मैं शर्मिन्दा हुआ, पर कारण समझता हूँ। हमें स्वयं को जानना और स्वयं होना है। शायद हम भीतर से हैं भी। पर हम दूसरे होने और दूसरे की तरह लगने के मोह में बुरी तरह फँस गए हैं और इसके लिए हमने अपने ऊपर एक कृत्रिम आवरण डाल लिया है—न हम अपने-से दिखते हैं, न दूसरों-से।

11.30 पर डब्ल्यू. जे. आर्चर का व्याख्यान था 'Romance and Religion in Indian Painting' पर। काँगड़ा क़लम के चित्रों से उन्होंने कृष्ण की जीवन-कथा, राधा से उनके प्रेम और गोपियों के साथ उनकी प्रणय-लीला का वर्णन किया। 'गीतगोविन्द' के अनुवाद से बहुत-से उद्धरण उन्होंने दिए। कृष्ण-कथा के प्रचार के उन्होंने तीन कारण बताए। कुछ ने उन्हें अवतारी पुरुष के रूप में स्वीकार किया। कुछ ने उनके माध्यम से अपनी ही मानसिक भावनाओं-वासनाओं को तृप्त करने का बहाना पाया, विशेषकर ऐसे समय जब जीवन के प्रति विरक्ति का दर्शन एक प्रकार से समाज-स्वीकृत हो गया था। बीच में वे कवि, कलाकार, चित्रकार, मूर्तिकार हैं जिन्होंने कृष्ण-जीवन के सौन्दर्य को गीतों में गा, चित्रों में सँवार, मूर्तियों में ढाल एक ओर भक्तों के हृदय को छुआ और दूसरी ओर उस रसिक-वर्ग को सन्तुष्ट किया जो अपनी रागात्मक प्रवृत्तियों को एक रूढ़िग्रस्त समाज में जीवनानुभूतियों में परिणत नहीं कर सकता था। इसमें कुछ सत्य अवश्य है, पर कृष्ण का वर्णन राम के बिना सम्पूर्ण नहीं। जिस जाति या युग ने कृष्ण की कल्पना की उसने राम को भी स्थापित किया। कृष्ण जीवन की स्फूर्ति हैं, राम जीवन के संयम; कृष्ण भारत की कविता हैं, राम भारत के दर्शन। सर सी. एम. बावरा ने कहा था कि हमें भारत की कविता चाहिए, भारत का दर्शन चाहिए। हम उनके सामने अपने कृष्ण और राम को रख दें। भारत की रहस्यमयी मनीषा बहुत-सी गूढ़ बातों को

प्रतीकों और मन्त्रों के द्वारा जन-जन तक पहुँचा देती है। भारत की आत्मा जानती है कि जीवन को पूर्णता से जीने के लिए हमें काव्य भी चाहिए, दर्शन भी चाहिए। शंकराचार्य 'गोपिका वल्लभं' के साथ ही 'जानकी नायकं' को भी स्मरण करते हैं—'कृष्ण' के साथ 'राम' को भी,

अच्युतं केशवं राम नारायणं
कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरिम्
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे।

और चैतन्य महाप्रभु ने उसे और भी सरल करके जन-जन तक पहुँचा दिया है,

हरे राम, हरे राम, राम-राम, हरे-हरे,
हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण, हरे-हरे।

यही कृष्ण और राम भारतीय संस्कृति के अश्वत्थ के मूल में बैठे उसे युग-युगान्त से हरित-भरित-पल्लवित कर रहे हैं।

पर युग की माँग है कि हम अपनी अपूर्णता को भी समझें। काव्य और दर्शन आधुनिक समय में और भविष्य में भी हमारी जाति को पूरी तरह जिला रखने को अपर्याप्त हैं। इस महा अश्वत्थ को विज्ञान की भी आवश्यकता है। हमारा यह विराट वृक्ष आगे तभी जी सकेगा, लहलहा सकेगा, अगर उसको विज्ञान की खाद भी दी जाए। यह हमें पश्चिम से लेनी पड़ेगी, लेनी चाहिए। क्या हम किसी विज्ञान के देवता की कल्पना करके अपने द्विदेव का त्रिदेव नहीं बना सकते? चैतन्य के मन्त्र में 'हरि' तो है ही, हरि के दर्जनों अर्थ हैं; जो 'हरि' को विज्ञान का प्रतीक स्वीकृत करा देगा वह इस देश की उन्नति, प्रगति, समृद्धि का महामन्त्र देगा। पर 'हरि' तो भाग्य का प्रतीक बन गया है—हरि इच्छा भावी बलवाना।···

फिर भी व्याख्यान बहुत सहानुभूतिपूर्ण, बहुत रोचक और संगठित था। मि. आर्चर ने अपना व्याख्यान लिख रक्खा था। अगर वह कहीं छपे तो उसे फिर पढ़ना चाहूँगा। व्याख्यान के पश्चात् मैंने उनके भाषण की प्रशंसा की और उन्हें बधाई दी।

दिन को कुछ शापिंग की, दो-तीन किताबें ख़रीदीं; महाराजकृष्ण को पत्र लिखा।

5.30 पर मिस्टर शरीफ़ुल हसन का 'Modern Pakistani Literature' पर व्याख्यान हुआ। उनका व्याख्यान आम का वह पेड़ था जिसको जादूगर आपके सामने गिलास में उगा देता है और उसमें फल भी लगा देता है। अगर पाकिस्तान अपनी पुरानी जड़ों को हिन्दुस्तान में देखना भुला देगा तो उसका सांस्कृतिक भविष्य अन्धकारमय है। उर्दू और बंगला की जड़ें दिल्ली, लखनऊ, हैदराबाद, कलकत्ता में हैं; उन्हें क्वेटा, कराची, लाहौर, ढाका में ढूँढना सच्चाई को देखते हुए आँख मूँदना है और अपने को धोखा देना है। अगर पाकिस्तानी साहित्य वही है जो 14 अगस्त, 1947 को पैदा हुआ था तो अभी वह ऐसा नहीं कि उसकी चर्चा भी की जाए; और अगर उसमें कुछ तत्त्व या उसका कोई महत्त्व है तो उन तपस्वियों के कारण जिनकी तुर्बतें हिन्दुस्तान की मिट्टी में बनी हुई हैं और जिनकी राख गंगा-जमुना की तह में जमी है। पाकिस्तान का गौरव उनको याद रखने में है, भूलने में नहीं।

डिनर के बाद फ़िल्म-शो था। शान्ति निकेतन, राजस्थान आदि के कई छोटे-छोटे वृत्त-चित्र दिखाए गए। मिस पारटिंगटन मेरे पास ही बैठी थीं। शो के पश्चात् मेरे

साथ लौटीं। मेरी कुछ कविताएँ सुनना चाहती थीं। शायद ही कुछ समझी हों। संगीत से विभोर लगीं। मेरी कविताओं के कुछ अनुवाद चाहती हैं।

दिन को मेरा परिचय मिसेज़ पोची से हुआ। बेलजियन है, किसी पाकिस्तानी मि. पोची से शादी की है। आजकल Asian Students Conference का आयोजन करने में व्यस्त हैं। चाहती थीं, मैं भी कुछ सहयोग दूँ; मैंने माफ़ी चाही—दस जुलाई तक मुझे अपने काम में व्यस्त रहना है—शोध सम्बन्धी प्राथमिक लेख के सम्बन्ध में—और अगर लेख शोध के लिए स्वीकृत हो गया तो अधिक व्यस्त—मुझे तीन बरस का काम दो बरस में करना है—इलाहाबाद में किए हुए काम का जो मूल्य है मैं जानता हूँ अब—शून्य—एक बरस की छूट लेने के लिए सर्टिफ़िकेट लेने को क़सम भर खाने को। मिसेज़ पोची कितने तरह की लिबासों में अवसर-अवसर पर उपस्थित होती हैं! वे यहाँ ख़ासी चर्चा की विषय बन गई हैं, स्वस्थ हैं, नौ-उम्र, खूबसूरत भी।

रात को आक्सफ़र्ड पर एक पुस्तक क़रीब डेढ़ बजे तक पढ़ता रहा। समाप्त करके सोया।

रविवार, 29 जून, '52

सुबह छह बजे का एलार्म लगाया था, सवा सात बजे उठा, इतवार वाली सुस्ती।

ब्रेकफ़ास्ट से लौटा ही था कि सोसाइटी के मन्त्री मि. रिश्टर मेरे पास आए, बोले, बहुत-से सदस्यों ने यह इच्छा व्यक्त की है कि शाम को आप अपनी कुछ हिन्दी कविताएँ सुनाएँ। मैं तैयार हो गया। 5 बजे शाम का समय दिया। लगा मिस पारटिंगटन ने अपने सब परिचितों से मेरे कविता-पाठ की तारीफ़ की है।

कुछ देर कमरे में बैठा कविता का चुनाव करता रहा। भूमिका स्वरूप हिन्दी कविता के विषय में कुछ कहने को कुछ points भी नोट किए। सोचा, जो लोग कविताएँ न समझ सकेंगे उन्हें कुछ के अंग्रेज़ी अनुवाद सुना सकूँगा—'The House of Wine' और रसगोत्रा का किया 'निशा निमन्त्रण' के कुछ गीतों का अनुवाद मैं अपने बेग में डाल लाया था। वंशो के अनुवादों का अभाव खला।

10 बजे से फ़ारेस्ट्री इन्स्टीट्यूट में मिस सिलविया मैथीसन का 'Tribal Life in Baluchistan' पर व्याख्यान था। कल हिन्दुस्तान में आसाम की जंगली जातियों की चर्चा की गई थी, आज पाकिस्तान में बलूचिस्तान की जंगली जातियों के जीवन से उसका सन्तुलन कर दिया गया। लेक्चर स्लाइड की मदद से दिया गया था, रोचक था। जिस बात से मैं विशेष प्रभावित हुआ वह यह थी कि आसाम और बलूचिस्तान एक-दूसरे से दो हज़ार मील से भी ज़्यादा दूरी पर हैं, फिर भी दोनों जगहों की जंगली जातियों के जीवन, रहन-सहन, आमोद-प्रमोद और आदिम नैतिकता में बड़ी समानता है, शायद ये सारी बातें उस जीवन-संघर्ष से रूप लेती हैं जो दोनों जातियों के लिए एक-सा है। जंगली जातियों का नब्बे प्रतिशत संघर्ष जीने और आत्मरक्षा के लिए होता है।—उनका श्रम, राग, द्वेष, युद्ध, उत्सव, यात्राएँ, पंचायतें सब इसी से प्रेरित होती हैं। हम विकसित मानव के जिन व्यवहारों को सभ्यता-संस्कृति-शिष्टाचार का नाम देते हैं वे बीज रूप में आदिम मानव में मौजूद हैं। जहाँ तक सिधाई, खुलेपन, खरेपन, सच्चाई का प्रश्न है वहाँ तक आदिम मानव सभ्य मानव से अधिक विकसित लगता है। सभ्यता ने जहाँ हमें बहुत-सी अच्छी बातें दीं वहाँ कुछ बुरी बातें भी सिखाईं—चतुराई, गोपनीयता, ऊपरी मीठापन, और ईमानदार दिखते हुए बेईमानी करने की कला। लूकस की बताई

मानतेन की बात याद आई, हमें सभ्य बने रहने के लिए कभी-कभी असभ्यों के पास जाना चाहिए।

11.15 पर हैलीफ़ैक्स हाउस में काफ़ी थी।

11.30 से डॉ. रेजिनाल्ड लि मे की 'A Talk on Siam' थी—व्याख्यान स्लाइड की सहायता से।

स्याम के जीवन और संस्कृति पर संस्कृत भाषा और भारतीय सभ्यता का स्पष्ट प्रभाव है। हम भारतवासियों को इसे अधिक विस्तार से समझने और प्राचीन सांस्कृतिक आदान-प्रदान को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए। पूर्वेशिया को सांस्कृतिक एकसूत्रता देने का जो कार्य किसी समय संस्कृत ने किया था आधुनिक समय में हिन्दी कर सकती है अगर वह अपने को व्यापक और समर्थ बना सकें। इस महत्त्वाकांक्षी कार्य के लिए उसे पहले भारत की समस्त भाषाओं के तत्त्व को अपने में समाहित कर पूर्वेशिया की सारी भाषाओं के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करना पड़ेगा। संस्कृत की छोड़ी हुई कड़ियों को फिर से पकड़ लेना हिन्दी के लिए कठिन नहीं होना चाहिए। हिन्दी जब पूर्वेशिया की भाषा, पूर्वेशिया की आवाज़ होगी तभी उसमें बड़ी भाषा के गुण आ सकेंगे। अंग्रेज़ी योरोपियन कल्चर का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है; वह योरोप के प्रत्येक राष्ट्र के भाव-विचार, राजनीतिक-सामाजिक हलचलों से अपने को अवगत रखती है। रूस के साथ राजनीति के क्षेत्र में उसकी पटरी नहीं बैठती, पर हर वर्ष कितनी ही पुस्तकें अंग्रेज़ी में रूस के विषय में छपती हैं, उसके साहित्य का अनुवाद होता है, उस पर आलोचनाएँ होती हैं। हिन्दी के लेखक की हालत गूलर के मसे की है। हिन्दी के ललित साहित्य के अतिरिक्त भी देश-दुनिया में कुछ है, इसका उसे पता नहीं। हिन्दी से मिलती-जुलती भाषा उर्दू की निधियों, उपलब्धियों तक की वह खोज-ख़बर नहीं रखना चाहता। वास्तव में हिन्दी का देशीय और पूर्वेशियाई भाषाओं से समन्वय का काम उर्दू से आरम्भ होना चाहिए। पहले तो उर्दू के समस्त प्रख्यात साहित्य को नागरी अक्षरों में छापकर इतनी टिप्पणी उसके साथ जोड़ दी जानी चाहिए कि साधारण पाठक भी उसे आसानी से समझ सके। फिर जो उर्दू में नवीन लिखा जा रहा है उससे हिन्दी पाठकों को परिचित कराते रहना चाहिए। साथ ही उर्दू लेखकों, कवियों, कथाकारों तथा उनकी कृतियों की आलोचनाएँ भी होनी चाहिएँ। हिन्दी को अपना मानदण्ड तो बनाना ही होगा—स्वस्थ, गुणग्राही, मूल्याधारित और निर्भीक। उर्दू वाले अगर हिन्दी साहित्य की ओर आँख उठाकर नहीं देखते तो हमें उनकी नक़ल नहीं करनी चाहिए। नुक़सान उर्दू का हो रहा है। उर्दू को जानने से हिन्दी को लाभ होगा। हिन्दी की उपेक्षा करके उर्दू घाटे में रहेगी। इसी प्रकार अन्य भाषाओं के साथ भी हिन्दी को अपना सम्बन्ध बना लेना चाहिए। और इस प्रवृत्ति का विकास करते हुए उसे पूर्ण पूर्वेशिया के साहित्य और उसकी भाव-विचार-धारा से अवगत और निकटस्थ होना चाहिए—उनमें और अपने में बहुत कुछ ऐसा मिलेगा जो एक-दूसरे की जैसे ध्वनि-प्रतिध्वनि हो। इस सबसे हिन्दी में क्षमता आएगी। वह भारत के एक भाग की भाषा न होकर पूर्वेशिया की वाणी बन सकेगी। मेरा मतलब इससे नहीं कि तमाम पूर्वेशिया हिन्दी बोलने या लिखने लगेगा। मेरा तात्पर्य है कि हिन्दी के द्वारा पूर्वेशिया मुखरित हो सकेगा। भारत का सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप में पूर्वेशिया के समस्त भू-भाग से रहा है—हमें उसी सूत्र को पकड़कर उसे नया रूप देना, मज़बूत करना है। हिन्दी के लेखकों और कवियों को इन देशों में जाना चाहिए और वहाँ के जीवन और साहित्य को

समझने और हिन्दी में उसे सुलभ करने का उपाय करना चाहिए। साधारण जनता के लिए तो शायद यह सम्भव न हो सके पर भारतीय लेखकों को, अध्यापकों को, बुद्धिजीवियों को अपनी प्रान्तीय भाषा के अतिरिक्त राष्ट्र भाषा और एक और प्रान्तीय भाषा जाननी चाहिए या कोई एशियाई भाषा। जिनकी राष्ट्र भाषा और प्रान्तीय भाषा एक हो उन्हे दो और प्रान्तीय भाषाएँ सीखनी चाहिए जिनमें से एक दक्षिण की भाषा हो या कोई एशियाई भाषा। अधिक विशिष्ट या जिनका कार्य-क्षेत्र अधिक व्यापक हो उन्हें एक योरोपीय भाषा का ज्ञान भी आवश्यक होगा—अंग्रेज़ी हमारे लिए सरल होगी, पर अब हमें अंग्रेज़ी तक सीमित न रहना चाहिए; योरोप की अन्य भाषाएँ भी समविकसित हैं—फ्रेंच, जर्मन, रूसी जैसे। विज्ञान, जिसे हमें अपने जीवन में आधुनिक समय में विशिष्ट स्थान देना है, हमसे माँग करेगा कि हम इन भाषाओं से अपना सम्बन्ध बनाए रहें। वैज्ञानिकों को तो इनमें विशेषज्ञता भी रखनी होगी।

उर्दू ज्ञान को मैं हिन्दी-ज्ञान का अंग ही समझता हूँ। हिन्दी के अच्छे ज्ञान के लिए संस्कृत जानना भी आवश्यक होगा। जो हिन्दी का अच्छा, बड़ा और सशक्त लेखक बनने का आकांक्षी हो उसे इस त्रिदिशा-साधना से मुँह नहीं मोड़ना होगा। भविष्य के हिन्दी साहित्यकार का काम बहुत श्रम-साध्य होगा। अपने को ही पहले देखता हूँ। यह त्रिदिशा-साधना—चाहे बहुत छोटे पैमाने पर ही—अनजाने मैंने की है—और परिणाम असन्तोषजनक नहीं हुआ। यदि यह साधना मैं विधिवत और साग्रह करता! अंग्रेज़ी का जो थोड़ा-बहुत ज्ञान मुझे है और उसके माध्यम से योरोपीय साहित्य-दर्शन में जो मैंने चंचु-प्रवेश किया है, उसने मेरी विचार-प्रक्रिया, मेरी जीवन-दृष्टि, मेरे मान-मूल्यों को निश्चय कुछ विशिष्टता दी है। बच्चन विशिष्ट न दिखे, अलग तो सबसे दिखता है। हाँ, मैंने प्रान्तीय भाषाएँ कोई नहीं सीखीं; अपने ही फ़ारमूले के अनुसार मुझे तो दो सीखनी थीं; एक प्रान्तीय भाषा, एक एशियाई भाषा। बंगला सीखने का अवसर मैंने खो दिया। एक समय 'मुक्त' मुझे सिखाना चाहते थे। तब स्पष्ट होता कि आगे चलकर गीतकार बनूँगा तो वह भाषा अवश्य सीखता जिसमें कवीन्द्र रवीन्द्र ने अपने प्राणों का पूर्ण रस-माधुर्य भर दिया है। अपने को कुछ सन्तोष देने के लिए कह सकता हूँ कि एशिया की एक भाषा मैं जानता हूँ—थोड़ी-बहुत—फ़ारसी जो मैंने लड़कपन में पढ़ी थी, बाद को भी उसे अधिक जानने का कुछ प्रयत्न किया था। फ़ारसी-अरबी हमारे पश्चिमेशिया सम्बन्ध की भाषाएँ बन सकती हैं। भाषा-भूगोल की दृष्टि से हिन्दी (जिसमें उर्दू भी सम्मिलित है) भू-भाग की स्थिति मध्यस्थ की है, वह पूर्व से भी बहुत-कुछ ले-दे सकती है पश्चिम से भी। हिन्दी को उदार, खुली, सहिष्णु, ग्रहणशील और व्यापक होना चाहिए। इसी से वह सम्यक जीवन की सम्यक भाषा बनेगी। तब हिन्दी का लेखक हिन्दी का लेखक ही नहीं भारत का लेखक होगा, एशिया के लेखक होने का भी अधिकारी होगा। लेखक के ही गुण-दोष, त्रुटियाँ, पक्षपात, उदारता, संकीर्णता, लेखक का ही मानसिक कैनवास उसके लेखन—भाषा—में प्रतिबिम्बित होता है। फिर भाषा भाषा-भाषियों को प्रभावित करती है। कुछ को साधना करनी होगी कि बहुत लोग उसका फल पा सकें। जब तक कुछ लोग कठिन मार्ग पर नहीं चलते, वह बहुतों के लिए सरल नहीं होता।

1 बजे सोसाइटी का प्रमुख लंच था। इसमें सम्मिलित होने को इण्डोनेशिया के राजदूत तथा लंका और पाकिस्तान के हाई-कमिश्नर आए थे। भारत के हाई-कमिश्नर का प्रतिनिधित्व शिक्षा विभाग के डॉ. रोज़ारियो ने किया। उनकी

पत्नी भी आई थीं, नेपाली हैं, उनसे मेरा परिचय हुआ, हिन्दी बहुत अच्छी तरह समझती-बोलती हैं। मि. नैस्टर और उनकी पत्नी भी आई थीं। लंच पर मिसेज़ वर्गीश, (ये प्रयाग के डॉ. बी. के. मुकर्जी की भतीजी हैं), श्री और श्रीमती दीनदयाल से भी मेरा परिचय हुआ। एक और अंग्रेज़ लड़की से मेरा परिचय हुआ, बारबरा एलेन से—यह विक्टोरिया-अलबर्ट म्यूज़ियम में भारतीय सेक्शन की इंचार्ज है। उसने मुझे कभी आकर म्यूज़ियम देखने के लिए आमन्त्रित किया है। बड़ी शर्मीली और भोली मुझे लगी थीं; परिचय होने पर मुझसे बहुत-सी बातें करती रही।

लंच पर एक अप्रिय घटना हो गई। पाकिस्तान के हाई-कमिश्नर के सामने सुअर का मांस रख दिया गया। इस पर वे बहुत बिगड़ गए। हाल छोड़ने को उठे, मगर लोगों ने माफ़ी माँगकर उन्हें मना लिया। परोसनेवालों को क्या मालूम कि कौन मुसल्मान है कौन नान-मुसल्मान; कौन क्या खाता है, कौन क्या नहीं। या तो उन्हें पहले से सूचित कर देना था, या जब उन्होंने शूकर-मांस सामने देखा था तो धीमे से कह देते, मैं इसे नहीं खाता। ख़ैर, बात किसी तरह सँभाल ली गई। अधिकारियों के क्षमा-क्षमा शब्द से हाल भर गूँज उठा। पाकिस्तान के हाई-कमिश्नर को अधिक संयम-शिष्टाचार बरतना चाहिए था। लंच के पश्चात् लंका के हाई-कमिश्नर, इण्डोनेशिया के राजदूत की पत्नी तथा सर सी. एम. बावरा के भाषण हुए। वाधम कालेज में स्त्रियों के रहने की आज्ञा नहीं है, परन्तु मि. बावरा ने इस नियम के अपवाद स्वरूप पहली बार कालेज में स्त्रियों के रहने की आज्ञा दी थी; सोसाइटी के उप-सभापति ने इसके लिए सी. एम. बावरा को—कालेज के वार्डन और युनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर, दोनों रूपों में—धन्यवाद दिया। लंच पर ही शाम को मेरे कविता-पाठ की घोषणा की गई।

लंच के पश्चात् सब लोग वाधम कालेज के लान और बाग़ में आये। वहाँ तस्वीरें खींची गईं। मिस पारटिंगटन ने एक तस्वीर मेरी मिसेज़ रोज़ारियो के साथ खींची। वे अपना कैमेरा साथ लाई थीं। लान पर क़रीब एक घण्टे तक सब लोग एक-दूसरे से परिचय करते-कराते रहे। इण्डिया हाउस से आए हुए लोग जल्दी वापस चले गए; कार से आए थे; उन्हें काम था।

3 से 4 तक दक्षिण भारतीय संगीत का कार्यक्रम था। लन्दन से तीन-चार दक्षिणी महिलाएँ आई थीं। उनके गान-वाद्य से सब लोगों का बड़ा मनोविनोद हुआ। मि. डेनिस क्रेग ने धन्यवाद देते हुए दक्षिणी संगीत पर प्रकाश डाला।

4 से 5 तक चाय थी।

फिर हम सब लान पर जाकर बैठे। आसमान खुला था, धूप निकली हुई थी, कुछ लोग पेड़ की छाया में बैठे, कुछ धूप में। कुछ कुर्सियाँ भी कमरों से आ गईं, कुछ उन पर बैठे, कुछ घास पर लेटे, कुछ अधलेटे,—एक आराम और अनौपचारिकता का वातावरण था। लान के चारों ओर रंगीन फूल खिले थे, बीच-बीच में सुन्दर, हरी, बैंगनी पत्तियों के पेड़। इस रंगारंग और रूमानी माहौल में मुझे कविता पढ़ने को बुलाया गया। कविताएँ तो बहुत जगह सुनाई हैं, पर वाधम कालेज के बाग़ में इतने प्राकृतिक और मानवी सुषमा-सौन्दर्य के बीच कविता-पाठ करना बहुत दिन तक नहीं भूलेगा। हिन्दी जाननेवाले बहुत थोड़े थे, फिर भी श्रोताओं की आँखों में उत्सुकता और जिज्ञासा थी। ध्वनि के सहारे भी कुछ समझ लेने का विश्वास वे अपने अन्दर लिए मेरी कविता सुनने को तैयार थे। जैसे ही मैं खड़ा हुआ सभी ने ताली बजाकर मेरा स्वागत किया।

मैंने जयदेव से आरम्भ करके—क्योंकि दो दिन पूर्व मि. आर्चर ने भारतीय चित्र-कला पर बोलते हुए जयदेव के काव्य से लोगों को परिचित करा दिया था—विद्यापति, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा, भारतेन्दु तक हिन्दी गीतों के विकास का संक्षिप्त परिचय दिया। फिर आधुनिक युग में कवीन्द्र रवीन्द्र से प्रेरणा पाकर प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी तक के गीतों की चर्चा की। इसमें लगभग 15 मिनट लगे; आधे घण्टे मैंने अपनी कविताएँ सुनाईं—'मधुशाला' से दस रुबाइयाँ और मिस मार्जरी बोल्टन का अंग्रेज़ी अनुवाद; 'निशा निमन्त्रण' से 5 कविताएँ और महाराजकृष्ण रसगोत्रा का अंग्रेज़ी अनुवाद। इसे संयोग ही कहना चाहिए कि 'मधुशाला' का अनुवाद आक्सफ़र्ड में हुआ था, आक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी की एक बी. लिट्. द्वारा, और इंग्लैण्ड में सर्वप्रथम उसे मैंने आक्सफ़र्ड में ही सुनाया। इसी प्रकार 'निशा निमन्त्रण' के गीतों के अनुवादक श्री रसगोत्रा इसी वाधम कालेज के विद्यार्थी रह चुके थे। अन्त में मैंने मुक्त-छन्द का संक्षिप्त परिचय दिया—'निराला' का नाम आना अनिवार्य था। और 'डैफ़ोडिल' पर लिखी अपनी कविता सुनाई। बाद को संक्षेप में उसका भाव भी समझाया। लोगों ने पसन्द किया। हिन्दी-उर्दू जाननेवालों ने अच्छी तरह समझा होगा, ऐसा विश्वास है।—I have said in this poem that when I was a complete stranger in Cambridge, there were three things that understood me and sustained me—the deffodils, that gave me a smile of recognition, the birds of the morning that sang songs I seemed to have heard somewhere, and the river Cam that flowed slowly touching the low bending willow.

एक अंग्रेज़ महोदय को अन्तिम पंक्तियाँ इतनी अच्छी लगीं कि वे कहने लगे कि आप अंग्रेज़ी की लय को स्वाभाविक ही इतनी अच्छी तरह समझते हैं कि आपको ख़ुद अपनी कविताओं का अनुवाद अंग्रेज़ी में करना चाहिए। मैंने उनसे कहा, I find it difficult to live the same emotions twice; is it not exhausting enough to have lived them even once? To translate successfully, with the same emotions, if it can be made possible—you have to sink into another medium, another language and come out with all the sound and imagery and association and rhythms and that one mysterious element, which is called incantation, that are necessary or inevitable to voice those emotions, A good translation, far from transliteration, is transformation. and, if I may be allowed to use a more poetic word, I should rather say, re-creation or re-incarnation.

मेरे बाद श्री देवेन्द्र भट्टाचार्य ने मध्ययुगीन और आधुनिक बंगला गीतों पर लेख पढ़ा। वे अपने साथ बंगला के कुछ गीतों का रेकार्ड भी लाए थे जिन्हें उन्होंने ग्रामोफ़ोन पर सुनाया।

7 बजे खाना हुआ।

इसके पश्चात् हम लोग फ़ारेस्ट्री इन्स्टीट्यूट गए—सीलोन पर बना एक फ़िल्म देखने। सिनेमा देखकर लौट रहा था कि मुझे अंग्रेज़ दम्पती मिले। पत्नी ने साड़ी पहन रक्खी थी। कुछ अंग्रेज़ महिलाएँ कभी-कभी साड़ी पहनती हैं और उनके सुडौल शरीर पर साड़ी खूब फबती है। साड़ी पहनना भी एक कला है;

जिनको अभ्यास नहीं वे कहीं कुछ ऐसी ग़लती कर देती हैं कि उनका नौसिखुआ-पन, या कहूँ नौशौक़ियापन, फ़ौरन खुल जाता है। अंग्रेज़ महिला साड़ी पहनकर बहुत self-conscious हो जाती है। उसे कुछ डर-सा भी लगा रहता है कि साड़ी कहीं से खिसक न जाए, इस कारण वह इधर-उधर से उसे सँभालती रहती है। पर यह महिला साड़ी बड़े विश्वास के साथ पहने थी—मैंने सोचा शायद भारत में रह आई है। पति अंग्रेज़ युवक उपन्यासकार डेनिस क्रेग थे जिनके एकाधिक उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं; ये भारत हो आए हैं, गांधीजी से मिले थे, सरोजिनी नायडू से इनका परिचय था। इंग्लैण्ड के शान्ति-दल (Pacifist Society) के सदस्य हैं और युद्ध में जाने से इन्कार करने के कारण इन्होंने 9 महीने की कड़ी सज़ा भी भोगी थी। उन्होंने मेरी कविताओं की प्रशंसा की और कहा कि ध्वनि से भी उन्हें उनके भाव समझ में आ रहे थे। आधुनिक हिन्दी काव्य और साहित्य और भारत की वर्तमान विचारधारा के प्रति मैंने इनमें बड़ी जिज्ञासा पाई। गांधीजी के बहुत बड़े भक्त हैं। इन्हें इस बात का गहरा दुःख है कि भारत गांधी-जी के आदर्शों पर नहीं चला और वे अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में अपने स्वप्नों को भंग होता देखते चले गए। जिस देश को उन्होंने एक देखना चाहा था वह उनकी आँखों के सामने एक-दो-तीन टुकड़ों में बँट गया; जिस जाति को उन्होंने एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया था वह दो सफ़ों में बँटकर, एक-दूसरे की दुश्मन बनकर खड़ी हो गई; और जिस अहिंसा से उन्होंने इतने बड़े देश को आज़ाद किया था उसी को भूलकर लोग उसमें ख़ून की नदियाँ बहाने लगे। वे मुझसे पूछना चाहते थे कि भारत में गांधीवाद की पराजय क्यों हुई और क्या गांधीजी की मृत्यु के बाद भारत गांधी को बिलकुल भूलता जा रहा है?...

मैंने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये—गांधीजी के व्यक्तित्व के दो पहलू थे—एक राजनीतिक और दूसरा धार्मिक। राजनीतिक नेता को जाति-जनता परिणामों से जानती-मानती है। जिस दिन पाकिस्तान बन गया उस दिन हिन्दू जनता ने गांधी की राजनीतिक ग़लतियाँ देखनी आरम्भ कर दीं। जहाँ तक गांधी के व्यक्तित्व के धार्मिक पक्ष का सम्बन्ध है, वह इतने अटल सिद्धान्तों पर आधारित था कि उसके पराजय की बात ही नहीं सोची जा सकती। मानवता उन तक न पहुँचकर अपनी ही अपूर्णता स्वीकार करती है। गांधीजी का मार्ग समन्वय का था जो भारत के महान नेताओं का सदा से रहा है। मुसलमानों ने कट्टरता का मार्ग चलाया, उसकी प्रतिक्रिया हिन्दुओं के कट्टरपन्थियों में हुई। गांधीजी ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अपने को चक्की के दो ऐसे पाटों के बीच में पाया जिनसे हर एक उन्हें कुचलने को तैयार था। और वे सचमुच उन्हीं के बीच कुचल गए। पाकिस्तान अंग्रेज़ों के मन में उस दिन से था जिस दिन उन्होंने भारत में अपने साम्राज्य की नींव रखी थी। Divide and Rule उनका सदा से सिद्धान्त था। पाकिस्तान की माँग को प्रश्रय और प्रोत्साहन उन्होंने ही दिया। इसकी प्रेरणा भी सम्भवतः अंग्रेज़ों से आई थी। मैंने ऐसा सुना कि इस आन्दोलन की चर्चा पहले-पहल केम्ब्रिज में हुई। शायद अंग्रेज भी पाकिस्तान बनाने के विषय में बहुत गम्भीर नहीं थे। इसके द्वारा वे कांग्रेस की शक्ति को तोड़ना भर चाहते थे, पर हथियार उनके हाथ से बाहर चला गया। जब दो जातियों की सत्ता स्वीकार कर ली गई, एक प्रकार से, जब पाकिस्तान बनकर—मुसलमानी राज्य बनकर—खड़ा हो गया, तब उस समन्वय की बात खोखली मालूम होने लगी जिसके लिए गांधी और कांग्रेस ने आधी शताब्दी से अधिक समय से प्रयास किया था। जनता सोचने लगी

कि क्या गांधी के मार्ग को छोड़कर उसके विपरीत चलने में ही अब कल्याण नहीं है। इसी वातावरण में गांधीजी की हत्या की गई और वे बहुत-सी बातें की गईं जो समन्वय की नीति के बिल्कुल विपरीत थीं। पर भारत को समन्वय की आवश्यकता आज भी है, गांधी की आवश्यकता आज भी है। प्रारम्भिक जोश-ख़रोश के बाद हमारे विचारक, लेखक, कवि, नेतागण समन्वय की आवश्यकता फिर समझने लगे हैं। मेरी समझ में यह कहना ग़लत है कि भारत में गांधीवाद की पराजय हो गई। गांधी से भारत आज भी प्रेरणा ले रहा है, और गांधीजी के बलिदान ने तो जैसे उनके आदर्शों पर उनके ख़ून की मुहर लगाकर हमारे बीच रख दिया है। भारत कभी इतना कृतघ्न नहीं हो सकता कि गांधी को भूल जाए। आदर्शों पर चल न सकने पर भी उनके प्रति आदर और सम्मान रखना कुछ कम नहीं है। मानवता जब तक उच्चादर्शों के प्रति आस्था नहीं छोड़ देती, मैं उससे निराश नहीं हो सकता। गांधीजी ने मनुष्य को देवता बनाने का स्वप्न देखा था। मनुष्य तो अभी पशु के ही निकट है। गांधी की असफलता केवल उनके आदर्शों की उच्चता सिद्ध करती है। अगर हमें मानवता की प्रगति में विश्वास है तो हम अनिवार्यत: उसी आदर्श की ओर जा रहे हैं जो गांधी का था—गांधी के आदर्शों में गांधीपन नाम की कोई चीज़ नहीं थी, ऐसा स्वयं उन्होंने कई बार कहा था। वास्तव में मानवता की स्वाभाविक गति उसी ओर है। गांधी का व्यक्तित्व, उनके आचार-व्यवहार, चरित, बलिदान मानव के लिए सदा प्रेरक रहेंगे। जैसे अन्य बहुत-से पैग़म्बरों के हैं, फ़र्क़ इतना, वे ऊपर से उतरे पैग़म्बर नहीं, नीचे से उठे पैग़म्बर थे। इसी से शायद अधिक अनुकरणीय।

गांधीजी के निजी (private) जीवन पर ध्यान दें तो शायद हम उसे एक ट्रेजेडी कह सकते हैं। पर गांधी का निजी जीवन कुछ नहीं था। उन्होंने अपने-आपको शून्य बना लिया था; वे तो प्रतीक मात्र हो गए थे। फिर भी अगर हम गांधीजी के जीवन को ट्रेजेडी ही मान लें तो वह उसी प्रकार की ट्रेजेडी होगी जैसी दुनिया के महान कलाकार हमारे सामने उपस्थित करते हैं, जो हमें ऊपर उठाती है, निराश नहीं करती, जहाँ अच्छे और सच्चे मर-मिटकर भी अच्छाई और सच्चाई में हमारी आस्था-श्रद्धा क़ायम रखते हैं, मज़बूत बनाते हैं। ज़रा सोचिए तो, मनुष्य अच्छाइयों में कितना दृढ़ विश्वास लिए बैठा है कि उसे सदा असफल होते देखकर भी उसके विपरीत नहीं बोलता, बोलने की हिम्मत नहीं करता, जाने को अच्छा नहीं समझता। गांधी की पराजय मैं उसी दिन मान सकता हूँ जिस दिन मैं यह मान लूँ कि अच्छाई ने बुराई के सामने हथियार डाल दिए। मैं गांधीजी के संघर्ष, उनकी सफलता या विकलता को भारत में सीमित करके नहीं देखना चाहता। वह तो मानवता का संघर्ष था। उसे मानव के किसी क्षेत्र में होना था। भारत संयोग मात्र था। उससे एक बार फिर मानवता को अपनी अपूर्णता का आभास हुआ। एक बार फिर अच्छाइयों में उसका विश्वास जगा। एक बार फिर उसे सघर्ष करते रहने की प्रेरणा मिली। आदर्शों की प्राप्ति शायद उतनी बड़ी उपलब्धि नहीं जितनी आदर्शों के लिए संघर्ष। गांधी बड़े भोले या नादान होते अगर वे समझते कि वे मानवता के संघर्ष को सरल या समाप्त करने आए हैं। वे समस्या की गहनता और अपनी शक्ति की सीमा के प्रति पूर्ण सचेत थे। अपने प्रयासों से वे सन्तुष्ट न हों पर निराश वे शायद ही रहे हों। ऐसे प्रयासों की शृंखला कभी टूटी नहीं। कोई फिर उन्हें पकड़ेगा, आगे बढ़ेगा, शायद फिर गिरेगा, पर मानवता को कुछ ऊपर उठाकर, कुछ आगे बढ़ाकर। आदर्शों पर शहीद होनेवालों

को पैदा करनेवाली मानवता स्वयं अपने विकास की बहुत ऊँची श्रेणी की उद्घोषणा है।···

वात करते-करते हम वाधम कालेज के बाग़ में पड़ी एक बेंच पर आकर बैठ गए थे। मैंने बातें कुछ इस प्रकार कीं कि डेनिस क्रेग एकदम भावाकुल हो उठे और उनकी आँखों से आसूँ बहने लगे। इसके पूर्व मैंने किसी अंग्रेज़ की आँखों में आँसू नहीं देखे थे। अंग्रेज़ सदा अपनी भावनाओं को छिपाने का प्रयत्न करते हैं। उनकी पत्नी ने उनके आँसू पोंछे। पाँच मिनट तक हम तीनों गम्भीर विचारों के सन्नाटे में डूबे जड़वत् बैठे रहे। 11 बजने को थे। वाधम कालेज के बाग़ में अँधेरा छाने लगा था। शायद बाग़ में हम तीनों को छोड़कर कोई और नहीं था। पेड़ों में होकर हवा सायँ-सायँ करती, उच्छ्वास भरती-सी, बह रही थी। हम तीनों की साँसें भी गहरी चल रही थीं। देश-जाति की सीमाएँ कहीं गल गई थीं। हम तीन मनुष्य एक ही मिट्टी के पुतलों की तरह, एक ही वेदना में बँधे—जिसे वर्जिल ने 'Sunt lacrimee rerum et mentem mortalia tangunt'—a sense of tears in things human—कहा है—मानवता के एक संक्षिप्त आकार बने वहाँ बैठे थे। मुझे तो एक क्षण ऐसा लगा जैसे हम प्रकृति के साथ बिलकुल एक हो गए हैं और यह हमारी ही साँसें हैं जो सर-सर, मर-मर करती वृक्षों में होकर गुज़रती गगन-मण्डल में फैल रही हैं।···

मिसेज़ डेनिस ने कहा, आइए कमरे चलें, हमारे पास बढ़िया बार्ली सिरप रक्खा है, चलें कुछ पियें।—हम तीनों उनके कमरे में आए। डेनिस क्रेग मुझसे कहते रहे कि आपने गांधीजी को एक नये ही रूप में मेरे सामने रख दिया है। मेरे मन में गांधी के पराजय की भावना काँटे की तरह चुभी हुई थी, आपने उसकी पीड़ा को बहुत कुछ कम कर दिया।—थोड़ी देर वहाँ बैठे रहने के बाद मैं अपने कमरे चला आया।

डेनिस क्रेग और उनकी पत्नी कितने भावुक व्यक्ति हैं!

सोमवार, 30 जून, '52

10 बजे से फ़ारेस्ट्री इन्स्टीट्यूट में मि. पी. डब्ल्यू. रासन का व्याख्यान था—'The Indian Sword' पर। मि. रासन ने भारतीय चित्रों और मूर्तियों में दिखाई गई तलवारों का अच्छा अध्ययन किया था। व्याख्यान को स्लाइड्स की सहायता से बहुत रोचक बनाया गया था—सबने बहुत पसन्द किया। सूक्ष्म दृष्टि से साधारण-सी लगनेवाली चीज़ों के पीछे भी कितने रहस्य का उद्घाटन किया जा सकता है। उन्होंने एक सुझाव भी रक्खा, कोई भारतीय चित्रों और मूर्तियों से भारतीय नारियों के आभूषण और वस्त्रों का अध्ययन भी प्रस्तुत कर सकता है।

11.15 से हैलीफ़ैक्स हाउस में काफ़ी थी। व्याख्यान में सिक्खों के कृपाण की भी चर्चा आई थी। काफ़ी के समय मैंने मि. रासन को सिक्खों के कृपाण पर गांधीजी की व्याख्या बताई। एक बार उन्होंने अपनी प्रार्थना सभा में कहा था कि सिक्ख कृपाण लेकर इसलिए चलता है कि उसके अन्दर से कृपाण का भय निकल जाए। उसे कृपाण दूसरों की हत्या करना नहीं, अपना बलिदान करना सिखाती है। अहिंसा के दूत गांधी द्वारा कृपाण की यह मौलिक व्याख्या रासन को बहुत पसन्द आई।

11.30 से मि. जान अरविन का व्याख्यान था—'The influence of India on Portuguese Art' पर। मिस्टर अरविन ने तीन महीने मोटर

साइकिल पर पुर्तगाल में घूम-घूमकर अपने व्याख्यान का मसाला इकट्ठा किया था। पुर्तगाली भारत के दक्षिण में ही रह गए थे—प्रायः किनारों पर ही। उनके साथ कलाकार नहीं आ सके थे कि जो वे भारत में देखें, उसे पुर्तगाल ले जाएँ। अक्सर व्यापारी और पादरी आते थे और इनमें कला के प्रति आकर्षण कम ही होता है। फिर भी भारत-सम्पर्कोत्तर पुर्तगाली कला में भारतीय प्रभाव स्पष्ट है। इसकी सम्भावना अधिक है कि पुर्तगाली विभिन्न क्षेत्रों से भारतीय कारीगरों को पुर्तगाल ले गए हों।

1 बजे लंच हुआ।

3 बजे हम लोग Museum of Eastern Art देखने गए। इसे Indian Institute भी कहते हैं। उसके इन्चार्ज डा. विलियम कोन ने सदस्यों का स्वागत किया और म्यूज़ियम का इतिहास बताया। पूर्वी, विशेषकर भारतीय कला में विविधता का कोई अन्त नहीं। सौन्दर्य के किसी सूक्ष्म दर्शन को अपने अवचेतन में गहरे अवस्थित किए बिना कोई जाति कला की इतनी व्यापक साधना कैसे कर सकती है! कुछ लोग इसका मूल पूर्वी शान्ति और फ़ुर्सत में देखते हैं।—तिब्बत का इन्सान की हड्डी पर किया हुआ खुदाई का काम भी यहाँ पहली बार देखा। मैं नहीं समझता था कि इन्सान की हड्डी का भी हाथी दाँत की तरह उपयोग किया जा सकता है। चीन की कला-कारीगरी के नमूनों का क्या कहना! एक बात मैंने ख़ास नोट की। चीन की कला में चमत्कार दिखाने का ध्येय प्रमुख होता है। आदमी देखकर यह नहीं कहता कितना सुन्दर! वह कह पड़ता है कितना अद्भुत, कितना विचित्र! कला में जातियों का पूरा प्रतिबिम्ब मिलता है।—कुछ इतिहास सम्बन्धी रोचक सामग्री भी है—वारेन हेस्टिंग्स का दस्ताना रक्खा है—उसकी उँगलियाँ बहुत छोटी रही होंगी—शायद ऊन सिकुड़ा हो। अजायबघर अब भी बढ़ रहा है। बहुत से कलाभिरुचि अंग्रेज़ों का भारत और पूर्व से लम्बा सम्पर्क रहा है। डा. कोन ने बताया कि निजी संग्रहों से अब भी दुष्प्राप्य कलाकृतियाँ म्यूज़ियम में आती रहती हैं।

4½ बजे वाधम कालेज के रीडिंग रूम में चाय हुई।

वहीं श्रीमती वर्गीश ने 'सीरियन क्रिश्चियन चर्च' पर एक छोटा-सा व्याख्यान दिया। वे स्वयं एक सीरियन क्रिश्चियन की पत्नी हैं। अंग्रेज़ी बड़ी सहज गति से बोलती हैं—बीच-बीच में मज़ाक का भी पुट रहता है। उन्होंने कहा कि लंका पहले दक्षिण भारत का एक भाग था। इस पर कुछ लंकावालों ने 'नो', 'नो' की आवाज़ उठाई। चट उन्होंने कहा कि अगर आपको यह बुरा लगता है तो मैं इस तरह कहे देती हूँ कि दक्षिण भारत पहले लंका का एक भाग था, बाद को समुद्र ने बीच में आकर दोनों को अलग कर दिया। लोग ख़ूब हँसे। श्रीमती वर्गीश ने बताया कि भारत का सीरियन क्रिश्चियन चर्च वहाँ का सबसे पुराना क्रिश्चियन चर्च है। वह विशुद्ध धर्म प्रचार की दृष्टि से भारत में आया था, ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में ही, और भारत की सहिष्णुता ने उसका स्वागत किया था।

साढ़े पाँच बजे से डॉ. बिलग्रामी का 'The Language Problem in Pakistan' पर व्याख्यान हुआ। बिलग्रामी प्रयाग विश्वविद्यालय के ही पढ़े हैं, बरसों वहीं रहे हैं, अब पाकिस्तान चले गए हैं। लन्दन विश्वविद्यालय में पाकिस्तानी भाषा और संस्कृति के अध्यापक हैं। मैं समझ नहीं पाता कि पाकिस्तानी राष्ट्र भाषा की चर्चा जो उर्दू घोषित की गई है, पाकिस्तान की चहारदीवारी के भीतर कैसे की

जा सकती है। वह पेशावर, रावलपिण्डी, कराची, लाहौर में नहीं जन्मी-बढ़ी। वह उस भाग में जन्मी और पली जो हिन्दुस्तान में है। फिर भी बातें प्रचारात्मक ढंग से की जा रही हैं। इधर एक पुस्तक भी देखी 'Five Thousand Years of Pakistan' पाकिस्तान को वजूद में आए पाँच बरस भी नहीं हुए और पाँच हज़ार बरस का उसका इतिहास बताया जा रहा है—इस्लाम जिसके नाम पर पाकिस्तान का जन्म हुआ उसके भी साढ़े तीन हज़ार बरस पहले से पाकिस्तान था! यानी पड़पोती का जन्म नगड़दादी से पहले!! हिन्दुस्तानियों को चाहिए कि अपने इतिहास और संस्कृति की चर्चा करते समय कम-से-कम 1947 तक वे पूरे, अविभाजित हिन्दुस्तान को अपने सामने रक्खें। पाकिस्तान बनने के पूर्व सारा देश हिन्दुस्तान था और हमारा पिछला इतिहास कोई हमसे छीन नहीं सकता।

डेनिस क्रेग और उनकी पत्नी पेट्रीशिया मेरे पास ही बैठी थीं। पेट्रीशिया तो उठकर चली गईं। डेनिस ने व्याख्यान सुनकर यही कहा कि मुझे इसके भीतर से फ़ासिज़्म की गन्ध आ रही है। फ़ासिज़्म हमेशा कमज़ोर लोग स्वीकार करते हैं, इस कारण उसके पराजित होने में मुझे कभी सन्देह नहीं रहा। इतिहास में जब एक नक़ली (artificial) बात घटित हो जाती है तो उसके समर्थन में बहुत-सी नक़ली बातों का प्रचार करना होता है। पाकिस्तान मुझे नक़ली उपज की तरह मालूम होता है। उसके बारे में जो भी कहा या सुना जाता है उसमें गहराई मुझे नहीं दिखाई देती। मैंने कहा, डेनिस तुम आदर्शवादी मालूम होते हो; हमारे देश में एक कहावत प्रसिद्ध है, चलती का नाम गाड़ी। पाकिस्तान चल पड़ा है, अब उसका नाम गाड़ी है। दुनिया अजीब जगह है; यहाँ गड़ी चीज़ को अगर गाड़ी-गाड़ी कहना शुरू कर दो तो वह चलने लगती है। हर नक़ली चीज़ कभी न कभी अपने असली रूप में प्रकट होगी, इसका विश्वास रखना अच्छा है। पर दुनिया में बहुत-सी नक़ली बातें चल रही हैं; नक़ली चीज़ों की एक श्रृंखला को उन्होंने जन्म दे रक्खा है। विश्व के विकास में इन नक़ली चीज़ों की शायद आवश्यकता है, इन्हीं के सहारे बहुत-सी नक़ली चीज़ें ऊपर आती हैं—शायद उनका ऊपर आना इतना अहितकर नहीं जितना उनका भीतर रह जाना। कभी-कभी रोग को उभारने के लिए भी दवा का प्रयोग किया जाता है। डेनिस असहमत थे। उन्होंने कहा, यह तो नक़ल को ढील देना हुआ (giving a long rope to artificiality)। लोगों में साहस होना चाहिए कि वे नक़ली बातों की पोल खोल सकें, नक़ली को नक़ली कहते रहें। अगर कहने-कहने मात्र से नक़ली असली-सी बन सकती है तो कहने-कहने मात्र से, कम-से-कम नक़ली को नक़ली साबित किया जा सकता है। लोगों को चुप नहीं रहना चाहिए। शोर का जवाब ज़्यादा शोर और प्रचार का विरुद्ध प्रचार (counter propaganda) है। शायद हम लोग पूर्व और पश्चिम के दृष्टिकोणों को उपस्थित कर रहे थे।

7 बजे खाना हुआ।

8.15 से हिमालय की चढ़ाई का एक फ़िल्म दिखाया गया।

योरोपियन पर्वतारोहियों को अपने साहस का गर्व था। उन्हें रास्ते में एक यात्री मिला जो सारे रास्ते को अपने शरीर से नापने की प्रतिज्ञा करके चला था, और उसे पूरी कर रहा था। वह साष्टांग दण्डवत् करता, उठता और जहाँ तक उसका हाथ पहुँचता वहाँ पर खड़े होकर फिर दण्डवत् पड़ जाता। मेरे पास एक योरोपियन सज्जन बैठे थे, उन्होंने कहा, इस प्रकार जाने में तो पहुँचते-पहुँचते उसकी उम्र बीत जाएगी। मैंने कहा, जिसमें इतनी लगन है उसे कम-से-कम इतनी समझ

रखने का श्रेय तो दो कि वह यह जानता है कि इस प्रकार जाने में एक उम्र लगेगी। शायद वह इसी प्रकार की यात्रा में अपनी आयु बिता देना चाहता है। उसकी मंज़िल तो हर क़दम पर है, क्योंकि हर क़दम पर वह अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति कर रहा है। यहाँ ध्येय पहुँचना नहीं, ध्येय यात्रा है। पता नहीं उस योरोपियन ने मेरी बात समझी या मुझे भी तीर्थ-यात्री-सा सिड़ी समझा। जहाँ end प्राप्त करने के लिए कोई भी means ठीक समझा जाता हो वहाँ इस तरह की बात उपहासास्पद लगे तो आश्चर्य क्या है।

फ़िल्म ख़त्म होने पर डेनिस और पेट्रीशिया मुझे अपने कमरे में ले गए। वह मुझे सेब खिलाना चाहती थी; मुझे भूख नहीं थी। बढ़िया-बढ़िया सेब सुन्दर-सी टोकरी में लेकर खड़ी हो गई, बोली, 'Bachchanji, be tempted; yon are a poet, you can not resist long, I know'. वह बाइबिल की उस कथा का हवाला दे रही थी जिसमें ईव ने ऐडम को सेब खाने के लिए प्रलोभित किया था और सेब उस ज्ञान-वृक्ष का फल था जिसे खाने की परमात्मा ने मनाही कर रक्खी थी। उसी को चखने से मानव की सारी विपदा आरम्भ हुई। मैंने सेब उठाया, 'I am tempted, I must keep up the tradition of weakness of my race. Man is Man for his weakness.' फिर उसने बार्ली का शरबत पिलाया। डेनिस और पेट्रीशिया—दोनों मुझसे कुछ कविताएँ सुनना चाहते थे। वे देखना चाहते थे कि ध्वनि और लय के सहारे भी वे कुछ समझ सकते हैं या नहीं। मैंने चार-पाँच कविताएँ सुनाईं, कभी भावानुवाद पहले देकर, कभी बाद को। मुझे आश्चर्य था कि वे दोनों कविता के भाव को ध्वनि मात्र से प्रायः समझ लेते थे। डेनिस को एक बार मैंने देखा कि वह आँखें मूँदे मग्न है। मैंने उससे कहा, 'Denis, you must look at me, I say much with my looks and gesture also.' डेनिस तो और सुनना चाहता था, पर पेट्रीशिया ने मना किया। उसमें बड़ी समझ है। उसने कहा, मैं देख रही हूँ कि बच्चनजी को पढ़ते-पढ़ते शारीरिक ही नहीं, भावात्मक क्लान्ति (emotional strain) भी होती है, ख़ासकर तब जब हम अर्थों से कुछ भी नहीं समझते और वे भावों को ध्वनि-मुद्रा से सजीव करने का प्रयत्न करते हैं। मैंने पेट्रीशिया को धन्यवाद दिया। मैंने कहा, तुममें इतनी सूक्ष्म भावप्रवणता (subtle sensibility) है कि तुम्हें या तो कवि होना चाहिए था या कवि की पत्नी, you could have given him all the understanding he needs. पेट्रीशिया हँसकर अपने पति की ओर देख रही थी और डेनिस खुश हो रहा था कि वह ऐसी सुयोग्य पत्नी का पति है। फिर एकदम से बोला, 'बाबा, ज़्यादा तारीफ़ करके मेरी बीबी का दिमाग़ कहीं न ख़राब कर देना।' डेनिस ने कहा, मैं चाहता हूँ कि पी. ई. एन. की ओर से लन्दन में आपकी कविताओं का पाठ कराया जाए। आपके जो अनुवाद हो चुके हैं उन्हें आप न सुनाएँ; समय और परिस्थिति के अनुसार आप जो भाव-अर्थ बता देते हैं वे अधिक अभिव्यंजक और कवित्वपूर्ण होते हैं। उसने मुझे पी. ई. एन. का सदस्य होने की भी राय दी। इंग्लैण्ड के 80% बड़े लेखक इसके सदस्य हैं।—कविता-पाठ करने की स्वीकृति मैंने दे दी है। डेनिस सेक्रेटरी को लिखकर मुझे सूचित करेगा।

कविता में ध्वनि तो ऐसी होनी ही चाहिए कि वह अर्थ को व्यक्त करे पर मुझे इसका विश्वास कभी नहीं था कि मेरी कविताओं में ध्वनि इतनी सूक्ष्मता से काम कर रही है। ध्वनि को समझनेवाला भी चाहिए। पेट्रीशिया ने ध्वनि से क़रीब-क़रीब हर कविता का भाव बता दिया। शायद मेरी मुद्रा भी सहायक होती होगी।

मेरी कविता मेरे लिए भी उद्बोधक होती है और मैं उसी के भावों में बहने लगता हूँ। मेरे emotional strain को उसने समझ लिया था।

मंगलवार, 1 जुलाई, '52

दस बजे Bodleian Library देखने गया।

पहले हम लोगों ने नये विभाग को देखा। केम्ब्रिज की युनिवर्सिटी लाइब्रेरी इससे अच्छी मालूम हुई। वह अधिक आधुनिक है। इसके बाद हम लोग पुरानी बोडलियन पहुँचे। एक अधिकारी ने आकर उसका इतिहास बताया। यह इंग्लैण्ड का सबसे पुराना पुस्तकालय है। एक समय यहाँ की बहुमूल्य पुस्तकें जंजीर में बाँधकर रक्खी जाती थीं कि कोई उन्हें उठाकर ले न जा सके। बोडलियन का एक अटल नियम यह है कि यहाँ से पुस्तकें बाहर नहीं जाने दी जातीं। एक बार जेम्स प्रथम और क्रामवेल तक को इन्कार किया जा चुका है। उन्होंने भी नियम का आदर किया, उसकी अवज्ञा करना उनके लिए कितना आसान होता। पुस्तकों के यहाँ बड़े रोचक इतिहास बताए जाते हैं। शेक्सपियर का प्रथम फ़ोलियो (1623 का प्रकाशन) तो बहुत क़ीमती समझा जाता है। निश्चय ही किसी पुस्तकालय में आज उसके रखने के लिए सबसे पहले जगह बनाई जाए। पर सत्रहवीं सदी में एक समय ऐसा भी था कि जब जगह की कमी होने से पुरानी और बेकार पुस्तकें हटाई जा रही थीं तब उनमें शेक्सपियर के इस अमूल्य ग्रन्थ को भी मामूली समझकर मामूली क़ीमत पर बेच दिया गया था। दो सौ बरसों तक वह ग्रन्थ बाहर कहीं पड़ा रहा। तब किसी ने उसे अपने घर के पुराने सामान में पाया और सोचा कि यह अमूल्य निधि तो बोडलियन में रहनी चाहिए। वह फ़ोलियो को यहाँ लाया। उसकी जिल्द से पता लगा कि यह वही प्रति थी जिसे बोडलियन ने फ़िज़ूल-सी समझकर बेच दिया था। वह प्रति बहुत-सा पुरस्कार देकर बोडलियन के लिए वापस ले ली गई। अब वह सबसे सुरक्षित स्थान में रक्खी है।

बोडलियन में प्राचीन चित्रों और लेखकों की यादगारों का भी संग्रह है। एक शीशे के खाने में शेली और उनकी पत्नी के बाल की लटें रक्खी हुई हैं। शेली के बाल भूरे-सुनहले थे। वहीं उनकी सोने की घड़ी है जो पानी में डूबते समय उनकी जेब में पाई गई थी। सोफ़ोक्लीज़ के नाटकों का संग्रह भी, जो उनकी जेब में था, पानी के दाग़ सहित, वहीं रक्खा है। जहाँ शेली की इन चीज़ों को इतने आदर और सम्मान के साथ रक्खा जाता है वहीं से शेली विद्यार्थी की अवस्था में निकाल बाहर किए गए थे, क्योंकि उन्होंने नास्तिकता के समर्थन में एक लेख लिखा था। दुनिया जिन्हें पहले ठुकराती है बाद को उन्हीं की पूजा करती है। जिन लोगों को नास्तिक सिद्ध करके या काफ़िर बताकर जीवित जलाया गया था अब उनको शहीद क़रार देकर उनका स्मारक बनाया गया हैं। आक्सफ़र्ड में कई ऐसे लोगों को जलाया गया था। केम्ब्रिज में अधिक उदारता बरती गई है। आक्सफ़र्ड ने सजीव शेली को बहिष्कृत कर दिया, केम्ब्रिज ने बाइरन की तिरस्कृत मूर्ति को भी अपनाया। केम्ब्रिज में कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ किसी सन्त या विद्वान को जलाया गया अथवा फाँसी दी गई हो। आक्सफ़र्ड में राजा ने आकर एकाधिकार जमाया, केम्ब्रिज में सदा प्रजातन्त्र बना रहा। आक्सफ़र्ड दार्शनिकों और विचारकों की नगरी रही है—लॉक, रस्किन, जानसन, एडीसन, कार्डिनल न्यूमन आदि की। कवियों में वहाँ मैथ्यू आर्नल्ड हुए जो कवि की अपेक्षा विचारक और आलोचक अधिक थे। ब्राउन अवश्य वहाँ थे। शेली को अपना कहने का अधिकार आक्सफ़र्ड

को नहीं होना चाहिए।-केम्ब्रिज में स्पेंसर, मार्लो, मिल्टन, वर्ड्सवर्थ, टेनिसन, ग्रे, बाइरन, रूपर्ट ब्रुक, हाउसमन आदि हुए। देखने में भी आक्सफ़र्ड की अपेक्षा केम्ब्रिज अधिक सुन्दर है। शायद केम्ब्रिज पहले आने के कारण उसके प्रति मेरे मन में अधिक ममता हो गई है। केम्ब्रिज मुख्यतया युनिवर्सिटी का नगर है। आक्सफ़र्ड व्यापारी नगर हो गया है, और मुझे शान्ति अधिक पसन्द है। शायद कुछ लोगों को केम्ब्रिज सूना और आक्सफ़र्ड अधिक गुंजान लगता हो।

बोडलियन से हम लोग ऐशमोलियन म्यूज़ियम देखने गए—'म्यूज़ियम' को हम 'अजायबघर' क्यों कहने लगे; म्यूज़ियम तो 'म्यूज़' से है; म्यूज़ कला की देवियाँ थीं, इसे कला-भवन कहना अधिक उपयुक्त होगा। रोम और ग्रीस की जितनी नग्न मूर्तियाँ—पुरुष और स्त्रियों की—यहाँ एक साथ देखीं उतनी पहले कहीं और नहीं देखी थीं। मनुष्य का शरीर कितना सुन्दर हो सकता है, इसकी जितनी सम्यक कल्पना यूनान में हुई थी उतनी अन्यत्र नहीं।—'What a piece of work is a man...in form...the beauty of the world !'—(Hamlet)—यूनानियों ने मानव-शरीर का वैज्ञानिक की दृष्टि से अध्ययन किया था और कलाकार की दृष्टि से मानव-मूर्तियों का सृजन। एक-एक अंग, एक-एक मांसपेशी, एक-एक नस अपने-अपने स्थान पर। जो प्रकृति में है उससे लज्जित होना पाप है। 'Beauty is truth, truth beauty.' इसको यूनानियों ने अपनी कला में चरितार्थ किया था। कहते हैं कीट्स की आत्मा ग्रीक थी, इसी कारण उनकी लेखनी से यह महान सत्य निकला था। शरीर का सौन्दर्य बाह्य सत्य मात्र है, इसे मानने में मुझे संकोच होता है। बिना अन्दर उच्च आत्मा के बाहर से शरीर, सच्चे अर्थों में, सुन्दर हो ही नहीं सकता। यूनानियों की मूर्तियों में उनकी मुख-मुद्रा भी देखने योग्य होती है। यों तो सारा शरीर ही उनमें मन की सुन्दरता, मन का संगठन, मन का स्वास्थ्य अभिव्यक्त करता है, पर मुख विशेषकर भावाभिव्यंजक होता है—मुख बताता है कि पत्थर के शरीर के भीतर एक भावों में धड़कता हृदय भी है। यूनानियों के लिए भीतर और बाहर में कोई अन्तर नहीं था। भीतर को भी वे बाहर से व्यक्त करते थे। मुझे किसी भी नग्न मूर्ति से यह नहीं लगा कि यह शरीर से तो सुन्दर पर मन से असुन्दर या कुरूप है। अगर मन की सुन्दरता का कहीं अभाव है तो तन की सुन्दरता भी कम हो गई है। मुझे रोमन बॉक्सर की मूर्ति अच्छी नहीं लगी। वह मुझे मनुष्य रूप धारी पशु की मूर्ति लगी। उसकी आँखों के पीछे किसी प्रकार का दिव्य अथवा उच्च विचार नहीं झलकता। शायद realism के मापदण्ड से उस मूर्ति को सराहा भी जाए। कुछ पुरुषों की मूर्तियों में सिर और मुख को बिलकुल स्त्री की सुकुमारता लिये दिखाया गया है। सम्भवतः यूनानी कलाकार आदर्श मानव की कल्पना करते हुए पुरुष की बलिष्ठता को नारी की सुकुमारता के साथ देखना चाहते थे। पुरुष है, पर परुष नहीं। इसी प्रकार कुछ स्त्री मूर्तियों में मुख नारी का है, पर शरीर नर की मांसलता लिये हुए, नर की ऊँचाई, भरा और ठोसपन लिये हुए। स्त्री है, पर स्त्री की भीरुता से दूर,—'मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ'—सुकुमार पर निर्बलता से अछूती—सबला अबला। कभी कल्पना करता हूँ कि भविष्य, सुदूर भविष्य में पुरुष स्त्री के बहुत-से गुणों को अपना लेगा जैसे स्त्री भी पुरुष के बहुत-से गुणों को अपना लेगी। तब क्या मन का प्रभाव शरीर पर भी नहीं पड़ेगा? यदि पड़ेगा तो क्या यह सम्भव नहीं कि दूर-सुदूर भविष्य में पुरुष-स्त्री दोनों उभय-लिंगी हों!—एक ही शरीर में पुरुष-स्त्री दोनों—रति में दोनों एक-दूसरे के पुरुष-स्त्री को

सम्पूर्ण सन्तोष-आनन्द देते हुए। क्या अर्धनारीश्वर की कल्पना इसी सम्भावना को लेकर नहीं की गई होगी। एकोहं बहु स्याम्। अर्धनारीश्वरों की सृष्टि अद्भुत होगी ! ! !

कला-भवन से बहुत उदास होकर लौटा। धन्य हैं वे जिन्होंने अपने जीवन को सौन्दर्य की साधना में लगाया है। उन्हीं की तपस्या से मनुष्य मनुष्य बना रहा है—उन्हीं की सहायता से आगे मनुष्य मनुष्य बना रहेगा। जिन्होंने सौन्दर्य का निर्माण किया है उन्होंने मनुष्य को कितनी कुरूपता से बचा लिया है; कितने छल-छुद्र से अछूता रक्खा है, कितनी निम्नता से ऊपर उठाया है।

1 बजे फ़ेयरवेल लंच था।

लंच के बाद बावरा ने मुझे मिलने का समय दिया था—अपनी स्टडी में। बावरा कितनी किताबों से घिरे बैठे थे। ईट्स सम्बन्धी शोध में जो प्रगति मैंने अब तक की थी, उन्हें बताई। उनसे यह बताना इस दर्जे पर मैंने उचित नहीं समझा कि शायद मैं दो वर्ष केम्ब्रिज में ही रहकर अपना शोध पूरा करूँ। किसी प्रसंग में मैंने रूसी कविताओं के उनके अनुवाद की चर्चा चला दी—'A Book of Russian Verse'। बावरा रशन अच्छी तरह जानते हैं। उस किताब में केवल कुछ अनुवाद उनके हैं, शेष औरों के किए हुए; युद्ध के समय रूसी साहित्य में अभिरुचि जगाने को उन्होंने उनका सम्पादन किया था। सुनकर प्रसन्न हुए कि उनकी पुस्तक से कुछ कविताओं के अनुवाद मैंने हिन्दी में किए थे।

मिस पारटिंगटन और मिसेज़ इलीनर से विदा ली। कमरे में आकर सामान ठीक किया। पोर्टर को टैक्सी बुलाने को कहकर डेनिस और पेट्रीशिया से मिलने गया। पेट्रीशिया अपना सामान पैक करने में व्यस्त थी। डेनिस सो रहे थे। पेट्रीशिया से विदा ले मैं बाहर आया। टैक्सी आ गई थी। मैं बैठने जा ही रहा था कि डेनिस भागते हुए आए। शायद पेट्रीशिया ने उन्हें जगाकर बाहर भेज दिया था। उनसे विदा ले स्टेशन आया।

गाड़ी समय से छूटी। डिब्बे में एक जर्मन लड़की टी. राल्फ़ से परिचय हुआ, वह भी आक्सफ़र्ड घूमने आई थी; अब सरे जा रही थी। जर्मन पुरुष-स्त्रियों के मुख पर पराजय का एक भाव झलकता है और उनके प्रति बड़ी दया आती है। अंग्रेज़ तो सफ़र में किसी से बोलता नहीं। मुझे भारतीय जानकर उसने बात शुरू की और रास्ते भर जर्मनी की अनेक बातें बताती रही। उसने कभी केम्ब्रिज आने को कहा है। सरे में किसी अंग्रेज़ परिवार के साथ रहती है। छुट्टियों में आई है, जर्मनी में विज्ञान की विद्यार्थी है।

पैडिंगटन पर उतरकर मैं लिवरपूल स्ट्रीट आया। ग्रेट ईस्टर्न होटल सामने ही दिखाई पड़ा। रामनिवास अपने कमरे में थे। हाथ-मुँह धोकर हम लोग इण्डिया क्लब गए। वहाँ श्री शर्मा और खण्डेलवाल से परिचय हुआ। वहाँ कुछ शरबत वग़ैरह पी हम लोग 'वेगा' गए—शाकाहारियों के रेस्ट्राँ में। खाना खाने के बाद हमने सिनेमा देखने की सलाह की—Scarlet Angel—तस्वीर अच्छी थी। 11 बजे थे, गर्मी अब भी काफ़ी थी, कुछ देर हम ट्रैफ़लगर स्क्वायर में बैठे; वहीं तोषनीवाल मिल गए, फिर एक पार्क में जाकर कुछ कविता-पाठ हुआ—लोग 'मधुशाला' सुनना चाहते थे—'मधुशाला' भी किस-किस ज़मीन पर मुखरित होने को थी। 12½ बजे हम लोग होटल वापस आए। रामनिवास की प्यास अभी नहीं बुझी थी। दो बजे रात तक उन्हें अपनी नई रचनाएँ सुनाता रहा। वे तो गाने की कविता पर रीझते हैं। यह था मुक्त-छन्द।

बुधवार, 2 जुलाई, '52

सुबह देर से उठा। तैयार होकर ब्रेकफ़ास्ट करते-करते 11 बज गए। रामनिवास का पूरा ढंग मारवाड़ी। वे तो अपने साथ मिट्टी भी लाए हैं। जब तक हाथ मिट्टी से न मलें तब तक उसे साफ़ नहीं समझते। गंगाजल भी एक शीशी में है। नहाने के बाद चार बूँद बदन पर छिड़क लेते हैं। एक थैली में कच्चे चने भी लाए हैं जो रात को भिगो देते हैं और सुबह उसका पानी पीते हैं और भीगे चने चबाते हैं। उनका ख़्याल है कि चना खाने से ताक़त आती है। मैं सुबह उनके तैयार होने का तरीक़ा विनोदपूर्वक देखता रहा।

निश्चय हुआ कि दिन का भोजन हम लोग एक्ज़ीटर स्ट्रीट इण्डियन होस्टल में करेंगे। होस्टल में मिश्र से भेंट हुई—पण्डित द्वारिकाप्रसाद मिश्र के सुपुत्र—पहले केम्ब्रिज में थे; अब मेड्रिड जाने को हैं। एक अमरीकन विद्यार्थी से मिला। वह भारत जा रहा था, बनारस में इतिहास पढ़ने के लिए। उसने भारत जाने के लिए 30 पौ. में टिकट लिया जबकि साधारणत: 70-75 पौ. लगते हैं। सिन्धिया नेवीगेशन कम्पनी के जहाज़ों में एक servant cabin भी होता है। ख़ाली होने पर विद्यार्थियों को दे देते हैं। मैंने उस विद्यार्थी की spirit को बहुत सराहा। मुश्किलों के बीच से जो अपनी राह निकालते हैं उनके लिए मेरे मन में बड़ी इज़्ज़त है। यहीं मुझे कलकत्ता के युवक साहित्य-प्रेमी श्री गौरीसरिया मिले। किसी छात्र-समिति के मन्त्री थे, कलकत्ता में; एक बार वहाँ मेरा कविता-पाठ कराया था। बहुत प्रेम से मिले। कहा, आप जब भी लन्दन आएँ, मुझे पत्र डाल दें, आपके रहने-ठहरने का सब प्रबन्ध मैं कर दिया करूँगा।—खाने की चीज़ें यहाँ सब देसी क़िस्म की मिलीं, पर मुझे न जाने क्यों यहाँ यह खाना अच्छा नहीं लगता—कुछ देश का-सा स्वाद नहीं आता। भारी भी होता है। खाओ और सोओ। उबला-हल्का खाना खाओ और काम करो। 'जैसा देस वैसा भेस' ही नहीं 'जैसा देस वैसा भोजन' भी होना चाहिए।

खाना खाने के बाद रामनिवास अपने क म पर चले गए और मैं नेशनल पोर्ट्रेट गैलरी देखने चला गया। एक गाइड ख़रीद ली और उसी के सहारे दो-तीन घण्टे में पूरी गैलरी देखी। इस गैलरी में इंग्लैण्ड के सब सपूतों के चित्र हैं, चाहे उन्होंने किसी भी क्षेत्र में काम किया हो—सैनिकों से लेकर सन्तों तक, घूँसेबाज़ों से लेकर दार्शनिकों तक। बहुत-से प्रतिभावानों की मूर्तियाँ पत्थर या काँसे की भी हैं। ऐसी चीज़ों को देखकर अपने देश में इनका अभाव खलने लगता है। क्या हमारी सरकार दिल्ली में एक ऐसी गैलरी नहीं बनवा सकती, जहाँ भारत के समस्त सपूतों के चित्र मौजूद हों—'देश-विभूति' नाम दें उसे। चाहिए तो यह कि प्रत्येक प्रान्त में इस तरह की गैलरी हो। भारत बहुत बड़ा देश है। सब प्रान्तों के लोग दिल्ली ही क्यों देखने जाएँ। 'प्रान्त-विभूति' में ऐसे लोगों के चित्र रक्खे जा सकते हैं जिनकी ख्याति प्रान्त तक ही सीमित हो। नगरों में 'नगर-विभूति' नाम की संस्थाएँ बनाई जा सकती हैं, इनमें ऐसे लोगों को स्थान मिलना चाहिए जिन्होंने अपने नगर में ही किसी सेवा, योग्यता अथवा उपलब्धि के कारण प्रसिद्धि पाई हो। ऐसे चित्र-संग्रह भविष्य के नागरिकों को कितनी प्रेरणा दे सकेंगे! जो जातियाँ अपने प्रतिभावान पूर्वजों का सम्मान करना बन्द कर देती हैं वे प्रतिभावानों को उत्पन्न भी नहीं करतीं। दुर्भाग्य की बात है कि हमारे शिक्षा-मन्त्री मौलाना आज़ाद में कल्पना की बिलकुल कमी है। शिक्षा देने का तरीक़ा सिर्फ़ स्कूलों में कोर्स बनाना नहीं है—गो

उसमें भी क्या परिवर्तन-सुधार लाया गया है, पूछूँ—विद्यार्थियों को प्रेरित करना भी है। स्कूल, कालेज, युनिवर्सिटियों के अतिरिक्त भी नागरिक शिक्षा के बहुत-से स्थान बनाए जा सकते हैं, उनमें इस प्रकार के संग्रहालयों का पर्याप्त महत्त्व है। इंग्लैण्ड के कितने बाल-वृद्ध-युवा, स्त्रियाँ-पुरुष, इन गैलरियों में घूम अपने देश के महान पुरुषों का परिचय पाते हैं। क्या इनमें से बहुत-से इस बात की आकांक्षा भी मन में लेकर नहीं जाते कि वे जीवन में कुछ ऐसा कर सकें, कुछ ऐसा बन सकें, कि उन्हें भी कभी नेशनल पोर्ट्रेट गैलरी में स्थान मिले। हमें तो एक 'विश्व-विभूति' नाम की गैलरी भी बनानी चाहिए।

मैंने ईट्स के कांस्य-शीश का एक चित्र ख़रीदा—बच्चों के लिए कुछ कार्ड लिये। रामनिवास ने 5 बजे यहीं मिलने को कहा था। गैलरी बन्द हो गई, वे न पहुँचे। हिन्दुस्तानी आदत। मैं एक अख़बार ख़रीद कर सामने की सड़क पर खड़ा पढ़ता रहा। रामनिवास आए तो हम होटल आए। यहाँ खण्डेलवाल हमारी प्रतीक्षा में थे। उन्होंने इण्डिया क्लब में हमें भोजन के लिए निमन्त्रित किया था, वहाँ उनके तीन-चार मित्र और थे—मि. कोठारी, डॉ. गनेश, एक और कोई सज्जन। इसके पश्चात् हम लोग बस से एरोड्रोम गए—मदन लाल हिम्मतसिंहका—गजानन्द के मौसा—भारत से लन्दन आ रहे थे।

बस में ईटन के अध्यापक मि. हेडले की पत्नी से मैंने परिचय किया। उन्होंने कभी ईटन आने को कहा। हेडले केम्ब्रिज युनिवर्सिटी के पढ़े हैं, भारत हो आए हैं। एक ही युनिवर्सिटी के पढ़े-पढ़नेवालों में यहाँ बड़ी जल्दी परिचय हो जाता है। जैसे ही मैंने कहा कि मैं केम्ब्रिज में पढ़ता हूँ वैसे ही मिसेज़ हेडले खिल पड़ीं। आक्सफ़र्ड में जिन लोगों से मेरा परिचय जल्दी हुआ वे सब केम्ब्रिज के पढ़े हुए थे—डेनिस क्रेग, मोयनोहेन, आक्सफ़र्ड न्यूज़ के संवाददाता।

मदन बाबू का जहाज़ आ गया था। कस्टम की सीमा से निकले तो हम लोगों ने उनसे भेंट की। टैक्सी से हम लोग होटल आए। मैं तो सोने चला गया। रामनिवास उनके ठहरने आदि का प्रबन्ध करने लग गए।

मदन लालजी का लड़का—16 वर्षीय—गत वर्ष भारत के स्काउटों के साथ योरोप और इंग्लैण्ड आया था। लौटकर बीमार पड़ा और उसकी मृत्यु हो गई। उनकी पत्नी या उन्होंने और सन्तान न होने के लिए किसी प्रकार का ऑपरेशन करा लिया था। एक मात्र सन्तान की मृत्यु हो जाने से रामनिवास ऐसा समझते हैं—मदनबाबू सपत्नीक किसी प्रकार का उपचार कराने आए हैं कि फिर सन्तान हो सके। रामनिवास का यह भी ख़्याल है कि विजय की मृत्यु के पीछे कोई रहस्य है। विजय को मैं मिला था—स्वस्थ, सुन्दर, तेज़, होनहार लगता था। कुसुम के विवाह में गया तो वह बीमार था, देखकर मैंने नहीं समझा था कि उसकी मृत्यु इतनी जल्दी हो जाएगी।

गुरुवार, 3 जुलाई, '52

सुबह तैयार होने में रामनिवास ने इतनी देर लगा दी कि मैं तैयार होकर निकला तो साढ़े नौ बजे थे। मुझे केम्ब्रिज के लिए दस बजे की गाड़ी पकड़नी थी। जल्दी-जल्दी ब्रेकफ़ास्ट किया। रामनिवास अपने मारवाड़ी नाश्ते का मज़ा ले रहे थे—मठरी, दालमोठ, लड्डू—सब घर से साथ लाए हैं। 5 मिनट गाड़ी छूटने में रह गए तब हम स्टेशन की ओर दौड़े। पता नहीं था कि गाड़ी किस प्लेटफ़ार्म से जाती है, पूछ-पाछकर किसी तरह गाड़ी तक पहुँचा; बक्स लेकर भागने में तबियत दुरुस्त

हो गई; बैठा ही था कि गाड़ी ने सीटी दी। रामनिवास के साथ हमेशा यह होता है, जब तक चलती गाड़ी में सामान फेंककर न बैठाएँ तब तक उन्हें सन्तोष नहीं होता।

रात से वर्षा हो रही थी, इस समय भी पानी बरस रहा था। डेढ़ घण्टे का सफ़र। वर्षा में धुले इंग्लैण्ड के खेत, गाँव, नगरों को देखता केम्ब्रिज पहुँच गया।

कमरे में पहुँचा तो लगा जैसे सफ़र से अपने घर पहुंच गया हूँ—अपना परिचित कमरा, परिचित पुस्तकें, परिचित मेज़, तेजी और बच्चों के चित्र। तेजी, सुशील और बी. बी. सी. के पत्र मिले। तेजी ने लिखा था कि उनकी तबियत ख़राब है, इससे कुछ चिन्ता हो गई, झा साहब ने लन्दन आने के कार्यक्रम के बारे में भी सूचित किया था। 16 को बी. बी. सी. के लिए एक वार्ता रेकार्ड कराने को लन्दन जाना होगा। तभी झा साहब से भी मिलूंगा, वे 13 से 22 तक लन्दन में रहेंगे, सेवाय में ठहरेंगे।

अमित को आक्सफ़र्ड पर लाई पुस्तक भेजी। तेजी को पत्र लिखा। सन्दूक से सामान वग़ैरह निकालकर लगाए, कमरा ठीक किया। कमरे में ही लंच लिया। सो गया। कई दिनों की दौड़-धूप से थका था।

खाने की मेज़ पर किसे देखता हूँ! मादमोज़ेल वोआज़ेन! पेरिस से लौट आई थीं। मौखिक परीक्षा में फ़ेल हो गई थीं। बहुत दुखी थीं। केम्ब्रिज में असफल विद्यार्थियों को पुनः प्रवेश देने का नियम नहीं। शनिवार को एडिनबरा चली जाएँगी—शायद वहाँ उन्हें प्रवेश मिल जाए।

खाने के बाद घूमने गया। मादमोज़ेल को साथ ले गया। रास्ते में उन्हें समझाता-बुझाता रहा। तुम्हारी अभी उम्र ही क्या है! सारा जीवन तुम्हारे सामने पड़ा है। जीवन में सब मनोनुकूल ही मिलेगा ऐसी प्रत्याशा लेकर चलना भ्रम होगा। सफलताएं-विफलताएँ दोनों आएँगी। कोई सदा सफल, सदा विफल शायद ही होता हो। यह तो तुम जानती हो कि सबकी सीमाएँ हैं। मनुष्य अपनी सीमाओं को चुनौती देता है, इसी से प्रगति करता है। सीमा भी मनुष्य को चुनौती देती है। जहाँ उसका क़िला मज़बूत हो वहाँ हम अपनी कमज़ोरी क्यों न मान लें। केम्ब्रिज में अपनी असफलता को स्वीकार करो, पर निराश न हो। निराशा तुम्हारी शक्ति को कम करेगी, बढ़ाएगी तो हरगिज़ नहीं। आशा लेकर एडिनबरा जाओ, काम करो, केम्ब्रिज के अनुभव का भी लाभ उठाओ, असफल होने से यहाँ के काम का अनुभव तो व्यर्थ नहीं गया। वहाँ तुम्हें अवश्य सफलता मिलेगी।···

मादमोज़ेल चुप सुनती रहीं···किसी के उपदेश से अपने दुख के ऊपर उठना कितना कठिन होता है, मैं जानता हूँ।

उन्हें उनके कमरे में छोड़कर अपने कमरे में आया···।

उदासी, संवेदना, यौनोत्तेजना में सम्बन्ध?···मादमोज़ेल ने कहा था—Life at its deepest is not absurd, as Camus says, but above-meaning···

लीथान के कमरे में जाकर 9 बजे की ख़बर सुनी।

उसके बाद ह्वाइटहेड के ऊपर बर्ट्रेंड रसेल की वार्ता थी। रसेल के स्वर में कुछ बड़ी definiteness है। लगता है गणित बोल रही है—एक बात कह रही है और इस विश्वास से कि दूसरी हो ही नहीं सकती। गणित के अध्ययन ने रसेल

की शैली को प्रभावित किया है, बनाया है। बातें जितनी भी उन्होंने कहीं सब निश्चित, सीधी; स्वाभाविकता से, पर दृढ़तापूर्वक। सरल शैली पर अधिकार पाना कितना कठिन है। बड़ा लेखक ही सरल हो सकता है। सरल शैली ही सजीव होती है, जीवन के समीप होती है। साहित्यिकता जीवन से दूर ले जाती है। सच्चा साहित्य जीवन के पास का साहित्य है—जीवन के सम्पर्क का। रसेल को अब शैली से प्रभाव नहीं उत्पन्न करना है—अब उनकी बात, उनका अनुभव, उनके परिणाम ही शैली हैं।

शुक्रवार, 4 जुलाई, '52

ब्रेकफ़ास्ट के बाद मि. हेन को फ़ोन किया—मिलना चाहता था। उन्होंने फ़ौरन बुला लिया। उन्हें मैंने सर मॉरिस बावरा से अपनी भेंट का समाचार दिया। मि. हेन ने इस बात पर बहुत सन्तोष प्रकट किया कि बावरा ने मेरे शोध के विषय को पसन्द किया। लेख के विषय में उन्होंने कहा कि वह सीधे रजिस्ट्री में जाना चाहिए। कालेज में नाम लिखाने के सम्बन्ध में उन्होंने एक फ़ार्म भरने को दिया। ईट्स के ऊपर जो लेखादि उनके पास रक्खे हैं उन्हें पढ़ने की सलाह दी।

दिन भर यु. ला. में रहा।

'The Rose' और 'The Wind among the Reeds' समाप्त की; नाटकों में 'The Land of Heart's Desire' और 'Cathleen Ni Houlihan' ख़त्म की। 'Celtic Twilight' भी आज आरम्भ कर दी। समालोचना में पीटर ऊर की पुस्तक अभी चल रही है। दत्त ने उसे अपने नाम इशू करवा दिया है। रविवार को घर पर उसे समाप्त कर दूँगा।

खाना खाने के बाद घूमने गया। मादमोज़ेल और लीथान साथ गए। लीथान ने बताया कि वह भी कल तीन मास के लिए मैनचेस्टर जा रहा है। मादमोज़ेल भी कल ही चली जाएँगी। मैं बहुत पहले से यह डिग छोड़ देना चाहता था, पर अपने इन दो साथियों के कारण रुका था। लौटते समय दोनों को आकलैण्ड रोड पर छोड़कर मैं दत्त के यहाँ चला गया। कमलाजी से कह आया, कोई अच्छी और सस्ती डिग का उन्हें पता हो तो मुझे सूचित करें।

रात को लीथान कमरे में आ गया और बड़ी देर तक बातें करता रहा। इतने दिन का साथ छूटने पर उसे भी बुरा लग रहा था, मुझे भी; कमरे में लाइट देख मादमोज़ेल भी आ गईं, गुडबाई कहने को, सुबह न जाने वक़्त मिले, न मिले, सब लोग जल्दी में होंगे। हर एक ने हर एक के लिए शुभकामनाएँ देकर Good night की।

वे लोग चले गए तो मेरा मन बहुत उदास हो गया। कल से तो यहाँ और अकेलापन अनुभव होगा।

रात को बड़ी देर तक सूर के गीत पढ़ता रहा।

शनिवार, 5 जुलाई, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर मादमोज़ेल और लीथान से अन्तिम बार विदा ली। दोनों सुबह की गाड़ियों से जा रहे थे।

डेनिस ने अपना एक उपन्यास 'The Memory is the Scar' भेज दिया था। साथ एक पत्र भी था। भेंट के शब्दों में उसने मेरी कविता और मेरे विचारों को स्मरण किया था। पत्र में उसने मुझे अपने घर बुलाया था, उसके और पेट्रीशिया

के साथ कुछ दिन बिताने को। पत्र में एक वाक्य था—It seems to me that something of the spirit of Gandhiji lives in you, and finds expression in a very individual way wholly your own in your poetry and thought.—यह मेरी कविताओं को सुनकर एक विदेशी के विचार हैं और अपने देश में गांधीजी पर लिखी मेरी कविताओं पर मुझे क्या-क्या नहीं कहा गया। किसी पत्रिका में—शायद 'हंस' में—तो यहाँ तक कहा गया था कि गांधीजी की मृत्यु पर मैंने पहले से ही कविताएँ लिख रक्खी थीं और उनके मरने पर मैंने अपना स्टाक रिलीज़ कर दिया! अभी थोड़े दिन हुए तेजी और राजन ने अपने पत्रों में लिखा था कि शायद जयपुर से कोई पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसका शीर्षक है—बापू के तीन हत्यारे—पन्त, बच्चन और नरेन्द्र। जिस देश में गांधी को गोली मारनेवाला पैदा हो सकता है, वहाँ पन्त, बच्चन, नरेन्द्र को गाली देनेवाले पैदा हों तो कोई अचरज की बात नहीं है। गांधीजी ने साम्प्रदायिकता, असहिष्णुता, पशुता की बलि वेदी पर अपने प्राण समर्पित किए तो हमें मूर्खता, ईर्ष्या, द्वेष के घेरे में कुछ अपयश उठाने को तैयार रहना चाहिए। अपनों की शिकायत भी किससे की जाए। वे जो हैं, जैसे हैं; जो कहते हैं और समझते हैं उसके लिए हम भी तो उत्तरदायी हैं। संकीर्णता के घेरों को तोड़ने और उदारता के द्वारों को खोलने के लिए हमने अभी क्या किया है?

कालेज में नाम लिखाने का फ़ार्म भरकर आज मैंने दे दिया।

दिन में यु. ला. में रहा। 'The Green Helmet and other poems' समाप्त की। कुछ पृष्ठ 'The Responsibilities' के भी पढ़े। पुस्तकों के शीर्षक भी ईट्स के मस्तिष्क पर बहुत प्रकाश डालते हैं। नाटकों में 'The Pot of Broth' समाप्त किया। कुछ पृष्ठ 'The King's Threshold' के पढ़े।

शनिवार था, लाइब्रेरी एक बजे बन्द हो गई थी। लंच के बाद सो गया।

शाम को कुछ पृष्ठ डेनिस के उपन्यास के पढ़े। प्रारम्भ में कम-से-कम न रोचकता है न पकड़।

खाना खाने के बाद घूमने गया—अकेले।

और अकेले में जो मन में उमड़ता-घुमड़ता है वह कविता की खेती है।

उसे सींचूं कि सूखने दूँ—समझ नहीं पाता।

रविवार, 6 जुलाई, '52

आज दिन भर पढ़कर 'Towards a Mythology' खत्म कर दी। नोट्स काफ़ी लिये हैं। 'A Vision' और 'Per Amica' के सम्बन्ध में कुछ नई बात पीटर ऊर ने कही हैं। साथ ही उन्होंने यह भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि जिस फ़िलासफ़ी का प्रतिपादन ईट्स ने 'A Vision' में किया वह बहुत पहले से उनके दिमाग़ में थी और उससे उनकी पहले की भी रचनाएँ प्रभावित थीं। लेखक 'A Vision' को ईट्स की मौलिक और निजी फ़िलासफ़ी समझता है जिस पर मुझे शुरू से सन्देह है।

ईट्स का, और ईट्स पर जो साहित्य मैंने अब तक पढ़ लिया है, वह मुझे अपने शोध की दिशा बतलाने के लिए पर्याप्त है।

शाम को सब पिछले नोट्स उलट-पुलट गया हूँ।

आज जल्दी सोने जा रहा हूँ। कल खूब ताज़ा होकर उठूं। कल का पूरा दिन मैंने लेख लिखने के लिए रिज़र्व कर रक्खा है।

इस लेख पर ही निर्भर करेगा कि युनिवर्सिटी मुझे रिसर्च स्कालर के रूप में एडमिट करेगी या नहीं।

शोध की दिशा के विषय में मैं स्पष्ट हूँ। भरसक तैयारी कर ली है, अपनी बात को तरीक़े से रखने की। आगे 'हरि इच्छा भावी बलवाना।'

सोमवार कहूँ कि मंगल, 7 जुलाई, '52

ब्रेकफ़ास्ट करते समय युनिवर्सिटी रजिस्ट्री का पत्र मिला। रिसर्च स्कालर के रूप में अपने को रजिस्टर कराने के सम्बन्ध में जो प्रार्थना-पत्र और प्रमाण-पत्रादि मैंने भेजे हैं वे मिल गए हैं और सब 'इन आर्डर' हैं, केवल शोध-लक्ष्य के सम्बन्ध में मेरा लेख नहीं मिला, उसे शनिवार को एक बजे के पहले रजिस्ट्री के दफ्तर में सबमिट कर दिया जाना चाहिए, डिग्री कमिटी की मीटिंग 14 को दस बजे है जिसमें मेरे प्रार्थना-पत्र और लेख पर विचार किया जाएगा।

आज तो स्वयं मैं लेख लिखने को बैठनेवाला था। अच्छा हुआ याद दिलाने को यह पत्र आ गया।

दिन भर लेख पर ही काम करता रहा।

लंच के लिए भी नहीं उठा।

शाम तक पहला ड्राफ्ट तैयार हो गया था।

खाना खाकर थोड़ी देर को घूमने के लिए निकला।

लौटकर लेख की कांट-छाँट करता रहा।

2000 से अधिक शब्द नहीं होने थे।

संक्षेप में सारवान बात कहना कितना मुश्किल होता है! इसी से brevity is wit.

ड्राफ़्ट को अन्तिम रूप देकर शब्दों को गिना तो 1950 शब्द थे।

मैं अपने लेख से बहुत सन्तुष्ट हूँ; पर मेरे सन्तोष का क्या मतलब होता है। कोई कविता है कि अपने मन का सन्तोष पर्याप्त हो।

दिन भर—और रात भर भी—सिर पर एक भूत सवार था। अब उतरा है। दो से ऊपर हो गए हैं। सारा केम्ब्रिज सो रहा है।

अब सो जाऊँ—मर जाऊँ—'आओ, सो जाएँ, मर जाएँ'—पर 'आओ' किससे कहूँ?

घर पर सुबह हो गई होगी। जुलाई की सुबह—बादलों से घिरी सुबह—भीगी सुबह···

मंगलवार, 8 जुलाई, '52

इतना थका था कि सोने की भी शक्ति नहीं थी।

सोने के लिए भी कुछ एनर्जी चाहिए—बहुत बार मुझे अनुभव हुआ है।

निंदासा ही उठा। समय से ब्रेकफ़ास्ट लेना था। घर तो है नहीं। जब चाहो उठो।

श्री लालबहादुर शास्त्री का पत्र मिला। मैंने पार्लियामेण्ट में उनके भाषण पर जो पत्र उन्हें लिखा था उसकी चर्चा पण्डित नेहरू तक पहुँची। पत्र में उन्होंने इसका ज़िक्र किया था। धन्य है हिन्दुस्तान का प्रधानमन्त्री कि इतनी छोटी-छोटी बातों को सुनने का उसके पास समय है, और धन्य हैं वे लोग जो ऐसी साधारण बातों को उस तक पहुँचाते हैं। 'शुद्ध हिन्दी' पर जो विचार मैंने प्रकट किए थे

उनका पण्डितजी ने स्वागत किया था। आश्चर्य ही है कि इतने 'कामन सेन्स' की बातें वहाँ कोई साहस के साथ नहीं कहता और पण्डितजी को मुझ नाचीज़ की बातों में अपने विचारों का समर्थन मिलता है। पण्डितजी भी कैसे कठमुल्लों से घिरे हैं! देश को न हिन्दी का कठमुल्लापन रास आएगा न अंग्रेज़ी का कठमुल्लापन—कठ-उल्लूपन—काठ का उल्लू—यानी उजाला देखते हुए आँख मूँदना—पर ओ हिन्दी के कठमुल्लो, उजाले के नाम पर अँधेरा न फैलाओ—अंग्रेज़ी के उल्लुओं के लिए वह बहुत अनुकूल होगा—शुद्ध हिन्दी के घटाटोप में वे बे-पर की अंग्रेज़ी उड़ाते जाएँगे! खुली हिन्दी—as opposed to कोश-किताबों में बन्द हिन्दी—बड़ी समर्थ भाषा है।

टाइप कराने के लिए लेख को साफ़ किया। इसमें क़रीब बारह बज गए। लेख टाइप करने को दे दिया, समय से मिल जाएगा। टाइपिंग बड़ी महँगी है यहाँ। एक पोर्टेबिल टाइपराइटर ख़रीदकर टाइपिंग सीख लेनी चाहिए। क्या मुश्किल होगी! शोध-सम्बन्धी लेखन आरम्भ हुआ तो बहुत-कुछ टाइप कराना पड़ेगा। अपना तो दिवाला हो जाएगा।

दिन को यु. ला. में रहा। दत्त आज नहीं आए; दो बार उनकी मेज़ पर गया। मालूम होता है बीमार पड़ गए। नई किताबों में काम की कई चीज़ें मिलीं। उनकी सूची बना ली है।

'The Forgotten Language' पढ़नी शुरू की; लगभग 75 पृ. उसके पढ़ डाले। Symbols के द्वारा अपने को अभिव्यक्त करने की जो शुरुआत इन्सान ने की थी वही अपने विकसित, जटिल, 'सटिल' (सूक्ष्म) रूप में कविता में मौजूद है। मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि इन्सान को इसका प्रथम पाठ अपने सपनों से मिला होगा। आदि में इन्सान जो व्यक्त करना चाहता होगा वह सपनों में व्यक्त होता होगा। वहीं से उसने symbols की भाषा निकाली होगी। इनका प्राथमिक रूप दन्त-कथाओं में आया होगा जिन्हें हम अपने मूल रूप में पा सकते तो उस प्रक्रिया की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी मिल जाती, पर समय-क्रम में दन्त-कथाएँ भी विकसित होकर अपना रूप बदल चुकी हैं। अभी यहीं तक पहुँचा हूँ।

इस किताब को मैं ठीक ही मनःस्थिति में पढ़ रहा था—अध-निंदासा—बीच-बीच में अध-जगे में सपने-से कुछ चित्र मेरे दिमाग़ से गुज़र जाते थे।

6।। लाइब्रेरी से वापस आया। खाना खाया। आँखों में बड़ी कड़ुआहट थी। कल रात को भी नहीं सोया था। चार घण्टे बिस्तर में ज़रूर रहा पर करवट बदलता ही। बहुत थकावट मालूम हो रही थी, सोचा, दो घण्टे को सो लूँ, फिर उठकर काम करूँगा। 9 बजे का एलार्म लगाकर लेट गया। एलार्म बजा तो न जाने कैसे सुखद स्वप्नों में था कि एलार्म बन्द कर फिर उन्हीं स्वप्नों का तार पकड़ने के प्रयत्न में सो गया। उन्हें फिर क्या पकड़ पाता, पर नींद पौने बारह बजे रात को खुली। सिडनी ससेक्स कालेज के ऊपर चाँद है, मेरे कमरे में चाँदनी!...

स्वप्न देख रहा था कि जैसे आक्सफ़र्ड के ऐशमोलियन म्यूज़ियम में घूम रहा हूँ, पर मूर्तियाँ सब सजीव हो उठी हैं। एक मूर्ति ऐसी है जो एक ही में स्त्री और पुरुष—वोआज़ेन और लीथान—दोनों है—जिसकी कल्पना मैंने आक्सफ़र्ड-प्रवास में की थी। उसके समीप जाकर मैं भी उसी मूर्ति के समान हो गया हूँ और एक अनिवार्य पारस्परिक चुम्बकीय आकर्षण से खिंचकर हमने एक-दूसरे को बाहुपाशों में बाँध लिया है। इससे मैं एक ऐसे आनन्द, ऐसे सन्तोष, ऐसी विस्मृति

का अनुभव कर रहा हूँ जो अभूतपूर्व है। 'मिलन यामिनी' की दो पंक्तियाँ शायद इसे कुछ-कुछ व्यक्त कर पाती हैं,

सुछवि निमेष छोड़ नेत्र पी रहे,
अमर हुए, कि मर चुके, कि जी रहे।

पहली पंक्ति इस अनुभव को व्यक्त करने को बिलकुल असमर्थ है। नेत्र ही नहीं जैसे समस्त तन, मन, प्राणों की युग-युग की प्यास बुझ रही है, जैसे समस्त तन, मन, प्राण किसी की युग-युग की तृष्णा को शान्त करने के लिए गल-पिघल रहे हैं। इसी समय एलार्म बज उठा और जी चाहा कि घड़ी को उठाकर खिड़की से बाहर फेंक दूँ। मैंने अर्धनिंदे में ऐसा ही कर क्यों नहीं दिया, इस पर ही मुझे आश्चर्य है। एलार्म बन्द कर फिर उसी स्वप्नपुरी में पहुँच जाना चाहता था, पर एक बार बाहर आते ही जैसे उसके लौह-कपाट बन्द हो गए और कल्पना उसके बाहर सिर पीटती रह गई···

There was a door to which I found no key.

खिड़की से चाँद को ऊपर उठते देख रहा हूँ—शायद पूर्णमासी के समीप का चाँद है और जी चाहता है कि रोशनी बन्द कर बिस्तर पर लेट जाऊँ।

पुरानी यूनानी दन्त-कथाओं में एक था हरमोफ्रोडायटस—हरमीज़ और ऐफ्रोडाइट का पुत्र—हरमीज़, संगीत का देवता; ऐफ्रोडाइट, सौन्दर्य की देवी—उनके पुत्र को अद्वितीय तो होना ही था। एक दिन वह सलमासिस के एक झरने में स्नान कर रहा था। स्नान करते समय मनुष्य का नग्न-सौन्दर्य कैसा निखर आता है!—'कामिनि करए सनाने'—'न्हाई उठल तीर आइ कमलमुखि समुख हेरल बर कान्ह'—विद्यापति की आँखें नहीं चूकी थीं—धन्य हो यूनानियो, तुमने जीवन को खूब निकट से देखा था, टकटकी बाँधकर! झरने की थी एक परी। हरमोफ्रोडायटस के रूप-यौवन और दिव्य सौन्दर्य पर रीझ गई, तड़पने लगी। उसका प्यार चाहती थी; नहीं, नहीं, उससे मिलना, उसमें मिलना, उससे मिलकर एक हो जाना, जहाँ द्वैत न रह जाए। प्रेमी अपनी भावना और किन शब्दों में व्यक्त करे। देवताओं से अपनी कामना पूर्ण करने के लिए प्रार्थना करने लगी। देवता भी होते हैं कैसे स्थूल-बुद्धि या विनोद-वृत्ति! उन्होंने परी की प्रार्थना अक्षरशः स्वीकार कर ली। उसे सशरीर हरमोफ्रोडायटस से मिला दिया, जोड़ दिया, एक कर दिया। वह हरमोफ्रोडायटस से एक होना चाहती थी न। हरमोफ्रोडायटस उभयलिंगी हो गया!—एक ही शरीर में पुरुष-स्त्री दोनों। क्या उसे अपना प्रतिरूप कभी मिला होगा?···

एक और कथा मैंने कहीं पढ़ी थी। यूनान की ही है—मानव-सृष्टि के सम्बन्ध में। पहले स्त्री-पुरुष दोनों एक ही शरीर में थे। भगवान ने उन्हें अलग कर दिया। तब से वे बराबर एक-दूसरे से मिलने का प्रयत्न कर रहे हैं, और अभी तक सफल नहीं हुए। पुरुष-स्त्री के आकर्षण की कैसी कवित्वपूर्ण व्याख्या है! विकास क्रम में भी आदि पुरुष अत्यन्त परुष और नारी अत्यन्त सुकुमार थी, प्रत्येक सन्तान पीढ़ी-दर-पीढ़ी अधिकाधिक दोनों के गुणों को लेकर आती है, पुरुष सुकुमारता ग्रहण करता जाता है नारी परुषत्व। किसी दरजे पर दोनों का सन्तुलन होगा; तब मन, और तन से भी, फिर वही आदि अवस्था पहुँचेगी। सृष्टि का एक वृत्त पूरा होगा। उभयलिंगियों के समाज की कल्पना कितनी कौतूहलवर्धक है!···

बुधवार, 9 जुलाई, '52

तैयार होकर सेन्ट्रल लाइब्रेरी होते हुए युनिवर्सिटी लाइब्रेरी गया। 'The Forgotten Language' समाप्त हो गई। स्वप्नों के विषय में फ्रायड, जूँग और लेखक के विचार मालूम हुए। स्वप्नों की दन्त-कथाओं से सम्बन्ध दिखाया गया था। मैं स्वप्नों का सम्बन्ध कविता से जानने को अधिक उत्सुक था। स्वप्नों की एक नई कैटेगोरी की ओर मेरा ध्यान गया है, पता नहीं इसके विषय में किसी मनोवैज्ञानिक ने लिखा है कि नहीं। यह स्वप्न सुप्तावस्था का नहीं, जाग्रतावस्था का है। हमारी विचारणा, कम से कम यह मेरा अनुभव है, अब भी अमूर्त नहीं; जैसे ही हम किसी विषय पर सोचना शुरू करते हैं वैसे ही हमारे मस्तिष्क के अन्दर कतिपय चित्रों, रूपों अथवा प्रतीकों का उदय होता है। चूंकि विचारणा सचेत मस्तिष्क की प्रक्रिया है इसलिए उन चित्रों, रूपों अथवा प्रतीकों से सम्बद्ध चित्रों अथवा प्रतीकों को हम जान-बूझकर लाते हैं। अगर हमारा मस्तिष्क सचेत न रहे, थोड़ा-सा शिथिल हो जाए तो मन के चित्र या प्रतीक अपने समवर्गी चित्रों या प्रतीकों को अपने-आप खोजने, लाने, प्रस्तुत करने लग जाते हैं। और इस प्रकार चित्रों की जो श्रृंखला चलती है उसे मैं स्वप्नों की ही श्रेणी में रक्खूंगा। यह सचेत कल्पना से भी अलग की चीज़ है और स्वत: आए सपनों से भी अलग की चीज़। कविता लिखने में, विशेषकर गीत लिखने में, भावना का आवेग मस्तिष्क को शिथिल करता है; और उस अवस्था में सचेत कल्पना और स्वत: स्वप्न के बीच की रूपकावली प्राय: कवि के सृजन को प्रभावित करती है। मेरा यह भी ख़याल है कि सचेत कल्पना से शिथिल-रूपकावली गीत के लिए अधिक स्वाभाविक, सटीक और प्रभावकारी होती है। कला, सब-अपने-से-लाई-हुई से कुछ-अपने-आप-आई-हुई अधिक छूती है। अपने-आप आए काव्य-उपकरण में केवल प्रतीक नहीं और चीजें भी होती हैं लय, ध्वनि, छन्द, शब्द-मैत्री, भाव-मैत्री और कुछ ऐसा भी जो अव्याख्येय होता है—incantation यानी जादू जो सिर चढ़कर नहीं, हृदय में पैठकर बोलता है। उच्च और निम्न कोटि की कविता का अन्तर आकर्षित (खींचकर लाई गई) और स्वागत (स्व-आगत—अपने-आप आई) का अन्तर है।

लंच पर मार्जरी का पत्र और पार्सल मिला। कविता के उसने बहुत-से संग्रह भेज दिए हैं। प्राय: सभी आधुनिक कवि आ गए हैं। एडविन म्योर का संग्रह इनमें नहीं है; उनकी कविताएँ मैं ख़ास तौर से पढ़ना चाहता था। लाइब्रेरी में मिल जाएँगी।

खाना खाने के बाद घूमने चला गया। 9 बजे लौटा।

1½ बजे रात तक काम किया।

'काम' इसे कहूँ कि 'खुराफ़ात'? 'खुराफ़ात' के शाब्दिक अर्थ क्या हैं? यानी एक कविता लिखने बैठ गया। 50-60 पंक्तियाँ लिखीं। आजकल जो लिखता हूँ free verse में—शायद आधुनिक अंग्रेज़ी कविताएँ पढ़ने का असर—फिर भी अंग्रेज़ी free verse का अनुकरण नहीं—न उसी प्रकार का free verse जिसका प्रयोग हिन्दी में हो रहा है। यह एक प्रकार से वार्तालाप की लय में बँधा छन्द है जो पूर्वाभ्यास से तुकों का मोह नहीं छोड़ सका। वार्तालाप की लय की विविधता का भी कोई अन्त है? फिर भी कविता में एक भाव या विचार की प्रमुखता, (dominance) से एक लय की प्रमुखता हो सकती है। भावों की विशिष्टता

या उनकी तीव्रता अथवा मन्दता से साधारण वार्तालाप की लय को भी एक विशिष्टता मिल सकती है जो सहज वार्तालाप की लय से भिन्न लगे। लिखने की कृत्रिमता बोलने की सहजता शायद ही पकड़ पाए—उसके अधिक से अधिक निकट रहने का प्रयत्न तो किया ही जाना चाहिए।

कविता पूरी नहीं हुई।

पर काम करने की क्षमता अब समाप्त हो गई है।

गुरुवार, 10 जुलाई, '52

सुबह समय से उठ गया; एलार्म घड़ी काम आई। नींद तो पूरी नहीं हुई थी। रात को बहुत देर से सोया था। थककर भी सुबह तो समय पर उठना ही था। तैयार हुआ।

आज लायड्स बैंक में एकाउण्ट खोल लिया है। बी. बी. सी. से चेक आया था। बिना अपने एकाउण्ट के वह जमा नहीं हो सकता था। 16 को शायद दूसरा चेक मिले।

सेण्ट्रल लाइब्रेरी में अख़बार देखे। फ़ारेन सेक्रेटरी के. पी. एस. मेनन मास्को में भारतीय राजदूत नियुक्त हुए हैं, लन्दन में ही हैं; 16 को उनसे मिलने का प्रयत्न करूँगा। दिल्ली में भेंट हुई थी।

यु. ला. में 'Philosophy of Religion' का पहला चैप्टर आज समाप्त कर देना चाहता था; क़रीब 50 पेज पढ़ सका। नोट्स भी लिए। दिमाग़ में घूम रही थी कविता। यह भी एक मर्ज़ है।

साढ़े छ: पर कमरे आया। खाना खाकर कविता पूरी करने को बैठा। 12 बजे रात को समाप्त हुई। शीर्षक समझ में नहीं आता क्या दूँ। विषय तो यह है कि साधारण अंग्रेज़ हिन्दुस्तान के बारे में कितना कम जानता है, कितनी ग़लत धारणाएँ बनाए हुए है; वैसे ही कितने ही हिन्दुस्तानी हैं जो अंग्रेज़ों के बारे में कितने अनजान हैं। एक शीर्षक यह सूझ रहा है, 'तुम मुझे कितना जानते हो? और तुम मुझे कितना जानते हो?' पर यह बहुत लम्बा है। या यह रख दूँ, सोचता हूँ, 'अनजान अंग्रेज़ और अनजान हिन्दुस्तानी।' या यह कि tat for tit कि जैसे अंग्रेज़ हिन्दुस्तानियों के बारे में बहुत कम जानता है वैसे ही हिन्दुस्तानी भी अंग्रेज़ के बारे में। अब इस पर रविवार को काम करूँगा। तब शायद कुछ संशोधन-सुधार भी हो सके। इस समय इसमें छोटी-बड़ी लगभग 200 पंक्तियाँ हैं। कविता हल्के मूड में आरम्भ की थी, बीच में गम्भीर हो गई, फिर हल्के मूड पर समाप्त हुई। मनोविनोद के लिए अच्छी है। हिन्दुस्तानी और अंग्रेज़—दोनों की अज्ञानता पर अच्छा-खासा व्यंग्य है। तेजी को भेज दूँगा; वे कहीं इसे छपाने का प्रबन्ध करेंगी।

बी. बी. सी. की वार्ता रह ही गई। उन्होंने रेकार्डिंग के दो-तीन रोज़ पहले चाहा था। अब भी समय है। कल लिख लूँगा।

आज लीथान का पत्र मिला, मादमोज़ेल का तस्वीरी कार्ड। क्या वे विश्वास करेंगे कि कल ही उन्होंने मुझे याद किया और रात में मैंने दोनों को साथ सपने में देखा!

केवल संयोग?

या मन का कोई जुड़ा तार?

शुक्रवार, 11 जुलाई, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर तेजी का पत्र मिला। सब ठीक।

सेन्ट्रल लाइब्रेरी में समाचार-पत्र देखे। एक अजीब ख़बर।

डीन आफ़ कैन्टरबरी ने चीन से आकर जो यह कह दिया है कि अमरीकनों ने चीन के ऊपर कीटाणु गिराए तो बड़ी खलबली मच गई है। वक्तव्य से तो यही मालूम होता है कि डीन के पास कोई सबूत नहीं है। इंग्लैण्ड में कोई यह मानने को तैयार नहीं कि अमरीकन ऐसा कर सकते हैं। कीटाणु गिरा कर या गैस बरसा कर शत्रु को मारना अगर inhuman और uinchristian है तो गोली या बम बरसा कर मारना कैसे human या christian है, मैं नहीं समझ सकता। 'मैनचेस्टर गार्डियन' ने डीन का काफ़ी मज़ाक उड़ाया है। साम्यवादियों के प्रति डीन का पक्षपात जाना-माना है—वह Red Dean कहलाता है। वह कुछ nervous क़िस्म का आदमी है और साम्यवादियों द्वारा कहीं हर बात का विश्वास कर शोर मचाने लगता है।

आज मैंने इम्पीरियल पोर्टेबिल टाइपराइटर ख़रीद लिया है। 22 पौण्ड 10 शि. का मिला। टाइपिंग सीख सका तो बड़े काम आएगा।

लेख की टाइप कापी ले, नीचे हस्ताक्षर कर युनिवर्सिटी रजिस्ट्री में दे आया।

खाने के बाद सोचा टाइपराइटर पर कुछ प्रयोग आरम्भ करूँ। तेजी को एक पत्र टाइप करना शुरू किया—एक-एक अक्षर देखकर उस पर उँगली मारता! जो ख़त 10-15 मिनट में लिखा जा सकता था, उस पर दो घण्टे लगे और बीसों ग़लतियाँ हुईं। क़ायदे से सीखना चाहिए। बेक़ायदे टाइप करने से समय अधिक लगेगा, ज़ोर अधिक देना पड़ेगा और मशीन भी ख़राब होगी। सीखे हुए लोग कैसी सूक्ष्मता से अक्षर-कुंजियों को छूते हैं और कितनी फ़ुर्ती से।

मशीन के कल-पुर्ज़ों को समझने के लिए साथ एक बुकलेट मिली थी, वह पढ़ ली है।

वैज्ञानिक टाइपिंग का एक चार्ट भी साथ है। जानना कितना आसान, करना कितना मुश्किल!

शनिवार, 12 जुलाई, '52

पूर्वाह्ण युनिवर्सिटी लाइब्रेरी में।

लंच लेकर कमरे में आया था कि मदन बाबू, उनकी पत्नी, बाबूलाल शाह, केजरीवाल आ गए। केम्ब्रिज देखने आए थे। रामनिवास ढँढारिया बाद की गाड़ी से आए।

ताजमहल में सब लोगों के लिए बग़ैर प्याज़-लहसुन के शाकाहारी भोजन का आर्डर दे हम लोग कालेजों को देखने चले गए।

देखने-देखने में कितना अन्तर होता है।

ये लोग केम्ब्रिज देखने नहीं, केम्ब्रिज हो आने का सन्तोष अपने को देने के लिए आए थे।

कवियों, वैज्ञानिकों, चिन्तकों से सम्बद्ध जगहों को देख इनकी आँखों में वह चमक कहाँ जो शिक्षित-दीक्षितों की आँखों में देखी जाती है।

इनके लिए यहाँ प्रेरणा भी क्या हो सकती है।

बेमन इनको कालेजों का एक चक्कर दे लौटा लाया।

थोड़ा-बहुत चलने-फिरने से इन्हें भूख अच्छी लग गई होगी !

ताजमहलवालों ने भोजन इन्हें सन्तोषजनक करा दिया।

खाना खाने के बाद पार्टी को फ़िट्ज़विलियम म्यूज़ियम दिखला दिया।

बस, ये म्यूज़ियम के कमरों में घूम लिये।

कला का आनन्द लेने की भी एक कला होती है—The art of appreciation जो शिक्षण और अभ्यास से आती है। जब कला का पारखी कला-कृति के सामने खड़ा होता है तभी वह अपने को मुक्त रूप से उघारती है। यह कहना ग़लत है कि कला सबके लिए समान रूप से उपलब्ध होती है। केवल अधिकारी उसको देखता, पाता, उसका रस लेता है।

5.5 शाम की गाड़ी से ये लोग लन्दन लौटना चाहते थे। मुझे भी साथ लेते आए।

लन्दन में शाम को एम्प्रेस हाल में नक़ली बरफ़ के फ़र्श पर स्केटिंग देखी—क्या शरीर, क्या शरीर की फ़ुर्ती, क्या कला, क्या अभ्यास, क्या आयोजन, क्या संगठन ! रात को 11 बजे हम लोग आरटिलर मैंशन आए। ग्रेट ईस्टर्न होटल से उठकर ये लोग अब यहाँ आ गए हैं। यहाँ सिर्फ़ बिस्तर-बिस्तर का प्रबन्ध है—खाना बाहर खाओ या गैस के चूल्हों पर पकाओ। मदन बाबू की पत्नी ने सब्ज़ी बनाई और वह डबल रोटी के साथ खाई गई—बहुत दिन ठहरनेवाला पका-पकाया पकवान भी इनके साथ काफ़ी है—लड्डू, शकरपारे, मट्ठियाँ, दालमोठ, समोसे, चुरमुरे, भुने-तले मेवे, पाचक चूरन भी। मारवाड़ी अपने स्वाद-तृप्ति का पूरा स्टोर अपने साथ लेकर चलता है।

मैं साथ रहूँ तो रामनिवास को मेरी कविता सुने बिना नींद कहाँ। सोने के पूर्व कुछ देर कविता-पाठ।

रविवार, 13 जुलाई, '52

सुबह उठकर बी. बी. सी. के लिए वार्ता लिखी—केम्ब्रिज जैसा मैंने देखा—पाया। 5 मिनट की वार्ता थी, क्या-क्या कहता इतने में। एक जनरल इम्प्रेशन ही दे सकता था। कई बार काटकूट करने के बाद वार्ता को समय की सीमा में ला सका। रिहर्सल करके देख भी लिया कि ठीक 5 मि. समय लगते हैं।

तैयार होकर बी. बी. सी. गया। हूजा और कुमार मिले। वार्ता उन्हें दी। उन्होंने पढ़कर approve कर ली। 16 को रेकार्ड कराने के लिए आना होगा।

झा साहब के लिए फ़ोन किया। 13 को आनेवाले थे 'सेवाय' में ठहरने को थे। 'सेवाय' में न वे ठहरे थे न उनके लिए कोई कमरा बुक था। लन्दन में कहाँ पता लगे कि वे कहाँ ठहरे हैं।

दिन को लौटकर खाना खाया। मदन बाबू की पत्नी ने रसोई बनाई थी—सब व्यंजनों में शुद्ध भारतीय छौंक, सुगन्ध, स्वाद !

तेजी को पत्र लिखा। इस कमरे की स्थिति बहुत अच्छी है। खिड़की से पार्लियामेण्ट हाउस का विक्टोरिया टावर, वेस्टमिन्स्टर चर्च, बिग बेन दिखाई देते हैं। बिग बेन 15-15 मिनट पर 4-8-12-16 घण्टे बजाती है—तब समय का घण्टा—इलाहाबाद युनिवर्सिटी की घड़ी याद आती है—उससे घर की !

श्री रविशंकर शुक्ल (सी. पी. के मुख्य मन्त्री) के पुत्र मिलने आए। कुछ देर कविता-पाठ हुआ।

रेस्ट्राँ में जाकर हम लोगों ने चाय पी।

7.45 की गाड़ी से केम्ब्रिज आया। यह गाड़ी लन्दन से चलकर सीधे केम्ब्रिज आकर रुकती है।

मि. मलेटका नाराज़ थे, मैंने जाने के पहले उन्हें सूचना नहीं दी थी। ख़ैर परिस्थिति उन्हें समझाई तो खाना उन्होंने खिला दिया। रामनिवास ने दो आम दिए थे,—हवाई जहाज़ से उनका पार्सल आया था—एक मैंने मलेटका को दिया; ख़ुश हो गया। एक मैंने कमला को देने के लिए रख लिया है; मैं दो लन्दन में खा आया था।

रवि बाबू को आम बहुत पसन्द थे। एक बार किसी ने उनकी उम्र पूछी; उन्होंने एक वर्ष घटाकर बताई। जब ठीक उमर की ओर संकेत किया गया तो रवि बाबू ने विनोद में कहा कि एक वर्ष में इंग्लैण्ड मैं था, वहाँ आम खाने को नहीं मिले थे—(तब कहाँ यहाँ आम उपलब्ध हो सकते थे—महीनों जहाज़ से लगते थे, और फलों को preserve करने के साधन विकसित नहीं हुए थे)—उस वर्ष को मैं अपनी उम्र में नहीं गिनता!

सोमवार, 14 जुलाई, '52

सुबह विपिन बिहारी टण्डन का पत्र आया, झा साहब ने उन्हें सूचित किया था कि वे ग्रोवेनर होटल में ठहरेंगे, तीन-चार रोज़ लन्दन रुककर योरोप जाएँगे; मुझे भी लिख सकते थे। ख़ैर, 16 को लन्दन गया तो उनसे मिल सकूँगा।

आज कई पत्र लिखने थे। दो पार्सल भी बनाए। मार्जरी के दस काव्य-संग्रह वापस किए; कमला नेहरू का चित्र साथ भेजा। तेजी ने भेज दिया था, उसने मँगाया था। डेनिस को 'The House of Wine' भेजी। पी. ई. एन. का फ़ार्म भरा। पोस्ट-आफ़िस गया। इन सब कामों में 12 बज गए। सुबह ख़राब हो तो दिन भर ख़राब हो जाता है, पर यह सब काम ज़रूरी थे। सोचा लंच के बाद ही अब यु. ला. जाऊँ।

कुछ देर आधुनिक कविता का एक संग्रह देखता रहा—कोई कविता विशेष अच्छी नहीं लगी!

यु. ला. में 'Philosophy of Religion' पढ़ता रहा। पुस्तक आज भी समाप्त नहीं हो सकी। कोई बहुत उपयोगी सामग्री इससे नहीं मिल सकी। ऐसा बहुत-सी पुस्तकों से होगा, हेन ने आगाह किया था।

खाना खाने के बाद दत्त के यहाँ गया। कमला कई दिनों से बीमार थी, अब ठीक हो रही थी। दत्त को आम दिया तो बहुत प्रसन्न हुए, बोले, डेढ़ बरस में यह दूसरा आम खाऊँगा।

लौटकर अजित के लिए टाइपराइटर पर एक ख़त टाइप किया।

टाइपिंग पर एक पुस्तक ले ली। पहली exercise टाइप की।

रात ज़्यादा हो गई थी। डर रहा था कहीं बग़ल के कमरेवाले को डिस्टर्ब न कर रहा हूँ। सुबह उससे पूछूँगा। टाइपिंग का टाइम ऐसा रखना पड़ेगा कि किसी को ख़लल न पहुँचे।

मंगलवार, 15 जुलाई, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर एक पुर्तगाली लड़की से भेंट हुई—लड़की नहीं औरत कहना चाहिए—तीस-पैंतीस की उम्र होगी—योरोपीय गोराई—क़द ऊँचा, शरीर भरा, मोटी नहीं,

स्वभाव में कुछ परुषता जो मर्द को शोभा देती है—ऐसी औरतों से मुझे डर लगता है। कोई अंग्रेज़ी कोर्स करने आई है, कुछ दिन डिग में रहेगी।

परिचय होने पर बतलाने लगी कि भारत में भी हमारे कई नगर हैं, और संसार भर की जगहें गिना गई जहाँ पुर्तगालियों ने अपना राज्य बसाया है। बोली, हमने बम्बई अंग्रेज़ों को दिया था, जैसे बम्बई को उसके बाप ने ही बसाया था। उसकी बात मुझे अच्छी नहीं लगी। दूसरे देशों पर अधिकार करने को कितने अभिमान से ये लोग बताते हैं—शर्म आनी चाहिए—तुमने अपने स्वार्थ के लिए और जातियों को ग़ुलाम बना रक्खा है। यह इसी डिग में रही तो किसी दिन इससे मेरी लड़ाई होके रहेगी। पुर्तगाली विद्यार्थियों को शुरू से यह शिक्षा दी जाती है कि जिन स्थानों को पुर्तगाल विजय कर लेता है। वे सब पुर्तगाल हो जाते हैं! हमारे देश पर भी कुछ पुर्तगाली कोढ़ के दाग़ हैं। जब अंग्रेज़ अपना साम्राज्य छोड़कर चले गए तो ये कितने दिन टिकेंगे?

दिन-भर लाइब्रेरी में रहा।

'Philosophy of Religion' समाप्त हो गई।

लंच के बाद सिनेट की 'Esoteric Buddhism' आरम्भ की। यह पहली पुस्तक थी जो ईट्स ने भारतीय-धर्म के विषय में पढ़ी थी। ईट्स के और दूसरों के लेखों में भी इसके सबूत हैं। वह पुस्तक उन्होंने अपने एक मित्र को दी थी जो उसे पढ़कर थियोसोफ़िस्ट हो गया। बाद को उसने मैडम ब्लावाट्स्की की किसी भतीजी से शादी की। सिनेट कुछ समय तक 'पायनियर' (इलाहाबाद) के सम्पादक थे। सम्भव है मेरे पिताजी ने सिनेट के सम्पादन-काल में काम भी किया हो। पुस्तक का नाम भ्रामक है। बौद्ध धर्म के विषय में इसमें कुछ नहीं, यह मैडम ब्लावाट्स्की की विचित्र फ़िलासफ़ी पर आधारित है जिसे उसने पूर्व-पश्चिम के बहुत-से अधकचरे ज्ञान पर तैयार किया था। ईट्स एक समय अस्पष्ट, अद्भुत, रहस्यमय, अतार्किक, परा-प्राकृतिक जो भी सामने आता था, उस पर विश्वास करने को तैयार रहते थे। इनके प्रति थोड़ा-बहुत लगाव-झुकाव उनमें आमरण बना रहा।

खाना खाकर घूमने स्टेशन तक चला गया। कल लन्दन की यात्रा के लिए गाड़ी वग़ैरह का पता कर लिया— घूमना भी हो गया।

आकर टाइपिंग की दूसरी exercise का अभ्यास किया।

सोने के पहले पिछली कविता दुहराई—कुछ संशोधन किए। पिछले इतवार को लन्दन जाने के कारण यह काम रह गया था। शायद अन्तिम रूप अभी भी नहीं दे पाया।

बुधवार, 16 जुलाई, '52

दिन-भर के लिए सामान बैग में रखकर लन्दन के लिए रवाना हो गया। 11.5 पर गाड़ी चली। रास्ते में डेनिस के उपन्यास का कुछ भाग पढ़ा, न कथासूत्र में खींच, न पात्रों में सजीवता। उपन्यास के 40-50 पेज 'डल' हों तो भी पढ़ लेना चाहिए, पर उसके बाद उपन्यास स्वयं पाठक को न खींचे तो उसे बन्द करके रख देना चाहिए।

लिवरपूल स्ट्रीट से सीधे इण्डिया हाउस गया। डा. रोज़ारियो जिनीवा गए थे, मि नैस्टर भी कहीं बाहर थे; तीन बजे आने की खबर थी। श्री धर्मवीर किसी काम में व्यस्त थे, और दफ़्तर में उनके सेक्रेटरी का पता नहीं था, शायद लंच के लिए चले गए थे। डा. कौमुदी भी लंच के लिए चली गई थीं; मि. किदवई

भी नहीं थे। इण्डिया हाउस में लंच का घण्टा बहुत बड़ा होता है। साढ़े बारह के बाद हर आदमी लंच पर चला जाता है, और फिर कोई तीन बजे लौटता है, कोई चार बजे। अजीब हालत है इस दफ़्तर की। धर्मवीरजी रास्ते में मिले तो बोले, आपको सीधे मेरे कमरे में चले आना था। मैंने कहा, आपकी कृपा का बेजा फ़ायदा नहीं उठाना चाहता; लन्दन आया था, सोचा आप लोगों से मिलता जाऊँ, वैसे मुझे कोई विशेष काम नहीं था।—हाई-कमिश्नर की विज़िटर्स बुक में हस्ताक्षर किए—शायद केवल मेरा हस्ताक्षर हिन्दी में था, इस देश-दफ़्तर में हिन्दी की पूछ कहाँ। इन्फ़ारमेशन के एक खन्ना साहब भर अपने दफ़्तर में मिले। उनसे इस बात की तसदीक हुई कि झा साहब लन्दन में ही हैं और ग्रोवेनर होटल में ठहरे हैं, फ़ोन करने से पता चला उस समय वे भी कमरे से बाहर हैं।

बी. बी. सी. में मेरी वार्ता 5 बजे रेकार्ड की जाने को थी। भारतीय कला-कौशल की एक प्रदर्शनी इण्डिया हाउस में सजाई गई थी; सोचा कुछ समय यहीं काटूँ। प्रदर्शनी कुछ ख़ास नहीं थी। कृष्ण मेनन ने भारत की 1952 की उन्नति पर एक पैम्फ़लेट ज़रूर लिखकर छपाया था। आत्म-विज्ञापन उसमें अधिक था। पहला चित्र गांधीजी का था, दूसरा डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का, तीसरा श्री कृष्ण मेनन का स्वयं, चौथा जवाहरलाल नेहरू का। ख़ुद ही रिपोर्ट लिख रहे हैं, ख़ुद ही अपनी तस्वीर छाप रहे हैं। लोग साधारण शील-शिष्टाचार भी कब सीखेंगे। पिछली पार्टी पर भी श्री कृष्ण मेनन का तरीक़ा देखा था। अपने को झूठी महत्ता देने का प्रोपेगेण्डा, और कुछ नहीं। पार्टी में स्वयं मौजूद थे और सभा होने को हुई तो डा. रोज़ारियो ने उठकर ऐसी तमहाद बाँधी जैसे सम्राट अकबर मुग़ल दरबार में पधारनेवाले हों। घण्टे-भर से अधिक लोगों को खड़े होकर उनका भाषण निगलना पड़ा। साधारण सभ्यता है कि जिसे बुलाओ उसको बिठलाने का तो प्रबन्ध रक्खो। ज़्यादा लोगों का प्रबन्ध न कर सको तो कम लोगों को बुलाओ। इण्डिया हाउस अपने विद्यार्थियों के लिए न कुर्सियाँ दे सकता है न फ़र्श पर बैठने की जगह। बेवकूफ़ हैं जो आते हैं; पता नहीं क्या पाते हैं। रिपोर्ट जो श्री कृष्ण मेनन ने प्रदर्शनी में रक्खी थी वह इस टोन में थी कि जैसे भारत के प्रधानमन्त्री मेनन महोदय ही हैं।

प्रदर्शनी से निकल रहा था कि रामनिवास मिल गए। बी. बी. सी. से होकर उनके यहाँ जाने का कार्यक्रम बना। सन्ध्या को उन्होंने साथ 'मिलिट्री टैट्टू' देखने का निमन्त्रण दिया। मेरा तो विपिन से मिलने का प्रोग्राम था। निश्चय हुआ उन्हें भी वहीं बुला लेंगे।

4 बजे थे। एक घण्टे का समय मेरे पास था। मैं झा साहब से मिलने को ग्रोवेनर होटल चला गया। छोटे-से कमरे में अकेले बैठे थे। उन्होंने तेजी का पत्र दिया—मेरी कुछ कविताएँ भी तेजी ने भिजवा दी थीं, जो मैंने मँगाई थीं। अपनी आदत के अनुसार मिले। बोले कम, सिर ज़्यादा हिलाया। पाँच अगस्त को लन्दन होते भारत लौटेंगे; अभी डेनमार्क जा रहे हैं, शिक्षा सम्बन्धी किसी सम्मेलन में। झा साहब से मिलकर निराशा हुई। मैंने सोचा था ज़रा सहृदयता, अपनत्व से मेरी पत्नी और बच्चों का हाल बताएँगे। वे ऐसे बोले जैसे तेजी और अमित-अजित किसी तरह जी रहे हैं। इस आदमी में भावना की गर्मी कहीं है ही नहीं। ख़ैर, वे प्रयाग में रहें चाहे लन्दन में अपने जीवन-भर की आदत से मजबूर हैं। पर दूसरों को उनके पास बैठकर कोफ़्त होती है। मूर्तियों, चित्रों, पुस्तकों से ठसा ड्राइंग रूम

और उसकी लम्बी-चौड़ी मेज़ और ऊँची कुर्सी प्रयाग में जो 'एरोमा' उनके चारों ओर रखती हैं उनके बग़ैर वे स्वयं मुझे श्री-हत लगे।

बी. बी. सी. की रेकार्डिंग ठीक हो गई। रेकार्डिंग करनेवाले ने कहा रिहर्सल कर लेने को, पर साथ ही रेकार्डिंग करता गया। समाप्त होने पर शीशे के पीछे से उसने अँगूठा ऊपर उठाया—इसका मतलब रेकार्डिंग ठीक हो गई। अनुभव से वह जानता है कि रिहर्सल ही लोग ज़्यादा अच्छा करते हैं, उसमें एक ताज़गी रहती है।

वहाँ से मैं ढँढारिया के यहाँ गया। कुछ खाया-पिया। फिर सब लोग 'मिलिट्री टैट्टू' देखने गए। विपिन को फ़ोन दिया था, वहीं मिल गए।

बड़े भारी स्टेडियम में 80,000 की भीड़—फ़ौजियों का तमाशा—जनता का हर्ष-नाद—फ़ौज, क़वायद, परेड, बैण्ड—तमाशा देखकर अंग्रेज़ों को बच्चों की तरह आनन्द आता है। तमाशे की यह क़ौम बेहद शौक़ीन है। लन्दन में विज्ञापन करना आना चाहिए, किसी चीज़ के लिए भीड़ इकट्ठी की जा सकती है।

तमाशा 10 बजे ख़त्म हुआ। 11.5 पर केम्ब्रिज के लिए गाड़ी जाती थी। ढँढारिया के डेरे पर बैग लेने गया, इसमें देरी हो गई। वे तो मुझे रात लन्दन में रोकना भी चाहते थे—उनसे छुट्टी लेने में भी कुछ समय लगा। नतीजा यह हुआ कि किंग्सक्रास पर पहुँचा तो केम्ब्रिज की गाड़ी जा चुकी थी। दूसरी गाड़ी लिवरपूल स्टेशन से 4.20 पर सवेरे थी। टिकट भी बर्बाद हुआ। 5 घण्टे स्टेशन पर किसी तरह काटे—पास न ओवरकोट, न बरसाती। पानी भी बरसने लगा था और हवा तेज़ चल रही थी। परदेस में सब तरह की परिस्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए। साढ़े छह बजे सुबह केम्ब्रिज पहुँचा। एलार्म लगाकर डेढ़ घण्टे को सो गया। बहुत थका था।

गुरुवार, 17 जुलाई, '52

सेन्ट्रल लाइब्रेरी होता यु. ला. गया।

'Esoteric Buddhism' के कुछ पृष्ठ पढ़े। नीरस और कठिन विषय है, तिस पर थकावट और नींद। 1 बजे कमरे वापस चला आया। लंच लेकर सो गया। 6 बजे उठा। जुकाम ज़ोरों का हो गया है; खाँसी भी है।

खाना खाने के बाद कमरे में आया तो बड़ी घुटन महसूस होने लगी। मौसम खुला था। ओवरकोट डालकर दत्त के यहाँ चला गया। वहाँ क़रीब दो घण्टे बैठा रहा। लन्दन की बातें। कमला ने गरम दूध में ओवल्टीन डालकर पिलाया। जब से भारत से आया पहली बार गरम दूध पिया। मेरे कमरे में गैस चूल्हा नहीं। होता भी तो अपने लिए कौन गरम करता।

लौटा तो नींद नहीं आ रही थी। दिन को काफ़ी सो चुका था। दो घण्टे तुलसीदास के साथ कटे। रामायण का जो संस्करण मुंशी कन्हैयालाल ने निकाला है, महा अशुद्ध है। हमारे देश में अनधिकारी काम करने को आगे-आगे कूदते हैं। हिन्दी तक का ज्ञान नहीं और रामायण का सम्पादन कर रहे हैं! इतना छोटा और हल्का गुटका रामायण का नहीं निकला, यह ठीक है, पर बेकार के चित्रों से उसे गन्दा और भद्दा कर दिया गया है। पाठ की ग़ल्तियाँ बेहद हैं। यदि रामायण की दूसरी प्रति मुझे आसानी से यहाँ मिल सकती तो इसे फाड़ फेंकता।

शुक्रवार, 18 जुलाई, '52

ब्रेकफ़ास्ट करने गया तो खाने के कमरे में आज और ही रौनक़ थी। कई रोज़

से डिग में मि. मुइयाँ पांबे (नीग्रो), पुर्तगाली लड़की और मैं ही रह गए थे। आज दो फ्रेंच लड़कियाँ आ गई हैं, एक इटालियन भी। हमारा परिचय उनसे हुआ। बड़ी मैडम कोमे है, छोटी मादमोज़ेल ओदेत बुए। दोनों क्लेरमोंग नगर में फ्रेंच की अध्यापिकाएँ हैं। अंग्रेज़ी बहुत साफ़ बोलती हैं। उनको जब मालूम हुआ कि यहाँ रहनेवाली एक फ्रेंच लड़की से मैं फ्रेंच सीखा करता था तो वे बहुत खुश हुईं और उन्होंने कहा कि हम यहाँ तीन सप्ताह रहेंगी और आपको कुछ और फ्रेंच सिखा देंगी। मादमोज़ेल बुए फ्रेंच में कविताएँ भी लिखती हैं, मैडम कोमे से अधिक मिलनसार, हँसमुख, और बातूनी हैं, उनसे अधिक सुन्दर भी। आँखें उनकी बड़ी-बड़ी और पुतलियाँ नीली हैं, और जैसे उनमें भीतर तक देखने की शक्ति भरी है। बड़ी जल्दी सब तरह की बातें हमसे होने लगीं। अंग्रेज़ लड़कियाँ बहुत रिज़र्व्ड रहती हैं। कुछ पूछो भी तो एक शब्द में जवाब और फिर चुप। डांसिंग हाल और पबों की बात और है—वहाँ तो सब काम नशे के प्रभाव में होता है।

सेन्ट्रल लाइब्रेरी होता यु. ला. गया।

दिन-भर 'Esoteric Buddhism' में सिर खपाया।

लौटकर खाना खाया। शाम को घूमने जाने लगा तो मैडम कोमे और मादमोज़ेल बुए भी मेरे साथ आईं। मैं उन्हें सेंट जॉन और ट्रिनिटी कालेज ले गया। लौटकर पुल पर हम लोग बहुत देर तक खड़े रहे। बड़ा अच्छा मौसम था। कैम पर बहुत-से लोग नौका-विहार को निकले थे। जब सब लौट गए, कैम के किनारे झुकी हुई विलो की लता को छू-छू बहनेवाले पानी और हवा का स्वर साफ़ सुनाई पड़ने लगा। मुझे यह आवाज़ बड़ी अच्छी लगती है—न जाने कहाँ की उदासी इसमें भरी हुई है। सीधे हृदय के अन्दर चली जाती है और जैसे पुराने घावों को सहलाने लगती है। थोड़ी देर हम तीनों ही चुपचाप खड़े हुए विलो की यह सायँ-सायँ सुनते रहे। मादमोज़ेल बुए ने कहा, अब आप एक कविता लिखिए और उसमें बतलाइए कि यह हवा क्या कह रही है। मादमोज़ेल भावुक और कवि-हृदय हैं।

रात को आकर मैंने कुछ देर टाइप का अभ्यास किया। मादमोज़ेल का कमरा मेरे कमरे से मिला हुआ है; मैंने 'नॉक' करके पूछ लिया, आपको मेरी टाइपिंग से डिस्टर्बेन्स तो नहीं होता।

मुसकराकर उन्होंने कहा, नो-नो।

मैंने कहा, पन्द्रह मिनट में समाप्त कर दूंगा।

शनिवार, 19 जुलाई, '52

1 बजे तक युनिवर्सिटी लाइब्रेरी में रहा।

लंच के समय तेजी की चिट्ठी मिली।

फ़ौरन चिट्ठी का जवाब देने बैठ गया। आज जवाब नहीं गया तो सोमवार के पहले न जा सकेगा। कुछ देर टाइप का अभ्यास, फिर आराम। दो घण्टे मार्जरी के भेजे काव्य-संग्रहों का पाठ। न कोई कवि विशिष्ट लगा, न कोई कविता; किन्हीं-किन्ही कविताओं में नई अपरिचित imagery ज़रूर मिली, पर उनसे क्या संकेत कवि करना चाहते हैं, मैं नहीं समझ सका। मालूम होता है सब कवि एक ही स्थान पर खड़े, एक ही दृष्टिकोण से, थोड़ा-बहुत बदलकर एक ही तरह की बात कह रहे हैं। मैं समझता हूँ अंग्रेज़ी कविता में यह कुछ खोज का समय है। सब कुछ खोज रहे हैं। इनमें कुछ उपलब्धि-सी वे कर लेते हैं जो नए की खोज में पुराने से बिलकुल

और उसकी लम्बी-चौड़ी मेज़ और ऊँची कुर्सी प्रयाग में जो 'एरोमा' उनके चारों ओर रखती हैं उनके बग़ैर वे स्वयं मुझे श्री-हत लगे।

बी. बी. सी. की रेकार्डिंग ठीक हो गई। रेकार्डिंग करनेवाले ने कहा रिहर्सल कर लेने को, पर साथ ही रेकार्डिंग करता गया। समाप्त होने पर शीशे के पीछे से उसने अँगूठा ऊपर उठाया—इसका मतलब रेकार्डिंग ठीक हो गई। अनुभव से वह जानता है कि रिहर्सल ही लोग ज़्यादा अच्छा करते हैं, उसमें एक ताज़गी रहती है।

वहाँ से मैं ढँढारिया के यहाँ गया। कुछ खाया-पिया। फिर सब लोग 'मिलिट्री टैट्टू' देखने गए। विपिन को फ़ोन दिया था, वहीं मिल गए।

बड़े भारी स्टेडियम में 80,000 की भीड़—फ़ौजियों का तमाशा—जनता का हर्ष-नाद—फ़ौज, क़वायद, परेड, बैण्ड—तमाशा देखकर अंग्रेज़ों को बच्चों की तरह आनन्द आता है। तमाशे की यह क़ौम बेहद शौक़ीन है। लन्दन में विज्ञापन करना आना चाहिए, किसी चीज़ के लिए भीड़ इकट्ठी की जा सकती है।

तमाशा 10 बजे ख़त्म हुआ। 11.5 पर केम्ब्रिज के लिए गाड़ी जाती थी। ढँढारिया के डेरे पर बैग लेने गया, इसमें देरी हो गई। वे तो मुझे रात लन्दन में रोकना भी चाहते थे—उनसे छुट्टी लेने में भी कुछ समय लगा। नतीजा यह हुआ कि किंग्सक्रास पर पहुँचा तो केम्ब्रिज की गाड़ी जा चुकी थी। दूसरी गाड़ी लिवरपूल स्टेशन से 4.20 पर सवेरे थी। टिकट भी बर्बाद हुआ। 5 घण्टे स्टेशन पर किसी तरह काटे—पास न ओवरकोट, न बरसाती। पानी भी बरसने लगा था और हवा तेज़ चल रही थी। परदेस में सब तरह की परिस्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए। साढ़े छह बजे सुबह केम्ब्रिज पहुँचा। एलार्म लगाकर डेढ़ घण्टे को सो गया। बहुत थका था।

गुरुवार, 17 जुलाई, '52

सेन्ट्रल लाइब्रेरी होता यु. ला. गया।

'Esoteric Buddhism' के कुछ पृष्ठ पढ़े। नीरस और कठिन विषय है, तिस पर थकावट और नींद। 1 बजे कमरे वापस चला आया। लंच लेकर सो गया। 6 बजे उठा। ज़ुकाम ज़ोरों का हो गया है; खाँसी भी है।

खाना खाने के बाद कमरे में आया तो बड़ी घुटन महसूस होने लगी। मौसम खुला था। ओवरकोट डालकर दत्त के यहाँ चला गया। वहाँ क़रीब दो घण्टे बैठा रहा। लन्दन की बातें। कमला ने गरम दूध में ओवल्टीन डालकर पिलाया। जब से भारत से आया पहली बार गरम दूध पिया। मेरे कमरे में गैस चूल्हा नहीं। होता भी तो अपने लिए कौन गरम करता।

लौटा तो नींद नहीं आ रही थी। दिन को काफ़ी सो चुका था। दो घण्टे तुलसीदास के साथ कटे। रामायण का जो संस्करण मुंशी कन्हैयालाल ने निकाला है, महा अशुद्ध है। हमारे देश में अनधिकारी काम करने को आगे-आगे कूदते हैं। हिन्दी तक का ज्ञान नहीं और रामायण का सम्पादन कर रहे हैं! इतना छोटा और हल्का गुटका रामायण का नहीं निकला, यह ठीक है, पर बेकार के चित्रों से उसे गन्दा और भद्दा कर दिया गया है। पाठ की ग़ल्तियाँ बेहद हैं। यदि रामायण की दूसरी प्रति मुझे आसानी से यहाँ मिल सकती तो इसे फाड़ फेंकता।

शुक्रवार, 18 जुलाई, '52

ब्रेकफ़ास्ट करने गया तो खाने के कमरे में आज और ही रौनक़ थी। कई रोज़

से डिग में मि. मुइयाँ पांबे (नीग्रो), पुर्तगाली लड़की और मैं ही रह गए थे। आज दो फ्रेंच लड़कियाँ आ गई हैं, एक इटालियन भी। हमारा परिचय उनसे हुआ। बड़ी मैडम कोमे है, छोटी मादमोज़ेल ओदेत बुए। दोनों क्लेग़मोग़ नगर में फ्रेंच की अध्यापिकाएँ हैं। अंग्रेज़ी बहुत साफ़ बोलती हैं। उनको जब मालूम हुआ कि यहाँ रहनेवाली एक फ्रेंच लड़की से मैं फ्रेंच सीखा करता था तो वे बहुत खुश हुई और उन्होंने कहा कि हम यहाँ तीन सप्ताह रहेंगी और आपको कुछ और फ्रेंच सिखा देंगी। मादमोज़ेल बुए फ्रेंच में कविताएँ भी लिखती हैं, मैडम कोमे से अधिक मिलनसार, हँसमुख, और बातूनी हैं, उनसे अधिक सुन्दर भी। आँखें उनकी बड़ी-बड़ी और पुतलियाँ नीली हैं, और जैसे उनमें भीतर तक देखने की शक्ति भरी है। बड़ी जल्दी सब तरह की बातें हमसे होने लगीं। अंग्रेज़ लड़कियाँ बहुत रिज़र्व्ड रहती हैं। कुछ पूछो भी तो एक शब्द में जवाब और फिर चुप। डांसिंग हाल और पबों की बात और है—वहाँ तो सब काम नशे के प्रभाव में होता है।

सेन्ट्रल लाइब्रेरी होता यु. ला. गया।

दिन-भर 'Esoteric Buddhism' में सिर खपाया।

लौटकर खाना खाया। शाम को घूमने जाने लगा तो मैडम कोमे और मादमोज़ेल बुए भी मेरे साथ आईं। मैं उन्हें सेंट जॉन और ट्रिनिटी कालेज ले गया। लौटकर पुल पर हम लोग बहुत देर तक खड़े रहे। बड़ा अच्छा मौसम था। कैम पर बहुत-से लोग नौका-विहार को निकले थे। जब सब लौट गए, कैम के किनारे झुकी हुई विलो की लता को छू-छू बहनेवाले पानी और हवा का स्वर साफ़ सुनाई पड़ने लगा। मुझे यह आवाज़ बड़ी अच्छी लगती है—न जाने कहाँ की उदासी इसमें भरी हुई है। सीधे हृदय के अन्दर चली जाती है और जैसे पुराने घावों को सहलाने लगती है। थोड़ी देर हम तीनों ही चुपचाप खड़े हुए विलो की यह सायँ-सायँ सुनते रहे। मादमोज़ेल बुए ने कहा, अब आप एक कविता लिखिए और उसमें बतलाइए कि यह हवा क्या कह रही है। मादमोज़ेल भावुक और कवि-हृदय हैं।

रात को आकर मैंने कुछ देर टाइप का अभ्यास किया। मादमोज़ेल का कमरा मेरे कमरे से मिला हुआ है; मैंने 'नॉक' करके पूछ लिया, आपको मेरी टाइपिंग से डिस्टर्बेन्स तो नहीं होता।

मुसकराकर उन्होंने कहा, नो-नो।

मैंने कहा, पन्द्रह मिनट में समाप्त कर दूंगा।

शनिवार, 19 जुलाई, '52

1 बजे तक युनिवर्सिटी लाइब्रेरी में रहा।

लंच के समय तेजी की चिट्ठी मिली।

फ़ौरन चिट्ठी का जवाब देने बैठ गया। आज जवाब नहीं गया तो सोमवार के पहले न जा सकेगा। कुछ देर टाइप का अभ्यास, फिर आराम। दो घण्टे मार्जरी के भेजे काव्य-संग्रहों का पाठ। न कोई कवि विशिष्ट लगा, न कोई कविता; किन्हीं-किन्ही कविताओं में नई अपरिचित imagery ज़रूर मिली, पर उनसे क्या संकेत कवि करना चाहते हैं, मैं नहीं समझ सका। मालूम होता है सब कवि एक ही स्थान पर खड़े, एक ही दृष्टिकोण से, थोड़ा-बहुत बदलकर एक ही तरह की बात कह रहे हैं। मैं समझता हूँ अंग्रेज़ी कविता में यह कुछ खोज का समय है। सब कुछ खोज रहे हैं। इनमें कुछ उपलब्धि-सी वे कर लेते हैं जो नए की खोज में पुराने से बिलकुल

नहीं टूटे हैं—इनमें दो कवियों की ओर मेरा ध्यान जाता है, सेसिल डी. लीविस और एडविन म्योर की ओर। कभी सोचता हूँ पुराने से बिलकुल कटने का प्रयोग ही तो ग़लत नहीं है। समाज, युग, विचार, नैतिकता, व्यवहार में बहुत कुछ नया आकर भी क्या पुराने से बिलकुल कट गया है। पुराने के रक्षणीय अंग और अंश की उपेक्षा न जीवन के लिए स्वस्थ है न साहित्य के लिए—फिर भी सब तरह के प्रयोगों की छूट मैं देना चाहूँगा। अपनी ग़लतियों के प्रति जीवन और साहित्य बड़ी जल्दी सचेत हो जाते हैं।

खाने के बाद घूमने चला गया। कैम के किनारे Gospel Tent Campaign का जल्सा हो रहा था। तम्बू लगाकर ईसाइयत पर व्याख्यान दिया जाता है। मेरी समझ में यह नहीं आता कि इतने गिरजों के होने के बावजूद इस प्रकार तम्बू लगाकर धर्म-प्रचार करने की आवश्यकता क्यों आ पड़ती है। शायद लोग चर्च नहीं जाते तो चर्च लोगों के पास आता है, कुछ दुनियाबी आकर्षण भी साथ लेकर। तम्बुओं के बाहर कुछ दूकानें भी लगा दी गई हैं। शाम को टहलते हुए जाओ, खाओ, पियो, प्रभु ईसा का उपदेश सुनो, मन बहलाओ, फिर कैम-किनारे प्रेम-लीला करो। सब तरह की सुविधा एक साथ, एक ही स्थान पर।···

लौटते समय दत्त के यहाँ होता हुआ आया। इण्डियन टीम हार गई थी, वे तो बड़े अफ़सोस में बैठे थे। अख़बार की ख़बर से भी असन्तुष्ट। 'टाइम्स' में शेख़ अब्दुल्ला पर सम्पादकीय था। 'टाइम्स' की राय थी कि शेख़ सर्वथैव स्वतन्त्र काश्मीर चाहते हैं—अगर काश्मीर में शक्ति हो और वह पाकिस्तान, हिन्दुस्तान तथा अन्य पड़ोसी सरकारों से समझौता कर सके तो स्विट्ज़रलैण्ड के समान उसके स्वतन्त्र राज्य होने में हर्ज क्या है। पर काश्मीर के स्वतन्त्र होते ही अगर पाकिस्तान उस पर हमला कर दे तो वह हिन्दुस्तान के लिए भी घातक होगा। काश्मीर को सोच-विचारकर क़दम उठाना चाहिए।

कमरे में आकर नई कविता को अन्तिम रूप दिया। इसका शीर्षक अब रक्खा है—'तुम्हारी नज़रों में वे, उनकी नज़रों में तुम।'

रविवार, 20 जुलाई, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर मा. बुए ने वाग़लेन की दो कविताएँ मुझे लिखकर दीं, शाम को अर्थ बताने के लिए कहा।

तेजी ने जो कविताएँ भेजी थीं उनको दिन में साफ़ कापी पर उतारता रहा। तभी रायल इण्डिया सोसाइटी के मन्त्री मि. रिश्टर आ गए। वे World Congress of Faiths के सिलसिले में केम्ब्रिज आए थे, जो आजकल न्यूनम कालेज में हो रही है। मुझे लंच के लिए निमन्त्रित कर गए। मि. रिश्टर ऐसे सब कामों में आगे रहते हैं।

जब मैं न्यूनम कालेज पहुँचा, मि. रिश्टर बाहर मेरा इन्तज़ार कर रहे थे। श्री कालीदास नाग भारत से आए थे। मि. नाग से परिचय होने पर मैंने उनसे हिन्दी में बात करनी आरम्भ की। दो-चार वाक्य बोलकर उन्होंने अंग्रेज़ी में बोलना शुरू कर दिया, हिन्दी से उन्होंने सर्वथा अपना अपरिचय नहीं दिखलाया यही क्या कम था। मि. रिश्टर ने मेरा परिचय देते हुए कहा कि ये भारत के प्रसिद्ध कवि हैं, आप तो इन्हें जानते होंगे। नाग महोदय ने मेरा नाम भी नहीं सुना था। ख़ैर, जब मैंने उनसे कहा कि मैं प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापक हूँ तब उन्होंने ए. सी. बनर्जी और दो-एक बंगालियों के नाम लिये जिनसे उनका परिचय था और जिनको मैं भी

जानता था। शायद उन्होंने कांग्रेस को भारत निमन्त्रित किया था या करना चाहा था, किसी ने मुझसे बताया। मैं उसी टेबिल पर बैठा जिस पर लार्ड कर्ज़न की पुत्री बैठी थीं। उम्र कोई चालीस के ऊपर होगी उनकी। छोटी अवस्था में वे भारत में थीं। Congress of Faiths में वे किस हैसियत से आई थीं, नहीं समझ सका; शायद मेरी ही तरह निमन्त्रित होकर। कोई फ़ेथ की बात करे तो उसे कोई सुननेवाला भी तो चाहिए। भारत की कुछ अटपटी स्मृतियाँ उन्होंने सँजो रक्खी थीं—आया, दरबान, चपरासियों की—भारतीयों को, स्वाभाविक है, अपने बचपन में उन्होंने इन्हीं रूपों में जाना होगा। नवीन भारत के विषय में उनको जिज्ञासा थी। बहुत-सी बातें पूछती रहीं। उनका विचार था कि बँटवारा भारत के लिए दुर्भाग्य की बात थी। मुझसे न रहा गया, मैंने कहा इसके लिए जवाबदेह अंग्रेज़ थे। पाकिस्तान-हिन्दुस्तान के बीच आर्थिक सम्बन्धों को बढ़ाने के पक्ष में वे थीं। और भी कई व्यक्तियों से मेरा परिचय हुआ। कुछ लोग मेरे शोध के विषय में भी रुचि रखनेवाले थे। कई ऐसे व्यक्तियों से मेरा परिचय हुआ। जो ईट्स से मिले थे और उनके विषय में विचित्र-विचित्र बातें बताते थे। ईट्स में बात करने की अद्भुत शक्ति थी और वे लोगों को ऐसा लुभा लेते थे जैसे कोई जादू से उन्हें अपने वश में कर ले। यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उनमें कोई अलौकिक शक्ति (supernatural power) थी या नहीं; पर उनका विश्वास कि उनमें ऐसी शक्ति है, उन्हें अपने प्रति एक ऐसा आत्म-विश्वास देता था जो साधारण व्यक्तियों में नहीं पाया जाता। वे हर परिस्थिति पर विजयी होंगे, और हर समाज को प्रभावित कर सकेंगे, इसका अद्भुत विश्वास उन्हें था। जहाँ वे खड़े होते थे लोगों को सचमुच, मानो मिस्मरेज़्म से, अपने वश में कर लेते थे। प्राय: जितने लोगों से मेरी बात हुई सबने ईट्स की इस शक्ति का ज़िक्र किया। जिसे योरोप में black magic कहते हैं उससे भी वे परिचित थे; उसका अभ्यास भी वे करते थे या नहीं, इसका पता किसी को नहीं था।

कांग्रेस से आकर थोड़ी देर मैंने आराम किया। फिर कविताओं को नक़ल करने का काम समाप्त किया। 6॥ बजे खाना खाया। कुछ देर फ्रेंच लड़कियों के कमरे में बैठकर वाग़लेन की कविता का अर्थ समझता रहा। फिर हम तीनों घूमने चले गए। पार्क में कुछ दृश्य ऐसे देखे जिन पर फ्रेंच लड़कियों को भी आश्चर्य हुआ। एक ने कहा, फ्रांस में आप ऐसा नहीं देख सकते। हालाँकि मैंने सुना था कि फ्रांस इस मामले में इंग्लैण्ड से कहीं आगे है।

सोमवार, 21 जुलाई, '52

'Esoteric Buddhism' आज खत्म हो गई। मानव विकास सम्बन्धी ईट्स के कुछ विचारों पर बीज रूप में इसके प्रभाव का कुछ संकेत मुझे मिला है। 'A Vision' अध्ययन करते समय इसके कुछ हिस्सों को फिर देखना होगा।

4॥ रजिस्ट्री गया, मालूम करने कि 10 बजे की मीटिंग में मेरे प्रार्थना-पत्र पर क्या निर्णय लिया गया।

मीटिंग किसी कारण स्थगित हो गई थी, अब 23 को होगी। प्रार्थना-पत्र के सम्बन्ध में औपचारिक सूचना 27 के पूर्व न मिल सकेगी।

कमरे आया। कुछ बटन लगाने थे। यह मेरा काफ़ी सिरदर्द है। बिना दो-चार बार उँगलियों में सुई चुभाए और कुछ रक्तदान किए यह काम नहीं हो पाता। बटन लगा रहा था कि दत्त आ गए।

दो-तीन डिग्स का पता लाए थे, कहने लगे, अभी चलो, देख लें। ब्रिटिश कौंसिल और युनिवर्सिटी लाजिंग सिंडिकेट से कुछ और पते ले हम लोग कई जगह गए। कुछ जगहें यहाँ से अच्छी थीं, पर उनके किराये भी ज़्यादा थे, जो सस्ती थीं वे युनिवर्सिटी एरिया से दूर थीं और उतनी अच्छी भी न थीं। शायद मेरा मन परिवर्तन से घबराता है। इस जगह का अभ्यस्त हो गया है, बावजूद कुछ असुविधाओं के, शायद ओदेत और कोमे के आकर्षण से भी मैं अब डिग बदलना नहीं चाहता। सरल, मिलनसार, स्नेही लड़कियाँ हैं। घर से दूर परदेस में सर्वथा एकाकी पड़ा हूँ। जो थोड़ा भी अपनत्व दिखाता है, चाहे वह औपचारिक अथवा शिष्टाचारवश क्यों न हो, मन उसकी ओर झुकता है। वोआज़ेन और लीथान को 'मिस' करता ही था कि ये लड़कियाँ आ गईं। डिग में बोलने-बैठने को एक कम्पनी मिल गई है, वैसे है तो यह सराय ही जिसके बारे में कहते हैं, सराय में कौन किसका मीत।

लौटकर खाना खाया। सामने के 9 नम्बर के कमरे में मारिशस का एक लड़का आ गया है। सुबह उससे परिचय हुआ था। उसके माता-पिता सूरत के रहनेवाले थे। मारिशस व्यापार के सिलसिले में गए थे और वहीं बस गए। इस लड़के ने कभी हिन्दुस्तान नहीं देखा। गुजराती समझता है; थोड़ी हिन्दुस्तानी बोल लेता है। तीन वर्ष इंग्लैण्ड में रहकर इन्जीनियरिंग पढ़ी है; अब लन्दन में काम करता है। वह शाम को मेरे कमरे में आ गया। बहुत देर तक हिन्दुस्तान के साम्प्रदायिक मसले पर बात करता रहा। उसने बताया कि जब हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुस्लिम दंगे शुरू हुए तो उसकी प्रतिध्वनियाँ मारिशस तक पहुँचीं। वहाँ भी हिन्दू-मुसल्मानों की समस्या खड़ी हो गई। इसके पूर्व कभी लोगों ने हिन्दू-मुस्लिम के 'टर्म' में सोचा भी न था। लड़का धर्म से मुसल्मान है—नाम अब्दुल्ला है, पर कट्टरता से अछूता।

मैं घूमने जाना चाहता था। जब वह चला गया तो मैं बाहर निकला। लौटते समय दोनों फ्रेंच लड़कियाँ मिल गईं और बात करते-करते मेरे कमरे में चली आईं। अब्दुल्ला भी आ गया। बड़ी देर तक हमारी बात-चीत होती रही। अब्दुल्ला फ्रेंच भी बोलता है। मारिशस पहले फ्रांसीसियों के अधिकार में था। बाद को अंग्रेज़ों के हाथ में आ गया। वहाँ फ्रेंच और अंग्रेज़ी दोनों बहुप्रचलित हैं। जाने के पहले तीनों ने फ्रेंच का एक गीत गाया। मादमोज़ेल ने अपनी एक कविता सुनाई। मैंने 'निशा निमन्त्रण' के कुछ गीत और उनके अनुवाद सुनाए—महाराज कृष्ण के अनुवाद। 'The House of Wine' लड़कियों ने मुझसे लेकर पढ़ा था। दोनों का अन्तर उन्होंने नोटिस किया। You are gay in your first book, but in the shorter poems you are sad, why ? मैंने कहा, जीवन में हर्ष भी है, विषाद भी। इससे केवल यह सिद्ध होता है कि मैंने जीवन में दोनों को जाना है। उन्हें अपने जीवन का क्या इतिहास बताता। वे चली गईं तो मैंने कुछ देर टाइपिंग का अभ्यास किया।

मादमोज़ेल मेरी टाइपिंग की आवाज़ में मेरा मूड पढ़ लेती हैं।...

मंगलवार, 22 जुलाई, '52

तैयार होकर बैंक गया; बी. बी. सी. और रायल इण्डिया सोसाइटी के दो चेक आए थे; उन्हें जमा करना था। आज चेक-बुक भी मिल गई है। यहाँ चेक-बुक का दाम देना पड़ता है। 4 शि. लगे।

सेन्ट्रल लाइब्रेरी में अखबार देखे। फ़ारस में मोसद्दिक को फिर लाने के लिए बड़े दंगे हुए हैं। वह शाह के लिए ताक़तवर चुनौती बन गया है। एशिया की जनता जाग रही है। प्रजा अपने अधिकारों को समझने लगी है, और उनके लिए मरने-कटने को तैयार है। फ्रेंच रेवोल्यूशन जैसे दृश्य फ़ारस में दिखे होंगे। दुर्भाग्य है कि मोसद्दिक शरीर से दुर्बल और वृद्ध है। पर दृढ़ व्यक्ति मालूम होता है। तेल के मामले में अंग्रेज़ों को निकालकर ही माना। आर्थिक परिस्थिति को सुधारनेवाला कोई व्यक्ति इस समय चाहिए। तेल की खानों के असंगठित हो जाने से फ़ारस को बड़ी आर्थिक हानि उठानी पड़ रही है। केवल जोश पर आधारित क्रान्ति सफल नहीं होती। जनता को उसका व्यावहारिक लाभ शीघ्र प्राप्य होना चाहिए।

यु. ला. में 'The Occult World' आरम्भ कर दी है। क़रीब 80 पृ. पढ़े। मेरा अनुमान है 'Esoteric Buddhism' पढ़ने के बाद ईट्स ने यह पुस्तक अवश्य पढ़ी होगी। उस पुस्तक में इस पुस्तक का विज्ञापन था। मैडम ब्लावाट्स्की के पास पहुँचने का प्रलोभन इसी पुस्तक ने दिया होगा, गो 'आत्म चरित' के अनुसार उनके पास वे पैनी आलोचनात्मक दृष्टि लेकर गए थे और कभी पूर्णतः उनके मुरीद नहीं हुए।

लौटकर खाना खाया, फिर मादमोज़ेल बुए और मैडम कोमे के कमरे में गया। वे आज दिन-भर घूमती रही थीं और काफ़ी थकी थीं। उन्होंने मुझे फ्रेंच चाकलेट खिलाए। गांधीजी के विषय में बहुत-सी बातें हुईं। गांधी के बारे में योरोप के बुद्धिजीवियों में बड़ी जिज्ञासा है। मादमोज़ेल ने बताया कि एक फ्रेंच विद्वान गांधीजी से मिलने भारत गए थे और लौटकर उन्होंने फ्रांस में भी एक आश्रम खोला है जहाँ पर लोग व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं रखते, सब एक-दूसरे के काम में सहयोग देते हैं और अपनी ज़रूरत की सब चीज़ें आश्रम में बनाते और पैदा कर लेते हैं। ऐसे आश्रम अगर सीमित होकर, समाज से अलग रहें तो समाज के लिए एक अजायबात या कौतूहल की वस्तु बनकर रह जाते हैं। उपयोग इन आश्रमों का तब है जब वे अपने-आपको समाज में प्रोजेक्ट कर सकें, समाज को प्रभावित कर सकें, कम से कम समाज ऐसा समझे कि जो वे कर रहे हैं वह व्यावहारिक है, उपयोगी भी। मुझे इस आश्रम का पता लेना है। कभी फ्रांस गया तो इसे देखना चाहूँगा।

मादमोज़ेल ने मुझसे कोई कविता सुनाने का अनुरोध किया। मैंने 'बीते दिन कब आनेवाले' सुनाई 'निशा निमन्त्रण' से। वे बोलीं, मुझे ऐसा लगता है. मैंने यह कविता कहीं पढ़ी है—The idea looks so familiar to me. मैंने कहा, फ्रेंच में शायद कोई कविता हो, पर मैं फ्रेंच नहीं जानता और अंग्रेज़ी अनुवादों से भी मैंने कोई ऐसी चीज नहीं पढ़ी। यह मेरे अनुभव का गीत है, पर सम्भव है और भी कोई इन्हीं अनुभवों से गुज़र चुका हो। मानवी मानसिक परिस्थितियाँ बार-बार आती हैं, प्रायः भाव-प्रवण लोग एक ही प्रकार से सोचते हैं; प्रायः अभिव्यक्ति भी एक ही प्रकार की होती है—भाषा, स्थान, युग की अपनी विशिष्टताओं के बावजूद। उन्होंने बार-बार कहा, मुझे यह कविता बिलकुल नई नहीं लगी—जैसे कोई चीज मैं जानती थी और आपने उसकी याद दिला दी, गो कोई फ्रेंच कविता इस भाव की मुझे नहीं याद आ रही। मैंने कहा, शायद आपने स्वयं कभी ऐसा अनुभव किया हो, पर उसे वाणी न दी हो और वह विचार आपके अवचेतन में पड़ा रहा हो। उन्होंने कहा, हो सकता है।

ऊपर आकर मैंने कुछ देर टाइपिंग का अभ्यास किया।

दिन को तेज़ी और मादमोज़ेल वोआज़ेन के पत्र मिले।

बुधवार, 23 जुलाई, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर मादमोज़ेल बुए और मैडम कोमे के साथ आज रात को टी. एस. ईलियट का 'The Family Reunion' देखने का कार्यक्रम बना। उन्होंने कहा कि वे मेरा भी टिकट लेकर सीट रिज़र्व करा लेंगी। मैं सेन्ट्रल लाइब्रेरी होता युनिवर्सिटी लाइब्रेरी चला गया। 'Occoult World' ख़त्म की और 'The Growth of Soul' आरम्भ की। इसे 'Esoteric Buddhism' के बाद की पुस्तक बताया गया है 'Sequel to Esoteric Buddhism.'

आज डिग्री कमिटी की मीटिंग थी। युनिवर्सिटी लाइब्रेरी से लौटते हुए मैंने सोचा, मि. हेन से मिलता चलूँ; शायद उनको मेरे रिसर्च सम्बन्धी प्रार्थना-पत्र के विषय में कोई समाचार मिला हो। वे अपने कमरे में बैठे थे। मुझको देखते ही उन्होंने कहा कि अभी तीन मिनट हुए मैं तुम्हारे लिए एक पत्र अपने प्राइवेट सेक्रेटरी को डिक्टेट करा चुका हूँ। डिग्री कमेटी ने तुम्हारे शोध-विषय को पी-एच. डी. के लिए स्वीकार कर लिया है और शोध की अनुमति दे दी है। रिसर्च की अवधि ईस्टर टर्म से शुरू हुई मानी जाएगी। कैथरीन कालेज तुम्हारा नाम अपने यहाँ लिखने को तैयार है।—मि. हेन तो 9 महीने की छुट्टी पर जा रहे हैं; उनकी अनुपस्थिति में क्राइस्ट कालेज के अंग्रेज़ी अध्यापक मि. ग्राहम हफ़ मेरे निर्देशक नियुक्त हुए हैं। मि. हेन ने कहा, तुमने जो-जो चाहा था डिग्री कमेटी ने सब तुमको ग्राण्ट किया। दो वर्ष के अन्त में थीसिस प्रस्तुत करने का प्रश्न अभी नहीं उठा। वह मि. हफ़ की रिपोर्ट पर निर्भर होगा, पर उसमें कोई कठिनाई नहीं होगी। आशा है तुम मि. हफ़ को अपने काम से सन्तुष्ट कर सकोगे।—मि. हेन 20 अगस्त तक बाहर जाएँगे।—इससे पूर्व, उन्होंने कहा, एक शाम को कालेज आओ, मेरे साथ खाना खाओ, उसी समय तुम्हारे शोध की रूप-रेखा पर भी बात करूँगा।—आजकज मि. हेन शेक्सपियर पर नए लेक्चर दे रहे हैं। मुझसे कहा कि अगर रुचि हो तो उसमें आओ; कुछ नई चीज़ें सुनने को मिलेंगी।—कैथरीन कालेज में नाम लिखाने के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि उनके स्थानापन्न मि. लेसी मुझे सूचित करेंगे। नाम ईस्टर टर्म से लिखा जाएगा और पिछली फ़ीस भी मुझे भरनी पड़ेगी। रजिस्ट्री से अपने प्रार्थना-पत्र का औपचारिक उत्तर पाने पर मुझे ग्राहम हफ़ से मिल लेना चाहिए। छुट्टियों में वे भी दो मास के लिए बाहर जाएँगे, पर छुट्टियों के लिए काम मुझे बता जाएँगे। मि. हेन को धन्यवाद देकर मैंने उनसे विदा ली।

रास्ते में तरह-तरह के विचार मेरे मन में आते रहे। मि. हेन का 9 महीने के लिए छुट्टी पर जाना शायद मेरे शोध-कार्य के लिए हितकर नहीं होगा। तीन महीने में दिशा तो उन्होंने दिखा दी है। मार्ग पर चलना तो मुझे ही होगा। गोद में उठाकर तो कोई ले जाने से रहा। हो सकता है कि उनकी अनुपस्थिति मेरे लिए हितकर हो। मुझे कुछ स्वतन्त्रता से सोचने का अवसर मिलेगा। मुमकिन है ग्राहम हफ़ अधिक सहायक सिद्ध हों। हेन उनकी सूझ-बूझ की प्रशंसा सदा Superlatives में करते हैं। दो महीने की छुट्टी पर वे भी जाएँगे। आकर पता नहीं मेरे काम में कितनी रुचि लेंगे। मेरे लिए तो एक-एक दिन महत्त्व का है। तीन बरस का काम मैं दो बरस में पूरा करना चाहता हूँ। अधूरा छोड़ना पड़े, पर दो वर्ष से अधिक यहाँ रहने की बात मैं नहीं सोच सकता। तेजी और बच्चों के प्रति यह बड़ा अन्याय होगा। निर्देशन पर निर्भर न रह मुझे अपनी सूझ-बूझ लगाकर काम को आगे बढ़ाना

है। पता नहीं भविष्य में मेरे लिए क्या है। मंज़िले-मक़सूद पर पहुँचना है या इस रेगिस्तान में खो जाना है—यहाँ से डिग्री लेकर लौटना है, या कुछ कविताएँ लेकर या कुछ कटु-मधु स्मृतियाँ, कुछ कड़ुए-मीठे तजुरबे।···

इतने अनजाने, अप्रत्याशित, अनिश्चित factors के बीच जीवन एक प्रयोग के अलावा और क्या है—एक adventure—'सहसा करि पछिताहिं विमूढ़ा'—पर बिना 'सहसा' किए किसी ने कुछ पाया? फिर 'ज्ञानी मूढ़ न कोय' कोई 'मूढ़' ही बनाना चाहता हो तो बना दे।···

6।। बजे खाने की मेज़ पर बैठा। मादमोज़ेल ने बहुत महँगा टिकट लिया था। पर तीन सीट, उन्होंने कहा, एक साथ नहीं थीं। ख़ैर, आठ बजे से नाटक आरम्भ होता था। मैंने बुए और कोमे को नाटक की कहानी बताई—रूप-रेखा भर। ईलियट कथा के खिंचाव के अतिरिक्त नाटक की और कई बातों को महत्त्व देते हैं—कथोपकथन, मनोविश्लेषण, मनोविकास, भाषा की चुस्ती, कविता। पौने आठ हम 'डिग' से चले। हमारी सीटें काफ़ी आगे थीं, जहाँ से हम अच्छी तरह देख भी सकते थे, सुन भी। नाटक का अभिनय 'दि मार्लो सोसाइटी' कर रही थी जो इंग्लैण्ड की प्रख्यात नाटक कम्पनी है और बहुत-से प्रसिद्ध नाटकों का अभिनय सफलतापूर्वक कर चुकी है। पढ़ते समय नाटक में जो अस्पष्टता मालूम हुई थी वह रंगमंच पर स्पष्ट हो गयी। रंगमंच नाटक समझने की सबसे अधिक सहायक कमेण्ट्री है।

यह एक प्रकार से प्रयोगात्मक नाटक है; विषय और पात्र तो आधुनिक जीवन से लिये गये हैं, पर उनका सम्बन्ध ग्रीस के प्राचीन भाग्य-नाटकों के साथ दिखाया गया है। ग्रीक नाटकों में 'कोरस' नाटक के पात्रों से अलग हुआ करता था। ईलियट ने नाटक के चार पात्रों को ही 'कोरस' बना दिया है। वे एक साथ बोलते हैं, बोलते समय मूर्तिवत् खड़े रहते हैं, अभिनय-हीन मुद्रा में, जिनसे ऐसा लगता है कि अमूर्ति विचार (abstract ideas) बोल रहे हैं। कथोपकथन काव्य की भाषा में है पर उसे काल्पनिक होने से बचाया गया है। कविता को आधुनिक जीवन की भाषा से निखारा गया है (गो ईलियट अपनी विद्वत्ता के बल पर उसके साथ बहुत-से क्लासिकल और साहित्यिक का घाल-मेल करते हैं)। ऐसी भाषा बोलनेवाला एक विशेष प्रकार का परिवार-समाज चाहिए। नाटक के पात्र जिस संस्कृत और सुशिक्षित समाज से हैं वह इस प्रकार की बोल-चाल की+किताबी भाषा में अपने को व्यक्त करने की क्षमता रखता है।

आजकल नाटकों की दिशा मूर्त से अमूर्त की ओर है ही। जो कुछ होने को है वह पहले से हो चुका है—गीता में भगवान कृष्ण के मानस-पटल पर महाभारत के युद्ध के समान—तो नाट्यकार का सम्बन्ध नाटक में केवल उसके पात्रों की मानसिक प्रतिक्रिया, प्रक्रिया या प्रभाव से रह जाता है। ऐसे नाटकों में अभिनेता का दायित्व अधिक है। उसे घटित का अन्तिम परिणाम प्रारम्भ से अपनी भाषा, लहजे, मुद्रा और अभिनय में प्रदर्शित करना पड़ता है। नाटक में ईलियट ने साधारण और अद्भुत का विचित्र सम्मिश्रण दिखाया है। साधारण, रंग-मंच पर दर्शक को आकर्षित नहीं करता; क्यों, वैसा ही तो वह हर समय देखता है। अद्भुत पर उसे विश्वास नहीं होता—यह तो झूठी कल्पना है; और, इस प्रकार, कला का आनन्द लेने के लिए जिस प्रकार के विश्वास (suspension of disbelief—Coleridge) की आवश्यकता होती है उसे वह पहले ही खो बैठता है। दोनों परिस्थितियों से बचने और दोनों का यथोचित लाभ उठाने के लिए

ईलियट ने दोनों का एक सम्मिश्रण उपस्थित किया है। सफलता इसकी यह है कि नाटक आदि से अन्त तक रोचक रहा। दर्शक-जनता भी शिक्षित और उच्चस्तर की थी। आदर्श जनता कलाकार से अपनी मान्यताएँ ही नहीं माँगती, कलाकार नया क्या दे रहा है, उसे भी देखने-जानने को उद्यत रहती है। नाटक की सफलता में जनता का भी पूर्ण सहयोग था। साधारण से अद्भुत, और सामाजिक वार्तालाप की शब्दावली से उच्चकोटि की काव्यात्मक पदावली जोड़कर एक मनोज्ञ सन्तुलन बनाए रखने में ईलियट बहुत कुशल हैं। न तो कहीं ऐसा लगा कि ज़मीन से एकदम आसमान में उठ गए, और न ऐसा ही कि पहाड़ की चोटी से खन्दक में गिर गए। पारस्परिक विरोधियों की मुहाँ-मुहीं (encounter) से ईलियट विचित्र-विचित्र प्रभाव उत्पन्न करते हैं। अभिनय का क्या कहना !—रंगमंच भी आदर्श था। विज्ञान कला को कितनी सहायता दे सकता है, इसे मैंने यहाँ के रंग-मंच पर देखा। अपराह्न से कैसे रात हुई उसे क्रमशः प्रकाश को मन्द करके खिड़की के बाहर के प्राकृतिक दृश्यों से दिखाया गया।

बुए और कोमे ने भी नाटक को खूब पसन्द किया।

नाटकादि देखने का आनन्द 'कम्पनी' पर भी निर्भर होता है।

आज कुछ गर्मी थी, फिर हम लोग दो घण्टे बन्द हाल में थे। सबों ने निश्चय किया कि कुछ देर कैम के किनारे चलकर बैठें। नीचे बिछाने के लिए कमरे से मैंने एक कम्बल ले लिया। कैम के किनारे पूर्ण शान्ति थी। बेंचों पर कुछ प्रेमी-प्रेमिकाएँ अब भी अपनी प्रेम-लीला में व्यस्त थे। सड़कों की रोशनी बन्द हो रही थी, मकानों की बत्तियाँ भी धीरे-धीरे बुझ रही थीं। हम लोग एक ख़ाली बेंच पर बैठे। ओदेत और आन्द्रे ने (बुए और कोमे के फ़र्स्ट नेम, वे चाहती हैं कि मैं उनको इन्हीं नामों से सम्बोधित करूँ; योरोप में अनौपचारिकता अथवा निकटता का बोध कराने को प्रथम नामों का प्रयोग होता है) कुछ फ्रेंच गीत सुनाये, मैंने कुछ हिन्दी कविताएँ सुनाईं। 12 से ऊपर हो गए थे; सर्दी कुछ-कुछ महसूस होने लगी थी। कम्बल जो बिछाने के लिए लाए थे उसे ऊपर डालना पड़ा, पर कोई वापस जाने के mood में नहीं था। ऐसे शान्त, प्रकाश से अनातंकित वातावरण में चुपचाप बैठना भी कितना सुखद हो सकता है। बोलने से भी ऐसा लगता है जैसे इस शान्त वातावरण के प्रति कोई अपराध कर रहे हैं, किसी की समाधि-भंग कर रहे हैं। ऐसा अपराध करने का अधिकार प्रकृति को ही है। कहीं एक चिड़िया बोली है, कहीं से परों की फड़फड़ाहट सुन पड़ी है, कभी एकाध पत्ता टूटकर गिरा है या कैम की धारा में कोई मछली उछलकर फिर पानी में गुड़ुप से डूब गई है! जैसे वह एक झलक लेने को निकली थी कि बाहर क्या बात है कि इतनी शान्ति है। फिर दूर-नज़दीक की घड़ियों से एकाध सेकेण्ड के अन्तराल पर 'टुन'-'टुन' घण्टियों की आवाज़ हुई है, एक बज गया है…हम लोल 'डिग' पहुँचे तो डेढ़ बजा था। अन्दर आकर ओदेत और आन्द्रे ने अपने जूते उतारकर हाथ में ले लिये कि ऊपर जाने में खटर-पटर न हो—लोग नींद से जाग गए तो बुरा मानेंगे। उन दोनों को सँभल-सँभलकर चलते और सीढ़ियों पर चढ़ते देख मेरी हँसी छूट गई।

गुरुवार, 24 जुलाई, '52

सुबह तैयार होकर सेन्ट्रल लाइब्रेरी गया।

बड़ी देर तक समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ देखता रहा।

11 बजे से मि. हेन का लेक्चर था—रोमियो और जूलियट पर।

ठीक समय पर हाल में पहुँच गया।

मि. हेन का क्लास-लेक्चर सुनने का—general lecture—पहला मौक़ा था। हेन का लेक्चर बहुत पसन्द आया।

अन्त में तो उनका लेक्चर बिलकुल कवित्वपूर्ण हो गया। रोमियो और जूलियट के परिवारों के वैमनस्य को उन्होंने विगत युद्ध से जोड़ दिया। रोमियो जैसे मानवता का प्रतीक है, जूलियट शान्ति की। शत्रु-राष्ट्र उनके मिलन में बाधक हैं। युद्ध में जो जन-संहार हुआ है, जो शान्ति-भंग हुई है वह सार्थक हो जाए यदि शत्रु-राष्ट्र अपनी शत्रुता भूलकर मित्र बन जाएँ।

उन्होंने सिद्ध किया कि गो यह रोमांस का नाटक है उसमें सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का हल भी छिपा है। Great works के बहुत-से पहलू होते हैं। साधारण पाठक भी अचेतन में उनके प्रति सचेत होते हैं, अन्तर्दृष्टि रखनेवाले समालोचकों को उन्हें देखना और औरों को दिखाना चाहिए। प्रश्न किया जा सकता है कि क्या स्वयं शेक्सपियर इसके प्रति सचेत थे कि वे अपने नाटक को इतना 'डेप्थ' और 'डाइमेन्शन' (गहराई और विस्तार) दे रहे हैं। उत्तर इसका यह है कि अगर शेक्सपियर थे भी तो उसको जानना कैसे सम्भव हो सकता है; सचेत थे इसका एक सबसे बड़ा सबूत है कि आज हम उसमें अपने युग-समय का कोई बिम्ब देख पाते हैं। उन्होंने दृढ़ता के साथ कहा कि कला-साहित्य की ऊँचाइयों पर और गहराइयों में वैयक्तिक, सामाजिक और सार्वभौमिक, समकालीन, भविष्यकालीन, सर्वकालीन का सतही अन्तर नहीं रह जाता। बड़े कलाकार के सृजन काल में ऐसे क्षण होते हैं जब वह एक nut shell में eternity देख लेता है। इसे उलटकर इस तरह भी रख सकते हैं जो nut shell में eternity देख ले वही बड़ा कलाकार होता है। ऐसा देख लेना किसी तकनीक, तरीक़े अथवा साधना से सम्भव नहीं। इसके लिए किसी तरह का revelation होता है—इलहाम—जो महान कला का रहस्य भी है, आकर्षण भी, आनन्द भी, अध्यवसाय भी—उसे विश्लेषित करने की चुनौती।

लंच के बाद यु. ला. गया। 'Growth of Soul' के 100 पृ. पढ़े। किताब बहुत डल है। मि. हेन के व्याख्यान के बाद वह और डल लगी।

खाना खाने के बाद तेजी को पत्र लिखा।

कुछ देर टाइपिंग का अभ्यास किया।

10 बज गए थे, नींद नहीं आ रही थी। घूमने निकल गया। 11 बजे लौटा। कैम किनारे वैसी ही शान्ति थी, पर आज वहाँ अकेले बैठने में घबराहट-सी लगी। कुछ डर-सा भी लगा, क्यों?···प्रि—आई—ही—न···

शुक्रवार, 25 जुलाई, '52

सेन्ट्रल लाइब्रेरी होता हुआ यु. ला. गया।

ईट्स पर एक आलोचनात्मक पुस्तक आरम्भ की—Krans की। 'Growth of Soul' बहुत नीरस लग रही है; उसे थोड़ा-थोड़ा करके ख़त्म करूँगा। ईट्स को अपनी फ़िलासफ़ी formulate करने में इससे प्रेरणा मिली होगी। ईट्स ने चाहे पुस्तक पढ़ी हो, इसका ज़िक्र कहीं नहीं करते। ईट्स विचित्र हैं, प्रेरणा चाहे वे लें छोटों से, ऋण व्यक्त करते हैं प्रसिद्ध जाने-मानों के प्रति;—इस कमज़ोरी को समझा तो जा ही सकता है—और सबसे अधिक श्रेय वे अपनी मौलिकता, उद्भावना को देते हैं। या फिर ऐसे रहस्यमय स्रोतों को जिनका पता

न चल सके। बहुत-से शोधार्थियों के लिए ऐसे संकेत चुनौती बन जाते हैं, वे स्रोत की खोज शुरू कर देते हैं। मुझे भी ईट्स के लेखों में कुछ ऐसे संकेत मिले हैं। खोज तो यह मानकर होगी कि स्रोत हैं; दो बातें करनी होंगी, पहले उनका पता लगाना—काफ़ी सिर दर्द—और बेकार की बहुत-सी चीज़ों को पढ़ना-पछोरना; फिर यह सिद्ध भी करना कि ईट्स ने वहीं से लिया होगा, या उसी का संकेत किया होगा। बहुत सिर-मग़ज़न का काम है, पर शोध परोसी हुई पत्तल है, यह किसने कहा।

लंच युनिवर्सिटी लाइब्रेरी कैफ़िटेरिया में लिया।

शाम को डिग लौटा।

फ्रेंच लड़कियाँ आज ग्रैंचेस्टर गई थीं। वहाँ का बड़ा मोहक वर्णन उन्होंने किया—वहाँ बड़ा प्राकृतिक सौन्दर्य है, बड़ी रूमानी जगह है, बाइरन को वह जगह बहुत प्रिय थी, रूपर्टब्रुक को भी, पिकनिक, आराम, एकान्त, 'लव-मेकिंग' के लिए आदर्श जगह। अभी तक वहाँ नहीं जा सका।

कल हमारा साथ ईली जाने का प्रोग्राम बना।

खाना खाने के बाद मैं कुछ देर मादमोज़ेल के कमरे में बैठा। लौटकर मैं कुछ देर टाइपिंग करता रहा। सोने जाना ही चाहता था कि आन्द्रे और ओदेत ने दरवाज़ा खटखटाया। आन्द्रे मुझे एक बात बताना चाहती थी। उसने अपने पति को लिखा था कि वह मुझसे यहाँ मिली। मोशिए कोमे ने जवाब में लिखा था वे मेरा नाम फ्रांस में किसी से सुन चुके थे और यह जानते थे कि मैं हिन्दी का कवि हूँ। मुझे विश्वास नहीं हो सकता था कि मेरा नाम फ्रांस के एक छोटे क़स्बे क्लेग़-मोग़ तक पहुँच चुका है। पर आन्द्रे मुझसे झूठ क्यों कहेगी ? दोनों लड़कियाँ काफ़ी देर मेरे कमरे में बैठी रहीं। मैंने अपने परिवार के विषय में उन्हें बताया। तेजी और बच्चों की तस्वीरें दिखाईं। दोनों ने तेजी को बहुत सुन्दर बताया। बच्चों को भी। बोलीं, आप उनको बहुत 'मिस' करते होंगे।···फिर यह देखकर कि मुझे घर की याद आ गई है, उन्होंने कुछ खाने-पीने की बात चलाई। मेरे पास कुछ बिसकिट रक्खे थे। मैंने कहा, पीता मैं हूँ नहीं, मेरे कमरे में गैस का चूल्हा भी नहीं कि कॉफ़ी या चाय बनाकर पिला सकूँ। ओदेत अपने कमरे से कॉफ़ी बनाकर लाई, दूध मेरे यहाँ था। आन्द्रे के पास कुछ बढ़िया चीज़ थी, वह जाकर लाई। कॉफ़ी के साथ काफ़ी बातचीत के बाद हम सोने गए। फ्रेंच लड़कियाँ—कुछ इनके संस्कार ऐसे हैं—12-1 से पहले सोने की बात नहीं सोच पातीं।

शनिवार, 26 जुलाई, '52

आज लाइब्रेरी 1 बजे ही बन्द होती है।

हमने उस आधे दिन की भी आज छुट्टी कर ली।

11 बजे हम लोग ईली के लिए रवाना हुए—आन्द्रे, ओदेत, मुइयाँपाम्बे (नीग्रो) और मैं। बस समय से मिल गई। चार लौटानी टिकट के दस शिलिंग लगे।

ईली पहुँचकर सीधे हम कैथीड्रल देखने चले गए। ईली कैथीड्रल, मोनास्टरी के रूप में, रानी आइसेलड्रेडा के द्वारा सातवीं शताब्दी में स्थापित किया गया था। कैथीड्रल का रूप इसने 11वीं शताब्दी में लिया। इसका मुख्य भाग 12वीं शताब्दी में बनकर तैयार हुआ—यह कम-से-कम 800 वर्ष पुराना है। कला-कौशल के अतिरिक्त यह धीरज और आस्था का भी प्रतीक है। कैथीड्रल के चारों

ओर बहुत-से छोटे-छोटे मकान हैं, इन कारण यह एक जगह से पूरी तरह नहीं देखा जा सकता। यदि इसके चारों ओर खुली ज़मीन होती तो इसकी शोभा कुछ और होती। हम टावर पर भी चढ़ना चाहते थे, पर उस पर दो ट्रिप जाती थीं, एक तीन बजे, दूसरी चार बजे। हमने सोचा इस बीच खाना खा लें। एक होटल में हमने लंच लिया। तीन बजने में अभी देर थी; नदी के किनारे जाकर बैठ गए, मौसम साफ़ था, इक्के-दुक्के लोग ही इधर-उधर थे। शान्त वातावरण में किनारे की हरी और मुलायम घास पर लेटकर हमने एक-एक झपकी भी ले ली। जब वहाँ से चलकर हम कैथीड्रल पहुँचे तो पहली ट्रिप जा चुकी थी और दरवाज़ा बन्द कर लिया गया था। चार बजे तक इन्तज़ार करना कठिन था। सबको बड़ी निराशा हुई कि ऊपर नहीं जा सके। मैंने उन्हें प्रेमचन्द की एक बात बताई। एक बार वे दिल्ली गए तो कुतुब मीनार देखने पहुँचे, पर नीचे से ही उसे देखते रहे। किसी ने कहा इसे तो लोग ऊपर से देखते हैं। प्रेमचन्द ने कहा, इसकी ऊँचाई का जितना आभास नीचे से होता है उतना ऊपर से क्या होगा। मैं मीनार पर चढ़ गया तो मैं ही ऊपर हो जाऊँगा, मीनार मेरे नीचे होगी।—बहरहाल वे ऊपर नहीं गए। पता नहीं प्रेमचन्द के किस्से से मीनार पर न चढ़ पाने की उनकी निराशा का कितना परिहार हुआ। अभी हमें एक और जगह निराश होना था।

शहर लौटने के लिए जब हम बस के अड्डे पर पहुँचे तो पता लगा कि बस अभी-अभी जा चुकी है। दूसरी बस 4·40 पर थी। एक घण्टे बस का इन्तज़ार करना बेकार समझ, मैंने प्रस्ताव किया कि हम लोग पैदल केम्ब्रिजवाली सड़क पकड़ें और अगले बस-स्टाप पर बस लें। ओदेत और आन्द्रे इतनी थकी थीं कि वे एक क़दम चलने को तैयार न हुईं। पास के रेस्ट्राँ में एक-एक प्याली चाय पी। हमने दूसरी बस पकड़ी। खाने के ठीक समय हम डिग पहुँच गए।

तेजी को पत्र लिखा।

रात को आन्द्रे और ओदेत मेरे कमरे में आईं। मैंने उन्हें 'धर्मयुग' में छपी अपनी पिछली कविता सुनाई। और उसका अर्थ अंग्रेज़ी में बताने की कोशिश की। वे बोलीं, हम आपकी कविता का अर्थ आपकी ध्वनि और आपकी मुख-मुद्रा से अधिक समझ लेती हैं। ओदेत ज़्यादा sensitive है। उसकी आँखों से मुझे लगता है कि वह सच में मेरी कविता समझ रही है—कवि भी है—कवि-हृदय भी। ओदेत ने अपनी कई फ्रेंच कविताएँ सुनायीं—कहा, मेरी कविताएँ tradition से दूर, नई generation की कविता है—इनका अर्थ बताना मुश्किल है—आधुनिक मनुष्य जिस तनाव से गुज़र रहा है उसमें कुछ प्रतीक मन में उठते हैं—इन प्रतीकों का उपयोग अलग-अलग कवि अलग-अलग तरह से कर रहे हैं—कविता की एक नई भाषा बन रही है—पुरानी भाषा के मुहावरों में पुरानी दृष्टि इतनी रसी-बसी है कि उसके लपेट में आते ही कवि पुरानी बातें कहने लगता है। मेरी कविताओं को वह पुरानी भाव-भूमि पर समझती है पर साथ यह भी जोड़ देती है कि पूरब की अपनी सीमा हो सकती है, भाषा और साहित्य की भी सीमाएँ हो सकती हैं। मैंने उसे बताया कि पच्छिम की प्रतिध्वनियों और शायद पूरब की अपनी आवश्यकताओं ने वहाँ भी नये प्रयोगों को प्रोत्साहित किया है। हमारा शिक्षित, बौद्धिक और अधिक भाव-प्रवण प्राणी आज योरोप के मानसिक उद्वेलनों से अपरिचित नहीं है। मेरा यह भी ख़्याल है कि आनेवाली सदियों में पूरब-पच्छिम का अन्तर कम होता जाएगा। और यह बात कला, कविता, साहित्य के स्तर पर भी देखी जा सकेगी। पूरब लेगा अधिक; दे सकने का आत्मविश्वास वह खोता जा रहा है, जब तक पच्छिम ही न

पूरब से कुछ लेने योग्य की शोध करे।

न जाने कैसे बात यौगिक आसनों पर आ गई। मैंने कहा मैं प्रतिदिन कुछ आसन प्रातःकाल करता हूँ। सुबह उन्होंने आकर देखने को कहा। वे कुछ सीखना भी चाहती हैं।

रविवार, 27 जुलाई, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ।

दोनों फ्रेंच लड़कियाँ ठीक आठ बजे क्वार्टर पैण्ट और बहुत सूक्ष्म कपड़े पहने मेरे कमरे में आ गईं—आसन देखने और सीखने।

मैं सिर्फ़ जाँघियाँ पहनकर आसन करता हूँ। मुझे कुछ संकोच हो रहा था। उन्होंने कहाँ, आप भूल जाएँ कि हम कमरे में हैं और जैसे आप प्रतिदिन आसन करते हैं, करते जाएँ।

उन्हें दिखाने-सिखाने में मेरा भी व्यायाम-आसन ठीक से न हो सका।

हलासन और पश्चिमोत्तान का उन्होंने अभ्यास किया। उनके शरीर सुगठित हैं; अगर ये आसन करें तो उनका शरीर और सुन्दर बन सकता है। 'फ़िगर' की फ़िकर यहाँ की लड़कियों, औरतों को बहुत रहती है। मादमोज़ेल ने बताया उनकी कई सहेलियों के पास यौगिक आसनों की पुस्तकें हैं, फ्रेंच में इन पर कई सचित्र पुस्तकें हैं। उनकी सहायता से वे आसन करने का प्रयत्न करती हैं। मैंने उन्हें समझाया, आसन किसी शिक्षक से सीखने से ठीक किया जा सकता है। किताबों के सहारे ग़लत तरीके अपनाए जा सकते हैं, जो हानिकर भी हो सकते हैं। आसनों पर मैंने अपनी राय बताई। आसनों का आविष्कार, जहाँ तक मैं समझता हूँ, शारीरिक व्यायाम के रूप में नहीं हुआ। हुआ मन को अनुशासित करने के लिए। भारतीय विचारकों ने शरीर, श्वास, मन का पारस्परिक सम्बन्ध समझ लिया था। Healthy mind in a healthy body मोटे तौर पर योरोप में भी माना जाता है। आसन करते समय श्वास को नियन्त्रित करना बहुत आवश्यक है। आसन-मुद्रा के क्षणों में मन को अनुशासित, सन्तुलित, सहज-स्थिति में रखना सरल होता है। किसी मानसिक परेशानी या तनाव के क्षण में उचित आसन करके इसकी सच्चाई को परखा जा सकता है। अंग्रेज़ी कहावत में शरीर का प्रभाव मन पर माना गया है, मन का प्रभाव शरीर पर नहीं। योग इस सम्भावना से अनजान नहीं है। आसन का जो प्रभाव शरीर पर पड़ता है वह शरीर के मोड़-तोड़, खींच, कसाव का नहीं बल्कि मन की शान्त-सहज स्थिति का। लड़कियों को शायद ही convince कर सका। समय भी कम था।

वे चली गईं तो सोचता रहा कि पूरब पच्छिम को क्या केवल योग दे सकता है—योग अगर physical exercise मात्र हो तो कितनी नगण्य वस्तु !—अगर mental discipline के रूप में हो तो कितनी बड़ी चीज़ ! Spiritual discipline के रूप में हो तो सबसे महान वस्तु—वस्तु क्या, ज्ञान—योगः कर्मसु कौशलं से लेकर ब्रह्मत्व प्राप्त करने का साधन। कितना व्यापक है 'योग' का concept भारतीय चिन्तन में। दूसरे न समझें पर हमीं कितना समझते हैं। मैं तो उसका क-ख-ग भी नहीं जानता। संस्कारतः इसकी महत्ता माने हुए हूँ।

दिन को मैंने कुछ चिट्ठियाँ लिखीं।

मार्जरी के भेजे कुछ काव्य-संग्रह पढ़ डाले। अब तो इनसे ऊब होने लगी है। शायद इन कविताओं के लिए मैं receptive mood में नहीं हूँ। निजी सृजन-शोध के

तनाव ही मेरे छोटे-से दिमाग़ के लिए बहुत हैं। मैंने सोचा था शोध के अतिरिक्त आधुनिक अंग्रेज़ी कविता का अध्ययन करूँगा। सृजन तो बन्द ही रक्खूँगा। पर सृजन को, लगता है, बन्द नहीं रख सकूँगा। I can not have three irons in my fire. मन से शोध, मजबूरी से सृजन—यही मोटो मुझे रख लेना चाहिए।

लंच के बाद आन्द्रे ने मुझे बोटिंग और चाय के लिए निमन्त्रित किया था। लंच पर वे बहुत बढ़िया कपड़े पहनकर आई थीं, और बहुत सुन्दर लग रही थीं। मैंने मज़ाक किया, 'देखिए, एक दिन के योगासन ने आपकी ख़ूबसूरती बढ़ा दी है!'

हम लोग दो बजे डिग से रवाना हुए। मौसम अच्छा था; बादल थे पर पानी नहीं बरसा। हमने दो घण्टे बोटिंग की। फ्रेंच लड़कियाँ बड़े अच्छे चाकलेट, बिसकिट लाई थीं। पन्टिंग करने के लिए हमने एक लड़का ले लिया था—बहुत चुस्त, बातूनी—वह हम लोगों को कालेजों का इतिहास, बाढ़, किनारे के बाग़, पेड़-पौधों, शेक्सपियर और कई कवियों की बातें सुनाता रहा—और हम बोट में लेटे-बैठे ऐसे सुनते रहे जैसे हम कुछ नहीं जानते। नादान बन जाओ; दुनिया अपना सारा 'ज्ञान' या नादानी तुम्हारे सामने खोल देगी। हमने उसकी बातों में ख़ूब रस लिया।

लौटकर आन्द्रे ने सेन्ट्रल काफ़े में चाय पिलाई। वहाँ उन्होंने बताया कि आज उनके विवाह की दूसरी वर्षगाँठ है। तभी—तभी···मैंने उनको बधाई दी···

हम तीनों उनके कमरे में आए। उन्होंने हमें कई फ्रेंच गाने सुनाए। एक गीत मैंने लिखा, उसका अर्थ भी। इसकी ट्यून भी मुझे कुछ-कुछ आ गई है। मैंने उन्हें 'मधुशाला' की ट्यून सिखाई—हिन्दी शब्दों का उच्चारण जब फ्रेंच लड़कियाँ करती हैं, मैं अपनी हँसी नहीं रोक पाता। शायद जब मैं फ्रेंच बोलता हूँगा तो उनको भी ऐसा ही उपहासास्पद लगता होगा।

खाने के बाद मैंने कुछ देर टाईपिंग का अभ्यास किया। फिर, ईली पर कुछ पुस्तकें लाया था, उन्हें पढ़ता-देखता रहा। मादमोज़ेल ने रात को आने को कहा था; पर शायद दिन की थकी थीं, सो गईं···

टाईपिंग की भाषा काम नहीं आई!

सोमवार, 28 जुलाई, '52

सेन्ट्रल लाइब्रेरी होता हुआ युनिवर्सिटी लाइब्रेरी गया।

Krans की पुस्तक समाप्त की।

लंच वहीं लिया।

शाम को खाना खाकर घूमने गया। आकर कुछ देर आधुनिक कविताएँ पढ़ता रहा। मार्जरी को पुस्तकें लौटाने के पूर्व मुझे एक बार सबको देख जाना है। कुछ देर टाइप का अभ्यास किया।

10।। बजे रात को फ्रेंच लड़कियाँ ऊपर कमरे में आईं। सिनेमा देखने गई थीं; लौटीं तो मेरे पास चली आईं।

बात ओदेत की कविताओं पर चली जिनका अर्थ दो-तीन रात पूर्व वह मुझे न बता सकी थी। ओदेत ने बताया कि वे existentialist (अस्तित्ववादी) कविताएँ हैं। ओदेत स्वयं अस्तित्ववादी है। यह दर्शन नया नहीं है। योरोप में इसकी जड़ें क़रीब सौ बरस पुरानी हैं। इसका भी एक तरह से विकास हुआ है। दूसरे महायुद्ध के बाद यह जिस रूप में सामने आया वह दो बातों में अपने पुराने रूप से भिन्न था। एक तो आस्तिकवादी से अब यह नास्तिकवादी दर्शन हो गया है। ईश्वर है या

नहीं इसका प्रश्न नहीं है। ईश्वर है और उसका कोई ईश्वरी या आदर्श तन्त्र है—इसकी धारणा मनुष्य को उसकी पूर्ण स्वतन्त्रता का भान नहीं होने देगी, और उसे अपने व्यवहार-विचार का पूर्णतया उत्तरदायी भी न बनने देगी, जबकि अस्तित्ववाद व्यक्ति-मनुष्य को पूर्ण स्वतन्त्रता देता है, और उसका दायित्व ही उसकी स्वतन्त्रता पर अंकुश है। दूसरे, पहले अस्तित्ववाद एक दर्शन था और दार्शनिकों के वर्ग तक सीमित था, अब यह विचार-धारा बन गया है जिससे व्यक्ति-मनुष्य के छोटे-मोटे काम से लेकर उसके सूक्ष्म विचार तक सब प्रभावित होते हैं। इसने समूह, वर्ग, दल या गुट से व्यक्ति, मनुष्य को अलग किया है, उसे उसकी सत्ता, स्वतन्त्रता का भान कराया है। फ़ासिज़्म हो, कम्यूनिज़्म हो, क्रिश्चियनिटी हो या सिविलाइज़्ड सोसाइटी का कोई पैटर्न हो उसमें मनुष्य अपने को एक नपे-तुले साँचे में फ़िट पाता है। अब तक मनुष्य को अपने अकेले होने की शक्ति, स्वतन्त्रता, दायित्व का आभास हुआ ही नहीं। यह काम पहले-पहल अस्तित्ववाद ने किया है। मनुष्य जन्मते ही, जन्मते ही नहीं तो सचेत होते ही, अपने को दो प्रबल धाराओं के वेग में बहते हुए पाता है, एक तो प्राकृतिक है जो उसे समय के प्रवाह में डालकर मौत तक ले जाती है, दूसरी कृत्रिम है, मानव-कृत, समाज-कृत, व्यवस्था-कृत, शासन-कृत, जो प्रत्येक व्यक्ति-मनुष्य को एक ख़ास तरह के पैटर्न में सोचने से लेकर चलने तक को बाध्य करती है (ओदेत ने जब-जब 'मनुष्य' कहना चाहा उसने 'व्यक्ति-मनुष्य' कहा—individual man—क्योंकि man—मनुष्य—वास्तव में 'मानवता' का पर्याय बन गया है। अस्तित्ववाद 'मानवता' की बात नहीं, 'मनुष्य' की 'व्यक्ति-मनुष्य' की, बात करता है।) मनुष्य सदा से इन दो धाराओं के बहाव में अपने को असमर्थ पाता हुआ बहता रहा है। अस्तित्ववाद ने पहले-पहल मनुष्य के लिए यह सम्भव किया है कि वह कम-से-कम एक से अलग होकर खड़ा हो सके—कृत्रिमवाली धारा से; प्राकृतिक धारा से भी, अगर वह बहना न चाहे और आत्महत्या कर ले—अस्तित्ववाद व्यक्ति-मनुष्य को अपने को समाप्त करने की स्वतन्त्रता भी देता है। To be or not to be. यह मनुष्य की निर्बलता, निराशा का दर्शन नहीं। यह व्यक्ति-मनुष्य के अपने assert करने की शक्ति, अपने को स्वयं परिचालित करने के अधिकार का दर्शन है। समाज, व्यवस्थाएँ, शासन—सब मशीनें हैं—मशीन—जड़—चले तो चलानेवाले से भी न रोकी जा सके—व्यक्ति-मनुष्य जड़ मशीन को चैतन्य की चुनौती है। अस्तित्ववाद व्यक्ति-मनुष्य के उस अधिकार, शक्ति, साहस की पीठ ठोंकता है।

मैंने ओदेत से कहा, मैं तो जन्मजात अस्तित्ववादी हूँ, जहाँ तक अपने को स्वयं परिचालित करने के अधिकार का प्रश्न है, पर ज़्यादातर मनुष्य प्रवाहों में बहने, मशीनों के सहारे चलने को ही सहज पायेंगे। हर बाद समाज की किसी त्रुटि का निराकरण करने के लिए आता है और अपनी किसी त्रुटि से निर्बल पड़, समाप्त हो जाता। ओदेत का कमेण्ट था, आप अभी समाज के टर्म में सोचते हैं, अभी आप सचेत अस्तित्ववादी नहीं बने। मैंने कहा कि मैं किसी वाद को पूर्ण और अन्तिम नहीं मान सकता। ऐसे दावे पहले भी बहुत बार हो चुके हैं। समय अस्तित्ववाद की कमज़ोरियाँ भी कभी सामने लाएगा। ओदेत ने बताया कि फ़िलहाल यह विचार-धारा फ्रांस में जीवन के हर क्षेत्र में प्रवेश कर चुकी है, व्यक्ति को उसने जितना मुक्त किया है उतना किसी आन्दोलन ने नहीं। बाहर से बहुत कुछ स्वतन्त्र दिखता हुआ योरोप का मनुष्य फ़ैशन से लेकर धार्मिक और राजनीतिक वादों तक का ग़ुलाम था। एक लहर चलती थी, सब उसी में बहने लगते थे, किसी को उसके खिलाफ़ खड़े

होने की हिम्मत नहीं होती थी, नक्कू बनने के डर से। उदाहरणार्थ बालों की बात लीजिए, एक समय घूँघरदार बाल रखना स्त्रियों का आम फ़ैशन था। तमाम योरोप में 'पर्म' कराने की दूकानें और मशीनें हैं और लाखों रुपये प्रतिदिन बालों के 'पर्म' कराने पर ख़र्च होते होंगे। यह नई वैयक्तिक स्वतन्त्रता की देन है कि फ्रांस में हर लड़की आज जैसा उसके जी में आता है वैसा बाल रखती है।—ओदेत ने अपने बाल दिखाकर कहा—मेरे झाड़ू की तरह हैं—mine are like a mop—

'आपके चेहरे पर तो झाड़दार बाल भी सुन्दर लगते हैं, जो कहीं छल्लेदार होते...'

'उनका फ़ैशन अब चला गया।'

'मेरे तो स्वाभाविक घूँघरदार हैं; मैं क्या करूँ; और मेरी पत्नी को बहुत पसन्द हैं; मैं कभी सीधा काढ़ता-चिपकाता हूँ तो वह अपनी उँगलियों से लहरदार बना देती है।'

'हाय, मैं तो समझती थी आप पर्म कराते हैं। योरोप में बहुत-से मर्द भी बाल 'पर्म' कराते हैं।'

मादमोज़ेल ने मेरे बालों में हाथ डालकर देखा और उनकी मुलायमियत से इस बात की सर्टिफ़िकेट दे दी कि मेरे बाल सचमुच स्वाभाविक घूँघरदार हैं। मैंने कहा, अब क्या हैं, पचीस बरस पहले जो थे।

मादमोज़ेल बोलीं, तब तो मैं पैदा भी नहीं हुई थी!

मैंने दूध और सेब से उनकी ख़ातिर की। 12 से ऊपर हो गए थे। फ्रेंच लड़कियों को भूख लग आई थी। पढ़ने को वे मेरे कमरे से हेनरी ट्रीस की कविता-पुस्तकें ले गईं।

मंगलवार, 29 जुलाई, '52

ब्रेकफ़ास्ट कर रहा था कि ढँढारिया का फ़ोन आ गया—वे आज पेरिस जा रहे थे, वहीं से भारत चले जाएँगे। मैंने सोचा इनके जाने के पूर्व मैं उनसे मिल लूँ। उनका एक सौदा चल रहा था जिसमें उन्हें भारी फ़ायदा होने को था। एक दिन हँसी-हँसी में उन्होंने कहा था कि अगर सौदा पट गया तो मुझे अपनी पढ़ाई के ख़र्च की चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। पर इसकी चिन्ता तो मुझे उसी दिन से थी जिस दिन मैंने दो वर्ष केम्ब्रिज में रहकर यहीं से डाक्टरेट करने की बात सोची थी। पैसा मेरे पास हद से हद साल-भर के ख़र्च के लिए था, और रहना था मुझे दो वर्ष से अधिक। किसी प्रकार की छात्रवृत्ति के लिए मैंने शिक्षा मन्त्रालय को लिखा था, पर उसका कोई उत्तर न आया था। आवश्यकता पड़ने पर पण्डितजी ने मुझे कुछ अतिरिक्त सहायता देने का आश्वासन दिया था, उन्हें मैंने अपनी योजना और आवश्यकता लिख दी थी, पर वे भी चुप थे। मैंने सोचा ढँढारिया के देश लौटने के पूर्व उनसे मिलकर पूछ लूँ कि परिस्थिति क्या है। आर्थिक निश्चिन्तता हुए बिना मैं शोध की ओर पूरा ध्यान नहीं दे सकता था।

12 बजे से मि. हेन का व्याख्यान था। उसके पूर्व मुझे कुछ चीज़ें ख़रीदनी थीं। नीचे उतरा तो मादमोज़ेल भी बाज़ार जा रही थीं। हम दोनों साथ हो गए। एक नया जूता लिया। मेरा फट चला था, उसे मरम्मत के लिए देना था। दूकान पर मैंने पाँव से जूता निकाला तो मेरा फटा मोज़ा दिखा। मादमोज़ेल ने पूछा, आप 'डार्न' करना नहीं जानते? मैं आपको सिखा दूंगी, ज़रा-ज़रा-से कटे मोज़े आप फेंकने लगे तो आपको बहुत पैसे ख़र्चने होंगे।—बाज़ार से उन्होंने मेरे लिए ऊन,

सुई, थिंबिल और स्टैण्ड—सब ख़रीदा। कुछ और सामान लेना था। उसे कमरे में रख मुझे हेन के लेक्चर में जाना था। व्याख्यान 'टेम्पेस्ट' पर था। आन्द्रे और ओदेत भी मेरे साथ व्याख्यान सुनने गईं। मैंने उनका परिचय मि. हेन को देकर व्याख्यान में उनके बैठने की आज्ञा ले ली।

मि. हेन ने व्याख्यान बड़े नाटकीय ढंग से शुरू किया। उन्होंने कहा, लोगों को बहुत दिनों से यह जिज्ञासा थी कि जिस द्वीप पर प्रासपेरा जा पड़ा था वह कहाँ था, कितना लम्बा-चौड़ा था, नाटक में घटित होनेवाली घटनाएँ कहाँ-कहाँ हुई थीं आदि-आदि। मुझे एक पुराना नक़्शा मिल गया है, जिससे यह सारी बातें स्पष्ट हो जाती हैं; सम्भव है शेक्सपियर ने स्वयं यह नक़्शा देखा हो; इसे सामने रखकर उसे अपने नाटक को लिखने में कितनी सहायता मिली होगी।—इसके बाद उन्होंने एक पुराने-से दिखते काग़ज पर बने नक़्शे को लटकाया। वास्तव में यह पुराना नक़्शा नहीं था, नया था, पर उसे पुरानेपन का सारा रूप दिया गया था। नक़्शा मि. हेन ने स्वयं बनाया था जिसमें उन्होंने अपनी कल्पना से नाटक में आए सारे स्थानों को दिखाया था।—यहाँ प्रासपेरो का जहाज़ टकराया था, यहाँ प्रासपेरो की गुफा थी, यहाँ कैलिबान रहता था, यहाँ एरियल घूमा करता था, यहाँ जंगल था, यहाँ दलदल वग़ैरह-वग़ैरह। नक़्शा इस बात का सबूत था कि शेक्सपियर की कल्पना विभिन्न स्थानों के विषय में कितनी स्पष्ट थी। प्रासपेरो का द्वीप स्वप्न-द्वीप के अतिरिक्त और कुछ न था, पर शेक्सपियर की दृष्टि में स्वप्न-द्वीप का भूगोल भी बिलकुल साफ़ था। व्याख्यान बहुत ही रोचक था। मि. हेन ने पूरे नाटक को कितनी बारीकी से पढ़कर यह नक़्शा तैयार किया था।

व्याख्यान से लौटकर मैंने लंच लिया और स्टेशन पहुँचा। लन्दन के लिए दो बजे की गाड़ी मिल गई। 4 बजे लिवरपूल स्ट्रीट पहुँचा। ढँढारिया होटल में नहीं थे। मैं लाउंज में बैठा एक उपन्यास देखता रहा। 6 के क़रीब आए। हम लोग टैक्सी से एरोड्रोम गए। 7।। बजे उनका जहाज़ रवाना होता था। बात करके पता चला कि सौदा नहीं पटा, फिर भी अक्टूबर तक उन्होंने मेरे लिए कुछ करने का आश्वासन दिया। 3 अगस्त तक भारत पहुँच जाएँगे। 7 को प्रयाग जाएँगे, गोरखपुर अपने गुरु के पास जा रहे हैं, वहाँ से लोटते हुए। मैं 10.5 की गाड़ी से चलकर 12 बजे रात केम्ब्रिज पहुँचा। लन्दन जाना-आना बेकार ही रहा। एक तरह से बेकार नहीं भी रहा। जो दरवाज़ा नहीं खुलनेवाला है उसे जान लेना उस पर दस्तक देने के श्रम से बचना है।

बुधवार, 30 जुलाई, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर आन्द्रे और ओदेत ने बताया कि कुछ पारिवारिक कारणों से उन्हें फ्रांस जल्दी लौटना पड़ रहा है; वे आज शाम की गाड़ी से लन्दन चली जाएँगी और वहाँ से एक सप्ताह बाद पेरिस।—'जिसको जाना है जाता है।' मैं इतनी जल्दी उनसे अलग होने के लिए तैयार न था। ओदेत दिनानुदिन मेरे निकट आ रही थी। ख़ैर···कहीं तो सीमा रखनी थी। अच्छा है नियति ने ही बना दी। यात्रा के साथियों का साथ अल्पस्थायी होता ही है। सब की राहें अलग हैं। कहीं-कहीं एक-दूसरे को काटती हैं। इन्ही चौराहों पर औरों से भेंट होती है। खुलकर मिलना चाहिए। जो एक-दूसरे को दे-ले सके, दे-ले ले। अवसर चुटकियों में चूकता है। राधा बुआ से एक कहावत सुनी थी—'जे मिलै धाय, ओसे मिलै धधाय, जे न मिलै धाय, ओसे मिलै बलाय'। आन्द्रे और ओदेत मुझसे 'धाय' (कर) मिलीं

तो मैं भी उनसे धधाय (कर) मिला। 'धाय' का तो अर्थ ठीक ही है—दौड़कर, आगे बढ़कर; पर 'धधाय' का क्या अर्थ है ? 'ज़्यादा दौड़कर' अर्थ होना चाहिए। मुझे ठीक नहीं मालूम। ध्वनि से मुझे कुछ दूसरे अर्थ का आभास देता है यह शब्द—यह कुछ भीतर होनेवाली भावना का संकेत करता है—कुछ ऐसा जैसे धड़कते हृदय से । डिग में तो कई लोग हैं, नये-नये लोग आते ही जाते रहते हैं, ज़्यादातर रिज़र्व होते हैं—परिचय How do you do तक। आगे कुछ बढ़े तो बाहरी मौसम की बात, यानी भीतरी मौसम के बारे में कुछ नहीं कहना-सुनना है। ऐसे ही सब अंग्रेज़। फ्रेंच—ख़ासकर लड़कियाँ—बड़ी मिलनसार होती हैं—वज़ाँ, और अब ओदेत, आन्द्रे।···

सेन्ट्रल लाइब्रेरी होता यु. ला. पहुँचा।

मन कुछ अनमना-सा। इस मूड से ऊपर उठना है।

ईट्स के 'A Vision' का प्रथम संस्करण निकलवाया। फ़िलासफ़ी, मगर तर्क-आधारित नहीं। ईट्स समझाते नहीं, भरमाने की कोशिश करते हैं। पाठक भरमने को तैयार हो तो मज़ा। शोधार्थी कैसे भरमाए। ईट्स अपने पाठक को चुनौती देते हैं—सन्देह कर सकते हो तो करो। वे अपने व्यक्तित्व, कल्पना, शैली सबसे हावी होना चाहते हैं—कहाँ तक पाठक बचेगा, जब वह स्वयं receptive mood में हो। ऐसी चुनौती और छेड़-छाड़ से ईट्स अपने पाठक के सामने मूर्त हो जाते हैं। किताबें पढ़ते समय कोई भी लेखक इतना पास बैठा हुआ नहीं प्रतीत होता जितना ईट्स। लेखन की यह कोई छोटी उपलब्धि है—अपने शब्दों में अपने को ही साकार कर देना ? इसका एक secret, मेरी समझ में। ईट्स लिखते समय किसी सजीव पाठक को अपनी कल्पना शक्ति से टेबिल के उस पार देखते रहते हैं। लिखते हैं जैसे उससे बोल रहे हों। ईट्स की गद्य-शैली में बहुत विविधता है। कारण, अनेक हैं। एक बड़ा कारण—ईट्स की शैली उस कोटि के पाठक से प्रभावित हो जाती है जिसकी कल्पना वे अपने सामने करते हैं। ईट्स में communication की अद्भुत क्षमता है।

1 बजे डिग लौट आया।

ओदेत, आन्द्रे लंच के लिए मेरी प्रतीक्षा में।

लंच के बाद ओदेत बोली, चलिए, आपको 'डार्निंग' सिखाएँ।

मैं सुई में ऊनी धागा डालने से लेकर जाली भरने तक का अभ्यास करता हूँ।

जब हम भीतर से गम्भीर होते हैं, बाहर से कोई हल्का काम करके अपने को भरमाते हैं।···दोनों इससे सचेत।

आन्द्रे पैकिंग में लगी है।

गाड़ी का समय हो रहा था। बस से हम लोग स्टेशन गए।

गाड़ी चल दी···अलविदा !

खिड़की से दोनों फ्रेंच लड़कियाँ सिर बाहर निकाले हुए कह रही हैं—इतवार को ज़रूर लन्दन आइएगा उसके बाद हम लोग पेरिस जाएँगी—11.5 की गाड़ी से—हम स्टेशर पर मिलेंगी।

One more dream is over.

लौटकर मि. हेन के पास गया।

उन्होंने मेरे रहने को कालेज की डिग में स्थान देने के लिए कहा है। 7, जीज़स लेन अब छोड़ना है।

मैं उनके पास क़रीब एक घण्टे रहा।

अपनी पढ़ाई की प्रगति के बारे में मैंने उन्हें विस्तार से सूचित किया। 'A Vision' से कुछ गम्भीर अध्ययन शुरू हो रहा है। देखूँ उसकी गाँठ को कितना खोल पाता हूँ। ईट्स बहुत secretive writer हैं।

हेन ने कहा, यह उनकी कला का secret है। उन्होंने अपने पाठकों को मोहित (charm) करने के लिए लिखा है। शोधार्थियों की जिज्ञासा शान्त करने के लिए नहीं।

अमरीका वे क्या-क्या ले जा रहे हैं, वे दिखाते रहे—अपने लेक्चर की फ़ाइल आदि।

लौटकर मैंने तेजी को पत्र लिखा।

मेरी अनुपस्थिति में दत्त मेरे कमरे में आए थे। एक नोट छोड़ गए थे—शाम को मैं उनसे मिल लूँ।

खाना खाकर दत्त के यहाँ गया।

कमला ब्रिस्टल जा रही थीं, लम्बे अरसे के लिए, चाहती थीं मैं भी उनके साथ जाऊँ, श्रीमती मोहन का आग्रह था—पत्र दिखाया।

जब तक मि. हेन केम्ब्रिज में हैं, मैं बाहर नहीं जा सकता, पता नहीं किस दिन मुझे बुलाकर मेरे शोध के सम्बन्ध में कुछ आदेश देना चाहें। फिर मुझे डिग भी बदलना है। दत्त 21 अगस्त को जाने को हैं। तै हुआ मैं उन्हीं के साथ ब्रिस्टल जाऊँगा।

काफ़ी रात तक मैं दत्त के यहाँ था।

यहाँ की पढ़ाई के पूरे ख़र्च के विषय में मैं आश्वस्त होना चाहता हूँ—क्या फ़ायदा लम्बी-चौड़ी योजना बनाने से अगर धनाभाव के कारण उसे बीच में ही छोड़ना पड़े। डा. राजेन्द्र प्रसाद और पण्डितजी को पत्र लिखे। आशा है शिक्षा मन्त्रालय से वे मुझे कोई छात्रवृत्ति दिला सकेंगे। वैसे मैंने तेजी को लिख दिया है कि कहीं से कुछ भी सहायता न मिलने पर भी हमें अपने-आप ख़र्च उठाने को तैयार रहना चाहिए, किसी न किसी प्रकार—कार और किताबों का कापी राइट बेचकर भी। Hope for the best and be prepared for the worst.

गुरुवार, 31 जुलाई, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ।

मौसम आज अच्छा नहीं। बादल घिरे हैं; थोड़ी बूँदा-बाँदी भी हो रही है।

ब्रेकफ़ास्ट टेबिल पर ओदेत और आन्द्रे को 'मिस' करता हूँ। They kept the table so much alive !···

ख़ैर, अब बीती बात···याद···याद। हर दिन, हर क्षण विगत सब याद में ही तो परिवर्तित होता जाता है। भीतर-बाहर सब एक बड़ी भारी यादगार ही तो है—पर यह एक पहलू—Don't try to simplify life—it is very complex.

सेन्ट्रल लाइब्रेरी होता युनिवर्सिटी लाइब्रेरी गया।

2 बजे तक 'A Vision' —First Edition पढ़ता रहा—नोट्स भी लिये। ईट्स के सृजन में यह एक बड़ी पेचीली गाँठ। बहुतों के विवेक, तर्क-बुद्धि, शोध-जिज्ञासा को चुनौती। इतने का आभास मुझे हो गया है, इसके बीज ईट्स के मस्तिष्क में बहुत पुराने हैं—तो इसका मूल उस विचार-धारा में होना चाहिए जिससे ईट्स का पहले-पहल सम्पर्क हुआ था। यानी theosophical literature में जिसे बाद को ईट्स भूलते या जानबूझकर जिससे इन्कार करते गए और अपनी

फ़िलासफ़ी को प्रसिद्ध और जाने-माने, प्रामाणिक दार्शनिकों से जोड़ते गए। दूसरे संस्करण में काफ़ी परिवर्तन किए गए हैं। दोनों की तुलना करना होगा—हेन ने कहा था, बावरा ने भी।

दिमाग़ को कोई गाँठ सुलझाने को न रहे तो दिल अपना ताना-बाना लगाना शुरू कर देता है।

इन्सान उलझे रहने को ही बना है।

इन तार-तागों के जाल से किसी को छुटकारा ?

कवि को—जो अपने मन के तारों को फैला ले—'मैं साँसों के दो तार लिये फिरता हूँ'—दो तारों से तो हज़ारों तार बनाए जा सकते हैं—एकतारे से ही !

योगी अथवा सन्त को—जो सब तारों को काट दे—बड़ा निर्मम, क्रूर, कठिन कार्य—एक दृष्टि से selfish—स्वार्थी—कार्य भी—सबके सहायता-सहयोग से ऐसा बनना कि सबको नकार देना—selfish—स्वार्थी काम तो हुआ ही। संसार का ऋण चुका मन !—

3।। बजे बी. बी. सी. से केम्ब्रिज पर मेरी वार्ता प्रसारित होने को थी।

दत्त के यहाँ जाकर अपनी वार्ता सुनी। बुरी नहीं थी।

वहीं शाम तक बैठा रहा।

लौटकर खाना खाया—Dig, dull, dead !

घूमने चला गया—मौसम साफ़ था—दो घण्टे बाद लौटा। दो घण्टे काव्य-संग्रह पढ़ता रहा—आज के सब कवि उलझे तागों में फँसे हैं—पाठक को भी फँसा देते हैं—कुछ सफलता तो है ही यह भी ?—मैं कुछ ऐसे तारों में फँसना चाहता हूँ जिनमें मन मुक्ति का अनुभव करे—सन्तोंवाली 'मुक्ति' का अनुभव नहीं—तारों के बीच भी at home, at ease होने का···

तारों की झनकार न सुनाई दे तो टाइप-राइटर की खटर-पटर से मन बहलाओ।

एक घण्टे टाइपिंग का अभ्यास।

फिर तेजी को पत्र।

शुक्रवार, 1 अगस्त, '52

ब्रेकफ़ास्ट टेबिल पर सुबह की डाक से आए ओदेत और आन्द्रे के तस्वीरी कार्ड मिले। लन्दन में वे भी मुझे बहुत 'मिस' कर रही हैं। लन्दन में कोई साथी न हो तो आदमी बहुत अकेला—सबके बीच अकेला—अनुभव करता है। वे दो साथ हैं, यहाँ डिग में सब अजनबी चेहरे—अपने में सिमटे—सिमटकर सन्तुष्ट—शायद उन्हें बुरा भी लगता है कि कोई उनको अपने अन्दर से निकाले—मैं क्यों सन्तुष्ट नहीं हो पाता ?—मैं क्यों बाहर निकलना चाहता हूँ ? मैं न बाहर जा सकूँ तो मेरा स्वर बाहर जाए। कवि एकाकी नहीं रहना चाहता—गीत दूसरों से जुड़ने की गाँठ है—हर सृजन सम्बन्ध है।

फ्रेंच लड़कियों ने लन कम्पनी से पेरिस जाने का टिकट लिया था, पर उन्हें रिज़र्वेशन कार्ड नहीं मिला था। मुझे भेजवाने के लिए लिखा था। उनका काम करता हुआ यु. ला. गया।

दिन भर 'A Vision' पढ़ता—समझने की कोशिश करता रहा।

दर्शन है कि रेखागणित ? गणित कभी आसान नहीं लगी थी। विद्यार्थी जीवन में जिओमेट्री को 'जिवमारी' कहता था। ईट्स के साथ उससे फिर पाला पड़ा।

ईट्स कुछ premises बनाकर—कुछ figures—रेखागणिती परिणाम निकालते जाते हैं। उनका दर्शन शुरू में रोचक, बाद को मशीनी (mechanical) हो गया है।

इसको समझना सिरदर्द है।
इसके भेद को समझना और बड़ा सिरदर्द।
पर इस समय मैं सिरदर्द लेने के मूड में हूँ।
वर्ना मैं कविता करने लगूँगा।
One thing at a time—is a wise saying.
एकै साधे सब सधै।
एक की साधना बहुत बड़ी साधना।
हम दुर्बल प्राणी कइयों से उलझते हैं।
पूरी सफलता किसी में नहीं पाते।
आधे तीतर-आधे बटेर बनकर रह जाते हैं।
दुर्बलता के ऊपर इन्सान ही उठता है।
कोशिश तो करता है।
अपनी प्रवृत्ति से लड़ सकते हो?

राग एक सिरे से—शिरा से—झंकृत होता है—सारे शरीर—मन—प्राण में गूँजने लगता है। शुष्क तर्क में उसे बदल सकते हो?

शनिवार, 2 अगस्त, '52

ब्रेकफ़ास्ट लेकर युनिवर्सिटी लाइब्रेरी गया।—

ओदेत का पत्र मिला। रिज़र्वेशन कार्ड इतवार को साथ लाने को कहा है। मैं तो कल ही भिजवा चुका हूँ—लन कम्पनीवाले पोस्ट करना चाहते थे। आज इस वक़्त तक उन्हें मिल गया होगा।

मनुष्य हर अनचाहे परिवर्तन से घबराता है, पर हर स्थिति उसे सह्य, फिर साधारण लगती है। ओदेत और आन्द्रे लन्दन में ख़ुश हैं—अपार है देखने-सुनने को वहाँ।

1 बजे तक 'A Vision' में ही सिर खपाता रहा।

लाइब्रेरी 1 बजे बन्द हो गई।

दत्त के साथ पुरानी किताबों की दूकान पर आया। दत्त को हर शनिवार को कोई न कोई 'ख़ज़ाना' कौड़ियों के मोल मिल जाता है। पैसा भी उनके पास है—जगह भी—जो बदलनी नहीं। जाते वक़्त एक लाइब्रेरी उनके पास होगी। ले जाने का झंझट—पर हर ख़ज़ाने को ले जाने में झंझट होती है—उठाएँगे।

आज बाल कटाने का दिन।
नहाने का दिन—सप्ताह में एक बार।
लाण्ड्री से कपड़ा लाने का दिन—धुलने देने का भी।
बटन लगाने, मोज़ा डार्न करने, छोटे-मोटे कपड़े धोने का दिन।
लंच के बाद सोने का दिन।
हफ़्ते भर की थकान मिटाने का दिन।
कल क्या आराम होगा। लन्दन जाना है। झा साहब भी लन्दन में होंगे।

अपराह्न में काव्य संग्रह उलटे-पलटे। अब उनसे जल्द मुक्त होना चाहता हूँ। सोचता हूँ मार्जरी को लिख दूँ और न भेजें। नाम भेज दें, कुछ अच्छे या बहुत

अच्छों के, जो उन्हें ऐसे लगें। यहाँ की लाइब्रेरी से निकलवा लूँगा। सभी यहाँ प्राप्य हैं, मँगवा भी देते हैं ये लोग।

कुछ देर टाइपिंग का अभ्यास। प्रगति धीमी। ऊब होने लगी है। शायद नहीं सीख पाऊँगा। जितनी देर में मैं लिखता हूँ उससे दुगना-तिगुना समय टाइपिंग में लगता है। कापी रखने की सुविधा हो सकती थी, पर ज़रूरत ?

खाना खाने के बाद दत्त के यहाँ गया। कमलाजी सोमवार को ब्रिस्टल जा रही थीं; सोचा, आज उनसे मिल आऊँ, कल मैं लन्दन में हूँगा।

दत्त 'आफ़-मूड'। बीबी के अभ्यस्त। तीन हफ़्ते बिना बीवी के रहने की कल्पना से घबराए। बड़ा प्रेम है दोनों में। मुझको देखो !

दस बजे रात तक उनके यहाँ बैठा रहा।

लौटा तो सड़क से चाँद दिखाई दिया। शायद चौदस का चाँद होगा—चाँद यहाँ कभी आसमान पर नहीं चढ़ता—'थम गया है शीश पर निरुपम रुपहला चाँद, मेरा प्यार बारम्बार लो तुम'—क्षितिज से कुछ ऊपर-ऊपर चला जाता है। बहुत अच्छा लग रहा था—सुनहला, अकेला, सुनसान में, आसमान में; एक दिन द्वितीया या तृतीया का चाँद देखा था वज़ाँ के साथ। कुछ देर एक जगह रुककर उसे देखता रहा। काश, कोई साथ···सहसा ध्यान आया—भारत में इस समय क्या बजा होगा—चाँद इस समय वहाँ कैसा लगता होगा—तीन-साढ़े तीन—कभी इसी वक़्त मैं सोकर उठ जाता था—कभी इसी वक़्त सोने जाता था—ब्रह्म-मुहूर्त में क्रमशः निस्तेज होता चाँद मेरा कितना परिचित है।

कमरे पहुँचा तो मन भारी था—भरा था।

आँखों में नींद नहीं। बिस्तर पर 15-20 मिनट सोने का प्रयत्न कर—करवट अदल-बदल उठ बैठा।

कानों में एक पंक्ति गूँजने लगी थी।

'याद तुम्हारी लेकर सोया, याद तुम्हारी लेकर जागा'

कविता लिखने का निमन्त्रण है कि कविता का आक्रमण ?

पँडोरा को अपना बाक्स खोलने में मुझसे ज़्यादा झिझक क्या हुई होगी।

कुछ देर कमरे में टहला—छोटा-सा कमरा है—जैसे कोई शेर अपने कटघरे में टहलने का प्रयत्न करे।

याद आया एम. ए. फ़ाइनल करते समय मैंने अपने से वादा किया था—कविता बिलकुल नहीं लिखूँगा। अपना पूरा ध्यान पाठ्य-क्रम की ओर दूँगा और परीक्षा के तीन मास पहले 'निशा निमन्त्रण' के गीत लिखने लगा था। नतीजा हुआ था अपना प्रथम डिवीज़न खोया था।

यहाँ कविता लिखना शुरू करूँगा तो शोध क्या करूँगा।

कवि बनने की कमज़ोरी की अबकी बार बहुत बड़ी क़ीमत चुकानी होगी। Can I afford it ? This time my contract is not with myself alone, but with others.

यह सब सोचता हूँ, शायद दिमाग़ के एक हिस्से से, दूसरे हिस्से ने गीत का एक पद रच डाला है; और मन में मोह जाग उठा है इस पद को कहीं नोट कर दूँ—विलम्ब करने से यह पद विस्मृति में गुप्त-लुप्त न हो जाए।

लिखने को बैठा तो एक के बजाय दो पद लिख डाले।

सोने चला गया, पर दिमाग़ नहीं सोया था, वह गीत को पूरा करने में लगा रहा।

चार बजे उठकर मैंने दो पद और लिखे। गीत पूरा हो गया। मैं फिर सोने चला गया।

गीत अच्छा है, केम्ब्रिज आकर यह पहला गीत लिखा है। तीन-चार कविताएँ जो पहले लिखी थीं, मुक्त छन्द की थीं। सोचा, इसे तेजी के जन्म-दिन पर भेज दूँगा। 'प्रणय पत्रिका' लिखना चाहता था। समय ने परिस्थिति बना दी है। काश, तेजी को यहाँ से पत्र भेजने के बजाय प्रति सप्ताह एक-दो गीत ही भेज सकता। पत्रावली 'प्रणय पत्रिका' ही बन जाती।

मुझे स्पष्ट होना चाहिए—यहाँ कविता लिखने नहीं आया हूँ—शोध करने आया हूँ—यहाँ डाक्टरेट लेने के लिए ठहरा हूँ—भारी ख़र्च उठा रहा हूँ—वहाँ बीवी-बच्चे कष्ट उठा रहे हैं। यहाँ से बैरंग लौट गया तो दूसरों को क्या मुँह दिखाऊँगा। कवि का मुँह कौन देखेगा? शायद, सिवा तेजी के कोई नहीं।

रविवार, 3 अगस्त, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ। ब्रेकफ़ास्ट किया।

तेजी को भेजने के लिए इधर लिखी कविताओं का एक लिफ़ाफ़ा तैयार किया—झा साहब के हाथ सुरक्षित पहुँच जाएगा।

बैग में नया गीत भी डाल लिया—ओदेत और आन्द्रे को सुनाने को, इंग्लैण्ड की भूमि पर लिखा मेरा पहला गीत।

11.5 की गाड़ी से लन्दन के लिए रवाना हुआ।

शायद इतवार के कारण बहुत भीड़ थी; कोरीडोर में खड़े-खड़े यात्रा करनी पड़ी—'बलमा रेल में पैदर सफर करैं', बनारस में एक लोक-गीत सुना था।

मादमोज़ेल ओदेत और मादाम कोमे लिवरपूल स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर मौजूद थीं।

लंच का समय हो रहा था। लियोन्ज़ में ले जाकर उन्होंने मुझे खाना खिलाया।

फिर अपने कमरे ले गईं—दोनों एक ही कमरे में रह रही हैं—कुछ देर आराम—मैं सोफ़े पर लेटा—नींद किसी को नहीं आ रही थी।

हाइड पार्क जाने की सलाह बनी।

बीच में एक नहर-सी बहती है। सरपेन्टाइन कहते हैं इसे। कुछ देर हम लोग इसके किनारे पर बैठे। इतवार था, इस वजह से आज बहुत-से लोग घूमने या बोटिंग करने को पहुँच गए थे। अंग्रेज़ी भीड़—परिवार, प्रेमी-प्रेमिका, या मित्र-सहेलियों के छोटे-छोटे ग्रुप में लोग खड़े-बैठे-लेटे; साथ पिकनिक का सामान, खाना-पीना, कहीं-कहीं ग्रामोफ़ोन पर गाना; उठना-बैठना, चलना-फिरना, हँसना-बोलना—सब अनुशासन में। अपने पर इतना नियन्त्रण रखना मुझे अच्छा नहीं लगता; कुछ अस्वाभाविक भी लगता है। अपनी सीमा में मनमाना करने की आज़ादी के साथ दूसरे की सीमा कहाँ से शुरू होती है, इसका सबको हर समय ध्यान। कुछ सीमोल्लंघन, कुछ हस्तक्षेप, कुछ दूसरों से छेड़-छाड़ शायद अधिक जीवन्त समाज के स्वाभाविक लक्षण!

सहसा बादल घिर आए और पानी की धीमी-धीमी बौछार पड़ने लगी; ऐसे मौसम के लिए इंग्लैण्ड में हर समय लोग तैयार रहते हैं—'And the rain, it raineth every day.' बरसातियाँ हम लोगों के पास थीं।

एक काफ़े में जाकर हमने चाय पी। बारिश बढ़ती देख हम कमरे वापस आए।

मैंने ओदेत और आन्द्रे को अपनी नई कविता सुनाई।

'याद तुम्हारी लेकर जागा।
याद तुम्हारी लेकर सोया!'

प्रथम तीन अक्षरों की ध्वनि से ओदेत को एक हर्षोत्पादक भ्रम—'याद तु'—'ओदेत'—उन्होंने समझा शायद यह गीत उन्हीं को सम्बोधित है।

नारी अपनी प्रशंसा और महत्ता को बड़े सहज और भोले मोह से स्वीकार कर लेती है।

मैं यह मोह क्यों भंग करूँ?

ऐसा करना निर्ममता भी होगी।

नारी अगर धोखा खाकर प्रसन्न हो तो उस धोखे को बनाए रखना मैं अनैतिक नहीं कहूँगा।

मेरे अचेतन ने ध्वनि-माध्यम से शायद ओदेत को याद ही किया हो। अचेतन की प्रक्रिया बड़ी रहस्यमय है।

ओदेत ने इस कविता का अंग्रेज़ी अनुवाद माँगा है। भावार्थ मैंने टूटी-फूटी अंग्रेज़ी में समझाने का प्रयत्न किया था। वे इस गीत का अनुवाद फ्रेंच में करेंगी।

विदा के क्षण ने हम तीनों को गम्भीर कर दिया।

क्लेरमोग्र में मिलेंगे···

देखो, कब?

झा साहब को फ़ोन किया। वे कमरे में नहीं थे। ख़ैर, मुझे उनके होटल तक जाना तो था ही। सोचा रिसेप्शन पर नोट छोड़ दूँगा, तेजी के लिए लिफ़ाफ़ा भी।

पैडिंगटन से ट्रैफ़ल्गर स्क्वायर होता सेव्वाय पहुँचा।

झा साहब डाइनिंग हाल में एक छोटी-सी टेबिल पर अकेले बैठे थे। मैंने अपने आने की सूचना भेजी तो उन्होंने मुझे अन्दर ही बुला लिया। खाना आने में शायद देर थी। सामने की कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। पर बात? उनके पास जाओ तो अपनी कह जाओ। वे सुनेंगे, सिर हिलाएँगे। उन्हें न आपकी पूछना न अपनी बताना। जो कहना था मुझे वह तो मैं पिछली मुलाक़ात में कह चुका था। उन्हें पहली बात यह कहनी थी—तुम्हारे—लन्दन—में—होने—की—ख़बर—तुम्हारे—आने—के—पहले—मुझे—मिल—चुकी—थी।—किसी ने मुझे कहीं देखा होगा, इनसे कह गया होगा। अब लड़कियों के साथ हाइड पार्क में देखे जाने पर मैं शरमाऊँ? मन में सोच रहा हूँ, लन्दन है, इलाहाबाद नहीं है।

और क्या बात करूँ? जेब से लिफ़ाफ़ा निकाला;—तेजी के लिए है, भेजवा दीजिएगा।—लिफ़ाफ़ा लेकर उन्होंने जेब में डाल लिया, पर यह भी कह दिया, क्या—लिफ़ाफ़ा—डाक—से—नहीं—जा—सकता—था—जो—मुझसे—भेजना—चाहते—हो।···भौंहों पर बल से।

बड़ा क्रोध आया। सोचा, कहकर चल दूँ कि अच्छा, लाइए, डाक से ही भेज दूँगा, दर्शन आपका कर चुका; अब विदा।—पर मन मारकर रह गया; कुछ उनके बड़े होने का ख़्याल और कुछ उनके मेरे गुरु होने का लिहाज़!···

सामने बैठकर उन्होंने···की तरह खाना खाया। एक बार मुझसे नहीं पूछा कि तुम भी कुछ खाओ-पिओगे। बताना उन्हें सिर्फ़ यह था कि कौन-कौन आज उनसे मिलने आया, कौन कल आएगा। कितनी महत्त्वहीन बातों से ये अपने को महत्त्व देते हैं? कभी-कभी झा साहब के ओछेपन और हृदयहीनता पर बड़ा गुस्सा आता है और मन को बड़ी तकलीफ़ होती है।

ट्रेन के टाइम का बहाना कर उनसे जल्दी छुट्टी ली। इनके पास की हव दमघोट होती है; बाहर आते ही आदमी ताज़गी का अनुभव करता है।

स्टेशन पर काफ़ी देर चहल-क़दमी करने के बाद गाड़ी मिली। ओदेत-आन के साथ दिन कितनी अच्छी तरह कटा था। काश, उन्हीं की स्मृतियाँ लेकर केम्ब्रि चला आता—

देखत ही हर्ष नहीं, नयनन नहीं सनेह,
तुलसी तहाँ न जाइए, कंचन बरसे मेह।

डिग पहुँचा तो 11 से ऊपर थे। भूख लगी थी। मादमोज़ेल ने कुछ सैण्डविचे बैग में डाल दी थीं। कमरे में कुछ फल थे, दूध की बोतल भी थी। खाकर तेज को पत्र लिखा। फिर अपना नया गीत लेकर बैठ गया। आन्द्रे और ओदेत की मीठी याद के साथ झा से मिलने का कड़ुआ अनुभव—दिमाग़ दोनों के तनाव में—नींद नहीं आ रही थी। कविता में कुछ संशोधन किए। एक साफ़ कापी बनाई

दो बजने को हैं—

बीच खड़ी हैं हम दोनों के
अभी न जाने कितनी रातें—
अभी बहुत दिन करनी होंगी
केवल इन गीतों में बातें—
कितने रंजित प्रात, उदासी
में डूबी कितनी सन्ध्याएँ;
बहुत जतन से संचित करना होगा, प्रिय धीरज का धागा।
याद तुम्हारी लेकर सोया, याद तुम्हारी लेकर जागा।

सोमवार, 4 अगस्त, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ। ब्रेकफ़ास्ट टेबिल अब सिर्फ़ ब्रेकफ़ास्ट टेबिल रह गया है। लोग नये-नये, एक-दूसरे से अपरिचित। अंग्रेज़ को ब्रेकफ़ास्ट हज़म नहीं होता जब तक कि वह साथ में कुछ पेज अखबार के भी न चाटे। मलेटका अपने नये ग्राहकों को पहचानती है। वह टेबिल पर कुछ ताज़े अख़बार रखने लगी है। हमारे लिए उसने कभी नहीं मँगाए। चालाक कहीं की। नये आगन्तुक टेबिल पर आते ही अख़बार पर आँखें गड़ा लेते हैं, शायद ख़बर के लिए इतनी उत्सुकता से नहीं जितनी इस डर से कि कोई उनसे बात न करने लगे। हमारे यहाँ ऐसे लोगों को 'मुँहचोर' कहते हैं।

टेबिल पर पता लगा आज बैंक हालीडे है। बाज़ार बन्द रहेगा, पोस्ट आफ़िस खुला।

तेजी को रात का लिखा पत्र पोस्ट किया।

दत्त आए; आज लाइब्रेरी नहीं जा रहे थे, कुछ किताबें आज ही लौटानी थीं; मुझे देकर चले गए।

झा साहब का व्यवहार मुझे आज भी कचोट रहा था।

पर उन पर क्रोध करने पर मुझे अफ़सोस था।

उनके व्यवहार में कोई नवीनता न थी। वह तो सदा से ही ऊपरी, दिखाऊ और सूखा रहा है। उनके अभ्यन्तर में कहीं कुछ तरल, कोमल, मधुर है, इसका आभास उन्होंने शायद ही कभी किसी को दिया हो। अधिक से अधिक उनका ऐटीट्यूड पेट्रोनाइज़िंग रहा है।

मेरे भिन्ना उठने का कारण शायद मेरा मूड था।

ओदेत और आन्द्रे से अलग होकर मैं कुछ खिन्न था, कुछ अजीब मनःस्थिति में···

ऐसे मूड में थोड़ी-सी भी प्रतिकूलता मनुष्य को चिड़चिड़ा बना देती है। फिर भी मैंने अपने पर बहुत संयम रक्खा। कुछ मुँह पर आकर रुक गया। लिहाज। पता नहीं इस शब्द के अर्थ क्या हैं। आदर के अतिरिक्त भी कुछ। 'मुलाहिज़ा' शायद इसी शब्द से बना हो। जन साधारण 'मुलहिजे में' का प्रयोग करता है।

दिन भर यु. ला. में रहा, लंच भी वहीं ले लिया।

'A Vision' का पहला संस्करण आज समाप्त हो गया। बहुत सीमित संख्या में, प्रयोगात्मक रीति से छपा था। विशिष्ट लोगों, संस्थाओं तक ही पहुँचा था। कुछ पुस्तकें लाइब्रेरी से बाहर जाने को नहीं हैं—उनमें यह भी है। दूसरे पब्लिक संस्करण के साथ सूक्ष्मता से इसकी तुलना करने पर ईट्स की विचार-प्रक्रिया पर प्रचुर प्रकाश पड़ेगा।

साढ़े छह पर डिग लौटा, खाना खाया, घूमने गया, कैम किनारे, अकेले—नहीं—कई स्मृतियों के साथ।···

लौटकर कुछ लिखना चाहता था···

दिन-भर ईट्स की तर्क-हीन फ़िलासफ़ी में तर्क खोजते-खोजते दिमाग़ थक गया था। ईट्स ने विवेक-दम्भियों को छेड़ने-छकाने के लिए तो यह दर्शन नहीं तैयार किया था? गम्भीरता का मुखौटा लगाकर भी ईट्स बहुत अगम्भीर हो सकते थे।

नीचे से मुइयाँ पाम्बे आ गया। आज उसने बैंक हालीडे मनाया था, पिए था, मुँह से शराब की बू आ रही थी। मादमोज़ेल वज़ाँ का पता पूछने आया था। उनसे हेल-मेल बढ़ाना चाहता था, पर उन्होंने कभी इसे एनकरेज नहीं किया। आज मेरे सामने बहुत-सी बातें बक गया। कहता था, एडिनबरा जाकर उनसे मिलेगा। मैं क्यों उनका पता बताऊँ। खवामख़्वाह को उनको जाकर परेशान करेगा। ओदेत और आन्द्रे पर भी इसने दिल फेंका था, ईली साथ गया था, देखा था इसका बर्ताव। शायद इसी से घबराकर तो वे लन्दन नहीं चली गईं। किसी संस्था में सप्ताह में दो दिन सुहेली पढ़ाता है, अच्छी तनख़्वाह पाता है, नवयुवक है, लम्बा-तड़ंगा, अच्छे कपड़े पहनता है और हर शाम नाचघर जाता है; मौज करता है···

वह चला गया तो लिखने का मूड नहीं था।

पिछला गीत पढ़ता रहा।

उसके अन्तिम स्टैंज़ा से मुझे सन्तोष नहीं था।

विशेषकर अन्तिम पंक्ति स्टैंज़ा से कुछ अलग की चीज लग रही थी—मिश्री के कूज़े में बाँस की फ़ाँस जैसी।

'बहुत जतन से संचित करना होगा, प्रिय, धीरज का धागा।'

अब इसे यों कर दिया है,

'सब के बीच पिरोना होगा, प्रिय, हमको धीरज का धागा।'

'पिरोना'—जैसे सुई में धागा पिरोया जाता है।

अब रातें, दिन, प्रात, सन्ध्याएँ जैसे चुभनेवाली सुइयाँ हैं, इनके बीच धीरज का धागा पिरोना होगा। इस धीरज के धागे ने रात, दिन, प्रात, सन्ध्याओं से सम्बन्ध जोड़ लिया है। अब पंक्ति स्टैंज़ा के स्ट्रक्चर में एकदम फ़िट होकर बैठ गई है।

'रंजित' में 'रंज' की भी ध्वनि—sad.

'पिरोने' में 'रोने' की भी···

सोने के पहले तेजी को जन्म-दिन की बधाई देने को पत्र लिखा, कविता भी रख दी। कार्ड वग़ैरह कल साथ रखकर पोस्ट करूँगा।

मंगलवार, 5 अगस्त, '52

डिग में आज एक actress आ गई है, छोटी-सी, सुन्दर, सरल। ब्रेकफ़ास्ट टेबिल पर मिली। बड़े संयम-नियम से खाना खाती है। फ़िगर की फ़िकर बेहद—ऐक्ट्रेस ही हुई—उसे तो अपने बाह्य पर अपनी सारी ज़िन्दगी बनानी है। अन्तर में जो है उसे बाह्य रूप देकर व्यक्त करना होगा। जानकर प्रसन्न हुई कि मैं कवि हूँ और मेरी एक पुस्तक का अनुवाद अंग्रेज़ी में उपलब्ध है। उसने 'The House of Wine' पढ़ने की इच्छा प्रकट की।

अंग्रेजी रंगमंच के सम्बन्ध में उसने कई बातें बताईं।

पेशेवर अभिनेता को हर नाटक के अपने पार्ट को कण्ठस्थ रखना होता है। प्राम्पटिंग बिलकुल नहीं होती।

अभिनेताओं की लाइफ़ हार्ड होती है।

दिन को दो रिहर्सल होते हैं—एक अभ्यास के लिए, एक वेश-भूषा, साज-सज्जा, प्रकाश-व्यवस्था के साथ। केवल दर्शक नहीं होते। दो-चार आलोचक बैठते हैं जो अभिनय की त्रुटियाँ नोट करते हैं और बाद को अभिनेताओं को बता हैं जिन्हें उसी समय ठीक करना होता है।

बाज़ार जाकर तेजी के लिए जन्म-दिन का कार्ड लिया, माँ के जन्म-दिन पर बधाई देने को बच्चों के लिए भी कार्ड खरीदे। कविता के साथ पोस्ट कर दिया। उपहार-स्वरूप फ़ोटो-चित्रों की एक पुस्तक पहले भेज दी थी। आशा है सब चीज़ें समय से—12 अगस्त को पहुँच जायेंगी।

दिन को यू. ला. में रहा।

नई पुस्तकों में Lehman की 'The Open Night' और Dunell की 'Key to Modern Poetry' पढ़ने की इच्छा हुई। पहले 'Key to Modern Poetry' शुरू की। नई कविता की खूबियों को बताने, उसके प्रति जन-रुचि जगाने को कितना प्रयत्न किया जा रहा है! पहले यह काम कवि अपनी सृजन-शक्ति से कर लेता था। वड्र्सवर्थ ने कहा था—A poet has to create the taste by which he wants to be appreciated. कवि अपने सृजन से तो आज कविता के प्रति अरुचि जगा रहा है। नई कविता के पैरोकार समालोचक कहाँ तक सफल होंगे। फिर भी जो नए कवि और नई कविता को समझना चाहेंगे वे ऐसी पुस्तकों से लाभान्वित होंगे। पर इससे मैं नई प्रवृत्तियों को कुछ अधिक समझ सकूँगा, कुछ संवेदना दे सकूँगा। यहीं भ्रम है। नई कविता 'संवेदना' माँगती ही नहीं; न वह हार्दिक अनुभूति है। नई कविता समझी जाना चाहती है; वह बौद्धिक जागरूकता माँगती है—सहानुभूति से कुछ उल्टी चीज़। आज हर कवि की अनुभूति इतनी अलग है कि कोई दूसरा उसे सह+अनुभूति दे भी कैसे सकता है। कविता के विकास (या ह्रास?) की यह वह स्थिति है जिसमें वह feeling के क्षेत्र से thought के क्षेत्र में जा रही है। यह मान लेना पड़ेगा कि जा रही है तो देश-काल-जीवन के किसी दबाव से। कविता को समझने के पहले देश-काल-जीवन को समझना होगा।

साढ़े छह बजे लाइब्रेरी से लौटा, खाना खाया। घूमने जाना चाहता था, पर

बादल घिरे थे, धीरे-धीरे बूँदा-बाँदी भी हो रही थी।

एक कविता कल से दिमाग़ में थी।

लिखने बैठ गया।

'क्या आज तुम्हारे आँगन में भी घन छाए?'

केम्ब्रिज की धरती पर मेरा दूसरा गीत।

गीत के मुखड़े से बहुत प्रसन्न हुआ।

इस मात्रा-विस्तार, इस लय में पहले मैंने कोई गीत नहीं लिखा था। किसी और ने लिखा हो, इसका मुझे ज्ञान नहीं।

चार स्टैंज़ों में गीत पूरा हुआ।

स्टैंज़ा भी बहुत मौलिक बन गया।

हर स्टैंज़ा में चार पंक्तियाँ—

पहली दो पंक्तियाँ मुखड़े से कुछ बड़ी—पर दोनों का तुक एक।

तीसरी पंक्ति मात्रा में पहली दो पंक्तियों के समान पर तुक-मुक्त। स्वतन्त्रता से कहने की खुली ज़मीन जैसे।

चौथी पंक्ति मुखड़े की लम्बाई की और मुखड़े के ही तुक की।

'जब आसमान घिर जाता है, उर भी घिरता,
घुमड़ा करता;
जब आसमान विगलित होता, उर भी गलता,
उमड़ा करता;
अब अश्रु न रुकते, छन्द न थमते हैं मेरे,
लो गीत बहा,
क्या आज तुम्हारे भी नत नयना भर आये?
क्या आज तुम्हारे आँगन में भी घन छाये?'

मैंने भी दिमाग़ और दिल का कैसा विभाजन कर रक्खा है। दिमाग़ thought की कविता समझने का प्रयत्न करता है और दिल feeling के गीत गाता है।

छन्द में बातचीत का प्रवाह, वाक्य छोटे-छोटे, शब्दावली सरल। गीत से बहुत सन्तुष्ट हूँ। 'प्रणय पत्रिका' नाम सार्थक करनेवाले ऐसे ही गीत होंगे।

सोचा यह गीत भी तेजी को जन्म-दिन की बधाई के रूप में भेज दूँ। एक साफ़ कापी बनाकर अपने पास रक्खी, एक उन्हें भेजने को बनाई; एक पत्र भी लिखा।

12 से ऊपर हो गए हैं।

गीत के लिए एक बड़ी अच्छी और उपयुक्त ट्यून कानों में गूँज रही है।

पलकों पर नींद उतर रही है।

शरीर शिथिल है।—'सब अंग शिथिल पुलकित छाती'

I deserve a sound sleep.

बुधवार, 6 अगस्त, '52

तेजी को पत्र लिखते समय एक वाक्य लिख गया था। वह एक गीत के लिए प्रेरणा बन गया। प्रेरणा का कोई नियम है?

सोते में शायद दिमाग़ ने उसे गीत के एक मुखड़े में ढाल दिया।

सोकर उठा तो एक पंक्ति गुनगुनाता।

'एक यही अरमान गीत बन, प्रिय तुमको अर्पित हो जाऊँ'

गीत बनने का अरमान तो unity of being प्राप्त करने का अरमान है। गीत unity का बड़ा सटीक प्रतीक हुआ। गीतत्व प्राप्त कर लेना कोई छोटा आदर्श तो नहीं; सरल भी कहाँ है? साधना ही हुई। योगी का अमृतत्व प्राप्त करने की साधना जैसी। मिल्टन ने कहा था, जो कवि बनने के महत्त्वाकांक्षी हों उसे अपने जीवन को ही कविता बना लेना चाहिए—या गीत—यानी उसे भीतर से 'युनिटी आफ़ बींग' प्राप्त कर लेना चाहिए। क्या मिल्टन ने स्वयं पाई थी? शायद वे भीतर से विभाजित रहे—'पैराडाइज़ लास्ट' सबूत—चले थे भगवान का गुन गाने—to justify the ways of God—और शैतान की वकालत करने लगे। पर 'पैराडाइज़ लास्ट' को छोटी कविता कहने का दुःसाहस कौन करेगा? विभाजित व्यक्तित्व से भी बड़ी चीज़ लिखी जा सकती है। काव्य और जीवन के सत्य विरोधाभासी हो र भी सच्चे हो सकते हैं। एक-दूसरे को नकारता नहीं। एक-दूसरे की सच्चाई कीकसाखी भरता है। पर unity of being प्राप्त कवि का काव्य अधिक महान हो सकता है। तुलसी की ओर ध्यान जाता है; 'रामचरितमानस' की ओर। तुलसी के विभाजित व्यक्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। क्या 'रामचरितमानस' 'पैराडाइज़ लास्ट' से बड़ा काव्य नहीं है? सूर, कबीर, मीरा सबने 'युनिटी आफ़ बींग' प्राप्त की थी—टैगोर ने भी; समकालीन हिन्दी कवियों में सबसे अधिक महादेवी ने; निराला भीतर से दो में नहीं, कई भागों में विभाजित हैं; पन्त 'युनिटी आफ़ बींग' प्राप्त करने के प्रयत्न में हैं। शायद आधुनिक युग 'युनिटी आफ़ बींग' प्राप्त करने में बड़ा बाधक है। स्वाभाविकता शायद विभाजन स्वीकार करने में है। महादेवी नक़ली नहीं लगतीं—कभी-कभी—कहीं-कहीं? निराला अधिक स्वाभाविक नहीं लगते? पन्त unity of being प्राप्त कर लेंगे—बड़े अध्यवसायी हैं—गिफ़्टेड भी—अपने को बहुत सीमित करके—चिन्तन के क्षेत्र में—जीवन, चिन्तन ही नहीं, 'लिविंग' है। वहाँ उनकी गति नहीं।

मेरा जीवन तो शोर-गुल है। उसे एक गीत-सा बनाने की कामना सदा रही है—संघर्ष भी सदा करता रहा हूँ। जीवन को जीकर जिन सच्चाइयों का अनुभव करता रहा हूँ उसमें यह सन्देह भी मेरे मन में बना रहा है, शायद जग-जीवन के तन्त्र में 'युनिटी आफ़ बींग' है ही नहीं—सत्य केवल विभाजन, विरोधाभास, प्रतिकूलता, खिचाव, तनाव हैं—इसी से जीवन की गतिमयता बनी है—यह 'युनिटी' में बदल जाए—सन्तुलन में—तो सृष्टि थम जाए—रुक जाए—जड़ हो जाए।

अल्पकालिक, क्षणिक, Partial 'युनिटी आफ़ बींग' प्रिय इसलिए लगती है कि भीतर-बाहर—सब तरफ़ 'डिसयुनिटी' है। क्या 'डिसयुनिटी' के प्रति पूर्ण सचेत रहते हुए कभी 'युनिटी' का बोध हो सकेगा?

मेरा 'युनिटी' का बोध केवल सृजन के क्षणों तक सीमित! वे भी सहज-प्राप्त नहीं। जब गीत में महो हो जाना चाहिए था, तब मैं शोध-कार्य के लिए युनिवर्सिटी लाइब्रेरी चला गया। शिकायत किससे? जीवन ही ऐसा है। हज़ारों, लाखों, अनगिनत अपनी रुचि, रुख, झुकाव के विपरीत चलने-झुकने को इस समय भी विवश हो रहे हैं। Unity of being is an exception not the rule; even then desirable, worth achieving, worth trying for...

'Key to Modern Poetry' किसी और ने पढ़नी आरम्भ कर दी थी, इसलिए Lehman की 'The Open Night' शुरू कर दी। किताब पर पूरी तरह concentrate नहीं कर सका। दिमाग़ के किसी कोने में कविता की पंक्तियाँ जुड़ रही थीं।

साढ़े छह बजे डिग आया। खाना खाया। गीत लिखने को बैठ गया। गीत बारह बजे पूरा हुआ।

जो 'डिसयुनिटी' जीवन में अनुभव करता हूँ वह कुछ इस पद में व्यक्त हुई है।

'कितने सपने, कितनी आशा,
कितने आयोजन, आकर्षण !—
बिखर गया है सबके ऊपर
टुकड़े-टुकड़े होकर जीवन,
सिर पर सफ़र खड़ा है लम्बा,
फैला सब सामान पड़ा है,
अन्तर्ध्वनि का तार मिले तो एक जगह संचित हो जाऊँ।
एक यही अरमान गीत बन, प्रिय, तुमको अर्पित हो जाऊँ।'

शायद 4-5 घण्टे के लिए अन्तर्ध्वनि का तार मिल गया है; तभी तो इस गीत में एक जगह संचित हो सका हूँ।

गीत की दो साफ़ प्रतियाँ बनाईं। यह गीत भी तेजी को जन्म-दिन के उपहार स्वरूप भेज दूँगा। 7 को पोस्ट करूँ तो 12 को मिल तो जाना चाहिए।

डेढ़ बज गए हैं। आँखें भारी, पर जी हल्का है। गीत की यह पंक्ति इस समय भी मुझ पर बैठती है, जब सोने जा रहा हूँ,

'हल्के होकर चलते (स्वप्नों के देश में) जिनके
भाव तराने बन जाते हैं',

(तराने बनकर बिराने—अब मेरे ही क्यों ?)

गुरुवार, 7 अगस्त, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ। ब्रेकफ़ास्ट करके पोस्ट आफ़िस गया; तेजी को पत्र पोस्ट किया।

9 ता. के लिए Romeo and Juliet का टिकट ख़रीदा। डिग में ठहरी अभिनेत्री ने बताया था कि वह जूलियट का पार्ट करेगी। कल खाने पर डिग की दो लड़कियों ने इस नाटक की बड़ी तारीफ़ की थी। रोमियो एण्ड जूलियट पर बनी फ़िल्म मैंने देखी थी, रंगमंच पर भी देखना चाहता था। शेक्सपियर के नाटकों को मैं पर्दे से नहीं सम्बद्ध कर पाता। नाटक रंगमंच के लिए लिखे गए थे, रंगमंच पर ही वे उभरते हैं। 'किंग लियर' देखने की याद अभी तक बनी है। शेक्सपियर के नाटकों के अभिनय को अंग्रेज़ों ने खूब माँजा है।

यु. ला. में दिन-भर 'The Open Night' पढ़ता रहा। पुस्तक समाप्त हो गई है। ईट्स पर एक लेख बहुत अच्छा था—'The man who learnt to walk naked', शीर्षक ईट्स की 'A Coat' कविता की अन्तिम पंक्तियों के आधार पर दिया गया है।

I made my song a coat
Covered with embroideries
Out of old mythologies
From heel to throat; (suggests a long robe)
But the fools caught it,
Wore it in the world's eyes
As though they'd wrought it.

Song, let them take it,
For there's more enterprise
In walking naked.

मौलिक कवि को मौलिक बने रहने के लिए बड़ा संघर्ष करना पड़ता है। नई चीज़ के अनुकरण करनेवाले बहुत होते हैं। उनकी भद्दी नक़लों और प्रचुर प्रयोगों से नवीनता की कोर मारी जाती है, यदि वह दब भी नहीं जाती। 'मधुशाला' की कम नक़ल की गई? पर नक़ल करनेवालों में कोई खरी प्रतिभा के लोग नहीं थे, इस कारण 'मधुशाला' की कोर कभी नहीं दबी, पर एक समय इसका ख़तरा तो था ही। कालक्रम में जब उनके भोंडे और निर्जीव प्रयोग बैठ गए हैं तब 'मधुशाला' अधिक उभरी है। मौलिक कवि के लिए, जब उसके प्रयोगों की नक़ल होने लगे, सिवा इसके दूसरा चारा नहीं कि वह अपने पुराने प्रयोगों को छोड़कर नयों को लेकर आगे आए।

ईट्स ने अपनी कशीदाकारी शैली इसीलिए छोड़ी कि बहुत-से लोग उसकी नक़ल करने लगे। प्राय: नक़ली में असली से अधिक तड़क-भड़क होती है। नक़ली मोती असली मोती से अधिक चमकता-दमकता है।

ईट्स ने अपना आवरण नहीं बदला।

क्योंकि उसकी फिर नक़ल हो सकती थी।

उन्होंने आवरण ही उतार दिया।

परवर्ती ईट्स की शैली में यह नग्नता स्पष्ट है—ईलियट के शब्दों में transparency. अभिव्यक्ति इतनी पारदर्शी हो कि जीवन अपने असली रूप में दिखाई दे। वास्तव में यह पारदर्शिता शैली में आने के पूर्व सर्जक की दृष्टि में आनी चाहिए। 'निशा निमन्त्रण' में मेरी शैली भी नग्न अथवा transparent हो गई थी। अलंकारी शैली, 'मधुशाला'-'मधुबाला' की तो नहीं, पर उससे मिलती-जुलती, गीतों में फिर लौटी। ईट्स भी अपनी embroideries पर फिर लौटे थे। हेन इसी कारण इस कविता के लिए कहते थे—it rings a bit false—पर मैं ऐसा नहीं समझता। कुछ बातें कवि की केवल कवि समझ सकता है। यहाँ हेन की भी सीमा है। जैसे शरीर में blood का circulation होता है वैसे ही कवि के वाङ्मय शरीर में उसकी शैली और काव्य के अन्य उपादानों का circulation होता है। Blood जैसे purified होकर लौटता है वैसे ही काव्य-उपादान भी निखरकर, परिष्कृत होकर लौटते हैं। पन्त का प्रकृति-शृंगारी कवि 'युगवाणी' की अलंकार-हीन शैली के बाद 'स्वर्ण किरण' में थोड़ा परिष्कृत होकर फिर लौटा है (हिमाद्रि)। कवि के विकास को सीधी रेखा में देखनेवाले प्राय: भूल करते हैं, वह वस्तुत: ऊपर उठते हुए वृत्तों में होता है। वृत्त शायद कवि की सीमा भी बन जाता है। वह उसकी परिधि नहीं बढ़ा सकता, उसको ऊपर उठा सकता है। काव्य और जीवन के सत्यों को रेखागणित के ढाँचे में नहीं जकड़ा जा सकता। ईट्स के काव्य का spiral movement बहुत स्पष्ट है। Embroidered और naked शैली की आवृति ईट्स में एक से अधिक बार हुई है। ईट्स दोनों रूपों में इतने विशिष्ट, अद्वितीय हैं कि कोई उनका अनुकरण नहीं कर सकता, करके उपहासास्पद ही बनेगा।

यु. ला. से लौटकर खाना खाया। बादल छाए थे, हल्की-हल्की फुहार पड़ रही थी।

डिग में कोई नहीं जिसके पास जाकर बैठूँ।

आराम कुर्सी पर लेटे-लेटे कुछ देर खिड़की से आसमान देखता रहा—सिवा भूरे-भूरे बादलों के कुछ नहीं दिखाई पड़ता था—कभी-कभी बिजली चमकती थी और ज़ोरों से गड़गड़ाहट होती थी—यहाँ बादल चमकते-गरजते ज्यादा, बरसते कम हैं।

एक पंक्ति दिमाग़ में कौंधी।

लगा एक और गीत की शुरुआत हो रही है।

'आ गई बरसात, मुझको आज फिर घेरे हुए बादल।'

किसी समय लिखने की मेज़ पर जा बैठा और चार-पाँच घण्टे में गीत पूरा हो गया।

इसका मात्रा-विस्तार और उसकी लय भी बिलकुल नई है। इसके पूर्व इस बहर में मैंने कोई गीत नहीं लिखा। इसमें लिखा किसी और का गीत मुझे स्मरण नहीं।

चार-चार पंक्तियों के चार स्टेंज़ाज़ बने हैं—लम्बाई में पंक्तियाँ मुखड़े की पंक्ति के बराबर—तीसरी पंक्ति तुक-मुक्त, चौथी मुखड़े के तुक को पकड़ती हुई।

सृजन के क्षणों में मन charged with a particular emotion स्मृति के कितने प्रदेशों की यात्रा करता है!

तेजी को बिजली की कड़क से बड़ा डर लगता है।

वर्ज़ाँ के साथ उस दिन भीगता लौटा था···

पानी पड़ने पर धरती से गन्ध यहाँ तो कभी उठती नहीं। वह तो भारत की तपी धरती से ही उठती है।

वह गन्ध कभी भूलने की चीज है—माटी की सुगन्ध—मेरे अस्तित्व की तीन-चौथाई।

अन्तिम पद की अन्तिम पंक्ति के लिए मुखड़े की तुक की तलाश में दिमाग़ तुलसीदास की एक चौपाई से जा टकराया—'जस कछु बुधि-बिबेक-बल मोरे, तस कहिहौं हिय हरि के प्रेरे'। मैंने अन्तिम पंक्ति में 'प्रेरे हुए बादल' का प्रयोग किया है। मैं समझता हूँ, खड़ी बोली में इस शब्द का प्रयोग पहली बार मैं कर रहा हूँ और उसी अर्थ में जिसमें तुलसीदास ने किया था—जब संज्ञा से क्रियाएँ बनने लगती हैं तब भाषा में गतिमयता—तेज़ी आती है। खड़ी बोली की शिथिलता का एक बड़ा कारण है, संज्ञा से क्रिया बना सकने में इसकी असमर्थता। ख़ैर। तुलसी ने तो हरि के हिय प्रेरने पर बुद्धि-विवेक-बल का भी सहारा लिया था। मैंने प्रेरणा पर ही सब कुछ छोड़ दिया है। जिन्हें मेरी पंक्तियाँ पढ़ते समय तुलसी की चौपाई याद आ जाएगी उनके appreciation को एक और dimension मिल जाएगा। मॉड बॉडकिन का सिद्धान्त। भावनाओं का अन्तर भी शायद वे देख सकें—तुलसी का attitude classical कवि का है—हरि की प्रेरणा हो तो भी उस पर बुद्धि-विवेक का नियन्त्रण; मेरा attitude romantic abandon का है। बादलों को भी मैंने यह अधिकार दे दिया है कि मुझे जहाँ चाहें वहाँ ले जाएँ। 'प्रेरे' के प्रयोग पर मुझे बड़ा सन्तोष है—खुशी भी—कविता का एक काम यह भी है, पुराने-अप्रयुक्त-विस्मृत शब्दों को नव अर्थ देकर नव जीवन देना। इससे भाषा अपनी जड़ों की गहराई के प्रति सचेत होती है। खड़ी बोली सब कुछ नया गढ़ने के आग्रह में सतही हो गई है। उसके शब्द, वाक्य, रूपक, लय, लहजे किसी समय-सम्मानित pedigree (कुलीनता ?) या सबूत का संकेत नहीं देते। नवीनता अपने प्रयोगों

में अधिक venturesome होती है जब उसके पीछे प्राचीनता का बल या आधार हो।

अन्तिम पद में गीत की नई बहर के प्रति मैं सचेत हो गया हूँ,

'आज रिमझिम की प्रतिध्वनि
में नई लय जन्म लेती है,
दामिनी नव भावना के
देश का संकेत देती है—
बुद्धि और विवेक बल से
गीत काग़ज़ पर उतरते कब—
मूक मेरी लेखनी को आज फिर प्रेरे हुए बादल।
आ गई बरसात मुझको आज फिर घेरे हुए बादल।'

एक बज गए हैं।

बिजली ने अपनी मशाल बुझा दी है।

बादलों की गरज नहीं सुनाई पड़ती।

शायद दोनों सोने चले गए हैं।

मैं भी अब सोने जाऊँ।

कविता मेरे साथ न होती तो इन भीगी-उदास घड़ियों का अकेलापन मुझे खा जाता। 'विस्मरण दे जागरण के साथ, मधुबाला कहाँ है?'—वह 'मधुबाला' कविता ही क्या नहीं?

शुक्रवार, 8 अगस्त, '52

ब्रेकफ़ास्ट टेबिल पर मादमोज़ेल ओदेत की चिट्ठी मिली।

क्लेग़मोग़ पहुँच गई हैं।

कुछ कहना चाहती थीं, आन्द्रे की उपस्थिति में न कह सकीं।

जैसे अनकहे को समझना मैंने अभी नहीं सीखा है।

जीवन में इन क्षणिक सम्बन्धों का भी मूल्य है।

स्मृतियाँ धनी हो जाती हैं।

तुम तो अस्तित्ववादी हो। जिन क्षणों का अस्तित्व हमारे लिए था उन्हें हमने बिलकुल व्यर्थ तो नहीं जाने दिया। मनुष्य बिलकुल मुक्त—स्वतन्त्र—तो नहीं—होना चाहना और बात है। अपने अस्तित्ववाद के साथ थोड़ा-सा नियतिवाद मिला लो तो जो होता है या हो पाता है वह अधिक स्वीकार्य लगेगा। 'हम जिस क्षण में जो करते हैं हम बाध्य वही हैं करने को'—स्वतन्त्रता के साथ दायित्व बँधा है। हम थोड़ी-सी स्वतन्त्रता का बलिदान करें और थोड़े-से दायित्व से मुक्त हों। इस attitude ने मुझे उच्छृंखलता से भी बचाया है, पश्चात्ताप से भी। पर मैं कौन हूँ जो दूसरों की बीमारी के लिए नुस्ख़े बनाऊँ। यहाँ सबको अपनी बीमारी स्वयं समझनी और अपना उपचार स्वयं करना है। एक-दूसरे के अनुभव से सीखना सभ्यता है; एक-दूसरे पर अपने अनुभव थोपना जंगलीपन।

सेन्ट्रल लाइब्रेरी में कुछ पत्र-पत्रिकाओं पर नज़र दौड़ा यु. ला. चला गया।

'Key to Modern Poetry' आज मिल गई। दिन-भर उसे ही पढ़ता रहा। जिस सेन्स में पोएट्री को आज माडर्न माना जाता है उसमें ईट्स के लिए भी स्थान नहीं। उन्हें माडर्न मानते हैं तो रियायतन। ग्रेट उन्हें मानते हैं, माडर्न नहीं। मार्डनिटी का मसीहा ईलियट है। मार्जरी की बदौलत माडर्न इंग्लिश पोएट्री

से पर्याप्त परिचय कर चुका हूँ। तकनीक पर जो कुछ कहा गया है, सब समझता हूँ। पर माडर्न पोएट्री को समझने के लिए जो माडर्न सेन्सिबिलिटी चाहिए वह शायद मुझमें नहीं। आ भी नहीं सकेगी। योरोप की नई पीढ़ी जिन ऐतिहासिक घटनाओं और वैचारिक आन्दोलनों से गुज़री है भारत की तो नहीं गुज़री। हमारी माडर्निटी भारतीय पैटर्न की माडर्निटी होगी। बढ़ने का—ग्रो करने का—एक प्रोसेस होता है—दूसरों को बढ़ते देखने से या दूसरों की बाढ़ जानने से अपना बढ़ना सम्भव नहीं है। कला, साहित्य, कविता के क्षेत्र में उधारी नहीं चलेगी। विज्ञान—टेकनोलोजी में ख़ूब चलेगी। हमें अपने बाढ़ की उस श्रेणी से अभी गुज़रना है जो योरोप के लिए पुरानी पड़ चुकी है। हम शायद जल्दी उससे गुज़र जाएँ, पर हम उसके ऊपर छलाँग लगाकर नहीं निकल सकते। छलाँग लगाने के प्रयत्न में हम अपनी टाँग तोड़ सकते हैं।

दत्त ने Croce की 'My Philosophy' मेरे लिए अपने नाम ईशू करा ली है। घर पर पढ़ना चाहता हूँ। एक दशक पहले क्रोचे का सौन्दर्य-शास्त्र-सम्बन्धी विचार योरोप में बहुचर्चित था। शायद यह साहित्य में मार्क्स के उपयोगितावादी सिद्धान्त की प्रतिक्रिया में आया था—सौन्दर्य-मूल्यी सिद्धान्त।

खाना खाकर घूमने गया।

लौटा एक गीत की कड़ी लेकर—गीत का जन्म कैसे अद्भुत तरीक़े से होता है—तार कसा रहना चाहिए—फिर तो हवा का मन्द स्पर्श भी उसको झंकृत कर देता है। सुनता हूँ यूनान में एक 'एओलियन हार्प' हुआ करता था जो खिड़की के सामने टाँग दिया जाता था और अन्दर आती हवा ताज़गी के साथ संगीत भी लाती थी। ग्रीक पूरे एपीक्यूरियन थे—आनन्दवादी—जीवन की सतह पर आनन्द और गहराई में अवसाद के प्रति सचेत होना culture की परिपक्वता है। हिन्दू संस्कृति आनन्द-सचेत और बौद्ध संस्कृति अवसाद-सचेत थी—दोनों के मिलन में भारतीय संस्कृति ने परिपक्वता प्राप्त की थी। ख़ैर।

गीत जो लेकर लौटा ?

'आज गीत मैं अंक लगाए, भू मुझको, पर्यंक मुझे क्या।'

शायद भर्तृहरि की एक पंक्ति की स्मृति,

'क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यंक शयन:'

मॉड बॉडकिन के विचारों को बराबर लागू पाता हूँ।

गीत, भू, पर्यंक—सब प्रतीक।

गीत unity of being का। कवि unity of being (किसी क्षण में ही सही) प्राप्त कर unity of being का सम्पर्क-सान्निध्य चाहता है—स्वाभाविक है। वह मिल जाए तो भू क्या, पर्यंक क्या—प्रेमी-प्रेमिका क्या याद रखते होंगे कि उनके नीचे पत्थर बिछे हैं कि फूल। Unity of being के मिलन में शेष नगण्य।

लय-मात्रा विस्तार में नवीनता नहीं। कई गीत इस बहर में पहले भी लिख चुका हूँ। चार-चार पंक्तियों के चार पद—पंक्तियों की तुक-योजना पुरानी।

Unity of being प्राप्त कर कोई अपना प्रतिरूप—संगी न पाए तो अपूर्ण ही रहेगा।

खण्डित-सा मैं घूम रहा था
जग-पन्थों पर भूला-भूला,
तुमको पाकर पूर्ण हुआ मैं
आज हृदय-मन फूला-फूला,

फूलों की वह सेज कि जिस पर
हम-तुम देखें स्वप्न सुनहरे,
आज गीत में अंक लगाए, भू मुझको, पर्यंक मुझे क्या !

वाङ्मय शरीर के blood circulation के समान अन्तिम पद में वे विचार फिर आए हैं जिन्हें मैं 'मधुशाला' के सम्बोधन और 'मधुबाला' के प्रलाप में व्यक्त कर चुका था।

सृजन के तुरन्त बाद विश्लेषण कठिन होता है।

गीत 'कवि का गीत' हो गया है—अपील इसकी सीमित होगी। पाठकों में कवि कितने होते हैं? और कवि दूसरे कवि से अपने को जल्दी identify नहीं करता।

साफ़ कापी बनाते हुए कई बातें ध्यान में आईं।

Unity of being के unity of being से मिलन का आन्तरिक उल्लास व्यक्त नहीं हुआ।

ध्यान बाहर चला गया, बाहर के आलोचकों पर।

कवि से मनुष्य दब गया।

'गीत' को unity of being का प्रतीक मानने से यह ख़तरा शुरू से था।

सब गीतों से समान सन्तोष नहीं होगा।

बारह बज गए हैं।

क्रोचे की 'माई फ़िलासफ़ी' रह ही गई।

कविता से स्वाध्याय की योजना बिगड़ रही है।

कविता से कुछ बन भी रहा है।

बनना-बिगड़ना तो साथ चलेगा।

कुछ बिगाड़कर ही कुछ बनेगा।

शनिवार, 9 अगस्त, '52

सेण्ट कैथरीन्स होता हुआ यु. ला. गया। तेजी को लिख दिया था कि डिग छोड़ने-वाला हूँ, आगे से ख़त कालेज के पते पर भेजें। उनका कोई ख़त न मिला तो निराशा हुई।

'A Vision' का पहला संस्करण पढ़ते हुए मुझे सन्देह हो गया था कि ईट्स की फ़िलासफ़ी का स्रोत—बीज स्रोत—थियोसोफ़ी में ही कहीं है। आत्मा के सम्बन्ध में थियोसोफ़िकल साहित्य में उन्होंने जो पढ़ा था वह किसी-न-किसी रूप में उनके दिमाग़ में अटका था, उससे वे मुक्त नहीं हो पाते थे और उसके समर्थन के लिए नए-पुराने दार्शनिकों का आश्रय लेते थे।

आज मैंने A. P. Sinnett की 'Growth of Soul' फिर पढ़ी। पर थियोसोफ़ी स्वयं कोई मौलिक दर्शन नहीं। उसके मूल विचारों के लिए कुछ और गहरे धँसना होगा, कुछ और पुराने धर्मों, दर्शनों, विश्वासों, अन्ध-विश्वासों में—मादाम ब्लावट्सकी की प्रिमिटिव और रहस्यमयी थिंकिंग में जो जितना ही पुराना था वह उतना ही सच्चा, उतना ही प्रामाणिक, उतना ही आकर्षक—जन साधारण में भी यह कमज़ोरी होती है। ईट्स का माइण्ड तो सोफ़िस्टिकेटेड था, पर वे अपने काव्य के लिए प्रिमिटिव माइण्ड की उपयोगिता समझते थे और उसे रखने का 'पोज़' बनाए रहते थे, कविता लिखने के लिए ही नहीं, दार्शनिक चिन्तन के लिए भी। उन्हें दार्शनिक और उससे बढ़कर नबी (प्रोफ़ेट) बनने का बड़ा शौक़ था।

'A Vision' को वे नया अहदनामा समझते थे। समझते न भी थे तो चाहते थे कि दूसरे समझें। एक बौद्धिक और जागरूक युग को वे तर्क नहीं, रहस्य के सहारे अभिभूत करना चाहते थे।

1 बजे पुस्तकालय से लौटा। लंच लिया।

2.30 से 'रोमियो ऐण्ड जूलियट' का अभिनय था, टिकट मैंने पहले से ले लिया था।

अभिनय बहुत अच्छा था।

मरकूशियो ने अपना पार्ट बहुत अच्छा किया। रोमियो और जूलियट का क्या कहना! तुलना में रोमियो ने अपना पार्ट ज्यादा अच्छी तरह निभाया। डिग की ऐक्ट्रेस से मैं और अच्छे अभिनय की प्रत्याशा कर रहा था। स्टेज पर वह बहुत प्रभावकारी नहीं लगी; रोमियो ही छाया रहा। वह अधिक सुन्दर, अपने पार्ट में अधिक डूबा लगा। नर्स का पार्ट भी बहुत सफलता के साथ किया गया था। पार्ट करनेवाली अपनी भूमिका का पूरा आनन्द ले रही थी। मिलन-यामिनी के अन्तिम चुम्बन पर मैं अपने आँसू न रोक सका। रोमियो-जूलियट जीते जी फिर कभी न मिले। जी जैसे चिल्ला उठने को कर रहा था, Fools, this is your last kiss—make it as long and as sweet as You can. You are not going to meet again alive. कैपुलेट और मानटेग की शत्रुता की वेदी पर ये दोनों सुकुमार विभूतियाँ बलिदान हो गईं। क्या आज राष्ट्रों के वैमनस्य पर कला और संस्कृति and finer things of life इसी प्रकार नहीं बलिदान हो रही हैं? जूलियट का कथन what is in a name जैसे आज के राष्ट्रों को सम्बोधित किया जा रहा हो। मि. हेन ने एक दिन अपने व्याख्यान में कहा था, शेक्सपियर ने अपने नाटकों में उन बहुत-सी समस्याओं को हल किया है जो आज हमारे सामने हैं; मानवता की समस्याएँ सदा से समान रही हैं; उन्होंने अपना रूपाकार बदला है, अपना मूल तत्त्व नहीं।

नाटक से कैम किनारे निकल गया।

रोमियो-जूलियट की ट्रेजेडी दिमाग़ में घूम रही थी।

लौटकर खाना खाया। 'जूलियट' को बधाई दी। अभिनय की कुछ आलोचना भी की। उसका उत्तर था आधुनिक अंग्रेज़ी रंगमंच इतना मेकैनिकल हो गया है कि अपने से कुछ नया करना असम्भव है। हर गति-मुद्रा, स्वर का उतार-चढ़ाव इतना सुनिश्चित होता है कि यदि किसी क्षण का चित्र-टेप लिया जाए तो हर बार एक-सा ही होगा। डाइरेक्टर छोटे-से-छोटे डिटेल का ध्यान रखता है और अभिनेताओं को—जब तक कि वे बहुत प्रसिद्ध न हो जाएँ—डाइरेक्टर को हर हालत में सन्तुष्ट करना होता है—आखिरकार यह उनकी नौकरी का सवाल है।

उसे रात के शो में अभिनय करने के लिए जाना था, बोली, अगर आप रात का शो देखने आएँ तो आप 'इन आल डिटेल्स' उसको दिन के शो जैसा ही पाएँगे।

मौसम खुला था।

फिर घूमने चला गया।

कैम किनारों का सौन्दर्य, शान्ति, आकर्षण अक्षय है।

लौटकर कुछ ज़रूरी चिट्ठियाँ लिखीं।

कुछ देर टाइपिंग का अभ्यास किया।

बहुत दिन से उसे छुआ नहीं था।

एक सुकुमार स्मृति उससे जुड़ गई थी।

याद आया।

एक रात टाइप कर रहा था।

ओदेत आ गई थी।

'मुझे लग रहा था आप टाइप से ओ-दे-त, ओ-दे-त···बुला रहे हैं—It became difficult for me to resist the call...'

रविवार, 10 अगस्त, '52

सुबह एक गीत लेकर उठा।

'मेरी तो हर साँस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन सँदेसे!' पता नहीं रात को दिमाग़ क्या बुन-कात रहा था।

कई पंक्तियाँ कानों में एक साथ गूँजने लगीं।

कई रूपक भी आँखों के सामने झलमलाने लगे—जैसे कोई कह रहा हो, इन्हें पकड़ो-पकड़ो, नहीं तो ये विलुप्त हो जाएँगे।

सोचा, इस समय लिखने बैठ जाऊँ तो सुबह का सारा कार्य-क्रम गड़बड़ हो जाएगा। सृजन सब कुछ भुला देता है। देरी होने से शायद ब्रेकफ़ास्ट भी न मिले। जब से मिसेज़ मलेटका को मालूम हुआ है कि शायद मैं कालेज की डिग में चला जाऊँ तब से मुझसे कुछ फिरण्ट-सी रहती है। मैं उसे नाराज़ नहीं कर सकता।

तैयार हो, ब्रेकफ़ास्ट ले, गीत लिखने बैठा।

1 बजे गीत समाप्त हुआ।

इधर जितने गीत लिखे उनमें यह मुझे सबसे अच्छा प्रतीत होता है। कम-से-कम पिछले से तो अच्छा है। उससे मुझे बहुत सन्तोष नहीं था।

नए के प्रति पक्षपात भी हो सकता है।

Form में कोई नवीनता नहीं।

पर भावों की सुकुमारता, तीव्रता और गहराई शायद औरों से इसमें अधिक है।

अन्तिम पद में 'एओलियन हार्प' से मैंने अपने को identify कर दिया है। जब न चाहने पर भी गीत पर गीत उतरता आता है तो अपने को ऐसा ही समझना स्वाभाविक है।

> **मैं भी चुप हो जाऊँ यह तो**
> **मेरे बस की बात नहीं है,**
> **अग-जग में क्या हो सकता है**
> **जो मुझ पर आघात नहीं है,**
> **झँपी पलक तारे की, तृण के**
> **ऊपर ओस बूँद शरमाई,**
> **झनकी मेरी बीन कि इतने मेरे जीवन-तार तने-से।**
> **मेरी तो हर साँस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन सँदेसे।**

यह तो होना ही है जब जीवन-तार इतने तने—डबल तने—हों।

अन्तिम पंक्ति में पाँच बार 'न'—तार तनकर त-न-न-न-न···जैसे कर रहा है।

अग-जग में जो होता है सब मेरे तारों को झनकारता तो मैं चौबीसों घण्टे मुखरित ही होता रहता! ख़ैरियत है कि अग-जग कवि का सीमित है—कवि का

भाव-जगत। बड़े से बड़े कवि का एक सीमित भाव-जगत होता है। सीमा में ही शक्ति व्यक्त होती है, अन्यथा बिखर जाती।

स्नान करके लंच लिया।

थोड़ी देर को सो गया।

शाम को उठकर कविता की साफ़ कापी बनाई—'धर्मयुग' को भेजी।

कुछ पत्र लिखे।

मि. लिण्टन ने 'भारत के मित्र' संस्था में 'आधुनिक हिन्दी कविता' पर एक लेख पढ़ने के लिए आमन्त्रित किया था। उसे स्वीकार किया।

पी. ई. एन. के सेक्रेटरी को पत्र लिखा, चन्दे का चेक भी भेजा।

इसमे ने चित्रादि भेजे थे; उन्हें भी धन्यवाद का पत्र लिखा।

खाने के बाद लम्बी 'वाक' पर निकल गया। आज दिन-भर कमरे से बाहर नहीं निकला था। खूब थककर लौटा।

कुछ देर टाइपिंग का अभ्यास किया।

दिन को सो चुका था। आँखों में नींद नहीं थी।

क्रोचे की किताब शुरू की…

सोमवार, 11 अगस्त, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ। ब्रेकफ़ास्ट टेबिल पर तेजी के पत्र की प्रत्याशा व्यर्थ गई।

कालेज गया। वहाँ भी कोई पत्र नहीं था।

यु. ला. चला गया।

सिनेट की पुस्तक बहुत शुष्क लगी। ईट्स की फ़िलासफ़ी का कोई ख़ास clue नहीं मिल रहा था। किताब छोड़ दी।

Romeo and Juliet जब से देखा था उसे एक बार फिर पढ़ने को जी कर रहा था। तीन प्रतियाँ पुस्तकालय में थीं। क्या उनकी जिल्द, क्या काग़ज़, क्या छपाई; तीनों संस्करण सचित्र। 'रोमियो ऐण्ड जूलियट' पूरी पढ़ गया। नाटक लिखना आर्केस्ट्रा के सब साज़ों को साथ साधना और बजाना है। एक से दूसरे में भिन्नता रखना, एक से दूसरे को सन्तुलित करना, सबको मिलाकर एक रस की निष्पत्ति करना, अभी रोमियो के मुख से बोलना, अभी मरकूशियो के मुख से; अभी जूलियट के मुख से, अभी नर्स के। उनके चरित्र एक-दूसरे से कितने भिन्न, उनकी भावनाएँ कितनी अलग, और सबके साथ न्याय करना, सबको उनके व्यक्तित्व के अनुरूप वाणी देना! गीत लिखना तो एकतारा बजाना जैसा हुआ, क्षेत्र कितना सीमित, गहराई न हो तो बस फ़्लैट, सपाट, सिलपट। 'रोमियो ऐण्ड जूलियट' पढ़ने का इस बार बहुत आनन्द आया, शायद इस कारण कि हाल ही उसका अभिनय देख चुका था।

साढ़े छह बजे लाइब्रेरी से लौटा, खाना खाया, घूमने चला गया।

लौटकर आया तो मन उदास था, अकारण ही, शायद कई दिनों से घर से कोई समाचार न मिलने की वजह से। तेजी को एक पत्र तो ऐसा भेजना ही था कि उनके जन्म-दिन पर मुझे मिल जाए। शायद सुबह ब्रेकफ़ास्ट पर मिल जाए। आगे की बात न सोच सकना बुद्धि की शिथिलता है। कुछ लोग समय आने पर सोचते हैं, और कुछ तो समय चले जाने के बाद।

क्रोचे खोलकर बैठा पर मन न लगा।

'जूलियट' शो के लिए चली गई थी।

मुइयाँ पाम्बे का दरवाज़ा खटखटाया—कोई उत्तर नहीं—या तो भीतर 'व्यस्त' या कहीं बाहर—इन्हीं दो से कुछ निकटता। मलेटका का ड्राइंगरूम खुला था, पति-पत्नी शायद कहीं चले गए थे, कुछ मैगज़ीनें पड़ी थीं किसी में पढ़ने योग्य कुछ नहीं। कुछ देर वहीं बैठा, शायद कोई आ जाए। बाद को कमरे चला आया।

एक गीत लिखने को बैठ गया—

'अनमिल तार सभी बाहर के
अन्दर के कुछ तार मिला लूँ।'

दो पद लिखे थे कि कुर्सी पर ही नींद आ गई।

किसी समय उठकर बिस्तर में जा घुसा।

दो बजे आँख खुली—लैम्प जल रहा था, आधी लिखी कविता मेज़ पर पड़ी थी।

नींद पूरी हो चुकी थी; कविता पूरी करने को कुर्सी पर जा बैठा।

3½ बजे कविता समाप्त हुई।

ध्यान आया इस समय तो देश में सवेरा हो गया होगा। तेजी अपने जन्म-दिन पर उठी होंगी। बच्चों ने उन्हें बधाई और प्यार दिया होगा, मेरी तरफ़ से भी। मेरा उपहार, कार्ड, कविताएँ पहुँच गई होंगी।···मेरी भी बधाई-प्यार—दूर से···

नींद में मैंने बण्टी को सपने में देखा था। जैसे उसे लेकर कहीं तमाशा दिखाने गया हूँ। वह भी मेरी याद करता होगा, क्योंकि सबमें नासमझ वही है।

मंगलवार, 12 अगस्त, '52

सुबह उठने में देर हो गई।

जल्दी-जल्दी तैयार होकर ब्रेकफ़ास्ट किया।

सेण्ट कैथरीन्स गया, इस आशा से कि तेजी का कोई पत्र होगा। कोई प न था, बड़ी निराशा हुई।

लाइब्रेरी चला गया।

तेजी का जन्म-दिन मनाने को मैंने दिन-भर ईट्स की कविताएँ पढ़ीं। आज शोध के किसी विचार से नहीं—just to enjoy poetry as poetry. शोधार्थी तो अपने को काव्यानन्द से वंचित करता है। ईट्स की कविताओं में आज बड़ा रस आया। शुरू से पढ़ने के कारण ईट्स के मानसिक विकास, उत्तरोत्तर अभिव्यक्ति पर उनके अधिकार, उनके प्रयोग की बारीकियों, और जैसे जीवन में वैसे ही काव्य में उनकी साहसिक स्वतन्त्रताओं का बोध हुआ। तुकों के सम्बन्ध में ईट्स ने बड़ी सूक्ष्म स्वतन्त्रताएँ ली हैं। ध्वनि के पीछे अन्तर्ध्वनि सुनने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। सब बड़े कवियों में होती है।—शेक्सपियर में खूब है, तुलसी में भी है—ध्वनियों के अर्थ की एक पूरी डिक्शनरी है शेक्सपियर और तुलसी के पास। भाषा को अर्थ के स्तर पर समझना उसका बड़ा सतही रूप समझना है। उसकी ध्वनि को समझना उसकी सच्ची समझ है। सृजन और काव्यानन्द दोनों के लिए ध्वनि की परख ज़रूरी है। इसीलिए कविता का पूरा आनन्द लेने के लिए उसे मुखरित-ध्वनित करना चाहिए—केवल आँख से नहीं पढ़ना चाहिए; पर ज़ोर से पढ़ता तो लाइब्रेरी से निकाल दिया जाता। ध्वनि की कल्पना भी होती है। अभ्यास से कल्पित ध्वनि को सुनना भी सम्भव है।

दिन को दत्त के साथ लाइब्रेरी कैफ़िटेरिया में लंच लिया—'आज मेरी त फ़ से तुम्हारी दावत—तेजी का जन्म-दिन है !'

शाम को लौटा तो घर से एक पार्सल मिला।

मेरे नोट्स, मूल-सर्टिफ़िकेट्स, गाउन आ गए हैं।

चिट्ठी नदारद—तेजी का तरीक़ा।

खाना खाने के बाद घूमने निकला।

हवा बहुत अच्छी चल रही थी। कैम किनारे बेंच पर झरने के पास बैठा रहा। वास्तव में झरना नहीं है। कैम के लेविल को ऊँचे से नीचे किया गया है। पानी नीचे को गिरता है तो झरने-सा ही लगता है—इसकी आवाज़ कानों को बड़ी अच्छी लगती है—उसमें बहुत कुछ बाहरी—और भीतरी भी—शोर-गुल डूब जाता है। आज बहुत-से लोग मछली मारने के लिए किनारे पर आए हुए थे। मछली फँसाते समय अंग्रेज़ बस ध्यान-धीरज की मूर्ति बनकर बैठता है।

लौटकर अपना नया गीत पढ़ा।

इसकी सबसे अच्छी लाइन तो बस पहली लाइन है।

'अनमिल तार सभी बाहर के, अन्तर के कुछ तार मिला लूँ।'

एक पंक्ति का भी गीत क्यों न हो ?

तार-तन्त्री का रूपक तो पहली पंक्ति के बाद ही छूट गया और गीत में फिर कभी नहीं आया।

'मिला लूँ' के तुकों पर गीत पलता-बढ़ता रहा।

इधर लिखे गीतों में यह सबसे कमज़ोर है।

कुछ अच्छा है तो तीसरा स्टैंज़ा।

पर उसकी दूसरी पंक्ति एकदम गद्य है—बोलचाल का—बाज़ारू बोलचाल का—कभी उसे बदलना चाहूँगा—गीत बोलचाल के स्तर पर नहीं उतर सकता—भावों की गहराइयाँ भाषा के ऊँचे स्तरों से बोलती हैं।—या मौन रहती हैं—प्रगल्भ तो कभी नहीं होतीं—पंक्ति में प्रगल्भता है।

एक साँस लय के अन्तर में
गीत सृजन का भर सकती है,
एक साँस यदि उसमें दम हो
तो क्या से क्या कर सकती है,
वह साँसों की साँस बड़े तप-
साधन से वश में आती है,
कर लूंगा सन्तोष अगर मैं अपने सपने चार जिला लूँ।
अनमिल तार सभी बाहर के, अन्तर के कुछ तार मिला लूँ।

ओदेत को पत्र लिखा।

शायद वह गीत से अधिक कवित्वपूर्ण था।

एक पत्र तेजी को लिखा—कविता की एक साफ़ प्रति साथ बन्द की।—पत्र शिकायत-भरा—उन्होंने यह भी नहीं किया कि उनके जन्म-दिन पर मुझे पत्र ही मिल जाए—यहाँ कौन है और मुझसे मिलने को।

लन्दन से हमारे ग्रुप की जो तस्वीर आई थी उसकी एक कापी ओदेत के लिफ़ाफ़े में डाल दी।

बुधवार; 13 अगस्त, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर मि. हार्वे का पत्र मिला।

मुझे एम. लिट्. के लिए रिसर्च-स्कालर रजिस्टर किया गया है। पी-एच. डी. के लिए नहीं।

दिल डूब गया।

मैं दो वर्ष से अधिक हरगिज़-हरगिज़ केम्ब्रिज में नहीं रुक सकता। अगर दो वर्ष में केवल एम. लिट्. दे सकते हैं तो मुझे एम. लिट्. पर ही सन्तोष करना होगा। देब और झा ने ईट्स पर मेरे काम के विषय में बस नाम मात्र अपने-अपने सर्टिफ़िकेट में लिखा था। जी खोलकर इनसे तो सर्टिफ़िकेट भी नहीं दिया जाता। सोचा, मि. हेन से बात कर लूँ; सुना था कि दत्त को भी पहले एम. लिट्. के लिए रजिस्टर किया गया था; बाद को पी-एच. डी. के लिए कर दिया गया, पर वे तो तीन बरस यहाँ रुकने की तैयारी करके आए थे। सेण्ट कैथरीन्स गया तो तेजी का पत्र मिला। बण्टी के पाँव में फोड़ा निकला था और उसने मेरी बहुत याद की थी। 11 को मैंने उसे सपने में देखा था। बच्चों की बीमारी में तेजी को कितनी चिन्ता, परेशानी और तकलीफ़ होती होगी। कभी सोचता हूँ कि इतने दिनों के लिए घर से बाहर आकर मैंने उनके साथ बहुत अन्याय किया है, पर केम्ब्रिज आने के लिए मैं जितना उत्सुक था उससे अधिक वे मुझे भेजने के लिए थीं। मेरी मानसिक क्लान्ति दूर करना वे अपना इतना बड़ा कर्तव्य समझ बैठी हैं कि उन्होंने अपनी शक्ति से अधिक का दायित्व अपने ऊपर ले लिया है। ले लिया है तो, मुझे मालूम है, वे उसे ठीक से निभाएँगी। फिर भी मन बहुत चिन्तित हो गया।

आज का दिन ही अच्छा नहीं था। रहने की जो जगह कालेज की ओर से बताई गई थी वह ग्रैनचेस्टर स्ट्रीट में थी। कालेज, पुस्तकालय दोनों से दूर, साइकिल रखनी पड़ती, खाने का वहाँ प्रवन्ध नहीं, खाना खाने को हर शाम कालेज आना पड़ता, वहाँ के औपचारिक भोजन में समय भी अधिक लगता; ख़र्च ग़ैर-कालेजी डिग से क़रीब-क़रीब दूना। फिर भी मैंने सोचा देख लूँ। उसकी लैण्ड लेडी कोई मिस बेकर थीं; वे सड़क पर ही मिलीं। रहने का कमरा भी उन्होंने नहीं दिखाया। बोलीं, मैं रिसर्च स्कालर को नहीं रखती; मैं केवल अण्डर-ग्रेजुएट्स रखती हूँ। मैंने कहा, चलो इससे छुट्टी मिली। जगह भी मुझे पसन्द नहीं थी। कोई नज़दीक जगह मिलेगी तब जीज़स लेन छोड़ने की बात सोचूँगा। मलेटका निकाल तो नहीं रही है। मिलन की डिग में भी जगह है; चेस्टरटन स्ट्रीटवाली डिग में भी।

हेन से भी भेंट नहीं हो सकी। उनका दफ़्तर बन्द था। प्राइवेट सेक्रेटरी को उन्होंने छुट्टी दे दी है। अमरीका जाने की तैयारी में व्यस्त हैं। मालूम हुआ, आजकल मुश्किल से मिलते हैं। ख़ैर, मैंने कार्ड छोड़ दिया कि जब मुझे समय दे सकें मैं आकर उनसे मिल लूँगा। पी-एच. डी. और एम. लिट्. का झगड़ा उनकी मौजूदगी में न तै हुआ तो मुश्किल ही है बाद को तै होना।

यु. ला. चला गया। A. E. के पत्रों के extract पढ़ता रहा। ये extract ईट्स को लिखे गए उनके पत्रों से हैं। नोट्स भी लिये। परन्तु मन आज उचटा था।

दो बजे लंच के लिए डिग आया।

भारी मन की शरण तो कविता ही है।

एक विचार कई दिनों से मन में था। उसी को लेकर लिखने बैठ गया।

'चोटी की बरफ़' नाम की मुक्त छन्द की एक कविता लिखी।

एक नया प्रयोग।

यह गद्य की लय नहीं।

पंक्तियाँ सम मात्रिक नहीं, तुक का आग्रह नहीं।

पर सारी कविता एक लय के पैटर्न में बँधी, जो बार-बार रिपीट होता है—दीर्घ, लघु, दीर्घ, दीर्घ—दीर्घ की जगह दो लघु भी लग सकते हैं। कुछ पंक्तियाँ लिखने के बाद पैटर्न का बोध हुआ और फिर उसे पूरी कविता में निभाया गया।

स्फटिक निर्मल / और दर्पण / स्वच्छ हे हिम / खण्ड शीतल / औ' समुज्ज्वल / तुम चमकते—आदि-आदि।

यह पैटर्न मेरी कविता में बहुत पुराना।

कह रहा जग / वासनामय / हो रहा उद् / गार मेरा /

सम पंक्ति और तुक-आग्रह मुक्त पर पैटर्न-बद्ध यह पहली कविता कहना चाहिए लघु कविता—'बंगाल का काल' में भी पैटर्न का बोध बराबर है—गो पैटर्न कई बार बदले हैं।

कविता पूरी हुई तो पाँच बज गए थे। सोचा, यु. ला. जाने का क्या लाभ अब; मगर नोटबुक टेबिल पर छोड़ आया था। लाइब्रेरी गया, दत्त के साथ लौटा।

कमला ब्रिस्टल में है। आजकल वे फ़िट्ज़विलियम हाउस में खाना खाते हैं। अपने काम से वे भी कुछ असन्तुष्ट थे; बोले, खाना खाकर मेरे यहाँ आएँगे।

मैंने भी डिग में आकर खाना खाया।

कविता को कुछ काटा-छाँटा—लगभग 60 पंक्तियों की सुन्दर कविता बन गई है। चोटी की बरफ़—सतह की मिट्टी, दोनों प्रतीक—बहुत स्पष्ट।

मुक्त छन्द में लिखी कविताओं में 'लिरिक' मैं इसी को कह सकता हूँ। गेय गीत को अंग्रेज़ी में 'सांग लिरिक' कहते हैं। हत भी 'गेय गीत' और 'गीत' का विभाजन क्यों न कर लें। तब 'चोटी की बरफ़' ऐसी रचना को गीत कह सकेंगे। अभी इसे गीत कहना अजीब-सा लगेगा। कहीं पर कहूँ कि अब आपको एक गीत सुना रहा हूँ तो लोग, 'तुम गा दो मेरा गान' की प्रत्याशा करेंगे; 'स्फटिक निर्मल और दर्पण स्वच्छ हे हिम खण्ड' की नहीं। प्रयोग से बहुत-सी अजीब लगनेवाली चीज़ें सहज-साधारण बन जाती हैं।

कविता की साफ़ प्रति बना रहा था कि दत्त आ गए।

उन्हें मैंने अपनी नई कविता सुनाई। बहुत पसन्द की उन्होंने—हिन्दी कम ही समझते हैं। उनके लिए कुछ व्याख्या करनी पड़ी।

जाने लगे तो उन्हें पहुँचाने मैं उनके घर तक चला गया। वहाँ कुछ देर बैठा। कमला के बिना अकेलापन अनुभव करते हैं। साढ़े दस बजे लौटा।

तेजी को पत्र लिखा। 'चोटी की बरफ़' उन्हें भेज दी।

गुरुवार, 14 अगस्त, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ। ब्रेकफ़ास्ट किया।

सोचा कैथरीन्स कालेज होता हुआ लाइब्रेरी जाऊँ; शायद मि. हेन से भेंट हो जाए, मिलने के समय का ही पता लग जाए।

पोर्टर ने हेन से फ़ोन पर बात की। उन्होंने मुझे 11.30 का समय दिया।

मैं यु. ला. चला गया। A. E. की पुस्तक पढ़ता रहा।

11.30 पर हेन के पास आया। एम. लिट्. की बात पहले चली। उन्होंने

कहा कि रिसर्च बोर्ड पहले सबको एम. लिट्. के लिए ही रजिस्टर करता है। कभी लोग तीन वर्ष नहीं रुक पाते, दो वर्ष में ही केम्ब्रिज से जाना चाहते हैं, उस हालत में उन्हें एम. लिट्. ही लेने की सुविधा होती है। पी-एच. डी. के लिए रजिस्टर हों तो दो वर्ष बाद उन्हें कोई डिग्री नियमतः नहीं मिल सकती। सुपरवाइज़र की सिफ़ारिश पर—काम निश्चय अच्छा होने पर—शोधार्थी को एम. लिट्. से पी-एच. डी. के लिए रजिस्टर कर दिया जाता है। बोर्ड को यह भी अधिकार है कि थीसिस अच्छी न हो तो पी-एच. डी. के लिए रजिस्टर्ड शोधार्थी को एम. लिट्. ही दे; या थीसिस बहुत अच्छी हो तो एम. लिट्. के लिए रजिस्टर्ड को पी-एच. डी. भी दे। उन्होंने मुझे राय दी रजिस्ट्रेशन किसके लिए हुआ है इसे भूलकर मैं अपने शोध को मौलिक और विशिष्ट बनाने का प्रयत्न करूँ।—उन्होंने तीन किताबें पढ़ने को दीं।

मैंने उन्हें खाने पर बुलाना चाहा था, पर मिसेज़ हेन घोड़े से गिर गई थीं, अभी चल-फिर नहीं सकतीं, इसलिए उन्होंने असमर्थता प्रकट की। अगले हफ़्ते मिलने के लिए कहा है। मि. हेन 26 अगस्त को 1 बजे की गाड़ी से सदैम्पटन जाएँगे और वहाँ से अमरीका।

डिग में लंच लेकर लाइब्रेरी गया।

A. E. की पुस्तक ख़त्म हो गई।

'Ideas of Good and Evil' शुरू करना चाहता था, पर पुस्तक लेने गया तो Samuel Butler की 'Erewhon' मिल गई। जब से E. M. Forster का लेख बटलर पर पढ़ा था तब से उन्हें फिर से पढ़ना चाहता था। 'Erewhon' उन किताबों में है कि उसे छुओ तो वह पकड़ लेती है, छोड़ती नहीं। लाइब्रेरी बन्द होने तक उसे पढ़ता रहा।

हेन की किताबें 25 तक पढ़कर लौटा देनी हैं।

पर अभी तो क्रोचे अधूरा पड़ा है—शोध के लिए शायद ही उपयोगी हो—फिर भी आधुनिक कविता और समालोचना को समझने के लिए उसके सिद्धान्तों को जानना ज़रूरी है।

खाना खाने के बाद घूमने चला गया।

मौसम बहुत सुहाना था।

कैम का किनारा—सुन्दर, स्निग्ध, शान्त—जैसे दुनिया की कोई हलचल उसे नहीं छूती।

लौटा तो एक गीत की कड़ी लिए आया,

'एक गीत ऐसा लिख पाऊँ
भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी।'

गीत समाप्त हुआ तो बहुत रात जा चुकी थी, बहुत थक गया था।

भूमि स्वर्ग से प्यारी इसलिए है कि यहाँ सुन्दरता के लिए आकर्षण है, प्यार है, समर्पण है, पीड़ा है। एक पद और जोड़ सकता तो उसमें कहता कि भूमि इस-लिए भी प्यारी है कि यहाँ थकन है—थक कर श्रान्त, शान्त, सुप्त होने से भी बढ़कर सुख है?···

शुक्रवार, 15 अगस्त, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ। ब्रेकफ़ास्ट लिया।

रात की कविता की साफ़ प्रति बनाई।

'एक गीत ऐसा लिख पाऊँ' को
'एक गीत ऐसा मैं गाऊँ' कर दिया है—

तेजी को पत्र लिख रहा था कि दत्त आ गए—शाम को मजलिस के लिए निमन्त्रण देने।

मैंने तो जाने से इन्कार कर दिया था, मजलिसवालों का व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लगा था—आख़िरी वक़्त निमन्त्रण कैसा!—सुना, एक सप्ताह से प्रोग्राम बन रहा था, तब तो मेरे लिए कोई जगह न थी। पर दत्त ने ज़िद की—स्वतन्त्रता दिवस है, इसमें ज़रूर सम्मिलित होना चाहिए। मैं मान गया।

दिन लाइब्रेरी में बीता। 'Erewhon' पढ़ने में।

शाम को आकर खाना खाया।

साढ़े सात के क़रीब दत्त और इन्द्रजीत आ गए। हम लोग स्वतन्त्रता दिवस मनाने को मजलिस भवन में गए। पाकिस्तानी एक नहीं। सुना कल पाकिस्तान का स्वाधीनता दिवस मनाया गया था। उसमें हिन्दुस्तानियों को निमन्त्रित नहीं किया गया था। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की भावी पीढ़ियाँ एक-दूसरे के गले काटेंगी। अंग्रेज़ ख़ुश होगा। इसीलिए तो उसने देश-विभाजन किया था।

पहले जन-गण-मन गाया गया। फिर महेश्वर दयाल, दत्त और शिवकुमार के भाषण हुए। बाद को शीला शर्मा ने दो गीत सुनाए। ये ईस्ट अफ्रीका की हैं, आजकल लन्दन में पढ़ रही हैं, केम्ब्रिज घूमने आई हैं, मिलन अपने साथ लाए थे। मीरा का एक भजन उन्होंने बहुत अच्छा गाया। मुझसे कुछ सुनाने को कहा गया, पर मैंने इन्कार कर दिया। पहले से कहना था। काम मजलिस में कोई क़ायदे से नहीं होता।

शीलाजी मेरी कविताएँ सुनना चाहती थीं। शनिवार को दत्त के यहाँ रात 8.15 से बैठक का प्रोग्राम बना।

रात को लौटकर क्रोचे के कुछ पृष्ठ पढ़े।

शनिवार, 16 अगस्त, '52

ब्रेकफ़ास्ट करके यु. ला. चला गया।

1 बजे तक 'Erewhon' पढ़ता रहा।

A. E. के ऊपर कुछ और किताबों का पता लगाया।

Swedenborg पर भी कुछ साहित्य खोजा। ईट्स पर स्वीडेनबार्ग का काफ़ी प्रभाव था—ईट्स के काव्य पर भी, दर्शन पर भी। स्वीडेनबार्ग-साहित्य पढ़ने के बाद ईट्स के काव्य-दर्शन को फिर पढ़ना होगा। कितना साहित्य है स्वीडेनबार्ग का! Giant genius था स्वीडेनबार्ग। उसका सब कुछ पढ़ना असम्भव। चुनाव करना होगा। अनुमान लगाना होगा कि ईट्स ने उसे कितना पढ़ा था। ईट्स स्वयं कम पढ़ते थे, पर प्रभाव ऐसा डालते थे कि बहुत पढ़ा है। प्रतिभा के किसी विशेष वरदान से महत्त्वपूर्ण पर उनकी दृष्टि सहज ही जा टिकती थी। महत्त्वहीन को वे छोड़ते चले जाते थे। ईट्स को पूरी तरह समझने के लिए दूसरा ईट्स ही चाहिए—किसी ने कहा था—A Milton is required to understand Milton. प्रकृति अपने को कब दुहराती है। हर साँचे को वह तोड़ती चलती है। ख़ासकर बड़े साँचों को। मिल्टन फिर नहीं पैदा होगा, ईट्स भी नहीं। बड़े सदा के लिए रहस्य बन जाते हैं। जीवन कुछ रहस्य बूझता, कुछ रहस्य बनता चला जाता है, हिन्दुओं ने माया का concept बहुत गहरे जाकर बनाया था, हँस उस पर कोई ले; गहरे

उतरेगा तो उसमें सत्य अवश्य पाएगा।

लाइब्रेरी एक बजे बन्द हो गई—शनिवार था—दत्त के साथ लौटा। वे तो पुरानी किताबों की हाट की तरफ चले गए। मैं डिग चला आया।

लंच लेकर कमरे की आराम कुर्सी पर लेट गया।

इस कुर्सी पर जब लेटता हूँ कोई-न-कोई कविता की पंक्ति मेरे दिमाग़ में उतर आती है—शायद इस पर लेटते ही tension से relaxation होता है। प्रत्यंचा तनी से ढीली होती है। एक तीर छूटता है। स्वीडेनबार्ग के साहित्य से अब भी अभिभूत था—मोटी-मोटी कितनी पुस्तकें—किस-किस को पढ़ूँगा! दिमाग़ की सुई न जाने किस अवचेतन अनुभूति पर खिसकी—कानों में एक पंक्ति बजने लगी,

'बहुत दिए हैं किस-किस पर तू
वारेगा पर हे परवाने !'

पर न जाने कब उसकी गूँज धीमी पड़ गई और मैं आराम कुर्सी पर लेटे-लेटे सो गया।

साढ़े तीन बजे दत्त ने आकर जगा दिया। शाम की पार्टी के लिए कुछ सामान खरीदना चाहते थे। पैसे थे नहीं और न इसका पता था उन्हें, बैंक बन्द—यह सब तो कमला का विभाग—जैसे मेरे यहाँ तेजी का—उनके बिना कठिनाई में पड़ते हैं—मुझसे कुछ उधार माँगने आए थे। मौके से मेरे पास कुछ था।

वे चले गए तो मैंने पर्दे खींचे और बिस्तर में जा लेटा।

नींद उचट गई थी। दिमाग़ उसी पंक्ति के इर्द-गिर्द और पंक्तियाँ बुनता रहा।

टेबिल पर बैठकर कविता लिखने लगा।

साढ़े छह बजे कविता पूरी हुई।

Real good song !

केम्ब्रिज में बैठकर मैंने जितनी कविताएँ अब तक लिखी हैं उनमें जितना मैं—बच्चन—45 वर्ष की अवस्था में—इंग्लैंड प्रवास में—मौजूद हूँ उतना किसी और में नहीं; मेरे मन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष, उसकी प्रवृत्ति, उसकी दुर्बलता, उसका पश्चात्ताप, उसकी समस्या, उसका समाधान—सब उसमें पूरी तरह व्यक्त हुआ है। मेरे लिए इस गीत की निकटता उसे दूसरों के लिए अजनबी और दूरी की चीज़ भी बना सकती है। पर क्या मेरी स्थिति में मैं ही हूँ—अकेला मैं? बहुत अपने को इसमें प्रतिध्वनित पाएँगे।

शिल्प की दृष्टि से unity of image और unity of emotion भी उसमें निभा है। मन की निचली सतहों में भी जो रहा है वह शब्दों के स्तर तक झलकता-गूँजता आया है।

खाने की घण्टी पर खाने चला गया।

ऊपर आकर कविता की एक साफ कापी बनाई।

गीत से बहुत सन्तुष्ट हूँ। इसमें संशोधन-परिवर्तन की आवश्यकता शायद ही हो। सब कुछ अपनी-अपनी जगह पर ठीक है।

साढ़े आठ बजे दत्त के यहाँ पहुँचा। अकेले बैठे थे। थोड़ी देर बाद सरदार आया। मिलन, महेश्वर, मजूमदार के साथ शीला साढ़े नौ के क़रीब आईं। 11.45 तक क़ॉफ़ी, कविता-पाठ, गाना आदि चलता रहा। शीला मेरी 'मिलन यामिनी' दत्त के यहाँ से पढ़ने को ले गईं। शीलाजी के विषय में बहुत-सी बातें मालूम हुईं। उन्हें हिन्दी में काफ़ी रुचि है; कविता-कहानी स्वयं लिखती हैं। माता-पिता पंजाब

के हैं; नैरोबी में बस गए हैं। शीलाजी भारत वापस आना चाहती हैं, किसी अच्छे भारतीय से विवाह करके। टैगोर की उपासक हैं—बंगला न समझने पर भी बंगला के रेकार्ड अक्सर बजाया-सुना करती हैं। नाचना भी जानती हैं। कला में पर्याप्त रुचि है और परिष्कृत क़िस्म की। गोरी हैं, सुन्दर नहीं; आकर्षण यौवन का।

रात को लौटकर मैंने कई बार अपनी कविता पढ़ी।

रविवार, 17 अगस्त, '52

रात को एक अजीब स्वप्न।

पर अजीब क्यों?

मन तो वहीं है।

मन तन को भी ले जाता है।

सुबह देर से उठा। देर से तैयार हुआ, पर मलेटका ने ब्रेकफ़ास्ट दे दिया। जानती है कि तंग करेगी तो मैं कल की जगह आज ही यहाँ से चला जाऊँगा।

पढ़ने को बहुत है—हेन की तीन किताबें जो 25 के पहले लौटानी हैं—क्रोचे भी कुछ बाक़ी है।

पढ़ने में मन नहीं लगा।

कभी रात की कविता याद आ जाती थी, कभी रात का सपना।

हल्के-फुल्के मूड में तेजी के लिए एक तुकबन्दी लिखने को बैठ गया—सपना दिमाग में था,

'हर रात तुम्हारे पास चला मैं आता हूँ।'

डेढ़ बजे तक एक पूरी कविता लिख गई।

उसी बहर में है जिसमें,

'क्या आज तुम्हारे आँगन में भी घन छाए।'

इस बहर में दूसरी कविता है।

तुकबन्दी नहीं, अच्छा गीत है।

चार महीने पहले हवाई-यात्रा का जो अनुभव दिमाग़ ने सँजोया था, जैसे उसने उसका पूरा उपयोग कर लिया है।

स्वप्न-यात्रा का तो गीत है ही।

खूब गति है।

कल्पना तेजी से ऊपर उड़ी जाती है।

दृश्य जल्दी-जल्दी नीचे बदलते जाते हैं।

कोई रुकावट नहीं।

Climax भी अच्छा बन गया है।

यात्रा—स्वप्न-यात्रा—तो तभी सम्भव है, जब नींद आ जाए। और नींद न आए तो विरही-प्रेमी क्या करे?

कविता लिखे।

'तब भाव-जलद पर इन्द्रधनुष रूपक धरकर,
छन्दों से कस,
तुम तक गीतों के सौ-सौ सेतु बनाता हूँ।'

रवीन्द्रनाथ का कोई गीत है—भावार्थ ही याद है—किसी ने सुनाया था—कितने सेतु तुम तक बाँधूँ!···

सब गीत शब्दों में ही तो नहीं ढलते।

कभी एक साँस एक गीत बन जाती है।
'आह से उपजा होगा गान' नहीं,
'आह ही बन गई होगी गान।'

स्नान किया। लंच लिया। सो गया।

खाने की घण्टी पर उठा।

खाना खाकर ऊपर आया ही था कि दत्त और मिलन आ गए। दत्त मुझे पार्क रोड पर और मिलन चेस्टरटन लेन में कोई डिग दिखाना चाहते थे। जाने पर पता लगा कि पार्क रोड की डिग भर गई। मिलन की डिग देखी—Castle Brae—जगह बुरी नहीं है। गैस की अँगीठी की जगह पर कोयले की अँगीठी मिलेगी—जाड़ा आ रहा है—इस विषय पर सोचना ज़रूरी था। ब्रेकफ़ास्ट ही मिलता है, पर रात को खाने का प्रबन्ध हो जाएगा। सामने का कमरा है, धूप भी आती है, सड़क से दूर है, इस कारण शोर ज़्यादा नहीं सुनाई पड़ेगा। लाइब्रेरी उतनी ही दूर पड़ेगी जितनी जीज़स लेन से, बाज़ार ज़रूर कुछ दूर पड़ जाएगा। पर बाज़ार से मुझे ज़्यादा काम कहाँ, ज़रूरी चीज़ों के लिए दस-पन्द्रह दिन में एक बार जाना होता है। मैंने मिलन से कहा कि अपनी लैण्ड लेडी से बात कर लें।

वहाँ से हम लोग शीलाजी के यहाँ गए। उन्होंने हमें कुछ गानों के रेकार्ड सुनाए। लौटते समय दत्त और मिलन ने 'कोहनूर' में खाना खाया। हम लोगों ने साथ कॉफ़ी पी। घूमते हुए सेंट मैरीज़ चेम्बर गए; वहाँ भी रहने के कमरे हैं; पता नहीं चल सका कि ख़ाली हैं या नहीं; मालकिन कहीं बाहर गई थी।

10 बजे कमरे लौटा।

दिन को 3-4 घण्टे सो लिया था। नींद नहीं आ रही थी। शीलाजी के यहाँ सुने हिन्दुस्तानी गानों के रेकार्ड कानों में गूँज रहे थे। देश में शायद ही मैं उन्हें सुनता या उनकी ओर ध्यान देता। विदेश में अपने देश का स्वर कितना मोहक लगा, कितना अपनत्व भरा। हमें अपने देश, अपने देश की मिट्टी, वहाँ के पेड़, पालव, मानव से राग, लय, धुन की कितनी सूक्ष्म कड़ियाँ बाँधे हैं। वहाँ रहते हम इनकी ओर सचेत भी नहीं होते, दूर होने पर उनकी प्रतिध्वनि हमारी शिरा-शिरा को हिला देती है। शीला नैरोबी से अपने पिता के कुछ पुराने रेकार्ड लाई थी जिन्हें मैंने भी अपने लड़कपन में 'फ़ोनोग्राफ़' पर सुना होगा—उसे तब हम 'ग्रामोफ़ोन' नहीं कहते थे—'निंदिया लागी मैं सोय गइउँ गुइयाँ'—निराला की 'जूही की कली' की प्रेरणा यह गाना रहा हो तो ताज्जुब नहीं—'छोटी बड़ी सुइयाँ रे जाली का मेरा काढ़ना'—

एक कविता लिखने बैठ गया,

'आज न मुझसे बोलो
अपने अन्तस्तल में राग लिये मैं।'

साढ़े तीन बज गए हैं!

'और न मुझसे बोलो
अपनी पलकों पर अब नींद लिये मैं'···

सोमवार, 18 अगस्त, '52

सुबह देर से उठना ही था।

Art breaks routine.

Routine तो जड़ता है। Art जड़ता से लड़ाई है।

ब्रेकफ़ास्ट के लिए पहुँचा तो बाक़ी लोग ख़त्म कर चुके थे। मिसेज़ मलेटका टेबिल की सफ़ाई कर रहीं थीं। कुछ कहा-सुनी हो गई। सोचा था यहाँ से सद्-भावना से जाऊँ, शायद लड़कर ही जाना होगा।

सिर्फ़ एक बोतल दूध पीकर कालेज चला गया।

12 की लिखी अमित-अजित की चिट्ठी मिली।

'डैफ़ोडिल' की कटिंग भी आई थी। साथ का सम्पादकीय नोट छिछला था। कविता कई जगह अशुद्ध छपी थी। बहुत बुरा लगा।

वहाँ से यु. ला. गया। मि. पिकर्ड की पाण्डुलिपि—'राजवीर'—पढ़ने को लाया था। चिट्ठी आई थी, जल्दी उस पर सम्मति माँगी थी। 150 पृ. पढ़कर सम्मति दे दी—भारतीय वातावरण निर्मित करने और भारतीय पात्रों का उपयुक्त चित्रण करने में लेखक सफल है। बला टालनी थी।

आज पुस्तकालय साढ़े चार बजे बन्द हो गया।

कमरे आकर अपनी कविता देखता-दुलराता रहा।

पहले तीन पदों में कवि का वही तेवर है—सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ?—आज के युग में कितना unrealistic, कवि का कोई महत्त्व कहाँ है? कहाँ कोई उसे या उसकी कविता को स्वीकार करने को तैयार है? पर कवि स्वयं अपने को महत्त्व क्यों न दे? Existentialist philosophy उस व्यक्ति को अपना कुछ महत्त्व समझने का अधिकार देती है कि नहीं जिसकी आसक्ति, शक्ति, सम्पत्ति केवल शब्द हो ? दुनिया न हो, पर वह क्यों अपनी शब्द-विभूति के प्रति सचेत न हो। शायद इस कविता में सचेत होने के स्थान पर वह over-confident है जो उसके attitude का पुरानापन और दोष है। चीज़ें प्रायः elements में इतनी नहीं बदलतीं जितनी degree या emphasis में। शायद सार्वजनिक महत्त्व और वैयक्तिक महत्त्व में degree का ही अन्तर है। Existentialist philosophy जब वैयक्तिक महत्त्व के प्रति सचेत और सचेष्ट होने का अधिकार सबको देती है तो वह कवि को ही क्यों उससे वंचित करना चाहेगी। पर कविता का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश उसका अन्तिम पद है।

> **'कूद पड़ा मैं, मुझको जीवन**
> **की लहरों ने था ललकारा,**
> **सदा हुआ करता है काफ़ी**
> **मुझे प्रकृति का एक इशारा,**
> **आज कला औ' दर्शन मुझको**
> **अंगीकार नहीं कर सकते,**
> **छोड़ नहीं सकते भी मुझको, ऐसा सुन्दर पाप किये मैं।**
> **आज न मुझसे बोलो, अपने अन्तस्तल में राग लिये मैं।'**

वास्तव में 'दर्शन की जगह मैं 'नीति' रखना चाहता था। 'नीति' शब्द मात्रा में नहीं बैठता था, इससे मैंने 'दर्शन' रख दिया है, पर मैं 'दर्शन' से नैतिकता का ही अर्थ ले रहा हूँ।

यहाँ मेरा सोचना क्रोचे से भिन्न है—शायद मेरा ज़्यादा eralistic है। क्रोचे के अनुसार जो सुन्दर है (aesthetic) वही तर्क-सम्मत (logical)—सत्य—है, वही उपयोगी (economical) है, वही हितकर (ethical) है—हितकर और एथिकल—ध्वनि से मुझे लगता है एक ही शब्द तो नहीं हैं?

मैंने 'सुन्दर' और 'पुण्यकर' में विरोध की सम्भावना भी देखी है। ('प्रसाद' ने भी देखी थी—'पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप')। प्रकृति में तो पाप-पुण्य नहीं है। पर जीना प्रकृति के स्तर से हो और जजमेण्ट मानव—सामाजिक मानव—के स्तर से तो 'सुन्दर पाप' की कल्पना की जा सकती है। शायद प्रकृति के स्तर पर सुन्दर असुन्दर भी नहीं होगा। सुन्दर को deny करते ही क्रोचे की फ़िलासफ़ी की आधार-शिला खिसक जाएगी।

शाम को क्रोचे की 'My Philosophy' के शेष पृष्ठ समाप्त कर दिए।

क्रोचे में, मुझे लगता है, प्रतिभा की शक्ति है, बौद्धिक तीक्ष्णता की नहीं—उसे कवि होना चाहिए था, दार्शनिक नहीं—ईट्स के समान—दोनों समवयस्क थे—क्रोचे अभी जीवित है। ईट्स ने दार्शनिक भी होना चाहा था; पता नहीं, क्रोचे ने कभी कविता भी लिखी या नहीं? ईट्स और क्रोचे की फ़िलासफ़ी में एक बेसिक समता है। ईट्स की फ़िलासफ़ी भी irrational है, क्रोचे की भी। फ़िलासफ़ी के लिए इससे बड़ी disqualification क्या हो सकती है? ईट्स ने अपने 'दर्शन' (A Vision) का समर्थन super-natural और रहस्य में खोए स्रोतों में ढूँढा, क्रोचे ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों में। आज के—बौद्धिक जागरूकता के—युग में ईट्स से अधिक क्रोचे स्वीकार्य होंगे। व्यक्तिगत अनुभव कविता की दलील बन सकती है, फ़िलासफ़ी की नहीं। क्रोचे की फ़िलासफ़ी कवि की फ़िलासफ़ी है। आश्चर्य नहीं, योरोप के दार्शनिकों ने उसे गम्भीरतापूर्वक नहीं लिया। साहित्य, कविता, कला की समालोचना में उससे ख़ूब सहायता ली गई। विशेषकर मार्क्स के उपयोगितावादी दर्शन के विरोध में। मेरा अनुमान अंशतः ठीक था। उपयोगिता को क्रोचे ने deny नहीं किया। सृजन के चार 'ग्रेड्स' में—पहलुओं कह सकते हैं—उसने सुन्दरता, सत्यता, मांगलिकता के साथ उपयोगिता को भी माना है—उसका economical ही उपयोगिता है—क्रम में सबसे पहले सुन्दर (aesthetic) फिर सत्य (logical) फिर उपयोगी (economical) फिर हितकर (ethical)—सत्यं, शिवम्, सुन्दरम के कितना निकट!—योरोप की भौतिकता ने 'उपयोगिता' जोड़ दी। क्रम की चर्चा भ्रम। क्रोचे के अनुसार चारों साथ ही ऑपरेट होते हैं।

क्रोचे व्यक्ति की अभिव्यक्ति (manifestation) से लेकर स्रष्टा (Spirit) की अभिव्यक्ति यानी सृष्टि तक में एक ही 'मोटिव'—प्रेरणा देखते हैं—सौन्दर्य का सृजन और सृजन में आनन्द का बोध—हिन्दुओं के 'लीला' के concept से लेकर काव्य-रचना में तुलसी के 'स्वान्तः सुखाय' तक एक ही लिंक (कड़ी), जिसे हर व्यक्ति की प्रत्येक अभिव्यक्ति के मूल में देखा जा सकता है। सौन्दर्यानन्द की निम्नातिनिम्न से लेकर उच्चातिउच्च तक अगणित श्रेणियाँ होंगी। सौन्दर्यानन्द की आदर्श स्थिति वही होगी जिसमें वह सत्य, उपयोगी, हितकर को एक साथ लेकर और उनसे एक रूप होकर चले। क्रोचे सृष्टि और स्रष्टा में unity of being मानते हैं, पर वह unity भी 'quaternity' है—चार रूपों की—सिक्के के दो पहलुओं की तरह चार पहलुओं की। हिन्दुओं ने स्रष्टा—ब्रह्मा—की कल्पना चौमुखी की थी—चतुरानन—पर वह शायद चार वेदों को ध्यान में रखकर। प्रतीक बहुअर्थी होते हैं, इसे मैं नहीं भुला सकता।

क्रोचे समाप्त करके शीलाजी के यहाँ चला गया। वहीं मिलन मिल गए। मिलन ने मेरे लिए 'कासिल ब्रे' का कमरा पक्का करा दिया है। बोले, इसी समय चलिए, आपकी बात करा दूँ। उनके साथ गया। लैण्ड लेडी मुझे भली लगी, वृद्धा-ममतामयी। डिग में केवल कालेज के लड़के रहते हैं, जो रात का खाना कालेज में

खाते हैं, पर उसने कहा, मेरे लिए वह रात के भोजन का प्रबन्ध कर देगी। शाकाहारी हूँ, क्या दिक़्क़त होगी उसे। चार्ज जीज़स लेन से कुछ ज़्यादा है, पर मैं देने को तैयार हूँ। मलेटका से अब पटना मुश्किल। कम्पनी भी वहाँ कोई नहीं। यहाँ बीस-पचीस विद्यार्थी रहते हैं। डिग से बाहर जाने और डिग में दूसरों को बुलाने के सम्बन्ध में यहाँ कुछ कड़े नियम हैं—पर मुझे कौन नियमों को तोड़ना है।

शीला और मिलन साथ मेरे कमरे आए। शीला मेरी कुछ नई रचनाएँ देखना चाहती थी। इन्दर और दत्त भी आ गए। मैं कुछ देर सबको अपनी नई कविताएँ सुनाता रहा। शीला ने एक-दो गाने सुनाए। उन्हें छोड़ने मैं 'कासिल ब्रे' तक गया।

रात को लौटकर मैंने कुछ देर टाइपिंग का अभ्यास किया। नियमित अभ्यास न होने से कोई प्रगति नहीं हो रही।

मंगलवार, 19 अगस्त, '52

ब्रेकफ़ास्ट लेकर लाइब्रेरी गया।

कुछ बुख़ार-सा मालूम हुआ—सिरदर्द भी।

कमरे वापस आया।

लेटे-लेटे हेन की किताबें देखता रहा।

नींद आ गई।

दिन को उठकर सिर्फ़ दूध लिया।

तबियत कुछ हल्की लगी मगर लेटा ही रहा।

शाम को खाने पर सिर्फ सब्ज़ी ली—पुडिंग—और कुछ नहीं।

कमरे में लौटा तो टेबिल पर 'आज न मुझसे बोलो···' की कापी पड़ी थी।

पढ़ते-पढ़ते ऐसा लगा कि उसकी गर्वोक्ति अधिक तीव्र हो गई है। कलाकार को तो नम्र होना चाहिए। गेटे ने भी कहा है, कलाकार के लिए कला का आदर्श इतना ऊँचा होता है कि वह अभिमान कर ही नहीं सकता।

एक छोटा गीत लिखा—'गीत मधुर सुकुमार लिए तू।' कवि का आत्मबोध है। जो कवि नहीं इस गीत में क्या पाएगा?

बुधवार, 20 अगस्त, '52

सुबह तेजी को पत्र लिखा।

दोनों कविताएँ भेजने को साफ़ प्रतियाँ बनाईं।

अमित-अजित, राजन को भी चिट्ठी लिखी।

सेण्ट कैथरीन्स कालेज गया।

तेजी की 15 की लिखी चिट्ठी मिली। पढ़कर मन बहुत दुखी हो गया। उन्होंने लिखा था, शेरवानी दिल्ली गए थे, वहाँ उन्होंने मेरे विषय में एक अफ़वाह सुनी थी। रघुवंश किशोर कपूर को उन्होंने एक पार्टी में कहते सुना था, बच्चन किसी मुसल्मान लड़की के प्रेम में हैं जो आजकल इंग्लैण्ड में है, वे उससे शादी करना चाहते हैं, इसीलिए अपने बीबी-बच्चों को यहाँ छोड़कर चले गए हैं और उनका अब भारत लौटने का इरादा नहीं है। उन्होंने कहा यह ख़बर उन्हें किसी से अमरीका में मिली थी और जब वे मुझसे लन्दन में मिले तो मैंने उसकी तसदीक की!!!—अमरीका में सुनी बात की चर्चा तो उन्होंने मुझसे भी की थी, पर मैंने उन्हें विश्वास दिलाया था कि इसमें राई बराबर सच नहीं।

पत्र से लगता था कि तेजी को शेरवानी से सुनी बात पर बहुत दुःख हुआ। होना ही था !

मैं सोच नहीं सका कि वंशो ने यह बे जड़-बुनियाद की बात क्यों फैलाई। क्या केवल ईर्ष्या के कारण ? पण्डित-परिवार में उन्होने मुझे क्यों बदनाम करना चाहा ? वंशो से मुझे यह प्रत्याशा नहीं थी। दो बार अपने को जोखिमों में डालकर मैंने उन्हें मुसीबत से निकाला था ! यदि मेरे साथ वे कुछ भलाई नहीं कर सकते थे तो बुराई तो न करते। यदि उन्होंने ऐसा कहा है—और लोग कही-सुनी बातों का जल्दी विश्वास कर लेते हैं—तो उन्होंने पण्डित-परिवार में मेरे प्रति बुरी धारणा बनाई है। मुझे छात्रवृत्ति भी अब शायद ही मिल सके। तेजी को जो दुःख पहुँचा होगा उसका अनुमान नहीं किया जा सकता। वंशो दिल्ली गए होंगे; मेरा प्रार्थना-पत्र शिक्षा-विभाग में गया है, इसका पता प्रेमा को होगा। शायद उन दोनों ने आपस में बात की हो कि बच्चन की तो पण्डित नेहरू और मिसेज़ पण्डित तक पहुँच है और मुझे दो वर्ष इंग्लैण्ड में रहने के लिए दस हज़ार रुपये मिल जाएँगे। सम्भव है इससे ईर्ष्या ने जन्म लिया हो और वंशो ने मुझे नीचे गिराने के लिए यह षड्यन्त्र रचा हो। क्या मनुष्य उपकार को इस प्रकार भूल जाता है ! मैंने वंशो के साथ जो किया शायद ही कोई दूसरा कर सके। दूसरा आदमी होता तो मेरे सामने आँख न उठा सकता। और यह है कि अपनी भलाई करनेवाले की जड़ काटना चाहता है। पता नहीं अमरीका में इससे किसने क्या कहा, क्या इसने अपने मन से जोड़ा-तोड़ा। और यह सब कात-बुन किसलिए ? इन्सान का कोई यक़ीन नहीं।

तेजी को तो मैंने फ़ौरन पत्र लिख दिया। विश्वास है वे मेरा विश्वास करेंगी।

मन किसी काम में नहीं लग रहा था।

'Leaves for Burning' दिन-भर पढ़ता रहा। ख़त्म हो गई।

शाम को इन्द्रजीत आया। उसके साथ उसके डिग गया। बॉक्स लाना था। आकर बिस्तर पर लेटा रहा। वंशो के विषय में बराबर सोचता रहा। उसने क्यों यह बात की ? उसने क्यों बे सिर-पैर की बात खड़ी की ? क्या मनुष्य दूसरे को हानि पहुँचाने के लिए इतना गिरने को तैयार हो जाता है ?...

गुरुवार, 21 अगस्त, '52

सुबह उठा तो मेरे दिमाग में एक कविता थी।

तैयार होकर लिखने बैठ गया।

आज व्यायाम वग़ैरह भी नहीं किया।

कोई 1 बजे कविता समाप्त हुई। 'दोस्तों के सदमें'।

यह मेरे क्रोध की प्रतिक्रिया थी। आवेश की।

साथ ही इस प्रसंग पर एक प्रतिक्रिया मेरे गहरे अवसाद की भी थी। लेकिन बहुत गहराई से स्वर जल्दी नहीं निकलता !

जब से तेजी का पत्र आया था मन बहुत उद्विग्न था।

कविता लिख डाली तो मन कुछ शान्त हुआ।

यु. ला. गया। दो पुस्तकें लौटानी थीं।

दत्त को पत्र की बात बताई तो वे बहुत हैरान हुए।

लाइब्रेरी से लौटते समय सेण्ट कैथरीन्स गया। मि. हेन से मिलने के लिए समय लेना था। तेजी का 12 का लिखा हुआ पत्र मिला। बहुत ख़ुश थीं, जन्म-

दिन पर मेरी कविताएँ वग़ैरह पाकर; सब चीज़ें समय से मिल गई थीं। 15 का पत्र पहले मिल गया था, 12 का आज मिला। डाक की गड़बड़ी इंग्लैण्ड में भी होती है, या वहाँ पोस्टिंग में देर की गई हो। हेन से पोर्टर ने फ़ोन करके बताया। वे मुझे कल बारह बजे कालेज के अपने कमरे में मिल सकेंगे।

डिग में आकर मैंने कविता की दो साफ़ प्रतियाँ बनाईं। एक तेजी को, एक 'धर्मयुग' को भेजने को। शायद ही छाप सकें—बहुत लम्बी है—दो सौ पंक्तियों से ऊपर ही होंगी। कुछ पत्रादि लिखे—डिग के नए पते की सूचना देने के लिए।

खाने पर मैंने मिसेज़ मलेटका को सूचना दी कि मैं कल से उनकी डिग छोड़ रहा हूँ। समाचार से वे कुछ खिन्न हुईं। बोलीं, आपको एक सप्ताह की नोटिस देनी थी। मैंने उन्हें समझाया कि मुझे अचानक डिग छोड़ने का निर्णय करना पड़ा। एक दूसरी डिग मौक़े से ख़ाली मिल गई है, जहाँ मेरा एक भारतीय मित्र भी है; मेरे लिए वह अधिक सुविधाजनक होगी।—मैंने पूरे सप्ताह का पेमेण्ट कर देने को कहा, वे मान गईं।

शाम को दत्त मिलने आए। कल ब्रिस्टल जा रहे हैं। मैंने बहुत दिन पहले उनसे वादा कर दिया था कि जब वे जाएँगे, मैं भी उनके साथ चलूँगा। साथ चलने की बात पक्की कराने आए थे। मैंने माफ़ी चाही। डिग बदल रहा हूँ। नई जगह व्यवस्थित होना है। मूड भी ख़राब है। दूसरे के यहाँ जाओ तो अच्छे मूड में जाओ। दत्त नहीं माने; कहते गए मूड ख़राब है, इसी से कुछ घूम-फिर आओ। उनकी बात माननी पड़ी। सोचा है सामान मिलन के कमरे में रख दूँगा। कमरे को रिज़र्व रखने के लिए लैण्ड लेडी चाहेगी तो उसे कुछ पेमेण्ट कर दूँगा। ब्रिस्टल जा रहा हूँ तो मनमथशायर भी होता आऊँगा, डेनिस-पेट्रीशिया दोनों का आग्रह था, दो-चार रोज़ उनके साथ बिताऊँ।

दत्त को मैंने अपनी नई कविता सुनाई। कई संकेत उनको समझाए। हिन्दी वे कम समझते हैं। कविता उन्हें ज़ोरदार लगी।

उनके साथ 'कोहनूर' गया। वहाँ उन्होंने खाना खाया। उनको कुछ दूर छोड़कर कमरे आया।

बार-बार ख़्याल आ रहा है, इस कमरे में आज मेरी आख़िरी रात है।

सवा सौ के क़रीब रातें मेरी इस कमरे में बीती हैं।

'इस कमरे की दीवारों के
मुख होता तो···'

तो वे क्या ऐसा नया कहतीं जो मैं हर रात को कलमबन्द नहीं करता रहा हूँ।

शुक्रवार, 22 अगस्त, '52

सोकर उठा था केम्ब्रिज में। सोने जा रहा हूँ ब्रिस्टल में।

सुबह से पौने बारह तक सामान इकट्ठा करता रहा।

बारह पर कालेज पहुँचा। हेन ने अपने कमरे में बुला लिया। जाते ही उन्होंने बता दिया था, मेरे लिए 45 मिनट का समय है। मैंने जो कुछ पढ़ा था—किताबों की सूची, पीरियाडिकल में पढ़े लेखों की भी, मैं ले गया था—उन्हें बताया; मैं जिन परिणामों पर पहुँचा था उनका भी संकेत मैंने दिया; आगे के कार्यक्रम की रूपरेखा भी उनके सामने रक्खी। मेरे काम से सन्तुष्ट थे। उन्होंने बताया कि अगले सेशन में डेविड डैशेस 'Method of Research' पर कुछ व्याख्यान देंगे; उन्हें मैं अटेण्ड करूँ। जिन परिणामों पर पहुँचा हूँ उन्हें लिख डालूँ,

पर उन्हें फ़ाइनल न समझूँ। उन्होंने बताया अमरीका में वे कहाँ-कहाँ किन-किन विषयों पर व्याख्यान देंगे। बहुत व्यस्त कार्यक्रम रहेगा, बहुत यात्रा भी करनी पड़ेगी। पत्र-व्यवहार न हो सकेगा।

चलते-चलते उन्होंने पूछा, How do you spend your leisure? मैंने कहा I have not developed leisure-sense—पत्नी को प्रेम-पत्र लिखता हूँ, कभी-कभी कविताएँ, जब से केम्ब्रिज आया एक दर्जन कविताएँ लिखी होंगी। सुनकर खुश हुए। उनका यह रिमार्क सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई—Creative mind is not opposed to critical mind. Actually the right type of critical mind is creative mind. मैं सोच रहा था शोध और सृजन मुझे दो विपरीत दिशाओं में खींच रहे हैं—समय-शक्ति सीमित होने से एक प्रकार का तनाव तो मैं अनुभव करता हूँ—जो समय कविता लिखने में लग रहा है उसे शोध में लगाना चाहिए था। अधिक समय कविता में लगा देना शोध के लिए घातक हो सकता है। शोध मेरी priority है।

लौटते समय टैक्सी ली और सामान मिलन के कमरे में रख आया। मिलन मेरा कमरा रिज़र्व करा लेंगे।

डिग आकर लंच लिया। मिस्टर और मिसेज़ मलेटका से गुडबाई की।

दत्त ने सवा दो पर आने को कहा था; ढाई पर आए।

हम लोग स्टेशन आए। 3.10 की गाड़ी मिल गई।

लन्दन में हमने गाड़ी बदली। साढ़े सात बजे ब्रिस्टल पहुँचे। कमला और मिसेज़ मोहन स्टेशन पर मिलीं।

डा. मोहन का घर है तो छोटा—पर अपना अलग। फिर भी कमला और विश्वा को एक पूरा कमरा और एक मुझे भी अलग उन्होंने दिया है।

घर पहुँचते ही डा. मोहन ने केम्ब्रिज में ली मूवी दिखाई। लाइब्रेरी के सामने सीढ़ियों से उतरते मेरी तस्वीर अच्छी आई है।

खाना—हिन्दुस्तानी—स्वादिष्ट।

खाने की मेज़ पर बताया गया—आज कमला-विश्वा के विवाह की दूसरी सालगिरह है। उन्हें बधाई दी। तभी विश्वा आज ब्रिस्टल आए!

सोने जाने को हूँ तो एक पंक्ति दिमाग़ में गूँज रही है—

'प्रिय, देख मिलन तेरा-मेरा क्यों तारे जलते हैं।'

जी तो चाहता है कि बैठूँ, एक गीत लिखूँ। पर बहुत थका हूँ।

सो जा मनुआँ!

शनिवार, 23 अगस्त, '52

ब्रेकफ़ास्ट के बाद कमला और विश्वा के साथ मैं शहर देखने निकला।

बन्दरगाह का नगर—पुराना—अंग्रेज़ पुराने को नए से मिलाने की कला में सिद्धहस्त हैं—पुराने गिरजे-गढ़, नए कारखाने, फैक्टरियाँ, चिमनियाँ साथ। पहाड़ी इलाक़ा मालूम होता है—बस्तियाँ कहीं ऊपर, कहीं नीचे। सड़कें कहीं चढ़ाव लिये, कहीं ढलवाँ। शहर खुला लगता है—बस्तियों के बीच में खुली जगहें, पार्क, हरे लान; नहरों, नालों को काटती सड़कें। बन्दर सेवर्न दरिया के मुहाने पर है, एवन नदी सेवर्न में गिरती है। प्राकृतिक वैभव में केम्ब्रिज से अधिक सम्पन्न—केम्ब्रिज में ले-देकर नहर-नुमा कैम नदी। केम्ब्रिज एकेडेमिक सिटी है, ब्रिस्टल व्यापारी नगर—गो युनिवर्सिटी यहाँ भी है।

आधा समय किताबों की दूकान पर बीता। विश्वा किताबों की दूकान से चिपकता है। मैंने एक गाइड बुक ली, कुछ तस्वीरी कार्ड तेजी और बच्चों को भेजने के लिए।

लौटकर हमने खाना खाया। विशुद्ध हिन्दुस्तानी खाना—रोटी, दाल, भात, सब्ज़ियाँ, अण्डे की करी। मिसेज़ मोहन ने ख़ुद बनाया था।

शनिवार को डॉ. मोहन दूसरे वक़्त अपनी क्लिनिक में नहीं जाते। खाने के बाद वे हमें अपनी कार में यहाँ की खास-ख़ास इमारतें वग़ैरह दिखाने ले गए।

सबसे पहले हमने सेण्ट मेरी रेड क्लिफ़ चर्च देखा। सदियों पुराना, पर नया-सा चुस्त-दुरुस्त खड़ा, कोन-रूपी ख़ूब ऊँचा शिखर आसमान को भेदता। सुना, पन्द्रह-बीस बरस पहले किसी ने उसका पूर्ण जीर्णोद्धार कराया, पर न कुछ पुराना हटाया गया, न कुछ नया जोड़ा गया। क्वीन एलिज़ाबेथ इसे इंग्लैण्ड का सबसे स्वच्छ, सबसे सुन्दर, और सबसे विख्यात गिरजाघर समझती थी। चर्च के क़ब्रगाह में चैटरटन की यादगार में एक पत्थर लगा है—चैटरटन बड़ा ही होनहार कवि था जिसने 17 वर्ष की अवस्था में आत्महत्या कर ली थी—उसका पिता इसी गिरजाघर का एक पादरी था। हमारे पादरी-गाइड ने कहा कि अगर आप कल आते तो चैटरटन के ठीक 182वें मृत्यु-दिवस को आते। चर्च के इतिहास में लोग इसे भी याद करते हैं कि कवि कोलरिज और कवि सदे के विवाह इसी चर्च में हुए थे।

फिर हम लोग कैबट टावर देखने गए—ब्रैण्डन हिल पर चौपहला बना है—जान कैबट की यादगार में, जिसने कोलम्बस से पहले ब्रिस्टल से न्यू फ़ाउण्डलैण्ड तक की यात्रा की थी। न्यू फ़ाउण्डलैण्ड का नाम ही इसलिए दिया गया होगा कि वह न्यूली फ़ाउण्ड लैण्ड था।

वहाँ से हम लोग क्लिफ़्टन ससपेंशन ब्रिज देखने गए—साइंस और इन्जीनियरी की अद्‌भुत करामात! एवन नदी के आर-पार दो ऊँची पहाड़ियों पर पत्थर के टावर बनाकर लोहे की ज़ंजीरों और रस्सों के सहारे यह पुल बनाया गया है। यह पानी की सतह से लगभग 300 फ़ीट ऊँचा है और इसकी लम्बाई 700 फ़ीट से अधिक है। पुल क़रीब सौ बरस पुराना हो चुका है पर इसका एक-एक कील-कांटा ज्यों का त्यों है। पुल पर तेज़ ठण्डी हवा चल रही थी।

लौटते हुए हमने कैथीड्रल और टेम्पिल चर्च देखा। कैथीड्रल अपने आकार-प्रकार और चौतरफ़ी हरियाली से प्रभावकारी है। कहते हैं इसकी शुरुआत आठ सौ बरस पहले सेण्ट आगस्टीन के एबी चर्च के रूप में हुई थी। अंग्रेज़ों के sense of history ने हर छोटी-बड़ी इमारत का इतिहास बनाए रक्खा है।

हमने सुन रक्खा था कि दुनिया में लीनिंग टावर सिर्फ़ पीसा (इटली) में है। यहाँ आकर देखा कि टेम्पिल चर्च का टावर भी एक ओर को झुका हुआ है। यह बात आश्चर्य से बताई जाती है कि पिछले महायुद्ध में हवाई-बमबारी से जबकि चर्च के और हिस्से टूटकर गिर गए यह झुका हुआ टावर ज्यों का त्यों खड़ा रहा! विनम्रता की भी दृढ़ता होती है।

लौटकर नहा-धोकर तैयार हुआ।

आज डॉ. मोहन ने, शायद ख़ास हम लोगों से मिलने के लिए, अपने कुछ भारतीय मित्रों को खाने पर बुलाया था।

मिस्टर सेन, मिस्टर मेनन, मिस्टर दत्त (सीनियर-जूनियर) तथा और दो-तीन सज्जनों से मेरा परिचय हुआ।

मिस्टर दत्त बंगाल पार्टिशन के समय निर्वासित कर दिए गए थे और इंग्लैण्ड में ही बस गए; उनकी पत्नी अंग्रेज़ महिला हैं; दो लड़के हैं, एक का नाम डेविड दत्त है। उसकी शिक्षा आक्सफ़र्ड में हुई, पिछले युद्ध में उसने भाग लिया था; अब उसने एक जर्मन लड़की से शादी कर ली है। डेविड की रुचि आधुनिक मनोविज्ञान और दर्शन में है। उसकी अरविन्द की फ़िलासफ़ी के प्रति भी जिज्ञासा है—कहीं भारतीय संस्कार। उसने किसी आधुनिक फ़िलासफ़र की चर्चा की, जिससे वह बहुत प्रभावित है। उसकी कोई पुस्तक मुझे देना चाहता है कि मैं भी उसे पढ़ूँ।

लोग मेरी कविताएँ सुनना चाहते थे। कई सुनाईं; हिन्दी तो घर के लोगों को छोड़कर वहाँ कोई नहीं समझता था। पर मैंने नोटिस किया, देश का स्वर बिना समझे भी कहीं छूता है। कुछ सहायता मैंने अंग्रेज़ी में भावार्थ देकर की। मि. दत्त ने कभी संस्कृत पढ़ी थी। उन्हें कालिदास से कुछ याद था; सुनाया, रस लेते हुए। मि. सेन ने टैगोर की कुछ कविताएँ सुनाईं।

मि. दत्त ने सावरकर के बारे में बहुत-सी बातें बताईं। उनकी राय थी, आज़ाद हिन्दुस्तान की सरकार ने उनके साथ न्याय नहीं किया।

वे लोग क़रीब 11½ बजे गए।

कल की पंक्ति गीत बनने को मचल रही है। पर थका हूँ।

रविवार, 24 अगस्त, '52

मैं सुबह जल्दी उठ गया।

घर में कोई हलचल नहीं।

सोचा, इतवार है; इतवार को लोग देर से उठते होंगे। मैं उठकर नीचे गया तो खटर-पटर होगी, लोग डिस्टर्ब्ड होंगे।

गीत लिखने लगा,

'प्रिय, देख मिलन तेरा-मेरा क्यों तारे जलते हैं।'

रूमानी गीत; रूमानी गीत के महत्त्व की चेतना।

सबसे अच्छी और 'सोबर' पंक्ति शायद,

'हम खुद कुछ दुख की सुधियों से
सुख पर संयम रखते।'

दत्त ने दरवाज़ा खटखटाया। मैं तो जगा हुआ था।

तैयार होकर ब्रेकफ़ास्ट किया।

मि.-मिसेज़ मोहन ने आज हमें वेमथ ले जाने का प्रोग्राम बनाया।

मिसेज़ मोहन और कमला पिकनिक का सारा सामान जुटाने में लगी रहीं, डॉ. मोहन ने मोटर ठीक की।

वेमथ कोई 75 मील पर चौड़ा-खुला-छिछला समुद्र-तट है जहाँ लोग नहाने और सन-बाथ लेने जाते हैं।

हम लोग सवा दस पर घर से चले।

रास्ते में हम डारचेस्टर से होकर गए, जिसकी भूमि और जिसके निवासियों को हार्डी ने अपने उपन्यासों में विश्व-विख्यात और अमर कर दिया है।

हम कुछ देर डारचेस्टर में रुके।

हार्डी मेमोरियल पर—जहाँ हार्डी की प्रस्तर मूर्ति लगी है—डॉ. मोहन ने हमारी तस्वीरें खींचीं; कैमरा साथ लाए थे।

हमने वह घर भी देखा जिसमें हार्डी रहते थे। अन्दर हम न जा सके। कोई परिवार उसमें रह रहा था।

डारचेस्टर के लोग हार्डी को पसन्द नहीं करते। वे कहते हैं कि उसने हमारे सब भेदों को प्रकट कर दिया। किसी की कोई बात छिपी नहीं रहने दी। हार्डी के सब पात्र जीवन से लिये गए थे। डारचेस्टर में लोग उन पात्रों से परिचित थे। वे अपने को या अपने परिचित पात्रों को उपन्यासों में पहचानते थे। हार्डी ने केवल नाम बदल दिए थे। बहुत-सी घटनाएँ जिनका हार्डी के उपन्यासों में ज़िक्र है वास्तविक रूप से हुई थीं, उनको बहुत-से परिवारों में याद किया जाता था। हार्डी ने लोगों के जीवन में रस-बसकर उनका ज्ञान प्राप्त किया और अपने उपन्यासों की कलात्मक आवश्यकताओं के अनुसार उनको गढ़-छीलकर उपस्थित किया।

एक बजे हम लोग वेमथ समुद्र-तट पहुँचे। मौसम अच्छा था; धूप निकली थी। सैकड़ों नारी-नर-बच्चे नहाने आए थे। वे समुद्र में नहाते और फिर धूप में लेटते। कहते हैं, इस प्रकार वे अपने बदन को 'टैन' करते हैं—यानी साँवला। जो साँवले हैं वे गोरे बनाना चाहते हैं, जो गोरे हैं वे साँवले।

सुता, स्वस्थ, यौवन का नग्न शरीर कितना आकर्षक होता है। नहाने के बाद तो वह और सुन्दर लगता है। इतने श्वेतांगों को एक साथ प्रायः नग्न मैंने पहली वार देखा—नग्नता ढकने को क्षीणतम वस्त्र तन पर!

वहीं हमने खाना खाया।

समुद्र-तट की रोड़ियों पर कम्बल विछाकर लेट गए।

सभी ने एक-एक झपकी ले ली।

फिर हमने चाय पी। थरमसों में लाए थे।

5 बजे हम लोग वहाँ से रवाना हुए।

8 बजे रात घर पहुँचे।

घण्टे-भर के अन्दर मिसेज़ मोहन और कमला ने खाना तैयार कर दिया।

खाने के बाद कुछ देर ड्राइंग-रूम में गपशप हुई—रेडियो के कुछ प्रोग्राम सुने गए।

सब थके थे। जल्दी सोने गए।

सोमवार, 25 अगस्त, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ। ब्रेकफ़ास्ट किया। ख़त लिखे।

पोस्ट आफ़िस गया। डेनिस से पूछा है कि मैं ब्रिस्टल से मनमथशायर चला आऊँ—तीन-चार दिनों के लिए—तो क्या उसके लिए सुविधाजनक होगा। तेजी को भी पत्र लिखा।

लौटकर समाचार-पत्र देखे; कई पत्रिकाएँ; डॉ. के यहाँ बहुत-सी आती हैं।

अपने पिछले गीत की साफ़ प्रति बनाई।

एक मिसेज़ मोहन को भेंट की—आपके घर लिखी कविता, अपनी हस्तलिपि में आपको!—बहुत खुश हुईं।

1 बजे डॉ. साहब क्लिनिक से लौटे।

सब ने साथ खाना खाया।

फिर दत्त के साथ यहाँ का म्यूज़ियम देखने गया। बहुत अच्छा नहीं। विशेष उत्सुक थे हम राजा राममोहनराय का चित्र देखने को। वह नीचे बेसमेण्ट में रखा था। युद्ध के समय म्यूज़ियम पर बम गिरा था। कला-संस्कृति का विनाश आधुनिक

युद्ध का सबसे बड़ा खतरा ! बमबारी से और चित्रों के साथ राजा राममोहनराय के चित्र को भी क्षति पहुँची थी। कैनवस एक जगह से उड़ गया था; फिर भी चित्र अब भी बहुत भव्य है। इसे तो भारत के पार्लियामेण्ट-भवन में लगना चाहिए। चित्र के नीचे राजा राममोहनराय को हिन्दू समाज-सुधारक लिखा है, पर वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अंग्रेज़ों के सामने, उनके देश में आकर, भारतीयता पर अभिमान किया। राष्ट्रपिता का पद तो महात्मा गांधी को दिया गया, पर वास्तव में आधुनिक भारत के राष्ट्रपिता राजा राममोहनराय थे। इतिहास बहुत-सी भूलों को चुपचाप सहन कर लेता है। उनकी आँखों में भारत के भविष्य का या भविष्य के भारत का एक स्वप्न था। यह चित्र में भी स्पष्ट है। मैं तो उसे देखता ही रह गया। वेश-भूषा उनकी भारतीय है। उस समय कितना अजीब लगता होगा किसी का भारतीय पोशाक में इस देश में घूमना। शायद कुत्ते भी इन्सान को ऐसी पोशाक में देखकर दौड़ा लेते होंगे। लेकिन राजा राममोहनराय ने यहाँ विदेशी कपड़े नहीं पहने। सुना है इस चित्र को भारत ले जाने का प्रयत्न हो रहा है। दत्त ने नेहरूजी को इस विषय में लिखा था। इण्डिया हाउस ने इसकी जाँच करने को अपना प्रतिनिधि भेजा था। यहाँ वाले चित्र को रखने में इण्टरेस्टेड नहीं हैं। भारत चाहेगा तो खुशी से दे देंगे।

वहाँ से हम लोग युनिवर्सिटी देखते हुए सेण्ट्रल लाइब्रेरी गए। यहाँ ब्रिस्टल सम्बन्धी एक भरी-पूरी रेफ़रेन्स लाइब्रेरी है। दत्त राजा राममोहनराय के एक और चित्र और मूर्ति के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त करना चाहते थे। दत्त के शोध से भी राजा राममोहनराय का सम्बन्ध है।

शाम को मिस्टर डेविड दत्त अपनी पत्नी के साथ मुझसे मिलने आए। डेविड ने बताया कि वे आक्सफ़र्ड में वाधम कालेज में थे। बहुत खुश हुए जब मैंने कहा कि मैं कुछ मास पूर्व वाधम कालेज में ही जाकर ठहरा था। डेविड ने बताया कि जब महाराजकृष्ण रसगोत्रा वहाँ रहने गए थे, वे भी वहीं थे। दुनिया कितनी छोटी है ! कैसे एक-दूसरे से जान-पहचान के सूत्र मिल जाते हैं। आक्सफ़र्ड से वे पी. पी. ई. कर चुके हैं। बहुत देर उनसे बातें हुईं। उन्होंने आधुनिक फ़िलासफ़ी की समस्या पर एक किताब मुझे दी। रात को उन्होंने हमारे ही साथ खाना खाया। बाद को डॉ. और मिसेज़ दत्त (सीनियर) भी आ गए। दत्त साहब को भारतीयों से मिलकर बड़ी खुशी होती है। डॉ. मोहन ने ड्राइंग-रूम में अपनी ली कुछ पुरानी मूवीज़ दिखाईं।

मिस्टर और मिसेज़ डेविड मुझे बहुत अच्छे लगे। नव-विवाहित। पत्नी हर बात में पति का रुख़ जानने का प्रयत्न करती है। मुझे उसमें कुछ बहुत भारतीय लगा !

रात को बिस्तर में गया तो मुझे नींद नहीं आ रही थी।

न जाने क्यों बम्बई से इंग्लैण्ड के लिए प्रस्थान का दिन याद आता रहा।

सोचा कुछ लिखूँ।

टेबिल लैम्प जलाकर एक कविता लिखी।

'नहीं बिसरते हैं बिसराए तेरे नयन सनीर लजीले।'

कविता एक बजे रात को समाप्त हुई !

तेजी के नेत्र सनीर तो थे, पर लजीले नहीं, वह तो शायद श्रीमती डेविड के नेत्रों की देन है। कवि के दिमाग़ में जो न जिससे जा मिले।

मंगलवार, 26 अगस्त, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ। ब्रेकफ़ास्ट लिया।

तेजी को पत्र लिखा। कल की कविता की साफ़ प्रति बनाकर साथ रख दी। अवश्य वे सन्दर्भ समझ लेंगी।

आज सिटी आफ़ बाथ जाने का प्रोग्राम बना।

'बाथ' नाम अपरिचित नहीं था। चासर की 'कैण्टरबरी टेल्स' में एक 'वाइफ़ आफ़ बाथ' भी है—प्रोलोग में। 'नाइट कमाण्डर आफ़ दि बाथ' टाइटिल भी अनजाना नहीं था। किसी ने कभी मज़ाक में कहा था कि यह टाइटिल जिसे दिया जाता है वह राजा को स्नानागार में भी जाकर मिल सकता है! बाद को मालूम हुआ कि इसके मूल में वह 'बाथ' था (स्नान) जो पदवी पाने के पूर्व लेना पड़ता था।

जिस 'सिटी आफ बाथ' को हम देखने जा रहे थे उसका यह नाम इसलिए पड़ा था कि वहाँ गरम पानी के चश्मे थे। चश्मों के पानी को स्नान करने के लिए तालाबों में एकत्र किया जाता था। 'सिटी आफ़ बाथ' यानी नहाने के तालाबों का नगर।

कमला और दत्त के साथ मैं क़रीब 12 बजे घर से चला। पहले बस से सेण्टर आना पड़ा; वहाँ से बाथ के लिए बस मिली।

पहुँचे तो दो बज गए थे। निश्चय हुआ पहले किसी रेस्ट्राँ में खाना खा लिया जाए। बाद को हम लोग 'बाथ' देखने गए। बाथ देखने का 1 शि. 3 पेंस प्रति व्यक्ति के हिसाब से टिकट लगता है। हाल में जाकर पहले हमने गरम चश्मे का पानी पिया। फिर नीचे बाथ देखने गए। इसे रोमनों ने सन् '54 ईसवी में बनाया था। गरम पानी का चश्मा तो यहाँ पहले से था। रोमनों ने चश्मे के निकट तालाब बनाया कि उसमें चश्मे का पानी आ सके। रोमनों को तालाबों में नहाने का बेहद शौक़ था। सैक्सनों ने आकर रोमनों के बनाए तालाबों को नष्ट कर दिया था। बाद को उन पर दूकानें वग़ैरह बन गई थीं। 19वीं शताब्दी में तालाबों का पुनरुद्धार किया गया। तब से बराबर लोग इन्हें देखने आते हैं। एक गाइड ने बाथ का इतिहास बताया। साथ ही एक नुमाइश है जहाँ खुदाई के सिलसिले में मिली चीज़ें रक्खी हैं। इन चीज़ों में सबसे रोचक वस्तु है आधे इंच मोटे राँगे की चादर का टुकड़ा। ऐसा अनुमान किया जाता है कि पूरा तालाब राँगे की मोटी चादर से मढ़ा जाता था ताकि पानी साफ रहे और कीचड़ न हो; शायद राँगे से मढ़े रहने के कारण तालाब का पानी ज़्यादा देर तक गरम भी रहता होगा। योरोपियन तरीक़े का प्रदर्शन करके जगह को बहुत आकर्षक बनाया गया है।

लौटते समय हम राजा राममोहनराय की समाधि पर गए। फूल हमने बाथ से ही ले लिये थे। मैंने राय दी कि राष्ट्रीय झण्डे के रंग के फूल-पत्ते समाधि पर चढ़ाए जाएँ। सौभाग्य से हमें मिल भी गए। समाधि पर फूल चढ़ाते समय की मेरी एक तस्वीर दत्त ने खींची।

देश के एक सपूत की अस्थियाँ विदेश में पड़ी हैं। क्यों न भारत सरकार इसे स्वदेश ले जाए (?) और इस पर एक भव्य स्मारक बनाए। हमारे शासन में कल्पना की बड़ी कमी है।

लौटकर हमने खाना खाया।

कुछ देर ड्राइंग-रूम में कविता-पाठ हुआ।

अपने कमरे में जाकर अपनी पिछली कविता पढ़ रहा था कि उसकी पूरक कविता सूझी।

'पुष्प गुच्छ माला दी सबने
तुमने अपने अश्रु छिपाए।'

क़रीब आधी रात को कविता समाप्त हुई।

बुधवार, 27 अगस्त, '52

सुबह की डाक से डेनिस का पत्र मिला।

डेनिस और पेट्रीशिया दोनों ने इस पर प्रसन्नता व्यक्त की थी कि मैं मनमथ आ रहा हूँ। ब्रिस्टल से वहाँ पहुँचने का सरल मार्ग बताया था। 28 को मेरी प्रतीक्षा करेंगे।

तेजी को पत्र लिखा; नई कविता भेजी।

आज हम वह जगह देखने गए जहाँ राजा राममोहन राय रहते थे, जहाँ उनकी मृत्यु हुई, जहाँ उन्हें पहले दफ़नाया गया था।

यह जगह स्टेपिलटन पहाड़ी पर है। राजा राममोहन राय यहीं मिस कासिल के साथ रहते थे। मिस कासिल से उनके सम्बन्ध के विषय में दत्त को कुछ विशेष नहीं मालूम था। उसी ने उनके पूरे क़द का चित्र पेण्टर ब्रिग से बनवाया था।

अब उस मकान में Infirmary है। पागलख़ाना कहना चाहिए। वहाँ उनके निवास की कोई यादगार हमें नहीं दिखाई दी। एक अधिकारी ने बताया कि कई भारतीय यह स्थान देखने आ चुके हैं। मिस कासिल और राजा राममोहन राय के काग़ज़-पत्तर शहर के किसी पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। सम्भव है दत्त कभी पता लगाएँ। एक पागल को अपनी ओर बढ़ते देख हम लोग वहाँ से चल दिए।

खाना खाकर सो गया।

शाम को मैं डेविड दत्त को मिलने गया। विज़िट रिटर्न करना यहाँ का शिष्टाचार तो है ही, मैं ब्रिस्टल से जाने के पूर्व उनसे मिलना भी चाहता था। डॉ. और मिसेज़ दत्त, उनके पिता-माता घर पर ही थे। डेविड अभी उन्हीं के साथ रहते हैं गो अंग्रेज़ी समाज में विवाह के बाद लड़के अपने माता-पिता के साथ नहीं रहते। शायद किसी भारतीय संस्कार से डॉ. दत्त उन्हें अपने पास रक्खे हैं और वे रह भी रहे हैं। माता-पिता एक मिनट मुझसे हलो-हलो करके चले गए। शायद समझा हो कि उनकी उपस्थिति में हमारी खुलकर बातें न हो सकेंगी। डेविड की पत्नी उरसुला ने कॉफ़ी बनाकर पिलाई। डेविड ने दर्शन की एक पुस्तिका मुझे दी। मैंने कहा, केम्ब्रिज जाकर पढ़ूँगा। डेविड ने कहा, पुस्तक मैं अपने पास रख सकता हूँ, लौटाने की ज़रूरत नहीं। बातचीत के दौरान डेविड के जीवन की एक दुर्घटना का मुझे पता लगा। आदमी मौत के द्वार से लौट आए तो बहुत बदल जाता है। डेविड मृत्यु के द्वार से ही लौटे थे। उसके बाद की घबराहट में ही उन्होंने शादी कर ली। उरसुला से उनका प्रेम पहले से था। यह एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। दुर्घटना के प्रभाव से डेविड का मस्तिष्क अब भी मुक्त नहीं, दूसरे वह फ़िलासफ़र-टाइप आदमी। उरसुला बड़ी प्रसन्न-चित्त है, वह डेविड को उत्साहित किये रहती है, उन्हें बहुत गम्भीर नहीं होने देती, पर जीवन की कुछ गहराइयाँ ऐसी होती हैं जिनसे निकालने को समझदार पत्नी का प्यार भी बहुत सहायक नहीं हो सकता। उरसुला मुझे बहुत अंशों में तेजी की याद दिलाती हैं। तेजी भी विवाह के प्रारम्भिक दिनों में ऐसी ही थीं। मेरी गम्भीरता incurable थी। शायद वे धीरे-धीरे उससे

हार मानती गईं। शायद यह देखकर कि मैं गम्भीर रहकर ही सन्तुष्ट हूँ, अपने elements में हूँ, उन्होंने मुझे गम्भीर रहने के लिए छोड़ दिया है। अपने रुचि के क्षेत्रों में अपने को पाने में मैं कभी उनके आड़े नहीं आया। डेविड की melancholia और उरसुला की cheerfulness मुझे बराबर अपनी और तेजी की याद दिलाती रही। योरोप में जहाँ पति-पत्नी के विकसित व्यक्तित्व के कारण आपसी समझदारी—जो love और infatuation से अलग की चीज़ है—नहीं होती, स्वभाव का ऐसा अन्तर तलाक़ का कारण बन सकता है। आशा है डेविड और उरसुला के बीच ऐसी स्थिति न आएगी। उन दोनों में कहीं गहरे कुछ भारतीय संस्कार काम कर रहे हैं। पर डेविड की melancholia शायद अधिक infectious है। मैं उनके पास से कुछ भारी मन लेकर लौटा।

डॉ. और मिसेज़ मोहन, कमला और दत्त इन्टरनेशनल क्लब जाने के लिए तयार थे। मुझे भी ले गए। आज वहाँ नाच था। वहाँ से मैं कुछ और उदास होकर लौटा। बाहर प्रसन्नता का अभिनय करना पड़े तो भीतर-भीतर मन अधिकाधिक डूबता जाता है।

खाना खाकर अपने कमरे में चला गया। रात को एक कविता लिखी,

'ध्वनि साथ लिए जाता हूँ, प्रतिध्वनि छोड़े जाता हूँ।'

गुरुवार, 28 अगस्त, '52

जागा था ब्रिस्टल में।

सोने जा रहा हूँ मनमथ में।

यात्रा की मंज़िलें पार हो रही हैं।

यहाँ से फिर केम्ब्रिज लौट जाना है।

'जैसे उड़ि जहाज़ को पंछी पुनि जहाज़ को आवै।'

केम्ब्रिज के जहाज़ पर तो अभी शोध का एक महासागर पार करना है। बीच-बीच में सृजन के द्वीपों पर ठहरते।

पता नहीं मेरा जहाज़ मंज़िले-मक़सूद पर पहुँचता भी है कि नहीं। सागर में छिपी चट्टानों और आसमान में उठे तूफ़ानों से कब टक्कर लेनी पड़े, कुछ पता नहीं।

सुबह उठकर सामान वग़ैरह ठीक किया।

दत्त, और मोहन-दम्पती भी, चाहते थे कि मैं कुछ दिन और ब्रिस्टल में रुकूँ। डेनिस को तार दे दिया था। रुक नहीं सकता था। हिन्दुस्तानी शिष्टाचार अच्छा लगा।

सबको बहुत-बहुत धन्यवाद देकर विदा हुआ।

दत्त मुझे बस तक छोड़ने आए।

मैं Aust तक बस में आया।

वहाँ से स्टीमर पर सेवर्न पार किया। खूब चौड़ा पाट।

इस पार बीचली पर उतरा।

डेनिस ने लिखा था, मुझे वे यहीं मिल जाएँगे और फिर कार से मुझे मनमथ ले जाएँगे।

डेनिस कुछ देर से पहुँचे। पेट्रीशिया की तबियत कुछ नासाज़ थी, इससे अकेले आए थे।

रास्ते के दोनों ओर हरियाली, सघन वनानी, छोटी-मोटी पहाड़ियाँ, पुराने कासिल, गिरजे—मुझे नहीं पता था कि वेल्स इतना सुन्दर है!

हम टिनटर्न एबी में कुछ देर रुके। वड्‌र्सवर्थ की इस शीर्षक की प्रसिद्ध रचना कितनी बार पढ़-पढ़ा चुका था। एबी तो अब खँडहर मात्र रह गया है। वड्‌र्सवर्थ के रहने की जगह देखी। अपने साहित्य और साहित्यकारों से सम्बद्ध जगहों को अंग्रेज़ों ने कितना मान-दुलार दिया है। हमारा ध्यान तो बस तीर्थों पर जमा रहा, पर उन्हें भी हमने कितना गन्दा होने के लिए छोड़ दिया है! यहाँ का वातावरण कितना विशुद्ध लगा।

एक जगह बैठकर हमने खाना खाया। डेनिस कुछ फल, बिस्किट, सैण्डविचेज़ और थर्मस में कॉफ़ी लाए थे।

फिर Wye नदी के किनारे-किनारे ड्राइव करते हुए मनमथ पहुँचे। रास्ते के मनोरम प्राकृतिक दृश्य अभी तक आँखों में छाए हैं। सोऊँगा तो शायद उन्हीं का सपना देखूँगा।

घर पहुँचे तो पेट्रीशिया ने हमारा स्वागत किया। कुछ अस्वस्थ थी, पर प्रसन्न-मुख। मुझे ऊपर का कमरा दिया है। खिड़की से मानो नदी—शायद इसी पर मनमथ नगर का नाम पड़ा—और Deans' Forest दिखाई पड़ते हैं। कहते हैं नेल्सन अपने जहाज़ों के लिए इसी जंगल के दरख़्तों को पसन्द करने आता था। उसकी याद में जंगल में एक चबूतरा बना है जिसे Nelson's seat कहते हैं—नेल्सन प्राय: वहीं बैठकर दरख़्तों को गिरवाता था। डेनिस के घर के ठीक सामने नेल्सन म्यूज़ियम है। मनमथ हेनरी फ़िफ़्थ की जन्म-भूमि है। 'रोल्स', जिसकी चलाई 'रोल्स रोयस' कारें प्रसिद्ध हैं, यहीं पैदा हुआ था। बाज़ार में उसकी मूर्ति लगी है। शाम को चाय पर बैठे तो डेनिस ने मनमथ का पूरा इतिहास बताया। डेनिस के घर की स्थिति मुझे बड़ी अच्छी लगी। सामना शहर से मिला, पिछवाड़ा प्रकृति से। शायद डेनिस का अपना घर है—किराए का नहीं—घर में एक सेलर है—तहख़ाने की तरह—जिसमें पुराने ज़माने में शराब रक्खी जाती थी। घर बहुत पुराना है, निचला हिस्सा पत्थर का बना; ऊपर के हिस्से नए हैं। सेलर की दीवारों से कुदरती तौर पर पानी रिसता है जो सेलर को खूब ठण्डा रखता है—प्राकृतिक फ्रिजिडेयर।

शाम डेनिस की लाइब्रेरी देखने में बीती। हिन्दुस्तान के विषय में लिखने के पूर्व उसने हिन्दुस्तान पर कितनी किताबें पढ़ीं। खुद जाकर वहाँ कितने समय रह भी आया। यहाँ लोग जो काम करते हैं उसे परिपूर्णता से।

खाने पर पेट्रीशिया ने कुछ हिन्दुस्तानी चीज़ें बनाकर रक्खीं। कहाँ सीखा होगा इसने बनाना।

शुक्रवार, 29 अगस्त, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ। बाग़ में बैठकर मैंने समाचार-पत्र पढ़ा। इतने में डेनिस ऊपर से तैयार होकर आ गए। पेट्रीशिया पहले से ही तैयार होकर किचेन में पहुँच गई थी—उसने सबके लिए ब्रेकफ़ास्ट तैयार कर लिया था। सबने साथ बैठकर नाश्ता लिया।

डेनिस माफ़ी माँगकर अपनी स्टडी में चले गए। उन्हें कुछ जरूरी काम ख़त्म करना था। मेरी वजह से कल उनके काम का दिन खराब हुआ था। यहाँ तो छुट्टी लोग इतवार को ही जानते हैं। प्राइवेट ढंग से काम करनेवाले भी ब्रेकफ़ास्ट के बाद काम पर बैठ जाते हैं और लंच के पहले नहीं उठते। हल्का लंच ले, एकाध सिगरेट पी, फिर काम में जुट जाते हैं और शाम से पहले गर्दन नहीं उठाते।

पेट्रीशिया को घर-गिरिस्ती के लिए कुछ शापिंग करनी थी। मैं भी उसके साथ गया। कुछ स्टैम्प लिये, कुछ तस्वीरी कार्ड घर भेजने के लिए। तस्वीरी कार्डों का यहाँ खूब प्रचलन है। हर जगह के ख़ास होते हैं और वहीं मिलते हैं। टूरिस्ट या सैलानी लोग किसी जगह या किसी प्रसिद्ध इमारत या संस्था पर पहुँचते ही ऐसे कार्ड खरीदते और अपने प्रियजनों को भेजते हैं। प्रायः जहाँ कार्ड मिलते हैं वहीं स्टैम्प, वहीं पोस्ट करने का डिब्बा। कार्ड लीजिए, स्टैम्प लगाइए, पता लिखिए, पोस्ट कीजिए; अब पोस्ट आफ़िस अपना काम करेगा। सुविधा को यहाँ सूक्ष्मता से समझा गया है और उसे सुलभ कर दिया गया है। इससे समय बचता है, परेशानी बचती है, काम आसानी से होता है। यह व्यवस्था विज्ञान की देन है। विज्ञान है हर काम को करने का एक सही तरीक़ा मालूम करना। 'सही ढंग से काम, सबके लिए आराम' यह मोटो हिन्दुस्तान में बहुत-सी जगहों पर लगाने की ज़रूरत है।

लौटकर मनमथ पर कुछ किताबें देखीं। डेनिस ने ख़ास मेरे लिए निकालकर रख दी थीं। साधारण पाठक से लेकर गम्भीर पाठकों तक के लिए हर नगर-क़स्बे के विषय में पुस्तकें तैयार की गई हैं।

लंच के लिए तै हुआ, हम लोग कहीं बाहर जाकर करेंगे। डेनिस काम से उठे तो अपनी मोटर लाए और उसमें सामान रखकर हम लोग एक पहाड़ी पर गए। मनमथ नगर वहाँ से ज़मीन पर फैले चित्र की तरह दिखाई पड़ रहा था। घास पर हमने दरी बिछाई और वहीं बैठकर खाना खाया। धूप अच्छी निकली थी। कुछ देर हमने वहीं लेटकर आराम किया। फिर जंगल में ब्लैकबेरी चुनने गए। पेट्रीशिया ने एक और प्रकार की बेर इकट्ठी की। वह इनका जैम बनाएगी। डेनिस को पसन्द है।

लौटते हुए हम स्टेशन होते आए; ट्रेन और बस दोनों का पता किया। मैं इनवार को वापस जाना चाहता था। डेनिस और पेट्रीशिया मुझे एक सप्ताह रोकना चाहते थे। मैंने सोमवार को यहाँ से जाने की बात उनसे मनवा ली। घर का समाचार मिले बहुत दिन हो गए हैं। जल्दी केम्ब्रिज जाकर पत्रों को देखना चाहता हूँ।

शाम को मैं डेनिस से बातें करता रहा। पेट्रीशिया खाना बनाने में लगी।

डेनिस का आग्रह है मैं अपनी कुछ कविताओं का अनुवाद अंग्रेज़ी में करूँ। मैं अपनी कविताएँ सुनाते समय जो भावार्थ दे देता हूँ, उससे वह बहुत प्रभावित है।

पेट्रीशिया शार्टहैण्ड जानती है।

मैंने कहा मैं तो पेट्रीशिया को समझाने के लिए कुछ rough translation देने का प्रयत्न करता हूँ, जो मेरी ज़बान पर आ जाता है; वह लिखने लगेगी तो मैं conscious हो जाऊँगा और उसकी spontaniety जाती रहेगी।

फिर भी खाने के बाद मैंने दो कविताएँ सुनाते समय जो अंग्रेज़ी में कहा उसे पेट्रीशिया ने शार्टहैण्ड में लिख लिया—दो गीतों के विषय में—'कहते हैं तारे गाते हैं' और 'तुम्हारा लौह चक्र आया'।

शनिवार, 30 अगस्त, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर पेट्रीशिया ने अपने शार्टहैण्ड नोट्स के आधार पर मेरे गीतों का अनुवाद सुनाया। मुझे बहुत सन्तोष तो नहीं हो सका, पर पेट्रीशिया का मन मुझे रखना था। उसने कहा कि अगर मैं उनका literal translation भी उसको दे दूँ

तो वह अपने version को और सुधारेगी।

मैंने दोनों को अपना नया गीत सुनाया—'याद तुम्हारी लेकर सोया...' भावार्थ रूप में जो कुछ मैंने अंग्रेज़ी में कहा, पेट्रीशिया ने उसे शार्टहैण्ड में लिख लिया। अच्छा अनुवाद किया तो ओदेत को भेज दूँगा।

मैं डेनिस के साथ अपनी कविताओं पर बातचीत करता रहा। पेट्रीशिया लंच बनाने में लगी।

आज हम लोगों ने नेल्सन-म्यूज़ियम देखने का प्रोग्राम बनाया। पेटीशिया कई बार देख चुकी थी, वह न गई, घर पर उसे कुछ काम था।

डेनिस और मैंने म्यूज़ियम में दो घण्टे से ऊपर बिताए। एक-एक चीज़ देखी। नेल्सन सम्बन्धी वस्तुओं का यह सबसे बड़ा म्यूज़ियम है। नेल्सन जब बच्चे थे, उस समय की उनकी एक जैकेट भी रक्खी है। और भी कितनी ही चीज़ें हैं। वीर-पूजा करना अंग्रेज़ जानते हैं। गांधी-स्मारक-भवन की चर्चा कभी सुनी थी; अभी उसने कोई रूप नहीं लिया। अभी तो कितनी ही वस्तुएँ गांधी से सम्बद्ध मिल सकती थीं। समय बीतने पर ये चीज़ें लुप्त हो जाएँगी। और भी कितने महापुरुषों की निशानियाँ हमें सँजोनी हैं।

म्यूज़ियम देखकर हम मनमथ का क़िला देखने गए।

गढ़ क्या, गढ़िया। हमारे इलाहाबाद का ही क़िला इससे बड़ा और मज़बूत होगा। विज्ञान का बल मिलने के पूर्व अंग्रेज़ छोटी क़ौम होगी। कुछ सदियों पहले आक्रमण से सुरक्षा के लिए किए गए इसके उपाय कितने बचकाने लगते हैं! विज्ञान से विराट बनकर इंग्लैण्ड ने इतना बड़ा डग भरा कि हम उसके नीचे पिगमी बन गए। विज्ञान की दौड़ में जितनी जल्दी हो सके हमें योरोप के बराबर होने की कोशिश करनी चाहिए।

लौटते समय हमने 'मैरियोनेट थियेटर' का विज्ञापन देखा—शाम को कठपुतली का खेल होने को था। एक बार सिनेमा में पश्चिमी ढंग की कठपुतली का तमाशा देखा था। जी में आया साक्षात देखूँ। डेनिस ने टिकट ले लिया। अपने दो-एक और दोस्तों को निमन्त्रित कर आए। शाम को खाना खाकर हम कठपुतली का तमाशा देखने गए। हमारे यहाँ भी कठपुतली का तमाशा होता है, पर उसमें बड़ा पुरानापन है। चीज़ों को बदलना, सुधारना, विकसित करना हमने सीखा ही नहीं—वही दरबारी खेल और उसी तरीक़े से शायद सैकड़ों बरसों से चला आया है। यहाँ कितनी उन्नति इस कला में हुई है। सुन्दर, छोटा-सा स्टेज है। पर्दा खिसकता है—सीन, सीनरी, बिजली की रोशनी; संगीत साथ में—अपने यहाँ खाट से बना स्टेज और ढोलक की ढप-ढप!—कथोपकथन भी कितना रोचक, आधुनिक, हास-व्यंग्यपूर्ण; भाषा कितनी चुस्त-दुरुस्त; कठपुतलियाँ तरह-तरह की; वेश-भूषा मौलिक। 8 से 10 बजे तक खेल हुआ। खेल की समाप्ति पर कलाकार हमें स्टेज के पीछे ले गया और कठपुतली चलाने की विधि आदि की व्याख्या की। केवल उँगलियों से वह कठपुतलियाँ नहीं चलाता। एक प्रकार का चौखटा-सा बनाया गया है जिसमें कई तागे एक साथ बाँधे जा सकते हैं। किसी-किसी कठपुतली में चौबीस डोरे तक लगे थे। अंग्रेज़ी गाँव का एक दृश्य बहुत अच्छा था। मैं सोचता हूँ कि रामायण और महाभारत से दृश्य लेकर कठपुतलीवाले दिखलाना शुरू करें तो यह सिर्फ़ बच्चों का मनोरंजन न रह जाए, इसमें बड़े लोग भी रुचि लेने लगें। इस लोक-विनोद में एक बड़ी कला बनने की सम्भावना छिपी है। सफल कठपुतलीवाले में हाथ की कारीगरी के साथ ही ज़बान की जादूगरी भी

चाहिए—आवाज़ बदलकर बोलने और भाषा का प्रभावपूर्ण प्रयोग करने की क्षमता। भाषा देने का काम और लोग भी कर सकते हैं। कठपुतली के लिए कथोपकथन लिखने में एक ख़ास बात का ध्यान रखना होगा। बातचीत ऐसी हो जिसमें शरीर के हिलने-डुलने की काफ़ी ज़रूरत हो। खड़ी पुतली तो मुर्दा मालूम होती है। ऐसा कथोपकथन लिखना आसान न होगा। अपने देश में इस कला का विकास किया जाना चाहिए। अगर किसी कठपुतलीवाले को इंग्लैण्ड भेजा जा सकता तो वह यहाँ से बहुत-सी नई बातें सीखकर जाता। नाटक के समान यह कला भी कई तरह के कलाकारों का सहयोग माँगती है। विज्ञान की सहायता इसे निश्चय निखारेगी, जैसे उसने नाट्य-कला को निखारा है।

रविवार, 31 अगस्त, '52

आज सब लोग देर से सोकर उठे।

ब्रेकफ़ास्ट के बाद डेनिस कुछ काम करने चले गए।

मैंने तेजी को पत्र लिखा। ब्रिस्टल में लिखी आख़िरी कविता की साफ़ प्रति साथ रक्खी। चिट्ठी पोस्ट करने जाने लगा तो पेट्रीशिया मेरे साथ हो ली। लंच तैयार कर चुकी थी। रास्ते के एक पार्क में पेट्रीशिया की परिचित कुछ महिलाएँ मिल गईं—ज़्यादातर बड़ी उम्र की। बुनाई करती पार्क में बैठी थीं। पेट्रीशिया ने मेरा परिचय दिया—उनका भी। कइयों के परिवार के लोग भारत में सेना या शासन में काम कर चुके थे और भारत के सम्बन्ध में उनकी बताई बातों को उन्होंने स्मृति में जुगा रक्खा था, वे शायद जब-तब उनकी जुगाली करती होंगी। एक के एक प्रश्न ने मुझे चकित कर दिया···and who is now our viceroy in India ?···और जो मैंने बताया उससे वे चकित रह गईं···and so we have lost our Empire in India ! मेरा यह impression है कि राजनैतिक चेतना इंग्लैण्ड के एक बहुत छोटे वर्ग में है। अधिकतर लोग राजनीति में रुचि नहीं लेते। उनका सबसे लोकप्रिय पत्र 'मिरर' है जिसमें चोरी, डकैती, हत्या आदि सनसनीखेज़ बातों के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता—राजनैतिक समाचार तो बिलकुल नहीं रहते। ऐसे पत्रों को पढ़नेवाले अगर हिन्दुस्तान के आज़ाद हो जाने के पाँच बरस बाद भी इस तथ्य से अनभिज्ञ हों तो क्या ताज्जुब। पेट्रीशिया उनकी नादानी पर मुझसे माफ़ी माँगती रही।

लौटकर हम लोगों ने लंच लिया।

डेनिस मुझे लम्बी 'वाक' पर ले जाना चाहते थे। पेट्रीशिया साथ चलने का साहस न सँजो सकी।

पहले तो उन्होंने जंगल में ले जाकर 'नेल्सन्स सीट' दिखाई। बताया, हमारे जंगलों में ख़ूँख़्वार जानवर नहीं होते, ज़्यादातर ख़रगोश, अधिक से अधिक लोमड़ियाँ।—मानो के किनारे-किनारे जाते हुए हम लोग वहाँ तक गए जहाँ वाई नदी से उसका संगम होता है। वहाँ हम कुछ देर बैठे। प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ शान्ति। वास्तव में यहाँ प्रकृति कानों में कुछ कहती है। यहाँ की कविता में प्रकृति-वर्णन ने रहस्यवादिता की सीमा छू ली है तो कोई आश्चर्य नहीं। मैंने डेनिस से कहा कि अगर मुझमें कहीं लेखक बनने की कामना न होती तो मैं यहीं आकर बस जाता। मैंने अपने जीवन में इतनी अशान्ति जानी है कि शान्ति की कामना मुझमें बड़ी प्रबल है; पर लेखक अपनी भाषा के क्षेत्र को छोड़कर कहीं और नहीं जा सकता। मुझे कोई ऐसा बड़ा लेखक नहीं मालूम जिसने अपने भाषा-

क्षेत्र से दूर बैठकर कोई बड़ी चीज़ लिखी हो।

हम लोग क़रीब साढ़े छह के लौटे।

पेट्रीशिया कुछ चिन्तित हो रही थी—पति उपन्यासकार, मेहमान कवि, पता नहीं दोनों अनुभवों को सँजोने में कहाँ रम गए हों। मैंने कहा, मैं कवि के साथ रिसर्च-स्कालर भी हूँ, भावुक हूँ, पर अपना होशोहवास भी जगाए रखता हूँ। हमारे कहीं खो जाने की सम्भावना नहीं थी।

खाने के बाद न जाने किस सन्दर्भ में जे. कृष्णमूर्ति पर बातें चल पड़ीं। डेनिस और पेट्रीशिया, दोनों उनसे मिल चुके हैं, उनके बड़े भक्त हैं। कृष्णमूर्ति का कहना है, मनुष्य अपने को सदा व्यक्ति ही समझे और अपना कोई भी निर्णय अपने को किसी धर्म, सम्प्रदाय, गिरोह, दल का समझकर न ले। मैंने कहा मैंने कृष्णमूर्ति का साहित्य नहीं पढ़ा, विद्यार्थी जीवन में उनकी एक छोटी-सी किताब पढ़ी थी, एक बार उन्हें देखा था, एक बार उनका व्याख्यान सुना था। थियोसोफ़िस्ट उन्हें अवतारी पुरुष की तरह प्रसिद्ध करना चाहते थे; प्रतिभावान मुझे वे लगे थे। अब उनके विचार मुझे existentialist philosophy से मिलते-जुलते लगते हैं। जिस युग में गिरोह व्यक्ति के ऊपर हावी हो गया हो उसमें इस प्रकार की प्रतिक्रिया समझी जा सकती है। गिरोह से आतंकित व्यक्ति किन्हीं निजी मामलों में गिरोह के विरुद्ध खड़ा भी हो सकता है—कभी मैं भी खड़ा हुआ हूँ—पर समय क्रम में मुझे यह अनुभूति हुई है कि कोई भी मामला एक दम निजी नहीं हो सकता—जहाँ हो सकता है वहाँ समाज का आतंक कारगर नहीं। और उसके विरुद्ध क्रान्ति करने के कोई अर्थ नहीं होते। व्यक्ति केवल व्यक्ति ही है, ऐसा समझना भी किसी भूल अथवा असन्तुलित दृष्टिकोण का परिणाम है। व्यक्ति ने समाज को किसी आतंक से स्वीकार किया है, इसे मैं नहीं मान सकता। अधिक सत्य शायद यह है कि व्यक्ति ने किसी आतंक से मुक्त होने के लिए समाज को स्वीकारा है। सर्वथा एकाकी होने से बड़ा आतंक क्या होगा?

सुबह मुझे प्रस्थान करना था, इससे बातचीत जल्द ख़त्म की गई। परिणाम क्या निकलना था। दृष्टिकोण एक-दूसरे का जानना ही बहुत है।

सोमवार, 1 सितम्बर, '52

एक तरह से 'घर' लौट आया हूँ।

पर घर लौटने का सुख?

घर, दर-दीवार नहीं, घर-परिवार के लोग हैं।

और इस घर की तो दर-दीवारें भी अपरिचित हैं।

'कासिल ब्रे' में यह पहली रात होगी।

सुबह उठकर तैयार हुआ। पेट्रीशिया ने बहुत पहले उठकर नाश्ता तैयार कर दिया था। डेनिस मोटर लाए। 9 बजे हम लोग स्टेशन पहुँच गए।

मैंने पेट्रीशिया और डेनिस को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। वेल्स के लोग हैं—केल्टिक—बहुत भावुक—स्वभाव में अंग्रेज़ों से कितने भिन्न! अंग्रेज को कितना ही निचोड़ो उसमें से रस नहीं निकलता—वह अपने को निचोड़ने भी कब देता है?—केल्ट को छुओ कि वह द्रवित हो जाता है।

पेट्रीशिया और डेनिस ने मुझे जो भाव-भीनी विदाई दी उसने मेरे मर्म को कहीं छू दिया।

गाड़ी दो जगह—पोर्ट पूल और न्यू पोर्ट पर—बदलकर लन्दन-पैडिंगटन पहुँचा। वहाँ से लिवरपूल स्ट्रीट स्टेशन आया। पेट्रीशिया ने पैकलंच दे दिया था—सैण्डविचेज़, पेस्ट्री वग़ैरह—स्टेशन से कॉफ़ी ले ली। 2.25 पर केम्ब्रिज के लिए गाड़ी मिल गई। 4 बजे केम्ब्रिज पहुँचा। टैक्सी से 'कासिल ब्रे' आया।

सन्दूक़ कमरे में डालकर पहले कालेज गया। कई चिट्ठियाँ मिलीं। वहीं खोलकर पढ़ीं। घर का समाचार ही घर आने का-सा सुख !

फिर जीज़स लेन गया। वहाँ भी दो-तीन चिट्ठियाँ पड़ी थीं।

फिर दत्त के यहाँ गया। ब्रिस्टल से लौट आए थे।

मनमथ की यात्रा का हाल उनसे बताया।

खाना 'ताज महल' होटल में खाया। लैण्ड लेडी को मैंने आने की सूचना नहीं दी थी।

कमरा तो ठीक है। फ़र्नीचर से तबियत बिदक गई है। बाबा आदम के ज़माने का भारी-भारी डाल दिया गया है। कल लैण्ड लेडी से बात करूँगा।

घर पर सब कुशल मंगल।

छात्रवृत्ति के सम्बन्ध में कोई पत्र नहीं।

दुविधा बुरी है।

यही निश्चित हो जाए कि नहीं मिलनी है।

भारत में काम कितनी सुस्ती से होता है !

मंगलवार, 2 सितम्बर, '52

रात को ठीक नींद नहीं आई।

एक तो नई जगह।

दूसरे यात्रा की थकावट और यादें।

तीसरे ढीला बिस्तर।

स्प्रिंग इतनी ढीली है कि लगा कमर नीचे फ़र्श को छू रही है।

तैयार होकर नीचे ब्रेकफ़ास्ट करने गया। ब्रेकफ़ास्ट यहाँ बहुत अच्छा मिलता है। अख़बार भी कई आते हैं। सेन्ट्रल लाइब्रेरी जाने की झंझट बची।

लैण्ड लेडी से बात हुई। फ़र्नीचर बदलवा देगी। बहुत accomodating मालूम होती है। बिस्तर डिग में दूसरा नहीं। 'भूमि शयन' ही शायद यहाँ भी बदा है; मुझे तो मोटा गद्दा नीचे हो तो बुरा नहीं लगता। मैंने लैण्ड लेडी से कहा कि कोई हल्की सोफ़ा-कुर्सी न हो तो इन्हें हटवा ले, मुझे ज़रूरत नहीं। कमरे में जगह ज़्यादा हो जाएगी। मेरे पास बैठने कौन आता है।

मिलन के कमरे से सामान उठवाकर अपने कमरे में लाया।

बक्सों से सामान निकालकर आलमारियों में लगाने में आज सारा दिन लग गया।

शाम को चिट्ठियों के जवाब लिखे।

खाने का इन्तज़ाम आज से डिग में ही हो गया है।

खाकर घूमने गया।

लौटकर गर्म पानी के टब में स्नान किया।

यहाँ गर्म पानी ख़ूब आता है और कोई एक्स्ट्रा चार्ज उसके लिए नहीं किया जाता।

अपनी किताबें, कपड़े, चीज़ें आलमारियों में, मेज़ पर देखकर कमरे के अपने होने का बोध होता है।

कल यहाँ बिलकुल अजनबी-सा लगा था।

बुधवार, 3 सितम्बर, '52

रात अच्छी नहीं बीती ।

आधा सोया, आधा जागा-सा क़रीब पूरी रात रहा ।

कुछ आवाज़, कुछ आहट-सी आती रही जैसे कमरे में और कोई है, पर जिसकी जाँच-पड़ताल करने को उठा न गया ।

कुछ मानुस-गन्ध भी कमरे में महसूस होती रही ।

ऐसा ही सब पहली रात को भी अनुभव हुआ था, पर मैंने सोचा था नई जगह है, यात्रा की थकान है, बिस्तर बहुत ढीला है जिसके कारण मैं एक गठरी-सा बना हुआ हूँ ।

रात मैंने बिस्तर फ़र्श पर लगाया था । आवाज़-आहट का तो कुछ explanation है । ऊपर किसी के भी चलने-फिरने का vibration लकड़ी के फ़र्श पर शायद होता होगा । पर किसी presence का भान, किसी प्रकार की गन्ध का आभास—पहेली ! हो सकता है इसमें कोई ऐबनार्मल आदमी रहा हो, उसने इसमें कुछ ऐबनार्मल किया हो । कुछ जगहें भी बसनेवालों की स्मृतियाँ, या किसी असाधारण घटना की याद सँजो रखती हैं ! संकेत बहुतों को मिले हैं । मैंने सन्देह को जमने न दिया । सुबह सब कुछ नार्मल था । कासिल बहुत पुराना है, पर बहुत दिनों से स्टूडेन्ट्स डिग रहा है ।

ब्रेकफ़ास्ट के बाद कालेज गया, 7 जीज़स लेन भी, देखने, शायद कोई चिट्ठी हो ।

लौटते समय बाल कटाए—डिग आकर स्नान किया । मन हल्का लगा ।

दरवाज़ा-खिड़की बन्द करके आज दिन भर मैंने सस्वर रामायण पढ़ी । अपने को मैंने कनविंस कर लिया है कि मानस की ध्वनियों के vibrations से पिछले कुप्रभावों का निराकरण हो गया है । अगर कोई जगह इतनी sensitive हो कि किसी बुरे प्रभाव को ग्रहण कर ले तो अच्छे प्रभाव को भी ग्रहण कर सकती है । नियम किया है, यहाँ रोज़ सस्वर मानस पाठ करूँगा ।

खाना खाने के बाद खूब दूर घूमने निकल गया कि खूब थककर लौटूँ और रात को पक्की नींद सोऊँ ।

लौटते ही एक आशंका ने घेर लिया ।

बिजली आफ़ करते डर-सा लगा ।

निश्चय किया बैठकर कुछ काम करूँगा, जब तक कि नींद से गिरने ही न लगूँ, बत्ती जलती रहे तो क्या, उजाले में सोना मुश्किल तो नहीं । कविता लिखने बैठ गया ।

बारह बजने को हैं । आधी रात !···

तुलसीदास पर एक कविता समाप्त हुई है ।

कविता मुझे पसन्द आई है ।

'यहि महुँ रघुपति नाम उदारा ।'

कुछ न हो तुलसी का गुनगान तो है ।

'बारम्बार प्रणाम तुम्हें है रामचरित के अमित पुजारी'

बाबा यह कविता सुनते तो निश्चय अन्तिम पद पर मुसकरा देते । कामी को नारि कितनी प्यारी होती है, इसे बाबा ऐसे विरक्त क्या जानते । यह तो मुझ जैसे कामियों का क्षेत्र है ।—'**मो सम कौन कुटिल, खल, कामी ।**'

गुरुवार, 4 सितम्बर, '52

रात को जिसे कहते हैं slept like a log.

मानस ने प्रभाव दिखाया।

सुबह तैयार होकर तेजी को चिट्ठी लिखी। तुलसीदास पर लिखी कविता की एक प्रति भेजी। 'दोस्तों के सदमे' की एक कापी दत्त को देने के लिए बनाई। उनका बड़ा आग्रह था।

बैंक जाकर पूछना चाहता था कि भारत से रुपये कैसे मँगाए जाएँ; रास्ते में ध्यान आया कि आज तो बृहस्पत है और सब दूकानें, दफ़्तर, बैंक वग़ैरह 1 बजे बन्द हो गए होंगे।

लंच के बाद कुछ देर टाइपिंग का अभ्यास किया। बहुत दिन से छूटा हुआ था। ऐसा लगता है कि सब भूल गया हूँ। Keys को देखना पड़ता है। क़रीब 15 दिन से टाइपराइटर छुआ ही नहीं गया था। आ चुका ऐसे!

तीन घण्टे ईट्स की कविताएँ दुहराईं, इस दृष्टि से कि देखूँ स्वीडेनबार्ग सम्पर्क के संकेत कहाँ-कहाँ हैं। पूर्ववर्ती ईट्स में कहीं नहीं, परवर्ती में कहीं-कहीं; स्वीडेनबार्ग के पास ईट्स प्राय: अपने दर्शन का समर्थन खोजने गए। उनकी कुछ चित्रात्मक (spectacular) स्थापनाओं का प्रयोग उन्होंने कविता में भी किया।

शाम को सिंह और मिलन आ गए। कुछ देर कमरे में बैठे रहे। मैंने अपनी दो रातों का अनुभव उन्हें बताया। सिंह ने वहम कहकर टाल दिया। मिलन ने बताया कि एक और लड़के को इस कमरे में disturbed sleep आती थी और उसने कमरा बदला। मैंने कहा, मैं एक दूसरा प्रयोग करने जा रहा हूँ; जब वह असफल हो जाएगा, तभी कमरा बदलने की बात सोचूँगा।

खाना खाने के बाद वे लोग सिनेमा देखने गए, मुझे भी ले जाना चाहते थे, पर मैं नहीं गया। मैडिंगली राइज़ से लौट आया।

'रात का अपराध' शीर्षक जो कविता राजन ने भेज दी थी उसे कापी पर उतारी। उसमें कुछ संशोधन भी किए। आने के पूर्व उसे जैसे-तैसे 'प्रतीक' को भेज आया था। वह अब ठीक हो गई है। 'रात आधी हो गई है।'

शुक्रवार, 5 सितम्बर, '52

खिड़कियाँ सब खोलकर सोया था। कुछ ठण्ड थी, पर नींद अच्छी आई।

सुबह तैयार होकर बाज़ार गया। कुछ सामान लाना था। लायड बैंक गया। मैनेजर से बात हुई। उसने कहा मुझे इम्पीरियल बैंक, इलाहाबाद, के एजेण्ट को लिखना चाहिए कि वे टामस कुक से जाँच करने के बाद इस टर्म का जितना बाक़ी रुपया मुझे मिलना हो लायड बैंक की मारफ़त मेरे लिए भेज दें। इस काम में जल्दी करनी चाहिए क्योंकि रिज़र्व बैंक आफ़ इण्डिया बहुत जाँच-पड़ताल के बाद ही रुपया आने की इजाज़त देता है।

बैंक से लौटकर मैंने कुछ चिट्ठियाँ लिखीं।

कुछ देर टाइप का अभ्यास किया। लंच किया।

कैम के तट पर बहुत दिनों से एक मेला लग रहा था—Trades' Fair। वह छह तारीख़ को बन्द होनेवाला था। सोचा, आज उसे देख आऊँ। पानी थोड़ा-थोड़ा बरस रहा था, पर मैं छाता लेकर चला ही गया।

गर्मी में जो मेला देखा था उससे यह बहुत भिन्न था। पूरा मेला बड़े भारी

शामियाने के अन्दर लगाया गया था। बाहर अच्छी बारिश हो रही थी पर भीतर पानी की एक बूंद नहीं आ रही थी। Display चीज़ों का बहुत अच्छा था। पश्चिमवाले चीज़ों का विज्ञापन करना और बेचना खूब जानते हैं। चीज़ें मुझे क्या लेनी थीं।

फूलों का प्रदर्शन एक ओर अलग था। मेरा अधिक समय यहीं बीता। मैंने इतने सुन्दर फूल एक साथ जीवन में नहीं देखे थे। इलाहाबाद का Flower Show इसके मुक़ाबले में कुछ भी नहीं। कई जगह फ़ौआरे चल रहे थे; बीच में पहाड़ी झरने का दृश्य बहुत कलापूर्ण था। डाहलिया, गुलाब, कारनेशन, ग्लेडिओलाई कितने तरह के हो सकते हैं, मैंने यहीं देखा। अपने गेंदे के फूल को, जिसकी हम कुछ क़द्र नहीं करते, यहाँ किन्हीं तरीक़ों से बहुत बड़ा किया गया है। इसे Merry-gold कहते हैं। उसका आकार गेंदे जैसा गोल किया है इन्होंने। रंग भी उसमें कितने पैदा किए हैं। प्रकृति को विज्ञान की सहायता से इन्होंने और अधिक सुन्दरता दी है।

शीशे के बक्सों में मछलियों की चर्चा के बिना यहाँ का दृश्य अधूरा ही रहेगा। कितने आकार-प्रकार की मछलियाँ थीं! कुछ बक्सों में परछाईं देनेवाले शीशे थे; मछलियाँ अपनी ही छाया देख-देख उनका पीछा कर रही थीं। बक्सों में नक़ली घास, पौधे, बालू, सीपी आदि रखकर प्राकृतिक स्वाभाविकता का आभास दिया गया था। किसी कृत्रिम तरीक़े से ट्यूब में हवा डाल पानी के अन्दर बुलबुले भी उठाए गए थे। यहीं मुझे पता लगा कि केम्ब्रिज में रंगीन मछली पालनेवालों का एक क्लब है।

इस जाति की शक्तियाँ कितनी दिशाओं में काम करती हैं, और हर ओर अधिक से अधिक दूर जाने का लक्ष्य सामने रखती हैं। एक ओर नए-नए तरह के हवाई जहाज़ बन रहे हैं, दूसरी ओर फूलों में नया-नया रंग लाने की कोशिश हो रही है। पश्चिम को नित नए की खोज : पूर्व को पुरानेपन का रोग।

लौटते समय दत्त के यहाँ होता आया।

खाना खाने के बाद कुछ देर टाइपिंग का अभ्यास किया।

बाहर अँधेरा छाया था; वर्षा भी धीरे-धीरे हो रही थी। अजीब-सी उदासी थी—दिन में मेले में घूमने के बाद कमरे का अकेलापन और घना हो गया था। एक पुरानी पंक्ति बार-बार मन में उठ रही थी, गतिशीलता में ठहराव जैसी,

'एक दीप बाले तुम बैठीं, एक दीप बाले मैं बैठा।'

मुझसे यह पंक्ति सुन 'नीरज' ने इस मुखड़े से पूरा गीत लिखकर मुझे भेजा था, पर वह मुझे पसन्द न आया था।

मैं अपना गीत, अलग, इसी मुखड़े से लिखना चाहता था, पर आज केवल इसे गुनगुनाता रह गया।

भाव से एकात्म होने पर लेखन असम्भव!

शनिवार, 6 सितम्बर, '52

सुबह तैयार होकर कालेज गया।

तेजी की 1 सितम्बर की लिखी चिट्ठी मिली। घर पर सब ठीक।

मिस्टर हेन के कमरे में गया। उनकी प्रा. से. मिसेज़ स्मिथ से बात हुई। काशन मनी के बारे में उन्होंने कहा, अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में आ जाना चाहिए, सम्भव हो तो और पहले।

मिस्टर एडिनबरा—मि. हेन के स्थानापन्न—उन्हीं के कमरे में बैठे थे।

मिसेज़ स्मिथ ने उनसे मेरा परिचय कराया। केम्ब्रिज के पुराने छात्र हैं, आजकल कनाडा में पढ़ाते हैं, अध्यापकों की अदला-बदली की योजना के अन्तर्गत एक वर्ष के लिए यहाँ आए हैं। अण्डरग्रेजुएट्स के ट्यूटोरियल क्लासेज़ लेंगे। 'Revels of Henry VIII' पर एक पुस्तक भी लिख रहे हैं। उनसे मेरी ईट्स पर काफ़ी बातें हुईं। उन्होंने एक अमरीकन की लिखी ईट्स पर एक पुस्तक की चर्चा की। हेन की लाइब्रेरी में है। मि. एडिनबरा ने कमरे में आकर पुस्तक पढ़ने की इजाज़त दे दी है। सोमवार से वहाँ जाकर उस पर काम करूँगा।

लौटकर लंच लिया।

कुछ देर ईट्स की कविताएँ पढ़ीं। एक पारायण और हो गया। स्वीडेनबार्ग से प्रभावित-प्रेरित स्थलों की सूची बना ली है। कुछ नोट्स भी लिये हैं। थीसिस में स्वीडेनबार्ग को स्थान देना होगा। इस दृष्टि से 'A Vision' और 'Per Amica' को फिर पढ़ना होगा।

खाना खाने के बाद घूमने गया।

दिन भर ईट्स के अध्ययन से थके दिमाग़ में कल वाली पंक्तियाँ गूँजती रहीं—'एक दीप बाले तुम बैठीं···'

कमरे आकर गीत लिखना चाहता था।

साढ़े आठ बजे दत्त और कमला आ गए। एक घण्टे बैठे रहे। दत्त के सामने केवल शोध की समस्या है—मेरे सामने शोध है, दिल-दिमाग़ कुरेदनेवाली कविताएँ हैं, परिवार की चिन्ता है और सबसे बड़ी फ़िक्र यहाँ ठहरने के ख़र्च की है।···

वे लोग चले गए तो मैं अपनी कविता लेकर बैठ गया।

कविता पूरी हुई।

चलो, कुछ घण्टों को बहुत-सी चिन्ताओं से ऊपर उठ गया।

इन तुकबन्दियों का इतना भी उपयोग क्या कम है।

फिर तेजी को लम्बा पत्र लिखा। ख़ास बात पैसे भेजवाने के सम्बन्ध में थी। यहाँ से तो मैं सिवा कुछ लोगों को लिखने के और कुछ नहीं कर सकता। वे शायद कुछ दौड़-धूप भी कर सकती हैं। बहुत दुखी हूँ कि उनकी परेशानी बढ़ा रहा हूँ, घर-बच्चों की फ़िकर उन पर पहले से है। वे अपनी बहुत-सी समस्याओं को मुझसे छिपाती भी होंगी, कुछ काम नहीं आ सकता। मैं कैसे छिपाऊँ। मेरी समस्या का मेरे पास कोई हल नहीं। केम्ब्रिज में कुछ कमाने का कोई काम नहीं मिल सकता। बी. बी. सी. से जो कमा सकता हूँ वह बहुत थोड़ा है। किसी से कहूँ-सुनूँ तो शायद कुछ प्रोग्राम और मिल जाया करें। कविता में अपने को भुला रखना तो पलायन है। कविताएँ देश में छपीं भी तो उनका क्या पारिश्रमिक मिलता है!—उसे भी वहीं रहना है—तेजी की ही उससे क्या सहायता होनी है। पूरे समय तक खर्चे के सम्बन्ध में आश्वस्त हुए बिना यहाँ एक दिन भी काम नहीं हो सकता। किसी वक्त यहाँ से डोरी-डण्डा समेट घर लौटने को मजबूर होना पड़ सकता है, इस मनोवृति से यहाँ ख़ाक काम होगा। 'भइ गति साँप छछूंदर केरी।'

रविवार, 7 सितम्बर, '52

'एक दीप बाले तुम बैठीं···' गीत मैंने बड़ी गिरावट में लिखा था, फिर भी वह morbid नहीं हुआ। Morbid तो 'नीरज' का गीत हो गया था—उसकी एक पंक्ति थी—'एक कफ़न डाले तुम बैठीं, एक कफ़न डाले में बैठा।' मेरा गीत स्वस्थ, संयत, आशामय है। दीप बुझाकर बैठते तब निराशा होती। दीप तो—अपनी

स्वल्प लौ में भी—आशा की निशानी है—अन्धकार में एक ज्योति जागती है और जानती है कि दूर-सुदूर सही, एक दूसरी ज्योति उसकी प्रतीक्षा में जग रही है। ज्योति-ज्योति की ओर बढ़ेगी,

'दो लौ मिलकर लपट नहीं,
अंगार नहीं, बिजली बनती है !'

बहुत देर से सोया था। बहुत देर को उठा।

इतवार को यहाँ 10 बजे तक नाश्ता मिल जाता है।

आज केवल कविता और आराम का दिन।

शोध-कार्य के साथ कुछ इस प्रकार का समझौता हो सके तो कितना अच्छा हो !

छह दिन शोध सम्बन्धी काम।

इतवार को कविता और आराम।

बीच में कविता लिखने की इच्छा हो तो उसे दबाऊँ।

पर कभी-कभी भावनाएँ और उनके उपयुक्त रूपक आदि इतनी तेज़ी से आते हैं कि लगता है कि अभी ही लेखनी-बद्ध नहीं कर दूँगा तो सब हवा में उड़ जाएगा।

आज तो मौसम ही कविता लिखने का था।

ब्रेकफ़ास्ट करके कहीं बाहर जाना चाहता था, पानी बरसने लगा।

कुछ देर टाइपिंग का अभ्यास किया।

धीरे-धीरे बाहर घना अँधेरा छा गया और मन के अन्दर भी उदासी छा गई।

दिन को कुछ देर के लिए सो गया। ढीले बिस्तर में ही।

कुछ पढ़ने को जी नहीं किया।

एक गीत की पंक्तियाँ जोड़ता रहा।

'अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा और पिपासा'

गीत शाम को समाप्त हुआ।

इस गीत की भी पहली पंक्ति मुझे सबसे अच्छी लगती है।

एक स्थिति मन की होती है जब वह किसी तरह का भार लेकर नहीं चलना चाहता।

अच्छा-बुरा सबको किसी को सौंप देना चाहता है।

सौंपकर छुट्टी। पूरी छुट्टी में कुछ लिखने की भी कामना (पिपासा) नहीं होनी चाहिए।

ऐसी छुट्टी की अनुभूति मरण-क्षण के पूर्व शायद ही हो।

'मौत से पहले आदमी ग़म से नजात पाए क्यों'

हम जैसे इन्सानों के लिए सृजन भी एक ग़म ही है।

उल्लास के साथ या उल्लास के लिए हमारा सृजन कहाँ हो पाता है।

स्वान्तःसुखाय रघुनाथ गाथा गाने का सुयोग तुलसी को मिलता है।

बच्चन को तो अपनी गाथा गानी है। इसी से वह सुखाय नहीं गाई जा सकती।

तुलसी ने भी जब अपनी गाथा गाई है दुःख से ही गाई है। सौ उद्धरण दे सकता हूँ।

शाम को पानी बन्द हो गया था।

खाना खाने के बाद दत्त के यहाँ गया। वे 'कोहनूर' तक खाना खाने आए।

लौटकर गर्म पानी से स्नान।

अब शयन।

सोमवार, 8 सितम्बर, '52

सुबह तैयार होकर कालेज गया। ओदेत का पत्र मिला।

क्षण-क्षण को जीने की बात करनेवाले भी पिछले-अगले क्षणों को देखते हैं। संस्कारों से बचकर कोई कहाँ जाएगा। बात करना आसान है। क्या कभी सम्भव होगा कि क्लेग़मोग़ जा सकूँ? जा भी सका कभी तो क्या ओदेत को वैसा ही पाऊँगा जैसा केम्ब्रिज में, या वह मुझे ही पहले-सा पाएगी? कितना कुछ हमें बदलनेवाला हर क्षण हो रहा है। फिर भी हम अपनी और अपने संसार की एक 'युनिटी आफ़ बीइंग' बनाए रहते हैं—यह मनुष्य की कल्पना-शक्ति का बहुत बड़ा चमत्कार है या जीवन जीने की आवश्यकता। बिना पिछले से अपने को सम्बद्ध किए हम एक क्षण भी जी सकते हैं, एक क़दम भी चल सकते हैं? सब फ़िलासफ़ियाँ जीवन से हारती आई हैं। हम अपने को, अपने संसार को पूरी तरह जाने बिना उनका दर्शन बना सकते हैं? नहीं। हमने अपने को अभी बहुत-बहुत-बहुत-बहुत...कम जाना है। अपने संसार को और भी कम, क्योंकि वह हमसे ज़्यादा दूर है। जीना, अपने को, अपने संसार को जाने बग़ैर भी सम्भव है। मनुष्य, ख़ैर, कुछ जानता है। जीव-जन्तु? पर जीते वे भी हैं। दर्शन से जिया नहीं जा सकता। सोचा जा सकता है। और सोचना जीने का बहुत-बहुत-बहुत-बहुत छोटा अंश है।

मि. हेन के कमरे में जाकर D. A. Stauffer की 'The Golden Nightingale' पढ़नी शुरू की।

पुस्तक रोचक। व्यक्तिवादी, रूमानी समालोचना।

ईट्स प्रायः ऐसी समालोचना के लिए प्रेरित करते हैं।

सृजनशील या काव्यात्मक समालोचना भी उसे कह सकते हैं।

मेरे शोध के लिए अनावश्यक। पढ़ने में आनन्ददायक।

दो बजे तक पढ़ता रहा।

शीर्षक की प्रेरणा शायद 'Sailing to Byzantium' से मिली है,

> Once out of nature I shall never take
> My bodily form from any natural thing,
> But such a form as Grecian goldsmiths make
> Of hammered gold and gold enamelling
> To keep a drowsy Emperor awake...
> Or set upon a golden bough to sing
> To lords and ladies of Byzantium,
> Of what is past, or passing, or to come.

यानी ईट्स golden bird होना चाहेंगे। स्टाफ़र ने थोड़ी अपनी कल्पना लगाई है। चूँकि the bird will sing to keep a drowsy Emperor awake, इसलिए स्टाफ़र ने यह कल्पना की है कि यह चिड़िया बुलबुल होगी—Nightingale (night रात्रि; gale from galan—to sing—रात्रि-गायक पक्षी—बुलबुल)। कविता में बुलबुल साफ़ नहीं कहा गया, पर बुलबुल के अतिरिक्त यह चिड़िया हो भी कौन सकती है।

'Sailing to Byzantium' के साथ कीट्स की 'Ode to the Nightingale' बहुत बार स्मरण की गई है। पर दोनों की कल्पना में आधारभूत अन्तर है।

कीट्स ने प्राकृतिक बुलबुल को ही अमर पक्षी (immortal bird) कह दिया है—अपनी रूमानी कल्पना में; और प्राय: समालोचकों ने उसकी अतार्किकता की ओर संकेत किया है। इससे बचने को किसी समालोचक ने यह दलील दी है कि कीट्स का संकेत एक बुलबुल की ओर न होकर बुलबुल जाति के पक्षी की ओर है। हालाँकि पक्षियों की कोई जाति भी कैसे अमर हो सकती है।

ईट्स प्राकृतिक बुलबुल के रूप में अमर नहीं होना चाहते—हो भी नहीं सकते क्योंकि बुलबुल को वह जानते हैं कि वह 'dying animal', मरणशील जन्तु है। वे सुवर्ण-बुलबुल होकर जराहीन बुद्धिमानी के प्रतीक बनना चाहते हैं—'Monuments of unageing intellect'.

कीट्स की बुलबुल केवल गायक है और वह जो कुछ भी प्रभाव उत्पन्न करती है अपनी स्वर-माधुरी से, नैसर्गिक संगीत से; कीट्स की रूमानियत को फिर यहाँ स्वीकार कर उसकी दाद देनी होगी।

ईट्स की सुवर्ण-बुलबुल, चूंकि वह बुद्धिमत्ता का प्रतीक है, त्रिकालदर्शी हो जाएगी, she will 'sing...of what is past, or passing, or to come.'

'Sailing to Byzantium' रूमानी रचना न होकर romanticism से classicism के टक्कर की रचना है जिसमें classicism को तरजीह दिया गया है, पर कितने रोमाण्टिक तरीक़े से, कितने रोमाण्टिक वातारण में।

Stauffer इस कविता को वह लैण्डमार्क समझते हैं जहाँ से ईट्स भावना के कवि से विचार के कवि बनते हैं। विचार के कवि होने से उनमें रस कम हुआ हो, पर दीप्ति (सुवर्ण से आई हुई) अधिक हो गई है—प्रखरता। हालाँकि रस की आवृतियाँ बाद की कविता में भी हुई हैं—कवि के विकास का मेरा spiral growth का सिद्धान्त। इसे किसी कवि को लेकर सिद्ध करने की ज़रूरत है।

डिग लौटकर लंच लिया।

दूसरे वक़्त सिर्फ़ चिट्ठियाँ लिखीं।

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद को, नेहरूजी, रामनिवास ढँढारिया, जमुनाप्रसाद सिंह को—यही लोग मेरी आर्थिक सहायता कर-करा सकते थे।

7 बजे खाना खाकर घूमने गया। रात खाना खानेवालों में मैं अकेला हूँ। बहुत बुरा लगता है अकेले खाना खाना। पर लाचारी।

घूमते समय सिर में दर्द उठा, शायद सर्दी लगने के कारण।

रात को निकलूं तो अब ऊनी टोपी पहननी चाहिए, या फेल्ट हैट।

कुछ देर ईट्स की कविताएँ पढ़ीं, खासकर वे जिनका हवाला स्टाफ़र ने दिया था। कुछ का नया अर्थ खुला। यह सब अध्ययन शोध से दूर पड़ता है, पर शोध तक ही अपने को सीमित रखूँगा तो दिमाग़ सूखकर काठ हो जाएगा। ईट्स में रमने के लिए भी कितना है!

मंगलवार, 9 सितम्बर, '52

सुबह तैयार होकर कालेज गया।

तेजी का दो सितम्बर का पत्र मिला।

ब्रिस्टल से लिखे मेरे तीनों पत्र और कविताएँ, सब, उन्हें एक ही दिन मिलीं। लगता है ब्रिस्टल से हवाई डाक हफ़्ते में सिर्फ़ एक बार जाती है। घर पर सब ओ. के.।

मि. हेन के कमरे में 'The Golden Nightingale' पढ़ता रहा।

Gold का प्रयोग ईट्स में प्रतीकात्मक हो सकता है।

Alchemy किसी सस्ती धातु से—जैसे लोहे, राँगे से सोना बनाने की विद्या थी।

जब दार्शनिकों ने कीमियागरी की शब्दावली इस्तेमाल की तब लोहे-राँगे का अर्थ पतित या छुद्र आत्मा हो गया। उसके सुवर्ण बनने का तात्पर्य हो गया, पुण्यात्मा अथवा पूर्णात्मा बनना। बहुत सम्भव है कि इसका संकेत भी ईट्स की कविता में हो। वे Alchemy के साहित्य में रुचि रखते थे; सम्भव है उन्होंने कुछ पढ़ा भी हो। मादाम ब्लावाट्स्की की पुस्तकों में कीमियागरी की शब्दावली में बोलनेवाले दार्शनिकों की बहुत चर्चा है। इस प्रकार gold ईट्स में अपनी आभा से रूमानी भले ही लगे, अपने अर्थ में classic प्रयोग है। रूमानियत के चर्बे में क्लासिकी तत्त्व की चर्चा—ईट्स की बहुत बड़ी उपलब्धि।

दो बजे के बाद कमरे चला आया।

रास्ते में लंच ले लिया।

बादल छाए थे, धीरे-धीरे बूँदें पड़ रही थीं।

सोचा, थोड़ी देर आराम कर लूँ।

जूते-कपड़े पहने बिस्तर पर लेट गया था।

नींद खुली तो 4 बजे थे; बाहर अँधेरा हो गया था।

गर्मी के दिन याद आए...जब दस-दस बजे रात तक उजाला रहता था।

कुछ नया पढ़ने को मन नहीं कर रहा था।

कुछ लिखने के लिए बैठ गया।

7 बजे तक एक गीत लिख गया था।

'सखि अभी कहाँ से रात, अभी तो अम्बर में लाली !'

नीचे जाकर खाना खाया।

कविता साफ़ कर रहा था कि सिंह आ गया। उसका बक्स मेरे पास रक्खा था। सोचा, उसी के साथ जाकर दे आऊँ। हम दोनों बक्स लेकर चले। रास्ते में ज़ोरों का पानी आ गया। भीगते-भागते उसके कमरे पहुँचे। वहाँ कुछ देर बैठा। उसने अपना नया टाइपराइटर दिखाया। बड़े साइज़ का है। रेडियो अपना बेचना चाहता है। साढ़े नौ पौण्ड में। मैंने कहा, मैं ले लूँगा। कभी-कभी बहुत अकेलापन अनुभव होता है। रेडियो से कुछ नाटक, वार्ता, समाचार तो सुनने को मिलेगा। रविवार को ले जाऊँगा। सोचा है, बी. बी. सी. से जो पारिश्रमिक मिलेगा उससे ये साढ़े नौ पौण्ड पूरे कर लूँगा। रेडियो है पुराना, पर काम अच्छा देता है। जाते समय मैं भी किसी को बेच दूँगा।

सिंह के यहाँ से लौटते समय रास्ता भूल गया। और बहुत लम्बा चक्कर काटकर पूछते-पाछते कासिल ब्रे पहुँचा।

भीगा। थका। कमरे में न आग न हीटर।

एक बिजली का हीटर मुझे ले लेना चाहिए।

कुछ पढ़ने का मन नहीं।

अपना नया गीत गाकर सोने गया।

बुधवार, 10 सितम्बर, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर दो चिट्ठियाँ मिलीं।

डॉ. रोज़ारियो की, लीथान की—स्विट्ज़रलैण्ड पहुँच गया है। रोज़ारियो

ने सूचित किया था कि शिक्षा-विभाग ने मुझे केवल 1500) का 'ऐड-होक' ग्राण्ट दिया है, अधिक देने में असमर्थ हैं। यानी कि अगर अपने पैसे से मैं केम्ब्रिज में अपनी पढ़ाई न कर सकूँ तो इस पैसे से वापस लौट जाऊँ। क्या बंशो का षड्यन्त्र सफल हो गया?

पत्र पढ़कर थोड़ी देर को मन निराशा में डूब गया। फिर मैंने सोचा, यह तो पहले ही निश्चय कर लिया था कि अगर कहीं से भी सहायता न मिली तो अपने बल पर ही यह यज्ञ पूरा करना है।

ब्रेकफ़ास्ट लेकर हेन के कमरे चला गया। मन तो पढ़ने में नहीं लग रहा था, पर मैंने दो बजे तक 'The Golden Nightingale' समाप्त कर दी। ईट्स की कविता में एक नई insight मिली है। Best of romanticism को न छोड़ते हुए भी classicism की साधना कैसे की जा सकती है। पूरा परवर्ती ईट्स इसका उदाहरण नहीं, पर कुछ कविताओं में ईट्स को आदर्श सफलता मिली है। सतही दृष्टि से देखने पर कविता रोमाण्टिक, गहराई में जाने पर क्लासिक सत्य समोए। यह सत्य खींच-खाँचकर लाने की ज़रूरत नहीं, ईट्स के प्रतीक स्रोतों का ज्ञान होते ही वह स्पष्ट हो जाता है। जैसे, Alchemy में gold का अर्थ है perfection.

लंच के बाद चिट्ठियाँ लिखीं—बसन्त कुमारजी को, तेजी को। बसन्त कुमारजी को लिखा कि मैंने केम्ब्रिज से पी-एच. डी. करने के लिए नाम लिखा लिया है; यहाँ दो वर्ष रहने का मुझे ख़र्च चाहिए, वे दो प्रकार से मेरी सहायता कर सकते हैं। या तो वे किसी ट्रस्ट से मुझे छात्रवृत्ति के रूप में कुछ दिला दें या ऋण के रूप में। यदि यह सम्भव न हो तो वे मेरा नया काव्य-संग्रह, 'कुछ टूटे कुछ साबित'—जिसमें कुछ छन्दोबद्ध गीत होंगे, कुछ मुक्त छन्द की कविताएँ—भारती भण्डार से प्रकाशित करने के लिए ले लें; इस पर मुझे पाँच हज़ार रुपये एडवान्स कर दें, बाद को मेरी रायल्टी में काट लें; मैं पुस्तक का कापी राइट बेचना न चाहूँगा।

तेजी को लिख दिया कि ख़र्च न चले तो मोटर बेच दें। अगर किसी ओर से सहायता न मिली तो मेरे प्रवास के अन्तिम दिनों में तेजी को कुछ कष्ट उठाना पड़ेगा। क़रीब दस महीने उन्हें यु. की तनख़्वाह के बग़ैर काम चलाना पड़ेगा। मैं भी यहाँ जिस क़दर किफ़ायत करते बनेगा, करूँगा। उन्हें भी लिख दिया है कि किफ़ायत से रहें—तकलीफ़ से नहीं।

रेडियो लेने के लिए सिंह को वचन दे दिया है, पर लेकर किसी और को बेच दूँगा, टाइपराइटर भी निकाल सकता हूँ; लिया था टाइपिंग पर ख़र्च बचाने के लिए, पर सीखने में कोई प्रगति नहीं। लेनेवाले बहुत मिल जाएँगे। मुझे तो अब ज़रूरी-ज़रूरी बातों पर ही पैसा ख़र्च करना चाहिए।

खाने के बाद यही सब सोचता रहा।

सोचा दत्त के यहाँ हो आऊँ।

रास्ते में देखा, कैम के ऊपर फिर मेला लगा है। अभी Trades Fair ख़त्म हुआ था कि दूसरा मेला लग गया। केम्ब्रिजवाले भी क्या हैं कि मेलों से नहीं ऊबते—फिर वही भीड़-भाड़, झूला, चर्ख़ी, चक्कर और जुए के खेल। कुछ देर मेले में घूमता रहा। आज पहला ही दिन था, इसलिए रौनक़ कम थी। दत्त के यहाँ गया तो कमरे में रोशनी नहीं थी। मियाँ-बीबी कहीं निकल गए थे।

गुरुवार, 11 सितम्बर, '52

तैयार होकर पोस्ट आफ़िस गया। चिट्ठियाँ पोस्ट कीं। कालेज गया। वहाँ महाराजकृष्ण की चिट्ठी मिली। वे मुझे अमरीका बुलाने की योजना बना रहे हैं। मेरा मन अब कहीं जाने को नहीं। बस केम्ब्रिज रहकर थीसिस लिखने का काम पूरा करना चाहता हूँ—संग्रह भर की कविताएँ हो जाएँ तो कविता लिखने से भी छुट्टी लूँ। 'कुछ टूटे कुछ साबित' नए तरह का संग्रह होगा। आशा है बसन्त कुमार उसे ले ही लेंगे। सम्भव हुआ तो थीसिस सबमिट करने के बाद इंग्लैण्ड और योरोप का एक चक्कर लगा भारत लौट जाऊँगा। अमरीका जाने का मेरे पास समय नहीं, महाराजकृष्ण साधन जुटवा सकें तो भी। मुझे अपने ही ख़र्च को नहीं देखना है, बीबी-बच्चों के ख़र्च को भी। महाराजकृष्ण महीने-दो महीने के लिए अमरीका में मुझे ऐसा क्या काम दिला सकेंगे कि अपने ख़र्च के लिए भी कमा लाऊँगा और घर के ख़र्च के लिए भी। अमरीका में क्या रुपये पेड़ में लगते हैं! फिर पता नहीं युनिवर्सिटी के नियम रिसर्च स्कालर को बाहर जाने की कितनी इजाज़त देते हैं। बड़ी सीमाओं के अन्दर रहते हुए काम करना है। मेरी राहें आसान कब रही हैं। शायद किसी की नहीं होतीं। आदमी अपनी ही मुश्किलें जानता है।

दो बजे तक हेन के कमरे में बैठकर स्टाफ़र की किताब से नोट्स लिये। बाज़ार होकर लौटा, कुछ चीज़ें ख़रीदनी थीं, पर बाज़ार बन्द हो गया था, आधे दिन के बाद, आज गुरुवार होने के कारण।

शिक्षा-विभाग से इतनी कम छात्रवृत्ति मिलने के कारण चिन्ता लग गई है। सोचा था भारत सरकार मुझे 5000) भी दे देगी तो 5000) तेजी मुझे भेज सकेंगी; इतने में मेरा काम चल जाएगा, लौटने के लिए 2000) और ज़रूरी होंगे—इसका प्रबन्ध जमुना प्रसाद सिंह या रामनिवास ढँढारिया करा सकेंगे।

Friends of India Society के लिए एक लेख लिखना था, पर मन न लगा।

एक कविता लिखने बैठ गया।

'बीन, आ छेड़ूँ तुझे, मन में उदासी छा रही है।'

उदासी तो छा ही रही है।

कविता लिखना भी ज़रूरी है।

संग्रह भी पूरा करना है।

शायद कविता की कमाई से ही केम्ब्रिज की पढ़ाई हो सके।

शाम को कविता पूरी हुई।

खाना खाकर घूमने गया।

लौटकर कविता की साफ़ प्रति बनाई।

बहर तो वही है जो 'कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा' में पर स्टैंज़ा फ़ारमेशन बदल दिया है, छोटा कर दिया है।

गुनगुनाते-गुनगुनाते एक उदास ट्यून भी इसे दे दी।

उदासी में लिखा गीत उदासी कम करता है या बढ़ाता है?

अनुभव तो होता है उदासी को बढ़ाता है, गहरी करता है।

पर यह सच नहीं है।

गीत उदासी के स्तर को बदलता है।

जीवन के स्तर की उदासी से कला के स्तर की उदासी जुदा होती है।

कला के स्तर की उदासी में कुछ रस-आनन्द देने की भी शक्ति-क्षमता है।

उदासी जब गाने लगती है तब जीवन की उदासी से कला की उदासी में पहुँच जाती है।

बीन, आ छेड़ूँ तुझे कि उदासी गीत बने।

शुक्रवार, 12 सितम्बर, '52

सुबह कालेज गया तो तेजी का 7 ता. का लिखा पत्र मिला।

उनकी तबियत ख़राब है। शायद ड्रामा के सिलसिले में ज़्यादा काम करने की वजह से। चिन्ता हो गई है। शायद अब तक वे और बीमार हो गई हों, शायद अच्छी भी हो गई हों। अच्छा ही सोचना चाहिए। 'क्या चाहिए', 'क्या होता है' इनमें बराबर संघर्ष रहता है।

हेन के कमरे में गया तो कुछ देर पढ़ने में मन नहीं लगा।

अधिक समय नोट्स लेने में बीता।

बीच में मि. एडिनबरा आए।

'The Golden Nightingale' पर कुछ देर उनसे बात की। उन्हें धन्यवाद दिया कि एक अच्छी पुस्तक की ओर उन्होंने मेरा ध्यान आकर्षित किया। वे स्वयं स्टाफ़र से बहुत प्रभावित न थे। उनका कहना था, स्टाफ़र ने ईट्स के कला-पक्ष को अधिक महत्ता दी है। ईट्स में महत्ता देने की चीज़ उनका जीवन-पक्ष है। ईलियट और ईट्स में यही अन्तर है—ईलियट की कविता उनके जीवन को बिना रेफ़र किए डिस्कस की जा सकती है, ईट्स की नहीं। 'Sailing to Byzantium' कब लिखी गई? उस समय ईट्स की अवस्था क्या थी? उससे अधिक महत्त्व का प्रश्न है, उनकी मानसिक अवस्था क्या थी? यौवन की समाप्ति और जरा के आरम्भ को उन्होंने कैसे लिया था? कवि और नबी बनने की अपनी आकांक्षाओं का समन्वय उन्होंने कैसे किया था? आदि-आदि।

दो बजे डिग लौटकर लंच लिया।

कुछ देर आराम किया।

फिर एक कविता लिखने बैठ गया।

'तुम छेड़ो मेरी बीन कसी रस-राती।'

7 बजे तक कविता पूरी नहीं हुई।

खाना खाकर फिर कमरे में चला आया। घूमने नहीं गया।

क़रीब दस बजे रात को कविता समाप्त हुई।

बैठे-बैठे थक गया था। जी चाहा थोड़ी देर घूम आऊँ। ग्यारह के पहले यहाँ डिग में आ जाना होता है। बाहर बूँदा-बाँदी हो रही थी, इस कारण सब खिड़कियाँ खोल कुछ देर कमरे में ही टहलता रहा—कमरा काफ़ी बड़ा है।

शनिवार, 13 सितम्बर, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर एक इटैलियन विद्यार्थी से परिचय हुआ। नाम मिस्टर नीग्रा है। अभी तक 153, चेस्टरटन लेन में रहता था। अब कासिल ब्रे में आ गया। योरोप की प्रायः सभी प्रसिद्ध भाषाएँ जानता है। एक साल केम्ब्रिज में रहकर अंग्रेज़ी सीखने आया है। बड़ी विचित्र अंग्रेज़ी बोलता है, पर बेझिझक। बातचीत में हाथ बहुत हिलाता है, मुख-मुद्राएँ भी अद्भुत-अद्भुत बनाता है। आँखें कहाँ-कहाँ उसकी जाती हैं। अंग्रेज़ तो मूर्ति की तरह निश्चल रहकर बात करता है। बड़ा जीवन्त।

एक ही दिन में उसने डिग के सभी लड़कों से परिचय कर लिया। शायद स्वयं गम्भीर, 'इण्ट्रोवर्ट' होने के कारण ऐसे लोग मुझे अच्छे लगते हैं। बातचीत के सिलसिले में मैंने उससे कहा कि मैं कविता भी लिखता हूँ तो उसने कहा कि मैं कविता का बड़ा शौक़ीन हूँ, किसी शाम आपके कमरे में आकर आपकी कविता सुनूँगा।

ब्रेकफ़ास्ट करके कालेज गया। कल एडिनबरा ने इधर कुछ पीरियाडिकल्स में पढ़े अच्छे लेखों का ज़िक्र किया था—कुछ तो ईट्स पर ही थे। एडिनबरा ने सारे पीरियाडिकल्स मेरे लिए निकलवाकर टेबिल पर रख दिये थे। दो बजे तक कुछ को ही पढ़ सका, नोट्स भी लिये, इन्हें देखने का मौक़ा बाद को शायद ही मिल सके। लं च के बाद फिर हेन के कमरे में पहुँच गया; 7 बजे तक सारे पीरियाडिकल्स देख डाले। एडिनबरा शनिवार को दूसरे वक़्त क्लास नहीं लेते। कोई डिस्टर्बेन्स नहीं हुआ, ख़ूब मन लगा, पर ख़ूब थक भी गया।

लौटकर खाना खाया।

इम्पीरियल बैंक के एजेण्ट के नाम चिट्ठी लिखी। तेजी ने लिखा था कि मैं अपने Traveller Money Quota का शेष भाग यानी5000) और माँगने के लिए सीधे उसे लिखूँ।

9 बजे थे, कहीं बाहर जाने को मन हुआ। आज 9-10 घण्टे बन्द कमरे में बीते थे—फिर कमरे में जी ऊब रहा था। सोचा, साथ के लिए किसी को ले लूँ। नीग्रा के दरवाज़े पर खटखटाया। वह तो जैसे तैयार बैठा थाकि कोई आए और कहीं चला जाए। मैं खुली हवा में घूमना चाहता था। नीग्रा ने कहा आज तो पब की शाम है। हम एक पब में गए, वहाँ नीग्रा के कुछ जान- पहचानी थे। न होते तो भी वह बात की बात में अपने चारों ओर एक गुट इकट्ठा कर लेता—यह कला उसे खूब आती है—पब का कमरा बीयर की गन्ध, सिगरेट के धुएँ और शोरगुल में डूबा था। पीनेवाला मैं नहीं। यहाँ कोई और पेय उपलब्ध भी नहीं। बिना थोड़े नशे के कोई इस वातावरण में रम नहीं सकता। आधे घण्टे बाद मैंने नीग्रा से छुट्टी ली और केम्ब्रिज की सूनी सड़कों पर घूमता 10.30 बजे डिग पहुँच गया।

आराम कुर्सी पर लेटे-लेटे दिमाग़ में एक पंक्ति उठी।

हाँ, आज तो कविता का स्वागत!

कल इतवार को कविता पर निछावर कर सकता हूँ।

बहुत थका हूँ।

अब कुर्सी पर बैठने की हिम्मत नहीं।

कविता कभी-कभी मन में भी लिखनी चाहिए।

कविता की कोई पंक्ति दिमाग़ में लेकर सोना बड़ा सुखद अनुभव है। जैसे···

जग-जीवन की सारी चिन्ताएँ मधुमय रागिनी बनकर शिरा-शिरा में गूँजती रहती हैं—रात-भर!!

रविवार, 14 सितम्बर, '52

गीतमय लेटा।

गीतमय सोया।

गीतमय जागा!

'राग उतर फिर-फिर जाता है,
बीन चढ़ी ही रह जाती है।'

बार-बार गीत लिखने के पश्चात् मन फिर कोई नया गीत लिखने को व्यग्र होता है। इसी पर एक गीत लिखना चाहता था।

गीत जैसे पूरा दिमाग़ में था।

लगा, लिखने बैठ जाऊँ तो 15 मिनट में पूरा कर लूँ।

ब्रेकफ़ास्ट के लिए शायद बहुत देर हो जाती। तैयार हो ब्रेकफ़ास्ट ले कमरे में आया।

गीत बड़ी जल्दी पूरा हो गया। पर साफ़ करने का समय नहीं था। सिंह से वादा कर दिया था कि इतवार को आकर रेडियो ले जाऊँगा। पैदल चलकर उसके यहाँ पहुँचा। साढ़े नौ पौण्ड उसे दे दिए, उसने रेडियो सेट बाक्स में बन्द करके टैक्सी बुला दी। कासिल ब्रे पहुँचते ही मैंने रेडियो को कमरे में लगाया। ठीक काम कर रहा था। बच्चों का कोई प्रोग्राम आ रहा था। लगा जैसे गूँगा कमरा बोलने लगा। देखने को एक जड़ मशीन ही है पर कैसे जड़ता को जीवन के स्वरों से जोड़ देती है! कुछ देर बच्चों का प्रोग्राम ही सुनता रहा और पहली बार ऐसा अनुभव करता रहा कि कमरे में अकेले होकर भी अकेले नहीं हूँ। मैंने केम्ब्रिज पहुँचते ही एक छोटा-सा सेट अपने लिए क्यों नहीं ले लिया। बहुत-सी ऊब, घुटन, एकाकीपन से बच जाता। पर क्या उन्होंने कुछ गीतों को जन्म नहीं दिया? रेडियो शायद कुछ सृजन से बचा ले। बचने की मुझे ज़रूरत भी है।

कविता की स्वच्छ प्रति बनाई।

लंच।

शयन।

कासिल ब्रे के पीछे एक 'हिलक' है जो बाथरूम की खिड़की से दिखाई देती है। एक दिन एक युवक-युवती को उस पर चढ़ते देखा था, और इसे भूल गया था।

आज सोकर उठा तो सहसा एक पंक्ति मन में उठी,

'चढ़ चल मेरे साथ, करें हम उस पर्वत पर प्यार, सहेली!'

सोचा, अगले इतवार तक के लिए टालूँगा तो सात रोज़ यह पंक्ति मेरे दिमाग़ को कुरेदती रहेगी।

आज ही इस पर एक गीत लिखने के लिए बैठ गया।

पर्वत exalted love का प्रतीक है, गरुड़ स्वाभिमानी और निर्भीक प्रेमी का।

खाने के समय तक कविता पूरी हो गई।

घूमने को निकला तो दत्त के यहाँ चला गया।

वे लन्दन गए थे। कमला के पास देर तक बैठा रहा।

दत्त 9.30 बजे आए। शिवकुमार और सिंह भी थोड़ी देर बाद पहुँचे। आज उन लोगों का 'कोहनूर' में खाने का कार्यक्रम था।

मैं कमरे आया। रेडियो पर अंग्रेज़ी कविताओं का पाठ हो रहा था। कुछ देर सुनता रहा।

कुछ देर टाइपिंग का अभ्यास किया।

सोमवार, 15 सितम्बर, '52

बहुत दिनों से सेन्ट्रल लाइब्रेरी नहीं गया था।

तैयार होकर वहाँ गया। कुछ पत्रिकाएँ उल्टी-पल्टीं।

फिर कालेज गया।

एडिनबरा को आश्चर्य था कि मैंने सारी पत्रिकाएँ शनिवार को ही समाप्त कर दी थीं, उन्होंने समझा था कि मेरे लिए तीन दिन का काम उन्होंने रख दिया है।

कुछ निबन्धों पर उनसे बातें हुईं।

ईट्स पर कुछ और सामग्री मेरे लिए निकालने का उन्होंने वचन दिया है। हेन उन्हें ईट्स पर संचित अपनी सामग्री का पता बता गए हैं, जो वे समय-समय पर मुझे देते रहेंगे।

दो बजे तक मैंने अपने पुराने नोट्स दुहराए।

लंच लेकर फिर मि. हेन के कमरे में गया।

मि. एडिनबरा ने कुछ टाइप्ड निबन्ध मेरे लिए टेबिल पर रखवा दिए थे। लगता है ये विभिन्न पत्रिकाओं से लिये गए हैं, जिन्हें मि. हेन ने महत्त्व का समझ कर अपने लिए टाइप करा लिया था।

ज़्यादातर लेख पुराने हैं।

मेरे शोध-विषय से इनका दूर का सम्बन्ध ही हो सकता है।

प्राय: ईट्स की काव्य-कला और उनके काव्य-सिद्धान्तों पर हैं।

ईलियट-लीविस-रिचर्ड्स के आविर्भाव के बाद आलोचना का एमफैसिस कलापक्ष पर हो गया था।

गीतों को ईट्स ने जो महत्ता दी है उस पर भी कई निबन्धों में प्रकाश डाला गया है। ये और पुराने हैं—आलोचकों का रूमानी दृष्टिकोण स्पष्ट। बाद के निबन्धों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, पर शब्दों-ध्वनियों-अर्थों के विवाद में बाल की खाल निकालनेवाला।

जीवन से सम्बद्ध मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अधिक आधुनिक है; यह कला-पक्ष की अत्ति के विरोध में शायद उभर रहा है।

7 बजे डिग लौटकर खाना खाया।

कुछ देर रेडियो सुना। कुछ अच्छा म्यूजिक आ रहा था। आराम भी हो गया। कुछ लिखने को जी हुआ।

बैठा तो एक गीत शुरू किया।

'मैं सुख पर, सुखमा पर रीझा, इसकी मुझको लाज नहीं है।'

सुख और सुखमा पर रीझना बुरा नहीं है, अगर हम उनकी गरिमा भी समझ लें। सस्ते सुख, सुखमा पर रीझना कितना आसान है। आदर्श सुख-सुखमा पर रीझना मानवता का दायित्व निभाना हो जाता है, जो तप है—साहस, बलिदान। रीझना आसक्त होना नहीं, निछावर होना, बलि होना।

दो पद लिख चुका था कि दत्त आ गए।

किसी दिन सिनेमा के ऊपर उनसे बात हो रही थी। मैंने कहा, सिनेमा तो मैं तभी देखने जाता हूँ जब मुझे कोई खींचकर ले जाए। भारत में था तो कभी-कभी मेरी बीबी मुझे खींचकर ले जाती थी। अपने मन से शायद ही कभी मैं सिनेमा जाता हूँ। हाँ, कोई नाटक या बैले होता है तो जरुर देख आता हूँ। दत्त ने वह बात याद रक्खी थी; कोई अच्छी तस्वीर आई थी—'The Seventh Veil' उन्होंने सोचा मुझे भी ले जाएँ। उसमें जेम्स मेसन काम करता है। उसकी एक तस्वीर—'The odd man out' वे पहले कभी देख चुके थे। मैंने अपनी कविता

की ओर संकेत किया। दत्त ने कहा, मैं टिकट ले चुका हूँ। मैंने कहा, तुमने बुरे वक़्त खींचा, पर चलो। आज रात मुझे काम करना पड़ेगा। कविता जब तक पूरी न कर दूँगा मुझे नींद न आएगी।

तस्वीर बहुत ही अच्छी निकली। मेसन का अभिनय सचमुच बहुत ही अच्छा था।

लौटकर मैं कविता लिखने बैठ गया—क़रीब दो बजे कविता समाप्त हुई। फिर इसे साफ़ करते-करते तीन बज गए।

अब सोने जा रहा हूँ।

सुख और सुखमा की सीमा बता दी है। यहाँ तक जो जा सकता है उसे बीच में रोकनेवाला कौन है?

मंगलवार, 16 सितम्बर, '52

एलार्म तो सात का लगाया था, पर आठ तक न उठ सका।

तैयार होक ब्रेकफ़ास्ट किया।

तेजी की चिट्ठी मिली। 365 पौण्ड उन्होंने मेरे नाम और भेजवा दिये हैं। मैंने बैंकवालों को सूचना दे दी कि ड्राफ़्ट मिले तो मुझे लिख दें। 40 पौण्ड टामस कुक के मेरे पास पड़े थे; उन्हें मैंने बैंक में डाल दिया। सेण्ट कैथरीन्स कालेज के लिए 50 पौण्ड का चेक काशन मनी के रूप में मि. स्मिथ को दिया। उन्होंने कालेज का कार्ड दे दिया है। कार्ड लेकर लाइब्रेरी गया। लाइब्रेरियन ने कल बुलाया है। इन सब कामों में 1 बज गए।

लंच लिया। रात की थकावट अभी बनी थी। सोचा थोड़ी देर को सो जाऊँ। 6 बजे आँख खुली। फिर भी सुस्ती लग रही थी। गरम पानी से स्नान किया। कपड़े पहने। नीचे जाकर खाना खाया।

दिग्विजय सिंह के पिता ने भारत से उनके लिए मोटर भेज दी है—राजकुमार ही ठहरे। खाने पर उन्होंने कहा, चलिए आपको कहीं घुमा लाएँ। मैं तैयार हो गया। पहले सिंह के यहाँ गया। वे कहीं बाहर चले गए थे। फिर हम दत्त के यहाँ आए। वे बहुत घबराए हुए थे; डॉ. को फ़ोन करने जा रहे थे; कमला अचानक बीमार पड़ गई थी; पेट में बहुत दर्द उठा था। डॉ. ने कोई ऐसी दवा दे दी थी जिससे बेहोशी आ गई थी। हम लोग कुछ देर बाहर के कमरे में बैठे, इतने में डॉक्टर आ गए। दिग्विजय वापस चले गए, मैं साढ़े दस तक दत्त के पास था। कमला की दशा में सुधार था।

लौटकर तेजी, अमित, अजित को चिट्ठी लिखी। इधर लिखी कविताएँ भी साथ रक्खीं। तेजी क्या समझेंगी, मैं यहाँ सिर्फ़ कविताएँ ही लिख रहा हूँ।

डेनिस और पेट्रीशिया को भी पत्र लिखा।

बुधवार, 17 सितम्बर, '52

सुबह तैयार होकर युनिवर्सिटी लाइब्रेरी गया।

गाउन नहीं ले गया था। एक अधिकारी ने बताया, जब तक मुझे एम. ए. स्टेटस नहीं मिलता, तब तक मुझे लाइब्रेरी में गाउन पहनना पड़ेगा। आज के लिए लाइब्रेरी की ओर से मुझे एक गाउन दे दिया गया। रीडिंग रूम में कुछ देर मैंने स्वीडेनबार्ग पढ़ा, फिर एनसाइक्लोपिडिया से हिन्दी-हिन्दुस्तानी-उर्दू पर लेख पढ़ता रहा। आधुनिक हिन्दी कविता पर लेख लिखने के लिए कुछ मसाला इकट्ठा

करना चाहता था।

दो बजे डिग आकर लंच लिया।

फिर अपना पुराना गाउन लेकर बाज़ार गया, उसमें कुछ फेर-बदलकर यहाँ के विद्यार्थियों का गाउन बनवाने के लिए।

दूकानवाले ने सलाह दी कि मैं अपने कालेज से पूछ लूँ कि मुझे किस तरह का गाउन पहनना पड़ेगा। मैट्रिक्युलेशनवाले गाउन के लिए इसे बहुत काटना पड़ेगा; थोड़े फेर-बदल से यह एम. ए. का गाउन बन जाएगा।

मिसेज़ स्मिथ अपने कमरे में थीं। उन्होंने बताया कि अभी मुझे मैट्रिक्युलेशन की रस्म अदा करनी पड़ेगी, तब तक मुझे छोटा गाउन पहनना पड़ेगा जो मुझे किराए पर मिल जाएगा। मुझे एम. ए का स्टेटस बाद को दिया जाएगा। तभी मैं अपना पुराना गाउन बदलवाऊँ।

कमरे में आकर कुछ देर ईट्स की कविताएँ पढ़ीं।

खाना खाया। कमला को देखने के लिए गया। पहले से अच्छी हैं। उन्हीं के पास बैठे हम लोग बातें करते रहे। सिंह भी आ गया। मोटर से लेक कण्ट्री और स्कॉट्लैण्ड घूमने का प्लान बनता रहा। तीन वे हैं—कमला, विश्वा, सिंह—एक किसी और को चाहते हैं। मोटर में आराम से चार ही आदमी जा सकेंगे। मुझे ले जाना चाहते हैं। मोटर किराए की मिल जाएगी, पेट्रोल अपना डलवाना पड़ेगा, सिंह खूब अच्छी तरह ड्राइविंग कर सकता है, कुछ मैं भी कर सकता हूँ। अभी मैंने अपनी स्वीकृति नहीं दी।

रात को लौटकर आधुनिक हिन्दी कविता पर मैं अपना निबन्ध लिखना चाहता था।

लिखने को बैठा तो एक गीत लिखने लगा।

'तुम अपने जीवन की गाँठें खोलो, संगिनि, मैं भी खोलूँ'

कविता एक बजे पूरी हुई। लेख रह गया।

साफ़ करते-करते बहुत थक गया हूँ।

दो बजने को हैं।

गुरुवार, 18 सितम्बर, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ।

आज लेख लिखने का अन्तिम दिन था। कल लन्दन जाकर Friends of India Society के सामने पढ़ना था।

कभी-कभी मुझे अपने व्यवहार पर खुद आश्चर्य होता है।

लिखना था लेख, लिख रहा था कविता।

मुखड़े के लिए एक महा लम्बी पंक्ति उठा ली थी।

'राज उन्हें करने को दो तुम राज सिंहासन,
प्यार मुझे करने को तिनकों का घर भर दो।'

क़रीब 4 बजे कविता पूरी हुई।

तब लंच की सुध आई। कमरे में कुछ था ।

अब लेख लिखने बैठा।

थोड़ा ही लिखा था कि खाने का समय हो गया। भूख तो नहीं थी, पर समय से न जाता तो रात भूखे ही सोना पड़ता। लेख समाप्त करने को जागना था। हल्का खाना ले ऊपर आ गया।

शुक्र है कि लेख समाप्त हो गया है।

दो बजे हैं।

लेख बहुत अच्छा नहीं है। उद्धरण देने को पुस्तकें नहीं थीं। Trends and tendencies सब आ गई हैं।

शुक्रवार, 19 सितम्बर, '52
शनिवार, 20 सितम्बर, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ।

लन्दन के लिए ग्यारह बजे की गाड़ी मिल गई।

पेपर तो शाम को पढ़ना था; सोचा दिन को ब्रिटिश म्यूज़ियम देख लूँ। ऐसे ही हर एक 'विज़िट' में थोड़ा-थोड़ा करके लन्दन देखने का इरादा है।

स्टेशन से सीधे ब्रिटिश म्यूज़ियम गया।

किसी के लिए भी एक दिन में पूरा देख लेना असम्भव।

दिन भर में मैंने रोमन, ग्रीक, इजिप्शियन, भारतीय और चीनी सेक्शन देखे।

उसके बाद ब्रिटिश म्यूज़ियम लाइब्रेरी का रीडिंग रूम देखने गया। अपने शोध के सम्बन्ध में कभी यहाँ आकर काम करना पड़ेगा। कुछ ऐसी सामग्री है जो यहीं उपलब्ध है। रीडिंग रूम के लिए पहले से टिकट लेना पड़ता है। पर मैं तो वहाँ बैठकर पढ़ना नहीं चाहता था, सिर्फ़ देखना चाहता था। पोर्टर मुझे भीतर दिखला लाया। रीडिंग रूम गोलाकार। सैकड़ों आदमियों के लिए आराम और शान्ति से बैठकर पढ़ने की सुविधा। बहुत-से लोग अपनी-अपनी मेज पर किताबों का अम्बार लगाए पढ़ रहे हैं, नोट्स ले रहे हैं, इतनी शान्ति कि पिन गिरे तो सुनाई दे—pin drop silence! लोग कैटलाग देखने के लिए या किताबें मँगाने के लिए उठते चलते-फिरते हैं, पर फ़र्श ही ऐसा बना है कि आवाज़ नहीं होती। कोई किसी भीतरी ऊहापोह से अपने चित्त को एकाग्र न कर सके, पर बाहर से एकाग्रता को भंग करनेवाले किसी चीज़ की यहाँ कल्पना नहीं की जा सकती। लगता है यह peehive of scholars है और सब चुपचाप अपना काम कर रहे हैं। सामूहिक तन्मयता मूर्तिमान!

कभी यहाँ बैठकर काम करने की कल्पना लिये हुए मैं कुछ समय पुस्तकों और पाण्डुलिपियों के हाल में घूमता रहा। दूसरी मंज़िल पर भी मैंने कुछ समय बिताया।

यह कला और साहित्य का इतना बड़ा खज़ाना है कि इसका वर्णन नहीं हो सकता। समस्त अंग्रेज़ जाति के सहयोग से यह बना है। सचमुच यह एक राष्ट्रीय संस्था है। कहाँ-कहाँ से कितने लोगों ने ये चीज़ें इकट्ठी की हैं। आज तो शायद इसका एक छोटा-सा हिस्सा देख सका हूँ। कई बार में इसे पूरा देख पाऊँगा। बाहर निकालने का समय हो रहा था। 'भारत के मित्र' संस्था में साढ़े छह बजे पहुँचना था।

फाटक पर डॉ. अशरफ़ से भेंट हो गई। वे साम्यवादी हैं। बहुत दिनों से इंग्लैण्ड में हैं। मिस केंप से इन्होंने शादी कर ली है। जहाँ तक मुझे मालूम है भारत में भी इनका परिवार है। बातचीत से पता लगा कि वे भारत जाना चाहते हैं; पर भारत सरकार उन्हें अनुमति नहीं देती। फ़ैज़ की बातें हुईं।

रात में जाते हुए एक मेथाडिस्ट मि. चेस्टरटन से मेरा परिचय हुआ। मैंने उनसे रास्ता पूछा और वे भारत की बातें करने लगे। मुझे एक रेस्ट्राँ में लिवा ले

गए, चाय पिलाई और एक्ज़ीटर स्ट्रीट तक छोड़ गए। प्रायः मैंने देखा है जो अंग्रेज़ भारत को आए हैं उनके लिए भारत की याद 'नास्टेलजिया' बन गई है। जो भारतीय इंग्लैण्ड आते थे, कम-से-कम आज़ादी के पहले, उनके लिए यहाँ की यात्रा 'सुपीरियारिटी काम्प्लेक्स' बन जाती थी। सात समुन्दर पार शासकों के मुल्क में रह आए हैं। एक समय 'इंग्लैण्ड-रिटर्न्ड' ऐसे कहा जाता था जैसे वह दुनिया की सबसे बड़ी युनिवर्सिटी की सबसे ऊँची डिग्री हो।

'भारत के मित्र' संस्था न बहुत पुरानी है न बहुत बड़ी। पन्द्रह-बीस अंग्रेज़, दो-चार इंग्लैण्ड में बसे हिन्दुस्तानी भी, इसके सदस्य हैं। ये लोग समय-समय पर किसी रेस्ट्राँ में मिलते हैं और भारत पर कुछ चर्चा करते हैं। मैंने अपना लेख पढ़ा। जो प्रश्नादि किए गए उनसे यह पता लगा कि लोग भारत के साहित्य के बारे में काफ़ी जानते हैं। दो-तीन अंग्रेज़ अच्छी हिन्दी बोल सकते थे। मेरा पेपर लोगों ने पसन्द किया। बाद को संस्था की ओर से खाना था। मि. लिण्टन मुझे लिवरपूल स्ट्रीट स्टेशन तक छोड़ गए। 12 बजे केम्ब्रिज पहुँचा।

कमरे में बिजली नहीं आ रही थी। आधी रात को किससे कहूँ। अँधेरे में किसी तरह कपड़े बदले और बिस्तर में पड़ रहा।

सुबह उठकर तैयार हुआ। ब्रेकफ़ास्ट टेबिल पर रात के बिजली न आने का रहस्य खुला। कुछ लड़कों की शरारत थी। उन्होंने मेन स्विच ऑफ़ कर दिया था। अँधेरे में पता नहीं उन्हें कौन षड्यन्त्र रचना था।

बैंक गया। 365 पौण्ड मेरे नाम जमा हो गए हैं। बैंक से चिट्ठी मेरे पास पहले ही आ गई थी, मुझे सिर्फ़ पासपोर्ट भर दिखाना था।

सेन्ट्रल लाइब्रेरी होता यु. ला. गया। किताबें अब मेरे नाम ईशू हो सकती थीं। चार पुस्तकें निकलवाईं। लेकर कमरे आया।

तेजी को पत्र लिखा। छोड़ने गया तो 'लायन्स' से लंच लेता लौटा।

आज पानी गरम करने की एक केतली लाया हूँ। कमरे में ही कभी पानी गरम करने की ज़रूरत पड़ सकती है। चाय-कॉफ़ी के लिए या रात की रबर-बोतल के लिए। सर्दी धीरे-धीरे बढ़ने लगी है।

दिन को युनिवर्सिटी लाइब्रेरी से लाई पुस्तकें पढ़ता रहा।

शाम को इन्द्रजीत सिंह आया।

लेक डिस्ट्रिक्ट जाने का सारा प्रोग्राम वर्क आउट करके आया था; सात आठ दिन लगेंगे; और पर हेड क़रीब पन्द्रह पौण्ड ख़र्च आएगा। इतने सस्ते में लेक डिस्ट्रिक्ट की यात्रा अकेले कभी सम्भव न होगी। सिंह को समझाना ख़ूब आता है। मैं उसका प्रस्ताव मानने को मनुहाँ रहा हूँ।

रविवार, 21 सितम्बर, '52

आज केवल कविता का दिन था।

और इस पर मुझे अफ़सोस नहीं।

हाँ, सप्ताह के और दिनों को यदि कविता लिखने में लगाऊँ तो मुझे लगता है कुछ अपराध कर रहा हूँ।

और यह अपराध मैं बार-बार करता रहा हूँ।

बार-बार पश्चात्ताप के बावजूद।

बहुत कुछ आदमी ऐसा करता है—

अपराध के समय अपराध कर लिया।

पश्चात्ताप के समय पश्चात्ताप कर लिया।

जीवन की बहुत-सी माँगों के सामने आदमी विवश होता है।

कविता मेरी विवशता है।

और यह जितनी बड़ी विवशता विदेश में आकर बनी है, उतनी देश में नहीं थी।

वहाँ कई तरह की विशेषताएँ थीं।

यहाँ सब तरह की विवशताएँ काव्य-रचना में सिमट गई हैं। जो मन में आए, उठे, उमड़े उसे शब्दों में न रक्खूँ, बाहर न निकाल दूँ तो उसे लेकर चलना, उस भार को ढोना कुछ दिनों में मुश्किल हो जाए। जिस तालाब में पुराना पानी निकलता और नया पानी आता रहता है वह स्वच्छ-ताज़ा रहता है।

शोध में जो थोड़ा-बहुत दिमाग़ चलता है वह शायद इसी कारण कि जो शोध से सम्बद्ध नहीं वह दिमाग़ के अन्दर नहीं रहने पाता—हेन ने कहा था कि रचनात्मक बुद्धि समालोचनात्मक बुद्धि की विरोधी नहीं है।

एक गीत दिन को लिखा, एक रात को।

दिन का गीत था,

'सुमुखि कभी क्या मेरे जीवन के भी ऐसे दिन आएँगे।'

रात का गीत है,

'नयन तुम्हारे चरण-कमल में अर्घ्य चढ़ा फिर-फिर भर आते।'

सोमवार, 22 सितम्बर, '52

सुबह तैयार होकर लाइब्रेरी गया।

A. E. की तीन-चार पुस्तकें निकलवाईं। उनकी कविताओं के सारे संकलन भी।

थोड़ा ही पढ़ने पर यह स्पष्ट हो गया कि उनकी प्रतिभा ईट्स की प्रतिभा से बहुत नीचे दरजे की थी।

A. E. शायद ज़्यादा बड़े मिस्टिक हैं, पूर्वी धर्म, दर्शन, विचार से प्रभावित होने को उन्होंने अपने को मुक्त छोड़ दिया है। ईट्स के ऊपर उनकी बुद्धि का पहरा हर समय रहता है। हृदय और बुद्धि, भावना और विचार का जो तनाव ईट्स में अनुभव होता है वह A. E. में नहीं। पश्चिम की अपनी ज़मीन है—धर्म, दर्शन, कला, साहित्य की—A. E., लगता है, अपनी ज़मीन छोड़ चुके हैं और पूरब की ज़मीन पर अजनबी हैं; ईट्स, कलाकार होने के कारण, शायद यह जान गए थे कि वे पश्चिम की ज़मीन नहीं छोड़ सकते; और पूरब की ज़मीन अपनाने से वहाँ तो वे अजनबी लगेंगे ही, पश्चिम में भी लगेंगे। वे पूरब को देखते हैं, पर पश्चिम की आँखों से; वे बहुत कुछ पूरब को अपनाते हैं, पर उसका पश्चिमीकरण करके। उन्हें स्वीकृत होना है तो पश्चिम में, इसे वे नहीं भूलते। वे अपने पश्चिमी पाठक या जनता को नहीं भूलते। A. E., ऐसा लगता है, जैसे भारतीयों के लिए लिख रहे हैं। ख़ैर।

यह भी बड़ी जल्दी स्पष्ट हो जाता है कि ईट्स ज़्यादा बड़े कलाकार हैं। उनमें सर्वप्रथम कलाकार का सौन्दर्यबोध है—A. E. ने इसे secondary कर दिया है—कौशल है, संयम है। A. E. को सन्त माना जा सकता है, कलाकार नहीं। ईट्स सन्त बनने की प्रबल आकांक्षा के बावजूद कलाकार के रूप में स्वीकृत होना चाहते हैं।

शाम को खाना खाकर कमरे में कुछ लिख रहा था कि सिंह आ गया। दत्त और कमला ने साढ़े नौ पर 'कोहनूर' में मुझे बुलाया था। सिंह मुझे साथ ही ले गया। लेक-डिस्ट्रिक्ट जाने के विषय में वे मेरा निश्चय जानना चाहते थे। जाना मैं चाहता हूँ। कम्पनी भी अच्छी है। घर से कुछ पैसे आ गए हैं और कुछ समय के लिए निश्चिन्तता है। मैंने कल अपना निर्णय देने के लिए कह दिया।

लौटकर मैंने अपनी कविता पूरी की।

'झलक तुम्हारी मैंने पाई सुख-दुख दोनों की सीमा पर।'

मंगलवार, 23 सितम्बर, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर तेजी का पत्र मिला।

अजित बीमार है।

दत्त और सिंह आए। कार उन्हें किराए पर मिल गई थी। मेरी स्वीकृति चाहते थे। अजित की बीमारी के समाचार से मुझे कुछ झिझक थी। सोचा, यहाँ रहूँगा तो और चिन्ता में डूबा रहूँगा, कर तो कुछ नहीं सकता, फिर इन लोगों ने इतनी बार कहा है। छह-सात रोज़ में लौट आने को कहते हैं। कह दिया, अच्छा चलूँगा तुम्हारे साथ। वे बहुत खुश हुए। वे लोग भी कोई ऐसी कम्पनी चाहते थे जिससे निकटता हो। मैं न जाता तो शायद ही वे किसी और को लेते। शायद यह भी सोचा हो कि मेरे कारण ड्राइविंग में भी कुछ सहायता मिलेगी।

मोटर-ड्राइविंग का लाइसेन्स मैं भारत से लाया था। उसी आधार पर पहले जाकर लाइसेन्स बदलवाया। कोई दिक़्क़त नहीं हुई। थोड़ी-सी फ़ीस अदा करनी पड़ी और मुझे इंग्लैण्ड में कार ड्राइव करने का साल भर का लाइसेन्स मिल गया।

दिन भर पुस्तकालय में रहा। A. E. के कई काव्य-संकलन समाप्त किए। भावनाओं का प्रवाह होते हुए भी A. E. में गहराई नहीं है। दिमाग़ पर बिना किसी प्रकार का बोझ अनुभव किए सारे संग्रह पढ़ डाले। ईट्स दिल और दिमाग़ दोनों को निचोड़ डालते हैं। अपनी भावनाओं से दूसरे को अवगत करना और चीज़ है, अपनी भावनाओं में दूसरे को डुबा देना और चीज़। प्रारम्भिक ईट्स की चर्चा में A. E. से उनकी तुलना की जा सकती है। बाद को उनकी राहें अलग हैं। राह एक भी हों तो A. E. बहुत पीछे छूट गए हैं।

यु. ला. से लौटकर खाना खाया।

तेजी और अजित को चिट्ठियाँ लिखीं।

अजित के कारण चिन्ता हो गई है। कुछ पढ़ने में मन नहीं लगा।

थोड़ा घूम आया।

एक कविता लेकर लौटा।

'तुमने माँगा हृदय प्यार कर सकनेवाला
तुम्हें शिकायत करने का अधिकार नहीं है।'

इसकी बहर और धुन वही है जो पिछली एक कविता की—

'राज उन्हें करने को दो तुम राज सिंहासन
प्यार मुझे करने को तिनकों का घर भर दो।'

इन कविताओं में भाव-संगीत कम और तर्क-प्रवाह अधिक है।

मैंने एक ज़मीन तैयार की है।

उस पर जो उगता है उसे उगने देना है।

स्वाभाविकता का भी एक बल, एक सौन्दर्य होता है।

कला की quality अन्ततोगत्वा व्यक्तित्व की quality है। बहुत अंशों में उसे बनाना असम्भव होता है। उसे सँवारा-सजाया तो शायद जा सकता है, बनाया नहीं; एक अर्थ में हम ऐसी सीमा से सीमित हैं जिसे हमने नहीं बनाया।

बुधवार, 24 सितम्बर, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर तेजी के पत्र की प्रतीक्षा थी।—तेजी का कोई और पत्र मिल जाए तो बाद का हाल मिले।—पत्र नहीं था, निराशा हुई, चिन्ता बढ़ी। तेजी को कह रक्खा है जब बीमारी वग़ैरह की बात हो तो रोज़ ख़त दिया करें, शायद उन्हें समय न मिला हो। बीमार के लिए सौ काम करने होते हैं।

दिन को A. E. की 'The Candle of Vision' पढ़ी। A. E. में sincerity है पर sincerity ऊँचा उठाने में पर्याप्त नहीं। A. E. जिस स्तर की बात करते हैं सच्चाई से करते हैं। पर ऊँचे उठने का प्रयास नहीं करते। अपनी पहुँच से ऊपर हाथ उठाना कलाकार की साधना है, 'जथा लाभ सन्तोष' सन्त की।

दिन को बैंक से बारह पौण्ड निकलवाए—ट्रिप के लिए—तीन-चार पौण्ड पर्स में थे।

शाम को खाने पर नीग्रा से बात हुई। वह भी लेक-डिस्ट्रिक्ट देखने को चलना चाहता है, अगर कार में एक और आदमी के लिए जगह बन सके। मैंने कहा, साथ-वालों से पूछूँगा।

रात को दत्त और सिंह आए। ट्रिप का पूरा प्रोग्राम उन्होंने बताया। नीग्रा को साथ ले चलने के लिए वे लोग राज़ी नहीं हुए—अच्छी कम्पनी रहता—बहुत जोवियल—सबका मनोविनोद करता। जब वे चले गए मैंने नीग्रा के कमरे में जाकर स्थिति स्पष्ट कर दी। उसने तो अपना बकस तैयार कर लिया था। कुछ निराश हुआ। पर फिर मेरी लाचारी समझ अपने मूड में आ गया। वह हर स्थिति परिवर्तन, प्रत्याशित, अप्रत्याशित—सबसे अपने को 'एडजस्ट' कर लेता है। उसके स्वभाव की यह flexibility मुझे बहुत भाती है। उसे साथ न ले जा सकने पर मैं ही ज़्यादा disappointed था।

कमरे में आकर मैंने ट्रिप के लिए अपना सामान वग़ैरह ठीक किया। कल 10.30 पर रवाना होना है।

बण्टी के लिए चिन्ता लगी थी। नींद नहीं आ रही थी।

बैठकर कुछ लिखने लगा।

12 बजे तक एक कविता पूरी हो गई।

'लाख देवता तुम हो, मेरी, किन्तु, वेदना क्या जानोगे?
नहीं मुझे मालूम कि मेरी
साँसों का यह जो दो-तारा,
इ को कसकर झंकृत करने
में कितना है हाथ तुम्हारा,
है तो मेरे एक प्रश्न का
उत्तर दे सकते हो? पूछूं?
मेरे जीवन की वीणा को और अभी कितना तानोगे?
लाख देवता तुम हो, मेरी, किन्तु, वेदना क्या जानोगे?'

अन्तिम पंक्ति में अर्थ-ध्वनि का अद्भुत समन्वय !

क्या मेरे बस में है कि झंकृत न हूँ?

अज्ञात के हज़ार हाथ मुझे कसनेवाले हैं। मैंने अपने को कसे जाने को छोड़ जो दिया है।

गुरुवार, 25 सितम्बर, '52

ब्लैकपूल में हूँ। समुद्र के किनारे का नगर लिवरपूल भी समुद्र के तट पर है। 'पूल' तो किसी गड़ही—तालाब—को कहते हैं। समुद्र को 'पूल' क्यों कहने लगे? या 'पूल' का कोई दूसरा अर्थ है? राजपूताने में, सुना है, तालाब को समुद्र—समुन्द—कहते हैं। रेगिस्तान में जहाँ जल का सर्वथा अभाव है, थोड़ा भी पानी दिखा तो वह समुन्द लगा। कहीं पढ़ा था जहाँ आज राजपूताना है वहाँ कभी समुद्र था। शब्द में कोई पुराना इतिहास तो नहीं छिपा? जैसे 'पूल' में भी। पहले 'पूल' रहा हो। फिर समुद्र ने बढ़करउसे आत्मसात कर लिया हो। नाम पुराना चला आता हो।

सिंगिलबेड-रूम है मेरा। सिंह का बग़ल में। कमला-विश्वा का डबल बेडरूम कुछ दूर पर।

बाहर जोरों का तूफ़ान चल रहा है। आवाज़ कमरे में भी सुनाई देती है। होटल समुद्र-तट के सामने की सड़क पर है। ग़नीमत है कि यह कमरा पीछे की ओर है।

ब्रेकफ़ास्ट पर तेजी के पत्र की प्रत्याशा थी।

मिल जाता तो चलने के पहले latest news मिल जाती बण्टी के सम्बन्ध में। पिछला पत्र 15 का था। 20 को भी लिखा होता तो 24 को मिल जाता। कभी-कभी 4-5 दिन में पत्र आ जाते हैं; कभी-कभी 7-8 दिन में। अब तो लौटने के पहले शायद ही कोई समाचार मिल सके। आशा ही कर सकता हूँ कि वहाँ सब ठीक होगा।

सुबह रवाना होने के पहले तेजी को पत्र लिखा। अपना रफ़-प्रोग्राम उन्हें लिख दिया। रास्ते में पोस्ट-आफ़िसों में तार के लिए पूछता जाऊँगा। शायद तेजी को भेजने की जरूरत पड़े।

साढ़े दस पर कमला, विश्वा, सिंह गाड़ी लेकर आ गए।

हम लोग क़रीब 11 बजे केम्ब्रिज से रवाना हुए थे।

मौसम बहुत अच्छा था, सड़क भी बहुत अच्छी थी, गाड़ी ठीक चल रही थी। ज़्यादातर सिंह ने ड्राइव की, मैंने कुछ देर, उसे आराम देने के लिए। सडकों का एक बड़ा नक़्शा इन्द्रजीत साथ लाए थे। हम लोग डरबी (जहाँ की लाटरी दुनिया भर में मशहूर है—सबसे बड़ी रक़मवाली) और मैनचेस्टर होते हुए साढ़े आठ बजे रात को ब्लैकपूल पहुँचे। यहाँ पहुँचते-पहुँचते बारिश ज़ोरों की होने लगी थी और हवा भी समुद्र की ओर से तट को बड़ी तेज़ी से चल रही थी। होटल में जगह केम्ब्रिज से ही रिज़र्व करा ली थी। कार गराज करने की जगह दूर थी।

एक रेस्ट्राँ में हमने खाना खाया। शाकाहारी की मुसीबत। कुछ मिल ही गया।

फिर रोशनी देखने निकले। आजकल यहाँ Festival of Light मनाया जा रहा है। रोशनी बहुत अच्छी है। ब्लैकपूल के समुद्री किनारे पर रंग-बिरंगी रोशनी किसी परी-देश की याद दिलाती है।

हवा तेज़ पहले से भी थी, देखते ही देखते बहुत तेज़ हो गई और हमने होटल लौट आने का निश्चय किया।

कमला साड़ी पहनकर गई थीं। उनकी तो साड़ी ही उड़ने लगी और वे बी सड़क पर बैठ गईं। हम सँभालकर उन्हें एक मकान के पीछे ले गए और पीछे रास्ते से ही हम लोग होटल आए।

इतनी तेज़ हवा का अनुभव मुझे जीवन में दूसरी बार हुआ।

पहली बार देहरादून में हुआ था।

बहुत-सी यादें जागीं।

शुक्रवार, 26 सितम्बर, '52
ब्लैकपूल

हम लोग ब्रेकफ़ास्ट पर मिले।

ब्रेकफ़ास्ट अच्छा मिला।

फिर हम लोग मोटर गराज पर गए।

गाड़ी में कुछ गड़बड़ी मालूम हुई। बनने को दी।

दो बजे तक हम लोग समुद्र के किनारे और बाज़ारों में घूमे।

हवा का ज़ोर ख़त्म हो गया था; मौसम साफ़ था।

रोशनीवाला मज़ा दिन को कहाँ!

चमक के लिए अँधेरे की बैकग्राउण्ड चाहिए।

रात का परियों का देश बनियों की दूकान में बदल गया था।

एक कैफ़ेटेरिया में हमने खाना खाया।

ट्रैम से फ़्लीटवुड गए।

वहाँ कुछ ज़्यादा देखने को नहीं था।

समुद्री किनारा ऐसा है कि उस पर बैठकर बाँस-डोर-कटिया के सहारे मछलियाँ फँसायी जा सकती हैं।

मछली फँसानेवालों की एक पूरी क़तार।

लोग धैर्य-समाधि लगाकर बैठे—कटिया हिलने के इन्तज़ार में।

फुटवाल या क्रिकेट-मैच देखने की बात कुछ समझ में आती है। कुछ हलचल है, दौड़-धूप है, कुछ होता है, कुछ होने की आशा है, न होने की निराशा। कुछ उत्साह, कुछ कौतूहल देखने को भी होता है।

यहाँ मछली फँसानेवाला मूर्तिवत् बैठा है।

आप जड़वत् बनकर उसे देखिए।

फिर भी बहुत-से लोग यह क्रिया-शून्य तमाशा देखने आते हैं।

शायद सक्रियता की अतिशयता की प्रतिक्रिया।

कुछ देर हम लोग समुद्र-तट पर घूमे। मौसम साफ़ था, धूप निकली थी, हवा चल रही थी, पर तेज़ नहीं।

हमने एक रेस्ट्राँ में चाय पी और वापस आए।

शाम को रोशनी देखने निकले।

आज लाइटहाउस से लेकर सड़कों तक शहर बिजली के अगणित बल्बों से जगमग! बिजली के क्रम से जलते-बुझते बल्बों से अनेक मनोरंजक चित्र बनते-मिटते थे। एक जगह दो मयूरों का पर फैलाना और समेटना बड़ा आकर्षक था! हज़ारों लोग रोशनी देखने को निकले थे।

ध्यान आना स्वाभाविक था—अमित-अजित होते तो यह रोशनी देखकर कितने खुश होते!

हमने कुछ तस्वीरी कार्ड ख़रीदे।

लौटकर होटल में खाना खाया। कुछ देर लाउंज में बैठे। कल सुबह यहाँ से प्रस्थान करने का कार्यक्रम बना। कमला और विश्वा का मन अभी रोशनी देखने से नहीं भरा था। वे लोग फिर रोशनी देखने गए; शायद पति-पत्नी कुछ देर अकेले घूमना चाहते थे। सिंह अपने कमरे चला गया। मैं अपने कमरे आया।

शनिवार, 27 सितम्बर, '52
ओल्ड इंग्लैण्ड होटल

दिन भर की यात्रा के बाद शान्त-सुविधाजनक जगह सोने को मिले, यात्री के लिए इससे बढ़कर सुख की कल्पना नहीं की जा सकती।

कार तैयार होकर 12 बजे मिलनी थी।

ब्रेकफ़ास्ट के बाद हम लोग मादाम तुसाद की नुमाइश देखने गए। कोई स्त्री है जो मोम या प्लासटिसीन से इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों या रोमांचक घटनाओं की प्रतिमूर्ति बनाती है। नुमाइश में बहुत-से विश्व-विख्यात लोगों की मूर्तियाँ थीं—गांधीजी भी अपने चर्खे के साथ विराजमान थे—गांधीजी की मूर्ति बहुत अच्छी नहीं थी।

हम लोग क़रीब बारह बजे ब्लैकपूल से रवाना हुए।

पहले लैंकास्टर में रुके। लैंकास्टर पुराने समय में ड्यूकडम था। ड्यूक आफ़ लैंकास्टर का ज़िक्र इतिहास और साहित्य में बहुत बार आता है।

हमने लैंकास्टर का कासिल देखा। एक गाइड ने कासिल का इतिहास बताया। कहते हैं, इस क़िले से फाँसी के जितने फ़रमान निकले उतने इंग्लैण्ड में कहीं और से नहीं। क़ैदियों की कोठरियाँ देखीं; फाँसी की कोठरी भी। गाइड ने फाँसी देने का तरीका भी समझाया। प्रदर्शन के लिए एक फन्दा लटक रहा था। जितने लोगों को वहाँ फाँसी दी गई थी उनके नामों की सूची वहाँ लगी थी। कुछ प्रसिद्ध व्यक्ति भी उनमें थे। ड्यूक की कचहरी का हॉल भी देखा। गाइड ने बताया क़ैदियों को पहले दागने की प्रथा थी—गरम लोहे से। एक लोहे के शिकंजे में—जो हॉल में लगा था—क़ैदी का हाथ जकड़ दिया जाता था कि वह हिल-डुल न सके और फिर उसे 'आराम' से दागा जाता था। क़ैदी चिल्ला सकता था, पर हाथ को तिल भर भी नहीं हिला सकता था। क़ैदी को दागा इसलिए जाता था कि अगर वह जेल से बच निकले या दुबारा जुर्म करे तो उसे आसानी से गिरफ़्तार किया जा सके। शिनाख़्त से बचने के लिए मुजरिम कभी-कभी दागे हाथ को ही कटवा देते थे!—मनुष्य किन वहशीपनों से सभ्यता की ओर बढ़ा है—पर उसमें अब भी कितना वहशीपन मौजूद है।

लैंकास्टर से चलकर हम केण्डल आए। शेक्सपियर में 'केण्डल कास्ट्यूम' का ज़िक्र है। सम्भव है, कभी यह अपनी रंगीन या अजीबोग़रीब पोशाक के लिए प्रसिद्ध हो। क़स्बा बहुत पुराना है। क़स्बे के किनारे पर रोमनों का क़िला है जो खँडहर रह गया है। हम क़िले के टीले पर चढ़े। कुछ दीवारें अब भी खड़ी हैं। हमने तीन सौ बरस पुरानी कोच की एक सराय—The Fleece Inn में चाय पी। आख़िर कोच जो केण्डल से लन्दन गया था उसके पहिये, चाबुक, भोंपू इस सराय में रक्खे हैं और सराय का मालिक उन्हें अभिमान से दिखाता है। अंग्रेज़ों को पुरानी चीज़ों का मोह बहुत है। यहीं उनकी इतिहासप्रियता का आरम्भ है। पुराने से बेहद चिपकनेवाले हम इतिहासप्रिय क्यों नहीं बने?

केण्डल से चलकर शाम होते-होते हम विंडरमियर पहुँच गए। होटल में जगह हमने ब्लैकपूल से रिज़र्व करा ली थी।

दूसरी मंज़िल पर अपने कमरे की खिड़की से झील का दृश्य देखकर मैं अवाक् रह गया। लगा हम प्रकृति का सौन्दर्य नहीं देख रहे हैं, कोई रंगीन चित्र देख रहे हैं। सन्ध्या के पारदर्शी प्रकाश में प्रकृति की जो सुषमा हमने देखी वह शायद ही कभी भुलाई जा सके। मैं बड़ी देर तक क्रमशः धुँधलाते उस दृश्य को देखता रहा। फिर मन सहसा उदास हो गया। तेजी, काश, यहाँ होतीं, और उनके साथ मैं यह दृश्य देख सकता। विश्वा से ईर्ष्या हो आई। सुन्दर चीज़ों को देखकर मेरा मन न जाने क्यों उदास हो जाता है। शायद अपनी कुरूपता—भीतर की, बाहर की, चारों ओर की खलने लगती है।

हाथ-मुँह धोकर हमने खाना खाया। फिर घूमने निकले।

अष्टमी का चाँद निकला था। रोशनी उसकी तेज़ नहीं थी। पर उस दबी-दबी-सी रोशनी ने सारी प्रकृति को solemn (शान्त-गम्भीर) वातावरण में डुबा दिया था। सड़क पर सिवा हमारी पार्टी के लोगों के और कोई नहीं था। सर्दी भी ज्यादा होने लगी थी। कुछ देर हम लोग लाउंज में बैठे। जिस होटल में हम ठहरे हैं, बहुत पुराना है, रानी एलिज़ाबेथ के समय का। बहुत बड़े-बड़े लोग इसमें आकर ठहर चुके हैं, ड्यूक आफ विंड्सर, जापान-सम्राट्, जोर्डन के शाह। होटल यह बहुत ठाठ का है, बहुत खर्चीला भी, पर हमें बार-बार तो यहाँ आकर ठहरना नहीं है।

तेजी को अपने कमरे में बैठकर चिट्ठी लिखी।

अमित-अजित के लिए तस्वीरी कार्ड लिखे।

जो प्रदेश बहुत दिनों से हमारी कल्पना में था आज हम वहाँ बैठे हैं। यह प्रदेश इंग्लैण्ड का सबसे सुन्दर भाग माना जाता है, मुझे वेल्स (बीचली से मनमथ शायर तक) भी बहुत सुन्दर लगा था। वहाँ नदी का सौन्दर्य था, यहाँ झील का। वर्ड्सवर्थ दोनों स्थानों से सम्बद्ध थे।

रविवार, 28 सितम्बर, '52

हम लोग ब्रेकफ़ास्ट टेबिल पर मिले।

सलाह हुई मोटर लांच से कुछ देर लेक विंडरमियर की सैर की जाय। हमने घण्टे भर के लिए मोटर लांच किराए पर ली। झील का पानी स्वच्छ, निर्मल-नील। बीच-बीच में छोटे-छोटे द्वीप हैं, लगता है उन पर सुन्दर पेड़-पौधे स्वाभाविक नहीं उगे, लगाए गए हैं। ऐसा हो भी सकता है। प्रकृति को सुन्दर रखने, और सुन्दर बनाने में यहाँ मनुष्य ने सहायता दी है, इसमें सन्देह नहीं। दिन-भर भी झील पर घूमना होता तो हम न ऊबते। झील और झील के तटों का कुछ सौन्दर्य देख और बहुत-से की कल्पना करते हम लौटे।

क़रीब ग्यारह बजे के हम लोग विंडरमियर से ग्रासमियर के लिए रवाना हुए—'मियर' का क्या अर्थ है? शायद जलाशय।

मौसम अच्छा था। हमारी मोटर झील के किनारे-किनारे बने पहाड़ी रास्तों से होकर जा रही थी और हम प्रकृति के सौन्दर्य में स्नान करते आगे बढ़ रहे थे। समय होता तो इस रास्ते पर पैदल चलने का मज़ा लिया जाता।

दो बजे के लगभग लुवाक की एक पुरानी सराय में ठहरकर हमने लंच लिया। बताया गया कि यह सराय चौदहवीं सदी से चली आ रही है। बिजली की रोशनी

सिर्फ़ बाहर होती है, कमरों में केवल मोमबत्ती जलती है। औपचारिक भोजों पर लन्दन, केम्ब्रिज, आक्सफ़र्ड ऐसी जगहों में भी अंग्रेज़ केवल मोमबत्ती का प्रकाश चाहते हैं। निश्चय, पुरानी परम्परा के मोह में।

वहाँ से चलकर हम कोनिस्टन आये। वहाँ रस्किन म्यूज़ियम है। म्यूज़ियम में रस्किन से सम्बद्ध बहुत-सी चीज़ें रक्खी हैं, विशेष उनकी पुस्तकें, पाण्डुलिपियाँ।

शाम होते-होते हम ग्रासमियर पहुँचे।

रहने की जगह पहले से हमने रिज़र्व न की थी इसलिए कुछ घूम-फिरकर हमने ठहरने का इन्तज़ाम किया—यहाँ—Beek Staple में।

सामान कमरों में रखकर हम वड्र्सवर्थ की समाधि और उनका Dove Cottage देखने निकले।

वड्र्सवर्थ की समाधि एक गिरजे के बाहर बनी है। समाधि पर किसी प्रकार का पत्थर नहीं रक्खा—हरी घास की चादर बिछी है। प्रकृति-प्रेमी वड्र्सवर्थ की समाधि ऐसी ही होनी चाहिए थी। उनके परिवार के अन्य प्राणियों की समाधियाँ भी साथ हैं। सबको एक जँगले से घेर दिया गया है। कुछ देर उनकी समाधि के सामने खड़े हम कल्पना में डूबे रहे। उनकी न जाने कितनी पंक्तियाँ दिमाग़ में गूँजीं। गिरजे में प्रार्थना हो रही थी। हम Dove काटेज देखने की जल्दी मे थे; थोड़ी ही दूर था; पर जब तक हम वहाँ पहुँचे वह बन्द हो गया था। इस समय हम उसे केवल बाहर से देख सके। काटेज बहुत छोटा और सादा है। क्या अंग्रेज़ी का यह महान् कवि इसी दीन-हीन घर में रहकर काव्य-कला की साधना करता था? साधना के लिए ऐसा ही स्थान उपयुक्त है। वास्तव में वड्र्सवर्थ की साधना-भूमि तो प्रकृति थी जिसका सौन्दर्य यहाँ की पर्वत-माला, झील-झरनों, पेड़-पौधों में बिखरा पड़ा है। काटेज के पास ही 'वड्र्सवर्थ म्यूज़ियम' है, पर वह भी इस समय बन्द था। हम लोग कुछ देर ग्रासमियर में घूमकर उसका प्राकृतिक सौन्दर्य देखते रहे। बार-बार यही ध्यान आता था कि इन्हीं रास्तों से कभी वड्र्सवर्थ स्वयं आते-जाते होंगे! बादल छाये थे, पानी की नन्हीं-नन्हीं बूँदें गिर रही थीं। ग्रासमियर में कोई रौनक़ या चहल-पहल नहीं थी। मन न जाने क्यों सब के उदास हो गये। हमने एक रेस्ट्राँ में बैठकर कुछ खा-पी लिया। और अपने निवास-स्थान को चले आये। हम लोगों के अतिरिक्त यहाँ और कोई नहीं ठहरा था। हममें से हरएक इतना उदास था कि कोई अकेले अपने कमरे में जाने को तैयार न था। लाउंज की अँगीठी में हमने आग जलायी और बारह बजे तक कला-कविता की चर्चा करते सब साथ बैठे रहे। बाहर बराबर वर्षा हो रही थी और कई नालियों से पानी गिरने की आवाज़ भीतर सुनायी पड़ती थी।

सोमवार, 29 सितम्बर, '52

सुबह तैयार होकर हमने साथ ब्रेकफ़ास्ट लिया।

सबने अपने रात के अनुभव बताये।

किसी को ठीक नींद नहीं आयी थी।

सब रात भर न जाने क्यों डरे-डरे-से रहे।

उस घर में ही कुछ अजीब-सी मनहूसियत थी।

साथ की दूकान से हमने कुछ कार्ड वग़ैरह लिये। लेक डिस्ट्रिक्ट के ऊपर मैंने एक किताब ख़रीदी। अमित-अजित देखेंगे तो खुश होंगे।

फिर हम वड्र्सवर्थ का Dove Cottage और Museum देखने गये। दोनों

के लिए 1 शि. 6 पे. का टिकट है। पास की बुक-शॉप से मैंने वड्र्सवर्थ का एक काव्य-संग्रह ख़रीदा—'डव काटेज' की यात्रा की यादगार में पास रखने को। एक और पुस्तक ली 'In the Steps of Wordsworth and Dorothy.' फिर हम लोगों ने 'डव काटेज' में प्रवेश किया।

एक महिला-गाइड ने हमको काटेज के कमरे-कमरे दिखाये। प्रवेश करते ही जो कमरा था वह वड्र्सवर्थ का ड्राइंगरूम था। डोरोथी का कमरा उसके पीछे था जिसमें वड्र्सवर्थ के इस्तेमाल के कुछ बर्तन रक्खे थे। उसके दूसरी ओर किचन और पैण्ट्री थे। सीढ़ियों से ऊपर जाकर आगे का कमरा वड्र्सवर्थ के पढ़ने-लिखने का कमरा था। उसका अधिकांश फ़र्नीचर वड्र्सवर्थ के समय का ही था। कुछ पुस्तकें भी उसमें थीं। उसके पीछे वड्र्सवर्थ के सोने का कमरा था। उनका बिस्तर अब भी रक्खा है। इसके बग़ल में एक और कमरा था जो कोलरिज के आने पर उन्हें दिया जाता था। इसके पीछे एक छोटा कमरा था जिसकी दीवारों को डोरोथी ने किसी समय अख़बारों से ढक दिया था। इसे Newspaper Room कहते हैं। इसमें एक बिस्तर रक्खा है; जिस पर, कहते हैं, वड्र्सवर्थ की मृत्यु हुई थी।

मकान देखकर हम लोग पीछे के बाग़ में गये। इसे उसी शक्ल में रखने का प्रयत्न किया गया है जिसमें वह वड्र्सवर्थ के समय में था। मकान की छतें नीची हैं; कहा जाता है, वड्र्सवर्थ काफ़ी लम्बे थे; तब तो निश्चय ही उन्हें हर जगह सिर झुकाये-झुकाये चलना पड़ता होगा। हो सकता है, इसी कारण वड्र्सवर्थ प्रायः बाहर रहना और घूमना पसन्द करते हों। बाद को, कहते हैं, वड्र्सवर्थ ने एक कमरा बाग़ में बनवाया था जिसमें बैठकर वे लिखते-पढ़ते थे। इस घर में उनके तीन बच्चे हुए। कोलरिज जब आते होंगे तब बच्चों समेत सात व्यक्ति इस छोटे-से घर में रहते होंगे। इसीलिए 1808 के बाद वे इस घर को छोड़कर रीडल माउण्ट में रहने चले गये थे। फिर इसमें डी. क्विंसी आकर रहे। वड्र्सवर्थ जब इसमें रहने आये उसके पहले इस घर में एक सराय थी जिसे 'Dove and Olive Branch Inn' कहते थे। उसी से उसका नाम Dove Cottage रख लिया गया था। घर में घूमते-फिरते मन बार-बार कल्पना करने का प्रयत्न करता, जब वड्र्सवर्थ इसमें रहते होंगे तब···

घर को देखकर हम लोग Wordsworth Museum देखने गये। वहाँ वड्र्सवर्थ के हाथ की लिखी 'Prelude' की कई प्रतियाँ रक्खी थीं। सारा परिवार ही उसे नक़ल करने में मदद देता होगा। कुछ हिस्से मिसेज़ वड्र्सवर्थ और कुछ डोरोथी के हाथ के लिखे हैं। डोरोथी का 'जर्नल' भी रक्खा है। वड्र्सवर्थ के हाथ की लिखी कई कविताएँ और चिट्ठियाँ भी रक्खी हैं। वड्र्सवर्थ ने अपनी पहली रचना में अपना कल्पित नाम Axiologus रक्खा था। यह रचना सन् 1787 में किसी योरोपियन मैगज़ीन में छपी थी। चार्ल्स लैम्ब ने मिल्टन की पुस्तकों के प्रथम संस्करण वड्र्सवर्थ को भेंट किये थे। 'Paradise Regained' की प्रति पर लैम्ब ने लिखा था—C. Lamb—To the best knower of Milton and therefore the worthier occupant of this pleasant edition (June 2nd, 1820)

वड्र्सवथ के प्रकृति-प्रेम में प्रायः लोग उनके साहित्यानुराग और प्रेम को भुला देते हैं। उन्होंने अपनी भाषा जनता और साहित्य दोनों से सीखी थी। हम लोग बड़ी देर तक वड्र्सवर्थ के चित्रों, पत्रों, पाण्डुलिपियों को देखते रहे।

लगभग बारह के हम लोग ग्रासमियर से हैरोगेट के लिए रवाना हुए। रास्ते

में कुछ देर हम लोग Ulls Water Lake पर रुके। लेक विण्डरमियर के सौन्दर्य को जैसे हमने एक बार फिर देखा। प्रातः या सन्ध्या को शायद उसका दृश्य और अच्छा लगता। मौसम भी अच्छा नहीं था। धीरे-धीरे बारिश हो रही थी।

सात बजे शाम को हम लोग हैरोगेट पहुँचे। प्रकृति की गोद से हम एक आधुनिक नगर में आ पहुँचे—क्लैरेण्डेन होटेल में ठहरे। खाना खाने के बाद आग के पास बैठकर मैंने कमला, विश्वा और सिंह को 'Immortality Ode' पढ़कर सुनाया और उसका अर्थ बताया।

आज हमने मोटर से कोई 120 मील तै किये।

मंगलवार, 30 सितम्बर, '52

ब्रेकफ़ास्ट के बाद हम लोग हैरोगेट का Royal Bath देखने गये। यहाँ गन्धक के पानी का चश्मा है जिससे गठिया का इलाज किया जाता है। यह एक प्रकार का अस्पताल है। एक नर्स ने हमें सब तरह के स्नान के तरीक़े दिखाये-समझाये। हममें से अभी तो कोई भी गठिया का मरीज़ नहीं, इसलिए अपना थोड़ा-सा कौतूहल शान्त कर हम हेवर्थ के लिए रवाना हो गये।

पहले चर्च में जाकर ब्राण्टे सिस्टर्स की कब्र देखी।

फिर उनका घर देखने गये जिसमें उनकी चीज़ों-पुस्तकों का संग्रह है। बहुत यत्न के साथ उनका जो कुछ भी प्राप्त हो सका है, सुरक्षित रक्खा गया है। ब्राण्टे सिस्टर्स जितनी ही प्रतिभाशालिनी थीं उतनी ही दुर्भाग्य की छाया से ग्रस्त। संग्रह की एक-एक चीज़ मन को उदास कर देती है—वह सोफ़ा जिस पर एमीली ब्राण्टे की मृत्यु हुई थी···।

वहाँ से कुछ तस्वीरी कार्ड ख़रीद हम लोग वह मूरलैण्ड देखने गये जिसका वर्णन 'Wuthering Heights' में है।

पानी बरस रहा था और 'Wuthering Heights' पर बादल-कुहासा छाया था। ब्राण्टे सिस्टर्स के घर-क़ब्र ने हमें काफ़ी उदास कर दिया था। मूरलैण्ड के उदासी में डूबे दृश्य ने तो हमें परास्त ही कर दिया। हमारा मन वहाँ से दूर भाग जाने को होने लगा। ऐसी फ़ीलिंग हम सबको हुई—एक साथ।

सबों की राय हुई कि अब सीधे केम्ब्रिज चला जाय।

इन्दरजीत ने हिम्मत बाँधी।

रास्ता अब भी 120 मील के ऊपर था।

खाना खाते-खाते साढ़े तीन हो गये।

हेवर्थ की पहाड़ियों से निकलते हुए हम रास्ता भूल गये और बहुत घूम-फिरकर ठीक रास्ते पर आये।

बस फिर चलते ही गये।

रास्ते में एक जगह चाय पीने को रुके।

वेडफ़र्ड और वेकफ़ील्ड से गुज़रे—शायद गोल्डस्मिथ के 'Vicar of Wake field' की भूमि।

केम्ब्रिज पहुँचते-पहुँचते साढ़े ग्यारह बज गये।

पानी बरस रहा था। मोटर भी कुछ तकलीफ़ देने लगी थी। इन्दर की हिम्मत से हम किसी तरह केम्ब्रिज पहुँचे।

ख़ुशक़िस्मती से 'कोहनूर' खुला था। सब भूखे थे। हमने वहाँ खाना खाया। दत्त ने अपनी लैण्डलेडी को फ़ोन किया; कोई उत्तर नहीं मिला। रात उन्होंने

हौटल में बिताने का निश्चय किया।

सिंह मुझे कासिल ब्रे छोड़ गया।

सामने का दरवाज़ा बन्द हो गया था। पीछे के दरवाज़े से मैं अपने कमरे में पहुँचा।

घर की चिट्ठी के लिए व्यग्र था। न मेरे कमरे में थी, न खाने के कमरे में। मिसेज़ लारी ने शायद अपने पास रख ली हो।

सुबह ही पता लग सकेगा।

बुधवार, 1 अक्टूबर, '52

सुबह नींद खुली तो आठ बजे थे। बाहर कुछ खटर-पटर सुनायी दी। ख़्याल आया, मिसेज़ लारी आ गयी होंगी। पहले जाकर उनसे चिट्ठियाँ लीं। तेजी की एक ही चिट्ठी थी, 23 की, अजित ठीक हो गया था और घर पर सब ठीक था।

तेजी ने लिखा था, रीता आजकल प्रयाग में हैं, तेजी से मिली थीं, उन्होंने भी तेजी को बताया कि वंशो ने मेरे बारे में आरोपजनक बातें उनकी माँ से कहीं, उनकी मौजूदगी में ! शेरवानी की बात की तसदीक हुई। मैं अभी तक नहीं समझ सका, वंशो ने किस मतलब से मेरे बारे में यह झूठी बातें फैलायीं। हो सकता है कि उसने किसी दूसरे से सुनीं, पर उसमें क्या ऐसा है कि उसके पेट में नहीं पचता और वह जगह-जगह उसको दुहराता फिरता है। ख़ैर, अब इस पर दिमाग़ ख़राब करने से क्या फ़ायदा। मुझे जो नुक़सान वह पहुँचाना चाहता था, शायद वह पहुँच चुका। मुझे जो पण्डितजी ने और छात्रवृत्ति नहीं दी या दिलायी उसमें सम्भव है इस कहानी का भी कुछ प्रभाव हो, जो उनके कानों तक अवश्य पहुँची होगी—हाकिम के आँख नहीं होती, सिर्फ़ कान होते हैं।

हाथ-मुँह धोकर ब्रेकफ़ास्ट किया।

मिसेज़ मलेटका के यहाँ पार्सल की पूछ-ताछ करने गया। तेजी ने लिखा था कि एक पार्सल उन्होंने भेजा है। पर वह अभी तक मुझे नहीं मिला। तेजी कभी-कभी बड़ी गोल-मोल बातें लिखती हैं। क्या यह नहीं लिख सकती थीं कि पार्सल किस चीज़ का था, और वह किस पते पर, किस तारीख़ को वहाँ से भेजा गया था।

कालेज गया। वहाँ भी दो-एक चिट्ठियाँ थीं।

लौटते हुए रास्ते में बाल बनवाये। एक टोपी ख़रीदी। शाम को अब सर्दी पड़ने लगी है, बाहर निकलूँ तो सिर ढकने की ज़रूरत होगी।

आकर स्नान किया। कमरे की चीज़ें ठीक कीं।

लंच लेकर सो गया। यात्रा में ही कान में कुछ दर्द शुरू हो गया था, शायद ठण्ड के कारण, थकान भी थी, साढ़े छः बजे सोकर उठा।

खाना खाने के बाद दत्त के यहाँ गया। वे घर पर नहीं थे। कमला ने बताया कि वे मेरा सामान लेकर मेरे यहाँ गये हैं। कल मेरा कुछ सामान उनके ट्रंक में चला गया था। कुछ देर बाद वे लौटे। सामान मेरे कमरे में छोड़ गये थे। कल नार्टिघम जा रहे हैं—अपने शोध कार्य के सिलसिले में। वहाँ कुछ सामग्री है।

उन्होंने बताया ख़र्च सबका 14-14 पौण्ड आया है। 10 पौण्ड मैंने तुरत दे दिये, शेष बाद को दे दूँगा।

लौटा तो 10·30 हो गये थे।

तेजी के पत्र का उत्तर दिया। अमित के जन्म-दिन के लिए कार्ड तैयार किया,

उन्हें चिट्ठी भी लिखी।

आसमान में एक पतला बादल छाया था, जिसके पीछे से चाँद पीला-पीला दिखायी दे रहा था। जैसी चाँदनी अपने देश में छिटकती है, वैसी यहाँ कहाँ।

दिन को कई घण्टे सो चुका था।

नींद नहीं आ रही थी।

तेजी के पत्र में लिखी रीता की बात भूली नहीं थी।

पहले वंशो पर क्रोध आया था। उसी में 'दोस्तों के सदमे' लिख डाला था।

बाद को इस सारे प्रसंग पर भारी अफ़सोस भी हुआ था।

आज वही अफ़सोस फिर मेरे दिल को दबा रहा है।

मनुष्य ऐसा भी करता है!

मित्र ऐसा भी करता है!!

"तू अचम्भे,
क्रोध के पथ पर लुढ़कता
वेदनाओं के गढ़े में आ गिरा है।
तम घिरा है।
मिल नहीं पातीं विचारों की दिशाएँ।
मुँह किसे मन की सुनाए ?
ओ विचिन्तित, शोक-संचित
रो तुझे जो आँख तेरी
आज रोने दे।
ओ अभागे,
इस हृदय की वेदना को
खौलने दे,
खौलकर ही शान्त होने दे।
ओ समुन्दर से घिरे
परदेस की ठण्डी, अँधेरी रात,
सोने दे, न सोने दे,
प्रात होने दे!

गुरुवार, 2 अक्टूबर, '52

रात काफ़ी देर हो गयी थी।

एलार्म लगाकर सोया।

ठीक समय से उठ गया।

तैयार होकर ब्रेकफ़ास्ट किया।

मन में बड़ा पश्चात्ताप था।

एक सप्ताह से शोध-सम्बन्धी कोई काम नहीं किया।

ईट्स पर होन की पुस्तक उठाई। आज दिन भर में समाप्त करने के इरादे से।

दो बजे तक पढ़ता रहा।

लंच के बाद थोड़ा आराम कर फिर पुस्तक में जुट गया।

शाम तक सिर्फ़ 50 पृ. शेष रहे।

नोट्स भी ज़रूरी ले लिये।

खाना खाने के बाद थोड़ा घूमने के लिए बाहर निकल गया।

मौसम अच्छा नहीं था, पानी धीरे-धीरे बरस रहा था, हवा में ठण्डक थी, पर दिन भर कमरे से बाहर नहीं निकला था। कमरे की घुटन से बाहर कुछ भीगना-भागना, ताज़ी हवा के झोंके झेलना अच्छा लगा।

ह्रोन फिर उठायी, पर मन नहीं लगा। लीथान आधुनिक कविता की एक anthology छोड़ गया था। उसकी कुछ कविताएँ पढ़ीं।

आज गांधीजी का जन्म-दिन था। मजलिस ने किसी प्रकार का कार्यक्रम नहीं रक्खा था। टैगोर सोसाइटी ने टैगोर का जन्म-दिन मान लिया था। मजलिस मरी संस्था। साझे की खेती। सोने से पहले मैंने 'सूत की माला' और 'खादी के फूल' से कुछ कविताएँ पढ़ीं।

शुक्रवार, 3 अक्टूबर, '52

सुबह तैयार होकर कालेज गया।

नोटिस बोर्ड से कुछ सूचनाएँ संग्रह करनी थीं।

ओवरकोट मरम्मत करने को देता गया—कहीं-कहीं से सीवन टूट गयी थी, जाड़ों में ज़्यादा पहनना पड़ेगा।

अमित को भेजने के लिए स्टैंप-कलेक्शन पर एक किताब ली।

नये रेडियो-टाइम्स की प्रति ली—अच्छे प्रोग्रामों को जानने के लिए।

लौटने पर राजन की चिट्ठी मिली, जिसने मुझे कुछ देर को परेशान कर दिया। साझे के घर में किस-किस तरह के झगड़े खड़े हो सकते हैं, इसकी कल्पना मैं भली-भाँति कर सकता हूँ। तेजी को यह सब झेलना पड़ रहा है। जो लोग मकान में रहते हैं वे ही कम झगड़ालू नहीं, फिर वे औरों को लाकर, किरायेदार के किरायेदार बनाकर बसाते हैं। वे कब किसी का ख़्याल करने लगे या किसी की सुनने लगे। लोग किराया क्या देते हैं, समझते हैं उन्हें घर में जो चाहें करने का अधिकार है। हम अभी संस्कारतः ग्रामीण हैं; स्वस्थ, शिष्ट, शालीन नागरिक की तरह हमें रहना नहीं आता। शिकायत भी कोई करे तो किससे। आज़ादी के साथ लोगों को क़ानून का डर या उसकी फ़िक्र नहीं रह गयी। क़ानून से न्याय-अन्याय सब कुछ कराया जा सकता है। कम-से-कम न्याय को अनिश्चित काल के लिए टाला जा सकता है। आदमी न्याय की प्रतीक्षा में परेशानी उठाता जाये, कब तक? कब तक ? कब तक ? हमारी कचहरियों के फ़ैसलों में सालों लगते हैं। क़ानून में सबसे पहला सुधार यह होना चाहिए कि फैसला जल्दी हो।

अगर किन्हीं स्वतन्त्र मकान मिल सके तो तेजी को यह बँगला छोड़ देना चाहिए। 17 क्लाइव रोड से हमारा क्या मोह ? मकान के मसले पर बहुत देर सोचता रहा। तेजी ने मुझे इस विषय में कुछ नहीं लिखा। सोचा होगा, मैं कुछ नहीं कर सकता तो मुझे क्यों परेशान किया जाये।

ह्रोन के शेष 50 पृ. समाप्त किये।

लाइब्रेरी जाकर पुस्तक लौटायी। दो और पुस्तकें। 4 को सब लौटानी थीं। एक रख ली।

रीड की पुस्तक ईट्स पर शुरू की। शाम तक पढ़ता रहा।

खाना खाने के बाद भी पढ़ी। ग्यारह बजे रात तक। समाप्त नहीं हो सकी। कल 1 बजे के पहले समाप्त कर उसे लौटाना है।

शनिवार, 4 अक्टूबर, '52

तेजी के पत्र की प्रतीक्षा थी। नहीं आया।

अब सोमवार को ही पत्र की आशा की जा सकती है।

कई बार उनको लिख चुका, हर तीसरे दिन पत्र दिया करें।

पिछला पत्र 23 को मिला था।

अगर 26 को लिखा होता तो 4 तक मिल जाना था।

कमरे में आकर रीड की पुस्तक पढ़ता रहा।

मेरा ख़्याल था पुस्तक साढ़े बारह तक ख़त्म हो जायेगी। आख़िरी चैप्टर रह गया। वही सबसे ज़्यादा ज़रूरी था। किताब लौटाने की आज आख़िरी तारीख थी। लाइब्रेरी एक पर बन्द होनेवाली थी। सीधे लाइब्रेरी गया, पुस्तक लौटायी। अन्तिम चैप्टर फिर कभी पढ़ लूँगा।

कई दिनों के बाद धूप निकली थी। जी चाहा कहीं बाहर जाकर बैठूँ। लंच के बाद कुछ पत्रिकाएँ उठा लीं और कैम किनारे चला गया। वहाँ बहुत-से लोग धूप लेने आये थे। मैं घास पर बैठा पत्रिकाएँ देखता रहा। सूर्यास्त हो गया तब कमरे वापस आया। खाना खाया। खाना आज अच्छा नहीं था।

घूमने को दत्त के घर की तरफ़ चला गया। मेरा ख़्याल था, दत्त नाटिंघम में हैं, कमला अकेली होंगी; उनसे हाल-चाल पूछ आऊँ। दत्त घर पर मौजूद थे। गर्दन में फोड़ा निकल आने की वजह से जल्दी वापस चले आये थे। रेडियो की ख़बर वहीं सुनी। बाद को चर्चिल का भाषण था—जार्ज छठे के स्मारक के सम्बन्ध में। चर्चिल के स्वर में आभिजात्य का गाम्भीर्य है।

रविवार, 5 अक्टूबर, '52

इतवार का आलस।

आलस में दिन शुरू हुआ।

आलस दिन भर छाया रहा।

आलस में समाप्त हो रहा है।

रेडियो अच्छी चीज़ है, बुरी भी चीज़ है, जैसे सब चीज़ें होती हैं। मेरा मन बहलाने को, अकेलापन दूर करने को, रेडियो अच्छी चीज़; पर मेरा मन ही बहलाता रहे, इतना मेरे साथ हो जाये कि किताबों को भी मेरे साथ न होने दे तो बुरी चीज़।

ब्रेकफ़ास्ट लेकर ऊपर आया तो रेडियो चला दिया।

सोचा आराम-कुर्सी पर लेटा आराम करता रहूँगा, पिछली थकावट दूर करने को और अगली थकावट के लिए तैयार होने को, रेडियो भी सुनता रहूँगा और कोई हल्की चीज़ पढ़ता भी रहूँगा।

Collins की 'Treasury of Modern Poetry' उठा ली।

भूमिका अच्छी लगी।

Modern Poetry आनन्द की चीज़ नहीं है। उसे समझना चाहो तो दिमाग़ को चौकस रक्खो। मैंने आज समझने की कोशिश ही नहीं की। जो समझ में आ सका आ गया, नहीं दिमाग़ के ऊपर से—या चश्मे के ऊपर से—निकल गया—मुहावरा क्या बुरा है ?—डेढ़ बज गये।

सूट-बूट डाटकर कौन लंच लेने जाये !

कमरे में ही दूध, फल, बिस्किट का लंच कर लिया।

आराम-कुर्सी पर ही कम्बल लेकर लेट गया—सो गया—चार बजे नींद खुली।

कुछ गम्भीर पढ़ने का मन नहीं हो रहा था।

चिट्ठियाँ लिखीं सत्येन्द्र को, डेनिस को, नारायण को। इनके पत्र कई दिन हुए आये थे।

शाम को खाने पर नीग्रा मिला। उसे लेक डिस्ट्रिक्ट की यात्रा का हाल बताता रहा। बताया कौन-कौन साथ था। बोला, अच्छा हुआ मैं नहीं गया—I could not stand a woman for a whole week ! शायद उसने मज़ाक में कहा, वैसे इंग्लैण्ड और योरोप में आज बहुत-से लोग हैं जो खुले आम अपने को misogynist घोषित करते हैं।

दिन-भर कमरे से बाहर नहीं निकला था। दत्त को देख आना चाहता था। वे मुझे रास्ते में मिले। गर्दन का फोड़ा ठीक हो रहा है। 'कोहनूर' में खाना खाने जा रहे थे। उनके साथ मुजीब भी था। छुट्टियों में पाकिस्तान हो आया था। कहता था 1300 रु. में जाने-आने का हवाई टिकट मिल गया। विद्यार्थियों के लिए कोई कन्शेसन रेट है। मुझे मिल सकता है, पर मैं इतना भी spare नहीं कर सकता। कैसे-कैसे आ ही गया। अब यहाँ रहने की समस्या है, लौटने की भी समस्या होगी। मेरे ऐसे आदमी को तो लौटने का किराया अलग जमा करा देना चाहिए; जिस दिन बाक़ी ख़र्च हो जाये उस दिन यहाँ से डेरा कूच कर देना चाहिए; यहाँ इज़्ज़त से तभी तक रहना सम्भव है जब तक जेब में पौण्ड रहे।

लौटकर फिर मैंने रेडियो सुना। आज बहुत अच्छा म्यूज़िक आता है। कोलिन्स की पुस्तक पर केवल नज़र दौड़ती रही—यानी कविताओं में जो कुछ तत्त्व की बात थी वह चश्मे के ऊपर से निकलती रही।

सोमवार, 6 अक्टूबर, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर तेजी का पत्र मिला।

रीता से तेजी की और बातें हुईं।

इस सम्बन्ध में सब कुछ विस्तार से जानने की तेजी की उत्सुकता स्वाभाविक है।

ऐसे मामलों में सफ़ाई देने से सन्देह और बढ़ता है।

तेजी को यह समझना चाहिए और इस सारी चर्चा की ओर उपेक्षा का भाव रखना चाहिए, अगर उनका मुझमें विश्वास है।

10.40 पर मुझे कालेज के चैपलिन मिस्टर बर्ड से मिलना था। कालेज के विद्यार्थियों को समय-समय पर चैपलिन से मिलना पड़ता है—अपनी धार्मिक समस्याओं पर सलाह लेने को। बर्ड मुझे बड़े स्नेह से मिले—पादरियों के ढंग से। उम्र ज़्यादा नहीं है।

मैंने उनसे कहा, अगर आप मुझे आज्ञा दें और मेरी बातों का बुरा न मानें तो मैं अपने धार्मिक विश्वासों के बारे में आपको बता दूँ। मैं हिन्दू के घर में पैदा हुआ, हिन्दू हूँ और हिन्दू ही रहना चाहता हूँ। संस्कार से जो हिन्दू बच्चे को अपने माता, पिता, बड़ों, परिवार के लोगों, समाज के सदस्यों से मिलता है वह मैंने पूरी तरह पाया, पर हिन्दुत्व में बहुत-कुछ अपने-आप भी सीखने-जानने को है; वह इतना है कि पूरा जीवन भी उसे जानने के लिए काफ़ी नहीं है। मैं दावा नहीं करता कि मैं

हिन्दुत्व को पूरी तरह जानता हूँ। एक होता है जानना। एक होता है मानना। ज़रूरी नहीं है कि जो मैं जानूँ वह मैं मानूँ भी। हिन्दुत्व के नाम से जानी जानेवाली बातों को मानने या न मानने की हिन्दुत्व में पूरी स्वतन्त्रता है। मैं ही बहुत-सी बातों को नहीं मानता पर कोई मुझे हिन्दुत्व से बाहर नहीं करता और न मैं ही उन्हें न मानने के लिए हिन्दुत्व से बाहर जाने की ज़रूरत समझता हूँ। इतना ही नहीं, हिन्दुत्व के बाहर की कोई भी बात मानने के लिए हिन्दुत्व मेरे लिए कोई बाधा नहीं उपस्थित करता।

जन्म, अस्तित्व, मरण आदि तर्कोपरि विषयों के सम्बन्धों में जो जिज्ञासाएँ मनुष्य में होती हैं उन्हें शान्त करने के लिए धर्मों ने विश्वास का आश्रय लिया है, हिन्दू धर्म ने भी; पर स्थूल विश्वासों से सूक्ष्म दर्शनों तक जाने का भी रास्ता है, कम-से-कम हिन्दू धर्म में, गो मैंने उनकी खोज नहीं की। स्थूल विश्वासों को चेतन के स्तर पर सन्देह की दृष्टि से देखते हुए भी अवचेतन में शायद मैं उन्हें अपनाये हूँ और उनके जो भी अच्छे या बुरे परिणाम हों उन्हें भोगकर सन्तुष्ट हूँ। मैं उन विश्वासों में जन्मा-पला हूँ; उन्होंने मेरे self या अस्तित्व को रूप दिया है। उन्हें मैं छोड़ नहीं सकता। ऊपर से छोड़ भी दूँ तो भीतर से वे मुझे पकड़े रहेंगे।

व्यक्ति से समाज के सम्बन्ध को स्थिर करने और समाज को सुगठित, व्यवस्थित और अनुशासित करने के नियम भी हिन्दुत्व ने बनाये हैं। कुछ लोग उन्हें रूढ़ और शाश्वत मानते हैं। कुछ नहीं मानते। मैं न माननेवालों में हूँ। पर नियमहीनता समाज में नहीं चल सकेगी। देश, काल, व्यावहारिकता और उपयोगिता की दृष्टि से हिन्दुत्व उन्हें बदलता आया है। वास्तव में इस सम्बन्ध में हिन्दुत्व बहुत लचीला है। कुछ लोग खामख्वाह उसे कट्टर मानते या बनाते हैं।

नैतिक आदर्श जिन पर सब धर्म ज़ोर देते हैं प्रायः सबके एक-से हैं। यहाँ विश्वास नहीं व्यवहार काम देता है। मनुष्य उन तक नहीं उठ पाता तो किसी धर्म विशेष के कारण नहीं, अपनी स्वाभाविक या संस्कारगत दुर्बलता के कारण।

अन्त में हिन्दुत्व ने किसी सूक्ष्म तरीके से मुझे सिखाया है कि बाहर का उतना महत्त्व नहीं जितना भीतर का–Form का इतना महत्त्व नहीं जितना Spirit का। Form से जब मैं Spirit की ओर गया हूँ, या जब मैंने बाहर से भीतर की ओर देखा है मेरे लिए बहुत से भेद, भिन्नताएँ, अन्तर मिट गये हैं। जो बाहर की जड़ता से बँधे हैं, ऐसे लोग हिन्दुओं में कम नहीं हैं, वे मुझे दयनीय लगते हैं। कर्मकाण्ड या ritual सब धर्मों में हैं, ये बाहरी हैं। बहुतों को मैंने छोड़ दिया है। उनका अर्थ समझता हूँ। यज्ञोपवीत नहीं पहनता। अपने ऊपर तीन प्रकार के ऋण मानता हूँ। कुछ अर्थ नहीं समझते, कर्मकाण्ड से चिपके हैं। उनके प्रति मैं सहिष्णु हूँ। कुछ लोग मेरे प्रति असहिष्णु हो सकते हैं, रहे भी हैं, पर ज़्यादातर इस बात की परवाह नहीं करते कि मैं क्या छोड़ चुका हूँ, क्या अपनाये हूँ। संक्षेप में हिन्दुत्व व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का धर्म है। इसमें अपने को दास बनाये रखने की भी स्वतन्त्रता है।

मैंने आपके कालेज में प्रवेश लिया है। जानता हूँ आपके कालेज धार्मिक संस्थाएँ हैं। हर कालेज में गिरजाघर है। ईसाई धर्म के बारे में जो आप बताना चाहेंगे, उसे आदर से सुनूँगा, बहुत कुछ मैं जानता हूँ। फिर वही बात दुहरा दूँ; मानने की स्वतन्त्रता चाहूँगा।

रेवरेण्ड बर्ड ने मेरी बात ध्यान से सुनी। उन्होंने बताया, मानने की स्वतन्त्रता का यहाँ भी आदर होता है। कोई ईसाई के घर पैदा होने से ईसाई नहीं माना जाता। एक उम्र पर confirmation कराना होता है कि मैं ईसाई हूँ; कुछ लोग

नहीं भी कराते और उनके साथ किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रक्खा जाता। उन्होंने माना कि कालेजों की स्थापना धार्मिक शिक्षा के लिए हुई थी, पर धीरे-धीरे धार्मिक शिक्षा गौण होती जाती है। प्रबन्ध और शासन धार्मिक शिक्षा को शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाये रखने के पक्ष में हैं। मुझे विशेष रीति से सम्बोधित करके उन्होंने कहा, आप अंग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन करने आये हैं—अंग्रेज़ी साहित्य ईसाई साहित्य है या ईसाइयत की spirit में वह शराबोर है—उसे समझने के लिए ईसाइयत को समझना ज़रूरी है। प्रो. विली ने एक बार कहा था कि जो ईसाई नहीं है वह अंग्रेज़ी साहित्य को पूरी तरह नहीं समझ सकता।

मैंने कहा, उतनी सीमा मैं अपनी मान लूँगा।

उन्होंने अपनी सद्भावना का आश्वासन दे मुझे विदा किया—कहा, कभी भी आपको कोई मानसिक चिन्ता, उद्विग्नता हो; आपके सामने कोई नैतिक या धार्मिक समस्या खड़ी हो तो आप मुझसे निःसंकोच मिलें।—रेवरेण्ड में पादरियों की विनम्रता है। उन्होंने कहा, यह दावा करना तो दम्भ की पराकाष्ठा होगी कि मेरे पास हर मानसिक समस्या का हल है, पर किसी बड़े या अनुभवी से सलाह मशविरा करने से कोई हल निकालने में आसानी होती है। उसकी तटस्थता समस्या को देखने का एक नया दृष्टिकोण दे सकती है; और कभी-कभी इतने से भी समस्याएँ हल न हों, पर आसान हो जाती हैं।

रास्ते में मैं सोचता रहा, ऐसी स्थिति आने पर शायद मैं कविता के पास जाना अधिक सान्त्वनादायक पाऊँ।

यु. ला. में फारेस्ट रीड की पुस्तक का शेषांश समाप्त किया। कमरे में रात को पढ़ने को 'Candle of Vision' लाया—कुछ हिस्सा इसका भी रह गया था—A. E's 'Homeward Songs' भी।

रात को खाना खाने के बाद कमरे में ही पढ़ता रहा।

मंगलवार, 7 अक्टूबर, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर तेजी का पत्र मिला। तीस सितम्बर का लिखा था। कभी पत्र प्रतिदिन, कभी हफ़्तों नहीं। तेजी भी खूब हैं। मन उनका अब भी उद्विग्न है।

साथ में अमित का भी पत्र था—हिन्दी में। लिखावट अच्छी है, वाक्य भी सुथरे—पढ़कर खुशी हुई।

मि. नैस्टर की भी चिट्ठी थी। पार्लियामेण्ट के डेपुटी स्पीकर श्री आयंगर केम्ब्रिज आ रहे हैं। लिखा था, मैं उन्हें मिलूँ और यहाँ के कालेज वगैरह दिखाऊँ। तीन बजे फोन करने को कहा था, विस्तार से बातें मालूम करने को।

दिन को लाइब्रेरी में A. E's 'The Avatars : A Futurist Phantasy' पढ़ी।

लंच के बाद मि. नैस्टर को फोन किया। डा. रोज़ारियो ने बात की। आयंगर 10 ता. को आयेंगे। मुझे उन्हें स्टेशन पर मिलना होगा। शेष बातें वे बाद को तार या फोन से बतायेंगे। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा, वंशो आज लन्दन में हैं कल अमरीका जायेंगे, लन्दन में काम है, केम्ब्रिज नहीं जा सकेंगे। समय हो तो लन्दन आकर उनसे मिल लो।—मैंने कहा, मेरा नमस्कार कह दीजिएगा।—मिलने की इच्छा मेरी नहीं थी। सामना होने पर शायद कुछ अप्रिय बात मेरे मुँह से निकल जाये!—'अस कुमित्र परिहरेहि भलाई।'

लाइब्रेरी जाकर ए. ई. की पुस्तकें समाप्त कीं। Yeats की 'The Four

Years' आरम्भ की। Yeats की चार पुस्तकें अपने नाम ईशू करायीं।

शाम को 'Renaissance' पर प्रो. बटरफ़ील्ड का व्याख्यान था। दत्त का आग्रह था, मैं सुनूँ। जाने पर पता लगा किसी कारण स्थगित हो गया।

खाने के समय डॉ. रोज़ारियो का फोन आया—आयंगर 10 ता. को साढ़े बारह बजे केम्ब्रिज पहुँचेंगे।

साढ़े आठ बजे ब्रिटिश कौन्सिल की ओर से मि. बेल का व्याख्यान था—'The English People' पर। व्याख्यान साधारण ही था। कोई ऐसी बात उन्होंने नहीं बतायी जो मुझे पहले से मालूम न थी।—इंग्लैण्ड की रायल शील्ड पर यूनीकार्न और शेर—कल्पना और तथ्य के प्रतीक—अंग्रेजों का वाटिका-प्रेम—पशुप्रेम (विशेषकर कुत्तों से)—एक रूपता का आग्रह—किसी पार्टी में मर्द प्रायः एक ही तरह की पोशाक में—विविधता स्त्रियों का विशेषाधिकार—वचनबद्धता—ईमानदारी—आत्मसीमितता (रिज़र्व)—लज्जालुता (शाई—अखबार में मुँह छिपाने की आदत)—भावुकता-प्रदर्शन से परहेज़—विनोद प्रियता (सेन्स ऑफ़ ह्यूमर)—इतिहास-प्रेम—परम्परा-प्रेम—लोक बुद्धि पर आग्रह (कॉमन सेन्स)—स्थूल के प्रति आकर्षण—सूक्ष्म से विरक्ति—सामान्य अंग्रेज़ के लक्षण।—व्याख्यान नये-नये इंग्लैण्ड आनेवालों के लिए रोचक रहा होगा।

हॉल में बावा रनवीरसिंह से भेंट हुई। इनसे पहले धर्मसाला में मुलाक़ात हुई थी जहाँ ये महाराजकृष्ण और नवीन के साथ 'माउण्ट प्लेज़ेण्ट' में रहते थे। गत वर्ष इलाहाबाद आकर मेरे पास ठहरे थे। Statistics में डिप्लोमा लेने आये हैं। आधा रुपया भारत सरकार ने दिया है, चौथाई पंजाब युनिवर्सिटी ने, एक चौथाई अपने-आपसे पढ़ाई पर खर्च करेंगे। अभी जीज़स लेन में ठहरे हैं—मेरी पहलेवाली डिग में। व्याख्यान के बाद मेरा कमरा देखने आये। और बड़ी देर तक बैठे अपने परिवार और देश की बातें बताते रहे। बहुत हँसमुख, खुले स्वभाव के हैं।

बुधवार, 8 अक्टूबर, '52

ब्रेकफ़ास्ट के बाद यु. ला. गया।

आज Yeats सम्पादित ब्लेक की रचनाएँ आरम्भ कीं। कितना सुन्दर संस्करण है!

भूमिका और मूल-पाठ के 125 पृ. पढ़े।

शाम को खाना खाने के बाद डोरोथी काफ़े में गया। आज वहाँ ब्रिटिश कौंसिल की ओर से नये विद्यार्थियों का स्वागत था। बावा और कुछ और भारतीय विद्यार्थियों से मिला।

रात को A. E. की 'Embankment and other poems' समाप्त की।

वंशो का फ़ोन आया। जी तो चाहा फ़ोन पर ही कुछ खरी-खोटी सुना दूँ। पर कुछ सोचकर चुप रह गया। 'दोस्तों के सदमे' कभी पढ़ेंगे। श्यामा और उनके पति लन्दन में हैं, उन्हीं के साथ रहे, नहीं आज केम्ब्रिज आते। अच्छा किया नहीं आये।—'बकसैं बिलार मुर्गा बाँड़ा होय के रहिहैं'—कुछ कहानी होगी इसके पीछे।

गुरुवार, 9 अक्टूबर, '52

ब्रेकफ़ास्ट के बाद बैंक गया।

आज मुझे कुछ पाउण्ड निकलवाने थे मिसेज़ लारी को देने के लिए।

मिल लेन में 'Renaissance' पर प्रो. बटरफ़ील्ड का व्याख्यान सुना। बहुत विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान था। भविष्य अतीत पर प्रकाश फेंकता है। Renaissance की पूरी क्षमता अब भी भविष्य के इतिहास को उजागर करनी है।

वहाँ से कालेज गया। 10 तारीख को मुझे Fenners Clinic जाना था X-ray के लिए; पर 10 को मि. आयंगर आने को थे; सोचा कालेज से दूसरी ता. करा लूँ। मिसेज़ स्मिथ ने क्लिनिक में फ़ोन किया तो उन्होंने मुझे आज ही बुला लिया 2 और 4 के बीच में। मि. एडिनबरा अपने कमरे में थे, मेरे आने की आहट मिली तो उन्होंने मुझे बुलवाया; नाराज़ थे; बोले, मैंने मि. हफ़ को समय देकर कालेज बुलवाया था, और आपको और दूसरे रिसर्च स्कालर को उनसे मिलाना चाहता था, पर दोनों में से कोई समय पर नहीं आया। वे एक घण्टा बैठकर चले गये।—मैंने बहुत अफ़सोस ज़ाहिर किया। उनसे कहा, मैं रोज़ कालेज नहीं आता; इस कारण मैंने नोटिस बोर्ड नहीं देखा था। भविष्य में यदि मेरे लिए कोई काम हो तो या तो मुझे चिट्ठी लिखा दें या कासिल ब्रे पर फ़ोन कर दें।—मैं इसी समय जाकर मि. हफ़ से माँफ़ी माँग लूँगा।—फ़ोन से बात करके उन्होंने दो बजे मुझे मि. हफ़ से मिलने को कहा।

बाज़ार से मैंने अपना कोट लिया, मरम्मत के लिए दिया था। डिग आकर लंच लिया। सीधा हफ़ साहब के पास गया—क्राइस्ट चर्च कालेज। वे भी कुछ नाराज़ थे। मैंने उनको परिस्थिति समझायी—मुझे उनके कालेज आने की सूचना ही नहीं मिल सकी थी। उन्होंने मुझे अगले सप्ताह में मंगल को 5 बजे का समय दिया। तब मेरे शोध के सम्बन्ध में वे मुझसे विस्तार से बातें करेंगे।

वहाँ से Fenners जाकर मैंने अपनी छाती का X-ray कराया—औपचारिक स्वास्थ्य परीक्षा के सिलसिले में।

लौटकर लाइब्रेरी गया। रास्ते में मि. भल्ला मिल गये। St. Stephens College, Delhi में अंग्रेज़ी के लेक्चरर हैं। ब्रिटिश कौंसिल के वजीफ़े पर (जिसके लिए मैं भी प्रार्थी था) एक साल के लिए केम्ब्रिज आये हैं—कोई डिग्री लेने नहीं। दिल्ली में उनसे मिल चुका था। अंग्रेज़ी और उर्दू में कविता भी लिखते हैं। हिन्दुस्तान भर से ब्रिटिश कौंसिल द्वारा चुनकर केम्ब्रिज भेजे जाने का अभिमान चेहरे पर लिखा। बातचीत में दिल्ली से कुछ अधिक affected (बनावटीपन लिये)।

वहाँ से यु. ला. गया। ब्लेक की कविताएँ पढ़ता रहा। ब्लेक कभी सरल से सरलतम कभी गूढ़ातिगूढ़। ब्लेक शायद पहले कवि हैं, अंग्रेज़ी में, जिन्होंने अपने निजी symbols देने शुरू किये। ईट्स ने भी बहुत-से निजी प्रतीक बनाये, शायद ब्लेक से प्रेरणा लेकर।

शाम को खाना खाने के बाद घूमने गया।

लौटते समय राउण्ड चर्च हॉल गया। आज वहाँ मि. एस. सी. राबर्ट्स का 'The Colleges of Cambridge' पर व्याख्यान था, विशेषकर युनि. के नवागन्तुकों के लिए; व्याख्यान रोचक था।

ऐसा कहा जाता है कि 1209 में आक्सफ़र्ड के कुछ विद्यार्थी वहाँ से निकाल दिये जाने पर केम्ब्रिज चले आये और यहाँ उन्होंने एक नयी युनिवर्सिटी की स्थापना की। केम्ब्रिज वाले इसको मानना अपमान की बात समझते हैं। किसी तरह भी शुरू हुई हो, 1231 तक केम्ब्रिज ने युनिवर्सिटी का नाम ग्रहण कर लिया था।

उस समय का एक राजकीय फ़रमान है जिसमें केम्ब्रिज की लैण्डलेडीज़ को आगाह किया गया था कि वे विद्यार्थियों को किसी प्रकार तंग न करें।—सात सौ साल पहले भी केम्ब्रिज की लैण्डलेडीज़ विद्यार्थियों को परेशान करती थीं, जो परम्परा अब तक चली आती है। 1284 में पीटर हाउस की स्थापना हुई जो सबसे पुराना कालेज है। डारनिंग कालेज सबसे नया है।

और जो बातें उन्होंने बतायीं उनमें से अधिकांश मैं किसी गाइड-बुक में पढ़ चुका था। 'मैट्रिक्युलेशन' का अर्थ, उन्होंने बताया, परीक्षा नहीं, सूची है, किसी लैटिन मूल के अनुसार। मैट्रिक्युलेशन का अर्थ है रजिस्टर में अपना नाम दर्ज करना या कराना। 'ट्राइपास' जिससे अब एक परीक्षा का बोध होता है तिपाई थी जिस पर बिठाकर विद्यार्थी की परीक्षा ली जाती थी, शुरू में केवल मौखिक। मि. राबर्ट्स ने युनिवर्सिटी और कालेजों का सम्बन्ध बताया। विद्यार्थी शिक्षा युनिवर्सिटी से लेता है और दीक्षा कालेज से। हर कालेज की अपनी अलग परम्परा है। विद्यार्थी युनि. से डिग्री लेता है, संस्कार कालेज की परम्परा से, वहाँ के इतिहास, वहाँ के रस्मोरिवाज, वहाँ के विद्यार्थियों, अध्यापकों के संसर्ग से। प्रायः विद्यार्थी युनि. के सम्बन्ध को कालेज के सम्बन्ध के रूप में ही याद करता है।

लौटकर मैंने कुछ समय तक ब्लेक पढ़ा।

सर्दी आज बढ़ गयी।

शुक्रवार, 10 अक्टूबर, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ।

ब्रेकफ़ास्ट ले कमरे में आकर गाइड-बुक से केम्ब्रिज के विषय में कुछ पढ़ता रहा; नक़्शे से रास्ता बग़ैरह भी देखता रहा जिधर से मि. आयंगर को ले जाकर केम्ब्रिज दिखाऊँगा।

इतने में मि. रोज़ारियो का फ़ोन आ गया—मि. आयंगर किन्हीं कारणों से केम्ब्रिज नहीं आ सकेंगे। पहले के फ़ोन से उन्होंने कहा था, केम्ब्रिज के किसी प्रोफ़ेसर से भी मिला देना। मैंने मि. एडिनबरा से समय ले लिया था। उन्हें फ़ोन किया, मि. आयंगर के कार्यक्रम-परिवर्तन की सूचना दी, माफ़ी माँगी। क्या सोचा होगा उन्होंने। मैं उन्हें पहले भी अपनी 'हिन्दुस्तानियत' का सबूत दे चुका हूँ, गो दोनों बार ग़लती मेरी नहीं थी।

मैं तैयार बैठा था। यु. ला. चला गया।

मि. हफ़ ने थियोसोफ़ी से ईट्स के सम्बन्ध का विशेष अध्ययन करने को कहा था। आज C. J. Rynan की 'H. P. Blavatsky and the theosophical Movement' पुस्तक आरम्भ की।

खाना खा रहा था कि मि. लीथान आ गये।

अपने प्रवास की बहुत-सी रोचक बातें बतायीं।

हम लोग साथ-साथ घूमने गये।

बहुत-सी पुरानी यादें जगीं।

लौटकर मैं ब्लेक पढ़ना चाहता था।

लीथान जैसे कमरे में कुछ प्रेरणा छोड़ गया था।

बैठा तो एक कविता लिखने लगा—

'तारों का सारा नभ-मण्डल, आँसू का नयनों का घेरा।'

कविता समाप्त हुई तो एक बज गये थे—11 अक्टूबर—अमित का जन्म-

दिन ! —इस प्रकार मैंने अमित के जन्मदिन का आरम्भ किया। ध्यान आया, देश में प्रभात हो गया होगा। तेजी, अमित, अजित उठ गये होंगे, सबने अमित को जन्मदिन की बधाई दी होगी; मेरा उपहार-कार्ड भी पहुँच गया होगा। सब मुझे याद कर रहे होंगे।···

कविता की एक साफ़ कापी बनायी।

तेजी को पत्र लिखा, कविता की प्रति साथ रक्खी, वेमथ की एक तस्वीर भी।

इसे लेकर 60 से ऊपर कविताएँ हो गयीं—एक संकलन के लिए पर्याप्त—शायद भारती भण्डार इसे ले ही ले—कुछ अच्छी अग्रिम रायल्टी देकर।

अब चाहता हूँ कविता लिखने का मूड न ही आये तो अच्छा। रिसर्च का काम भी करना है। कुछ अच्छे क़िस्म का, कि हफ़ उससे सन्तुष्ट हो सकें। उन्हीं की सिफ़ारिश पर एम. लिट् का रजिस्ट्रेशन पी-एच. डी. के लिए हो सकेगा। आदमी सख़्त मालूम होते हैं। यह मेरे लिए अच्छा है। मैं तो चाहता हूँ कोई मुझसे कसकर काम ले।

कविता भी ले।

शोध भी ले।

कुछ और भी ले।

मैं ख़ालीपन से घबराता हूँ।

शनिवार, 11 अक्टूबर, '52

सुबह उठा। बिस्तर में लेटे ही लेटे तेजी और बच्चों की याद की। अमित आज दस वर्ष का हो गया ! —अमित के लिए मन-ही-मन शुभकामनाएँ कीं। अमित-अजित पढ़ें-बढ़ें और अच्छे युवक बनें। प्रभात भी इन्हीं दोनों बच्चों के साथ बढ़ता तो कितना अच्छा होता—उसकी नानी उसे आने ही नहीं देतीं—जैसी होय होतिबा वैसी मिलै सहाय—'होतिबा' का अच्छा-बुरा कोई कैसे जाने।

ब्रेकफ़ास्ट करके पोस्ट-आफ़िस गया। अमित को बधाई का तार दिया। अगर मेरा उपहार-कार्ड नहीं मिला तो तार पाकर उसे ख़ुशी होगी।

वहाँ से लाइब्रेरी चला गया।

वहाँ आज 'Ireland's Literary Renaissance' पढ़ी।

1 बजे वापस आया।

तेजी का पत्र मिला। कभी-कभी डाक दिन को भी आती है। पत्र पढ़कर ख़ुशी हुई। मेरा उपहार पहुँच गया था। आज अमित को दे दिया गया होगा। कार्ड भी मिल गया होगा। रात तक तार भी पहुँच जायेगा।

लंच लेकर बाज़ार गया। केम्ब्रिज का तस्वीरी-नक़्शा लाया।

अमित को एक लम्बी चिट्ठी लिखी—केम्ब्रिज की सैर।

नक़्शे और चिट्ठी के सहारे अपनी कल्पना से वह केम्ब्रिज की सैर कर सकेगा। बच्चों की कल्पना बड़ी सजीव होती है।

शाम को कमरा ठीक किया।

आज पहले-पहल कमरे के आग-दान में आग जलायी।

रात को खाना खाकर कुर्सी पास ले जाकर बैठा।

तेजी की बहुत याद आयी—उनको आग के पास इस प्रकार बैठना बहुत अच्छा लगता है। पर इलाहाबाद में इतनी सर्दी कहाँ पड़ती है कि आग जलानी पड़े; जो दो-चार दिन पड़ती है तो घर में आग दान नहीं; लाहौर की याद करती

हैं। अक्टूबर में तो अभी इलाहाबाद में शायद पंखा चलाना पड़ता हो। यहाँ काफ़ी सर्दी पड़ने लगी है, दिन छोटे होने लगे हैं।

कुछ देर ईट्स की कविताएँ पढ़ीं।

पीछे धीरे-धीरे रेडियो बजता रहा।

काव्य—संगीत—गरमाहट—प्रकाश—एकान्त—मीठी याद !—

एक तिक्त अभाव भी।

मनुष्य की पूर्णता कुछ अपूर्णता के बोध से प्रतिफलित होती है।

घर पर सब ख़ुश होंगे।

क्या एक अभाव का बोध वहाँ भी न होगा ?

रविवार, 12 अक्टूबर, '52

मि. मदनमोहन भल्ला ने सुबह आने को कहा था।

व्यर्थ उनकी प्रतीक्षा की। न आये, न फ़ोन किया। हिन्दुस्तानी !

दिन भर पढ़ता रहा। पहले ब्लेक की कविताएँ समाप्त कीं। फिर 'Death of Synge' और 'Estrangement'.

शाम को मिलन आये और अपने कमरे में चाय के लिए बुला ले गये। वहाँ उनके चचा मि. रे मिले—केम्ब्रिज में अपनी लड़की का नाम लिखाने आये थे—स्वयं केम्ब्रिज के विद्यार्थी थे। पुराने केम्ब्रिज और अब के केम्ब्रिज की तुलना कर रहे थे। तीस बरस पहले की बात। केम्ब्रिज तब अधिक शान्त था, चीज़ें सस्ती थीं, हिन्दुस्तानी विद्यार्थी इने-गिने आते थे। और कुछ ऐसी बात थी जो अब नहीं है - जब मनुष्य बीते समय को देखने का प्रयत्न करता है तो अपनी स्मृति—धुँधली स्मृति—पर कल्पना का प्रकाश डालकर उसे वास्तविक से अधिक सुन्दर बना देता है। फिर यौवन में मनुष्य चीज़ों को जिन नज़रों से देखता है वृद्धावस्था में नहीं। चीज़ें तो शायद कमोबेश वैसी ही रहती हैं, पर देखनेवाली आँखें वैसी नहीं रह जातीं।

जिन चीज़ों को मैंने यौवन की आँखों से देखा है उन्हें मुझे वृद्ध की आँखों से न देखना पड़े।

Perhaps, I have not realised its full implication!

मिलन के यहाँ से आकर ईट्स की एक और पुस्तक आरम्भ की 'If I were four and twenty'.

खाना आज अच्छा नहीं था। शायद भूख न रहने के कारण मुझे अच्छा नहीं लगा। मिलन ने बहुत कुछ खिला दिया था।

साढ़े आठ बजे कालेज पहुँचा। आज Shirley Society की बैठक थी। मि. एडिनबरा ने 'The English Novel in the Past and Present' पर एक लेख पढ़ा। उनका व्याख्यान सुनने का पहला अवसर था। बातें रोचक ढंग से कही गयी थीं, पर सब सतही। गहराई कहीं नहीं। अंग्रेज़ी उपन्यासों के बारे में कोई नयी बात उन्होंने नहीं कही; अमरीकी उपन्यासों के बारे में भी जो उन्होंने कहा वह विनोद और व्यंग्य के लहजे में—अभी अमरीका की जनता में वह परिपक्वता—रुचि की परिपक्वता—ripeness in literary taste—नहीं आयी जो अच्छे और उच्चकोटि के उपन्यास और उपन्यासकारों को ही मान दे सके। कोई अज्ञात लेखक भी अगर कोई ऐसी चीज़ लिख दे जिसकी दो-चार लाख प्रतियाँ बिक जायें तो उसकी गिनती बड़ों में होने लगती है; और सब जगह उसकी चर्चा चल पड़ती

है। एडिनबरा ने बताया कि एक व्यक्ति बड़ी मुसीबतों में था—कहता था Life is very tough. एक दिन उसे सूझा कि वह अपने अनुभवों को लिख डाले। दस दिन में उसने एक पुस्तक तैयार कर दी। किसी प्रकाशन एजेन्सी ने उसकी स्पेलिंग और ग्रामर ठीक कर दी—अमरीका में ऐसी एजेन्सियाँ हैं जिनके पास आप कुछ भी घास-कूड़ा ले जायें, कुछ फ़ीस लेकर वे उसे पढ़ने योग्य बना देंगी। वह पुस्तक छप गयी और बिकने लगी; उसकी लाखों प्रतियाँ बिक गयीं। जिसे पन्द्रह दिन पहले Life tough लग रही थी वह डालरों को ओढ़ने-बिछाने लगा और लेखक रूप में प्रसिद्ध हो गया!—

अमरीकियों की रुचि की अपरिपक्वता दिखाने को यह कल्पित या सच्चा उदाहरण अच्छा; पर ऐसे मामले बहुत नहीं हो सकते।

लौटकर मैंने आग जलायी और कुछ देर ईट्स की कविताएँ पढ़ीं।

सोमवार, 13 अक्टूबर, '52

तैयार होकर मिल लेन गया।

लेक्चर लिस्ट में आज के लिए जो व्याख्यान दर्ज थे उनमें से कोई नहीं हो रहा था।

दफ्तर में पूछने पर पता लगा 2 अक्टूबर को एक संशोधित सूची प्रकाशित हुई है—अब व्याख्यान उसी के अनुसार होंगे।

यु. ला. चला गया।

मादाम ब्लावाट्स्की और थियोसोफ़ी पर जो भी साहित्य पुस्तकालय में है उसकी सूची बनायी, कुछ सहायता कैटलाग से मिली, कुछ पुस्तकों में दी बिबलियोग्रैफ़ी से। कल मि. हफ़ से मिलना है। सबसे पहले थियोसोफ़ी और ईट्स के सम्बन्ध पर उन्होंने काम करने को कहा था। उनसे मिलूँगा तो उन्हें बता सकूँगा कि काम मैंने methodically शुरू कर दिया है। थियोसोफ़ी ने ईट्स को किस हद तक प्रभावित किया, किन रचनाओं पर उसका विशिष्ट प्रभाव पड़ा, किस रूप में, इसके लिए ईट्स-साहित्य को एक बार फिर देखना होगा। शायद हफ़ इसे परखने के लिए कोई रास्ता दिखा सकें। किन्हीं रचनाओं की ओर मेरा ध्यान स्वयं गया है। प्रभाव सिद्ध भी करना होगा।

शाम तक लाइब्रेरी में रहा।

लंच भी नहीं लिया। पेट में दर्द था। व्रत कर जाने से शाम तक दर्द जाता रहा। भूख भी लगी।

लौटते हुए मि. लेसी से मिलने गया। युद्ध के समय हिन्दुस्तान में थे; हिन्दुस्तानी बोल सकते हैं; अंग्रेज़ सिपाहियों को हिन्दुस्तानी पढ़ाते भी थे। सेण्ट कैथरीन्स में क्लासिक्स यानी लैटिन और ग्रीक के शिक्षक हैं। कालेज ने मि. हेन की अनुपस्थिति में इन्हें मेरा ट्यूटर बना दिया है। निर्देशन तो मेरा मि. हफ़ करेंगे। मि. लेसी को समय-समय पर मुझे मिलना और अपनी प्रगति से सूचित करना होगा। मैं उनका 'वार्ड' समझा जाऊँगा और रहने-सहने की कोई कठिनाई उपस्थित होने पर वे मेरी सहायता करेंगे। अगले साल उन्होंने मुझे कालेज में कमरा देने का आश्वासन दिया है। कालेज में रहने का ख़र्च ज़्यादा होगा; सम्भव है अगले वर्ष मुझे कहीं से आर्थिक सहायता मिल सके। आशा लगाये रहना है, निराशा के लिए तैयार रहना है।

कमरे लौटा तो दत्त मेरे इन्तज़ार में बैठे थे, लाइब्रेरी से घर जाते हुए मेरे यहाँ चले आये थे। उन्होंने बताया कि आठ बजे से ब्रिटिश कौंसिल की तरफ़ से केम्ब्रिज

पर एक फ़िल्म-शो है। मैंने कहा पिछले छह महीनों में मैं केम्ब्रिज का कोना-कोना देख चुका हूँ और उसके भीतरी-बाहरी जीवन से परिचित हूँ, फ़िल्म क्या देखूँ, मैं नहीं जाऊँगा।—पर दत्त कमला के साथ जा रहे थे और मुझे भी 'खींचने' आये थे।

खाना खाने के बाद कुछ देर कमरे में बैठा।

फिर कुछ जी ऊबा तो फ़िल्म-शो देखने चला गया। केम्ब्रिज के विद्यार्थी-जीवन पर रोचक फ़िल्म थी।

नवागन्तुकों की भीड़ थी। मैं तो अब यहाँ के लिए पुराना हो चुका हूँ। लौटा तो पेट में फिर कुछ दर्द था।

मंगलवार, 14 अक्टूबर, '52

आज 10 से 11 तक 'Pre-Raphaelite Poets' पर एफ़. एल. लूकस का व्याख्यान था।

लूकस का व्याख्यान जितना रोचक होता है उतना ही उपादेय, उतना ही प्रेरक। पहले के उनके व्याख्यानों की याद है।

प्रारम्भिक ईट्स पर प्रि-राफ़ेलाइट प्रभाव स्पष्ट है। एक बार ईट्स ने कहा था कि अगर मुझे अपने अतिरिक्त किसी और कवि का जीवन जीना हो तो मैं प्रि-राफ़ेलाइट कवि मॉरिस का जीवन जीना पसन्द करूँगा।

ईट्स अपने जीवन में किसी समय ऐसी बात कह सकते थे।

बाद को शायद नहीं।

व्याख्यान का सारांश—प्रि-राफ़ेलाइट कविता म्रियमाण रूमानी कविता की अन्तिम, पर बड़ी सप्राण साँस!

जीवन में क्षीण होती रूमानियत के प्रति कला की रुग्ण 'नासटैलजिया'।

कविता में शिल्प के महत्त्व को पुनर्स्थापित करने का अभियान।

विक्टोरियन युग की उपदेशात्मकता, नैतिकता के विरुद्ध सौन्दर्याभिरुचि की क्रान्ति। चर्च के मुक़ाबले में श्रृंगार-कक्ष!

युग-जीवन की वास्तविकता के धक्के से ध्वस्त।

11 से 12 सेण्ट कैथ्स के कुछ लड़कों के साथ कॉफ़ी। व्याख्यान पर बहस।

12 से 1 तक मि. रीलैण्ड का व्याख्यान सुना—'Victorian background' पर था। कुछ नया नहीं।

लंच लेकर कमरे में ही बैठा रहा। ईट्स पर जो नोट्स वग़ैरह मैंने तैयार किये थे सब ठीक किये। हफ़ के पास ले जाना था। साढ़े चार बजे उनका फ़ोन आ गया, कालेज में नहीं, घर पर उनसे मिलूँ।

गया तो उन्होंने चाय पिलाई। एक घण्टे बात होती रही। उन्होंने थीसिस का प्लान माँगा है—पन्द्रह दिन बाद देना होगा। इलाहाबाद में जो कुछ मैंने लिखा था वह भी देखना चाहेंगे। उन्होंने कहा प्लान बनाना ज़रूरी है, पर अन्त तक उससे चिपकने की ज़रूरत नहीं। आगे चलकर शुरू के प्लान को बदला भी जा सकता है। शोध का विषय उन्हें बहुत 'वेग' (अस्पष्ट) लगा। पहला काम, चाहे अपने मन में ही, irrational को डिफ़ाइन करने का होना चाहिए—परिभाषित—सीमित करने का। Irrational उन्हें नकारात्मक भी लगा। उन्होंने कोई सकारात्मक (positive) शीर्षक चुनने की सलाह दी, भले ही विषय मैं यही रक्खूँ।

लौटते हुए मैं बावा के यहाँ गया।

कमरे में ही थे। मिसेज़ मलेटका ने कई चिट्ठियाँ दीं। कोई ज़रूरी नहीं।

बावा को लेकर मैं दत्त के यहाँ गया। दत्त तो उनके पुराने साथी निकले। अमृतसर में साथ पढ़े थे।

लौटकर मैंने आग जलायी। अख़बार पढ़े, कुछ पत्रिकाएँ भी देखीं। अख़बार में एक आश्चर्यजनक समाचार।

Shaw Memorial Fund withdrawn.

दो लाख पचास हज़ार पौण्ड की अपील की गयी थी।

केवल एक हज़ार पौण्ड आये।

पत्र में यह भी दिया है कि भेजनेवालों का चन्दा वापस कर दिया जायेगा।

इतने लोकप्रिय थे शा तिस पर!

शायद लोगों ने इसलिए भी चन्दा नहीं दिया कि यदि शा के लिए कोई स्मारक बनाना है तो वह उनकी पुस्तकों की रायल्टी से बनाया जा सकता है। अपार थी।

पता नहीं शा ने अपनी रायल्टी के सम्बन्ध में क्या वसीयत की।

अपना स्मारक बनाने के लिए तो उन्होंने कभी आदेश न किया होगा।

लेखक-कलाकार-कवि का स्मारक यदि उसकी रचनाएँ नहीं तो मिट्टी-पत्थर के स्मारक का क्या मतलब ?

क्या शा की लोकप्रियता इतनी जल्दी घट गयी ?

घट गयी हो तो आश्चर्य नहीं।

शा की रचना पर सामयिकता और अख़बारीपन की छाया तो थी ही। छाया हटते कितनी देर !

बुधवार, 15 अक्टूबर, '52

डॉ. लीविस के लेक्चर में जाना चाहता था।

मिल लेन पहुँचा तो लेक्चर शुरू हो गया था, मैंने जाना ठीक न समझा।

कालेज होते हुए यु. ला. गया।

हफ़ ने अपनी एक किताब का ज़िक्र किया था, 'The Last Romantics'— उसमें ईट्स पर एक निबन्ध है जिसकी हेन ने भी प्रशंसा की थी।

आज उसी को निकलवाकर पढ़ता रहा।

ईट्स तक अभी नहीं पहुँचा।

प्रि-राफ़ेलाइट कवियों पर लूकस और हफ़ की राय में प्रायः समानता।

क्या बात है कि शेली-कीट्स की रूमानियत स्वस्थ और रासेटी-स्विनबर्न की अस्वस्थ लगती है।

शेली-कीट्स की रूमानियत जीवन की रूमानियत से जुड़ी।

रासेटी-स्विनबर्न की प्रयत्न करके जीवन से जोड़ी गयी।

कवियों को अपने 'टेम्पर' से युग के 'टेम्पर' का अन्तर परखते रहना चाहिए।

कविता थोड़ा अन्तर तो सह सकती है, ज़्यादा नहीं।

अन्तर कवि के अगाड़ीपन और युग के पिछड़ेपन का हो तो बुरा नहीं।

अन्तर कवि के पिछड़ेपन और युग के अगाड़ीपन का हो तो बहुत बुरा।

ऐसे कवि प्रायः लोकप्रिय हो जाते हैं। विशेषकर ऐसे समाज में जो प्रगति-परिवर्तन को जल्दी स्वीकार नहीं करता।

जागरूक कवि को अपनी लोकप्रियता के प्रति सतर्क रहना चाहिए। पिछड़ेपन की लोकप्रियता स्थायी नहीं होती।

खड़ी बोली के उदय के काल में ब्रजभाषा के कवियों की लोकप्रियता ऐसी ही थी।

भारतीय लोकप्रियता और योरोपीय लोकप्रियता में अन्तर।

योरोपीय लोक अधिक प्रबुद्ध।

भारतीय कम; भेड़िया-धसान।

खाना खाकर घूमने निकला था। इन्द्रजीत मिले। कहने लगे, चलो सिनेमा। आज विक्टोरिया में एक अच्छी तस्वीर चल रही है—We are not married, दत्त ने शायद अपने सब दोस्तों से कह दिया है कि मैं बिना खींचे सिनेमा नहीं जाता। इन्द्रजीत मुझे खींच ले गया।

तस्वीर अच्छी थी। लौटकर मैं कुछ देर ईट्स की 'If I were four and twenty' पढ़ता रहा।

गुरुवार, 16 अक्टूबर, '52

आज मैं तीन व्याख्यानों में गया।

मि. लूकस का 'Pre-Raphaelite Poets' पर था।

डॉ. ब्रैडब्रुक का 'Wordsworth' पर।

प्रो. विली का 'Classical Criticism (The Greeks)' पर।

लाइब्रेरी में 'The Last Romantics' चल रही है। नोट्स भी ले रहा हूँ।

नोट्स सब शोध की दृष्टि से नहीं लेता। अंग्रेज़ी के अध्यापक के रूप में भी ये मेरे काम आयेंगे। कुछ व्याख्यान भी इसी दृष्टि से सुन रहा हूँ। अगर इन विषयों को अपनी युनिवर्सिटी में पढ़ाना हो तो कैसे पढ़ाना चाहिए। भारतीय विद्यार्थियों के लिए कुछ दूसरा तरीका अपनाना होगा क्योंकि उनकी 'बैकग्राउण्ड' वैसी नहीं हो सकती जैसी यहाँ के विद्यार्थियों की। साहित्य पढ़ाने की आधुनिक और वैज्ञानिक विधि यहाँ के प्रोफ़ेसरों से सीखी जा सकती है। इतना तो ज़ाहिर है कि यहाँ के प्रोफ़ेसर बहुत पढ़ते हैं; बहुत मेहनत करते हैं। शायद ही कोई व्याख्यान हो जिसमें अंग्रेज़ी को योरोपियन साहित्य के कैनवस के सामने न प्रस्तुत किया जाता हो। तुलनात्मक दृष्टि से विषयों को प्रस्तुत करने की सम्भावनाएँ भारत में अधिक हैं बशर्ते कि हमारे अध्यापक भारतीय साहित्य या एशियायी साहित्य का भी ज्ञान प्राप्त करें। योरोप अपनी सांस्कृतिक इकाई के प्रति सचेत है, एशिया नहीं। शायद एशिया की सांस्कृतिक इकाई इतनी स्पष्ट भी नहीं। फिर भी हमारा साहित्यिक-सांस्कृतिक स्थान एशिया के बीच है।

खाना खाकर दत्त की तरफ़ घूमने निकल गया। उसके लिए एक किताब मैंने अपने नाम ईशू करायी थी; उन्हें दे आया। Eliot की 'Definition towards a Culture.'

रात ज़्यादा हो गयी थी। पार्क होकर डिग आया। प्रेमी युगल जहाँ-तहाँ···

कुछ देर अख़बार और पत्रिकाएँ देखीं।

शुक्रवार, 17 अक्टूबर, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर कालेज से एक चिट्ठी मिली—मिनियेचर X-ray से मेरी छाती की हालत ठीक नहीं जानी जा सकी, इसलिए पूरे साइज़ के X-ray के लिए मुझे आज फिर Fenners Clinic जाना चाहिए।

स्वास्थ्य के सम्बन्ध में एक प्रश्नावली भी आयी थी जिसे भरकर साथ ले जाना था। प्रश्नों की सूची से मुझे लगा डाक्टरों को सन्देह है कि मुझे टी. बी. तो नहीं है।

प्रश्नों के उत्तर लिखते हुए साढ़े ग्यारह बज गये। बारह बजे फ़ेनर्स पहुँचा। कपड़े उतरवाकर रेडियोग्राफ़र ने छाती के पूरे साइज़ का X-ray लिया। प्लेट की जाँच करके उसने मुझे जाने की इजाज़त दे दी। रिपोर्ट बाद को भेजी जायेगी।

फिर से X-ray करने की वजह से मुझे कुछ चिन्ता हो गयी थी, जो मैं रेडियोग्राफ़र से न छिपा सका। उसने कहा, फिर से X-ray लेने का यह मतलब नहीं कि फेफड़े में कोई ख़राबी है ही। अगर कुछ हुई तो उसकी रिपोर्ट बाद को जायेगी। कुछ ख़राबी हो तो उसे जान लेना और उसका इलाज करा लेना चाहिए।

लौटकर कमरे आया। लंच लेकर युनिवर्सिटी लाइब्रेरी गया।

'Dublin University Review' की पुरानी फ़ाइलें निकलवायीं। इनमें ईट्स की प्रारम्भिक रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं।

थियोसोफ़ी पर कुछ निबन्ध भी निकले थे।

कई निबन्ध शोध की दृष्टि से बहुत उपयोगी हैं।

नोट्स भी लिये।

शाम को खाना खाकर घूमने गया।

लौटकर कमरे में आग जलायी।

सुबह की चिन्ता से कुछ लिखने का मूड बना, पर टाल गया।

लिखने का दौर शुरू हुआ तो और कुछ करना मुश्किल होगा। मुझे दस-बारह दिन के अन्दर अपनी थीसिस का प्लान बनाना है, और ऐसा जो हफ़ को सन्तुष्ट कर सके।

शनिवार, 18 अक्टूबर, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर तेजी के पत्र की प्रतीक्षा थी, पर नहीं मिला। पिछला पत्र उनका 10 का था; 11 को अमित का जन्म-दिन था; 12 को रविवार था; उन्होंने 12 को लिखा होता तो 18 को मुझे मिल जाना चाहिए था।

10 बजे से मि. एनान का व्याख्यान था—'Social and Religious Ideas in England in the 19th century.' यहाँ साहित्य के बैकग्राउण्ड पर बहुत ज़ोर दिया जाता है। जीवन के सभी पक्ष साहित्य को प्रभावित करते हैं। वास्तव में साहित्य भी जीवन की ही गतिविधि का एक पक्ष है। ईट्स का सृजन 19वीं सदी के अन्तिम भाग में शुरू हुआ। निश्चय ही 19वीं सदी के सामाजिक और धार्मिक विचारों ने ईट्स को प्रभावित किया—धार्मिक विचारों ने विशेषकर। विज्ञान ने धार्मिक रूढ़ियों पर जो आक्रमण किया था उससे ईट्स में, जैसे उनके अन्य समकालीनों में, धार्मिक जिज्ञासा प्रबल हो उठी थी। विश्वास और अविश्वास की धूप-छाँह में मादाम ब्लावाट्स्की और उनकी थियोसोफ़ी ने बुद्धिजीवियों के एक वर्ग में अपना प्रभाव फैलाया। व्याख्यान ने मेरे मन में कुछ प्रश्न उठाये। मैंने एनान से फिर मिलने का समय लिया। 27 को 12 बजे उन्होंने किंग्स कालेज में मिलने को बुलाया है।

दिन में लाइब्रेरी में 'Dublin University Review' की फ़ाइलें देखता रहा। अच्छी सामग्री मिली है। नोट्स भी लिये।

अपराह्न में मि. भल्ला आये। अपने अध्ययन के विषय में बातें करते रहे।

अधिकतर तो वे अंग्रेज़ी साहित्य पर दिये गये व्याख्यानों को सुनेंगे। ख़ाली समय में 19वीं सदी के रूमानी कवियों पर कुछ ऐसे स्रोतों से सामग्री एकत्र करेंगे जो भारत में उपलब्ध नहीं है। उन्हें केवल साल भर केम्ब्रिज में रहना है। किसी डिग्री के लिए तैयारी करने का सवाल उनके आगे नहीं है। मौज करेंगे, मुसीबत तो मैंने ले ली है। किसी ने मुझसे जबर्दस्ती नहीं की थी। मैंने ख़ुद कहा, आ बैल मुझे मार, स्पेन के मातादोरों के समान। अब देखूँ बैल मुझे पटकता है कि मैं बैल को। दूसरों को चुनौती देने से अपने को चुनौती देना शायद ज़्यादा मुश्किल काम है—अपने ही आधे से लड़ना। मैंने चुनौती दी है अपनी ही क्षमता-योग्यता को, यदि मुझमें हो। पटकनी खा गया तो अपनी सीमा को जान लूँगा। मनुष्य के लिए शायद इससे अधिक उपयोगी कुछ नहीं।

कालेज के चार प्रोफ़ेसरों ने आज शेरी-पार्टी दी थी। प्रायः रिसर्च के विद्यार्थी ही थे, मेहमानों में। अंग्रेज़ी के विद्यार्थियों से विशेष परिचय हुआ—मि. थामसन ब्राउनिंग पर काम कर रहे हैं, मि. ब्रॉडवेण्ट पूर्ववर्ती मिल्टन पर, मि. ह्यू वेल्श भाषा पर। अंग्रेज़ बड़े लज्जालु या रिज़र्व क़िस्म के लोग होते हैं। थोड़ी-सी पी लेते हैं तो खुलकर बात करते हैं। शराब के इस गुण से मिर्ज़ा ग़ालिब भी परिचित थे।

हम से खुल जाओ बवक़्ते-मय-परस्ती एक दिन,
वर्ना हम छेड़ेंगे रखकर उज़्रे-मस्ती एक दिन।

मैंने तो नारंगी का रस लिया। पार्टी ख़त्म होने को हुई तो कई लोग 'टिप्सी'—यानी कुछ सुरूर में हो गये थे—प्रोफ़ेसरों में भी। मैं चलने लगा तो डॉ. स्मिथ ने कहा, You are going back as sober as you came in. मैंने कहा, कल तो सब अपने को 'सोबर' बतायेंगे, कम-से-कम एक तो ऐसा है जो बता सकेगा कि कौन कितने नशे में था।

लौटकर मैंने कमरे में आग जलायी।

खाना मना कर दिया। पार्टी में काफ़ी खा आया था। औरों ने पीने पर ज़ोर दिया, मैंने खाने पर।

कुछ देर रेडियो सुना। पत्रिकाएँ-पत्र देखे।

रविवार, 19 अक्टूबर, '52

आज मौसम बहुत ख़राब था।

दिन भर बादल छाये थे, अँधेरा था और पानी भी धीरे-धीरे बरसता रहा।

कहीं बाहर नहीं गया। इतवार को रेडियो से बड़े अच्छे प्रोग्राम होते हैं।

'If I were four and twenty' ख़त्म की।

कुछ देर कविताएँ पढ़ीं—कविता पढ़ने के लिए बड़ा अनुकूल मौसम !

शाम को नये सेशन की मजलिस की पहली बैठक थी। प्रायः सभी 'न्यू कमर्स' को बुलाया गया था—लगभग 50 विद्यार्थी होंगे—नये ज़्यादा। लड़कियाँ तीन-चार ही थीं—और सभी लड़के उनसे परिचय करने को उत्सुक थे। उम्र का तकाज़ा। मिसेज़ क्लेग़ का व्याख्यान था—'How to move in an English Society,' पर नवागन्तुकों के लिए। कुछ उपयोगी बातें उन्होंने बतायीं, विशेषकर जब कोई किसी पार्टी के लिए निमन्त्रित करे तो कैसे व्यवहार करना चाहिए—स्वीकृति या अस्वीकृति का उत्तर दो, समय से पहुँचो, ख़ुश दिखो, बड़ी पार्टियों में अपना परिचय स्वयं किसी को देने की भी प्रथा है—लोग इसका स्वागत करते हैं—दूसरों के काम, शौक़, शुग़ल में रुचि लो, अपने में दूसरों की रुचि जगाओ,

पार्टी से जल्दी भागने की कोशिश न करो। अंग्रेज़ परिवार में नौकर नहीं होते, इस कारण अपने मेज़बान का हाथ बँटाने को आगे बढ़ो; वह इससे प्रसन्न होगा; मेहमान खाने के बाद प्याला-तश्तरी, छुरी काँटा धोने में भी मदद करते हैं।

रात को मि. और मिसेज़ तैयबजी को मिलने के लिए मिसेज़ क्लेग़ ने मुझे खाने पर बुलाया था। वहाँ मिलन, सिंह और स्वामीनाथन भी थे। मिसेज़ क्लेग़ का विषय भूगोल है और वे गर्टन कालेज में पढ़ाती हैं। उनके यहाँ एक डच महिला से भेंट हुई जो भारत हो आयी है, उसने भारतीय कला का विशेष अध्ययन किया है, भारतीयों को मिलकर बहुत ख़ुश होती है। पार्टी बहुत सजीव थी। खाने के बाद हमने उसे कार्य रूप में परिणत किया जो मि. क्लेग़ ने मजलिस में कहा था। बहुत ख़ुश हुई। मिस्टर तैयबजी ने हममें से हर एक के काम-धाम, घर-परिवार के बारे में पूछा। हम उन्हीं की कार में लौटे। पानी ज़ोरों से बरस रहा था।

सोमवार, 20 अक्टूबर, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर तेजी का पत्र मिला। 14 का। कुछ निराशा हुई। अमित के जन्म-दिन का कोई समाचार ही नहीं था उसमें। मालूम होता है 11 या 12 का एक पत्र मुझे नहीं मिला। अवश्य उन लोगों ने उस दिन का हाल लिखा होगा।

आज दो व्याख्यान सुने—वर्ड्सवर्थ और टेनिसन पर। वर्ड्सवर्थ अपनी महत्ता का स्थान अब भी बनाये हैं। टेनिसन का महत्त्व धीरे-धीरे घट रहा है। विक्टोरियन युग बुद्धिजीवियों को बड़ा छिछला, नक़ली, दुरंगा, दिखावटी लगने लगा है। टेनिसन विक्टोरियन युग से एकात्म हैं। उनकी कविता में शिल्प का सौन्दर्य भी सतही है। शिल्प की दृष्टि से ब्राउनिंग में अधिक गहराई और सूक्ष्मता देखी जा रही है। कभी ब्राउनिंग की ध्वनियों से बहुत असन्तोष था। कुछ समा-लोचकों ने तो यहाँ तक कहा था कि उनके कान ही नहीं थे। अब देखा जा रहा है कि उनके कान अन्तर्ध्वनियों को भी सुनते थे। इंग्लैण्ड में समालोचना भी मौसम की तरह बदलती है। कवि, लेखक, विधाएँ, प्रवृत्तियाँ लहरों की तरह ऊपर-नीचे उठती-गिरती रहती हैं। आज टेनिसन नीचे चले गये हैं, कभी कोई उन्हें फिर ऊपर उठायेगा। वर्ड्सवर्थ की भी प्रसिद्धि और अप्रसिद्धि की लहरें हैं।

दिन में लाइब्रेरी में 'Dublin University Review' का काम समाप्त कर दिया।

ईट्स की 'Celtic Twilight' आरम्भ कर दी। कुछ लाइब्रेरी में पढ़ी थी। ईशू करा ली है, आज रात, कल सुबह पढ़कर समाप्त कर दूँगा।

ईट्स का प्रारम्भिक गद्य, पर अपनी विशिष्टता लिये हुए।

मौलिकता व्यक्तित्व से आती है।

व्यक्तित्व परिवेश के प्रति जागरूकता से बनता है।

ईट्स में उनका केल्ट मुखर, प्रकाशित।

मंगलवार, 21 अक्टूबर, '52

10 से 11 तक प्रो. लूकस के व्याख्यान में रहा।

'Pre-Raphaelites' पर उनका व्याख्यान अब भी चल रहा है।

11 से 12 तक का समय ख़ाली था—केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस के प्रकाशन देखता रहा।

12 से 1 तक प्रो. रीलैण्ड का व्याख्यान था—'Victorian Background'

पर।

लंच के बाद लाइब्रेरी गया।

'The Last Romantics' पढ़ता रहा। लौटा तो आज सिर में बहुत दर्द था, शायद ठण्ड की वजह से सर्दी अब ख़ूब पड़ने लगी है। कुछ देर रेडियो सुना।

बुधवार, 22 अक्टूबर, '52

यु. ला. में आज भी 'The Last Romantics' पढ़ता रहा—सिर्फ़ Yeats का चैप्टर रह गया। किताब अपने नाम ईशू करा ली है, कमरे में भी पढ़ूँगा।

शाम को टैगोर सोसाइटी के तत्त्वावधान में आयोजित मि. सैम्पसन का व्याख्यान सुनने गया—मि. ई. एम. फ़ोस्टर सभापति थे। व्याख्यान का विषय था 'India in English Novel' व्याख्यान साधारण था। फ़ोस्टर के 'A Passage to India' का ज़िक्र आना स्वाभाविक था, फिर भी मि. सैम्पसन की राय थी कि अंग्रेज़ी उपन्यासों में अभी तक भारत की सन्तोषजनक तस्वीर नहीं उभरी। उन अंग्रेज़ी उपन्यासों में भी नहीं जिनके लेखक भारतीय हैं जैसे मुल्कराज आनन्द वग़ैरह। कारण शायद यह है कि अंग्रेज भारतीय जीवन को निकट से नहीं देख पाता और भारतीय जो निकट से देखते हैं वे उसे अंग्रेज़ी के माध्यम से व्यक्त नहीं कर पाते। शायद अंग्रेज़ी का माध्यम ही उसे कृत्रिम या विकृत कर देता है। क्या यह स्वीकार करना नहीं है कि भारत की तस्वीर भारतीय भाषा के उपन्यासों में ही उभर सकती है? किसी भी जाति के जीवन की सूक्ष्मता उसकी भाषा में ही व्यक्त होती है।

ई. एम. फ़ोस्टर ने खामख़्वाह दो बार अपने सभापतीय भाषण में पाकिस्तान का नाम लिया। जब कोई अंग्रेज़ इण्डिया कहता है तो उसका तात्पर्य ही उस पूरे भू-भाग से होता है जिसमें पाकिस्तान भी शामिल है—व्याख्यान के विषय से कम-से-कम मैंने ऐसा ही समझा था।

व्याख्यान की समाप्ति पर कुछ मनोरंजक प्रश्न भी पूछे गये। अंग्रेज़ भारत की तस्वीर अगर अंग्रेज़ी में लिखे साहित्य में देखना चाहेंगे तो भारत की सच्ची तस्वीर कभी नहीं देख सकेंगे। यह सही है कि अंग्रेज़ी राज, अंग्रेज़ी भाषा, अंग्रेज़ी साहित्य के प्रभाव में भारत की कुछ सृजनशील प्रतिभा ने अपने को अंग्रेज़ी में भी व्यक्त किया है, पर स्वतन्त्र भारत में हमारी प्रतिभाएँ अपनी भाषा में अपने को व्यक्त करने में अधिक गौरव का अनुभव करेंगी। अंग्रेज़ अगर भारतीय जीवन की झाँकी देखना चाहेंगे तो उन्हें कुछ अच्छे भारतीय साहित्य को अंग्रेज़ी में अनूदित करना होगा। पता नहीं आज़ाद हिन्दुस्तान की अ-राजनैतिक तस्वीर में वे कितनी रुचि लेंगे।

सभा समाप्ति पर मिस इस्फ़हानी ई. एम. फ़ोस्टर से मिलीं और उन्होंने उनसे कहा, अब आप 'A Passage to Pakistan' भी लिखिए। 'Passage to India,' ही 'Passage to Pakistan' से क्या कम है।

गुरुवार, 23 अक्टूबर, '52

आज के व्याख्यानों की सूची देखी।

कोई ऐसा न था जिसमें मुझे रुचि हो।

यु. ला. चला गया। 'The Last Romantics' ख़त्म की। ईट्स पर हफ़ का लेख बहुत सार-गर्भित है; सब लेखों से अच्छा। हेन भी उसकी बहुत तारीफ़ करते

थे। ईट्स के प्रायः चर्चित रहस्यवाद या मिस्टिसिज़्म को उन्होंने कुछ भी महत्त्व नहीं दिया। ईट्स की आसक्ति इसी संसारी-शरीरी जीवन में थी और इसके बाद भी इसी की पुनरावृत्ति की कामना उनका रहस्यवाद है!—पर एक भौतिक युग-वातावरण में बाद के जीवन की कल्पना भी क्या एक तरह का रहस्यवाद—गो बहुत निचले स्तर पर नहीं है?

दत्त से मालूम हुआ था कि साढ़े आठ बजे से मिल लेन में मि. पेव्सनर का लेक्चर है—क्रिस्टोफ़र रेन पर।

शाम को खाना खाकर कुछ देर समाचार-पत्र वग़ैरह देखे। फिर व्याख्यान सुनने गया।

मि. पेव्सनर यहाँ की विभूतियों में हैं। जर्मन हैं, पर बहुत दिनों से उन्होंने इंग्लैण्ड की नेशनल्टी ले रक्खी है; केम्ब्रिज युनिवर्सिटी में स्लेड प्रोफ़ेसर ऑफ़आर्ट हैं। इनके व्याख्यान इतने रोचक होते हैं कि सबसे ज़्यादा भीड़ उन्हीं के क्लास में होती है। आज शाम भी हाल ठसाठस भरा था। व्याख्यान स्लाइडस की सहायता से दिया गया था।

क्रिस्टोफ़र रेन ने पेम्ब्रोक कालेज के चैपेल और ट्रिनिटी लाइब्रेरी की इमारत का नक़्शा तैयार किया था। प्रसिद्ध इमारतों में लन्दन का सेण्ट पाल कैथीड्रल उन्हीं की कल्पना थी। लन्दन में जो बड़ी आग लगी थी उससे सब पुरानी इमारतें नष्ट हो गयी थीं। तब रेन को नगर तथा गिरजों तथा कई बड़ी इमारतों का नक़्शा बनाने का काम सौंपा गया था। नगर का नक़्शा पेरिस से लिया गया। गिरजों की मीनारों को बनाने में रेन ने मौलिकता दिखलायी और कई तरह के प्रयोग किये। वृद्धावस्था में rich baroque style की ओर उनकी रुचि क्यों हो गयी, इस पर मि. पेव्सनर ने कुछ प्रकाश डाला।

वृद्धावस्था एक प्रकार का बचपन है, फिर निकटता के कारण यौवन की स्मृतियाँ उसमें प्रबल होती हैं, अगर किसी लक्ष्य, आदर्श या संयम से मनुष्य ऊपर न उठे, आगे न देखे-बढ़े तो पीछे जाने लगता है। अन्त के रेन में रूपाकार की विशालता और दृढ़ता के स्थान पर हम शृंगारिकता देखते हैं—शायद जिसकी रेन ने यौवन में उपेक्षा की वह वृद्धावस्था में उभरी।

ईट्स ने sex सम्बन्धी कविताएँ वृद्धावस्था में लिखीं।

दोनों में एक ही प्रवृत्ति।

एक ही व्याख्या।

व्याख्यान के बाद बहुत देर तक लोगों ने तालियाँ बजायीं।

शनिवार, 25 अक्टूबर, '52

आज मि. एनान और प्रो. विली के व्याख्यान में गया।

कालेज में 'धर्मयुग' का पत्र मिला। सत्यकामजी ने 'धर्मयुग' में छपी मेरी कविता की कटिंग भेजी थी—'अनमिल तार सभी बाहर के, अन्तर के कुछ तार मिला लूँ।' कविता मेरी ही लिपी का ब्लाक बनाकर छापी गयी थी। साथ में चित्र भी था—अजीब-सा लगा। मेरा ख़्याल है कि चित्रकार ने कविता में आये 'अधर' का अर्थ होंठ समझा, जबकि मेरा मतलब धरती और आकाश के बीच के स्थान से था, अन्तरिक्ष से, नहीं तो ऊपर एक नारी के मुख और उसके अधरों को प्रमुखता देने का क्या अर्थ, पर सम्पादकजी को क्या हो गया था।

मेरी कविता के दूसरी ओर महादेवीजी का गीत छपा था। कवि की लिपि

का ब्लाक बनाकर कविता छापने की जो प्रथा चली है उससे कुछ लोगों का कौतूहल भले ही शान्त हो, पढ़ने में असुविधा ही होती है। महादेवीजी की कविता में कुछ मार्मिक पंक्तियाँ थीं। कुछ छायावादी शब्दों से मुझे घृणा हो गयी है—इनमें से एक 'स्पन्दन' है। दुर्भाग्य से यह और इसके कई सम्बन्धी शब्द कविता में थे। सरलता महादेवीजी से दूर जा रही है। वैसे अब वे कम ही लिखती हैं। सालों बाद शायद उनकी यह नयी रचना देखी। कवि की एक दुर्बलता होती है। जब वह कुछ नया लिखता है अपने पिछले काव्य-रूप से कुछ मिलते-जुलते रहने का प्रयत्न करता है—ताकि सहज पहचाना जा सके। एकदम नये रूप में कूद पड़ने का भी एक आकर्षण होता है। पन्त ने 'ग्राम्या' से यही किया था, निराला ने 'कुकुरमुत्ता' से; महादेवी ने सदा प्रत्याशित रूप दिखाया। जीवन की किसी आकस्मिक तीव्रानुभूति या विचारों के क्रान्तिकारी परिवर्तन से शैली बदलती है। महादेवी ने क्या कोई ऐसा परिवर्तन नहीं अनुभव किया? क्या उसे अपनी कविता से छिपाये रक्खा?—

लाइब्रेरी में कुछ ख़ास काम नहीं हो सका। 1 बजे बन्द ही हो गयी।

लंच के बाद कुछ लिखने को जी चाहा। कई बार जो मन में उमड़ा-घुमड़ा था उसे दबाने का प्रयत्न किया था। आज अपनी कविता छपी देखकर कुछ लिखने की प्रेरणा हुई। फिर शनिवार-रविवार सामने थे। कुछ लिख लूँ तो सप्ताह-भर कविता-मुक्त रहूँ।

कुछ देर लेटकर रेडियो सुना। फिर कविता लिखने बैठा।

'कहाँ सबल तुम, कहाँ निबल मैं, प्यारे, मैं दोनों का ज्ञाता।'

एक ही पद लिखा था कि बावा आ गया।

बावा जब गया खाने का समय हो गया था। खाना खाकर फिर लिखने बैठा। क़रीब 10 बजे कविता समाप्त हुई।

बावा को जल्दी टरकाया था कहकर कि रात को मिलने आऊँगा। मौसम अच्छा था। घूमते हुए उसके कमरे पहुँचा—चेस्टरटन रोड पर। हवा बड़ी अच्छी चल रही थी और काम की थकावट के बाद बहुत सुहावनी-ताज़ी लग रही थी। वहाँ क़रीब एक घण्टे बैठा। मेरे दिमाग़ में अब भी कविता की पंक्तियाँ गूँज रही थीं। कुछ पंक्तियों से पूर्ण सन्तोष नहीं था। लौटकर कुछ देर उन्हें सुधारता रहा। क़रीब एक घण्टे काम किया। बारह से ऊपर हो चुके थे, पर आज से जाड़े का समय आरम्भ हुआ है। साढ़े बारह बजे घड़ी की सुई को पीछे करके साढ़े ग्यारह बजा दिया। एलार्म का समय वही साढ़े छह। सोने को कुछ ज़्यादा मिलेगा।

रविवार, 26 अक्टूबर, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ।

कविता से अभी पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ था। उसे फिर पढ़ा और उसमें कुछ संशोधन और किये। एक साफ़ कापी बनायी।

एक और विचार कई दिनों से दिमाग़ में पड़ा था; सोचा इसे भी गीत-बद्ध कर दूँ—आज इतवार है, फिर सप्ताह भर समय कहाँ मिलेगा।

'सुर न मधुर हो पाये, उर की वीणा को कुछ और कसो ना?'

दो पद समाप्त करके लंच लिया।

कुछ देर आराम किया। 'Observer' देखा।

शाम को कविता समाप्त हुई।

अन्तिम पद से मुझे विशेष सन्तोष हुआ। अनजाने ही वह पद बहुत ऊँचे उठ गया है। पिछली कविता का भी अन्तिम पद बहुत अच्छा बन गया था। हेन कहते थे, शायद अपने अनुभव से, शायद किसी के कथनानुसार कि लिखते-लिखते कुछ ऐसा उतरता है जिसे कवि ने कभी लाने, रखने का ख़्याल ही नहीं किया था। उससे अगर शेष का साम्य कर लिया गया तो कृति में एक प्रकार की unity आती है, वर्ना सोचे और स्वत: उतरे में बड़ा अन्तर होता है। पता नहीं मैं साम्य लाने में कितना सफल हुआ हूँ। एक नवीन imagery मेरे मन में सहसा आ गयी थी, जिसे मैंने न कहीं और देखा था न जिसका पहले प्रयोग किया था।

खाना खाकर शरले सोसाइटी की मीटिंग में गया। आज मि. डेविड डैशेज़ का 'उपन्यास की समालोचना' पर व्याख्यान था। समालोचना का 'एमफ़ैसिस' उपन्यास से उपन्यासकार और उपन्यासकार से उसकी फ़िलासफ़ी यानी जीवन-दर्शन पर हो गया है।

सोमवार, 27 अक्टूबर, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर तेजी के दो पत्र मिले। 12 और 22 के एक साथ। 12 का पत्र इतने दिनों कहाँ पड़ा रहा ?

आज मिस वेस्टब्रुक और ग्राहम हफ़ के व्याख्यान में गया—थीसिस का प्लान बनाने की उन्होंने याद दिलायी।

12 बजे किंग्स कालेज में मि. एनान से मिला। 19वीं शताब्दी के अन्त में इंग्लैण्ड की धार्मिक और सामाजिक परिस्थिति पर हमारी बातचीत हुई। उन्होंने उस विषय पर कुछ उपयोगी पुस्तकों के नाम बताये।

बसन्त कुमार बिड़ला का पत्र मिला। उन्होंने लिखा था, भारती भण्डार मेरी नयी पुस्तक 'कुछ टूटे कुछ साबित' प्रकाशित करने को तैयार है, पर प्रथम संस्करण की रायल्टी अग्रिम देने को तैयार नहीं।—कापी राइट लेना चाहेंगे ? —तेजी से सलाह कर उन्हें लिखूँगा। मन में उदासी छा गयी है।

एम. ए. स्टेटस के सम्बन्ध में मिसेज़ स्मिथ से पूछने गया तो उन्होंने कहा कि मुझे एम. ए. स्टेटस बहुत पहले मिल चुका है और शायद लाँग वेकेशन के रिपोर्टर में मेरा नाम भी निकल गया है। सेण्ट्रल लाइब्रेरी में जाकर रिपोर्टर की फ़ाइल देखी; मेरा नाम नहीं था। वहाँ से रजिस्ट्री गया। वहाँ पता चला कि अगले बुध को मेरा नाम प्रकाशित किया जायेगा। यहाँ भी कभी-कभी लोग दायित्वहीनता से जवाब दे देते हैं।

यु. ला. में theosophy पर, Rynan की पुस्तक पढ़ता रहा। लौटा तो ज़ोरों की वर्षा हो रही थी। खाना खाकर कमरे में आग जलायी। इस चिन्ता में कि यहाँ के और घर के ख़र्च को 'मीट' करने के लिए और क्या किया जा सकता है, कुछ गम्भीर न पढ़ा गया। सेसिल डे लीविस की काव्य-पुस्तक लेकर बैठ गया—'Word over All'—पुस्तक समाप्त कर दी। सेसिल यों तो आधुनिक sensibility को मुखरित करने का प्रयत्न करते हैं, पर कभी-कभी पुरानी रूमानी भावनाओं को भी नये मुहावरों से पकड़ते हैं—

> Love, tear the song from my heart !
> Short, short is the time.'

मंगलवार, 28 अक्टूबर, '52

प्रो. लूकस और प्रो. रीलैण्ड के व्याख्यानों में गया।

बीच का घण्टा ख़ाली था। सेण्ट्रल लाइब्रेरी जाकर 'Poetry Review' तथा और पत्रिकाएँ देखीं।

युनि. ला. में Rynan की पुस्तक समाप्त की।

आज मुझे हफ़ के पास अपनी थीसिस का प्लान ले जाना था। कल उस पर काम करना था, पर बसन्त कुमार के पत्र पाने के बाद से मन ऐसा उचटा कि एकाग्र होकर कुछ करना असम्भव हो गया।

हफ़ को फ़ोन किया। एक हफ़्ते का समय और माँग लिया है। समय तो उन्होंने दे दिया, पर कहा कि अगर सप्ताह के बीच भी काम पूरा हो जाय तो फ़ोन करके उनसे मिल सकता हूँ।

मन की उद्विग्नता में नयी पुस्तकों की आलमारी से कविता की एक नवीन पुस्तक उठा ली और दूसरे वक़्त उसी को पढ़ता रहा।

नाम था 'Diary of a Heart'; लेखक थे McMurtrie. केम्ब्रिज के विद्यार्थी थे, युद्ध में मृत्यु हुई सन् 1944 में। कविताएँ दर्द-भरी—मार्मिक। दर्द की अभिव्यक्ति से कविता नहीं बनती; बनती है दर्द को उभारने से; दर्द तो उभरकर ही दूर होता है; शायद इसीलिए लोग दर्द उभारनेवाली कविता को पढ़ते, पसन्द करते हैं—दुनिया दर्द की मारी है। भूमिका में कवि ने कहा था, मेरी कविताएँ अवसादपूर्ण लगेंगी, पर इसका यह अर्थ नहीं कि सुख के क्षण मैंने नहीं जाने। कविता मैं दुख के क्षणों में ही लिख पाता हूँ। सर्वदा मैंने अपने ही दुःख का वर्णन नहीं किया। अपने अवसाद में मैंने दूसरों के अवसाद पर भी कविताएँ लिखी हैं। युद्ध सम्बन्धी कविता में देश-प्रेम, आदर्शवादी दृष्टिकोण। कितने युवकों ने इन आदर्शों के लिए जानें दीं और कितनी जल्दी उन आदर्शों को भुलाकर फिर युद्ध की तैयारी की जा रही है। राजनीतिक नेता युद्ध सामने आने पर कैसे-कैसे तर्क उपस्थित कर जनता में जोश भरते हैं। मरे हुए योद्धा लौट सकते तो पूछते, जिन आदर्शों के लिए हम क़ुर्बान हुए वे कहाँ तक पूरे हो पाये। समर्पण की दो पंक्तियाँ बहुत कवित्वपूर्ण और मार्मिक लगीं। कविता शायद अपने साथी सिपाहियों को (अथवा कवियों को ?) समर्पित की गयी थी,

'To all who won us wings
To clear the tops of grief.'

कविता के द्वारा हम बग़ैर दुख से टक्कर लिये, गो उसे देखते, उसे पार कर जाते हैं, जैसे पक्षी पहाड़ की ऊँचाई को।

रात को सिंह ने अपने यहाँ कॉफ़ी-पार्टी दी थी। परिचित चेहरे।

लौटा तो ब्राइन और उसके साथियों ने बड़े कमरे में गाल्फ़ की क़िस्म का एक खेल खेलने को बुलाया। मैंने तो इस तरह का बाल-बल्ला कभी छुआ ही नहीं था। संयोग से मैं ही सबसे अच्छा खेला, मैं ही जीता। उन्होंने मुझे कुछ पिलाना चाहा। माफ़ी माँगकर कमरे लौटा।

बुधवार, 29 अक्टूबर, '52

ब्रेकफ़ास्ट के बाद बैंक गया। कुछ पैसे निकलवाने थे।

बाज़ार-दूकानों में नया सामान, नयी सजावट!

सब घोषित कर रहे हैं, नया साल आने को है। तरह-तरह के कार्डों, उपहारों का प्रदर्शन—ख़रीदो और अपने प्रिय जनों को नये वर्ष में भेंट-स्वरूप भेजो।

अमित, अ़जित, प्रभात के लिए किताबें-कार्ड वग़ैरह लिये। अभी से भेज दूँ तो नये वर्ष पर उन्हें मिल जायेंगे। समुद्री मेल से छह हफ़्ते लगते हैं।

थीसिस का प्लान दिमाग़ पर चढ़ा है।

सोचा ईट्स पर कुछ समालोचना भी पढ़ लूँ तब प्लान बनाऊँ।

The Permanence of Yeats' शुरू की। ईशू करा लाया हूँ।

लंच के बाद लाइब्रेरी नहीं गया।

किताबों के पार्सल वग़ैरह बनाये।

रास्ते में पोस्ट करता डेविड डैशेज़ के लेक्चर में चला गया। आज से उनका लेक्चर 'Method of Research' पर शुरू हुआ है।

रात को कुछ देर थीसिस के प्लान पर काम किया।

गुरुवार' 30 अक्टूबर, '52

आज प्रो. लूकस, प्रो. विली और मिसेज़ ब्रॉड ब्रुक के लेक्चर में गया।

यु. ला. में 'The Permanence of Yeats' पढ़ी, ईट्स पर बड़े महत्त्व के लेख हैं, नोट्स बहुत विस्तार से लेने होंगे, सोचा है यह पुस्तक खरीद लूँगा। उसी में निशान लगा लूँगा।

शाम को खाने के बाद प्लान पर काम किया। ईट्स अपने अध्ययन, चिन्तन, मनन, सृजन के फलस्वरूप जीवन की एक नयी फ़िलासफ़ी पर पहुँचना चाहते थे। Conclusion में इसी को रखकर पीछे चल रहा हूँ। हर महत्त्वपूर्ण सृजन का यह सीक्रेट है,

'I tell thee this—when, starting from the goal'

Starting from the goal—यही मैं भी कर रहा हूँ।

इलाहाबाद में किया हुआ काम इससे कहीं जोड़ नहीं खाता, फिर भी हफ़ ने देखना चाहा है।

रात को C. Day Lewis की कविताएँ पढ़ीं—

Poems—1943-47.

शुक्रवार, 31 अक्टूबर, '52

आज कोई लेक्चर ऐसा नहीं था जिसमें जाना चाहूँ। साढ़े 9 बजे लाइब्रेरी पहुँच गया।

ला. कैफ़ेटेरिया में लंच।

पूरे आठ घण्टे लाइब्रेरी में काम हुआ—'The Permanence of Yeats' पर।

शाम को मि. एफ़. एल. लूकस का व्याख्यान था—'Standard of Criticism' पर, डाउनिंग कालेज में।

जिधर से गया उधर फाटक बन्द था। दो लड़कियाँ लौटी आ रही थीं। दूसरी तरफ़ से जाने में आधे मील का चक्कर तो पड़ गया होगा। जब हम पहुँचे व्याख्यान आरम्भ हो गया था। भीड़ बहुत थी, पर सुनने को मिल गया। व्याख्यान में कोई विशेष बात उन्होंने नहीं कही। पूरे समय contemporary sensibility समझाते रहे। इसको पूरी तरह समझ लेना शायद समालोचक का न होकर कलाकार का काम है। पहले। बाद को यह कला के द्वारा पाठक और समालोचक तक पहुँचती

है—उसके artistic implication के माध्यम से। यह जानने, स्टडी करने से अधिक sense करने की चीज़ है। भावप्रवण कलाकार उसे sense कर लेता है। जानने और पहचानने की स्थिति में वह स्वयं बाद को आता है। कलारूप में उसकी अभिव्यक्ति देने के बाद। 'बाद' की अवधि कलाकार की दूरन्देशी—या कालभेदी दृष्टि—पर निर्भर होगी। जहाँ न जाये रवि वहाँ जाये कवि—कुछ गम्भीर अर्थ रखता है। रवि के किसी जगह पहुँचने से पहले कवि वहाँ पहुँच जाता है, अपनी सूक्ष्म sensibility से व्याख्यान के अन्त में कुछ प्रश्न भी हुए।

लूकस भावप्रवणता समालोचक को भी देना चाहेंगे।

किसी अंश में वे ठीक हैं।

समालोचक अपनी भावप्रवणता प्रकट कैसे करेगा ?

शायद इसका भी कुछ उत्तर उनके पास हो।

शनिवार, 1 नवम्बर, '52

आज मि. एनान और प्रो. विली के व्याख्यान में गया।

व्याख्यान के बाद प्रो. विली से कुछ देर बातें हुईं। मैंने उन्हें अपनी शोध-सम्बन्धी प्रगति के बारे में सूचित किया। थीसिस की आउट-लाइन वे भी देखना चाहेंगे। प्रो. विली भी शीघ्र ही अमरीका जानेवाले हैं।

मैंने ईट्स का 'Collected Plays' आज ख़रीद लिया।

कमरे में कुछ घण्टे 'The Permanence of Yeats' पढ़ा, कुछ घण्टे 'Collected Plays'.

खाने के बाद घूमने निकला तो पुरोहित की तरफ़ चला गया। न जाने क्या उन्होंने मेरे चेहरे में देखा कि कहा आप कुछ 'वरीड' मालूम होते हैं ? मैंने कहा 'वरीड' मैं हर समय रहता हूँ, आज कोई खास बात नहीं है।

लौटा तो कुछ लिखना चाहता था। सोचा, कल सुविधा से लिखूँगा, इतवार है।

इतवार, 2 नवम्बर, '52

ब्रेकफ़ास्ट के बाद कविता लिखने के लिए बैठा।

कविता पर तो शायद दिमाग़ रात-भर काम करता रहा था। पुरोहित के प्रश्न पर मन में कुछ विचार उठे थे।

गीत का मुखड़ा सोने जाते समय ही स्पष्ट हो गया था।

'दे मन का उपहार सभी को ले चल मन का भार अकेले।'

लंच लेकर थोड़ी देर को सो गया।

दूसरे वक़्त 'The Permanence of Yeats' पढ़ी।

शाम को मि. समलोट के यहाँ चाय-पार्टी थी। इस मास के अन्त में वे भारत जा रहे हैं।

सोमवार, 3 नवम्बर, '52

नये वर्ष के कार्ड पोस्ट किये—36 कार्ड।

ग्राहम हफ़ के व्याख्यान में गया। व्याख्यान के बाद उनसे बात हुई। मैंने उनसे बताया, मेरा थीसिस का प्लान तैयार है। पर मि. हफ़ को इस सप्ताह छुट्टी नहीं है; 10 ता. को 5 बजे का समय दिया है।

लाइब्रेरी में 'Axel' का अंग्रेज़ी अनुवाद पढ़ता रहा।

ईट्स से उससे परिचित और प्रभावित होने की बात किसी लेख में पढ़ी थी।

अंग्रेज़ी रूमानियत संयत होकर चलती है।

फ़्रेंच रूमानियत खुल खेलती है।

उस खुलने में वह रहस्यवाद की सीमाएँ छूती है।

वास्तविकता तो कुछ सतही सच्चाइयाँ देने में समर्थ है। गहरे में जो सत्य हैं उन्हें कुछ अवास्तविकता, कुछ स्वप्न, कुछ कल्पना, कुछ अद्‌भुत प्रतीकों से छुआ जा सकता है। 'Axel' की कहानी उसका उदाहरण। ईट्स' के 'Shadowy Waters' की निश्चित प्रेरणा। पूर्ववर्ती ईट्स के लिए अवास्तविक में बड़ा आकर्षण था। वे सदा उसकी गहराइयों को नहीं छूते। वे केवल उसकी शृंगारिकता का आभास देकर ठहर जाते हैं। युगीन प्रि-राफ़ेलाइट प्रभाव से निकलने में उन्हें काफ़ी समय लगा। आयरी-केल्टिक रंग-रस की विशिष्टता न देते तो शायद साधारण की श्रेणी से ऊपर न उठते।

ईट्स की विशिष्टता एक बात में और थी।

रूमानियत उनकी केवल शिल्पगत न थी। उसे उन्होंने अपने जीवन और विश्वास का अंग बना लिया था।

ईट्स की रूमानियत के पीछे उनके जीवन की अनुभूतियों का आधार है। 'Shadowy Waters' का एक धरातल, किसी समालोचक ने लिखा है, उनके जीवन का है। ईट्स की रूमानियत स्वप्निल, वायवी, आकाशी होने से बच गयी है।

मंगलवार, 4 नवम्बर, '52

आज किसी लेक्चर में नहीं गया।

दिन-भर युनिवर्सिटी लाइब्रेरी में रहा।

'The Permanence of Yeats' समाप्तप्राय।

लौटा तो तेजी का पत्र मिला।

रॉय साहब की मृत्यु से वे बहुत घबरा गयी थीं। उनकी मृत्यु अचानक heart failure से हुई। समाचार से मेरा भी दिल बैठ गया। हम लोगों के बड़े अच्छे मित्र थे। श्रीमती रॉय का बार-बार ध्यान आया। किसी समय वे कितनी हँसमुख हुआ करती थीं।

जब से स्वास्थ्य के सम्बन्ध में मुझसे एक प्रश्नावली का उत्तर माँगा गया था, और मेरा दूसरा बड़े साइज़ का X-ray हुआ था तब से अपने बारे में भी मुझे आशंका होने लगी थी। रॉय की अचानक मृत्यु के समाचार से मन बहुत उदास हो गया। तेजी को तो निर्भयता का एक 'पोज़' बनाकर पत्र लिख दिया, समझा-बुझा दिया, पर ख़ुद मृत्यु के बारे में सोचने लगा। सोचते-सोचते जी चाहा एक कविता लिखूँ। सोच रहा था एक साधारण मनुष्य की तरह, पर कविता लिखी कवि की तरह। कवि की मृत्यु होने को हो तो वह क्या सोचेगा? मैंने तो वही लिखा है जो मेरे अनुभव में आया है। मृत्यु मेरे अनुभव में नहीं आयी। तो क्या उसके भय में लिखूँ? मृत्यु के भय में जीवन नहीं जिया जा सकता। पूरी तरह जीना तो जीने का आनन्द अनुभव करते हुए ही सम्भव है। यह ठीक है कि मृत्यु एक बड़ा सत्य है। पर है तो वह केवल एक क्षण; और जीवन एक विस्तार—जिसमें हर क्षण युग बनने की क्षमता लिये है। जीवन छोटा भी इतना विस्तार, इतनी सघनता लिये है

कि उसे पूरी तरह जीना शायद मनुष्य के लिए सम्भव न हो। मृत्यु की अनिश्चितता suddenness जीवन के हर क्षण को सघनतम बनाने की प्रेरणा क्यों न बने ? जो बना सके उसके लिए मृत्यु-भय नहीं।

किसी तरह खाना ख़त्म कर कमरे में चला आया। घूमने नहीं गया। रेडियो चलाया। कुछ हँसी-मज़ाक का कार्यक्रम चल रहा था। अच्छा नहीं लगा। बन्द करके कुछ देर आरामकुर्सी पर लेटा रहा। फिर उठकर एक कविता लिखी।

'मैंने जीवन देखा, जीवन का गान किया।'—इससे मन ने बड़ा आत्मविश्वास संचय किया।

बुधवार, 5 नवम्बर, '52

ब्रेकफ़ास्ट पर अख़बार पर नज़र।

आइज़नहावर अमरीका के प्रेसीडेण्ट चुन लिये गये।

अंग्रेज़ लड़कों में ख़ुशी।

आज यहाँ Guy Fawkes Day.

सड़क पर निकला तो देखा बच्चे पेरैम्बुलेटर या खिलौना-गाड़ियों पर कपड़े का पुतला बिठा Penny for Guy Fawkes!—माँगते हैं। सत्रहवीं सदी में पार्लियामेण्ट हाउस को बारूद से उड़ा देने का एक षड्यन्त्र रचा गया था। उसका नेता गाई फ़ाक्स था। कोई रोमन कैथलिक। जिस दिन बारूद में आग लगायी जाने को थी उसके एक दिन पहले षड्यन्त्र का पता चल गया और गाई फ़ाक्स को पकड़कर फाँसी दे दी गयी। उसी की स्मृति में यह दिन हर साल 5 नवम्बर को मनाया जाता है। बच्चे गाई फ़ाक्स के नाम से लोगों से पैसे इकट्ठा करते हैं और शाम को उन्हीं पैसों से ख़रीदकर पटाख़े छुड़ाते हैं। दूकानों में तरह-तरह के पटाख़े भी बिकने को सजे थे।

आज 'मैट्रिक्युलेशन' की रस्म होने को थी। किसी दूसरी युनिवर्सिटी से चाहे जितनी बड़ी डिग्री लेकर आओ, यहाँ किसी भी डिग्री के लिए नाम लिखाने पर 'मैट्रिक्युलेशन' कराने की प्रथा है। कोई परीक्षा नहीं देनी होती। केवल एक रजिस्टर में हस्ताक्षर करने होते हैं और अपने पिता का नाम और घर का पता लिखना होता है। शायद पहले कभी परीक्षा भी होती हो।

अण्डर ग्रेजुएट के गाउन में कालेज गया। पहले डॉ. स्मिथ और फिर डॉ. वाधम के व्याख्यान हुए। उन्होंने 'मैट्रिक्युलेशन' का अर्थ, इतिहास और महत्त्व बताया। उसके बाद फ़ोटो हुई। फिर हम लोग सेनेट हाल लाये गये। वहाँ एक बड़े रजिस्टर पर सबने बारी-बारी से हस्ताक्षर किये। अब मैं केम्ब्रिज का प्रमाणित मैट्रिक्युलेट।

लंच के बाद लाइब्रेरी गया। 'The Permanence of Yeats' समाप्त की। 'Axel' के लगभग सौ पेज पढ़े।

लौटकर कुछ देर कविता पर काम किया। उसके पहले ड्राफ़्ट से सन्तुष्ट नहीं था; अब वह ठीक हो गयी है।

पता नहीं प्रेम के गीतों में इसका स्थान कहाँ होगा।

कला की 'हारमोनी' कितनी कृत्रिम होती है!

जीवन की 'हारमोनी' बहुत-सी परस्पर विरोधी वृत्तियों को लेकर चलेगी। प्रेम और घृणा, और मरण सब 'हारमोनी' में ही हैं। डिस-हारमोनी सबको साथ न देखना है।

गुरुवार, 6 नवम्बर '52

ब्रेकफ़ास्ट के बाद युनिवर्सिटी लाइब्रेरी गया।

आज दिन-भर 'Axel' ही पढ़ता रहा।

इतना मन लगा कि भूल गया कि दूसरे वक़्त डेविड डैशेज़ का लेक्चर है— 'मेथड आफ़ रिसर्च' पर—

'Axel' ने बहुत कुछ सोचने को विवश किया।

कुछ अपनी पिछली कविता का मूड, कुछ 'Axel' का प्रभाव, कुछ यहाँ का मौसम—यहाँ के जाड़े के अन्धकार से घिरे मौसम में बिना संगी-साथी के कोई खुश कैसे रह सकता है ?—सबने मिलकर बहुत उदास कर दिया। सोचा, कहीं जाऊँ।

'···**ले चल मन का भार अकेले**।'

कोई सामयिक समस्या थोड़ी सामने है।

यह तो जीवन-मरण के समक्ष मानवी चेतना अथवा भावप्रवणता का प्रश्न है।

या तो उस पर सोचो ही नहीं—गो कभी परिस्थिति ऐसी आ जाती है कि इस पर सोचने को आदमी विवश हो जाता है।

या इसका कोई समाधान निकालो—या निकले समाधानों में से किसी पर विश्वास जमा लो। थोड़ी-सी बौद्धिकता जो विकसित कर ली है सहज विश्वास के कितने आड़े आती है।

खैरियत है कि हम जैसों के सामने भौतिक जगत की समस्याएँ इतने स्थूल रूप में उपस्थित होती हैं कि हम इस luxury of thinking, dreaming. imagining में अधिक समय तक नहीं पड़े रह सकते। यह भी हो सकता है कि हमारा बौद्धिक बौनापन महा मनीषियों के इस मानसिक संघर्ष से घबराकर छोटी-मोटी भौतिकता में शरण लेता है।···

लाइब्रेरी से लौटकर खाना खाया। घूमने गया—दूर तक—अपने विचारों के ताने-बाने में उलझा—और पूरे समय यह प्रत्याशा भी करता कि कोई मिल जाये और मुझे इस ताने-बाने से निकाल ले।

लौटकर तेजी और बच्चों को चिट्ठियाँ लिखीं।

कुछ देर रेडियो सुना।

शुक्रवार; 7 नवम्बर, '52

लाइब्रेरी में 'Axel' समाप्त की।

इसे पढ़ने का आनन्द लेते हुए एक बार फिर पढ़ा जा सकता है।

मैं इसकी समस्या से उलझ गया था। लेखक ने निश्चय यह चाहा होगा कि उसका पाठक इस समस्या से उलझे। समस्या जीवन-मरण, जीवनोद्देश्य की, जीवनाकांक्षा की।

मुझे एक निम्न स्तर पर भी इसका उपयोग करना है, अपनी शोध के सम्बन्ध में। फिर पढ़ूँगा तो कुछ नोट्स भी लूँगा—पर अब ईट्स का 'The Shadowy Waters' पढ़ने के बाद।

लाइब्रेरी से दत्त के साथ लौटा। उनसे पता लगा कि शिवकुमार और इन्दरजीत सिंह ने मजलिस से त्याग-पत्र दे दिया है। फिर से चुनाव होगा। दत्त ने बताया

कि पाकिस्तानी विद्यार्थियों ने एक अलग संस्था बना ली है—मजलिस के नाम मात्र सदस्य हैं, पर जाते हैं अपनी साम्प्रदायिक संस्था में। उनकी राय है कि हिन्दुस्तानियों को भी अपनी अलग संस्था बनानी चाहिए।—जब आया था मुझे यह सुनकर ख़ुशी हुई थी कि पाकिस्तानियों और हिन्दुस्तानियों की एक ही संस्था है। पर मालूम होता है कि साथ निभने का नहीं। मैंने कहा, संस्था बनाने के पहले खूब सोच-विचार लेना चाहिए—पाकिस्तानी साम्प्रदायिक संस्था बना सकते हैं—वे सब मुसल्मान हैं। हिन्दुस्तानी हिन्दू संस्था नहीं बना सकते, क्योंकि हिन्दुस्तानी हिन्दू भी हैं, मुसलमान भी। हमारी संस्था का आधार राष्ट्रीयता ही हो सकता है। दत्त ने मेरा point समझा।

रात को मैंने ईट्स की कविताएँ पढ़ीं। थीसिस लिखने की शुरुआत करने के लिए मैंने सोचा एक निबन्ध ईट्स की उन कविताओं पर लिखूँ जो भारतीय विषयों पर हैं।

शनिवार, 8 नवम्बर, '52

सुबह मि. हफ़ का फोन आया—मैं अपनी थीसिस का प्लान और इलाहाबाद युनिवर्सिटी का शोध-निबन्ध क्राइस्ट कालेज के पोर्टर के पास या उनके घर पर आज किसी समय छोड़ दूँ। वे इतवार को उसे देख रखेंगे, जिससे सोमवार को उस पर बातचीत हो सके।

सब सामग्री एक बड़े लिफ़ाफ़े में क्राइस्ट कालेज में छोड़ता मैं मि. एनान के लेक्चर में गया। वहाँ से लाइब्रेरी चला गया।

ईट्स ने कहीं लिखा था कि Scott की 'Lay of the Last Minstrel' पढ़कर उनके मन में magician बनने का विचार आया। लाइब्रेरी में यह कविता बड़े ध्यान से पढ़ी। कविता में ब्रेकंसम हाल की लेडी, जादूगर (wizard) माइकेल स्कॉट की क़ब्र से एक जादू की पुस्तक निकलवाती है जिसकी सहायता से वह अपने शत्रुओं को परास्त करना चाहती है।···कविता ईट्स ने अपने लड़कपन में पढ़ी थी, पर 'जादू की पुस्तक' उनके दिमाग में इस कदर बैठ गयी कि उसकी सत्ता का विश्वास वे अपने जीवन भर न छोड़ सके। वे हमेशा इस पुस्तक की खोज में रहे, कई पुस्तकों को 'जादू की पुस्तक' करके देखते रहे और अन्त में स्वयं एक जादू की पुस्तक छोड़ जाने के अभिलाषी रहे—'A Vision' को उन्होंने ऐसा ही बनाकर दुनिया के सामने रखना चाहा। अन्धकार में एक जलती मोमबत्ती के सामने एक खुली पुस्तक का रूपक—जादुई ज्ञान का प्रतीक बनकर—उनकी कविता में कई बार आया है।

आज Poppy Day था। इस दिन विद्यार्थी पुराने सैनिकों की सहायता के लिए पैसे इकट्ठे करते हैं। जिस कालेज के लड़के सबसे ज्यादा पैसे इकट्ठे करते हैं। उन्हें बीयर का एक पीपा इनाम में दिया जाता है। इस पीपे को जीतने के लिए कालेजों में होड़ लग जाती है। विद्यार्थी माँगकर, तमाशा दिखाकर, स्वांग बनाकर नागरिकों से पैसे इकट्ठे करते हैं, ज़ोर-ज़बर्दस्ती से भी। अपने-अपने कालेज के सामने लड़के लम्बे-लम्बे बाँस, ज़ंजीरें, रस्से लेकर खड़े होते हैं और उधर से गुज़रनेवाली सब तरह की गाड़ियों को रोकते हैं और उनसे पैसे वसूल करते हैं।

लंच के बाद यह तमाशा देखने निकला। नगर भर में लड़के आकर्षक, अद्भुत, रंग-बिरंगी पोशाकों में—जोकर-से बने हुए पैसा माँगने निकले थे। सब जगह होली का-सा समय था। कालेजों के सामने बड़ा नाच-रंग था। कुछ तमाशे अच्छे

और मौलिक थे, कुछ भद्दे—कुरुचिपूर्ण। एक लड़के ने 'पिसपाट' को डोरी में बाँधकर लटका रक्खा था और नीचे जाते हुए लोगों के सर पर रख देता था और जब तक वे पैसे नहीं देते थे नहीं हटाता था। दो लड़कों ने कमोड की लकड़ी में अपना सिर डाल रक्खा था—कमोड पर लिखा था—New System of Flush !

दत्त और कमला मिल गये। हमने साथ कॉफ़ी पी, फिर तमाशा देखते रहे। शाम को जलूस निकला। खुली ट्रकों पर चौकियाँ सजी थीं—मनोरंजक दृश्यों की—किसी पर नाच, किसी पर गाना, किसी पर शोरगुल ! होली का-सा हुड़दंग !

शाम को मेरे ट्यूटर मि. लेसी के यहाँ शेरी-पार्टी थी। बातचीत में कुछ लोगों ने इच्छा व्यक्त की कि किसी शाम को शरले सोसाइटी में मैं हिन्दी कविता पर एक वार्ता दूँ और अपनी कविताएँ सुनाऊँ।

रात को ईट्स के कुछ नाटक पढ़े !

रविवार, 9 नवम्बर, '52

आज दिन-भर भारतीय विषयों पर लिखी ईट्स की कविताओं पर निबन्ध लिखता रहा।

शाम को मिलन अपने कमरे में लिवा ले गये—उनके बहन-बहनोई आये थे। योरोप यात्रा के अनुभव बताये।

रात को नीग्रा मिलने आया। किसी कारण बहुत उदास था। इस तरह के फ़िट यहाँ सबको आते हैं। इसे यहाँ केम्ब्रिजाइटिस कहते हैं। मुझे तो बहुत ज़्यादा आते हैं। बहुत बेतकल्लुफ़ी से उसने पूछा, कुछ पीने को है आपके पास ? कुछ अफ़सोस हुआ कि मेरे पास कुछ न था। कुछ देर बैठा, बहुत कम बोला, अपने स्वभाव के प्रतिकूल। अपनी उदासी का कोई कारण उसने न बताया। मैंने उसे ईट्स की कुछ कविताएँ सुनायीं, समझायीं। शायद कुछ अच्छे मूड में अपने कमरे गया।

सोमवार, 10 नवम्बर, '52

आज दिन-भर कमरे में ही रहा।

थीसिस के प्लान को ही चुस्त-दुरुस्त करता रहा।

शाम को हफ़ के पास गया—क्राइस्ट कालेज के उनके कमरे में।

इलाहाबाद के निबन्ध को उन्होंने देख लिया था। शोध-विषय की दृष्टि से उसे उन्होंने बेकार समझा।

मैंने इलाहाबाद में 'Mind and Art of Yeats' पर थीसिस लिखने की बात सोची थी।

केम्ब्रिज आकर और हेन से बात करके मैं अपनी थीसिस 'Mind of Yeats' पर लिखना चाहता था। 'Yeats and the Irrational' में मैं यह दिखाना चाहता था कि किस प्रकार in the making of Yeats' mind irrational had played a great part. हफ़ को मेरी थीसिस का झुकाव, फ़िलासफ़ी या मनोविज्ञान की ओर, अधिक नहीं रुचा। वे चाहते हैं कि ईट्स का mind जिन तार्किक-अतार्किक विचारधाराओं से बना उस पर ज़ोर न देकर मैं यह दिखाऊँ कि उन विचारधाराओं से किस प्रकार उन्होंने अपने काव्य के लिए प्रेरणा ली, या काव्य के लिए उनका उपयोग किया। ईट्स के mind के लिए भी प्रमाण तो उनकी रचनाओं से ही मैं देता, पर हेन और हफ़ के दृष्टिकोण में कुछ अन्तर है। हेन

अमरीका में हैं; काम मुझे हफ़ के साथ करना है। मैंने हफ़ का दृष्टिकोण समझ लिया है। प्रयत्न करूँगा कि अपनी thinking को थोड़ा मोड़ देकर मि. हफ़ के अनुकूल बना लूँ।

रात को दत्त का फ़ोन आया, मुझे अपने घर बुलाया था। कहीं से उनके पास रसगुल्ले का टिन आया था। मुझे भी खिलाना चाहते थे।

मंगलवार, 11 नवम्बर, '52

कल हफ़ के पास से लौटकर बड़ी देर तक सोचता रहा कि अपनी स्टडी के प्लान में किस प्रकार का परिवर्तन करूँ।

अब ईट्स के साहित्य को अधिक बारीकी से पढ़ना पड़ेगा और देखना होगा कि जिन विचारधाराओं से वे प्रभावित थे उनसे उनकी कविता कहाँ-कहाँ प्रभावित हुई।

कल ही से सोच लिया था कि ख़ूब तड़के उठकर ब्रेकफ़ास्ट के पहले दो घण्टे का समय ईट्स के सृजनशील साहित्य को दिया करूँगा।

आज 5॥ बजे उठा।

'Collected Poems' शुरू कर दी है।

दिन को लाइब्रेरी में रहा। ईट्स पर भारतीय प्रभावों की तालिका बनायी। यह पहला क़दम है।

दूसरा क़दम होगा—कविताओं में उनकी छाप देखना।

सृजनशील साहित्य और विचारधाराओं का अध्ययन समानान्तर चलेगा।

हफ़ ने तो यहाँ तक कह दिया है कि ईट्स के जिन विचारों-विश्वासों का प्रभाव उनके सृजनशील साहित्य पर नहीं पड़ा वे हमारे लिए बेकार हैं।

रात को सिंह के यहाँ गया। उसे रहने को बड़ी अच्छी जगह मिल गयी है। लेक डिस्ट्रिक्ट ट्रिप की उसने जो तस्वीरें ली थीं दिखायीं। कुछ मैंने अपने लिए माँगी हैं। तेजी को भेजूँगा।

बुधवार, 12 नवम्बर, '52

कल की रुटीन आज भी चली।

ईट्स के मस्तिष्क पर पड़नेवाले प्रभावों में अब तक इतनों को पहचान सका हूँ, जिनके चिह्न कविताओं में भी मिलेंगे।

(i) Mohini Chatterji and Tagore
(ii) Cabbala
(iii) Swedenborg and Boeme
(iv) Madam Blavatsky's Theosophy
(v) Purohit Swami and the Upanishads
(vi) Irish folklore
(vii) Blake
(viii) Some unaccountable sources—Alchemy, Magic, etc. etc.

आनेवाली छुट्टियों में लन्दन रहकर ब्रिटिश म्यूज़ियम और लन्दन की थियोसोफ़िकल सोसाइटी में काम करना है। पर लन्दन जाने से पूर्व ईट्स की समस्त रचनाओं का सूक्ष्मता से अध्ययन कर लेना चाहिए।

हफ़ ने ईट्स की रचनाओं की पूरी तालिका के लिए Wade की 'The Bibliography of W. B. Yeats' देखने के लिए कहा था। बहुत-सी रचनाओं के कई संस्करण देखने होंगे, क्योंकि ईट्स ने उनमें बराबर संशोधन-परिवर्तन किये हैं। युनिवर्सिटी लाइब्रेरी में सब नहीं हैं, शायद ब्रिटिश म्यूज़ियम में मिल जायें।

हेन के अनुसार ईट्स के साहित्य का अध्ययन गौण होता।

हफ़ ने ईट्स के साहित्य को ही प्रमुखता दी है। यह एक तरह से अच्छा है। शुरू से यह चीज़ स्पष्ट होती तो ज़्यादा अच्छा होता। हेन ने कहा था शोध की रूप-रेखा धीरे-धीरे स्पष्ट होगी। सात महीने लग गये हैं। जिस सामग्री का उपयोग करना है वह बहुत-कुछ सामने आ गयी है। कुछ चीज़ें लिखते समय ठीक शक्ल में उतरेंगी––Writing makethan exact man---Bacon.

शुक्रवार, 5 दिसम्बर, '52

आज तीन सप्ताह बाद डायरी लिख रहा हूँ।

इस बीच भूत की तरह काम करके ईट्स की समस्त कविताएँ, सारे नाटक, सारा गद्य जो यु. ला. में मिल सका सब पंक्ति-पंक्ति पढ़ गया हूँ। 14-15 घण्टे रोज़ काम करना पड़ा। पत्र केवल घर लिखे। बाहर सिर्फ़ एक बार गया 23 नवम्बर को, दत्त के यहाँ जब India Society की स्थापना की गयी। मैंने 'भारती' नाम रखने का सुझाव दिया, पर ज़्यादातर लोगों को पसन्द नहीं आया।

27 नवम्बर को जन्म-दिन पड़ा। मैंने किसी को नहीं बताया। शुभकामनाएँ तेजी, बच्चों—सुशील और राजन— की आ गयी थीं। अध्ययन का कार्यक्रम मैंने और दिनों की तरह रक्खा। अपनों से दूर जन्म-दिन क्या मनाना। उसकी खुशी अपने-से अधिक अपनों के लिए है।

हफ़ के अनुसार थीसिस के अध्यायों को 'Yeats and Indian Lore', 'Yeats and Theosophy', 'Yeats and Swedenborg', 'Yeats and Cabbala' आदि अध्यायों में विभाजित करना होगा। भय है ये अध्याय एक-दूसरे से अलग लगेंगे। ईट्स के माइण्ड की 'ओवर आल' तस्वीर के लिए मुझे शुरू या अखीर में वही रखना होगा जिस पर मैंने इलाहाबाद में काम किया था और जिसे हेन का समर्थन भी मिला था। हफ़ का माइण्ड मुझे analytical लगा। उन्होंने thesis में synthesis की बात नहीं सोची, कम-से-कम इस दर्जे पर। मुझे लगता है हफ़ और हेन के निर्देशों की synthesis से ही मेरी thesis ठीक बन सकेगी।

शाम को मेडिकल टेस्ट के लिए गया। बड़े X-ray से पता चला, मेरे फेफड़े में एक 'स्कार' है; डॉ. का कहना है कि कोई पुराना पैच है जो ठीक हो गया है—बीमारी का पिछला इतिहास याद आया—फिर भी हर तीन महीने पर X-ray लिया जायेगा यह देखने के लिए कि 'स्कार' बढ़ता तो नहीं। मेरी ख़ूराक पर डॉ. ने कुछ चिन्ता व्यक्त की। कॉड लिवर आयल प्रतिदिन लेने के लिए कहा है। मांस न खाने की अपनी प्रतिज्ञा से इतना समझौता मैं कर लूँगा—तेल मांस नहीं है। बाक़ी सब कुछ डॉ. ने नार्मल बताया। ब्लडप्रेशर लो है। डॉ. ने थोड़ा अलकोहल प्रतिदिन सेवन करने को कहा, लेकिन मैंने अपनी मजबूरी बतायी; उसने कोई दवा प्रेसक्राइब करने को कहा है। दवा मैं लूँगा, उसमें अलकोहल हो तो भी, इतना समझौता मदिरा के साथ भी करने को तैयार हूँ।

अपने स्वास्थ्य के विषय में थोड़ा चिन्तित हो गया हूँ।
पर यह चिन्ता अपने तक ही रखनी है।
मैंने ख़ूब काम करने का इरादा किया था।
क्या मेरी सेहत ही आड़े आयेगी?
काम में ढील नहीं दे सकता।
असफल होकर मैं जी नहीं सकूँगा।
ओवर वर्क से मैं न भी मरूँ।
कभी सुना था,

कार्यं वा साधयामि
शरीरं वा पातयामि

यही एक मन्त्र मुझे जपना है।

कल लन्दन जाना है—रहने की जगह ठीक करने को—ब्रिटिश म्यूज़ियम लाइब्रेरी में पढ़ने का टिकट लेने को। 11 से बारह-पन्द्रह रोज़ वहाँ रहकर कुछ पुस्तकें देखनी हैं जो यहाँ के पुस्तकालय में नहीं हैं।

शनिवार, 6 दिसम्बर, '52

11 बजे की गाड़ी से लन्दन पहुँचा।

कुहरा—पीला धुआँ सारे नगर पर छाया—गज़ भर पर देखना मुश्किल। फिर भी कोई काम रुका नहीं है।

पहले बी. बी. सी. गया। मिस्टर हूजा से मिला। 16 दिसम्बर को होनेवाली सभा के बारे में बातें हुईं। मैं तो लन्दन में ही रहूँगा।

वहाँ श्री माहेश्वरी सिंह मिल गये।

उन्हीं के साथ होटल की खोज शुरू की।

हैमिल्टन होटल में जगह मिल गयी है।

ब्रिटिश म्यूज़ियम के बहुत पास है; ऐसी ही जगह मैं चाहता था।

ब्रिटिश म्यूज़ियम जाकर परमिट-फ़ार्म लिया। युनिवर्सिटी के किसी प्रोफ़ेसर की सिफ़ारिश पर भीतर बैठकर पढ़ने की आज्ञा मिल जायेगी।

शाम की गाड़ी से केम्ब्रिज लौट आया।

कुहरे से त्राण।

साँस से कितनी गन्द फेफड़ों में गयी होगी!

थूकता हूँ तो कफ़ में काला-काला-सा कुछ गिरता है।

स्नान किया। खाना खाया।

खर्च की चिन्ता थी।

बीवी-बच्चों की चिन्ता थी।

अब शरीर की भी चिन्ता लगी।

हफ़ का निर्देशन ठीक हो रहा है या नहीं—इसकी भी चिन्ता।

क्या मैं काम न करने के बहाने जुटा रहा हूँ?

नहीं—

इन सब चिन्ताओं के साथ भी काम होगा।

कुछ और भी चिन्ताएँ हों तो भी काम होगा।

विदेश प्रवास के लिए उठायी सारी झंझटों को किसी रूप में सुफल करना होगा।

असफलता की शर्म सफ़ाइयों से नहीं मिटती।

असफल हो सकता हूँ।

चाहता सिर्फ़ इतना हूँ।

असफल हूँ तो सफ़ाई देने को जिन्दा न रहूँ।

मंगलवार, 9 दिसम्बर, '52

···तेजी का पत्र आया—लिखा है उन्हें पेट में इंजेक्शन लगा। मेरी चिन्ता बढ़ गयी है। इधर कुछ दिनों से उनकी तबियत अच्छी नहीं रहती। कभी-कभी ख़्याल आता है कि कहीं उनकी तबियत एकदम ज़्यादा ख़राब न हो जाये और मुझे फ़ौरन वापस जाना पड़े। भाग्य के फेर का कुछ पता नहीं चलता।

अनिश्चय की स्थिति में काम भी तो नहीं होता।

पर जीवन में निश्चय की स्थिति कब रही है ?

किसी ने कभी जाना कि कल क्या होगा ?

फिर भी दुनिया में कितना काम हुआ है !

भविष्य का एक सुस्थिर चित्र सामने रखकर काम करना होगा।

समय सब सुस्थिर चित्रों को अस्थिर ही नहीं करता।

अस्थिर भी कर सकता है।

अस्थिरता का भय तो अगली साँस भी न लेने देगा।

कोई काम तो दूर की बात है।

गुरुवार, 11 दिसम्बर, '52
हैमिल्टन होटल
रसेल स्क्वेयर, लन्दन

11.5 की गाड़ी से चलकर साढ़े बारह बजे लन्दन पहुँचा। सीधे यहाँ आया। कमरा अच्छा है। डबल बेड ! अपने 'सिंगिल' होने की याद दिलाने को। पढ़ने-लिखने की अधिक सुविधा नहीं। पर वह काम तो दिन को ब्रिटिश म्यूज़ियम में होगा। चिट्ठी-पत्री लिखने को छोटी टेबिल काफ़ी होगी।

दिन को ब्रिटिश म्यूज़ियम गया। फ़ार्म पर हफ़ के दस्तख़त कराके लाया था। रीडिंग रूम में बैठकर पढ़ने का टिकट मिल गया। भीतर जाकर देखा किताबें वग़ैरह कैसे निकलवायी जाती हैं। कल से काम शुरू करूँगा।

थोड़ी देर के लिए इण्डिया हाउस गया। मि. नैस्टर, डॉ. रोज़ारियो, मि. धर्मवीर से मिला। सबको सूचित कर दिया है, पन्द्रह रोज़ लन्दन में रहूँगा, शायद कभी उन्हें मेरी ज़रूरत हो।

होटल में सिर्फ़ ब्रेकफ़ास्ट लूँगा।

लंच ब्रिटिश म्यूज़ियम के पास के किसी रेस्ट्राँ में।

रात का खाना इण्डियन स्टूडेण्ट्स होस्टल में खाऊँगा—देशी शाकाहारी भोजन मिलेगा, सस्ता भी।

आज भी वहीं खाकर आया हूँ।

वहीं सुना, अप्रैल में जो होस्टल के वार्डन थे—मि. नैयर—उनकी मृत्यु हो गयी। हार्ट फ़ेल हुआ था। उम्र मेरी जितनी होगी !

खाना खाने के बाद सेण्ट पाल की तरफ़ घूमने चला गया था।

विदेश में अकेले कमरे में मेरा हार्ट फ़ेल हो जाये तो ?
तो ?
बहुत बार ऐसी घटनाएँ हो चुकी हैं।
दुनिया जानती है तब क्या करना चाहिए।
पर अगर हार्ट फ़ेल न होने को हो तो, मरना न हो तो।
इस भय का मतलब ?
सो जाओ।
सुबह उठकर काम में लगो।
जिसके सामने काम हो उसे डरने-मरने की बात सोचने की फ़ुरसत कहाँ।
काम पूरा न होने के डर से बड़ा डर क्या होगा ?
काम पूरा न होने की लज्जा से बड़ी लज्जा क्या होगी ?
लज्जा से मरने से बुरा मरना भी होता है ?
जीवन है तो इस डर, इस लज्जा का शिकार न होना पड़े।
मरे, न लज्जित, न डरे। जीता, काम करे···

शुक्रवार, 12 दिसम्बर, '52

कल रात बड़ी देर तक नींद नहीं आयी। शायद नयी जगह के कारण।

सपने में देखा, कोई भारत से आया है, कह रहा है तेजी की मृत्यु हो गयी !
···आँख खुल गयी। और बड़ी देर तक नहीं सो सका।

सपनों में कितना सच देखा है ?

'सपने होइ भिखारि नृप···'

सुबह तैयार होकर ब्रिटिश म्यूज़ियम गया।

ईट्स की दो पुस्तकें जिनका पता केम्ब्रिज की लाइब्रेरी में नहीं लगा था यहाँ के कैटलाग में भी दर्ज नहीं थीं। Wade को लिखना है, वे कहाँ मिल सकती हैं। शायद डबलिन में ईट्स के निजी पुस्तकालय में हों। मिसेज़ ईट्स को भी लिखना है।

बाक़ी पुस्तकों को निकलवाने में काफ़ी देर लगी।

स्वरूपसिंह से भेंट हुई। वे लीड्स से डाक्टरेट लेने के लिए अध्ययन कर रहे हैं—'Restoration Drama' पर। ब्रिटिश म्यूज़ियम में शोध के विद्यार्थियों के काम करने की उन्होंने एक बड़ी अच्छी जगह बतायी। दिन को ब्रिटिश म्यूज़ियम के पास ही उन्होंने एक बड़ा अच्छा इटालियन रेस्त्राँ बताया जहाँ बहुत अच्छा लंच मिल सकता है। आज हमने वहाँ साथ ही खाना खाया।

लंच से लौटा तो किताबें निकल आयी थीं। 5 बजे तक काम करता रहा।

रात को तेजी को पत्र लिखा।

शनिवार, 13 दिसम्बर, '52

सुबह उठकर तैयार हुआ।

आज कुछ व्यायाम भी किया। केम्ब्रिज में नियमित रूप से करता था। सोचा था यहाँ शायद न निभ सके। कमरे में सुविधा है।

9 से 5 तक ब्रिटिश म्यूज़ियम में काम किया।

शाम को कुछ हिन्दुस्तानी लड़कों से मिला जो इसी होटल में रहते हैं। नव-युवकों के रुचि-रस से पटरी बैठाना मुश्किल होता है।

खाने के बाद अकेला घूमने गया—ट्रैफ़ाल्गर स्क्वायर की तरफ़।

तेजी के पत्र की प्रतीक्षा थी; नहीं मिला। केम्ब्रिज में शायद आया हो। बुढ़िया को 'रिडाइरेक्ट' करने के लिए यहाँ का पता दे आया था; पता नहीं उसने डाक में मेरा ख़त पहचाना भी कि नहीं।

रविवार, 14 दिसम्बर, '52

आज ब्रिटिश म्यूज़ियम बन्द था।

होटल के दो लड़के आज लन्दन-ज़ू देखने जा रहे थे।

मैं भी उन्हीं के साथ चला गया।

पूरे दिन में भी शायद पूरी तरह नहीं देख सका।

ज़ू पर एक किताब लाया—बच्चों को भेजने के लिए।

मंगलवार, 16 दिसम्बर, '52

आज शाम को बी. बी. सी. ने एक आडिएंस प्रोग्राम आयोजित किया था। कविता, वार्ता, प्रहसन—सबका मिला-जुला प्रोग्राम। क़रीब डेढ़ सौ हिन्दुस्तानी तो आये होंगे; कुछ अंग्रेज़ भी थे। कई लोगों ने मेरी कविताएँ पढ़ी-सुनी थीं और भारत के किन्हीं नगरों में मुझे देखा था। विशेष परिचय हुआ मेरा शारदा वेदालंकार से। शारदाजी नाटे क़द, भरे बदन की; बोल-चाल, बात-व्यवहार में विशुद्ध भारतीय महिला। प्रथम परिचय में ही उन्होंने मुझे भाई बना लिया। यहाँ अपने भाई के साथ रहती हैं, घर लेकर; भाई-बहन दोनों लन्दन युनिवर्सिटी से डाक्टरेट लेने के लिए शोध कर रहे हैं—शारदाजी हिन्दी गद्य के विकास पर, भाई अर्थशास्त्र सम्बन्धी किसी विषय पर। 19 को मुझे उन्होंने अपने घर खाना खाने के लिए बुलाया है।

प्रोग्राम से हूजा मुझे अपने घर ले गये। खाना भी खिलाया। 12 बजे रात को कमरे लौटा।

शुक्रवार, 19 दिसम्बर, '52

शाम को शारदाजी के यहाँ गया। पता उन्होंने ऐसा सटीक बताया था कि उनका घर पाने में बिलकुल दिक़्क़त नहीं हुई। शारदाजी के विषय में कुछ विशेष जाना। रहनेवाली बिहार की हैं। विवाह पंजाब में हुआ था। कच्ची उमर में विधवा हो गयीं—एक बेटी है, एक बेटा—टुनू—जिसे साथ लायी हैं; बेटी भारत में अपनी ननिहाल में है। शारदा के पिता आर्यसमाजी हैं, सम्पन्न, प्रगतिशील विचारों के। उन्होंने शारदा को एम. ए. तक की शिक्षा दिलायी; कहीं अध्यापिका थीं, अब उन्होंने डाक्टरेट करने को भेजा है। शारदाजी ने अपने दुर्भाग्य का सामना बड़े साहस के साथ किया है। लन्दन में कुशल गृहिणी के समान घर चलाती हैं, भाई और बेटे की देख-रेख करती हैं, भोजन स्वयं बनाती हैं और शोध-कार्य करती हैं ! मैं केवल शोध में मरा-पचा जाता हूँ !

भाई का नाम ओम्प्रकाश है—सुन्दर, स्वस्थ; बोलता बहुत है, प्रदर्शनकारी विनम्रता भी उसमें है; विचारों में साम्यवादी है, पत्रकारिता में भी उसकी रुचि है; शायद इससे वह कुछ धन भी अर्जित करता है। कुशाग्रबुद्धि होने का आभास

देना चाहता है। शायद उतना है नहीं, जितना दिखाता है। विवाहित है, शायद अपनी पत्नी को बहुत प्यार करता है और विदेश में उसका अभाव भी अनुभव करता है। बातचीत में उसने पचास बार तो अपनी बीबी का नाम लिया होगा— 'कमल' नाम है उसका—कोई कैसे भूले जब नाम इतनी बार कानों में भरा जाये।

खाना शारदाजी ने बहुत स्वादिष्ट बनाकर खिलाया—विशुद्ध भारतीय भोजन। गैस के चूल्हे पर वे हर तरह का भारतीय व्यंजन बना लेती हैं। लन्दन में कहती हैं, कोई दूकान है, 'लाल जोली' जहाँ सब मिर्च, मसाले, पापड़, बड़ियाँ मिलती हैं। खाना उन्होंने स्वादिष्ट ही नहीं खिलाया बड़े प्रेम से खिलाया। मुझे खुला निमन्त्रण दे दिया है कि जब हिन्दुस्तानी खाना खाने का मेरा मन हो, उनके यहाँ चला आऊँ।

खाना जो अच्छा बनाये और प्रेम से खिलाये उस स्त्री को मैं 'अन्नपूर्णा' का ख़िताब देता हूँ।

पहली अन्नपूर्णा थीं सुशील बोस की माँ—बनारस में।

दूसरी अन्नपूर्णा थीं श्याम टण्डन की माँ—इलाहाबाद में।

तीसरी अन्नपूर्णा हैं शारदाजी।

लौटने के पहले मैंने उनको अपनी कई कविताएँ सुनायीं—और किस रूप में उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता। शारदाजी ने रस लेकर मेरी कविताएँ सुनीं; भावुक और सहृदय भी ख़ूब हैं।

सहृदय, सौम्य, कर्मठ—शारदाजी का व्यक्तित्व मुझे बड़ा प्रिय लगा।

शनिवार, 20 दिसम्बर, '52

आज शाम को मि. दुबे मिलने आये। परिचय उनसे बी. बी. सी. के प्रोग्राम में हुआ था। अपने लन्दन-प्रवास के अनुभव बताये। लन्दन में हर तरह के अनुभव के लिए अवसर है। मैंने अभी क्या देखा ?···

अपने साथ वे मुझे इण्डिया क्लब ले गये।

वहीं हमने खाना खाया। अपने मित्र मिस्टर और मिसेज़ आर्चिल को भी उन्होंने बुलाया था। आर्चिल दाढ़ी-धारी अंग्रेज़ युवक; इटालियन लगता है, हिन्दी ख़ूब अच्छी बोलता है, पता नहीं कहाँ सीखी है। पता नहीं कैसे 'art for the Masses' और 'art for the Classes' पर बात छिड़ गयी। मैंने कहा वर्गों में बँटी सोसायटी में ऊँचे (छोटे)—नीचे (व्यापक) दोनों वर्गों से कलाकार आते हैं। स्वाभाविक है कि वे अपने-अपने वर्गों का कुछ प्रभाव लायेंगे। अपने-अपने वर्गों के लिए वे कुछ ख़ास अपील भी रख सकते हैं—डिकेन्स और थैकरे के उदाहरण हमारे सामने हैं। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उच्च वर्ग में डिकेन्स के लिए कोई रुचि नहीं, या थैकरे के लिए निम्न वर्ग में। ऊँचे कलाकार से मैं प्रत्याशा करूँगा कि वह वर्गों की सीमा से ऊपर उठे या वर्गों की सीमा पार करे। कुछ ऐतिहासिक कारणों या इतिहास की विकृतियों से उच्च-कोटि की कला 'art for the Classes' में समझी जाती है—निश्चय ही शिल्प पर वहाँ अधिक बल दिया गया है। 'art for the Masses' में बल जीवन-तथ्यों-सत्यों पर है, पर न एक जीवन तथ्यों से रहित है न दूसरा शिल्प से बिलकुल वंचित। कला को इन दो भागों में बाँटकर देखें तो भी कुछ ऐसा भाग, चाहे वह छोटा ही क्यों न हो, बच जाता है जिसे एक या दूसरे में सीमित करने में संकोच हो। शेक्सपियर को कहाँ रक्खेंगे; तुलसीदास को कहाँ रक्खेंगे। बड़े कलाकार अपनी

audience के प्रति सचेत रहते हैं। शेक्सपियर ने अपने नाटक लिखते समय men in the pit और gentlemen of the gallery दोनों का ध्यान रक्खा है। हज़ार सबूत हैं। तुलसी ने अपने मानस के लिए स्वयं लिखा है 'जन रंजन सज्जन प्रिय एहा।' जन = men of the pit; सज्जन = men of the gallery. अगर हम वर्गहीन समाज की ओर चलेंगे तो भी कला के लिए हमें दोनों परम्पराओं से बल ग्रहण करना होगा। वर्गहीन समाज की कला, जिसे art of the masses कहा जायेगा, शिल्प की उपेक्षा नहीं कर सकेगी। रूस में इसका उदाहरण है। पुश्किन तो विशिष्ट वर्ग के थे और उनकी कला भी विशिष्ट वर्ग की थी। पर आज poetry for the masses में उनकी प्रेरणा स्वीकार की जाती है। पुश्किन के शिल्प को, या विशिष्ट वर्ग की कला को, रूस की poetry for the masses में मान दिया गया है। मैंने यह भी कहा, कला अपनी ऊँचाइयों पर वर्ग-सत्य को नहीं जीवन-सत्य को घोषित-पोषित करती है।

रविवार, 21 दिसम्बर, '52

दिन में प्रसाद के यहाँ खाना खाने गया। क्लिफ़ोर्ड में हैं। बी. बी. सी. के प्रोग्राम में मिले थे। मेरी कविताओं के पुराने प्रेमी हैं, कायस्थ पाठशाला के पढ़े हुए, जगदीश राजन के मित्र। जब अप्रैल में लन्दन आया था, दो रात उन्हीं के कमरे में ठहरा था। उन्होंने कहा था खाना खुद बनाकर खिलायेंगे। देखा, लन्दन में बहुत-से विद्यार्थी अपना खाना अपने-आप बना लेते हैं। देवेन्द्रनाथ शर्मा भी वहीं मिले। इस बिल्डिंग में कई बिहारी विद्यार्थी हैं। आज़ादी के बाद बिहारियों ने इंग्लैण्ड पर धावा बोल दिया है। सभी कुछ न कुछ डिग्री-डिप्लोमा लेने आये हैं। बड़ा सादा जीवन बिताते हैं, बहुत किफ़ायत से रहते हैं। देवेन्द्रनाथ रूसी पढ़ने को इंग्लैण्ड चले आये हैं, हिन्दी के अध्यापक थे; रूसी पढ़ने की सनक इन्हें क्यों सवार हुई।

खाना खाते समय प्रसाद ने कहा शायद आपको स्वाद नहीं आया। मैंने कहा, स्वाद की बात तो मैं घर से चलते हुए वहीं छोड़ आया। यहाँ तो पेट भरना है, फिर भी खाना मुझे अच्छा लगा। इस पर शर्माजी ने भोजपुरी में एक बड़ा मनोरंजक क़िस्सा सुनाया।

एक विधवा अपने पुत्र के साथ रहती थी। एक रात विधवा को किसी काम में बहुत रात हो गयी। बेटे ने माँ से कहा, माई चल अब सूतल जाय। इस पर विधवा ने कहा, सूतब तऽ तोरे बापै के साथ चल गइल, अब तऽ पर रहे के बा, चल पर रहीं।

शाम को प्रसाद मुझे सिनेमा दिखाने ले गये।

लौटकर मैंने खाना खाया।

फिर घूमने निकला।

शीशों के पीछे दूकानों में सामानों की सजावट और रोशनी। रात को सामान पसन्द करो। दिन में आकर ख़रीदो।

सोमवार, 22 दिसम्बर, '52

ब्रिटिश म्यूज़ियम में जो काम हो रहा है उससे बहुत सन्तुष्ट हूँ। बहुत-सी सामग्री मिली है जो कहीं और नहीं मिल सकती थी।

रात को घूमते-घूमते ट्राफ़ल्गर स्क्वायर में पहुँच गया था। वहाँ एक बहुत बड़ा क्रिसमस ट्री लगाया-सजाया गया है। आधी रात तक वहाँ कैरल-सिंगिंग होती

है—और भी बहुत कुछ···

वहाँ मिस ब्राइन और मिस्टर लिविंग्स्टन मिले। रेडियो सभा में परिचय हुआ था। दोनों ने प्रतिज्ञा की है कि इंग्लैण्ड में सिवा साइकिल के और किसी भी सवारी पर नहीं चढ़ेंगे। दोनों हर समय साइकिल अपने साथ रखते हैं। सनकी हैं, पर प्रतिज्ञा को कैसे सनकी कहूँ ?···

बुधवार, 24 दिसम्बर, '52

दिन-भर ब्रिटिश म्यूज़ियम में काम।

शाम को मिस्टर दुबे आये। मैंने उन्हें एक रेस्ट्राँ में खाना खिलाया। वे मुझे 'विंड मिल' के तमाशे में ले गये। कहते हैं लगभग तीस वर्षों से हर रात को यहाँ तमाशा हुआ है। युद्ध के दिनों में भी किसी रात को यह बन्द नहीं हुआ। विज्ञापित करते हैं 'We never closed !'

प्रदर्शन का ध्येय वासना को जगाना। जहाँ जीवन इतना मुक्त है वहाँ भी ऐसे तमाशे का आकर्षण ! मेरे लिए इस तरह की चीज़ बिलकुल नयी थी। तीन नृत्य बिलकुल नग्न। दो मन्द प्रकाश में। दर्शकों में से कभी-कभी लोग टार्च फेंकते हैं। दुबे का ख़्याल है ऐसा audience में बैठे management के अपने लोग करते हैं। तीसरा पूर्ण प्रकाश में, पर नर्तकी नग्नता छिपाने को दो पंखों का प्रयोग करती है जिन्हें वह बड़ी फुरती से आगे-पीछे घुमाती है। इसमें कुछ हस्तकौशल और कला भी है।

तमाशा ख़त्म होने पर हम लोग पिकैडिली गये। आज Christmas Eve थी। बहुत भीड़, मदिरा की गन्ध की हर जगह गमक—सामूहिक गान। अंग्रेज़ी भीड़ में भी व्यवस्था और शिष्टाचार !

गलियों में और ही व्यापार···

हमसे भी कइयों ने पूछा Night Club ?···

दुबे ने कहा, चलो यह अनुभव भी रहे···

गुरुवार, 25 दिसम्बर '52
शुक्रवार, 26 दिसम्बर, '52

दो दिन ब्रिटिश म्यूज़ियम बन्द था।

दिन कटना मुश्किल हो गया।

शामें देवेन्द्र शर्मा और गौरी सरियाजी के साथ बितायीं। आधी रातें दुबे के साथ···

शनिवार, 27 दिसम्बर, '52

दिन को ब्रिटिश-म्यूज़ियम में काम।

रात को London Laughs नाटक देखा।

Light comedy, आधा मज़ाक पल्ले नहीं पड़ा।

रविवार, 28 दिसम्बर, '52

दस बजे ओमप्रकाश आये। उनके साथ Tate Gallery देखने गया। आधुनिक मूर्तिकला और चित्रकला के अनेक नमूने देखे। बहुत-से आधुनिक नमूनों से यह कहना कठिन है कि इनका तात्पर्य क्या है। कुछ लोग कहते हैं कला 'तात्पर्य' नहीं

'सौन्दर्य' है, या 'अभिव्यक्ति'। कला कुछ विशेषज्ञों की वस्तु-सी होती जान पड़ती है। महान कला केवल विशेषज्ञों की वस्तु नहीं रही। इन्हें प्रयोग कहा जा सकता है, उपलब्धियाँ नहीं। अपनी पूर्णता पर यह कला फिर सर्वजन के समीप पहुँचेगी। या सर्वजन ही अपनी sensibility विकसित कर इनके समीप आयेंगे। कला की धारणा युग के साथ बदलती जाती है। पाश्चात्य कला का इतिहास, पाश्चात्य समाज का आधुनिक मनस् जाने-समझे बिना इन नमूनों का मूल्यांकन सम्भव नहीं।

सोमवार, 29 दिसम्बर, '52
मंगलवार, 30 दिसम्बर, '52

दिन को काम।

रात को 'काम'!

लन्दन के यौन-अनुभवों की विचित्र प्रतिक्रिया—कुछ विरोधी भी। हम जीवन को जिस स्तर पर जीते हैं वह बहुत-से विरोधों को साथ लेकर चलता है। Unity of being प्राप्त करना इतना सहज तो नहीं।

इतने पश्चात्-चिन्तन के लिए मैं तैयार न था।

सोचा था भूल जाऊँगा, जैसे खाना खाने के बाद आदमी भूख को भूल जाता है।

भूख तो शान्त है, शायद; खाने की मन जुगाली करता है। पशु जुगाली करके भोजन पचाता है। मनुष्य का मन जुगाली करके भूख को तेज़ करता है। यही ख़तरा है।

पढ़-सुनकर जिसके लिए जिज्ञासा जगी थी, मन ने जिसकी कल्पना की थी, उसका अनुभव करने को अवसर मिलने पर, मन में ललक होनी ही थी। उसका अनुभव हो गया—इसका सन्तोष। कहीं कुछ असन्तोष भी—असन्तोष ठीक शब्द नहीं—कुछ पश्चात्ताप-सा, जैसे कुछ वर्जित कर लिया हो। अपने सचेतन मन से जानता हूँ कि कुछ बुरा नहीं किया—जो किया वह सब स्वाभाविक ही था। पर शायद मन पर डाले गये संस्कार प्रतिध्वनित होते हैं—उनको सुन लो; उनसे तर्क मत करो। भोजन करना ठीक था, बुरा होगा जुगाली करना।

जो शराब के नशे में आधे बेहोश, आधे बाहोश ऐसे अनुभवों से गुजरते हैं उनके लिए उन्हें भूल जाना शायद आसान होता होगा। एक सपने से गुज़र गये। सपने कहाँ याद रहते हैं। मैं तो सत्य से गुज़रा हूँ। इस कारण उसकी तेज़ी भी ज़्यादा अनुभव की है और मस्तिष्क उसे बार-बार याद करता है—एक सुखमय पीड़ा के दंश की तरह।

यह उन अनुभवों से फिर गुज़रने की भूमिका तो नहीं है?

यह तो मालूम है ही कि उनके लिए यह व्यापार है।

व्यापारी की सफलता इसी में है कि ख़रीदार फिर-फिर दूकान की तरफ़ जाये। सुरा, संगीत, शृंगार, सुगन्ध का कैसा मोहक जाल उन्होंने बिछाया है—और सबसे बड़ा प्रेम के अभिनय का। मदहोश अभिनय और सच्चाई में अन्तर न कर सकें, तुम तो मदहोश नहीं थे।—यही शायद दुर्भाग्य!—मन ने धोखा नहीं खाया। तन ने तन की एकता जानी। मन ने मन की नहीं। यह सम-भोग कहाँ हुआ। यह तो असम-भोग हुआ!···

शायद भीतर, बहुत गहरे में जो असन्तोष है; पश्चात्ताप है, वह सम-भोग के

असम-भोग रह जाने का।

यह असन्तोष बुरा नहीं है।

यह सन्तोष के एक जगह की याद दिलाता है।

बुधवार, 31 दिसम्बर, '52

रात को जिन उलझनों को साथ लेकर सोने गया था उन्होंने कविता में सुलझने का प्रयत्न किया।

न जाने कैसे-कैसे विचार, कैसी-कैसी लयें, कैसे-कैसे रूपक दिमाग़ में चक्कर काटते रहे।

जैसे सब कुछ एक चाक पर तेज़ी से घूमता हुआ सुबह एक सांगोपांग (harmonious) रूप ले चुका था—एक गीत का।

उठते ही लिखने बैठ गया।

जैसे देर करने से रात के देखे स्वप्न की तरह वह विस्मृत हो जायेगा। फिर उन सुधियों के बीच—जो मेरे लिए आज के दिन से, प्रात से, जुड़ी हैं!

'तुम बुझाओ प्यास मेरी या जलाये फिर तुम्हारी याद।
स्वर्ण-चाँदी के कटोरों
में भरा था झलमलाता नीर,
मैं झुका सहसा पिपासाकुल,
मगर फिर हो गया गम्भीर—
भेद पानी और पानी,
प्यास में औ' प्यास में भी भेद;
तुम बुझाओ प्यास मेरी या जलाये फिर तुम्हारी याद!
कम अधर, कम कण्ठ में पर
प्राण में जो नियन्त्रित आग,
एक है मालूम तुमको
जो रही है वह सदा से माँग,
होठ भीगें हों, हृदय हो
किन्तु मरु की शुष्क सूनी आह,
क्या बनूँगा आज अपना ही स्वयं दयनीय मैं अपवाद।
तुम बुझाओ प्यास मेरी या जलाये फिर तुम्हारी याद।'

गीत को अधूरा ही छोड़ना पड़ा।

नियमित कार्यक्रमों की दुनिया का अंग बनकर अनियमता नहीं की जा सकती। सृजन की दुनिया के नियम तो हैं, पर बन्धन बनकर नहीं। सृजन की दुनिया की तुलना में काम-धन्धों की दुनिया सिर्फ़ बन्धनों का एक जाल है।...

जल्दी-जल्दी तैयार हुआ, फिर भी ब्रेकफ़ास्ट के लिए देर से पहुँचा। लैण्ड-लेडी की आँखों ने सृजन का मूड ग़ायब कर दिया।

दिन-भर ब्रिटिश म्यूज़ियम में काम करता रहा।

शाम को लौटकर गीत के दो पद और लिखे। कविता पूरी हुई।

'तृप्ति का वरदान लेने
से किया था एक दिन इन्कार,
और सीमा ताप की भी
माननी थी कब मुझे स्वीकार;

बन्धनों से प्यार जिसको
हो गया हो वह कहाँ को जाय,
लाख उस पर हो न पहरा, कर दिया जाये उसे आज़ाद।
तुम बुझाओ प्यास मेरी, या जलाये फिर तुम्हारी याद।

पंखुरी पर ओस की दो
बूँद में भी डूबता है कौन,
उस घड़ी की ही प्रतीक्षा
में कभी गाता, कभी हूँ मौन
जब अमृत सागर सुनेगा,
सिर धुनेगा फेन बन साकार,
औ' करेंगे सिन्धु हाला औ' हलाहल के प्रणय-संवाद।
तुम बुझाओ प्यास मेरी, या जलाये फिर तुम्हारी याद।'

शायद कविता में अवांछित और आकांक्षित यौन-अनुभवों का अनुपात बताकर उन्हें नगण्य कर दिया गया है।

पंखुरी पर ओस की दो : औ' करेंगे सिन्धु हाला
बूँद में भी डूबता है कौन, : औ' हलाहल के प्रणय-संवाद।

A perfect sex-experience is an experience of love, and life and death at the same time ! ...

रात को गणेशप्रसाद गौड़ ने अपने 'यहाँ न्यू इअर्स ईव' का खाना किया था। मुझे भी बुलाया था। गौड़ से रेडियो सभा में मिला था। उनकी ओर ध्यान जाना स्वाभाविक था। गौड़ हिन्दी में एम. ए. हैं, लन्दन युनिवर्सिटी के ऐफ़्रो-एशियन-स्टडी विभाग में अध्यापन का काम करते हैं, हिन्दी पढ़ाते हैं। विशेषता है उनकी पोशाक, वेश-भूषा में। उम्र 25-30 के बीच होगी, चेहरा लमछर, नाक-नक़्श उभरे, आँखें बड़ी और चमकीली, रंग गोरा, बाल काले, बड़े घुँघराले, जैसे छायावादी कवि रक्खा करते थे। लन्दन में रहकर भी भारतीय धजा बनाये रहते हैं—यानी सफ़ेद खादी के ढीले पाजामे पर शेरवानी पहनते हैं। ओवरकोट नहीं पहनते; सफ़ेद दुशाला ओढ़ते हैं। स्वाभाविक है, वे सबको आकर्षित करते हैं—हँसमुख हैं, मिलनसार, खुले, बातूनी, फुर्तीले (चपल भी कहना चाहूँगा)। क्लीन शेव रहते हैं, चश्मा नहीं लगाते। सेक्स अपील उनमें ख़ूब है। लड़कियाँ देसी, विदेशी उनके इर्द-गिर्द, वे लड़कियों के।

शीलाजी मुझे वेल साइज़ पार्क स्टेशन पर मिल गयीं। वे भी गौड़ के यहाँ जा रही थीं। दो-तीन लड़के-लड़कियाँ और आमन्त्रित थे। गौड़ अकेले रहते हैं। लड़कियों ने मिलकर खाना बनाया। मेहमानों में एक दिलचस्प आदमी थे एक पण्डितजी, नाम शायद कपीन्द्रजी बताया गया था—अधेड़, साँवले, भरी देह के; दाढ़ी-मूँछ सफ़ाचट, माथा नीचा जिस पर चन्दन, बाल छोटे, सिर पर गाँठ दी चोटी। राम-कथा कहते हैं। लन्दन में भी कथा सुननेवाले और दक्षिणा देनेवाले मौजूद हैं। पण्डितजी ने स्वयं बताया, कथा से उनकी आमदनी लन्दन में 40 पौण्ड प्रति सप्ताह है ! पण्डितजी ने केवल फल-दूध लिया। कहते थे, लन्दन में उन्होंने किसी अंग्रेज़ की छुई चाय भी नहीं पी !

खाने के बाद लोगों के आग्रह पर मैंने कुछ कविताएँ सुनायीं, पण्डितजी ने मानस की कुछ चौपाइयाँ। पण्डितजी, इसमें सन्देह नहीं, सुकण्ठ हैं—पर आधा

स्वर नाक से निकालते हैं, आधा गले से।

राय हुई सब लोग पिकैडिली चलें और वहीं नव-वर्षागमन करें। वहाँ बहुत भीड़-भाड़, नाच, सामूहिक गान, मदिर-गन्ध। सब एक-दूसरे से छूट गये। सिर्फ़ शीलाजी मेरे साथ रह गयीं। उन्हें उनके निवासस्थान पर छोड़ता मैं अपने होटल आया।

पुराने और नये वर्ष की आधी रात मेरे लिए कितनी भाग्य-निर्णायक सुधियों से भरी है !

बृहस्पतिवार, 1 जनवरी, '53

वर्ष नव !

हर्ष नव !

ब्रेकफ़ास्ट टेबिल पर होटल के सब सदस्यों ने एक-दूसरे को नये वर्ष की शुभ-कामनाएँ दीं। तेजी का तार मिला !

नये साल का पहला दिन ! इंग्लैण्ड में छुट्टी नहीं। ठीक है। नया वर्ष काम के साथ आरम्भ करो।

तेजी को एक छोटा-सा पत्र लिखा। साथ पिछली कविता की साफ़ प्रति बनाकर रक्खी—'तुम बुझाओ प्यास मेरी या जलाये फिर तुम्हारी याद।' और यहाँ से क्या उपहार भेजूँ।···

दिन-भर ब्रिटिश म्यूज़ियम में काम किया।

लौटते हुए Foyle की दूकान पर गया। कई भागों में बँटी संसार-भर में पुस्तकों की यह सबसे बड़ी दूकान है। व्यवस्था किसी अच्छी लाइब्रेरी से भी अच्छी। हर ग्राहक का पूरा ध्यान। ईट्स की कुछ दुष्प्राप्य पुस्तकें यहाँ से खरीदीं।

नये वर्ष पर शारदाजी ने कुछ लोगों को देसी खाना खाने को बुलाया था। देवेन्द्र शर्मा भी वहीं थे। किसी प्रसंग में मेरे मुँह से निकल गया कि आज तेजी से मेरी सगाई का दिन है। शारदा और ओम् ने उसी समय फ़ोन से तेजी को बधाई का केबिल भेजा। उनकी इस आत्मीयता और सहृदयता से बहुत आभारी हुआ।

खाने के बाद मेरा कविता-पाठ। शारदा और ओम् बहुत डूबकर मेरी कविताएँ सुनते हैं।

शर्माजी के साथ लौटा।

शुक्रवार, 2 जनवरी, '53

फिर केम्ब्रिज में, अपने कमरे में।

कल ब्रिटिश म्यूज़ियम का काम समाप्त हो गया था।

आज लन्दन से चले आने का निर्णय किया। शर्माजी और उनके साथी स्टेशन तक छोड़ गये। भारतीय प्रथा निबाही। इंग्लैण्ड में किसको फ़ुरसत किसी को लेने, छोड़ने जाये। मैंने अपने लन्दन-प्रवास में भारतीय मित्रों को ख़ूब कविताएँ सुनायी थीं। सब कृतज्ञ अनुभव कर रहे थे।

साढ़े बारह बजे केम्ब्रिज पहुँचा। सर्दी यहाँ लन्दन से अधिक है। कमरा ठीक मिला—सारा सामान भी, जो मैंने पैक करके रख दिया था।

घर से आये दो पार्सल मेरा इन्तज़ार कर रहे थे—एक में खाने की चीज़ें थीं—बादाम, पिन्नियाँ; दूसरे में ऊनी पुलओवर, मोज़ा—तेजी ने किसी से बुनाये

होंगे—खुद बुनने का धीरज उनमें कहाँ !

मिसेज़ लारी ने कहा, रात का खाना वे न दे सकेंगी।

कहने का मतलब था मैं कहीं और अपना प्रबन्ध कर लूँ। कालेज में या किसी होटल में खाने पर मैं डेढ़-दो घण्टे रोज़ सर्फ़ नहीं कर सकता।

सेण्ट कैथरीन्स जाकर अपनी डाक ली। तेजी का पत्र मिला। घर पर सब लोग ठीक।

सोचा था आज दिन को कमरा ठीक करूँगा, सामान खोलकर लगाऊँगा, पर जब दो-तीन दिन में कहीं और जगह मिलते ही यहाँ से चले जाना है तो क्या सामान फैलाऊँ और बटोरूँ।

लंच के बाद कमरा ढूँढ़ने को निकल गया।

बहुत भटकने के बाद भी कोई माक़ूल जगह नहीं मिली। मैं जगह कालेज और लाइब्रेरी से दूर नहीं चाहता, ऐसी भी चाहता हूँ जहाँ रात को खाने का प्रबन्ध हो, जहाँ और भी विद्यार्थी रहते हों; पढ़ने-लिखने का एक वातावरण रहता है और अच्छे क़िस्म की कम्पनी मिलती है। मैं हर तरह की कम्पनी में 'एट होम' नहीं अनुभव कर पाता।

पैक किये हुए सामान के बीच में बैठना ऐसा लगता है जैसे रेल के किसी डिब्बे में बैठा हूँ।

मिसेज़ लारी ने अँगीठी में लकड़ी-कोयला डलवा दिया था।

आग जला दी है।

रेडियो चला दिया है।

आग और राग के बीच में बैठा हूँ।...

शनिवार, 3 जनवरी, '53

ब्रेकफ़ास्ट करके लाइब्रेरी गया।

ब्रिटिश म्यूज़ियम में 'A Vision' के कुछ सम्भाव्य स्रोतों पर काम किया था। Plato की 'Parmenides' ईशू करा ली है।

आज भी कमरे की खोज में कई घण्टे व्यर्थ गये।

'कोहनूर' में खाना खाया। थोड़ी-थोड़ी बरफ़ पड़ रही थी। आज दिन को भी बरफ़ पड़ी थी। दिन भी यहाँ आजकल रात-सा ही होता है। जब इस देश में बिजली नहीं आयी थी तब यहाँ जाड़ों में लोग क्या करते होंगे।

रात को चिट्ठियाँ लिखीं।

'धर्मयुग' को एक कविता भेजी। वसन्तांक में कुछ भेजने के लिए सम्पादक महोदय का पत्र आया था।

रविवार, 4 जनवरी, '53
सोमवार, 5 जनवरी, '53

दो दिनों में एक-एक घर छान चुका हूँ।

कालेज और लाइब्रेरी से निकटता का कंसीडरेशन मैंने दिमाग़ से निकाल दिया है। फिर भी कोई तसल्लीबख़्श जगह मुझे नहीं मिली। रहने की जगह जब तक ठीक नहीं मिलती तब तक न पढ़ने में मन लगता है न और किसी काम में।

मंगलवार, 6 जनवरी, '53

दिन को रनबीरसिंह बावा लाइब्रेरी में आये। उन्होंने बताया कि 61, मेड्स काज़वे पर एक कमरा ख़ाली है। कमरा छोटा है, गैस का इन्तज़ाम है, जाड़े में छोटा कमरा अच्छा होता है, जल्दी गरम हो जाता है। कासिल ब्रे से कुछ सस्ता पड़ेगा। मैं चाहूँ तो वहाँ चला जाऊँ।

शाम को जाकर मैंने कमरा देखा। कालेज, लाइब्रेरी दूर हो जायेगी, दत्त की डिग नज़दीक। कमरा छोटा है, निचली मंज़िल पर। कमरे में एक खिड़की है जो मकान के पीछे बाग़ की ओर खुलती है। पता नहीं किस चीज़ के पेड़ हैं—डालों में इस समय एक भी पत्ती नहीं लगी है। चार कमरों का मकान है, दो कमरों में लैण्ड़लार्ड ख़ुद रहते हैं—एक तरह से वे लैण्डलार्ड नहीं हैं—किरायेदार हैं—पूरा मकान ले लिया है। दो कमरों में पेइंग गेस्ट रखते हैं, दूसरा कमरा ठीक मेरे कमरे से मिला है। बेसमेण्ट में किचेन और ग़ुसलख़ाना है। लैण्डलार्ड मि. न्यूटन हैं, स्वयं विद्यार्थी हैं, आस्ट्रेलियन, अपनी पत्नी के साथ रहते हैं; न्यूटन फ़ाइनल इयर में हैं। पत्नी भी शायद पढ़ती है, पता नहीं किस कोर्स के लिए। घर भी 'रन' करती है

मैंने वहाँ जाने का निश्चय कर लिया है। न्यूटन स्वयं विद्यार्थी हैं, इसलिए दूसरे विद्यार्थी की सुविधा, असुविधा, आवश्यकता को ज़्यादा अच्छी तरह समझ सकेंगे। सस्ता कुछ अधिक नहीं पड़ेगा, क्योंकि गैस का चार्ज अलग से देना पड़ेगा। गैस का मीटर एक ही है। सप्ताह-भर में गैस का जो खर्च आयेगा उसका एक चौथाई मुझे देना होगा।

यह कमरा बड़ा है, पर बहुत-बहुत ठण्डा; पढ़ते-लिखते समय पास बिजली का हीटर लगाकर काम चल जाता था। रात को सोने के पहले मैं अँगीठी जलाता था और बिस्तर ठीक अँगीठी के सामने लगाकर सोता था, तब नींद आती थी।

बातचीत से न्यूटन मुझे अच्छे लगे। पता नहीं पत्नी कैसी होगी।

शुक्रवार, 9 जनवरी, '53
61, मेड्स काज़वे

आज अपने नये कमरे में आ गया हूँ।

दिन को लाइब्रेरी चला गया था। जब से कासिल ब्रे छोड़ने का निश्चय किया था पढ़ने-लिखने से मन बिल्कुल उचट गया था। लाइब्रेरी में प्लेटों से सिर खपाया। शाम को कासिल ब्रे के साथियों से मिला। बँधे सामान के साथ कमरे को 'स्टडी' समझना मुश्किल था।

लंच के बाद सारा सामान लेकर यहाँ आ गया। एक आलमारी कपड़े रखने के लिए है, एक पुस्तकों वग़ैरह के लिए, एक मेज़-कुर्सी। आराम कुर्सी की जगह भी नहीं है। सब सामान ठीक-ठीक जगह पर लगा दिया है। कमरा अच्छा लगता है। गैस की अँगीठी जल रही है। कमरा गर्म है।

खाना मिसेज़-मिस्टर न्यूटन के साथ खाया। मेरे लिये कुछ शाकाहार उन्होंने बनवाया था। मिसेज़ न्यूटन ने माफ़ी माँगते हुए कहा कि उन्हें शाकाहारी भोजन बनाना नहीं आता—कुछ उबली सब्जी, अण्डा, चीज़, मक्खन, स्लाइस वे दे सकेंगी।

उन्होंने मुझे स्वतन्त्रता दे दी है कि मैं चाहूँ तो खाने का प्रबन्ध कहीं और कर लूँ या स्वयं अपना खाना बना लूँ—गैस की अँगीठी के साथ ही गैस का चूल्हा है।

अगर मैं खाना न लूँ तो वे सप्ताह के चार्ज में डेढ़ पौण्ड कम कर देंगी। मैं सोचता हूँ कि अगर उबला-उबला ही खाना न्यूटन के यहाँ मिलना है तो मैं अपनी गैस रिंग पर ही उबली चीजें क्यों न तैयार कर लूँ। यह सस्ता भी पड़ेगा और समय की स्वतन्त्रता रहेगी---जब चाहो उबालो, खाओ; कुछ सामान लाकर रख लेना होगा।

अभी-अभी मिसेज़ न्यूटन आयी थीं; बिस्तर में हॉट-वाटर-बाटल रख गयी हैं। पूछ गयी हैं, सुबह ब्रेकफ़ास्ट मैं कितने बजे चाहूँगा; साढ़े आठ कह दिया है।

गरम कमरा, गरम बिस्तर, सामान उठाने-रखने की थकावट सोने का निमन्त्रण दे रही है। केम्ब्रिज का पहला बिस्तर है जिसकी स्प्रिंग कसी है। खबर सुनकर सोने जाऊँगा।

शनिवार, 10 जनवरी, '53

रात को बड़ी अच्छी नींद आयी।

कुछ दूर पर से झरने की-सी आवाज़ आती रही, कभी-कभी संगीत की भी, शायद रेडियो से संगीत का एक प्रोग्राम सुनकर सोया था, इस कारण; पर डिस्ट-र्बिंग नहीं, सब कुछ बड़ा सुखद लगता-सा।

कासिल ब्रे के कमरे में पहली रात को डरावनी थी।

मिसेज़ न्यूटन ब्रेकफ़ास्ट लगने की सूचना दे गयीं। उन्होंने कहा है कि अगर मैं चाहूँ तो मि. न्यूटन मेरा ब्रेकफ़ास्ट कमरे में भी पहुँचा सकते हैं। मैंने उनसे कहा, अगर आप पति-पत्नी अकेले नाश्ता लेना चाहते हों तो मेरा नाश्ता कमरे में दे दें। मि. न्यूटन ने मज़ाक में कहा कि हमारे साथ नाश्ता लेंगे तो आपको हमारे घर-गिरिस्ती की नीरस बातचीत भी 'निगलनी' पड़ेगी और कभी-कभी हमारे झगड़े भी सुनने होंगे। मैंने जवाब दिया, घर-गिरिस्ती में जैसी बातें होती हैं उनसे मेरे कान अपरिचित नहीं हैं; और जब पति-पत्नी में झगड़ा हो उस समय मेरा रहना ज़्यादा ज़रूरी होगा --दोनों पक्षों की बात सुनकर निर्णय देने को या झगड़ा बहुत बढ़ गया हो तो दोनों में मेल कराने को। मि. न्यूटन बोले, सो तो ठीक, पर इसकी क्या गारण्टी है कि आप मेरी पत्नी की तरफ़दारी नहीं करेंगे।...मनोरंजक बात-चीत के बीच नाश्ता ख़त्म हुआ।

दिन को मैंने लाइब्रेरी में काम किया।

लौटते हुए स्टैटिसटिक्स लैब. गया। वहाँ मि. बावा मिले। हमने 'लियान्स' में लंच लिया। अपने कमरे और रात के खाने की समस्या पर उनसे बात हुई। बावा ने बताया कि वे ज़ीजस लेन से चेस्टरटन रोड चले गये हैं, रात का खाना अपने लिए खुद बनाते हैं, सिर्फ़ पन्द्रह मिनट में खाना तैयार हो जाता है, खर्च प्रति सप्ताह एक पौण्ड से भी कम आता है। बाज़ार में मुझे उन्होंने वे दूकानें दिखायीं जहाँ से वे खाने-पीने की सामग्री लेते हैं। बावा कितने व्यवहार कुशल हैं; मैं तो 6-7 महीने यहाँ रहकर सिर्फ़ किताबों और स्टेशनरी की दूकानें जान सका हूँ।

थोड़ी धूप निकली थी; कमरे लौटने के पहले कुछ देर कैम किनारे ओवर-कोट बिछाकर लेटा रहा---बहुत-से लोग धूप सेंकने को निकले थे।

रात को उन्होंने अपने कमरे में खाना खाने को बुलाया था।

गैस रिंग पर एक छोटा-सा पैन चढ़ाकर उन्होंने सब्जी बनायी—बिलकुल देसी स्वाद की। टोस्ट के साथ खाने में बड़ा मज़ा आया। बावा की माँ ने 'बधावा-सिंह का अचार' भी भेज दिया है।

उनकी राय है कि मैं भी अपना खाना खुद ही बना लिया करूँ; बाज़ार में बहुत-सी चीज़ें 'टिण्ड' मिलती हैं जिन्हें खाने के लिए सिर्फ़ गरम करना होता है। ज़रूरी बर्तन वगैरह प्राय: लैण्डलेडी दे देती है; चीज़, मक्खन, रोटी आदि बाज़ार से लाकर रख देनी होंगी —ठण्ड में न कोई चीज़ बिगड़ती है न सड़ती है।

देखूँ मुझसे यह बखेड़ा सधता है या नहीं। जगह यह इतनी बाहर है कि कालेज, रेस्ट्राँ सब दूर हैं। बचत मुझे समय की भी करनी है, पैसों की भी।

बावा ने अगले शनिवार को मेरे कमरे में आकर मेरी गैस रिंग पर खाना बनाना सिखाने का वादा किया है। वैसे तो मिसेज़ न्यूटन ने मुझसे कह रक्खा है कि जब उनका काम किचन में समाप्त हो जाये तब मैं वहाँ के गैस-चूल्हों का उपयोग कर सकता हूँ। गैस के ख़र्च का एक चौथाई तो मुझे देना ही होगा।

रात को कुछ देर मैंने रेडियो सुना।

मि. न्यूटन ने टेबिल लैम्प का बेड-स्विच लगा दिया है। बिस्तर में लेटकर पढ़ते-पढ़ते जब नींद आये, स्विच दबाऊँ और सो जाऊँ।

कोई गम्भीर चीज़ बिस्तर में लेटकर पढ़ी नहीं जाती, और हल्की-फुल्की चीज़ों को पढ़ने का मेरे पास समय नहीं। पति-पत्नी दोनों बहुत 'कन्सिडरेट' हैं।

मिसेज़ हॉट-वाटर-बाटल रख गयी हैं, पूछ गयी हैं, मुझे यहाँ कोई असुविधा तो नहीं। बता गयी हैं, साथ के कमरे में एक 'चार्मिंग' लड़की रहती है। एक पाँव उसका, दुर्भाग्य से, पोलियो के कारण बेकार है, लोहे का काण्ट्रैप्शन लगा है, चलने में कुछ तकलीफ़ होती है, फिर भी पास के किसी दफ़्तर में टाइपिस्ट का काम करती है।—अभी उससे मिला नहीं।

रविवार, 11 जनवरी, '53

आज के दिन को मैंने केवल गीत का दिन बनाया।

न कोई आज मुझसे मिलने आया, न मैं ही किसी से मिलने गया।

गीत साथ हो तो किसका साथ चाहिए।

शनिवार को कैम किनारे चित लेटा था, ऊपर आसमान में कई हंसों को सीधी पंक्ति में उड़े जाते देखा था, गर्दन सीधी खींचे, कूँ-कूँ ध्वनि करते, डैनों को गरिमा से डुलाते···ऐसा लगा था जसे वे दिमाग़ पर कोई कविता लिखते चले गये। हंस बहुत ऊँचे नहीं उड़ता, कूँ-कूँ ध्वनि शायद उनके डैनों की थी···

कल रात को कुछ लिखना चाहता था।

पर मि. न्यूटन ने नया-नया बेड-स्विच लगाया था। सोचा लेटे-लेटे कुछ पढ़ूँ; ईट्स की कविता उठा ली थी और पढ़ते-पढ़ते किसी समय स्विच दबायी थी और सो गया था।

झरने की-सी ध्वनि जो आती है उसका रहस्य खुल गया है। खिड़की की सीध में थोड़ी दूर पर कैम नदी का level fall है, उसी की आवाज़ आती है। रात गहराने पर जब और ध्वनियाँ बन्द हो जाती हैं तब level fall से उठनेवाली आवाज़ गूँजती है, बहुत अच्छी लगती है—लगता है जैसे उस ध्वनि से दिमाग़ पर पड़ी दिन-भर की कर्कश ध्वनियाँ धुल रही हों।

कल रात को भी मन्द-मधुर संगीत नींद-सपनों के देश में होता रहा। हो सकता है साथ के कमरेवाली लड़की रात को बहुत धीमे स्वर से रेडियो बजाती हो —रेडियो यहाँ काफ़ी रात तक चलता है।

सुबह उठा तो लगा जैसे हंस रात-भर दिमाग़ के आकाश में होकर उड़े जाते

रहे हैं। और दिमाग़ पर एक साफ लीक छोड़ गये हैं, एक साफ़-सीधी पंक्ति के रूप में—

व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहाँ है ?

तम तोम की पीठिका पर हिम हंस कितना स्पष्ट है !

हंस की सीधी, खिंची गर्दन और उसी की सीध में उसकी सधी उड़ान पंक्ति की ध्वनि और लम्बाई में मूर्तिमान हो गयी है। 'हिम हं (स)' से उसके डैनों की आवाज़ ही सुनायी पड़ती है।

तैयार होकर गीत लिखने को बैठ गया।

मि. न्यूटन किसी समय ट्रे में ब्रेकफ़ास्ट दे गये—'मैं समझ गया था, आप किसी काम में व्यस्त हो गये हैं और नाश्ते की याद आपको नहीं रही।'

हंस से मेरा प्रश्न चल रहा था और वह बिना उत्तर दिये उड़ा ही जा रहा था,

नील-नीलम नभ निमन्त्रण दे किसी को
तो करे इन्कार कैसे,
आँख जिनके, हो न उनको चाँद-सूरज
की किरण से प्यार कैसे,
ठीक है, दिल पास रखता हूँ, समझता
हूँ सभी कुछ, आज लेकिन
व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहाँ है ?

'व्योम' से 'तोम' तक हंस का चोंच से पूँछ तक खिंचा शरीर, बीच में 'हिम हं (स)' की ध्वनि करते डैने।

लंच का समय कब निकल गया, मुझे पता नहीं। भूख लगी तो एक पिन्नी खा ली, दूध पी लिया और हंस से प्रश्न पूछता रहा; वह तो कुछ न बोला, पर मैं उसके अभियान की व्यर्थता उसे समझाता रहा,

झाँकती, संकेत करती जो गगन से
एक पावक-अंचला है, (यानी बिजली)
झनझनातीं पायलें जिसके पगों की
बादलों में चंचला है,
तू बढ़ा गर्दन चला पश्चिम तरफ़, है
पूर्व में मुसकान उसकी।
ध्वनि-प्रतिध्वनि, बिम्ब औ' प्रतिबिम्ब अम्बर व्यर्थ भरमाता कहाँ है ?
व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहाँ है।

'ध्वनि-प्रतिध्वनि' आदि में बिजली की चमक-धमक, बादल की गरज-गूंज पूर्ण प्रतिच्छायित है। 'पश्चिम' और 'पूर्व' कुछ निजी सन्दर्भ का संकेत भी देते हैं।

शाम को मिसेज़ न्यूटन ने दरवाज़ा खटकाया और एक प्याला चाय और बिस्किट मेरी मेज़ पर रख गयीं—आप आज दिन-भर यों ही कुर्सी पर बैठे रहे !

मैंने उन्हें आँखोंसे धन्यवाद दिया, पर बात अपने हंस से ही करता रहा। उसके प्रलोभन का रहस्य समझने का प्रयत्न करता रहा।

आसमानी स्वप्न ललचाते उसे हैं
भूमि जिसकी जन्म-गोदी,
आग से खिलवाड़ करने को तरसता
ही सदा है जल-विनोदी,

और फिर डैने मिले, इनको थका आ,
तोड़, आ, चाहे जला आ,
बे दिये क़ीमत यहाँ वरदान कोई मुफ़्त में पाता कहाँ है ?
व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहाँ है ?

और घर-परिवार से दूर बैठा यहाँ कोई क़ीमत ही तो चुका रहा हूँ, पर वरदान ?

अभी तो क़ीमत चुकाने को ही वरदान माने हुए हूँ।
जो ऋण का भार लेकर चलते हैं वे जीते कैसे हैं।
पर अभी तो बहुत कम क़ीमत चुका पाया हूँ।
बहुत कम ऋण उतार पाया हूँ।

रात को मि. न्यूटन खाना खाने को बुला ले गये। पोलियोवाली लड़की भी खाने पर थी—मिस मार्था—ब्लैक वेलवेट की पोशाक में—लम्बा स्कर्ट पहनती है जिससे उसके पैर में लगा आइरन कण्ट्रैप्शन दिखायी न पड़े। काले कपड़ों पर सफ़ेद मोतियों की माला उस पर खूब सज रही थी। प्रकृति ने उसके साथ कितना अन्याय किया है ! उसे इतना सुन्दर-सुकुमार-'चार्मिंग' बनाकर लँगड़ी बना दिया है। मार्था अपने जीवन की ट्रैजेडी के प्रति सचेत है। उसका दिल दबा है, पर वह ऊपर से मुसकराने का प्रयत्न करती है। बहुत धीमे-धीमे बोलती है, उसका स्वर बहुत सॉफ़्ट है। उम्र पच्चीस से कम होगी। फिर भी वह स्वावलम्बी होकर जीवन-यापन करना चाहती है। मैं ही उसे देखकर उदास हो गया—कुछ अपनी अधूरी कविता के कारण भी मैं 'ऑफ़ मूड' था। वे लोग कुछ अन्यथा न समझें, इसलिए मुझे कहना पड़ा कि मैं एक कविता लिख रहा हूँ जो पूरी नहीं हुई, और जब तक वह पूरी नहीं होती तब तक किसी बात-काम में मेरा मन न लगेगा। जल्दी खाना खत्म कर, उनसे माफ़ी माँग मैं अपने कमरे में चला आया। मार्था ने चलते समय कहा, आपको जल्दी टेबिल छोड़ने की अनुमति इसलिए दी जाती है कि जब आपकी कविता पूरी हो जाये तो हम लोगों को सुनायें !—जो अपने जीवन की सीमाएँ बिना किसी शिकायत के स्वीकार कर जीने और मुसकराने के लिए संघर्ष करते हैं वे मेरे कितने अपने हैं !

रात को मैंने अपने गीत का अन्तिम पद लिखा,

है ठहर तब तक फ़लक पर जब तलक है
ज़ोर बाज़ू का सलामत,
बिजलियों की हर लहर, तेरे ज़मीं की
ओर गिरने की अलामत,
दग्ध पर की, दग्ध स्वर की क़द्र केवल
एक धरती जानती है,
लाख आकर्षित किसी को भी करे आकाश अपनाता कहाँ है ?
व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहाँ है ?

मैं अपनी पंक्तियाँ जोड़ता रहा।
दूर से झरने की आवाज़ आती रही।
मार्था के कमरे से धीमे-धीमे संगीत का स्वर आता रहा।

आधी रात से ऊपर हो गयी है।
मार्था ने रेडियो ऑफ़ कर दिया है।

झरने की आवाज़ अब और साफ़ सुनायी देती है।
एक आन्तरिक स्वर में मेरा गीत भी कानों में गूँज रहा है।
एक पंक्ति सबके ऊपर उभर-उभर उठती है—
'दग्ध पर की, दग्ध स्वर की क़द्र केवल एक धरती जानती है।'

सोमवार, 12 जनवरी, '53

मैं 12 अप्रैल, '52 को बम्बई से यहाँ के लिए चला था—उड़ा था।
आज 12 जनवरी, '53 हो गयी है, 13 कहना चाहिए इस समय।
नौ महीने पूरे हो गये हैं।
नौ महीने सृजन की एक काल-इकाई!
शोध, स्वाध्याय के नोट्स लेने के साथ-साथ कविताएँ और नियमित रूप से डायरी भी लिखता रहा हूँ।

अब समय आ गया है कि मैं शोध को पूरा समय दूँ—कविता से शायद पिण्ड छुड़ाना असम्भव होगा, हालाँकि नियन्त्रण मुझे काव्य-सृजन पर भी रखना चाहिए; डायरी लिखना आज से बन्द कर रहा हूँ; कभी-कभी इसके लिए घण्टे से ऊपर समय देना पड़ा है। अकेलेपन और ख़ालीपन में कुछ अपने से बात करने जैसा यह काम करता रहा हूँ। शायद तेजी कभी इसे पढ़ें, शायद मेरे बच्चे बड़े होकर···

मेरे इतने प्रश्न पूछने, इतने समझाने-बुझाने, इतने ख़तरे बताने, इतनी आगाही देने के बाद भी हंस ने मुझे उत्तर नहीं दिया था, उड़ता ही चला गया था और जब बिस्तर पर गया उस समय भी वह मेरी स्मृति के फलक पर (फ़लक पर भी) उड़ता ही जा रहा था।···

अध-सोये, अध-जागे की कल्पना में या स्वप्न में मैंने देखा कि कहीं से एक वाण छूटा है, उससे बिद्ध हंस नदी में आ गिरा है, पर उसने अपनी यात्रा समाप्त नहीं की, वह अपने पंजों के बल पानी पर तैरता जा रहा है और उसके पीछे-पीछे एक trail of blood पानी पर बनती जा रही है। अब मुझे लगा हंस को कुछ कहना है, वह कह रहा है, 'धरती' से, जो घायल डैनों की क़द्र जानती है—

सुबह तैयार होकर मैं उसे लिखने को बैठ गया जो मैंने हंस से सुना था उसकी रक्त की धार से भी, पानी पर बनती-मिटती···

वाण-बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूँ अब तुम्हारी ही शरण में।
बादलों के देश तक जब चढ़ गया था
जानता था, लौट आना,
जानता था, है असम्भव नीड़ बिजली
की लताओं पर बनाना,
मैं गगन को भूमि की आकांक्षाएँ
कुछ बताना चाहता था,
वाण-बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूँ अब तुम्हारी ही शरण में।

हंस अपने को अब 'मराल' कहता है मरा···ल···
'शरण' में शर को नहीं भूला।
भूमि की आ—कां—क्षा—एँ (सब दीर्घ मात्राएँ) गगन को भेदती ऊपर उठती जा रही हैं···

किन्तु पश्चात्ताप करने के लिए तो
मैं नहीं तैयार होता,
नभ न मुझको खींच लेता तो धरा के
वास्ते मैं भार होता,
सिद्ध गिरकर कर दिया मैंने कि अपनी
शक्ति भर ऊपर उठा मैं,
आज कमज़ोरी नहीं, क़ूअत बड़ी मेरी,
तुम्हारे जो चरण में;
वाण-बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूँ अब तुम्हारी ही शरण में।

तीसरे पद की कुछ पंक्तियाँ लिखी थीं कि मि. न्यूटन आये और ब्रेकफ़ास्ट की ट्रे टेबिल पर रखकर चले गये—

'Still at it!'

'Still at it!'

मैंने तीसरा पद पूरा किया, जल्दी से नाश्ता करके लाइब्रेरी चला गया।

चौथा और अन्तिम पद रास्ते में दिमाग़ में बनता रहा—

पंख टूटा है, मगर यह ख़ैरियत है,
पाँव जो टूटा नहीं है,
जल-तरंगों से चपल सम्बन्ध मेरा
तो अभी छूटा नहीं है,
रक्त बहता जाय, कहता जाय जीवन
की पिपासा की कहानी,
जान लो यह, मुक्ति अपनी माँगने
आया नहीं हूँ मैं मरण में।
वाण बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूँ अब तुम्हारी ही शरण में।

लाइब्रेरी से लौटकर मैंने दोनों हंस-गीतों की साफ़ प्रतियाँ बनायीं—तेजी को विवाह-दिवस पर उपहार स्वरूप भेजने के लिए—कल पोस्ट कर दूँगा तो 24 तक उन्हें अवश्य मिल जायेंगी।

खाने पर मैंने मिसेज़-मिस्टर न्यूटन और मार्था को अपनी दोनों कविताएँ सुनायीं—कुछ रफ़ ट्रांसलेशन भी उनके लिए करता गया।—'पंख टूटा है, मगर यह ख़ैरियत है, पाँव जो टूटा नहीं है'—इसके अनुवाद और इसमें निहित विचार ने मार्था को कहीं गहरे छू दिया!···वह सहसा गम्भीर और फिर उदास हो गयी।—सबने मेरी कविताओं को बहुत पसन्द किया। न्यूटन ने बताया, कैम के हंस जाड़े के दिनों में किसी कम ठण्डे प्रदेश में चले जाते हैं और वसन्तागमन पर लौटते हैं। मार्था कम बोलती है, पर उसके चेहरे पर एक दबी-सी मुसकान रहती है। वह भीतर ही भीतर जैसे फ़ील कर रही थी कि उसे अपनी उदासी की सफ़ाई देनी चाहिए। उसने कहा—All good poetry makes me sad!...

मेरे साथ ही वह टेबिल पर से उठ गयी, मैं उसे सहारा दे उसके कमरे में छोड़ता अपने कमरे में आ गया। मार्था अपने-आप चल-फिर लेती है, थोड़े कष्ट से; कोई ज़रा-सा सहारा दे दे तो उसे सुविधा हो जाती है। जब वह थैंक्यू कहती है तब उसमें वास्तविक कृतज्ञता होती है, केवल औपचारिकता नहीं, यह उसकी नर्म-नर्म आँखों से अभिव्यक्त होती है। अपना दरवाज़ा बन्द करने से पहले उसने कहा, आपकी दूसरी कविता मुझे बहुत पसन्द आयी···उसमें मेरे लिये भी एक

सन्देश है।···

मैं बहुत दिनों से यह सोच रहा था, डायरी लिखना अब बन्द कर दूँ। क्या महत्त्व भी है इस लेखन का! जब तक तेजी इसे पढ़ेंगी ये बातें पुरानी हो चुकी होंगी, जब तक बच्चे इन्हें देखेंगे, बहुत-बहुत पुरानी, धुँधली, भुला देने योग्य···मैं शायद पुरानी यादगारों को ताज़ा करने के लिए इन्हें कभी उलटूँ-पलटूँ!···

और तीन-साढ़े तीन घण्टे मैं अपनी डायरी के पन्ने पलटता रहा हूँ।

मार्था के कमरे से मन्द संगीत आ रहा था।

दूर पर कैम के लेविल-फ़ाल की झर-झर ध्वनि आ रही थी—पानी गिरता, आगे की ही ओर बहता, पीछे कभी नहीं जाता, काल क्रम की तरह···

मैं डायरी के पन्नों में पीछे जा रहा था—we look before and after...

फ़लाँ दिन इंग्लैण्ड की धरती पर पाँव रक्खे थे···फ़लाँ दिन केम्ब्रिज आया था···7, जीज़स लेन के दिन···वज़ाँ के साथ मेले से भीगते लौटने की शाम···वंशो से मिलने के बाद लन्दन की बेचैन रात···हेन के साथ बितायी सन्ध्या···मेरे गीत में सैफ़ो के भावों का प्रतिबिम्ब···आन्द्रे और ओदेत के साथ नौका विहार···लूकस के साथ आधुनिक कविता पर बातचीत···ब्लैकपूल की आँधी···ग्रासमियर की भीगी-उदास यामिनी···आक्सफ़र्ड में डेनिस और पेट्रीशिया से भेंट···झा से मिलने का कटु अनुभव···लियोनार्डो डा विंची के चित्रों की नुमाइश···ऐशमोलियन की मूर्तियाँ···और वह उभयलिंगी बन जाने का सपना!···ब्रिटिश म्यूज़ियम में अध्ययन में डूबे हुए दिन···विण्ड मिल का तमाशा···पिकैडिली का नाइट-क्लब···कितना पश्चात्-चिन्तन···

जो ही पृष्ठ सामने खुलता है वही पकड़ता है, अतीत में ले जाता है। अतीत अभी कुछ दिन पहले कितना स्थूल, ठोस था, अब सब कहाँ है?···कहीं नहीं···कहीं तो है—स्मृति में—केवल कल्पना बनकर—केवल स्वप्न बनकर—'भूत केवल कल्पना है'—भविष्य जो अभी वर्तमान नहीं हुआ कल्पना ही तो है। अन्तहीन भविष्य की रील वर्तमान की रेखा पर गुज़र अन्तहीन अतीत बनने के क्रम में ही तो है—स्वप्न···सत्य···स्वप्न—जीवन—परिपूर्ण जीवन—केवल रेखा-अवधि सत्य के अतिरिक्त और क्या है (अति रिक्त!)···We are such stuff/ As dreams are made on, and our little life / Is rounded with a sleep...

○○○